S-4

1917

147
205

गृहलक्ष्मी

विषय-सूची संवत् १९७१।

चित्र

(१) रानी अमरकुँवरि। (२) कासा विश्रानको। (३) श्रीमती स्नेहलता देवी। (४) बहुलोमा कुटुम्ब। (५) श्रीमती सत्यबाला देवी देसाई। (६) स्वर्गवासी पंडित बालकृष्ण भट्ट। (७) सम्राट पंचम जार्ज। (८) जर्मन सम्राट क़ैसर। (९) रूस के सम्राट। (१०) फ्रान्स के प्रेसीडेंट। (११) आष्ट्रिया के सम्राट। (१२) सर्विया के राजा। (१३) हमारे सम्राट जार्ज पंचम। (१४) बेलजियम के एक नगर का दृश्य। (१५) क़ैसर और उनके फ़ौजी अफ़सर। (१६) जेम्स गारफील्ड की माता। (१७) हवाई जहाज़। (१८) आजकल की तोपों का प्रभाव। (१९) लार्ड किचनर। (२०) जनरल जाफ्रे। (२१) विन्स्टन चर्चिल। (२२) सर जान फ्रेंच। (२३) मिस मेग्गी टायट। (२४) मिस फिलिस डेयर। (२५) वेस्ट मिनिस्टर की डचेस। (२६) लंडन में अन्वेषक प्रकाश। (२७) ज़ेपलिन हवाई जहाज़। (२८) नये ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति। (२९) बर्तमान मनुष्यों की सृष्टि के पहिले का एक जीव। (३०) रूस की सम्राज्ञी। (३१) प्रिन्स विस्मार्क। (३२) आष्ट्रिया के युवराज। (३३) लड़ाई का एक दृश्य। (३४) लड़ाई का एक और दृश्य। (३५) माननीय गोपालकृष्ण गोखले सी. आई. ई.। (३६) गोखले के भस्मावसान का दृश्य। (३७) सात को एक ने जीता। (३८) लड़ाई का एक दृश्य। (३९) भालों और तलवारों का युद्ध। (४०) आकाश में लड़ाई।

पद्य



उपन्यास और आख्यायिकाएँ



ऐतिहासिक

चिट्ठी-पत्री

जीवन-चरित्र

तिथि-त्यौहार

विज्ञान

विविध शिक्षा

वैद्यक

शिल्प और कला

सम्पादकीय

समालोचना

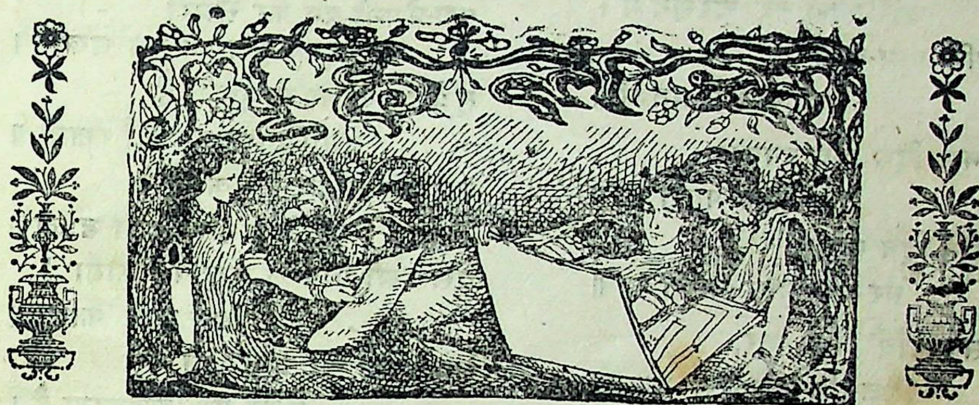
सामाजिक

स्त्री-शिक्षा

श्री रामचन्द्र जी का जन्म



सुदर्शन प्रेस, प्रयाग।



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः
"सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, चैत्र, संवत् १९७२ [प्रथम दर्शन

विनती

जय रामचन्द्र भगवान,
जयति असुरारी ।
जय जय भक्तन के प्राण,
दीन-दुखहारी ॥
जय अशरण शरण,
अनाथ-नाथ सीतापति ।
जय भव-भय हरण,
सुगुणन-गाथ संतन-गति ॥
जय लक्ष्मण-अग्रज
जयति कोशला-नन्दन ।
जेहि पूजत शिव अज
काटत जो यमफन्दन ॥
मैं करूँ विनय प्रभु,
तो ते दोउ कर जोरी ।
करि कृपा सुनो,
हे नाथ विनय यह मोरी ॥
मैं हूँ अनाथ तुम
नाथ जगत के नाथ ।
अब ऐसी किरपा करो,
जो होउँ सनाथ ॥

प्रभु, विनय करूँ,
धरि शीश तेरे चरणन मैं।
नहिँ पाप-बासना,
कभी समावै मन मैं॥
निस दिन होवै उपकार,
नाथ भारत का।
प्रति दिन सुधरे
घर-बार नाथ भारत का॥
सब गाँवै मिल कर,
"जयति-दीन-दुख भञ्जन"
बस यही विनय करता,
तुम से मनरञ्जन॥

———

न घरो का शौक जरो का शौक,
करोड़ लाख न चाहिए।
कर जोरि प्रभु विनती करूँ,
बस मधुर-भाखन चाहिए॥

———

बार बार विनती करूँ,
धरि चरणन पर शीस।
भारत की रक्षा करो,
कृपा सिन्धु जगदीश॥
देहु हमैं निज भक्ति प्रभु,
अरु विद्या का दान।
निशि बासर उन्नति करै,
हिन्दी हिन्दुस्तान॥

—मनोरञ्जन प्रसाद

———

मैं और भ्रमरी

पद्म-प्रेमनी बन कर भ्रमरी
फूल फूल का रस चखती।
तू प्रेम प्रणाली लाञ्छनि है
प्रेमाभिमान तू क्यों रखती॥
इस प्रेम पवित्र देव को तू ने
घृणित उपास्य बना डाला॥
बस इसी पाप से कलुषित कामा!
तेरा अङ्ग हुआ काला॥
यह पीला सा धब्बा* जो तेरी
गर्दन पर दिखलाता है।
वह गूढ़ रहस्य कलंकित
कीरति का तेरे दरसाता है॥
है कला प्रेम की पीत वरन,
प्रेमीमुख-दुति बतलाती है।
वह मंगल मूर्ति कला तुझ से
अपमान निरन्तर पाती है॥
सोइ ग्लानि-मलिन कालीदह मैं
सर्वाङ्ग डूबती जाती है।
उसकी ही ललित ललाट झलक
कुछ कुछ बाहर दिखलाती है॥

---

* इस कविता में भ्रमरी की गर्दन पर जो पीला धब्बा है वह प्रेम की कला का चिह्न है जिसका पीला रङ्ग होता है। सबूत यह है कि प्रेम के प्रभाव से प्रेमी का मुंह पीला हो जाता है। इससे प्रेम कला का रङ्ग पीला कहा गया है। वह प्रेम की मङ्गल-मूर्ति-कला भ्रमरी के अनिष्ट प्रेम-व्यौहार से अपमानित हो कर भ्रमरी के काले शरीर रूपी दह में ग्लानि से डूब रही है। सब डूब चुकी है केवल ललाट पर उसकी कुछ झलक बाहर से दिखाई दे रही है। —लेखक

क्या मधुकरि ! तू ने पाठ प्रेम का
सात समुन्दर पार पढ़ा ।
लग गयी विदेशी हवा तुझे भी
भारत की जन्मी रम्भा ॥
क्यों आर्य रमणियों से मिल कर
नहिं प्रेम समस्याएँ हलकी ।
जो और नहीं तो पढ़ लेती
पुस्तक दमयन्ती और नल की ॥
या सीता की, सावित्री की,
या रतनसेन की नारी की ।
जयचन्द-सुता-पृथुराज प्रिया
या सती रत्न गान्धारी की ॥
है आर्य-रमणियों सा पति-
प्रेमादर्श कहाँ भूमण्डल में ।
पति जीवित प्रेम पियूष पियें
बिछुड़े तन भस्म करें पल में ॥
—बैजनाथ सहाय मुख्तार

वसन्त विभव

(१)

फूले फूल अनेक
बौरने रूप दिखाया ।
हरियाली ने हरित
मखमली फ़र्श बिछाया ।
पक्षी कलरव करके
निज आनन्द जताते ।
षट्पद छबीले घूम
पुष्प गुच्छों पर जाते ।
रूखे सूखे सब वृक्ष भी
नये पल्लवित हो गये ।
आगमन जानि ऋतु राज का
मुग्ध सभी जन हो गये ॥

(२)

पृथ्वी ने है आज
अन्य शोभा दिखलाई ।
सरिता भी कल कल
निनाद से धीरे धाई ।
सरोवरों का विमल नीर
है स्थिरता धारी ।
कमलों की लग रही
भली है शोभा प्यारी ।
कुहू कुहू की ध्वनि अहो
चारों ओर सुना रही ।
यह देखो मञ्जु रसाल पर
कोकिल गाना गा रही ॥

(३)

शीतल मन्द सुगन्ध
वायु अब तो है बहता ।
लोनी लोनी लतिकाओं
से है कुछ कहता ।
जल की ठण्डक और
त्रास सर्दी का भागा ।
मिटा तुषार अपार
साथ ही भारत जागा ।
निर्मेघ गगन में देख लो
रवि कैसा दमक रहा ।
है स्निग्ध किरणमय चन्द्र भी
रजनी में मुसका रहा ॥
—विपिनविहारी मिश्र

नव-विचार

सायंस ने जहाँ संसार में अनेक विद्युत् आदि शक्तियों को अपना दास बना कर प्रकृति पर अधिकार जमाया है, वहाँ अनेक प्रतिष्ठित सायंस के ज्ञाताओं ने यह भी पता लगा लिया है और साबित कर दिया है कि मन की शक्ति सर्वोपरि है। बिजली, प्रकाश, मैगनेटिज्म आदि शक्तियों से कहीं बढ़ चढ़ कर मन की शक्ति है। इंगलेंड के सर्वोपरि विज्ञानज्ञ सर ओलीवर लाज मन की शक्ति के कायल हो गये हैं। सैकड़ों मील तक बिना किसी यंत्र के अपने विचार मानसिक शक्ति द्वारा सर ओलीवर पहुँचा देते हैं।

मानसिक शक्ति का उपयोग और उस के नियम सब लोग नहीं जानते। जो जानते हैं, वे उस से अवश्य लाभ उठाते हैं। मेस्मेरिज्म हिपनाटिज्म आदि सीखने की आवश्यकता नहीं है। जो काम इनसे निकलता है, वह मानसिक बल को नियमानुसार व्यवहार करने से भी सुगमता से निकल आता है।

मन के दो भाग हैं। एक का नाम जागृत मन और दूसरे अर्द्धजागृत मन है। पहिले के द्वारा हम सोच विचार करते हैं और दूसरा अर्थात् अर्द्धजागृत मन अनन्त शक्तियों का भण्डार है। सब विद्या और सब कला कौशल आदि का यह असीम खज़ाना है। जागृत मन रूपी चश्मा इसी झील से जल रूपी शक्ति प्राप्त करता है। रुधिर को नाड़ियों में चलाना, भोजन पचाना, केश बढ़ाना आदि सब अर्द्धजागृत मन के कार्य हैं। जिसने जो कुछ और जब कभी जाना है, बाहर से नहीं, भीतर से ही जाना है। बाहर का ज्ञान तो एक निमित्त मात्र है। मसीह, ल्यूथर, डारविन आदि जो महान पुरुष हुए हैं, वह अपने भीतर से ज्ञान प्राप्त कर के ही संसार को अपने विचारों द्वारा चकित करने में समर्थ हुए हैं।

प्रत्येक शक्ति अथवा शस्त्र के दो उपयोग हो सक्ते हैं। चाहे उससे लाभ पहुँचाओ, चाहे हानि। जो तलवार खूंखार शेर को मार कर रक्षा का कारण बनती है, उससे अपनी गर्दन भी काटी जा सकती है। इसी प्रकार मानसिक बल से चाहे निरोग अमीर प्रतापी और शूर बन सक्ते हो और चाहे बलहीन, दरिद्र, धूर्त और कमीने बन सक्ते हो। जैसा सोचोगे, वैसे ही बन जावोगे। जो सदा अपने को दुर्भाग्य, दीन और अयोग्य समझता है, वह सदा वैसा ही बना रहेगा। सोचना क्या है, मानो अर्द्धजागृत मन से माँगना है। कंगाली बीमारी माँगोगे, तो वह मिलेगी और यदि ज्ञान आरोग्यता माँगोगे तो वह भी मिलेगी। नव विचार के सिद्धान्तानुसार रोग भी हमारे खोटे विचारों का फल है। सच और शक्ति सम्पन्न विचार हमारे रुधिर में परिवर्तन कर देते हैं

यह बात निस्संदेह है। हैनरी ब्राउन साहेब ने कैलीफोरनियाँ में एक अस्पताल खोला है, जिसमें सब रोगों का इलाज केवल मानसिक बल द्वारा किया जाता है। कैसा ही भयङ्कर रोग क्यों न हो, यदि रोगी यह विचारे कि मेरा रोग निश्चय घट रहा है और मैं अवश्य शीघ्र निरोग होऊँगा, तो यह विचार निरंतर किया हुआ निस्संदेह आरोग्यता का मूल कारण बन जाता है। जो वैद्य वा मित्र किसी अपने संबंधी रोगी से असाध्यता के लक्षण देख यह कह बैठते हैं, कि तुम अब बचोगे नहीं, वे जरूर उस रोगी को मृत्यु के मुख में धक्का दे रहे हैं।

अर्द्धजागृत मन किस प्रकार हमको जो माँगे, वह दे सक्ता है इसके उत्तर में हम यह कहेंगे कि उस मन पर किसी का अधिकार नहीं है और न वह गुलाम बन कर तुम्हारा हुक्म मानने को तयार है। एक मात्र नियम यह है तुम जैसा विचारोगे, वैसा ही फल वह मन तुमको देगा। यह आवश्यक है कि इस साधन से पूर्व तुम अपने मनको सदाचारी बनाने का उद्योग करो। अब हम प्रथम आरोग्यता प्राप्त करने के नियम लिखते हैं—

(१) अपने मन से यह बात निकाल डालो कि तुम कठिन रोग में जकड़े हो, बल्कि यह सोचा करो कि रोग का अब अंत आ गया।

(२) प्रातः काल जागते ही अपने हाथ सब शरीर पर ऐसे प्रेम से फेरो, जैसे सवार अपने घोड़े पर फेरता है और सोचो कि अब हम निरोग हो रहे हैं। फिर पाँच मिनट गहरे श्वाँस लेकर मन ही मन यह कहो, कि मेरा अब रोगी रहना सब प्रकार असम्भव है। मैं शरीर का राजा हूँ और रोग को अपने विचार की अग्नि से भस्म कर रहा हूँ। मैं निरोग हो रहा हूँ। निश्चय मैं रोग को भगाता हूँ। रोग मेरी मानसिक शक्ति के आगे ठहर नहीं सकता"। इस मंत्र को आठ सात बार ध्यान पूर्वक कहो और ऐसी कल्पना करो कि वास्तव में जो मैं कह रहा हूं, वही हो रहा है।

(३) यदि ऐसा करते हुए भी कोई कष्ट बढ़ जावे, तो हिम्मत मत तोड़ो। दुगुने बल पूर्वक वही, संकल्प फिर करो और हर समय इसी महामंत्र को मन में रक्खो। याद रहे कि जब तुम रोग को भूलोगे, तो रोग भी तुमको बुरा मेहमान समझ चल देगा। सोते वक्त भी इसी प्रकार संकल्प करो और इस मंत्र का पाठ करते करते निद्रा की गोद में सो जाओ।

(४) ऐसे पुरुषों का संग छोड़ दो, जो तुम्हारे आगे कमज़ोरी के या अभाग्य संबंधी बातें छेड़ते हों।

(५) जहाँ तक हो, प्रसन्न रहो और हँसने की आदत डालो और भय को अपने पास एक मिनट को भी न आने दो।

—"वैद्य"

हा गोखले !

(ग़ज़ल सोहनी)

हा शोक है भारत का प्यारा
चन्द्रमा जाता रहा।
छाया अँधेरा, देश का हा
प्राण सा जाता रहा॥

हा ईश तेरे सामने कुछ
जोर चल सकता नहीं।
उद्धारकर्ता देश का
संसार से जाता रहा॥

वह उठ गया सब छोड़कर
हम देखते ही रह गये।
हा प्राण से प्यारा हमारा
गोखले जाता रहा॥

उसके विरह का शोक क्योँ कर
भूल सकता हिन्द है।
हा दाहिनी जिस की भुजा का
जोर सब जाता रहा॥

अब स्वर्ग मेँ जाकर के बैठे
गोखले आराम से।
हतभाग्य भारत रो रहा है
सुख सभी जाता रहा॥

—बसन्तलाल चौबे

(मर्यादा)

———

सेवा-टहल

बहिनोँ ! ईश्वर ने तुमको जन्म से ही स्नेह-मूर्ति बना कर यहाँ भेजा है। संसार मेँ अपने चरित से यह स्पष्ट कर दो, विना सेवा के स्नेह एक मिथ्या भ्रम है। आओ, देखो, ये तुम्हारे भाई पीड़ा मेँ तड़प रहे हैँ, रोग के सन्ताप के कारण कराह रहे हैँ, अब इनके क्लेश निवारण का कुछ उपाय हम लोग सोचेँ।

रोगियोँ का सम्हालना बड़ा कठिन काम है। शारीरिक कष्ट से उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। बात बात मेँ उनका क्रोध भभक पड़ता है। उनकी हठ भी अपूर्व होता है। वह सब पर शंका करने लगते हैँ। कभी कभी वह मौन धारण कर लेते हैँ। निर्बलता के कारण उनका स्वर भी धीमा हो जाता है। बड़ी एकाग्रता से उनकी बात सुननी पड़ती है। कभी वह तकिया सरकाने का संकेत करते हैँ, कभी उगालदान उठाने के लिए कहते हैँ, कभी खिड़की बन्द करने के लिए कहते हैँ। समय पर यदि उनकी आज्ञा का पालन नहीँ हुआ, तो झट वह बुरा मान लेते हैँ। यत्न पूर्वक कोमल मधुर बचनोँ से उनको बहलाना चाहिए। कठोर कुवाक्य कभी व्यवहार न करना चाहिए। इस प्रकार जहाँ तक बन पड़े, किसी विषय मेँ उनका विरोध

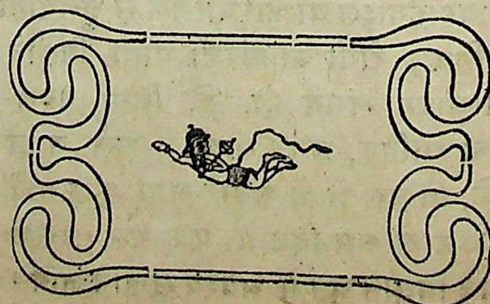
न करके वैद्य डाक्टर के कथनानुसार उनके पथ्य और चिकित्सा में प्रवृत्त होना हमारा कर्तव्य है।

सब से प्रथम इस का ध्यान हो कि रोगी का कमरा सड़क से लगा न हो और वह एका गाड़ी की आहट से बचा हुआ रहे, दूसरे मकान का वह भाग सूखा हवादार और साफ हो। दिन में उजाला और वायु यथेष्ट रूप से आने के लिए खिड़की दरवाज़े भी खुले छोड़ दिये जाँय। पर यदि ठंडी हवा वेग से बह रही हो, तो ऐसा करना ठीक नहीं है। रोगी बहुत निर्बल पड़ गया हो, तो चौकी चिलमची या चीनी मिट्टी के बर्तन डाल कर उसी कमरे में शौच करने का प्रबन्ध कर देना चाहिए। रात्रि के लिये तो अवश्य उस कमरे के पास ही या बाहर परदा इत्यादि लगाकर इसका प्रबन्ध कराना उचित है, क्योंकि रात को विशेष कर रोगी को ठंडी बयार से बचाना होता है। जहाँ तक हो, रोगी के घर में किसी प्रकार का मल या दूषित जल नहीं रहने देना चाहिए। चिलमची या चौकी पीकदान को बराबर फ़ेनाइल या कारबोलिक से धुलवाना चाहिए। रोगी का कपड़ा धोती, बिछौने की चादर संभव हो, तो नित्य बदलवाना चाहिए, अगर धोबी के धुले न हो सके, तो घर ही के कचारे सही, कुछ नहीं तो कम से कम दिन में एक बार उसके कपड़े बिछौने धूप में अवश्य सुखाये जायँ। रोगी का शरीर सदा साफ़ कपड़ों से अच्छी तरह ढका होना चाहिए। रोगी चलने फिरने योग्य हो, तो नंगे पाव नहीं घूमने देना चाहिए। चारपाई से उतरते ही पैर में जूता अवश्य होना चाहिए। यदि शक्ति हो, तो साँझ सबेरे दस कदम स्वच्छ वायु में टहलना फिरना बड़ा गुणकारी होता है। यदि रोगी इस योग्य नहीं है, तो चारपाई ही पर तकिये के बल घड़ी आध घड़ी बैठा देना चाहिए। उस समय उसके सन्मुख मेज या तिपाई पर यदि मन्दिरों के चढ़े हुए या घर के पूजन के पुष्प-बेल-पत्र रक्खे हों तो चित में धीरज और प्रसन्नता आती है। कमरे के एक कोने में वायु की शुद्धि के लिए समय-समय पर धूप बत्ती या गूगल या धूना जलाना अच्छा होता है। रोगी को धर्म में निष्ठा हो, तो किसी उत्तम ग्रन्थ के पाठ या भजन के गाने से बहुत लाभ होता है। जिस समय पीड़ा बढ़ती हो, उस समय स्तोत्र या उपनिषद के मन्त्रों को धीमे धीमे गाने वा भक्ति रस के छन्दों से शान्ति मिलती है। मुझे एक कुटम्बी का स्मरण है, जो बीमार पड़ने पर मुझे जयदेव की बनाई दस अवतार की बन्दना गाने के लिए बुलाते थे। इस सम्बन्ध में मैं कुछ ऐसी पुस्तकों का नाम देता हूँ, जो रोगी की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में धैर्य और साहस दिलाने और मनोरंजन करने में सहायक होंगी। तुलसी की विनय पत्रिका

सूरदास के भजन, मीरा बाई के भजन गीत गोविन्द-स्तोत्र, श्रीधर पा० का मनो-विनोद, शिवशर्मा का विदूषक, जी० पी० श्रीवास्तव की लम्बी दाढ़ी, तृप्यन्ताम (प्र० ना, मिश्र)।

रोग को देखने के लिए कमरे में दो तीन आदमियों से अधिक न आने पावें। वैद्य डाकृर के आने पर बहुधा घर भर के लोग उसी कमरे में उमड़ पड़ते हैं। पड़ोस के लोगों की भी भीड़ लग जाती है। ऐसा नहीं होने देना चाहिए। इससे कमरा गन्दा हो जाता है। रोगी घबरा उठता है। दिन में जो हाल पूछने आयें; उनमें बहुत निकट के सम्बन्धियों को छोड़ कर और शेष को बाहर ही बैठाना चाहिए। नियत समय के अलावे जब रोगी की बेचैनी बढ़े, तो डाक्टर को अव-श्य सूचना देनी चाहिए। एक वैद्य या डाक्टर को छुड़ा कर शीघ्र दूसरे को लगाना अच्छा नहीं है। इस में मुहल्ले के वृद्ध और अनुभवी पुरुषों से सलाह लेकर काम करना ठीक है। जिस वैद्य की चिकित्सा होती हो, उसकी योग्यता और कुशलता में रोगी को विश्वास दिलाना चाहिए। और आपको भी उसमें पूरा विश्वास रखना चाहिए। पथ्य इत्यादि में रोगी के जिद्द करने पर डाक्टर की आज्ञा के विरुद्ध करना मानो रोगी का शत्रु बनाना है। ऐसे समय बड़ी चतुरता, नमृता और प्यार से काम लेना चाहिए। मुँह पर हाँ कह देना और फिर उसे बातों में बहला देना और उसे रुष्ट न होने देना बड़ी दक्षता का काम है। रोगी के समीप, चिंतित होते हुए भी, सदा प्रसन्न, गंभीर रहना, उसकी तीखी, कड़वी बातें सह कर उससे मधुर संभाषण करना, उसके म्लान मुख की ओर देख कर मुस्कराना उसकी किंचित दुर्गन्धमय शय्या के निकट रात दिन झुके रहना, रात्रि में जागना, दिन में बन्द कमरों में रोगी के साथ अपना प्राण घुलाना—जब कि बाहर निर्मल वायु में लोग स्वतन्त्रता पूर्वक घूम घूम कर हँस बोल रहे हैं, एक बड़े आत्मिक बल, स्वर्गीय प्रेम और मानसिक दृढ़ता रखने वाले व्यक्ति का काम है। बहिन ! यदि तुम अपने कुटुम्ब परिवार वालों की कुछ इस भाँति की सेवा कर सकोगी, तो तुम्हारा हृदय आपही उस आनन्द और संतोष से भर जायगा, जो महान से महान पुण्य कार्य के करने पर भी दुर्लभ होता है। संदेह हो, तो कर के देख लो।

—गोपाल नारायण सेनसिंह



माननीय महात्मा गोपाल कृष्ण गोखले, सी० आई० ई०



जिसपै सबको दिमाग़ था न रहा,
मुल्क में एक चिराग़ था न रहा।

संतान को आदत कैसी डालनी चाहिए



इस शताब्दी में सर्वत्र शिक्षा का महत्व फैल गया है। प्रत्येक स्थान में सच्चा मनुष्य प्राप्त करने, और चरित्र सुधारने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। सुधारक समुदाय समाज संस्थाओं द्वारा शिक्षा का प्रचार दिन पर दिन अधिक कर रहा है। यह सत्य है कि विद्या से बुद्धि का विकास होता है, तथापि मनुष्य को अपनी चाल चलन अच्छी बनाने की भी बड़ी आवश्यकता है और जिस के लिए विद्या के सिवाय और कई उपकरणों की आवश्यकता है। सद्वर्तन, कर्तव्य में अनुराग और ईमानदारी (प्रमाणिकता) यह गुण मनुष्य के लिए इतने जरूरी हैं कि विना इनके शुद्ध चरित्र गठन होना असम्भव है। पाश्चात्य विद्वान मार्टिनलूथर लिखता है कि "किसी देश की उन्नति (Prosperity) वहाँ की पैदावर पर, वहाँ के सुदृढ़ विशाल किलों पर या मकानों की शोभा पर निर्भर नहीं रहती वरन् उस देश के सद्व्यवहारी मनुष्यों पर निर्भर रहती है।" एक समय १४वें लुई ने अपने प्रधान मंत्री से पूछा कि "मैं इतने बड़े देश का राजा होकर भी होलेंड जैसे छोटे से प्रदेश को क्यों नहीं जीत सकता।" अमात्य ने उत्तर दिया, "महाराज! देश की उन्नति बस्ती के बाहुल्य पर नहीं है परन्तु प्रजा के सद् आचरण पर अवलम्बित होती है।" उस समय के डच लोगों की उन्नति का कारण उनके सद्गुण थे। मौज-शौक-ऐश-आराम—जैसे दुर्गुण से रोम जैसे अति विस्तृत राज का भी अन्त हो गया। विलक्षण बुद्धि वाले मनुष्य को देख आनन्द होता है सही परन्तु मान सद व्यवहारी का ही अधिक होता है। बुद्धि मस्तिष्क की शक्ति है और व्यवहार हृदय की शक्ति। जब तक हृदय को उच्च शिक्षा नहीं मिलती तब तक और सब भाँति की शिक्षाएँ अपूर्ण हैं। प्रसिद्ध वक्ता शेरिडम के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जो उसका चाल चलन अच्छा होता तो वह समस्त पृथ्वी पर अपनी सत्ता फैला सक्ता। पर सदाचरण के अभाव के ही कारण उसके व्याख्यानों का असर जन समुदाय पर नहीं होता था। इतिहास देखने से विदित होता है कि जो जो महापुरुष इस संसार में अपना कीर्ति-स्तम्भ बना गये हैं, वे सब अपने शुद्ध आचरण द्वारा ही बना गये हैं,। वाशिङ्गटन में अन्य गुणों की अपेक्षा अपने जीवन को निष्कलंक बनाने का गुण अधिक था। इस से ही वह इतने ऊँचे पद पर जा सका!

पृथवी का स्वभाव है कि जो जमीन में उमदा बीज न बोया जाय तो तृणादि स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। पृथवी का और बच्चो का एक सा ही स्वभाव है। यदि

बालक को बचपन ही से अच्छी बातों का अभ्यास न कराया जावे तो वे स्वयं ही बुरी बातों को सीख जाते हैं। आदत अच्छी हो या बुरी एक दफा पड़ जाने पर फिर उसका छूट जाना अति कठिन होता है। शराब पीनेवाले को प्रथम पीते समय वमन—उलटी—कै—आदि होती है, नफरत भी आती है, परन्तु जब आदत पड़ जाती है तो वही व्यक्ति बड़ी खुशी से उसे पीता है। तमाखू, सिगरेट तथा अन्य मादक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी यही बात है। एक समय बास्टाईल के किले में एक व्यक्ति को कैद कर दिया था और अदालत में उसके ऊपर मुकदमा चला। न्यायाधीश ने उसे निर्दोषी ठहराया और उसे छोड़ देने के लिए हुक्म दिया। परन्तु उस निर्दोष व्यक्ति ने जेल ही में रहने की प्रार्थना न्यायाधीश से की; सारांश यह है कि जो आदत मनुष्य के अन्तःकरण में पैठ जाती है, वह प्राणान्त तक फिर नहीं निकलती।

विद्वान पुरुष भी आदत के गुलाम होते हैं। क्योंकि जो टेव उनमें बचपन से पड़ गई है उसे वे नहीं छोड़ सकते।

मा बाप का सब से बड़ा कर्त्तव्य अपनी संतान को अच्छी आदतें सिखाना है।

मनुष्य का उत्तम आभूषण अच्छी आदत ही है। शिशु-जीवन का अमूल्य समय बचपन माता के सहवास में अधिक बीतता है इसलिए माता के चरित्र का असर बच्चे पर बहुत पड़ता है। अभिमन्यु माता ही के पेट में चक्रव्यूह की लड़ाई सीख गया था। नारायण राव पेशवा का खून कराने वाली आनन्दी बाई के तीव्र स्वभाव का असर उसके पुत्र बाजीराव में हुआ। योगोमियो की गानविद्या की चातुरी उसके पुत्र वुल्फगंग मोजर्ट में साफ साफ मालूम होती थी। जब गर्भ में भी बच्चे के ऊपर माता के अच्छे वा बुरे स्वभाव का असर हुए विना नहीं रहता तब उसके पास अधिक समय तक रहने पर बच्चे के कोमल स्वच्छ हृदय पर माता की अच्छी या बुरी टेवों का असर पड़े तो आश्चर्य ही क्या!

मनुष्य जो टेव या लक्षण सीखता है उसका उत्पत्तिस्थान घर है। "घर नर को बनाता है" इससे स्पष्ट होता है कि गृह शिक्षा कितनी आवश्यकीय है। बच्चे के कोमल हृदय रूपी उद्यान में जैसी अच्छी वा बुरी फुलवाड़ी (टेव) बोयी जायगी, युवावस्था—बड़ी उमर—में वह खिलकर अपनी वैसी सौरभ फैलावेगी।

मनुष्य चाहे जितना सभ्य, निरभिमानी और विनीत-नम्र-हो, बचपन से उसे जो टेव पड़ जाती है उसका असर हृदय से कदापि नहीं जा सक्ता। चरित्र सुधारने का केन्द्रस्थान घर है। बच्चा बालकपन में जितना सीख लेता है उतना सम्पूर्ण आयु में जीवन भरमें—नहीं सीख सक्ता। बच्चा जो जो कृत्य होते देखता है अना-

यास जादू की तरह उनकी नकल करने लगता है। स्काट को गान विद्या का शौक उसकी माता से ही उत्पन्न हुआ था। उपदेश का जितना असर पड़ता है उससे अधिक असर प्रत्यक्ष उदाहरण का होता है। "अच्छी माता सौ शिक्षकों की समान है" यह अक्षरशः सत्य है। नेपोलियन में और शिवा जी में देश प्रेम उत्पन्न कराने वाली उन की माताएँ थीं। माता की महत्ता के सम्बन्ध में सब संसार का-देशों का-एक ही मत है। यदि किसी कृतघ्नी पुरुष से भी उसकी माता के सम्बन्ध में पूछा जाय तो अपनी माता की प्रशंसा मुक्त कंठ से करे बिना न रहेगा।

हिन्दुस्थान में गृहस्थोपयोगी (जिससे सच्चा गृहस्थ बने) ऐसी शिक्षा का बिल्कुल ही अभाव है। पिता के कर्तव्य जाने पहिले पिता बनजाने का अवसर आ जाता है; माता के धर्म-कर्तव्य-समझने से पहिले माता बनजाना पड़ता है। ऐसे असमंजस में बालक की शिक्षा जो घर पर ही, पैदा होने के दिनसे शुरू हो जाती है किस तरह ऐसे माता पिता देसक्ते हैं, और यही कारण है कि बालक बहुधा दुराचारी हो जाते हैं अथवा बुरी टेव सीख जाते हैं।

उद्योगी बनने की आदत डालनी चाहिए

बच्चे के लिए यह आदत सीखनी बड़े महत्व की है। टर्नर साहब कहते हैं कि "उन्नति का कारण उद्योग ही है" बच्चों में चंचलता स्वाभाविक गुण है, उसे चुपचाप पड़ा रहना पसंद नहीं लगता। 'मा बाप को या संरक्षक को उचित है कि अपनी सन्तान की चंचलता देख उसे योग्य उद्यम में लगावें' यह कौवेल के वाक्य हैं। नित्य व्यवहार में आने वाली कूँची-चाबी—जैसे दिन पर दिन अधिक चमकने लगती है वैसे ही उद्योग से मनुष्य का शरीर तन, मन अधिक आरोग्य लाभ करता है। उद्योगी पुरुष का महान शत्रु आलस्य है। शैतान सब को दिक करता है परन्तु उद्योगी पुरुष से शैतान भी हार जाता है। दुनियाँ में सब पापों की जड़ आलस्य है। मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ उसके उद्योग और आलस्य के अनुसार बढ़ती और घटती हैं। सर वाल्टर स्काट की आर्थिक स्थिति जब खराब हो गयी और ऋण चुकाने का कोई रास्ता न रहा तो उसने पुस्तकें लिखना प्रारम्भ किया। अधिक रात्रि तक इस उद्योग को जारी रखता और इस ही कारण से उसकी प्रत्येक पुस्तक प्रशंसा भाजन हुई और अपने कर्ज को चुका दिया। जीवन भर आनन्द-सुख चाहने वाले व्यक्ति को उचित है कि उद्योगी बने। यदि बुद्धि विलक्षण हो और उद्योगी न हो तो बुद्धि कुछ काम नहीं आ सकती।

वेस्टर लिखता है—"मेरी उन्नति का कारण मेरी बुद्धि नहीं है, परन्तु केवल

उद्योग है।" उद्योगी पुरुष ही समय का मूल्य जानता है। नेल्सन कहता है—"निश्चित समय से पन्द्रह मिनिट पहिले मैं अपने काम में लग जाता था, इससे ही मुझे विजय प्राप्त हुई।" बेकन चांसलर के पद पर रहता हुआ भी न्याय और साहित्य की पुस्तकें लिखने को समय बनता था। मिहनत पैसे की जड़ है, और समय ही पैसा, धन है। शेक्सपियर ने एक जगह लिखा है कि "मनुष्य की जिंदगी में एक समय ऐसा आता है कि जिसका उपयोग करने से भाग्य चमक उठता है और जो वह समय निकल गया, तो फिर उसकी सब ज़िंदगी व्यर्थ जाती है।" जिस घर के मनुष्य उद्योगी होते हैं, उस कुटुम्ब के बच्चे भी उद्योगी बनते हैं और जो गृहस्थ इसके प्रतिकूल—ऐश आराम में दिन काटते हैं, उनकी संतान भी वैसी ही होती है। मनुष्य के जीवन का आधार उसकी भली बुरी टेव पर है। यह सत्य है, तो कौन ऐसा होगा जो अपनी संतान को उद्योगी होने की टेव न डालेगा।

ईमानदार होना

यह टेव भी बच्चों के लिए अति आवश्यक है। यह बड़े महत्व की है। सच्चा मनुष्यत्व सम्पादन करने के लिए मनुष्य को ईमानदार (प्रमाणिक) होना बड़ा जरूरी है। दगा, कपट, बदमाशी और बेईमानी इन प्रत्येक में ऐसी मोहिनी शक्ति है कि मनुष्य के मन को शिथिल कर अनेक प्रपंचों की तरफ खींच लेती है। अनेक बेईमान व्यापारी 'पासंग' की तराजू रखते हैं, अच्छे माल में खराब चीज मिला अच्छे माल के नाम से ठगते हैं। कितने ही ग्वाला अथवा हलवाई दूध में जल मिला कर 'खालिस दूध है' कह कर ग्राहकों को धोखा देते हैं। बहुत से अप्रामाणिक वैद्य आयुर्वेद का ज्ञान न रखते हुए भी रोगी को उलटा सीधा समझा अपने लिए वैद्यराज बतला कर उपचार करने लगते हैं। परन्तु उनके द्वारा बीमार को फायदा होने की अपेक्षा कभी कभी ज़िंदगी भी जोखिम में पड़ जाती है अथवा जिंदगी से हाथ तक धोना पड़ता है। कभी कभी अप्रमाणिक हाकिम रिशवत ले झूठा फैसला कर देते हैं। बेईमान नौकर अपने मालिक का काम सच्चे मन से नहीं करते। बचपन से किसी तरह का व्यसन-कुटेव पड़ जाने से मनुष्य बेईमानी करने लगता है। परन्तु कुटेव पड़े पीछे निकाले नहीं निकलती। नौकर रखते समय मनुष्य की ईमानदारी ही देखी जाती है। इससे सिद्ध होता है कि सांसारिक व्यवहार के लिए प्रमाणिकता की कितनी आवश्यकता है। एक पोप का वचन है—"दुनिया बड़ाई करे, इसकी अपेक्षा अपने कृत्य से अपने मन को जो थोड़ी देर भी आनन्द हो, तो वह काम सब से अधिक कीमती है।" मा बाप की

बेपरवाही से ही बच्चों में बुरी टेव (बेई-मानी) फूट निकलती है। अनेक माताएँ प्रेमवश अपने बच्चों की बदमाशी बेईमानी पर अधिक ध्यान नहीं देतीं, प्रत्युत खुश होती हैं; परन्तु उनको यह विदित नहीं कि उनके ऐसे वर्ताव से बच्चों पर कैसा बुरा असर पड़ता है। मा बाप का कर्त्तव्य है कि संतान को बचपन ही से प्रमाणिक बनावे। "ईमानदार बालक ईश्वर की बनावट का सर्वोत्कृष्ट नमूना है" यह वचन महाकवि पोप का प्रत्येक घर में सुनहरे अक्षरों में लिखने योग्य है।

सच बोलना

यह बालकों को ज़रूरी और काम की चीज़ है। जो माता सत्य बोलती हैं, उन की संतान भी सत्यवादी होती है। बालकों के झूठ बोलने का कारण बड़ों की धमकी है। भारी-कठिन-काम करने की आज्ञा देना तो बच्चों को झूठ बोलना सिख-लाना है, क्योंकि जब वे उस काम को कर ही नहीं सकते, तब झूठ बोल कर ही छुटकारा पाते हैं। प्रत्येक देश में और प्रत्येक धार्मिक ग्रन्थ में सत्य का माहा-त्म्य पूर्ण रूप से अंकित है। उपनिषद में एक आख्यायिका है कि जब सत्यकाम उपनयन के लिए गुरु आश्रम में गया और गुरु से वेदाध्ययन के लिए कहा, तो गुरु ने उसका गोत्र तथा पिता का नाम पूछा; सत्यकाम ने उत्तर दिया कि मैं गोत्र नहीं जानता, अपनी माता से पूछ कर उत्तर दूँगा। यह कह माता के समीप जा कर कहने लगा कि मेरे पिता का नाम तथा गोत्र बता, क्योंकि बिना गोत्र के जाने गुरु जी वेद नहीं पढ़ाते। उसकी माता ने उत्तर दिया कि मैं तेरे जन्म के समय ऋषि योँ की सेवा किया करती थी। मैं नहीं बता सकती कि तेरा क्या गोत्र है और पिता का क्या नाम है। हाँ तेरा नाम सत्यकाम और मेरा जाबाला है, इसके सिवा और कुछ नहीं जानती। यह सुन सत्यकाम गुरु के समीप जा कर जैसा उसकी माता ने कहा, वैसा ही निवेदन किया और दोनों हाथ जोड़ कहा कि 'मैं सत्यकाम जाबाला हूँ।' इस छोटे से बालक की सत्य बात सुन गौतम मुनि ने विचारा कि ब्राह्मण बालक के सिवाय और कौन इस प्रकार सत्य बोल सकता है। उस बालक को उपनयन दिया। खेद है कि उच्च (ब्राह्मण) जाति भी आज कल असत्य बोलने लग गयी। अपना असली गौरव भूल गयी।

हर एक स्त्री का—माता का—धर्म है है कि स्वयं सत्य बोले और अपने बच्चों को सत्य बोलना सिखावे। बच्चों का पालना, सुधारना यह माता का मुख्य धर्म है; यह काम बड़ी जोखिम का है इसको बड़ी योग्यता से सम्पादन करना प्रत्येक भारत ललना का कर्त्तव्य है और यही उनका धर्म है।

आजकल के विचारानुसार ईश्वर ने स्त्री को दासी के समान काम करने को

अथवा पुरुषों के एक आनन्द की चीज़ नहीं बनाबी। माता जो शिक्षा देती है, वह हजार शिक्षकों से श्रेष्ठ, सचमुच दैवी शिक्षिका है। सद्गुण सभ्यता की पाठशाला आरम्भ में घर ही है। जो इस शाला में अज्ञान फैला हुआ हो, तो भावी प्रजा के चरित्र का सुधारना कठिन है।

नैपोलियन बोनापार्ट कहता था कि बच्चे के अच्छे या बुरे होने का कारण उसकी माता के अच्छे या बुरे विचार हैं। मुझ में जो इतनी दृढ़ता और पराक्रम है, वह मुझे मेरी माता ही ने दिया था।" यद्यपि यह कहा जाता है कि स्त्रियों ने दुनिया में कोई महान कार्य नहीं किये, महाभारत या रामायण जैसे महाकाव्य नहीं रचे, अथवा वाष्प यंत्र (Steam) या विद्युत यंत्र (Elecical) की खोज नहीं की, यह सत्य है, तथापि उन्होंने जो जो कार्य किये हैं, उनकी बराबरी मनुष्य कदापि नहीं कर सकते, क्योंकि माता द्वारा ही ऐसे ऐसे विद्वान आविष्कारक उत्पन्न हुए हैं। यदि उनको योग्य शिक्षा न दी जाती तो ऐसे ऐसे आविष्कार होते या नहीं, कहना कठिन है।

आजकल जहाँ देखो, वहाँ उन्नति करने के विचार हो रहे हैं। परन्तु जब तक 'गृह शिक्षा' नहीं दी जायगी, तब तक भारत की उन्नति होना असाध्य है। बच्चे का मस्तिष्क (Brain) मोम के समान नरम होता है, उस पर जैसे निशान (असर) बनाये जायँगे, वैसे ही बन जायँगे। यदि बच्चे को अच्छी आदत सिखलाई जायगी तो बड़ा होने पर वह एक योग्य व्यक्ति बनेगा।

इन आदतों के अलावा और भी बहुत सी टेव हैं, जो सिखलानी आवश्यकीय हैं; यथा नम्र बनना, आज्ञाकारी, निडर, योग्यायोग्य की पहिचान, ईश्वर पर भक्ति, निरभिमान होना आदि हैं। सुशील माताओं को, माता बनने वाली स्त्रियों को ही इस विषय को अवश्य पढ़ना चाहिए, यही नहीं, बल्कि प्रत्येक पुरुष को भी अपनी संतान सुधारने के लिए इन आवश्यक बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

—शंकरलाल गुप्त

अकाल पीडितों की सहायतार्थ शक्कर छोड़ देने वाले बालक

जब ई० सन् १८७३ के वर्ष में बंगाल और बिहार के परगनों में भारी अकाल पड़ा था, उस समय अकाल पीडितों की सहायतार्थ इंगलेण्ड देश में एक फंड इकट्ठा हुआ था। विलायत से उस समय लगभग ६० हज़ार रुपयों की सहायता मिली थी। उस समय जो विद्यार्थी शिक्षा पाने के लिए विलायत गये

थे, उन में से कुछेक को एक अँग्रेज गृहस्थ ने चाय पीने का निमन्त्रण दिया था। इससे वे उस अंग्रेज़ गृहस्थ के यहाँ चाय पीने को गये। उस गृहस्थ के ४-५ बालक बालिकाएँ भी थीं। वे सब और ये आगत विद्यार्थी गण चाय पीने के लिए टेबल के पास गये। वहाँ बंगाली विद्यार्थियों ने क्या देखा कि बालकों की चाय में शक्कर नहीं डाली गई है। यह देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने इसका कारण उनकी माता से पूछा कि, "बालक तो स्वभाव ही से मिष्टान्न-प्रिय हुआ करते हैं, फिर क्या कारण है, जो इन बालकों को चाय में शक्कर नहीं डाली गई ?" यह सुन कर उनकी माता ने उत्तर दियाः–"जनाब ! बंगाल के लोग अन्न बिना मर रहे हैं, इसलिए इन बालकों ने निश्चय किया है कि जबतक यह अकाल शमन नहीं होगा, तब तक हम शक्कर नहीं खायँगे।" इससे जो पैसे बचते हैं, उन पैसों को वे प्रति सप्ताह "अकाल-रक्षा-फंड" में जमा करा आते हैं। यह सुन कर सब उपस्थित लोगों के नेत्रों में आनन्द के आँसू आ गये। जब बालक जिन्हें कि अबोध कहते हैं, वे अपने सुख की सामग्री छोड़ देते हैं और उससे दूसरे दुखी लोगों की सहायता करते हैं, तो क्या इससे हमें शिक्षा लेकर सर्व सहायक नहीं बनना चाहिए ? अवश्य बनना चाहिए ! तभी हम ज्ञानी और पढ़े समझे जा सकते हैं, अन्यथा नहीं। बहिनो ! क्या तुम भी इन बालकों की भाँति सर्व उपकारी बनोगी ?

—जयनारायण उपाध्याय

स्त्रियों के विषय में पाश्चात्य ग्रंथकार क्या कहते हैं ?

१—मिष्ट भाषण यह स्त्री का मुख्य अलंकार है। —सोफोक्लीज़

२—Frailty thy name is woman.—शेक्सपियर

३—विवाह एक बड़ा अनिष्ट है, किन्तु लोग इसे अपना समझ कर अपने ऊपर स्वयं ओढ़ लेते हैं।—मीनांडर

४—स्वर्णालंकार स्त्री का अलंकार नहीं है। उसका अलंकार विनय है। —मीनांडर

५—दुःख में तथा संकट में स्त्री के सरीखा दूसरा निरपेक्ष व प्रेमपूर्ण मित्र नहीं।—युरोपायडीज

६—स्त्रियों की सच्ची जगह चूल्हा व सीने पिरोने की जगह ही है। सभामण्डप नहीं।—मीनांडर

७—घर घर भटकने वाली—१२ घर का बिल्ली—ऐसी स्त्री के देखते ही मेरे कपाल में बल पड़ जाता है।—थियोग्निस

८—यदि स्त्री करना चाहो तो पास की जानी हुई करो, दूर की नहीं।—हेसीड

९—यदि सुशील स्त्री मिल जाय, तो इससे बढ़कर कोई उत्तम लाभ नहीं और यदि कहीं दुष्टा से प्रसंग पड़ जाय तो इससे बढ़ कर कोई विपत्ति ही नहीं। —सिमोनिउस व हेसीड

१०—तुझे अपनी स्त्री पर कितना ही प्रेम हो, तो भी उसे तू अपनी सब गुप्त बातों को मत कह। कुछ कह और कुछ रख छोड़। —होमर

—जयनारायण उपाध्याय

दुःख को सह कर ट्रेन बचाने-वाली बालिका

अमेरिका खण्ड के एक गाँव के पास नाले पर एक लोहे का पुल था। पुल के पास एक झोपड़ी थी। इस झोपड़ी में "केट" नामक बालिका अपने माता पिता के साथ रहती थी। वर्षा काल की ऋतु में एक दिन सायंकाल के समय आँधी चल रही थी, तथा पानी बरस रहा था। 'केट' अपने घर की खिड़की में से अपने पिता के आने की बाट जोह रही थी, जो काम पर गया हुआ था। इसी समय उसने दूर से पटरी पर रेल आती हुई देखी। वह डब्बों को नहीं देख सकी, कारण कि अंधेरा बहुत हो गया था। केवल जलता हुआ एन्जिन (वाष्पयन्त्र) दृष्टि-गत होता था। जिस समय वह बालिका देख रही थी, उस समय रेलगाड़ी नाले के नजदीक आ रही थी, लेकिन वह फिर नज़र नहीं आई। बाद में थोड़ी देर तक देखा, परन्तु उस एन्जिन की अग्नि नज़र नहीं आई। इससे उसे शङ्का हुई कि ट्रेन में कुछ न कुछ खराबी हुई होगी। नहीं तो सदा की भाँति रेलगाड़ी शीघ्र ही मेरे घर के निकट आ जाती। ऐसा सोच वह शीघ्रता से कन्दील जला कर रेल की पटरी पर दौड़ी गई। जब वह पुल के पास पहुँची, तब उसे मालूम हुआ कि पुल टूट गया है और एन्जिन उस नाले में दूसरे डब्बों के साथ बह गया है। इतने ही में उसके मन में एक दूसरा विचार उत्पन्न हुआ कि "इस ट्रेन के मनुष्य तो मर गये होंगे अथवा ज़खमी हुए होंगे। उनको मदद करना यह मेरी शक्ति के बाहर है। किन्तु हाल ही में दूसरी ट्रेन आवेगी, उसकी भी यही हालत होगी, इस लिए ऐसा न हो कि वह ट्रेन भी ऐसी ही दुर्दशा को प्राप्त हो, उस ट्रेन के मनुष्य कुशलता पूर्वक रहें, ऐसा कोई प्रयत्न करना चाहिए।" ऐसा मन में निश्चय करके वह वीर बालिका फौरन ही एक पास के स्टेशन को जाने को निकली। वह स्टेशन उस पुल से एक मील के अन्तर पर था। उसको जाने के लिए मार्ग में एक नदी पार करना पड़ती थी जिस पर कि एक बहुत ही तंग पुल बना हुआ था। उस पुल को दिन में ही पार

करना बड़ा कठिन था, तो फिर अन्धेरी रात्रि के समय एक बालिका का उसको पार करना और जिस में एक भारी कठिनाई यह थी कि आँधी चल रही थी और पानी बरस रहा था, कितना कठिन था। इसका विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं। परन्तु उस परोपकारिणी बालिका ने स्टेशन पर जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। इस लिए उसने उन सब कठिनाइयों की कुछ भी परवाह न की। ईश्वर का नाम ले घुटने के बल बन्दर की भाँति चल उस पार हो गई, और तब फिर सपाटे से दौड़ने लगी। उसके कपड़े पानी में भीगे जा रहे थे, तथा काटों से छिदते और फटते जा रहे थे, इधर ठोकरें लगती जाती थीं, किन्तु उसने इसकी कुछ भी परवा न की और जैसे तैसे जल्दी से स्टेशन पर पहुँची; परन्तु इस समय इसका दम भर आया था, इससे प्रथम का वृत्तान्त कुछ न कह सकी, केवल 'ट्रेन रोको, रोको', कह तुरन्त ही पृथ्वी पर बेहोश हो कर गिर पड़ी। 'केट' स्टेशन पर पहुच गई, परन्तु बहुत जल्दी करने पर भी १ मिनट की देरी हो गई थी, इससे 'ट्रेन' चलदी थी। स्टेशन मास्टर ने तुरन्त ही आदमियों को दौड़वा कर गाड़ी रोकवाई, नहीं तो ट्रेन के सब मनुष्य मर जाते। कहो, क्या 'केट' बाहादुर बालिका नहीं थी?

उसने बहादुरी करके समाचार देकर सैकड़ों मनुष्यों के प्राण बचाये। उसकी इस कृपा के लिए सबों ने उसको हार्दिक धन्यवाद दिया। इन बच जाने वाले लोगों को उस समय कितनी खुशी हुई होगी, इसका अनुमान नहीं हो सकता।

पाठिकाओ! परोपकार करने का आवेश मन में आ जाने से एक बालिका भी कितना बड़ा दुःख उठाने को शक्तिमान होती है, और उसके मन में कितनी बड़ी बहादुरी आ जाती है, इसका यह कैसा अच्छा उदाहरण है।

अंधेरी रात्रि में एक बालिका इस भाँति एक टूटे हुए पुल को पार कर एक मील तक भागी, यह सब ऐसे परोपकारी कार्य के आवेश का ही परिणाम समझना चाहिए। इस लिए पाठिकाओ, यदि आप परोपकारी बनना चाहेंगी, तो आप भी ऐसे कितने ही महान कार्य कर सकेंगी। दूसरों के हित का काम करने से ईश्वर प्रसन्न होता है और मनुष्य भी प्रसन्न होते हैं, केवल इतना ही नहीं, परन्तु ऐसे काम करने वाले को स्वतः जो प्रसन्नता होती है, उसका अनुमान वैसे कार्य के करने वाल ही कर सकते हैं—अन्य नहीं।

—जयनारायण उपाध्याय

हमारी स्त्रियों का स्वास्थ्य

अनेक कारणों से हमारे देश की स्त्रियों का स्वास्थ्य दिन प्रति दिन खराब होता जा रहा है। जरा जरा सी बातों से भीत और चकित होने वाली माताएँ प्रताप और शिवा जी उत्पन्न नहीं कर सकतीं। जिस देश का अधःपतन होता है उस देश की स्त्रियों का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल सब से पहले कम होना आरम्भ होता है। जहाँ के मनुष्य, घर में चिराग नहीं जलता—इसलिये—और पकी पकाई खाने को मिलेगी—इसलिये विवाह करते हैं वहाँ स्त्रियों का आदर केवल मनु महाराज की उक्तियों में ही रह जाता है। घर की लक्ष्मियों को घर की दासियों में परिणत करने वाला समाज क्या वीर और विद्वानों से विभूषित होगा या दास और दीनों से कलंकित ? हमारी स्त्रियों का स्वास्थ्य जिन कारणों से नष्ट हो रहा है आज इस अल्प लेख में उन पर थोड़ा सा विचार किया जाता है।

स्त्रियाँ केवल घर में और फिर घर भी हिन्दुस्थानी जिन में परदों की दीवारों और कोठरियों की बहुतायत ने वायु और प्रकाश को बहिष्कृत कर देने का पक्का इरादा कर रक्खा है बन्द रहती हैं। शुद्ध वायु और नियमित व्यायाम के अभाव के कारण उनकी शारीरिक अवस्था शोचनीय हो उठती है। इस दीन अवस्था में रहते हुए उनको दिन रात अनवरत तेली के बैल की तरह घर के कूड़ा करकट के काम में लगा रहना पड़ता है जिसके कारण बहुत सी कुल वधुएँ तपेदिक और अनेक संक्रामक रोगों की भेंट हो जाती हैं। विद्या विहीन होने के कारण वे सफाई और उससे क्या लाभ है—इस बात को नहीं जानतीं, किस ऋतु में किस तरह रहना चाहिए इसका उनको ज्ञान नहीं होता। यही कारण हैं जो उनके स्वास्थ्य का यथा संभव शीघ्र सत्यानाश कर देते हैं। और उनके पति उनकी इस गिरी हुई अवस्था पर क्यों विचार करने लगे हैं वे तो पत्नी वियोग के दूसरे ही दिन मोहर बाँध दूसरी शादी करने का ईश्वर-दत्त हक्क रखते हैं। वीर और विद्वान पैदा करने वाली माताएँ भारतवर्ष में प्रायः जिस बुरी तरह समयापन करती हैं उसका कोई ठिकाना नहीं। एक और भी बहुत बड़ा कारण है जिसने उनकी शारीरिक शक्ति को रसातल पहुँचाने में बड़ी बहादुरी दिखाई है और वह उनको असमय गर्भवती कर देना है। भारत के किसी प्रांत के मरण संबंधी विवरण को पढ़िये आप को बालक पैदा होने या पैदा होने के बाद उन बेचारियों के लिए अवश्यम्भावी कुछ रोगों में मृत्यु के मुख में पतित होने वाली हिन्दू नारियों की जितनी बड़ी संख्या मिलेगी उतनी और किसी जाति में नहीं।

बहुत आदमी भ्रम से यह समझ बैठे हैं कि जो ज्यादह काम करता है वह

ज्यादह तन्दुरुस्त होता है। पर वास्तव में यह बात नहीं है। काम करने पर तन्दुरुस्ती नहीं, काम करने के ढंग पर तन्दुरुस्ती का विचार होना चाहिए। रो रो कर और तबियत को विवश करके जो काम किया जाता है वह तन्दुरुस्त आदमी का काम नहीं कहा जा सकता। हमारी स्त्रियाँ घरों में दासी रूप में जो काम कर रही हैं वह भी इसी ढँग का काम है। लोग कहते हैं कि चक्की पीसने से और बरतन माँजने से तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है, हम भी कहते हैं बेशक। पर मैशीन की तरह दिन रात काम करने, विश्राम और उपयुक्त आहार न मिलने पर वह चक्की और चौका उन के लिए आरोग्यप्रद चीजें हैं या रोगप्रद? काम के बाद आराम और आराम के बाद काम, प्रकृति का साधारण नियम है। यदि इस नियम का अपवाद देखना हो तो हमारी स्त्रियों की अवस्था देखिये।

जब तक हम अपनी स्त्रियों का आदर करना नहीं सीखेंगे, उनको खुली हवा और प्रकाश में नहीं रखेंगे उनको दासीवत् रखने की बजाय गृहलक्ष्मी के रूप में उन को घरों में प्रतिष्ठा नहीं करेंगे और अपनी निकृष्ट वृत्तियों की पूर्ति का साधन न समझ कर उनमें उचित समय उपस्थित होने पर गर्भाधान न करेंगे उस समय तक वे भी मनुष्य रूप में पशु और वीर विद्वानों की बजाय भीरु और मूर्ख पुरुष पैदा करना बंद नहीं करेंगी। —"वैद्य"

मन चंगा तो कठौती में गंगा



हा हा! क्या ही अनूठा वाक्य है। हमारी पाठिकाएं शायद "मन चंगा तो कठौती में गंगा" इस वाक्य का मतलब न समझी हे। अच्छा पहिले मैं इस वाक्य का ही मतलब सुनाता हूं। "मन चंगा" का अर्थ है 'मन का वश होना' और "कठौती में गंगा" का अर्थ है "यहीं सब कुछ है।" अब पूरे वाक्य का अर्थ हुआ "यदि मन वश में है तो यहीं सब कुछ है।"

क्या सचमुच मन वश में होने से "यहीं सब कुछ है?"

हाँ, निःसंदेह "यहीं सब कुछ है।"

अच्छा सुनिये न।

किसी नगर में रायदास नामक एक व्यक्ति रहते थे। ये जाति के चमार थे। ये परमेश्वर के बड़े भक्त थे। परन्तु यह हाल किसी को मालूम नहीं था। एक दिन रायदास अपने घर दालान में बैठे हुए जूते बना रहे थे। इतने में उनके सामने से एक मूर्ख ब्राह्मण निकला। रायदास उसे देख खड़े हो गये और कहा—महाराज, पायलागैं।

ब्राह्मण—खुश रहो।

रायदास—महाराज आप कहाँ जाते हैं?

ब्रा०—गंगा जी के दर्शन करने को।

रा०—महाराज यदि मैं गंगाजी को कुछ भेंट दूँ तो आप ले जावेंगे या नहीं ?

ब्रा०—हाँ बराबर ले जाऊँगा।

रायदास ने ब्राह्मण को पैसा और सुपारी देकर कहा, "आप गंगाजी को ये भेंट देकर कह देना कि ये भेंट आप को रायदास ने भेजी है।"

ब्राह्मण रायदास की भेंट लेकर गंगाजी पहुंचा। उसने गंगाजी में स्नान किया और चलने लगा। चलते समय उसे याद आई कि रायदास की भेंट गंगाजी को देना है।

ब्राह्मण ने गंगाजी में पैसा सुपारी छोड़ कर कहा कि हे माता जी, ये भेंट रायदास ने आपको भेजी है। सो मैंने आप को दे दी। रायदास की भेंट गंगा में डालते ही गंगा जी में से एक हाथ "स्वर्ण कंकण" लिये हुए निकला और साथ ही साथ ब्राह्मण को आवाज सुन पड़ी कि "हे ब्राह्मण तू रायदास से कह देना कि गंगाजी ने तुम्हारी भेंट ले ली और उस भेंट के बदले तुम्हें गंगाजी ने यह कंकण भेंट में दिया है।"

ब्राह्मण वह कंकण लेकर घर की ओर चला। मार्ग में ब्राह्मण ने सोचा कि "गंगाजी ने रायदास को ऐसी उत्तम भेंट दी है। मैं इसे रायदास को न दूँगा मैं ही अपने पास रक्खूंगा।"

ब्राह्मण अपने नगर में आया और रायदास के घर के सामने से निकला। रायदास ने प्रणामादि शिष्टाचार कर पूछा—"महाराज आपने हमारी भेंट गंगाजी को दे दी थी ?" ब्राह्मण बोला, "हाँ मैंने दे दी थी गंगाजी ने उसे ले लिया पर कहा कुछ नहीं," इतना कह ब्राह्मण अपने घर पहुचा।

घर में जाकर वह कंकण उसने अपनी स्त्री को दिखलाया और कहा—

"यह कंकण गंगाजी ने रायदास के लिए दिया था। मैंने उसे नहीं दिया मेरा विचार है कि इसे राजा को देकर कुछ पुरस्कार लूँ जिससे कुछ दिन चैन से कटें।" स्त्री बोली, "नाथ आप ऐसा दुष्कर्म न कीजिये यह स्वर्ण कंकण रायदास को ही दीजिये।" ब्राह्मण ने स्त्री को डाँट बताकर कहा कि यह कंकण मैं राजा ही को दूँगा और कुछ इनाम लूँगा। स्त्री बेचारी दब कर रह गयी।

दूसरे दिन ब्राह्मण वह कंकण लेकर राजा की सभा में गया। राजा ने उसे यथेष्ट द्रव्य देकर वह कंकण ले लिया। राजा के एक कन्या थी। उस कन्या ने वह कंकण मुँदरी में जड़वा कर पहिन लिया। एक दिन जब वह कन्या अपनी सहेलियों में बैठी थी। उसने सहेलियों से पूछा, "कहो यह कंकण कैसी शोभा देता है।" सहेलियाँ बोलीं, "शोभा तो देता है मगर इसकी शोभा फीकी है।" राजपुत्री ने कहा, "क्यों ?" सहेलियाँ बोलीं, "इसकी जोड़ी होनी चाहिए।"

राजपुत्री ने पिता से कहा कि जब तक आप ऐसा ही दूसरा कंकण न मंगवा देंगे तब तक मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगी। यह सुन राजा ने उसी ब्राह्मण को बुलाया और कहा कि ऐसा ही दूसरा कंकण लाओ। यदि न लाओगे तो राज्य से निकाल दिये जाओगे। ब्राह्मण सोच में पड़ गया कि अब दूसरा कंकण कहाँ से लाऊँगा। न लाऊँगा तो राज्य से निकाल दिया जाऊँगा। बेचारा संकट में पड़ गया। निदान राजा से कहा, "सरकार लाऊँगा।"

ब्राह्मण उदास मन से घर आया और सारा हाल स्त्री से कहा। स्त्री ने कहा, "मैं ने आपको पहिले ही समझाया था। अब उसी रायदास के यहाँ जाओ।" ब्राह्मण रायदास के घर पहुँचा और बड़ी नम्रता से कहा, "रायदास जी, अब तुम ही बचाओ।" रायदास ने हाल पूछा। ब्राह्मण ने सब हाल बतलाया। रायदास बोले, "तुम किसी प्रकार की चिंता न करो।" रायदास ने इतना कह, उनके पास जो चमड़ा वगैरह गीला करने के लिये कठौती रक्खी थी उसमें हाथ डाल "मन चंगा तो कठौती मे गंगा" नामक वाक्य उच्चारण किया और उसमें से हाथ निकला और वैसा ही दूसरा स्वर्ण कंकण दे दिया।

ब्राह्मण ने वह कंकण राजा को दिया और रायदास की ईश्वर भक्ति का सब हाल कहा। राजा ने कहा "धन्य है मेरा राज्य जिसमें ऐसे ईश्वर-भक्त निवास करते हैं"।

दूसरे दिन राजा और उसके मंत्री वगैरह रायदास के यहाँ मिलने गये। रायदास ने उनका यथाशक्ति आदर सत्कार किया। फिर रायदास ने उसी चमड़े भरे पानी का सब को चरणामृत दिया। सबने तो पान कर लियो पर राजा ने मुँह के पास हाथ ले जाकर अपने कुरते की बाँह मे डाल दिया। कुछ समय बैठ कर सब अपने अपने घरों क लौट आये।

दूसरे दिन राजा के कपड़े धोबी के यहाँ साफ़ होने गये। धोबी की लड़की वे कपड़े धोने ले गई। जब उसने राजा का कुरता धोया तो वह दाग जो रायदास के चरणामृत को कुरते की बाँह में डाल लेने से पड़ गया था। चमड़े के पानी का दाग होने के कारण नहीं छूटता था। उस लड़की ने वह दाग मुँह से चूसा तो उसकी दिव्य दृष्टि हो गई जिससे वह सब के मन की बात जान लेने लगी। वह कन्या राजा के कपड़े देने आई। उस समय राजा पूजा कर रहा था। कन्या ने पूछा, "राजा क्या करते हैं।" आदमियों ने कहा, "राजा पूजा कर रहे हैं।" कन्या बोली, "राजा पूजा तो कर रहे हैं पर सच्चे दिल से नहीं। उनका ध्यान इस समय घोड़े की ज़ीन बनवाने में लगा हुआ है।" इस शब्द के सुनते ही राजा बाहर निकल

आया और लड़की से पूछा कि तूने कैसे जाना। वह बोली, "पहिले तो मैं नहीं जानती थी पर आज आप के कुरते का एक दाग चूसा तभी से मैं सब के दिल की बात जान लेती हूँ।" राजा इस शब्द के सुनतेही बड़ा रंज करने लगा कि मैं ने बहुत बुरा किया जो रायदास का चरणामृत न पिया। राजा जन्म भर पछतावा करता रहा।

धन्य है! तप का प्रभाव!

पाठिकाएँ अब तो अवश्य ही समझ गई होंगी कि "मन चंगा तो कठौती में गंगा।"

—जहूरबक्श

यशप्राप्ति

संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो अपना यश न चाहता हो, पर थोड़े ही आदमी कुछ उपाय करते होंगे जिस से उन्हें यश प्राप्त हो।

कोई अपना नाम बढ़ाने के लिए बाग बगीचे बनवाते, कोई बड़ी बड़ी इमारतें बनवाते, कोई मंदिर बनवाते, कोई कुआँ बावली खुदवाते, कोई पाठशाला बनवाते इत्यादि कई प्रकार से अपना द्रव्य व्यय करते ह। यह सब काम तो अच्छे हैं परंतु इन कामों से उनको यथेष्ट यश प्राप्त नहीं होता। यथेष्ठ यश क्यों प्राप्त नहीं होता? जब तक उसकी इमारत बनी रहेगी तब तक उस का यश रहेगा। इमारत हमेशा ही बनी न रहेगी एक न एक दिन नष्ट हो ही जायगी। जहाँ इमारत नष्ट हुई कि उसका यश भी उसीके साथ नष्ट हो गया।

मुगल बादशाहों में-शाहजहाँ ने बहुत इमारतें बनवाई थीं। उन इमारतों में से आगरे का "ताजमहल" भी एक इमारत है जो अभी तक बनी है। इस इमारत के बनवाने में शाहजहाँ ने बहुत परिश्रम किया था और लगभग सवा तीन करोड़ रुपये व्यय किये थे। यह इमारत भी किसी न किसी दिन अवश्य नष्ट हो जायगी। इमारत के नष्ट होने के साथ ही साथ शाहजहाँ का नाम भी नष्ट हो जायगा।

उज्जैन के राजा विक्रमादित्य और भोज का नाम प्रायः सब जानते हैं। इनको हुए दो हजार वर्ष से भी ज्यादः समय हो गया पर इनका नाम क्यों नष्ट नहीं हुआ? ये विद्या से प्रेम करते थे विद्वानों का आदर करते थे। राजा भोज ने तो यहाँ तक किया था कि उनके राज्य में एक भी आदमी अपढ़ नहीं था। इससे सिद्ध होता है कि जैसा यश विद्या से होता है वैसा किसी और काय से नहीं।

कालिदास जो कि पहिले निरे मूर्खानंद स्वामी थे परन्तु फिर स्त्री के कारण से इतने दिग्गज पंडित हो गये कि उनका नाम आज लौं चला जाता है। कालिदास

संस्कृत में बड़े विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत में कई ग्रंथ बनाये हैं। इन्हींका बनाया शकुन्तला नाटक आजकल इतना आदर पा रहा है कि उसका अनुवाद अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन इत्यादि भाषाओं में भी हो गया है और विद्वान उसे बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। यह लिखते समय मुझे कविवर बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त का बनाया हुआ निम्न लिखित पद्य याद आ गया।

कवि वर्य शेक्सपियर तथा होमर सदा सम्मान्य हैं;
विख्यात फिरदौसी सदृश कवि और भी अन्यान्य हैं।
पर कौन उनमें मनुज-मन को मुग्ध इतना कर सके—
वाल्मीकि वेद व्यास, कालीदास जितना कर सके ॥

इससे सिद्ध होता है कि जैसा यश विद्या से होता है वैसा किसी और कार्य से नहीं।

शेक्सपियर भी एक प्रख्यात कवि हो गया है जिसने अंग्रेजी में उत्तम ग्रंथ रचे हैं। इसके ग्रंथों के भी अनुवाद कई भाषाओं में हो गये हैं और उन ग्रंथों का बड़ा गौरव है। इससे सिद्ध होता है कि जैसा यश विद्या से होता है वैसा किसी और कार्य से नहीं।

महात्मा तुलसीदास जी

ऐसे विद्वान पुरुष रत्न हो गये हैं जिन्हें सब जानते हैं। इन्होंने रामायण, विनयपत्रिका, सतसई इत्यादि कई ग्रंथ बनाये हैं। रामायण तो ऐसा ग्रंथ है जो अपनी सानी नहीं रखता। रामायण जैसा कोई ग्रंथ है ही नहीं कि जिसकी एक एक पंक्ति में *अमृत भरा हुआ है। रामायण ऐसा ग्रंथ है जैसे घड़े में समुद्र भर दिया हो। धन्य है! गोस्वामी जी जैसा परोपकार तुम ने किया वैसा कोई न करेगा। ऐसा कोई हिन्दू व्यक्ति न होगा जिसके घर में रामायण न हो और उसका पाठ न करता हो। जब तक रामायण रहेगी तब तक तुलसीदास जी की कीर्ति स्थिर रहेगा। इससे सिद्ध होता है कि जैसा यश विद्या से होता है वैसा किसी और कार्य से नहीं।

ऐसे कई विद्वान पुरुष हो गये हैं जिनका यश पृथ्वी पर अब तक छा रहा है। अब वर्तमान समय के कुछ विद्वान पुरुषों के नाम सुनिये।

श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बाबू साहब बंगला के बड़े भारी लेखक और कवि हैं। आपकी कीर्ति हिन्दुस्थान ही में नहीं बल्कि तमाम पृथ्वी में गूंज रही है। आप ने "गीतांजलि" नामक एक पुस्तिका बनाई है जिसका आदर देश विदेश सब जगह हो रहा है। कुछ समय हुआ आपको नोबुल-प्राइज़ नामक बहुत बड़ा (१२५०००) पुरस्कार मिला था। गवर्नमेंट ने आपको डाक्टर आव लिटरेचर नामक उपाधि से भूषित किया है। आपकी बनाई पुस्तकों के अनुवाद ("आँख की किरकिरी" "स्वदेश" इत्यादि) हिंदी में भी निकल चुके हैं।

* उपदेश।

"सरस्वती" संपादक–पं० महाबीरप्रसाद जी द्विवेदी

आपकी जो कीर्ति हिन्दी-प्रेमियों में है वह पाठक पाठिकाएँ सभी जानते हैं। आपकी "सरस्वती" पत्रिका अमेरिका, इंगलेंड, फ़िजी इत्यादि देशों में भी नाम पा रही है। आपने हिंदी में कई उत्तम ग्रंथ बनाये हैं।

कविवर बाबू मैथिली शरण गुप्त

आप हिंदी साहित्य के एक रत्न हैं। आपको कौन नहीं जानता। हिंदी में आपकी कीर्ति किसी तरह कम नहीं। आप ने "भारत-भारती" नामक एक बहुत ही उत्तम ग्रंथ बनाया है। "सरस्वती" "मनोरंजन" इत्यादि पत्रों में आपकी कविताएँ निकलती हैं। पाठक आपकी कविताओं को बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। "सरस्वती" में आपकी लिखी हुई जो "स्वर्गीय संगीत" नामक कविता निकली थी वह बहुत ही उत्तम थी। कुछ समय हुआ आप जबलपुर की नागरी सभा में गये थे। वहाँ आप का जो आदर सत्कार हुआ था सो मैं कुछ यहाँ लिखता हूँ। जब आप सभा में पहुँचे तब पं० सुखराम चौबे ने इन पद्यों से उनका परिचय कराया:—

अंग कृश ऋषियों सरीखा,
मुख अमल जलजात सा।
तेज जिसका लाल रवि सा,
भेष भलमनसात सा॥
स्वच्छ साफा सीस पर,
बाँधे हुए हैं जो सुजन।
यही है कविराज अपना,
देख लो मैथिली शरण॥
जन्म ले चिर आयु किया,
आपने "चिरगाँव" को।
जाति को परजाति को,
निज देश को शुभ नाम को॥
आपने ही है बनाया,
ग्रंथ "भारत-भारती"।
भाव जिसके देख कर,
बुधजन उतारें आरती॥

इसके पश्चात् मेरे प्रिय गुरु पं० कामता प्रसाद गुरु ने इन पद्यों से कविवर का स्वागत किया:——

कई जन्म अनुकरण करेंगे हम सब जिनका।
पथदर्शक प्रत्यक्ष मिला है दर्शन तिनका॥
गौरव कैसा नम्र भाव को लिए जगा है।
नाम प्रगट है किन्तु गुप्त उपनाम लगा है॥
संग बड़ों का पाय हीन भी बढ़ जाते हैं।
होकर भी हम अकवि कीर्ति कवि की गाते हैं॥
हिन्दुस्तानी जाति पड़ी जड़ता के पाले।
बाट भूल कर भटक रही है कोसों काले॥
इसके मन में भाव जिन्होंने नये जगाये।
स्वयं परखने उन्हें आज मानो कवि आये॥
अर्पण कर कुछ भाव आज वेही सुखकारी।
देते हैं हम मित्र तुम्हीं को वस्तु तुम्हारी॥
है यह ऐसी वस्तु बदलने से बढ़ती है।
और वस्तु यों भला मोल पँ कब चढ़ती है॥
गुप्त हमारा हृदय हमें तुमने दिखलाया।
वशीकरण का किला मंत्र मानो सिखलाया॥

पंचम जार्ज



हिन्दुस्तानी भेष में हमारे सम्राट ।

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग ।

उसी हृदय में भरी हमारी जननी भाषा।
होकर बंधन मुक्त खिला है मानो आशा॥
भाषा भाव विकास नहीं है जिन लोगों में।
उन्हें मिलेगी कहाँ सफलता उद्योगों में॥
जो भाषा जो भाव जाति को उकसाते हैं।
वह भाषा वह भाव सुकवि ही विकसाते हैं॥
बहुत दिनों की लगी आस हिन्दी की पूजी।
कह न सकेगी इसे हीन अब भाषा दूजी॥

क्या यदि उस सभा में अपढ़ जाता तो उसकी इस प्रकार कीर्ति गाई जाती ? क्या उसका इस प्रकार से स्वागत किया जाता ? कदापि नहीं। यश, मान इत्यादि प्राप्त करने के लिए एक ही द्वार है—विद्या प्राप्ति।

ऐसे ही कई कीर्तिवान पुरुषों के उदाहरण दिये जा सक्ते हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण उन्हें लिख नहीं सकते। अब मैं इस लेख को समाप्त करने के पहिले पाठक पाठिकाओं से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ—

सदैव विद्वान होने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। विद्वानों का आदर करना चाहिए।

—ज़हूर बक्श

पुत्र पुकार

श्रीमती देश माताओ ! यह प्रत्यक्ष है कि आपको पुत्र से प्यारा अपना प्राण भी नहीं मालूम होता, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो। यदि दैवात उसने कहीं शारीरिक रोग से पीड़ित हो चारपाई पकड़ ली तो आप अपनी सारी सुध बुध भूल कर उसकी सेवा में लिपट जाती हैं और अपने विचारानुसार देवी देवता को दुहाई देने लगती हैं। और कहीं यदि कुटिल कृतान्त (मौत) के गाल के ग्रास हो गये तो आप भी छाती और शिर धुनती पीटती अपने जीवन को धिक्कार मय जीवन समझती हैं। पर हा ! जहाँ आपके लखों लाल प्रति साल अकाल प्लेग (ताऊन-महामारी) हैजा आदि आपत्तियों के शिकार होते जा रहे हैं और आप ऊफ़ तक नहीं करतीं, यह बड़े अचरज की बात है। आपके बालक गोद से छिने चले जाँय और आपके असह्य जुदाई की वेदना से व्यथित होते हुए करुणा भरे शब्दों में वे चिल्लायँ कि "आहि रे माई" लेकिन आप पूरी निठुरता की मूर्ति बन बैठी रह जाँय, यह कितनी लज्जा की बात है ? बेसिर पैर की बातों पर सब कुछ न्योछावर करती हुई आपे से

बाहर हो जाती हैं, परन्तु कल्याण दायक बातों की ओर आपका ध्यान ही नहीं जाता। यदि आप सच्ची माता हैं और माता शब्द को सार्थक कर दिखलाना चाहती हैं, तो निम्न बातों पर ध्यान देती हुई उन्हें व्यवहार में लावें, यही नहीं इन बातों को अपने मिलने वाली बहिनों के कानों में भी डालने की प्रतिज्ञा कर लेवें।

(१) ईश्वर ही सब आपत्तियों का नाशक और पूर्ण सहायक है, उससे बढ़ कर बलवान् शक्तिशाली दूसरा कोई नहीं। उसी की पूजा और भरोसा निरन्तर (बराबर) करते रहना चाहिए।

(२) जीवःमात्र उसकी पूजा सम्पति है। कोई अधिकार नहीं कि जीव के बदले जीव चढ़ाने की मानता मान कर जीव को बध करा के ईश्वर की अपराधिनी बनो।

(३) देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण के उद्धारार्थ नियमित नैमितिक-षाण्मासिक, वार्षिक अग्निहोत्र (होम) कराया करो, जिससे देश के जल, वायू अन्नादि के विकार नष्ट होकर सुख की बढ़ती हो।

(४) धार्मिक दूकानदारों के धोखे से बचने के लिए स्त्री शिक्षा सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकें पढ़ना और समाचार पत्रों का पढ़ना, यदि पढ़ना न आता हो तो किसी पढ़ने वाली बहिन हो से प्रेम पूर्वक पाठ करा के सुनती रहना।

(५) अपने देश की गिरी दशा पर विचार रखती हुई इसके सुधार का उपाय सोचना और अपने विचार को उदार भाव से देश बहिनों और माताओं में फैलाना, जिससे देश और धर्मका सुधार हो, और आप माता पद को सुभूषित करती हुई सुयश भागिनी हों।

—देवदत्त शर्म्मा चतुर्वेदी

सुकुमारी

प्रथम परिच्छेद

मानिनी का उपदेश



"सुना जी ! अब हमारी उनकी एक में नहीं गुजरने की। अब उनके साथ रहने से तुम्हारी कुशल नहीं है। जल्दी ही इसका कुछ उपाय करो।" यह बातें ज़रा तिरछी चितवन से मानिनी ने अपने पति मोहन से कहीं।

मोहन—आखिर हुआ क्या ? कुछ मेरी भी तो समझ में आवे।

मानिनी—धन्य है। काहे को समझ में आवेगा। बलिहारी है ऐसे मरद की।

मो०—अजी वाह ! तुम्हारे सामने हमारा मरदपना कैसा। राम, राम, तुम ने यह कौन सी बेतुकी बात कह डाली। कोई ऐसा लड़कपन करता है।

मा०—मुझ से जो हँसी ठट्टा करोगे, तो मैं उठ कर यहाँ से चली जाऊँगी। सुना कि नहीं, अच्छी तरह से बात करो।

मोहन ने अपने मन में कहा, कि लक्षण अच्छे नहीं हैं। फिर मनिनी को सुना कर बोले, "कही न डालो, क्या हुआ है ?"

मा०—हुआ क्या है, क्या बताऊँ। उस दिन साधू आया, उसे सेर भर के करीब गेहूँ दे दिया। कल मैंने अपने लिए थोड़ा हलुआ बनवाया, अविनाश रोने लगा, उसे दे दिया। आज वह छोकरी मोहिनी बाजे के लिए रोने लगी, उसे आठ आना का बाजा ले दिया। यदि इसी तरह यह सत्यानाश करती रहेगी, तो काहे को कोई चीज़ घर में बचने पावेगी। चलो छुट्टी है।

मो०—तो क्या हुआ। लड़की थी, ले दिया। मनुष्य लड़के के लिए तो न जाने क्या क्या खर्च कर डालते हैं। इस में बुरा मानने की कोई बात नहीं है।

मा०—क्यों होती। अजी मेरा कहना तो तुम्हें तभी मालूम होगा, जब मोहिनी के विवाह में रकमें की रकमें खर्च करनी पड़ेंगी।

मो०—बस चुप रहो। फौरन ज़बान की लगाम खींचो। हम तुम्हारे मतलब को समझ गये। क्यों जी! यदि तुम्हारे लड़के लड़कियाँ होतीं, तो उनकी शादी न करनी पड़ती।"

"क्या कहा! जिस के लिए मैं मरती हूँ, जब वही कहे का न हुआ, तो और कौन होगा। बस मालूम हो गया, तुम अपने प्यारे भाइयों को साथ ले कर मौज करो और मुझे मेरे नैहर भिजवा दो।" यह कह कर मानिनी ने बड़ी कठिनता से अपनी आँखों से दो आँसू निकाले।

मोहन का स्वभाव अच्छा था। पर उसमें एक बड़ा दोष यह था, कि वह अपनी सबला पत्नी के आगे बिलकुल बकरी बन जाता था। कड़ी बात कहने का उसे साहस ही न होता था। ऊपर लिखी बातें उसने बड़ा कड़ा दिल करके कही थीं। पत्नी को रोते देख कर उसका कलेजा धड़कने लगा। उसने कँपकपे शब्दों में कहा, "अच्छा रोओ मत। जो कुछ कहोगी, वह सब धीरे धीरे हो जायगा।"

मानिनी के आँसू तुरन्त ही सूख गये। उसने सिर हिला कर कहा, "इसका जल्दी ही बन्दोबस्त करो।"

मोहन बोले, "घबड़ाओ मत ये काम धीरे धीरे होते हैं। जब तक मैं मदन के काम में कोई त्रुटि न पाऊँ, तब तक उस से कहने का साहस कैसे कर सकता हूँ। वह मेरी किसी भी बात को नहीं टालता चाहे वह अनुचित ही क्यों न हो उसे भी करने में संकोच नहीं करता। उसकी बहू में भी कोई बात ऐसी नहीं है, कि उसी के बहाने उस से कुछ कहूँ।"

"स्पीच बन्द करो। जो मैं कहती हूँ

उसे करने की फिकर करो।" यों कहती हुई देवी मानिनी अपना मान करा कर कमरे के बाहर चली आयीं।



दूसरा परिच्छेद

परिचय

मोहन और मदन दोनों सगे भाई हैं। मोहन बड़े हैं, और मदन छोटे। इनके एक बहिन है, उसकी अवस्था अभी केवल पन्द्रह वर्ष की है। किन्तु उसकी शादी हो चुकी है। मोहन की स्त्री का नाम आप लोगों को मालूम ही हो चुका है। मदन की स्त्री का नाम है सुशीला। मानिनी के कोई सन्तान नहीं है, किन्तु सुशीला की गोद दो बच्चों से सुशोभित है।

मदन सरकारी दफ्तर में नौकर हैं और दो सौ रुपया महीना तनख्वाह पाते हैं। मोहन कहीं नौकर नहीं हैं। ज़मीदारी का काम करते हैं। कहना नहीं होगा, कि जमीदारी भी अधिकांश मदन के कमाये रुपयों की है। मदन और मोहन दोनों भाई सज्जन हैं। किन्तु मोहन का स्वभाव अपनी स्त्री के कारण कभी कभी तीखा हो जाता है। सुशीला सुशीला ही है, पर मानिनी भी अपने नाम का सोलहों आने सार्थ करती है।

मदन की माता अभी जीवित हैं। वह चाहती हैं, कि कम से कम मेरी जिन्दगी में कोई अलग न हो, किन्तु देख, ईश्वर क्या कर दिखाता है। जुदा होना न होना मानिनी के ऊपर निर्भर है, परन्तु मानिनी का मान मर्दन करने की शक्ति किसी में भी नहीं है।

मदन अपनी स्त्री को बराबर समझाया करते हैं, "कि भौजाई के लक्षण देखते हुए मुझे यह आशा नहीं है, कि घर में शान्ति रहने पावेगी। मेरी यह बड़ी इच्छा है, कि माता की इच्छा पूरी हो, किन्तु यह सब बातें तुम्हारे ही ऊपर निर्भर हैं। तुम्हारी जेठानी है। वैसे भी तुम्हें उसकी आज्ञा माननी चाहिए। जो कुछ कहे, चुपचाप कर दिया करो।"

"हाँ ठीक है। किन्तु सब बातों की हद होती है न? यदि किसी दिन खाना परोस कर लेजाने में देर हो जाय, तो बस फिर आफ़त........" यह बातें नम्र भाव से सुशीला ने कहीं।

मदन ने कहा, "आफत क्या। जो कहे, सुन लिया करो, तुम यह समझो कि मानों यह बातें किसी दूसरे आदमी से या दीवारों से कह रही हैं। कुछ वह बातें तुम्हारे लग थोड़े जाँयगी।" सुशीला चुप रही। मदन ने फिर कहा, "क्यों जी! लग जाँयगी क्या? जिस जगह बहुत लगें, न सही जायँ, उस जगह हाथ फेर लिया करो, अच्छी हो जायगी।" सुशीला के ओठों में एक हलकी सी मुसकान आ गयी और मदन की तरफ़ एक प्रेम भरी दृष्टि डाल कर कमरे के बाहर चली गयी।

तीसरा परिच्छेद

शारदा से खटपट

"भाभी ! ज़रा मेरे कान का बाला निकाल दो ।" शारदा ने हँसते हँसते मानिनी से कहा । मानिनी जी आँखें तरेर कर बोलीं, "ऐ है ! मेरी तनख्वाह मुकर्रर कर दी है । क्योंरी ! क्या मैं तेरी नौकरानी हूँ, जो मैं तेरा बाला निकाल दूँ । चली है वहाँ से हुकुम चलाने ।"

यद्यपि शारदा ने अपने सरल स्वभाव या यों कहिए, कि मज़ाक के तौर पर कहा था, "किन्तु लड़ने वाले को बहाने मिल ही जाते हैं" इस कहावत को चरितार्थ करते हुए मानिनी ने शारदा को बेढब फटकार बतलायी । शारदा ने कहा, "भाभी ! यदि तुम्हें कष्ट न हो, तो न निकालो, पर यों ही झूठ मूठ अपना मुँह क्यों दुखाती हो । सीधे सीधे कह दो न, कि मैं न निकालूँगी । बस झगड़ा खतम । मैं छोटी भाभी से निकलवा लूँगी और आयन्दा तुम से न कहूँगी ।" मानिनी ने अपना स्वर चढ़ाते हुए कहा, "जा, जा, निकलवा ले । छोटी भाभी, छोटी भाभी, उससे तो तेरी बनती ही है । फिर मेरे पास मेरा दिमाग क्यों चाटने आयी थी ।" शारदा रोने लगी और बोली, "तुम फिजूल मुझे खिझाया करती हो, मैं भाई साहेब से कह दूँगी ।"

मानिनी बोली "ओ ! भाई साहेब लाट साहेब हैं न । मुझे क़ैद करा देंगे, बस ?"

इतने ही में सुशीला हाथ में सीने का सामान लिये हुए आ गयी । और शारदा को रोते देख कर बोली, "शारदा क्या है ? रोती क्यों हो ।" शारदा चुप रही । शारदा के हाथ में बाली देख कर सुशीला ने कहा, बाला निकलवा कर बाली पहिनोगी क्या ? लाओ मैं पहिना दूँ । यह कह कर प्यार के साथ बाला निकाल कर बाली पहिना दी ।

यद्यपि सुशीला और मानिनी में कोई बात चीत नहीं हुई थी, तो भी शारदा का प्यार करते देख कर मानिनी जल कर राख हो गयी और शारदा के ऊपर दो एक और वाक्य बाण छोड़ दिये गये । तब से शारदा और सुशीला में अधिक प्रेम हो गया ।

(शेष फिर)

ईर्षा और डाह



ध्य प्रदेश में एक चित्रकला सिखाने की प्रसिद्ध कन्या पाठशाला थी । एक कन्या ने जिसका नाम सुशीला था, एक अत्यन्त सुन्दर चित्र बनाया, जिस को देख कर अध्यापिकाओं ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और यह सम्मति प्रगट की कि यह कन्या यदि इसी भाँति चित्रकला

में अभ्यास करती रही, जैसा कि इसने आरम्भ किया है, तो कुछ समय में यह चित्रकला में बहुत प्रवीण हो जावेगी। उस प्रशंसा को उसकी दो सहपाठिकाओं ने भिन्न भिन्न भावों से सुना। उन में से एक कन्या ने जिसका नाम सोमवती था और जो दोनों में बड़ी थी और जिसने इस कला में प्रशंसा भी प्राप्त की थी, सुशीला की इस प्रशंसा पर दुःख प्रगट किया। इस ख्याल से कि जितनी प्रशंसा सुशीला ने प्राप्त की है, उतनी ही उसकी कम हो गई और सुशीला को बहुत ही घृणा से देखने लगी। सोमवती को केवल इतना ही ध्यान था कि किस भाँति सुशीला की प्रशंसा जाती रहे। प्रगट में ऐसे कार्य में जिसको कि अध्यापिकाओं ने पसन्द किया था, दोष लगाने से डर कर उसने छिपे तौर पर डाह प्रगट किया कि सुशीला को इस चित्र के बनाने में किसी न किसी अध्यापिका ने अवश्य ही सहायता दी है और सहपाठिकाओं पर यह प्रगट करने लगी की ऐसा चित्र सयोग से बन गया है, जिसको यह फिर न बना सकेगी। उसकी दूसरी सहपाठिका सुभद्रा की यह दशा न थी। यद्यपि वह इस कला में बिलकुल प्रारम्भ करने वाली थी, उसने सुशीला के इस चित्र की कारीगरी को भली भाँति देखा और उसकी प्रशंसाओं का उसके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसको बड़ी इच्छा हुई कि वह स्वयं भी वैसी ही प्रतिष्ठा के योग्य होवे। सुशीला को उसने अपने सामने दृष्टान्त की तरह रक्खा। उसकी बराबरी करने की उसकी सब से दिली इच्छा थी। उस से बढ़ जाना वह अभी सर्वथा असंभव समझती थी। सुभद्रा को सोमवती से सुशीला की बुराइयाँ सुनना अच्छा नहीं लगता था।

सुभद्रा ने केवल बातों ही पर संतोष नहीं किया, वह तन मन से उद्योग करने पर उद्यत हुई। वह चित्रकारी की पाठशाला में सब से पहले आती थी और सबसे पश्चात् जाती थी और उन घंटों को जिनको उसकी सहपाठिकाएँ सुस्ती और हँसी में बिताती थीं, अभ्यास करने में व्यतीत करने लगी। उसको बहुत दिनों के पश्चात् अपने परिश्रम पर विश्वास हुआ और बराबर यह कहती रही कि सुशीला के और उसके चित्र में बड़ा अन्तर है। और अन्त में उसको अपनी उन्नति के जानने से संतोष हो गया और अपने बनाये हुए चित्र से एक बड़ी प्रशंसा सुन कर उसको यह कहने का साहस हुआ कि मैं भी ऐसा परिश्रम क्यों न करूँ कि सुशीला के समान हो जाऊँ।

इस बीच में सुशीला अपनी सहपाठिकाओं से बढ़ती जाती थी। सोमवती ने कुछ समय तक उससे बराबरी करने का प्रयत्न किया किन्तु अन्त में वह रुक गयी और अपनी कमी को देख कर सुशीला पर निन्दित वाक्यों से आक्षेप करके और

उसके दोष निकाल कर अपने हृदय को संतोष देने लगी। सुभद्रा चुपचाप परिश्रम करती ही रही, किन्तु उसकी लज्जा ने उस को बहुत दिनों तक इस बात की आज्ञा न दी कि वह भी अपने चित्र को सुशीला के चित्र के साथ प्रदर्शिनी में रक्खे।

वर्ष में एक दिवस नियत था कि जिस दिवस सब पाठिकाएँ अपने सब से उत्तम चित्र को प्रदर्शिनी के लिए एक बड़े सुसज्जित कमरे में रखती थीं, जहाँ कि उन की उत्तमता की कुछ चुने हुए परीक्षकों से बड़े विचार से परीक्षा की जाती थी और सबसे उत्तम चित्र बनानेवाली कन्या को एक बहुमूल्य पारितोषिक दिया जाता था। सुशीला ने इस वार्षिक दिवस के हेतु ऐसा चित्र बनाया था जो उसके पूर्व के चित्रों से कहीं अच्छा था। वह उसको प्रदर्शिनी की अगली शाम को बिलकुल तैयार कर चुकी थी, केवल उस पर स्वच्छ रँग से रँग चढ़ाना शेष था। सुशीला अनहित चाहने वाली सोमवती ने कपटता से यह उपाय किया कि उस शीशी में जिसमें रँग था, कुछ बूँदें तेज़ाब की डाल दीं, जिसके प्रभाव से चित्र की सम्पूर्ण चमक और सुन्दरता जाती रही। सुशीला ने दीपक के उजेले में उस रँग को अपने चित्र पर चढ़ाया और अगले दिवस की प्रदर्शिनी के हेतु नियत कमरे में लटका दिया।

सुभद्रा ने भी धड़कते हुए हृदय से एक चित्र प्रदर्शिनी के दिवस के हेतु बनाया था और उसने उस चित्र को बड़े परिश्रम से तैयार किया था और जिसके विषय में वह यह आशा करती थी कि सुशीला के पहिले के चित्रों से बहुत खराब नहीं है। प्रदर्शिनी का जब समय आया, फाटक पर प्रदर्शिकाओं का एक बड़ा समूह एकत्रित हुआ और बड़े कमरे में प्रस्थान किया, जहाँ पर्दा हटाने से भली भाँति प्रकाश आ गया था और सब अत्यन्त आशा के साथ सुशीला के चित्र के पास गईं। किन्तु उनको बहुत दुःख हुआ जबकि उन्हों ने एक सुन्दर चित्र के स्थान पर जैसी कि उनको आशा थी एक बिगड़े हुए रँगों के चित्र को देखा। शिक्षिकाओं ने चिल्ला कर कहा कि यह सुशीला का चित्र कदापि नहीं हो सकता है। जब वह हतभागिनी सुशीला स्वयं वहाँ पर आई और अपने चित्र में यह डरावनी तबदीली देख कर अधिक दुःख में हुई और चिल्ला उठी कि मैं नष्ट होगई। वह दुष्टा सोमवती एक कोने में खड़ी होकर उसकी विपद् पर प्रसन्न हो रही थी किन्तु सुभद्रा के हृदय पर उतना ही प्रभाव हुआ, जितना कि सुशीला के हृदय पर हुआ था। उसने ऊँचे स्वर से कहा, कि "इसमें किसी ने छल किया है, अध्यापिकाओ, निःसन्देह यह सुशीला का चित्र नहीं है। मैं ने इसको अर्ध समाप्त के समय देखा था, उसी समय यह चित्र हृदय को बहुत प्रसन्न करने वाला था। इसकी सीमा को देख कर निर्णय कीजिए कि पहिले यह कैसा रहा होगा। यह चित्र

किसी दुष्ट और छली कन्या की दुष्टता से खराब किया गया है। परीक्षिकाओं के हृदय पर सुभद्रा की बातों का प्रभाव हुआ और उन्होंने सुशीला की विपद् पर हमदर्दी प्रगट की, किन्तु यह असंभव था कि सुशीला को पारितोषिक दिया जाता। उन्होंने दूसरे चित्रों की भली भाँति परीक्षा की और उस चित्र पर जिसको सुभद्रा ने बड़े परिश्रम से बनाया था और जिसकी चित्रकारी से वे बिलकुल अज्ञात थीं, अच्छी सम्मति प्रगट की। इसी कारण पारितोषिक सुभद्रा को दिया गया किन्तु वह पारितोषिक के पाने पर सुशीला के पास गई और सुशीला को पारितोषिक दे दिया और उसने कहा कि आप इस पारितोषिक को ग्रहण कीजिये, जिसको आप अपनी प्रवीणता के कारण अवश्य ही पातीं। यदि अत्यन्त दुष्टा और डाह करने वाली किसी लड़की ने आपको इससे वंचित न कराया होता। मेरे लिए यही आदर उचित है कि मैं आपकी दूसरी अर्थात् आपसे एक कक्षा कम ख्याल की जाऊँ। यदि मैं फिर आपसे बराबरी की इच्छा करूँगी, तो सच्चाई से परिश्रम करके, न कि बेईमानी से। परीक्षिकाओं ने सुभद्रा की बड़ी प्रशंसा की और अन्त में यह विचार किया कि इस वर्ष दो समान पारितोषिक दी जावें और कहा यदि सुशीला चित्रकारी के कारण पारितोषिक पाने के योग्य है, तो सुभद्रा नेकदिली के कारण योग्य है।

बहिनो! क्या सुभद्रा की सम्मति को हम नहीं मान सकती? हमको भी सुभद्रा की भाँति सच्चाई से और नेक दिली से आपस में वर्ताव करने का दृढ़ संकल्प करना चाहिए न कि एक दूसरे को नष्ट करके अपना भला चाहें। किन्तु दुःख की बात है कि प्रत्येक गृह में एक बहिन दूसरी बहिन को, ननन्द भौजाई को, देवरानी जेठानी को देख नहीं सकती। आपस में डाह किया करती हैं, एक दूसरी की बुराइयाँ किया करती हैं। हमको डाह नहीं करना चाहिए। केवल पढ़ने लिखने में सच्चाई से स्पर्धा या बराबरी करनी चाहिए न कि दूसरे की वस्तुओं को नष्ट करके। स्पर्धा करना बुरा नहीं है, पर डाह या ईर्षा बुरी है। विना स्पर्धा के क्या मनुष्य क्या स्त्री कोई भी कुछ काम नहीं कर सकती है। विना स्पर्धा के उन्नति भी नहीं हो सकती है। ईर्षा और स्पर्धा दो भिन्न भिन्न भाव हैं। स्पर्धा तो विना दूसरों को कष्ट या हानि पहुँचाए हुए सच्चाई से स्वयं अपनी परिश्रम से की जाती है और ईर्षा दूसरे को कष्ट या हानि पहुँचा कर जैसे दुष्टा सोमवती ने सुशीला के साथ किया था। हे दीनानाथ! हमको और हमारी बहिनो को वह बुद्धि दीजिए कि जिस से हम लोग सच्चाई से सुभद्रा की भाँति एक दूसरे पर विश्वास और प्रीति करें।

—नालिपा देवी

स्वदेशानुराग

देशप्रेम स्वाभाविक प्रेमों में से एक है। हर देश के निवासियों के हृदय में अपने अपने स्वदेश के अनुराग का बीज आप ही आप उत्पन्न होता है। यह देश वासियों के हृदय में देश रक्षार्थ, अन्य देशी अभिक्रमण के निवारणार्थ, सार्वजनिक अर्थ के लिए, साहस प्रदान करता है और उक्त विषयों के लिए उन्हें उत्तेजित करता है। इसके साथ साथ मनुष्यों को उचित है कि स्वदेश प्रेम के कारण विदेश तथा विदेशियों की ओर घृणा प्रकाश न करें, क्योंकि यह बात उतनी ही नीच होगी, जितना कि यह सोचना कि हम सब विषयों में उत्कृष्ट हैं और दूसरा कोई हमारे समान गुणविशिष्ट नहीं है। अपने देश के व्यापार तथा शिल्प कर्म की उन्नति की इच्छा करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इस विषय में अन्य अन्य देशों की क्षति करने से अपने देश का कदापि उत्थान नहीं हो सकता है। परस्पर विद्वेष जाति के लिए एक बहुत ही निकृष्ट वस्तु है, तथा स्वदेशानुराग जाति के लिए एक अत्यन्त गौरव का विषय है। यह सोचना सर्वथा निर्मूल है कि जिस ग्राम, जिस नगर, जिस प्रान्त, या जिस प्रदेश में हमारा जन्म हुआ है, वही हमारी जन्म भूमि है। विस्तृत मैदान, सरोवर, नदियाँ, ऊँचे ऊँचे पर्वत, ऊँची अटारियों से लेकर तृणकुटीर तक, अतुल सम्पत्तिशाली धनाढ्यों से लेकर दुर्भिक्ष-पीड़ित अस्थिचर्माविशेष स्त्री पुरुष पर्य्यन्त ये सब हमारी जन्मभूमि के अन्तर्गत हैं।

जो संसार क्षेत्र में बड़े होते हैं, वे माता और मातृभूमि की सेवा से कभी पराङ्मुख नहीं होते। देश के लिए जो हितकर कार्य्य है, उसका अनुष्ठान करना ही सच्चे देशभक्त का काम है और जो हानिकारक हो, उसके प्रतिकार का नीतिसम्मत यत्न कर उसे नष्ट करना ही सच्चे देशभक्त तथा आन्तरिक प्रेम रखने वाले व्यक्ति का लक्षण है। किन्तु केवल सुधार की पुकार करने से कुछ होना जाना नहीं है, क्योंकि कहने वालों की संख्या कर दिखाने वालों की अपेक्षा अधिकतर है। सच्चे स्वदेशानुरागी का लक्ष्य इस विषय पर कदापि नहीं रह सकता कि देश के बाहरी सौन्दर्य्य की पुष्टता हो, पर भीतरी विषय का कुछ ध्यान ही नहीं। वे सामाजिक बाह्य नियमों पर मनोयोग न देकर सामाजिक मनुष्यों के चरित्र के सुधार करने के कार्य्य में प्रवृत्त होते हैं। देशानुराग की सार्थकता तभी पूर्ण रूप से प्रगट होगी, जब अपने देश का उपकार उचित रूप से किया जाय।

संसार में उत्पन्न होकर जिसने परोपकार नहीं किया, जिसने दीनों की सेवा शुश्रूषा नहीं की, जिसने अपनी जाति या

समाज का किसी प्रकार सुधार नहीं किया, जिसने अपने चित्त में परउपकार की बात नहीं सोची, या जिसने अपनी मातृभाषा के उत्थान और जन्मभूमि की उन्नति के हेतु यथासाध्य चेष्टा न की, उसने अपने अमूल्य मानव शरीर को वृथा ही धारण किया। ऐसे मनुष्य का किसी विशेष रूप से प्राप्त यश भी दिवाली के दीपक के समान क्षण भर में बुझ जाता है और संसार रूपी अन्धकार रात्रि में अपनी जीवन यात्रा में चलने वाले पथिकों को न तो उससे कुछ आसरा ही मिलता है, न आश्वास ही।

यह वसुन्धरा जैसे सत्यव्रती तथा देशभक्त पुरुषों को निज गर्भ में रखती है, वैसे ही,इसने अनेक देशभक्त वीराङ्गनाओं को भी अपने गर्भ में स्थान दिया है, जिन्होंने अपने कीर्त्ति-स्तम्भ को अति दृढ़ता के साथ स्थापित किया है। इस संसार में ऐसे ऐसे सत्यव्रती, देशभक्त, दानी, परोपकारी तथा कर्त्तव्य परायण व्यक्तिगण हो गये हैं कि जिनकी कीर्त्ति कौमुदी समस्त पृथ्वी भर में व्याप्त है। इन लोगों का चरित्र समस्त संसार के लिए अनुकरणीय और आदर्श स्वरूप है। अतएव मैं उनमें से एक श्रीमती का संक्षेप वृत्तान्त उपायन करता हूँ।

हमारी चरित्र नायिका का नाम जीनी डार्क (Jeanne Darc) है। इन्हाने फ्रांस, देश में जन्म धारण किया था। जिस समय इनका जन्म हुआ था, उस समय फ्रांस देश की राजनैतिक अवस्था अति शोचनीय हो रही थी। इधर फ्रांसीसी और अंग्रेजों में अनुमान सौ वर्ष से घोर युद्ध जारी था, उधर "घर का भेदिया लङ्का डाह" यह भी कहावत खूब ही चरितार्थ हो रही थी। फ्रांसीसियों को हारते हारते नाकों दम हो गया था। श्रीमती जीनी डार्क का जन्म इसी समय पन्द्रहवीं शताब्दी के तीसरे चरण में हुआ। वाल्यावस्था से ही जीनीडार्क परोपकारी और देशभक्त थी। इसकी वाल्यावस्था ही में इसके गृह के समीप घोर संग्राम होने लगा। सायंकाल के समय जब उभय पक्ष के योद्धागण अपने अपने शिविर में विश्रामार्थ प्रस्थान करते, उस समय जीनी रणक्षेत्र में जाकर घायलों को अपने कुटीर में ले जाकर यथासाध्य सेवा शुश्रूषा करती। दिन रात उसे इस बात का ध्यान लगा रहता कि फ्रांस देश का कैसे उद्धार होगा। एक दिन रात्रि के समय जीनी ने स्वप्न देखा कि फ्रांस देश के स्वयम् प्रधान देवता सामने खड़े कह रहे हैं, "जीनी! तूही अपने देश का उद्धार करेगी। अपने राजा को साहाय्य प्रदान कर। अपने देश की रक्षा कर।"

जीनी ने अपने इस अद्भुत स्वप्न का हाल माता पिता के सन्मुख प्रगट किया। पिता माता यह बात सुन बहुत

गुस्से हुए और बहुत डाँट डपट की। पर जिसके हृदय में देश-प्रेम का अंकुर उग चुका था वह इन डाँट डपटों में कब आने वाली थी। सब लोग उसे मना करते करते थक गये पर जीनी ने एक न मानी और यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि मैं राजा के निकट अवश्य उपस्थित होऊँगी। अन्त में जीनी ने सेना पति के साथ राजा के निकट प्रस्थान किया। राजा के सन्मुख जाकर जीनी ने अपने आने का कारण तथा स्वप्न वृत्तान्त कह सुनाया। इस समय फ्राँसीसियों का एक दृढ़ दुर्ग अंग्रेज़ों द्वारा घिरा हुआ था और एक अन्तिम उद्योग की तैयारी की जा रही थी। इन्हीं सिपाहियों को जीनी ने राजा से माँगा और उन लोगों की सेना-पति बन दुर्ग की ओर प्रस्थान किया। ईश्वर प्रेरित जीनी ने श्वेत वस्त्र में सज्जित हो जातीय पताका लेकर अश्वा-रोहण किया। उन सिपाहियों की इस पर श्रद्धा और विश्वास इतना बढ़ा कि लोग इसे देवी के तुल्य मानने लगे। जीनी ने घिरे हुए किले के निकट पहुँच कर, अपने उत्तेजक और ओजस्वितापूर्ण वाक्यों से सभों को जागृत कर दिया। लड़ाई छिड़ गई और देखते देखते सब किलों में जीनी का अधिकार हो गया और शत्रु सेना भाग निकली। पर इस युद्ध में यह वीर नारी घायल हो गई। जब वह किले की आखिरी दीवार पार करने के यत्न में लगी थी तब वह इतनी घायल हो गई कि उसे घोड़े पर से उतर कर खटोली में चलना पड़ा पर अपने कार्य्य के सम्पादन करने का ध्यान उसके मन में सदा उसी भाँति बना रहा। किले पर अधिकार कर वह राजा के निकट फिर उपस्थित हुई। राजा ने जीनी से कहा, "हे वीर नारी! मैं तुम्हारे ऋण से कदापि नहीं उऋण हो सकता हूँ। मैं तुम्हें क्या दूँ?" जीनी ने कहा, "महाराज! मेरा कर्तव्य पूरा हो गया। मैं इसी से संतुष्ट हूँ। अब मैं अपने माता पिता का दर्शन करूँगी।"

पर पिता माता का दर्शन जीनी के भाग्य में नहीं बदा था। राजा ने कुछ दिन और ठहरने के लिए उससे अनुरोध किया। इसी बीच युद्ध फिर आरम्भ हुआ और जीनी भी उस युद्ध में प्रवृत्त हुई पर इस बार उसे अपनी वीरता प्रकाश करने का अवसर नहीं मिला। एक देशद्रोही फ्रांसीसी ने उसे धोखा देकर अँग्रेज़ों के हाथ में समर्पण कर दिया। शत्रुओं का तो अब काम ही बन गया। वह डाइन निश्चित की गई और पादरी साहब ने उसे धर्मच्युत कह कर एक वर्ष के लिए कारागार दिया। इस पर भी सन्तुष्ट न होकर शत्रुओं ने उसे विचारा-लय में उपस्थित कर उससे यह कहलाना चाहा कि मैं डाइन हूँ। पर जीनी तो डाइन थी नहीं वह यह क्यों स्वीकार करने लगी? उसे बहुत क्लेश दिया गया और सासत किया गया पर वह अटल बनी रही और सिवा ईश्वर और फ्रांस देश के

राजा के अपने को किसीका अधिकृत नहीं माना। अन्त में उसके शत्रुओं ने विचारा कि जीते जी ही उसे चिता में भस्म कर दिया जाय। सं० १४३१ के मई महीने के अन्त में रोएन (Roen) में चिता पर अग्नि सञ्चारित करने पर जीनी को उसमें प्रवेश करने को कहा गया। शान्तभाव से जीनी ईश्वर को प्रणाम कर दण्डायमान हुई। यह कहते हुए कि "मैंने ईश्वर आज्ञा पालन की है और देश के लिए अपना जीवन त्यागती हूँ" वह लहलहाती चिता में प्रवेश कर भस्म हो गई।

हा ! फ्रांस की एक मात्र रत्न, नारी जाति की भूषण, सच्ची देश भक्त, देश की अटल आशा, तथा शत्रु संहारक जीनी डार्क ने अन्तिम समय तक ईश्वर का नाम लेते हुए देश के लिए प्राणत्याग किया। परन्तु जीनी के धर्म के प्रभाव से फ्रांसीसी आगे के सब युद्धों में विजय लक्ष्मी पाते गये और उन्होंने शीघ्र ही अपने देश का उद्धार कर लिया।

धन्य देश भक्ति ! धन्य स्वदेशानुराग !

—अमरनाथ भट्ट,



नारी धर्म पतिव्रत ही है

विनय करूं मैं जोर कर, सुनों बहिन मम बात।
फिर से हो जैसी हुई, पूर्व काल की मात ॥
बार बार विनती करूं, पतिव्रत लेहु सम्हार।
परम पिता जगदीश सों, मांगो गोद पसार ॥

मैं कुछ यथा बुद्धि बल और सामर्थ्य पूर्वक सुदामा के तन्दुल अर्पण करती हूँ। आपके महत्कार्य में तो यह तुच्छ लेख क्या सहायता दे सक्ता है पर तो भी जैसे गिलहरी एक तिनका लेकर श्री रामचन्द्र जी के पास सेतु बाँधते समय गई थी और श्री रामचन्द्र जी ने उसको उसकी सामर्थ्य समझ कर प्रसन्नता से अंगीकृत किया था उसी आशा से मैं आप सब बहिनों तथा माताओं की सेवा में एक छोटा सा लेख लेकर उपस्थित होती हूँ स्वीकार कर कृतार्थ कीजिये।

दमयन्ती सीता गार्गी, लीलावती विद्याधरी।
विद्योत्तमा मन्दालसा थीं, शास्त्र शिक्षा से भरी ॥
कैसी ये विदुषी नारियां, भारत की भूषण हो गईं।
पथ धर्म का छोड़ा नहीं, गो जान अपनी खो गईं ॥

प्राचीन काल की माताओं की विमल कीर्त्ति को श्रवण कर किस स्त्री पुरुष के रोमाञ्च खड़े न होते होंगे। किसका अपनी प्राचीन पूज्य माताओं के कष्ट पर अश्रुपात न होता होगा।

पद्मिनी

चित्तौड़ की रानी थी। इसका चरित्र भी इस देश के स्त्री पुरुषों से छिपा नहीं

है। यह स्त्री पति प्रेम और पति सेवा में पिछले समय में बड़ी धुरन्धर हुई है। इस की कथा इस प्रकार है कि अलाउद्दीन दिल्ली के बादशाह ने जब भीमसिंह चित्तौड़ के राजा की महारानी पद्मिनी के रूप यौवन की प्रशंसा सुनी तो उस नीच नराधम दुराचारी का चित्त चलायमान हो गया। यहाँ तक कि राजा (भीमसिंह) से कहला भेजा कि रानी को हमारे महलों में भेज दो। राजा ने निषेध किया तो उसे बन्दीगृह में डाल दिया पर जब यह समाचार रानी को ज्ञात हुआ तो उसने बादशाह से कहला भेजा कि आप मेरे प्राणाधीश को क्यों कष्ट देते हैं मैं स्वयं ही आपके पास आने को प्रस्तुत हूँ। परन्तु मुझको एक बार अपने प्राणाधार के दर्शन करने की और अपनी एक सहस्र सहेलियों को साथ लाने की आज्ञा दीजिए। इस प्रार्थना को कामाशक्त बादशाह ने स्वीकार कर लिया और आज्ञा दे दी। रानी ने क्या चतुराई की कि एक सहस्र वीर पुरुषों से कह दिया कि आप स्त्री वेष धारण करके और आवश्यकीय सब अस्त्र शस्त्र लेकर और पालकियों में बैठ कर मेरे साथ चलिये। यह आज्ञा दे स्वयं भी अस्त्र शस्त्र लेकर और पालकियाँ उठवा कर चल दी। जब पालकी बादशाह के डेरे के पास पहुँची तो पहिले बन्दीगृह में जाकर निज पति से मिली। राजा ने रानी को वीर वेष धारण किए हुए देख कर बड़ा आश्चर्य किया और प्रेमवश होकर आलिङ्गन करना चाहा तब रानी ने कहा कि प्राण-पति यह समय इसका नहीं है। मैंने तुम्हारे छुड़ाने के हेतु यह सब प्रपञ्च रचा है और एक सहस्र वीर पुरुषों को अपने साथ स्त्री वेष में लाई हूँ। और दो घोड़े मेरे और आप के लिए यहाँ से थोड़ी दूर पर खड़े हैं शीघ्रता से चल दीजिए।

यह कह कर राजा के हाथ में तलवार दे दी और उसे वहाँ से निकाल लाई। पहरे वाले आज्ञावश अचेत हो रहे थे इतने में बादशाह के पास जा धमकी और अपनी प्रबल कृपाण दिखा कर कहा, "रे! नीच! अत्याचारी! नराधम! पिशाच! फिर कभी क्षत्राणियों के सतीत्व के नष्ट का संकल्प करेगा?" यह कह कर अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर अपने गढ़ आ गये। बादशाह भय से व्याकुल होकर मूर्छित हो गया और चेत आने पर राजा रानी दोनों को वहाँ न पाकर क्रोधाग्नि में भभक उठा और सेना को आज्ञा दी कि जितनी सहेली रानी के साथ आई हैं सब का धर्म्म नष्ट कर दो और आज ही युद्ध के लिए चढ़ चलो। फिर उसी दिन चित्तौड़ पर चढ़ गये और घोर युद्ध करने लगे। राजा के दश पुत्र संग्राम में मारे गये तब राजा स्वयं युद्ध में गया अन्त में मारा गया। तब रानी ने अपनी सखियों से कहा कि हमारे पति और पुत्र सब

संग्राम में कट कट कर स्वर्गवासी हुए। हम भी अब चिता में भस्म हो कर चल कर उनसे मिलें, नहीं तो यह पापिष्ट यवन हमारा धर्म नष्ट करेंगे। स्त्रियों का परम भूषण और धन केवल सतीत्व ही है, सो अब उसकी रक्षा के लिए अग्नि प्रवेश के अतिरिक्त और कोई द्वितीय उपाय नहीं है। यह कह कर प्रथम स्वयं चितारोहण किया और पश्चात् समस्त राजपूतानी इसी प्रकार जल कर भस्म हो गई।

पतिव्रता पावहिं सुलभ, स्वर्ग मोक्ष सुख धाम।
जीवित जग में यश लहैं, मरे सती शुभ नाम॥

जब बादशाह राजा भीमसिंह को जीत चुका तो रानी के लोभवश चित्तौड़ के अन्तःपुर में प्रवेश किया। परन्तु जब देखा कि एक भी रमणी वहाँ दृष्टि नहीं पड़ती और जल जल कर उस रमणीक भूमि को स्मशान बना दिया है तब पश्चात्ताप में डूब गया। कहते हैं कि इतनी स्त्रियाँ इस समय सती हुई थीं कि उनकी नथ जो तौली गईं तो ७४॥ मन उतरीं कि जिनकी आन अब तक पत्रों पर लिखी जाती है कि जो कोई अन्य पुरुष इस पत्र को खोलेगा उसको इतनी हत्या का पाप लगेगा। देखो बहिनो और माताओ! रानी पद्मिनी और उन राजपूतानियों को जिन्होंने सतीत्व बनाये रखने को प्राण दे दिये पर धर्म्म नष्ट न होने दिया। एक आज कल की स्त्रियाँ हैं जो धर्म न रखने के कारण निज पति को भी त्याग देती हैं। कोई कोई विष पान कराके उनके प्राण हरण करती हैं। पति को त्याग जार पुरुष के साथ गमन करती हैं।

स्त्री अपने पति को प्रसन्न रखना चाहे तो इन षोड़ष कलाओं को धारण करे जो क्षेमेन्द्र कवि ने लिखी हैं—

१—प्रसन्न मुख रहे।

२—स्मित हास्य विकसित मुखारविन्द से बोले।

३—घर आने पर पति का सत्कार करे।

४—रसोई आप बना कर परसे।

५—मुख-बास (ताम्बूल इत्यादि) निज कर से दे।

६—शृङ्गारमयी हावभाव कटाक्ष से रहे।

७—कविता वा पुस्तकादि पढ़ कर पति को सुनावे।

८—पति की रुचि के अनुसार उत्तम खेल सीख ले और पति संग खेले।

९—मनोहर गान करे।

१०—मधुर वाणी से बोले।

११—पति के दोषों को मन में न धरे।

१२—पति के क्रूर वचनों पर उदासीन बनी रहे।

१३—प्रत्येक कार्य में पति को नम्रता से उचित सम्मति दे।

१४—पति के आरोपित दूषणों पर क्रोध न कर विनय दर्शावे।

१५—पर पुरुष के साथ हास्य से कभी बात न करे।

१६—पति को रति और विलास में सन्तोष दे।

अब यहाँ लेखनी को विश्राम देती हूँ। फिर सब बहिनों की सेवा में उपस्थित होऊँगी।

—शीलवती देवी

एक देवी के विचार

(भारत की देवियों के लिए सन्देश)

विलायत के एक प्रसिद्ध पत्र में इंगलैंड की एक देवी की ओर से एक लेख छपा है। देवी ने अपना नाम नहीं प्रकट किया। यह लेख उस देवी के पवित्र विचारों का दर्पण है। परमात्मा करे कि हमारे देश में भी ऐसी माताएँ उत्पन्न हों। यह लेख प्रत्येक देवी के कान तक पहुँचाना चाहिए:—

इंगलैंड (इस की जगह भारत कर दीजिए) की माताओ! अपने स्त्रीपन को स्थिर रक्खो और अपने ईश्वरोक्त धर्म से कभी विमुख न हो। वे बातें, जो कि तुम्हें अपने बच्चों को बतलानी चाहिएँ, उन से मत छिपाओ। उन को इस संसार के कार्य्यक्षेत्र में केवल मात्र शारीरिक बल से ही तैयार करके न भेजो, किन्तु उन को सदाचार की शिक्षा का भी कुछ बल प्राप्त कराओ। यदि तुम उनके जीवन को तत्वों का उपदेश न दोगी तो परिणाम यह होगा कि वे उन पवित्र उपदेशों के बदले बिलकुल ही बुरे और भद्दे विचार बुरे आदमियों की संगति से सीख लेंगे। यदि लड़कों के पिता अपने कर्त्तव्य को न समझ कर चुपचाप हैं तो, हे माताओ! तुम अपने बच्चों को स्वयं धर्म, नीति, आरोग्यता के पवित्र सिद्धान्तों की शिक्षा दो। ऐसा ही मैं स्वयं किया करती हूँ। अपनी बेटियों को उन भयंकर गढ़ों से सचेत कर दो जिन में कि युवती स्त्रियाँ गिर कर अपने आप को सत्यानाश कर लेती हैं। मुझे एक प्यारे बच्चे के विषय में मालूम है, जो कि इस संसार में बिना धार्मिक और सामाजिक शिक्षा के, घर से भेजा गया, परिणाम यह हुआ कि वह नवयुवक अठारह साल की उम्र में मृत्यु का शिकार हुआ कारण यह था कि वह प्रकृति के विरुद्ध बातों के बुरे परिणामों को जानता न था। मैं सदैव अपने लड़कों की सखी सहेली की तरह रही हूँ। मेरा वर्ताव उनके साथ सदा ही मित्र की भाँति रहा है। वे मुझमें पूर्ण विश्वास रखते हैं। यद्यपि वे थोड़े लज्जाशील हैं; परन्तु अनुचित लज्जा उनके पास कभी फटकती नहीं। वे कोई भी भेद की बात अपनी माता से छिपा नहीं रखते। माताओ! अपने बेटों को किसी भाँति का उपदेश देने में भी

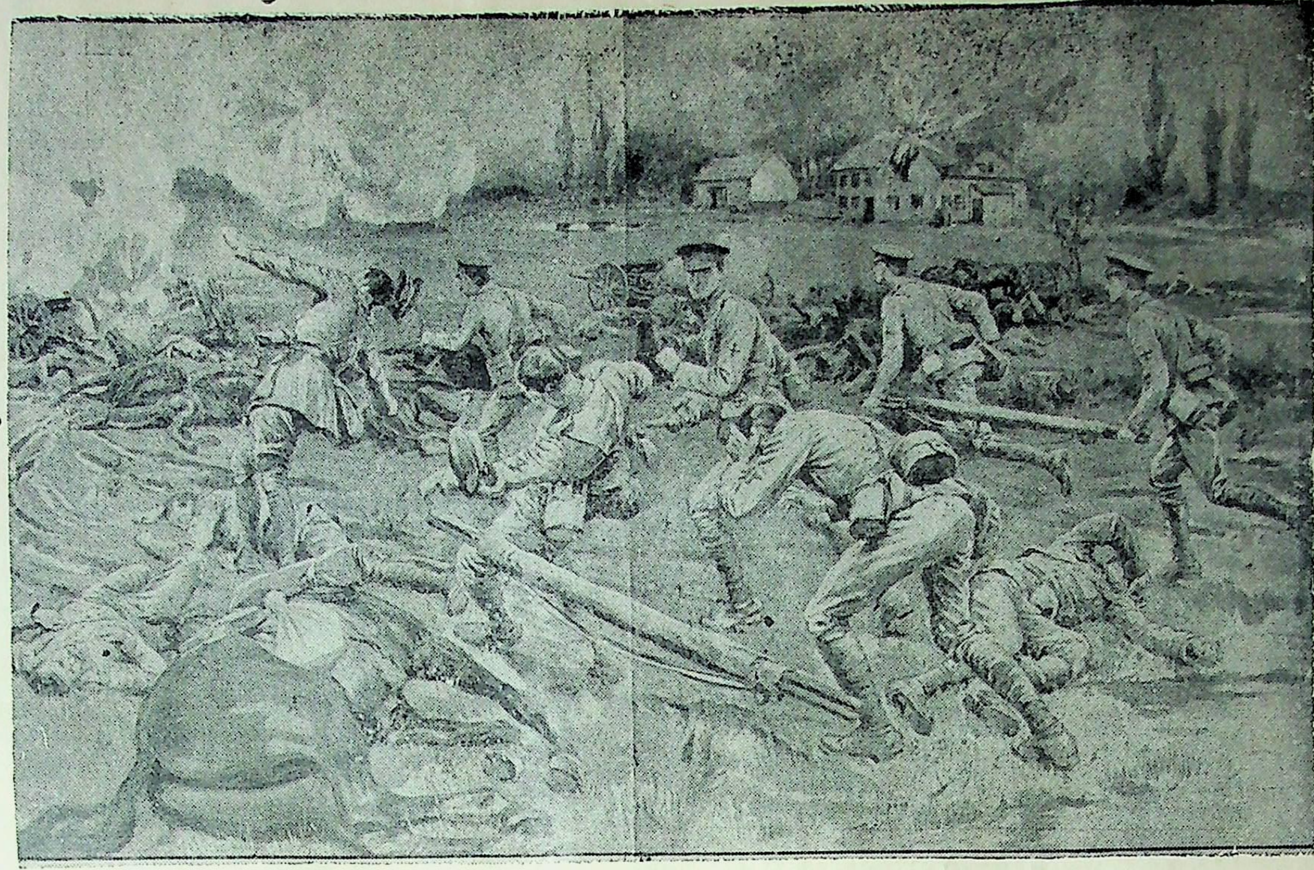
लज्जा न करो। यदि तुम सब बातें उन्हें बतला दोगी तो वे अपना जीवन पवित्र और उच्च बनावेंगे। नहीं तो वे उन बातों को बुरी तरह से ग्रहण करेंगे और इस तरह अपनी स्वस्थता और आरोग्यता पर कुठार चलावेंगे तथा लोक परलोक में लज्जित होंगे।

उन सारी नवयुवती स्त्रियों को, जो विवाह करने की इच्छा रखती ह, मैं यह बतलाना चाहती हूँ कि इन्हें स्त्रीपन की लाज रखनी चाहिए। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि बच्चे अनुपम सुख का भोग हैं, बच्चे स्त्री के जीवन के भाग हैं, वह घर स्मशान से भी भयानक है, जिसमें सन्तान नहीं है। देखिये, मुझे ईश्वर ने तीन बच्चे दिये हैं। वे बच्चे बहुत ही बलवान सुन्दर और सुडौल हैं, मैं उनका अभिमान रखती हूँ। इस लिए हे माताओ! अच्छे और भले, सुदृढ़ और बलवान् बच्चे उत्पन्न करो।

अपने बच्चों को पवित्र और भला जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दो। उन्हें परमात्मा में विश्वास करना और उसकी सहायता की इच्छा करने का उपदेश भी दो; क्योंकि वही सम्पूर्ण संसार के भंडारों का स्वामी है।"

भारतवर्ष की देवियो! हमारे देश का सुधार केवल मात्र आप ही पर निर्भर है। देखिये स्वामी दयानन्द जी अपने सत्यार्थ प्रकाश में क्या उपदेश करते हैं:—

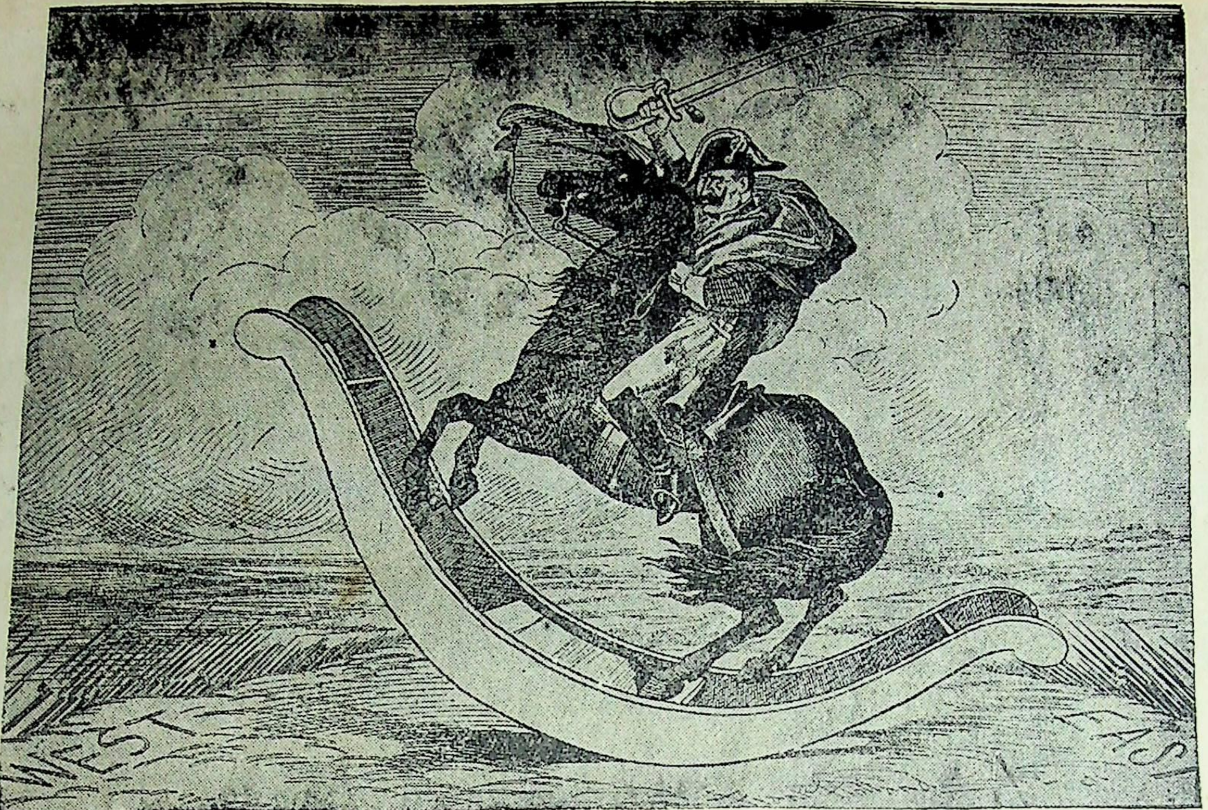
वह कुल धन्य है, वह सन्तान बड़ी भाग्यवान् है, जिनके माता और पिता धार्मिक तथा विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार होता है इतना किसी से नहीं। जितना माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है उतना दूसरा कोई नहीं" और जब हम संसार के इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं तब हमें मालूम होता है कि संसार के सारे महापुरुष अपनी माताओं के उपदेश से ही महान् हुए हैं। शिवा जी को किसने वीर शिरोमणि बनाया? उनकी माता ने ही महाभारत और रामायण के आदर्श रख कर उनको वैसा बनाया। आल्फ्रेड, जो इंगलिश जाति का नेता कहा जाता है, अपनी माता के कारण ही इस योग्यता को प्राप्त हुआ। नेपोलियन बोनापार्ट ने तो स्वयं ही अपनी सारी योग्यता का श्रेय अपनी पूज्य माता को ही दिया है। इसी लिए हम चाहते हैं कि हमारी देवियाँ सुशिक्षित हों, वे विद्वान् हों, ताकि अपने बच्चों पर प्रभाव डालकर उनको बलवान् तथा सदाचारी बना दें। गृहस्थाश्रम स्वर्गधाम तभी बनेगा जब भारतवर्ष की उजड़ी हुई फुलवाड़ी में कई कलियाँ खिल जायँगी। जाति के सुधारको! स्त्री जाति की सुध लो, इन को अज्ञानता के अन्धकार से निकालो, इनको विद्या के आभूषण से सुशोभित करो। स्मरण रक्खो मनु जी का सिद्धान्त है:—



देखो, लड़ाई की भीषण अग्निवर्षा में रायल आरमी मेडिकल कोर के सिपाही कैसी वीरता से घायलों की सहायता कर रहे हैं। इनमें दो सिपाहियों को विक्टोरिया क्रास नामक पदक मिल चुका है।

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग।

संचालन यद्यपि बहुत, चले नहीं पग एक।
झूम झाम रहता वहीं, घोड़ा बढ़ै न नेक॥



इस चित्र में जर्मन सम्राट की दशा दिखायी गयी है। आपके युद्ध की गति की तुलना एक काठ के घोड़े के सवार से की गयी है जो काठ के घोड़े पर चढ़ कर झूमता झामता तो बहुत है पर आगे नहीं बढ़ सकता। बात यह है कि पहले मित्र दल लड़ने के लिए तयार न था इसीसे जर्मन सेना बे-रोकटोक बेलजियम में बढ़ गयी। अब मित्र लोग भी डट गये हैं। अब जर्मन बहुत हाथ पैर पीटते हैं पर आगे नहीं बढ़ पाते।

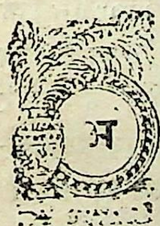
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

अर्थात् जहाँ नारियोँ का सत्कार होता है, जहाँ उन्हें विद्या से सुशोभित किया जाता है, वहाँ देवता निवास करते हैँ, अर्थात् सुखशान्ति समृद्धि की वृद्धि होती है। अतएव स्त्री जाति का उद्धार करने के लिए तन मन धन से प्रयत्न करो।

"बनवासी"
(आर्य्यमित्र)

सेन्ट जान एम्बुलेन्स एसोसियेशन

इतिहास



ग्रेजी इतिहास के पढ़ने वालोँ को मालूम है कि ११वीं सदी मेँ पश्चिम के योद्धाओँ ने पेलेस्टाइन मेँ जो कि ईसाइयोँ का तीर्थ है और उस समय मुसलमानोँ के हाथ मेँ था एक राज्य स्थापन करने की कोशिश की। यद्यपि वे सफल नहीँ हुए तथापि अपने अच्छे कामोँ की एक मज़बूत यादगार छोड़ गये। सन् १०५६ ई० मेँ नेपल्स के करीब एक छोटा नगर अमलफ़ी के कुछ सैादागरोँ ने सुलतान रूम से यरुसलम मेँ एक ऐसे हसपताल या शफ़ाख़ाना खोलने की आज्ञा ली जिसमेँ सब क़ौम के गरीब तीर्थ या त्रियोँ का ईलाज हो सके। ४३ बरस बाद जब गाडफ्रे यरूसलम का राजा हुआ उसने गेरार्ड नामी एक उत्साही आदमी को जो कि इस काम के आरम्भ करने वालोँ मेँ से था उस सफ़ाख़ाने का अफ़सर (Master) बनाया। लेकिन गेरार्ड ३ सितम्बर सन् ११२० ई० मेँ मर गया और उसके मरने के दो बरस पहले, सन् १११८ ई० मेँ, रेमाउन्ड डु पुए उस हसपताल का अफसर मुकर्रर किया गया। उसने एक नये तरह की सरदारी (Knigthood) क़ायम करने का इरादा किया। इस सरदारी या दरजे को हासिल करने के लिए तीन बातेँ ज़रूरी समझी गयीँ।

(१) वीरता। (२) धार्म्मिकता। (३) चिकित्सा जानना। यह बातेँ सब को पसन्द आयीँ और थोड़े ही बरसोँ मेँ युरोप के सब राजा महाराजाओँ ने उस के लिए बहुत सा धन और भूमि दान की और खुद उसके नाइट या मेम्बर होकर उसकी हैसियत बढ़ाई, उसे उत्साहित किया। नामी अमीर लोग भी डु पुए के साथ मेहनत करने लगे। इस तरह ८ सौ बरस से यह संस्था भली भाँति सर्व्व साधारण का उपकार कर रही है, और दिन दिन अधिक सफलता के साथ, काम करती जाती है।

यरुसलम मेँ इस के स्थापन होने के बाद ही इंगलिस्तान मेँ भी यह

स्थापित हुई। लन्दन शहर के निकट (Clerkenwell) नाम के गाँव में इसका दफ़तर बना। अब वह लन्दन शहर के बीच में आ गया है और इसने अब समस्त ग्रेट ब्रिटन और आयरलेण्ड में बड़ा ज़ोर पकड़ लिया है।

इस संस्था का बड़ा दफ़तर यरूसलम से एकर (Acre) व रोडस को हट गया। अन्त में यह सन् १५३० ई० में मालटाद्वीप में स्थापित हुआ। थोड़े दिनों पीछे इस संस्था के सरदार लोग भूमध्य सागर के राजा कहे जाने लगे क्योंकि वे उस समुद्र के वाणिज्य की रक्षा करते थे। उनकी चिकित्सा का कार्य बेलेटा के जंगी हसपताल में जारी रहा क्योंकि इस हसपताल को सेन्टजान के नाइटस लोगों ने बनाया और तीन सौ वष तक सम्हाले रहे। इन हसपताल वालों का उपकार पहुँचाने का संकल्प दृढ़ होने के कारण कितने ही राज्य और कितनी ही सदियाँ गुज़र जाने पर भी यह संस्था कायम है और उन्नति कर रही है।

इन वीर सिपाही-पुरोहितों ने समझा कि बीमार और घायलों को चंगा करना, पीड़ा और दुख पर विजय पाना वसी ही वीरता का काम है जैसा कि शत्रुओं को लड़ाई में जीतना। इस लिए मालटा के इस सभा के सरदारों को प्रथम सहायता यानी पहली मदद सिखाने के लिए उनके बड़े अफ़सर (Grand Master) ने नामी चिकित्सकों या डाक्टरों को नियुक्त किया था।

जब इंगलेण्ड के राजा अष्टम हेनरी ने इंगलिस्थान के सब पादरियों के मठों को तोड़ दिया तब उनके साथ सेन्टजान का दरजा भी टूट गया। लेकिन १७ वर्ष पीछे सन् १५५७ ई० में फिलिप व मेरी के राज्य में वह फिर स्थापित हुआ। फिर रानी एलिजेबेथ के राज्य में इन सरदारों की सम्पत्ति कुछ छिन गयी पर दरजा नहीं टूटा और इसी कारण सन् १८३० ई० में रानी मेरी और राजा फिलिप के पुराने फरमान पर यह दरजा फिर कायम हुआ और मन्त्री सर राबर्ट पील उसके सभापति (Grand Prior) नियुक्त हुए। इस दरजे की जन्म भूमि या असल जगह अभी तक क्लार्कनवेल है और इसके सर्व्व विभागों का काम पुराने क्लार्कनवेल हसपताल के फाटक पर होता है।

महामहिमार्णव पञ्चम जार्ज अब इस नये दरजे के राजा और (Grand Proir) कहलाते हैं और इसके कामों को अपने सब राज्यों और देशों में विस्तार के लिए उत्साहित करते हैं।

जिस समय वर्त्तमान राजेश्वर की राजगद्दी हुई, उस वक्त इस सभा का जलसा बड़ी धूम धाम से हुआ। इसके ग्रेन्ड प्रायर ड्यूक आफ़ कनाट ने भारतवर्ष के राजा बाबू व सज्जनों को निमन्त्रण

करके सेण्ट जान्स गेट पर बुलवाया और उनको पुरानी विचित्र विचित्र तसवीरें दिखायीं और पुराने ऐतिहासिक भण्डार को दिखला कर अचम्भे में डाल दिया। और उसी साल राज राजेश्वर पञ्चम जार्ज ने एक नया (Badge) मान्य का चिह्न मुकर्रर किया जो कि उन भारत वासियों को, जिन्होंने हाल में इस संस्था सम्बन्धी अच्छे अच्छे काम किये हैं मिले हैं। इस (B dge) का मान्य इतना है कि यह सब तगमों के साथ पहिना जाता है।

अब इस दरजे (Order) का सम्बन्ध (Ambulance) या गाड़ी पर के हस-पताल से कैसे हुआ आप लोगों से निवेदन करता हूँ।

सन् १८५६ ई० में तृतीय नेपोलियन इटली के राजा ने आलपस पहाड़ से एड्रियाटिक समुद्र तक जय करने के लिए बड़ा संग्राम किया। हेनरी डुनाएट एक स्विजरलेण्ड का सज्जन था जो मेजेन्टा की लड़ाई में मौजूद था उसने १०,००० आस्ट्रियन और ४ हज़ार फरासीसियों को घायल और मुरदा देखा। उसको सोलफोरनों के वह भीषण दृश्य दृष्टिगोचर हुए, जिसमें १५ घंटे में ३८००० सूरमा मारे गये। उसको इन सब लड़ाइयों की भयंकर बातों को देख कर यह अनुभव हुआ कि जंगी हसपताल वाले ऐसे बड़ी बड़ी लड़ाइयों में जिसमें लाखों घायल होते हैं मुश्किल से सब को मदद पहुँचा सक्ते हैं। बस इस दयालु उच्च हृदय मनुष्य ने यह सिद्धान्त किया कि स्वेच्छा सेवकों की एक समिति लड़ाई में घायलों की मदद के लिए निहायत जरूरी है। और उसने इस विषय में एक लेख लिखा जिससे सर्व साधारण का झुकाव इस काम में हो गया। और तीसरे नेपोलियन व फील्डमारशल मैक महन उनसे मिले। फ्रान्स के राजा ने भी सहानुभूति दिखाई। यहाँ तक कि जेनेवा में एक सभा बैठी जिसमें तमाम जातियों की राय से यह तै पाया कि लड़ाई में घायलों को मदद देने वालों को और उनके सामान को दोनों ओर के लड़ने वालों में से कोई भी किसी तरह का नुकसान नहीं पहुँचावे।

बस युरोप के सब देशों में एम्बुलेन्स समितियाँ स्थापित हुईं और इंगलिस्थान में सेण्ट जान की सभा और एम्बुलेन्स की सभा, दोनों के उद्देश्य, एक ही होने से दोनों मिल चले और सेन्ट जान एम्बुलेन्स समित के प्रति निधि भी बर्लिन में सन् १८६९ ई० के सर्व्वजातीय एम्बुलेन्स समितियों की महासभा में उपस्थित हुए।

१८७० ई० की फ्राङ्को प्रशियन लड़ाई मशहूर है। उसमें सेन्ट जान अम्बुलेन्स के बहुतेरे मेम्बरों ने जातीय सहायता समिति में शामिल होकर घायल फरासीसी व प्रशियनों की मदद की और एम्बलेन्स

के काम को बढ़ाते रहे यहाँ तक कि १८७७ ई० में सेन्ट जान, एम्बुलेन्स एसोसियेशन के दरजे (Order) का एक हिस्सा बन गया।

इस समिति की आरम्भिक दशा में तिकोनी पट्टी और स्ट्रेचर (डोली) जो कि अब बहुत काम आती है कोई नहीं जानता था और दरवाज़ा या फाटक का पल्ला घायलों को ले जाने के लिए इस्तेमाल हुआ करता था।

इस समिति ने जरमनी से दो पहिया वाली लिटर (खटोला) व तिकोनी पट्टी मँगवायी और फ्रान्स से डोली (Strecher) मँगवायी और ऐसे स्वल्पारम्भ से अब यह एक बड़ी स्वेच्छा सहायता समिति में परिणत हुई। इस समिति का काम बड़े छोटे सभों में फैल गया। लाखों आदमियों ने इसके कोर्स को पढ़ कर सार्टिफिकट पाया। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी, हमारी स्नेहास्पद महारानी मेरी और दूसरी राजवंशीय देवियाँ इम्तहान में कामयाब होकर दुखियों को सहायता करने के काम में सर्व साधारण को उत्साहित करती हैं।

—शिवदास मुकर्जी

(शेष फिर)

सुसंग को फल



तपा भूमि भृगुक्षेत्र की पञ्चकोशी परिक्रमा में कमलेश्वर नाथ महादेव का एक सुन्दर मंदिर प्राचीन काल का बना हुआ मिलता है। इस विचित्र शिव मन्दिर के समीप एक रमणीय विशाल सरोवर है जो पुन्यदह के नाम से विख्यात है। परिक्रमा करने वाले यात्री एक रात इस पुनीत स्थान पर भी निवास करते हैं। यह स्थान भृगआश्रम से पश्चिम दिशा में पाँच कोस की दूरी पर है। इस मनोहर सरोवर में अनगनित कमल खिले रहते हैं, जिन पर यूथ के यूथ भ्रमर सदा गुंजार किया करते हैं और कमल कलिकाओं का मधुर रस पान करते रहते हैं।

प्राचीन काल में उस अलि समाज में श्यामबिन्दु नामक एक बड़ा ही शीलवान और सदाचारी मधुकर रहा करता था। एक दिन श्यामबिन्दु कमल रस पान करके सरोवर के तीर वाले एक रसाल वृक्ष की शाखा पर बैठा हुआ आनन्द से गुनगुना रहा था। इतने में विषगन्ध नामक एक गुबरीला उड़ता हुआ श्यामबिन्दु के सामने आया और विनीत भाव से कुछ दूर हट कर उसी शाखा पर बैठ गया। श्यामबिन्दु अपने नये अतिथि को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और बड़े प्रेम

से स्वागत करके मधुर स्वर से सम्भाषण करने लगा।

"महाशय! मैं आप से परिचित होने का बड़ा उत्सुक हूं और दास की जो सेवा स्वीकार करने के लिए अनुग्रह हुआ है, उसके जानने के लिए भी बड़ी श्लाघा है।"

विषगन्ध बड़ा लज्जित होकर बोला, "महानुभाव! मैं अपना परिचय आप से क्या दूँ। मैं एक ऐसी पतित जाति का प्राणी हूँ कि संसार को मेरे नाम ही से घृणा उत्पन्न हो जाती है और यदि मेरा अंग किसी से स्पर्श हो जाता है, तो उसको तत्काल ही प्रायश्चित्त करना पड़ता है, अतएव जाति परिचय देने में मुझको आप से पवित्र जाति वाले के सम्मुख बड़ा संकोच उत्पन्न हो रहा है।"

श्यामबिन्दु ने कहा, "महाशय! जिस पवित्र, उन्नतिशील, और सभ्य जाति में किसी गिरी हुई जाति के उठाने की सामर्थ्य नहीं है, जिस जाति में अपने से पीछे पड़ी हुई जाति को आगे बढ़ाने का उत्साह नहीं है, जो बढ़ी हुई जाति अपने से छोटी जातियों से घृणा करती है, वह उन्नतिशील, सभ्य, पवित्र, और बड़ी जाति कहलाने की अधिकारिणी किस तरह हो सकती है? मेरे विचार में तो ऐसी स्वार्थ प्रिय जातियाँ पतित से भी पतित और अधम से भी अधम हैं। आप कुछ शंका न कीजिए, मुझको अपना पूरा पूरा परिचय देकर कृतार्थ कीजिए।"

उदारशील महात्मा श्यामबिन्दु की बातें सुन विषगन्ध बड़ा ही हर्षित हुआ और उसके निराश हृदय में एक नई आशा अंकुरित हो आई और आँखों में आँसू भर कर गद्गद् स्वर से बोला, "स्वामी! मैं जाति का गुबरीला हूँ। आप जानते होंगे कि मेरी जाति के सब प्राणी जन्म से विष्ठा पर ही जीवन निर्वाह करते हैं। पर मेरा चित्त इस नारकी जीवन से अत्यन्त दुःखी और असन्तुष्ट हो रहा है। मैं इस पतित और घृणित अवस्था में जीने से मरना ही उत्तम समझता हूँ। पतंग श्रेणी में भ्रमर जाति का आकार हमारी जाति के आकार से कुछ कुछ मिलता जुलता है। यह सोच कर कई दिनों से मेरे विचार में यह बात ठनी हुई थी कि एक बार उसी भ्रमर जाति के किसी सज्जन प्राणी से मिल कर इस अधम जीवन से उद्धार पाने में सहायता प्राप्त करने की चेष्टा करूँ। अतएव उड़ते उड़ते आपकी सेवा में चला आया हूँ। अब आपके उदार विचार में जैसा आवे कीजिये। शरणागत को शरण पुकारने से अधिक कोई अधिकार नहीं है।" श्यामबिन्दु उस दीन पतंगे की दशा पर बड़ा ही दुःखी हुआ और करुणा के मारे उसकी आँखें डबडबा गईं। कहने लगा, "प्यारे मित्र! क्या तुम यह समझते थे कि श्रेष्ठ जातियों का चिह्न छोटी जातियों से घृणा करना ही है?

क्षमा करो। यह तो तुम नीच से नीच उदारता शून्य और स्वार्थ प्रिय जातियाँ का कलुषित कलंक उच्च जातियों पर आरोपित कर रहे हो।"

घिषगन्ध बोला, "श्याम बिन्दु जी! आप सतयुगी जीव हैँ, अतएव आपको मेरी बातों पर इतना आश्चर्य हो रहा है। यदि आप आँख खोल कर देखेँ, तो आज कल आपको सहस्रों दृष्टान्त ऐसे ही मिलेँगे। आप देखेँगे कि एक धनी आदमी दरिद्र से, बलवान दुर्बल से, विद्वान अनपढ़ से, सुखी दुःखी से, सुन्दर कुरूप से, गोरा काले से किस तरह घृणा करता है। आप एक उदार चरित्त और उच्च विचार वाले जीव हैँ, अतएव आप समझते हैँ कि संसार मेँ सब बड़ी कहलाने वाली जातियाँ गिरी हुई जातियोँ को ऊँचे चढ़ाने की चेष्टा किया करती हैँ, पर इस विषम युग मेँ दशा बिलकुल विपरीत है। नीचे से ऊँचे चढ़ाना तो बड़ी बात है। आज एक बढ़ी हुई जाति गिरी जाति से सम्भाषण करने मेँ भी अपना अपमान मानती है और सम्भाषण भी जाने दीजिए, वह उसको अपने बराबर एक ही राज मार्ग पर चलते देख कर भी अपनी हीनता समझने लगती है। वह उसको पैदायशी गुलाम और परिश्रमी बैल से न अधिक समझती है और न अधिक पनपने देना चाहती है। देखिए! इस भारत वर्ष ही मेँ देखिए, आर्य जाति अति सभ्य समझी जाती है और इसकी जाति संसार की सब जातियोँ से श्रेष्ठ कही जाती है। यह वेद और दर्शन की अभिमानी है किन्तु नीच जातियोँ के साथ इसका आचरण देखिए। यह अपने सहधर्मी डोम, चमार, दुसाध, भंगी, धोबी मुसहर आदि गिरी जातियोँ के साथ कैसा अनिष्ट व्यवहार करती हैँ। इनको उठाना, इनको सभ्य बनाना, इनको मानव सत्व प्रदान करना तो एक ओर रहा, इनको छूना तक अपनी मान हानि जानती है। अब आप बतलाइए, इस आर्य जाति को हम क्या समझेँ?"

श्यामबिन्दु दुखी होकर बोला, "महाशय! आप सच कहते हैँ। यह दृष्टान्त है तो अखण्डनीय किन्तु आर्य जाति इस का फल भी तो भोग रही है। इस हाथ दे उस हाथ ले। यह ख्याली पुलाव भले ही पकाया करे और इसको सावन की हरियाली ग्रीष्म तक न भूले। पर काल की धारा और कर्मों का परिणाम तो इसके रोके रुक नहीँ सकता। और फल तो यह ऐसा भोतगी, जैसा चाहिए पर कुशल हो गया कि एक उदार सभ्य जाति ने इसकी बाह पकड़ कर कुछ सहारा देदिया है। अब संसार मँ जो होता है, होने दीजिए, अब आज से आप मेरे ही आश्रम मेँ निवास कीजिए और अब

मलिन भोजन त्याग कर मेरे कुञ्ज बन में सौरभामृत पान किया कीजिए।"

निदान उसी दिन से दोनों मित्र उसी स्थान पर रहने लगे। विषगन्ध नित्य प्रातःकाल कमल बन में अपने मित्र श्याम बिन्दु के साथ प्रवेश करता और मधुर पराग रस पान कर सन्ध्या समय आश्रम पर लौट आता था। महीने दो महीने में श्यामबिन्दु ने विषगन्ध को अपने अलि समाज में भी एक एक व्यक्ति से परिचय करा दिया और समाज की रहन सहन भली भाँति सिखला कर पूरा सभ्य बना दिया।

एक दिन बसन्त ऋतु के अन्त में श्यामबिन्दु और विषगन्ध दो पृथक पृथक कमल कटोरों में रस पान कर रहे थे। संध्या होने लगी, सूर्य अस्ताचल की ओर झुक पड़े। भ्रमर वृन्द कमल गुफाओं को छोड़ छोड़ अपने अपने आश्रमों को उड़ने लगे। श्याम बिन्दु भी उड़ कर चला गया, किन्तु विषगन्ध उस दिन एक नव विकसित कमल में ऐसा मोहित हो रहा था कि उसको समय की सुध बुध सब खो गई थी। इधर सूर्य्यास्त होते देख कमल धीरे धीरे संकुचित होने लगा और अन्त में एक दम सम्पुटित हो गया। कुछ देर बाद जब वायु की न्यूनता से विषगन्ध को साँस लेने में कठिनता प्रतीत होने लगी, तब उसका ध्यान अपनी दशा पर आकर्षित हुआ। उस समय उसके चित्त में बड़ा उद्वेग उत्पन्न होने लगा और जीवन की आशा डाँवा डोल हो चली। तब उसके चित्त में आया कि कमलदलों को कतर कर बाहर निकल जाऊँ, पर फिर सोचने लगा कि भ्रमर जाति का यह आचरण नहीं है कि वह अपने प्यारे कमल को अंग भंग कर के अपनी प्राण रक्षा करे। यदि ऐसा होता तो कितने ही भ्रमर सम्पुटित कमल गुफाओं में रुद्ध हो कर क्यों जान देते। क्या जो भ्रमर काठ को काट कर चूर्ण कर देते हैं, उनके लिए कोमल कमलदलों का कतर डालना कोई कठिन काम हो सकता है। यह सोच कर विषगन्ध उदास हो गया और अपने मन में अनेक तर्क वितर्क करने लगा। उस समय अकस्मात उसको 'श्यामबिन्दु की अनेक भाव पूर्ण शिक्षाएँ स्मरण हो आईं और मन ही मन कहने लगा, 'हा मित्र! तुम धन्य हो, तुम ने मुझको नरक से उठा कर एक दम स्वर्ग में पहुँचा दिया। क्या मैं कोटि जन्म भी तुम्हारे उपकारों का प्रत्युपकार कर सकता हूँ। इस समय इस विकट संकट की अवस्था में भी तुम्हारी ही शिक्षाएँ जीवन अवलम्ब हो रही हैं और हमारी गिरती हुई आत्मिक, मानसिक, और शारीरिक शक्तियों में नव शक्ति प्रदान कर रही हैं। तुम सच कहा करते थे कि उच्च जाति बनना सहज नहीं है। उच्च जाति को सदा विलास ही विलास नहीं है, समय समय पर जातीय

सुनियमों की रक्षा में उसको काल ही से समर सम्मुख भी होना पड़ता है और आन की बाज़ी बदनी पड़ती है। इस जातीय गौरव का आदर्श सदा काल-कष्ट ही के साँचे में ढल कर तैयार होता है। जो जातीय वीरवर ऐसी विकराल काल युद्ध में अडिग हो कर रणस्थल में अड़ा रह गया, मानो वह जाति का श्रृंगार बन गया, पर जिसके चरण डिग गये, वह मानो जातीय मयंक का कलंक बन गया। उच्च और महान जातीय नरवरों और नारी रत्नों की परीक्षा सदा संकट दुर्दैव और दुरापद के ही समय में होती है। देखो, सीता आर्य जाति की आदर्श रमणी थी। जब उसने पुरुषोत्तम अवधेश-कुमार रामचन्द्र से विवाह किया, उसके विलास की आशाओं का क्या कहना था और उसने राज वधुओं का अलौकिक विलास किया भी, किन्तु युवा वस्था में ही उसको कैसे विकट संकट से सामना करना पड़ा। यदि उसने परीक्षा-पूर्ण बन यात्रा के कठिन संकट से पीठ दिख-लाई होती, तो वह आज आर्य जातीय आकाश में सूर्य के सामान कैसे बिराजती? मातेश्वरी! तू धन्य है। सच बता, तू उस सघन बन में किराती कन्याओं और युव-तियों को प्रेम भरे मधुर स्वरों से पुत्री और भगनी कह कर पुकार रही थी या इस अनन्त आकाश गर्भ को आर्य जातीय गौरव के मनोहर रागों से चिरस्थाई रूप में परिपूर्ण कर रही थी। आर्य जगत जननी जानकी! तुम्हीं ने, नहीं तुम्हारे पति आर्य विपिन केशरी रामचन्द्र जी ने भी, उनको पुत्र और पुत्री ही समझा था। गोस्वामी तुलसीदास उनका यह मनोहर आचरण हमको बतला गये हैं—"बचन किरातन के सुनत जिमि पितु बालक बयन।" हा पिता! तुम आर्य वंश के मुखोज्वल करने में जैसा अपूर्व आदर्श दिखला गये, आज संसार की कोई जाति ऐसे आदर्श का स्वप्न में भी निशान दे सकती है? भला कोई कहे तो सही जगत के किस राजकुमार ने शवरी सी पतित और असभ्य जातीय रमणी को अभेद सम्रता प्रदान करने के लिए जूठे बेर खाये है। और किस ने राज विलास के लिये नंगे सर और नँगे पैर बन यात्रा के लिए सानन्द प्रस्थान किया है। आर्य महिलाओ गिरी जातियों को उठाना और उनको सभ्य बनाना स्त्री और पुरुष दोनों का समान धर्म है। तुम पुरुषों की सहधर्मिनी अर्धाङ्गिनी कह-लाती हो। बिना तुम्हारी सहायता के पुरुष किसी कार्य में अग्रसर नहीं हो सकते। उनके एक ही पैर और एक ही हाथ है। जब तक तुम उनके अङ्ग की पूर्ति नहीं करोगी, उनके किये कुछ नहीं हो सकता। देखो, भारत की नीच जातियों का तिरस्कार करते करते तुम्हारा जातीय बल कैसा छिन्न भिन्न होता चला जाता है

और तुम पर स्वार्थ परता और अत्याचार का कैसा काला कलंक लग रहा है।"

अच्छा यह तो वार्ता-वारि-प्रवाह में एक विलक्षण तरंग उठ गया। अब हम विषगन्ध के मूल निबन्ध के साथ आगे चलते हैं। विषगन्ध को उस कालकोठरी में जब श्यामबिन्दु की अलौकिक शिक्षाएँ याद आ गईं तो उसके अन्तर में एक नये जीवन का संचार हो आया और उसकी कष्ट सहने वाली शक्ति अतुल और अपरमित रूप म बढ़ कर दृढ़ हो गयी। फिर तो वह काल-रात्रि उसको विलास-रात्रि सी सुगम हो गई और सहज में कट गई।

अब सूर्योदय से पहले एक दूसरी घटना उपस्थित हुई। उसी अनुदय बेला में मन्दिर का पुजारी पूजा के लिए कमलों को तोड़ने लगा और तोड़ते तोड़ते जिस कमलसम्पुट में विषगन्ध बन्द था, उसको भी तोड़ लिया और फूलों का दोना लिये शिव मन्दिर में पहुचा और एक एक करके सब फूल शिव मस्तक पर चढ़ा दिये। फिर पूजा विसर्जन कर अक्षत, फूल, धूप, दीप, नैवेद्य आदि सब शिवार्पित सामग्री एक अँगौछे में लपेट कर गंगा में बहाने के लिए सुरसरि तट पर पहुँचा और ज्योंही उसने वह सामग्री गंगा जल में झटका देकर फेंकी, त्योंही वायु के धक्के से उस सम्पुटित कमल का मुँह खुल गया और विषगन्ध कमल-कारागार से निकल कर जगत जननी पतितोद्धारिणी के जाह्नवी जल में गोते लगाने लगा। कुछ देर पीछे जब खुले वायु में साँस लेने से उसमें पूर्ववत् शक्ति का संचार हुआ और पवित्र जाह्नवी-जल पान कर पूर्ण पावन हो गया, तब धीरे धीरे तटस्थल पर पहुँचा। वहाँ एक पुराना पीला मण्डूक बैठा हुआ यह सब कौतूहल देख रहा था। उसने विषगन्ध से पूछा, "भाई! तुम तो जाति के गुबरीले आमिष भोजी पतंग श्रेणी में सब से नीच गिने जाते हो, तुमको कमल पुष्प में बास कैसे मिला? फिर तुमको शिव मस्तक पर चढ़ने का गौरव कैसे प्राप्त हुआ, क्योंकि पुजारी तो नित शिवार्पित सामग्री ही गंगा में फेंकने को लाता है और तुम कमल ही से निकलते दीख पड़े हो और आज यह गंगा स्नान का पुनीत फल भी तुमको अपूर्व हो मिला। यह सारी बातें मुझको आश्चर्य जनक रहस्य सी प्रतीत होती हैं। दया कर अपना पूरा वृत्तान्त सुना कर मेरा आश्चर्य दूर करो।"

विषगन्ध बोला, "गंगावासी मण्डूक महाशय, आपका कहना बहुत ठीक है। मैं अवश्य उसी पतित जाति मे जन्मा हूँ। पर सज्जनों और महात्माओं की संगति का फल अलौकिक और अपूर्व है। आपने गोस्वामी तुलसीदास जी का वचन सुना होगा। सतसंग की महिमा में उन्होंने कहा है, "काक होहि पिक बकौ मराला"। मुझको यह प्रतिष्ठा, यह

पावनता, यह अनायास कुञ्ज-विलास, यह भ्रमर सज्जन मण्डली, यह देव दर्शन, यह गंगार्चन—सब कुछ उच्च भ्रमर जाति के एक महात्मा श्यामबिन्दु जी की सेवा और संग से प्राप्त हुए हैं, जिनकी असीम कीर्त्ति को मैं कोटि मुख पाकर भी गान नहीं कर सकता।"

यह सब वृत्तान्त सुन कर मण्डूक ताना देकर बोला, "और जान के लाले भी तो उसी सुसंग की बदौलत पड़े थे।"

विषगन्ध बोला, "महाशय! आपने विचार करके नहीं कहा। विना कष्ट उठाये विना परिताप सहे विना अपने को वारे परमात्मा किसीको सच्ची बड़ाई का पात्र नहीं बनाता। यह सदा उग्र तप तथा कठिन तप से ही प्राप्त होती है। भगवान ने इस दात के लिए इसीकी शर्त रक्खी है। जो कठिनाइयों से भागता है उसका जीवन महत्वपूर्ण हो ही नहीं सकता। परमात्मा अपने नियम के विरुद्ध कोई काम नहीं करता।"

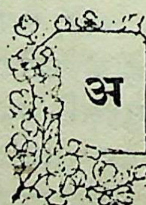
यह बातें सुन मण्डूक द्वेष से जलकर बोला, "अजी! अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना दूसरी बात है, पर लाख सर पटकने पर भी गुबरीला भ्रमर कदापि नहीं बन सकता।"

विषगन्ध फिर नम्र होकर बोला, "मण्डूक जी! चाहे मैं गुबरीला से भ्रमर न बन सका हूँ, पर आप इस बात को असम्भव कैसे बतलाते हैं। क्या विश्वामित्र जी अपने शुद्धाचरण से क्षत्री से ब्राह्मण नहीं बने? क्या रविदास जी चमार समाज में भी पैदा होकर आर्य जाति के बड़े बड़े पुरुषों के गुरू नहीं बने? क्या कृष्ण भगवान ने श्वपच की महिमा दिखला कर मुनियों का जातीय अहंकार दूर नहीं किया? क्या ये सारे आदर्श जो पूर्वजों ने दिखलाये, वह सब निरर्थक ही है? नहीं! नहीं!! उन्होंने यही सिखलाया है कि धीरे धीरे गिरी जातियों को भी अपनाते चलो, उनको सभ्यता सिखलाते चलो और ज्यों ज्यों उनमे सभ्यता आती जावे, उनको अपने अंग मे मिलाते जाओ। मण्डूक जो, उन्हीं पूर्वजों ने कहा है—

"जाति न पूछो काहु की मुख्य चरित्र महान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान॥"

—वैजनाथ सहाय मुख़्तार

होली और प्रह्लाद



अहा! हमारी समझ में होली के बराबर एक भी उत्तम 'त्योहार' नहीं। यह केवल इसी लिए नहीं कि यह ऋतुराज बसन्त का उत्सव है और इस समय जल प्रक्षेप से वैद्यलोगों के मतानुसार रक्त सञ्चार में सहायता मिलती है और न केवल इसी बात से

कि इस दिन पुराण प्रसिद्ध 'ढूँढिका' राक्षसी की बाल बच्चों की खैर के लिए पूजा की जाती है और उसकी प्रसन्नता के लिए गाना, बजाना और नाच कूद आदि धूम धाम का सामान करना पड़ता है वरन् यह उत्सव इसलिए अधिक प्यारा है कि हमारे देशी भाई इसको भक्तोत्तम प्रह्लाद जी की परीक्षा का दिन मानते हैं। इसी दिन दैत्य कुल नन्दन बालक प्रह्लाद अपनी एक कठिन परिक्षा में उत्तीर्ण हुए थे।

हम लोग जब एक अधेले की 'हाँडी' लेते हैं तो उसे बजा कर देखते हैं कि कहीं यह फूटी तो नहीं है जो समय पर काम न आवे। इसी तरह हर एक चीज़ की परीक्षा कर उसे जाँचा करते हैं। त्रिलोकी नाथ यद्यपि सर्व्वज्ञ हैं यद्यपि उनको भूत भविष्य का सब कुछ ज्ञान है तथापि अपने भक्तों के नाम और यश के लिए कभी कभी उनकी परीक्षा भी किया करते हैं कि देखें यह अपने काम में कैसा उतरता है। यदि ऐसे समय में भक्त भगवान की भक्ति में दृढ़ रहा तो बैकुण्ठ का वास मिला नहीं तो जो कुछ पहिले कर चुका था उस सब की धूल हो गई? परमात्मा कभी किसी जीव की परीक्षा न ले। मनुष्य की क्या सामर्थ्य है जो उसकी परीक्षा में उत्तीर्ण होवे। वही उत्तीर्ण होता है जिसे वे स्वयं प्यार करते हैं।

प्रह्लाद! तुम धन्य हो। जिस परीक्षा के दिन बड़े बड़े ऋषि मुनि काँप गये थे उस दिन तुम पर्वत की तरह अचल रहे। न पिता के राज पाट का लोभ हुआ और न पर्वत से गिरने का डर। दुष्ट पिता ने अपना धर्म्म छोड़ दिया पर तुमने नहीं। जब तुम्हारे कोमल शरीर को पृथ्वी में रौंदने के निमित्त मदोन्मत्त हाथी छोड़े गये तब तुम्हारे बालक मित्र रोने लगे थे, माता चिल्ला उठी थी, पर तुम को उसकी कुछ परवाह न थी। हाथी तुम्हारा कुछ न कर सकते, थर्रा उठे,—यह क्या तुम्हारा प्रताप है। नहीं! नहीं! पिता के पूछने पर तुमने जो वाक्य कहे थे वह अभी भारत के आकाश में गूँज रहे हैं सुनिये वह ध्वनि अभी तक वर्तमान है—

दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः
शीर्णा यदेते न बलं ममैतत्।
महाविपद पापविनाश नोऽयं
जनार्दनानुस्मरणानुभावः॥

हा! प्यारे! तुम्हारे इस सच्चे कथन की पिता ने कुछ भी कदर न की। वे पैर से छुए सर्प की तरह और भी क्रुद्ध हो गये और असुरों को आज्ञा दी कि

ज्वाल्यतामसुरा वह्निरुपसर्प्यंतदिग्गजाः।
वायो समेधयाग्निं त्वं दह्यता मेष पापकृत॥

बात की बात में काठ के ढेर लग गये। होली बनाई गई और हँसमुख बालक प्रह्लाद उस में बैठाया गया। कठोर पिता जीते हुए निरपराध पुत्र का दाह करने लगा।

इधर अग्नि जलने लगी उधर देखने वालों का हृदय। मनही मन सब रोते थे पर मजाल क्या कोई चूँ करे। दैत्यराज्य हिरण्यकशिपु के खौफ से सब काँपते थे। सबने आश्चर्य से देखा कि प्रज्वलित अग्नि में हँसते हुए प्रह्लाद कह रहे हैं—

तातैष वह्निः पवनेरितो ऽपि
न मा दहत्यत्र समन्ततोहम्।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि
शीतानि सर्व्वाणि दिशां मुखानि॥

और भी अधिक आश्चर्य्य हुआ जब उन्होंने देखा कि अग्नि बुझ गई, पर उसने तुम्हारे रोम तक को स्पर्श नहीं किया। होली का ढेर हो गया, पर तुम्हारा कुछ न बिगड़ा।

प्रह्लाद! बहुत से अश्रद्धालु पुरुष तुम्हारी पुराण प्रसिद्ध महिमा नहीं जान सकते। पर देखना, भारतवर्ष अपने को भूलगया है, किन्तु अभी तक तुम को नहीं भूल। संसार में हम कब कब सताये गये, यह हमें याद नहीं है पर तुम जिस दिन सताये गये हो, वह दिन अभी तक याद है। वह दिन ज्यों का त्यों याद है जिस दिन तुम जलाये जाने पर भी जलने न पाये थे। यह होली नहीं है, भारतवर्ष को उस दिन जो शिक्षा मिली थी कि जलाने वाले स्वयं जल जायँगे और भक्तवत्सल भगवान् हमारी रक्षा करेंगे, उसीका स्मरण मात्र है। देखें हतभाग्य भारतवर्ष के पास यह स्मरण भी रहता है कि नहीं।

—गुरुमुखराय शिवशर्म्मा

सखी की चिट्ठी*

प्यारी सखी! ईश्वर तिंहारो सुहाग पूर रक्खे।

मैंने सुनी! कि तू काल पी सौंलरि, रूस रही है। तोकूं का समीर लगी है? क्या काह्न ने तेरे कान पूर दिये हैं? मेरी सखी! तू तो दाना पूर थी। गुणों की भन्डारा थी। पर न जानें चितौर कैसा हो गया है। ऐसी बात अली गढ़ ना। अबरार तजि, बिलास पूर कर। ऐ बाला शोर छोड़ दे। क्यों तू मान भूमि रची है? पहिले तो हांसी हसार करि उस भूपाल सिर मौर का दिल लीना है। अब उनसे रूसती है। ऐसा सुनि सब बृज बाला क्या हर द्वार से तुझे धन बाद देंगी? वाने कुछ तोकूं मार वार तो दी नहीं? अरी वह बड़ो गुन आगर है। तूने वा की सार न जानी। पूरी पटना राखी। वा को लखनौ आदर न दिया। फिर अब क्यों? जले पर जालौन न लगा। तू मैन पूरी है। आज आसाम को बेनी बूंदी काढ़ि उस अनन्त पूर से बिहार रच और उसने नित्य बना रस रख, अब जालंधर की सती सम बृन्दा बन कोसी न रह, उठ मान तजि पति का चरणोदक जा पान कर—अनन्द क्या।

तेरी प्यारी सखी कृष्णा

—बी० चरण लालन श्रीवास्तव

* इस पत्र में ४० स्थानों के नाम निकलते हैं।

पहेली

(१)

प्रथम तीसरो जोड़ि कै,
करि है बढ़ई काम।
प्रथम दूसरो लीजिए,
है एक सुर का नाम॥
तिसरे दुसरे को सुनत,
सब जन जावँ धाय।
तीनहुँ के मिलि जान से,
एक शहर कहलाय॥
अर्थ—आगरा

(२)

पहिले तिसरे के मिले,
एक शब्द बन जाय।
वस्त्रादिक के सियन को,
सब जन लावँ जाय॥
पहिलो दुसरो जब मिलै,
एक शब्द बन जाय।
घोर युद्ध वह करि सकै,
कबहूँ हार न खाय॥
अंत मध्य के मिलन को,
गीष्म ऋतू के माँहि।
सब जन हर दम चाहते,
धरे धीर कोई नाहिँ॥
जब तीनहुँ को जोड़िए,
शहर एक कहलाय।
प्रान्त बम्बई मँ अहै,
याको अर्थ बताय॥
अर्थः—सूरत

—बाबूराम मिश्र

सीता

१

सुन्दर भोजन वस्त्र राज सुख जिसने छोड़ा।
सास, ससुर, परिवार-प्रेम का बंधन तोड़ा॥
हठ कर पति के संग विपिन में रहना चाहा।
सह कर कष्ट कठोर पतिव्रत धर्म निवाहा॥

२

भारत के कवि कीर्ति न जिसकी कह थकते हैं।
उस देवी को भूल कभी क्या हम सकते हैं?॥
जब तक हिंदू जाति धरातल पर जीवित हैं।
तब तक उसकी कीर्ति-कथा सादर संचित है॥

३

हृदयों में यदि जाति-द्वेष का विष न बहेगा।
देश-भेद-भय सच्चरित्रता में न रहेगा॥
तो उसका सम्मान सभ्य संसार करेगा।
मान उसे आदर्श नारि जीवन सुधरेगा॥

४

जनक सुता, सुन्दरी, शुभा, साध्वी सुकुमारी।
सती, सुशीला, सदा चारिणी, विदुषी नारी॥
राम प्रिया, पति-भक्ति-भूषिता थी वह सीता।
अब तक है हृदयस्थ, काल यद्यपि अति बीता॥

* * * *

५

दशरथ ने युवराज, रामको करना चाहा।
राज्य-भार अधिकार उन्हीं पर धरना चाहा॥
सुन कर प्रजा समेत राज-कुल ने सुख माना।
पर कैकेयी रूठ गयी, उसने उठ ठाना॥

६

भूप मनाने लगे,—"प्रिये, माँगो, मैं दूंगा।
करता हूं प्रण अटल, कहोगी वही करूँगा॥
पति को वश में जान, कहा उसने, "ये वर दो।
"सच्चे हो तो सफल-मनोरथ मुझको कर दो॥

७

"भरत बनें युवाराज, राम हो कानन-वासी"।
सुनते ही गिर पड़े भूप छा गई उदासी॥
पितु के प्रण की बात राम ने जब सुन पाई।
राज छोड़ बन चले राम लछमन दो भाई॥

८

रोकर हाय, अचेत गिरी कौशल्या माता।
बढ़ा हर्ष में शोक, विमुख हो गया विधाता॥
सुना शोक सम्वाद, विकल सीता उठ धाई।
करती हुई विलाप, राम के सन्मुख आई।

९

निष्ठुर बनो न- आर्य-पुत्र करुणा उर धारो।
दासी को ले साथ नाथ, वन ओर सिधारो॥
बन के कष्ट सहर्ष आपके साथ सहूंगी।
नाथ तुम्हारे विना स्वर्ग में भी न रहूंगी॥

१०

सुख से पति के साथ बसूँगी निर्भय बन में।
कुटिया का आनन्द कहां है राज भवन में॥
साथ ले चलो नाथ नहीं जीवित न रहूंगी।
कैसे विषम-वियोग-दुसह दुख हाय, सहूंगी॥

११

सुन सीता के बचन राम श्रद्धा में साने।
उमड़ा प्रेम समुद्र, लगे उसको समझाने॥
दुर्गम बन का भूरि भयानक दृश्य दिखाया।
पशु, निशिचर, गिर नदी आदि से बहुत डराया॥

१२

पर पति-प्रेम-सरोज-भ्रमर सीता के मन में।
कंटक भय ने नहीं विषाद बढ़ाया वन में॥
हठ कर पति के संग रही वह वन वन फिरती।
राक्षस द्वारा कभी विषम संकट में घिरती॥

१३

खाती केवल कंदमूल, भूपर सोती थी।
वल्कल वस्त्र लपेट न मन मलिना होती थी॥
वनके दारुण कष्ट धैर्य धर कर सहती थी।
पति सेवा में मग्न प्रसन्न सदा रहती थी॥

१४

पंचवटी में पहुंच राम ने कुटी बनाई।
सीता देवी सहित बसे वे दोनों भाई॥
धोखा देकर उन्हें चोर लंकेश अभागा।
सूनो पाकर कुटी जानकी को ले भागा॥

१५

विनती करने लगा—कहा, "बन मेरी रानी"।
पर सीता ने झिड़क कहा—"सुन रे अज्ञानी॥
चोर, नीच, निर्लज्ज, चुरा कर लाया मुझको।
इसका दंड कठोर अवश्य मिलेगा तुझको॥

१६

पापी मेरे साथ मृत्यु आई है तेरी।
अब तू अपने सर्व नाश में समझ न देरी॥
रहा मानना दूर, बात सुन भी न सकूंगी।
प्राणेश्वर से रहित कभी मैं जी न सकूँगी"॥

१७

सागर में पुल बांध उतर कर डाला डेरा।
बानर सेन, सबंधु राम ने लंका घेरा॥
बेटा बन्धु समेत दुष्ट रावण को मारा।
मिला अलौकिक सती जानकी को छुटकारा॥

१८

बन निवास की अवधि वर्ष चौदह जब बीते।
कहा राम ने—"चलो अवध हे लक्ष्मण सीते॥"
सीता लक्ष्मण राम अयोध्या में फिर आये।
मिल कर जननी, बंधु, मित्र से अति सुख पाये॥

१९

निष्कलंक सच्चरित जानकी ने दिखलाया।
पड़ रावण के हाथ सतीत्व स्वधर्म बचाया॥
दृढ़ पतिव्रता भारतीय ललना हैं जैसी।
पृथ्वी भर के किसी देश में कहीं न वैसी॥

—रामनरेश त्रिपाठी

बेलजियम की रानी



यूरोप के महायुद्ध के सम्बन्ध में कौन नहीं जानता कि बेलजियम सरीखे छोटे से शान्तिप्रिय तथा स्वाधीन राज्य पर निष्पक्षता प्रकट करने पर भी जर्मनों ने दल बल सहित चढ़ाई कर नादिरशाही दिखा दी। जो राज्य आज से पाँच महीने पहिले सुखी सम्पन्न और स्वतंत्र था उसे एक ही महीने के बीच में जर्मनों के अधीन होना पड़ा है। यहाँ के नगरों और ग्रामों को नष्ट भ्रष्ट कर और निस्सहाय बालक, बालिका और स्त्रियों पर शस्त्र प्रहार कर जो जो अत्याचार जर्मनों ने उस देश में किये हैं उन से जर्मन सभ्यता पर ऐसा कलङ्क लगा है कि यह सहस्र वर्ष के प्रत्युपकार और पश्चात्ताप से भी दूर न होगा। जो हो वीर बेलजियनों ने भी उस बीच अकेले ही शत्रुओं का सामना किया और विश्वासघाती जर्मनों के दाँत खूब खट्टे किये। भला एक वीर जाति कैसे अपने को दुष्टों के पैरों तले कुचली जाने देती। यदि क्रूर जर्मनों की संख्या पराक्रमी बेलजियनों से अतिशय अधिक न होती अथवा उन को अपने मित्रों से समय पर सहायता मिल जाती तो इस वीर जाति को पराजित करना सहज न होता। घर द्वार छिनने पर भी ये वीर अभी तक शत्रुओं का सामना कर रहे हैं और अपने पराक्रम से संसार को चकित कर रहे हैं। आत्मगौरव की पराकाष्टा स्वदेश प्रेम और उस के प्रति आत्म-त्याग की महिमा, अल्पशक्तिमान् होने पर भी अधिक बली शत्रु का साथ न देकर उसके विपरीत हो उस का सामना करने में पराक्रम दिखाना और अपनी स्थिति का तनिक ध्यान न रखना इन सब बातों ने इन वीरों की उज्ज्वल कीर्ति को संसार में फैला दिया है और निस्सन्देह यह कीर्ति अटल रहेगी।

इसी वीर जाति के नृप श्रीमान् एलबर्ट हैं और उन की धर्मपत्नी श्रीमती एलिज़े

बेथ हैं। इन दोनों ही ने जो आत्मत्याग और धैर्य देश की रक्षा करने में दिखाया है वह सुवर्ण के अक्षरों में लिखे जाने योग्य है। ये वीर नृपति अभी तक स्वयं अपने सिपाहियों के साथ शत्रु का सामना कर रहे हैं। इन्होंने निराशा को अपने पास फटकने तक नहीं दिया। ये युद्ध के असीम कष्टों की ज़रा भी परवा न कर अपने मुट्ठी भर बचे हुए योद्धाओं के साथ खाइयों में रात दिन रहते हैं, उन्हें ढाढस देते हैं, घायल होने पर उन की सेवा करते हैं और गोले गोलियों की ज़रा भी परवा न कर स्वयं युद्ध में अभिमुख होते हैं। उन की रानी भी उन का साथ दे रहीं हैं और पाठकों को आगे चल कर मालूम होगा कि ये भी स्वयम् युद्धक्षेत्र में जाकर अपने पति का साथ दे युद्ध में जो कुछ एक अबला से बन सकता है कर रही हैं। इन्हीं रानी की जीवन की कुछ घटनाओं को हम यहाँ उद्धृत करेंगे।

रानी एलीज़बेथ का जन्मस्थान बवेरिया देश है। इन के पिता ड्यूक थियोडार और इन की माता पुर्तगाल देश की इन्फेन्ज़ ब्रिगेन्ज़ी इनफेन्टा हैं। बाल्यावस्था से ही इन का स्वभाव अति सरल था। बड़ी होने पर इन को राज घराने की कुमारियों के उपयुक्त शिक्षा दी गई। पढ़ने लिखने के अतिरिक्त इन को गान विद्या चित्रविद्या आदि ललित कलाओं का भी अच्छा ज्ञान कराया गया। २४ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह बेलजियम देश के नृप श्रीमान् एलबर्ट से ठहरा और सन् १९०० में इनका विवाह हो गया। तदनन्तर ये पति की प्रेमपरायणा और सहयोगिनी हो राजा के साथ प्रजा के सुख में सुखी रहकर आनन्द से दिन बिताने लगीं। इन्होंने पति सेवा और प्रजापालन का व्रत धारण कर लिया। अनाथालय और चिकित्सालयों में जाकर वे दुःखियों को सान्त्वना देतीं और उनकी सहायता करती थीं। सब लोकोपकारी संस्थाओं में योग दिया करती थीं। राज महल में ये पति को प्रसन्न रखने के लिए दत्तचित्त हो पतिव्रता स्त्रियों की भाति गृहकार्यों का स्वयं निरीक्षण करती थीं। इस बीच में इन के दो राजकुमार और एक राजकुमारी उत्पन्न हुई। ये अबतक राज गृह के आनन्द में ही रही थीं कि सहसा उन पर जर्मन आक्रमण रूपी वज्राघात हुआ। एकाएक गत जुलाई महीने के अन्त में जर्मन सेना बड़े वेग से उनके देश की सीमा पर टूट पड़ी। दो सप्ताहों के समाप्त होते न होते जर्मन दैत्यों ने इनकी विख्यात राजधानी ब्रूशल्स पर अधिकार कर लिया। तब राजधानी ब्रूशल्स से उठ कर एन्टवर्प चली गई। राजगृह के सब लोगों को भी वहीं प्रस्थान करना पड़ा। जब नृपति ने देखा कि उनके सेनानायकों के लिए शत्रु को रोकना कठिन होगया

है तब उन्होंने अपने सचिव से कहा अब क्या है हम स्वयं अस्त्रशस्त्र लेकर अपने वीर सिपाहियों के साथ देश की रक्षा करेंगे। यह सुन रानी बोलीं, "प्राणनाथ! देश पर आपत्ति आने पर प्रत्येक देशवासी का धर्म है कि वह देशरक्षा के लिए प्राण देने को तैयार रहे। यदि आपने युद्धक्षेत्र में जा कर देश रक्षा करने की ठानी है तो मेरा भी आपके साथ जाना धर्म है और मैं भी शस्त्र ग्रहण करूँगी"। यह सुन राजा विस्मित हुए तथा प्रसन्न और पुलकित हो कुछ न बोले। तदनन्तर जर्मन सेना ब्रुशल्स पर अधिकार कर एन्टवर्प के घेरने का फिक्र करने लगी। रही सही बेलजियम सेना भी एन्टवर्प की रक्षा के लिये तैयार होगई। नृपति ने रानी को राजकुमार और राजकुमारी सहित इङ्गलैंड जाने का उचित परामर्श दिया और स्वयं सेना के साथ युद्ध में योग देने का निश्चय किया। रानी ने नृपति का परामर्श मान लिया पर साथ रहने के लिए उन के मन की अभिलाषा बनी ही रही। वे राजकुमारों को ले विलायत चली गई और राजा युद्ध कर्म में प्रवृत्त हो गये। अन्त में शत्रु ने एन्टवर्प भी लेलिया और बची बचाई बेल-जियन सेना को समुद्रतट से होकर पीछे हटना पड़ा। फिर भी वीर नृपति तथा पराक्रमी सेना ने शत्रु को पीठ नहीं दिखाई। इस बीच में बेलजियम के मित्र अँगरेज़ और फरासीसी युद्ध के लिए तैयार हो गये थे। इन के साथ ही आज तक बची हुई बेलजियन सेना अपने नृपति के नायकत्व में जर्मनों से बड़ी बहादुरी से लड़ रही है। इस बीच में रानी ने विलायत में अंग रेज़ों का आतिथ्य स्वीकार कर वहाँ राज-कुमारों के रहने का सुप्रबन्ध कर दिया और फिर उन्हें छोड़ स्वयं राजा का साथ देने के लिए युद्धक्षेत्र में आगई हैं। कहाँ उन राजभवनों का सुख और कहाँ दिन रात अग्निवर्षामय युद्धक्षेत्र के महाकष्ट! परन्तु प्रेम और धर्म न जाने किन किन शक्तियों को उत्पन्न करते हैं और अबलाओं से भी दुष्कर से दुष्कर कर्म कराकर अस म्भव को सम्भव कर दिखलाते हैं। क्या हम स्वनामधन्य सती सीता सावित्री, कुन्ती द्रौपदी आदि को कभी भूल सकते हैं? आज फिर रानी एलीज़ेबेथ ने उसी धर्म व सच्चे प्रेम का सहारा ले अपने पति के साथ युद्धक्षेत्र में सच्ची सहधर्मिणी कह लाने का सौभाग्य प्राप्त कर अपने को देश सेवा और देश रक्षा के लिए न्योछावर कर दिया है। वे युद्धक्षेत्र में पति को धैर्य देती हैं उन की सहायता करती हैं और दूर न रह कर स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य कर घायल वीर बेलजियन योद्धाओं की चिकित्सा में लगी रहती हैं कहा जाता है कि एकबार राजा और रानी आगे बढ़ी हुई सेना से पीछे रह गये। एक मोटर पर सवार हो वे अकेले सेना से मिल ने आगे बढ़े पर सेना दूर निकल गई थी।

जाते जाते रास्ते में मोटर खराब हो गई। वे आगे न बढ़ सके। चारों ओर उजाड़ मैदान पड़ा था कोई झोंपड़ी भी न बची थी कि जहाँ सहारा लेते। इधर उधर से शत्रुओं के आने का भय था। परन्तु निर्भीक युगलमूर्ति हतोत्साह न हुई। राजा और रानी दोनों मोटर से उतर पड़े। क्षण भर भी विश्राम न लेकर साधारण कारीगरों की भाँति मोटर को ठीक करने में लग गये। विधाता ने उन के उद्योग को सफल किया और शीघ्र ही मोटर ठीक हो गई और वे उस पर सवार हो कुछ ही काल में अपनी सेना से जा मिले। पाठक समझ सकते हैं कि इनको नित्यप्रति कितनी ही ऐसी घटनाओं का सामना करना पड़ता होगा। क्षण क्षण पर उनके प्राण संशय में रहते होंगे। इनको समय पर भोजन न मिलता होगा। और बड़ा परिश्रम करना पड़ता होगा। परन्तु यह सब इनके लिए कोई बात नहीं। प्रश्न होगा, क्यों? उत्तर पाठक पाठक स्वयं दें। यह धैर्य और साहस की मूर्तियाँ देश रक्षा के व्रत में दीक्षित हैं। जब तक ये अपनी प्रजा को स्वाधीन न बना सकेंगे जब तक ये पुनः अपने देश में शान्ति और सुख स्थापित न कर लेंगे जब तक ये शत्रु का मस्तक न नीचा कर देंगे अथवा स्वयं ही रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त न हो जायँगे तब तक इन के लिए इस भूलोक में न शान्ति है और न सुख। भगवान् इनको विजयी करे। कहा है "यतो धर्मस्ततोजयः"। —चन्द्रलाल गुप्त

बच्चों की रक्षा



इस प्रान्त के स्वास्थ्य-रक्षा विभाग के कमिश्नर साहब ने बच्चों की रक्षा के विषय में कुछ नियम प्रकाशित किये हैं। गृहलक्ष्मी की पाठिकाओं की सूचना के लिए उनका अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

बच्चा पैदा होने पर सब से पहले दाई को उसकी नाल काटनी होती है। इसके विषय में यह जानना आवश्यक है कि बच्चे के पेट से चार इंच छोड़ कर नाल को डोरे या कच्चे धागे से पहले बाँध देना चाहिए। परन्तु ध्यान रहे कि डोरा पुराना या मैला न हो। फिर नाल को किसी साफ़ और तेज़ छुरी से काटना चाहिए। जहाँ से नाल काटी जाय, वहाँ पर तुरन्त पिसा हुआ लकड़ी का कोयला छिड़क देना चाहिए। यदि वह न मिल सके, तो ताज़ा बारीक आटा छिड़कना चाहिए। नाल के ऊपर कपड़ा या चिथड़ा जला कर लगाना बहुत लाभदायक है। एक साफ़ चिथड़े को पानी में डाल कर उबालना चाहिए। फिर उसे निकाल कर रेंड़ी या अलसी के तेल में तर करके नाल पर बाँधना चाहिए, जिससे वह चिमट न जाय। नाल पर मैला कपड़ा बाँधने या

जहाँ से वह काटा गया है, उस पर मिट्टी या गोबर लगाने से बहुधा बच्चे मर गये हैं। कारण यह है, कि इससे एक प्रकार का घातक रोग उत्पन्न हो जाता है। इस लिए ऐसा कभी न करना चाहिए। जब तक नाल का टुकड़ा सूख कर गिर न जाय और घाव अच्छा न हो जाय, उस समय तक बच्चे के पेट पर एक पट्टी अच्छी तरह से बाँधे रहना चाहिए।

नये पैदा हुए बच्चे की आँखें बड़ी सावधानी के साथ मुलायम कपड़े से साफ़ करनी चाहिए। इसकी विधि यह है कि थोड़े से गुनगुने जल से आँखें धो कर उनका मैल-कीचड़-निकाल दिया जाय। यदि जन्म से थोड़े दिनों बाद बच्चे की आँखों के पपोटे लाल हो जाँय और सूजन आ जाय या पपोटे पर कुछ मैल पाया जाय, तो तुरन्त किसी अच्छे चिकित्सक को उसे दिखाना चाहिए, नहीं तो बच्चे की आँखों के नष्ट हो जाने का भय है।

आँखों के साफ़ करने के पीछे, बच्चे को थोड़ा गुनगुने जल से स्नान कराना चाहिए। कुछ लोग स्नान से पहले बच्चे के शरीर पर तेल मल देते हैं, जिससे नहलाने में सुगमता होती है।

बच्चे को सदा साफ़ रखना चाहिए, और जब कभी उसका शरीर या कपड़ा मैला हो जाय, तो उसको तुरन्त सावधानी के साथ धो कर पोंछ देना और कपड़ा बदल देना चाहिए।

ध्यान रहे कि बच्चा कभी नंगा न रहे। विशेष कर जब वह सो रहा हो, तो उसकी छाती और पेट दोनों किसी हल्के कपड़े से ढके रहें, कुछ न कुछ कपड़ा रात दिन पहिनाये रहना चाहिए। जाड़े में बच्चे को अवस्था के अनुसार ऊनी और गर्मियों में सूती कपड़ा पहिनाना चाहिए। यदि गर्मी के दिनों में बच्चा नंगा रहे, तो अधिक हर्ज नहीं है, परन्तु रात को कोई हल्का कपड़ा उसके शरीर पर अवश्य रहे।

बच्चे को ज़मीन पर नहीं सुलाना चाहिए, किन्तु खटोले या चारपाई पर सुलाना चाहिये। कारण यह है कि पृथ्वी पर सुलाने से बच्चे को खाँसी और अन्य रोगों के हो जाने का भय रहता है।

बच्चे के शरीर पर तेल लगाने और मलने से भी बड़ा लाभ होता है। इससे शरीर पुष्ट होता है। और उसको मच्छड़ नहीं काटते। याद रहे कि मच्छड़ों के काट लेने से बहुधा बच्चों को ज्वर हो आता है। और उससे कोई कोई बच्चे मर भी जाते हैं।

प्रत्येक अवस्था के बच्चे को ठीक नियत समय पर भोजन देना चाहिए। और पीने के लिए हर दम साफ़ जल रक्खे रहे, जिससे बच्चा तालाब और गढ़े का जल न पिये, जो कि पीने के लिए अच्छा नहीं होता है।

बच्चे को सदा दोपहर को सुलाने का यत्न करना चाहिए। परन्तु इसके लिए उसको अफ़ीम कभी न खिलानी चाहिए। याद रहे कि यह विष है, और इस से बड़ी हानि होती है। यदि बच्चा रोने लगे, तो उसे बहला कर सुलाना चाहिए।

इस बात का ध्यान रहे कि बच्चे को रोज़ ठीक तरह से दस्त हो जाना चाहिए। यदि किसी दिन न हो, तो घुट्टी या साफ़ किया हुआ रेंडी का तेल (माँ के दूध में मिला कर) पिलाना चाहिए।

पाँच वर्ष या उसके ऊपर के बच्चे के लिए कुछ व्यायाम (कसरत) करना और पक्के फल जैसे नारङ्गी, केला और मीठे आम इत्यादि खाना बहुत लाभदायक है।

—शालिग्राम

युद्ध के सम्बन्ध में कुछ जानने योग्य बातें

हमारी सरकार की पल्टन का जब कोई सैनिक रण-क्षेत्र-लड़ाई के मैदान में जाने लगता है, तो उसके पास इतना सामान होता है:— सामने दाहिने और बायें दो बटुवे से होते हैं, जिन में कारतूस भरे रहते हैं। एक थैला कमर से लटका होता है, उस में कुछ खाने की चीज़ें होती हैं। कोट के किनारे बाँये ओर मलहम पट्टी का सामान सिला रहता है, जिससे कि सैनिक घायल होने पर तुरन्त आप पट्टी बाँधले, या उसका कोई साथी बाँध दे। पीठ पर एक बैग होता है, जिसमें वाटर-प्रूफ़ (पानी से बचने की) चादर, ओवरकोट (लबादा) दो जोड़ी मोज़ा, भोजन के लिए टीन के बरतन, छूरी, चमचा और काँटा, बाल बनाने का ब्रुश, कंघा, दाँत साफ़ करने की कूँची, साबुन, तौलिया, अस्तुरा और क़मीज़ होती है, कमर के बायें ओर पानी की बोतल लटकी रहती है और दाहिनी ओर खाईं खोदने का औज़ार होता है। इस के सिवाय बन्दूक और सङ्गीन प्रत्येक पैदल सिपाही के पास होती हैं। इन सबका भार ३० सेर के लगभग होता है।

हमारे सिपाहियों की बन्दूकों में दस कारतूस एक साथ लगाये जा सकते हैं। और उसकी मार २८०० गज़ तक होती है। यह मार अन्य सैनिकों की बन्दूकों की मार से ७०० गज़ अधिक है।

* * *

जल-युद्ध में पनडुब्बी नौका से जो काम लिया जाता है, उसको पहिले पहिल सन १८८७ ई० में अमेरिका के एक कारीगर मि० हालएड ने बनाया था। उन्होंने वहाँ की प्रसिद्ध नदी हडसन में एक ऐसी नौका चला कर दिखाई, जो पानी के भीतर डुबकी लगाकर फिर इच्छानुसार ऊपर आ जाती

थी। उसके पश्चात इस प्रकार की रफि और भी नौकायें बनीं।

* * *

जर्मनी का प्रसिद्ध "ज़ेपलिन" नामक वायुयान (हवाई जहाज़) नोकदार बड़े बेलन के समान होता है। उस में कई खंड होते हैँ, और उन में हवा भरी रहती है। उस में अफ़सरों और सिपाहियों के अलग अलग कोठे होते हैँ। उनके बग़ल में तेल और ईंधन रखने के टब होते है। उसकी लम्बाई ६०० फ़ीट और व्यास ७५ फ़ीट होता है। उसका समाव पौने आठ लाख घन फ़ीट होता है। उस में ३ इंजिन सत्तर सत्तर घोड़ों के बल रखने वाले होते हैं। यह धुरन्धर वायुयान आकाश में ७ हज़ार फ़ीट ऊपर, ५० या ५५ मील प्रति घंटे के हिसाब से फर्राटा भरता हुआ कई घन्टे तक इधर उधर उड़ सकता है। याद रहे कि यह चाल हमारे देश की रेलों में तेज़ से तेज़ डाक गाड़ी की है। इस वायुयान में ५ तोपें और ५५ मन बारूद इत्यादि रहती हैं। इतना सामान लिये हुए ३००.मील तक इसकी दौड़ होती है।

समालोचना

किन्डर गार्टन बक्स—[महरागाँव, डाक खाना भुवाली, जिला नैनीताल के पं० देवीदत्त शर्म्मा द्वारा निर्मित तथा प्राप्य]

छोटे बच्चों को मनोरञ्जक रीति से अक्षर बोध कराने के लिए इन बक्सों का आविष्कार किया गया है। प्रत्येक बक्स में छोटे छोटे लकड़ी के रङ्गीन टुकड़े होते हैं जिनसे विचित्र काम निकलता है। जैसे बक्स नं० १ में अक्षरों के खंड का विचार करके विविध रूप और आकार के २४ टुकड़े हैं। इनको सीधा तथा उलट पुलट कर इधर उधर से मिलाने से न केवल देवनागरी वरन् गुजराती, गुरुमुखी, सराफ़ी, उर्दू तथा अँगरेज़ी आदि के अक्षर छोटे छोटे शब्द और मात्राएँ, १० तक की गिनती ड्राइंग की बहुत सी शक्लें जैसे वर्ग, आयत, दर्वाज़ा और तोता इत्यादि बड़ी सुगमता से बन जाते हैं। एक तरह के टुकड़ों से विविध लिपियों के अक्षरों के कोनों आदि का पूर्ण रूप से बनना कठिन है इस लिए यदि नागरी अँगरेज़ी और उर्दू के सर्वाङ्ग सुन्दर (नस्तालीक़) अक्षर बनाने हों तो इसके लिए क्रमशः बक्स नं० २, ३ और ४ हैं।

बक्स नं० ८ में दस चौकोर घन हैं जिसके छओं ओर गिनती के अंक लिखे हुए हैं। इनको उलट पुलट कर रखने से कुल गिनती की संख्याएँ बन जाती हैं। ऐसा ही बक्स नं० ११ अक्षरों और मात्राओं के लिए है। बक्स नं० १४ में चार चार वृत्त (चक्र) अर्द्ध वृत्त और चौथाई वृत्त हैं। ये पौना सवैया और ड्यौढ़ा आदि की संख्या समझाने के लिए

बनाये गये हैं। बक्स नं० १७, १८ और १९ में, वर्गाकार टुकड़ों से क्रमशः नागरी, उर्दू तथा अँगरेज़ी के अक्षर और मात्राएँ बन जाती हैं। बक्स नं० १ के प्रत्येक टुकड़ों पर नम्बर पड़े हुए हैं और किस अक्षर से शक्ल के बनाने के लिए किन किन टुकड़ों को मिलाना चाहिए इसकी विस्तार पूर्वक विधि एक अलग छोटी सी पुस्तक में है जो बक्स के साथ बिना मूल्य मिलती है। ।-) से लेकर १॥) के भीतर इन बक्सो के दाम के कई एक दर हैं। हम आशा करते हैं कि लोग इन बक्सों से लाभ उठाने की अवश्य चेष्टा करेंगे।

***

किङ्ग हिन्दी रीडर या हिन्दी-बाल-बोध— [प्रकाशक लाला, राम नरायण लाल, बुकसेलर, इलाहाबाद ।]

हिन्दी-बाल-बोध के पाँच भाग हमारे पास समालोचना के लिए आये हैं। पुस्तकों का विषय इनके नाम से ही प्रकट होता है। पाचों भागों के पाठ्य विषय की पृष्ठ संख्या ५०, ५३, ५२, १०५ और १३६ है। मूल्य क्रमशः -), -)॥, =), ≡) और ।)॥ है। पुस्तकें सचित्र हैं। छपाई सफ़ाई आदि सब बहुत सुन्दर है। बालकों के पढ़ने को जितनी रीडरें आज कल प्रचलित हैं उन सब से यह सस्ती हैं। गद्य पद्य के विषय भी इनमें अच्छे संग्रह किये गये हैं। इनकी छपाई सफाई और सस्तेपन आदि गुणों के आगे इन में जो कुछ थोड़ी सी त्रुटियाँ रह गयी हैं वे नगण्य हैं। हमें आशा है कि सर्व साधारण को इनसे लाभ पहुँचेगा। नमूने के लिए हिन्दी-बाल-बोध चौथे भाग से एक पद्य भी उद्धृत किया जाता है।

दुर्जन और सज्जन

[१]

दुर्जन जो विद्या पढ़ता है,
तो विवाद सब से करता।
दुर्जन जो धनवान बनै,
तो अहङ्कार ही में मरता।
दुर्जन के तन में बल हो,
तो निरपराध को पीड़ा दे।
विद्या धन बल पा कर भी,
नहिं धन्यवाद औरों से ले।

[२]

सज्जन किन्तु सदा विद्या से,
सब मनुजों को देता ज्ञान।
सज्जन जो धन्वान होय तो,
दीन जनों को करता दान।
सज्जन के शरीर में जो हो,
अन्य जनों से भारी बल।
तो उससे वह दीप जनों की,
सदा करै रक्षा केवल।

—पं० राधाकृष्ण मिश्र

प० सुदर्शनाचार्य, बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्म्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः

"सा पत्नी या विनीता स्याच्चितज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरिव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, वैशाख, संवत् १९७२ [द्वितीय दर्शन

भारतोन्नति प्रार्थना

प्रभो ! कृपया इधर देखो
सँभालो शक्ति अपनी से ।
पतन होते हुओं को
आ बचाओ भक्ति अपनी से ॥
हरे ! चढ़कर बड़ा ऊँचा
गिरा है जो अवनि तल में ।
न क्या हाय ! आशातीत
शोकित हो चुका पल में ?
यही है हाल भारत का,
न इसका कुछ ठिकाना है ।
तुम्हें, हे देवकी नन्दन !
गिरे को आ उठाना है ॥
पतित अति अन्ध देशों को
उठाया है तुम्हीं ने तो ।
उठाये को सुदृढ़ता से
बढ़ाया है तुम्हीं ने तो ॥
अनोखे वीर, ओजस्वी,
स्वकर्त्तव्यानुरक्तों को ।
करो पैदा सपूतों को,
हठीले देशभक्तों को ॥

—प्रेमदास वैष्णव

(प्रताप)

राजपूताना

"गरजता सिंह सा था यह,
किसी दिन राजपूताना" ॥ टेक ॥

नवासी घाव थे जिसके
हृदय को बज्र बतलाते ।
रहा था उस लड़ाका वीर
साँगा का यही थाना ॥
नहीं दासत्व की जंज़ीर
पहनी जङ्गलों घूमा ।
यहीं पच्चीस बरसों तक
व्रती परताप सा राना ॥
यहीं के वीर का था काम
हाथी के हिचकने पर ।
क़िले का बन्द दर्वाज़ा
लगा छाती को तुड़वाना ॥
धर्म्म स्वाधीनता के हेत
पहने वस्त्र केसरिया ।
करोड़ों राजपूतों ने
यहीं पै युद्ध था ठाना ॥
कलेजा था यहीं की
पद्मिनी सी वीर नारी का ।
हुआ जिससे पती को
शत्रुओं से छीन कर लाना ॥
सकोगे भूल कैसे हिन्द
माता के सपूतो तुम ?
जलाना देह 'जौहर' में
धर्म्म जौहर का दिखलाना ॥

—परशुराम चतुर्वेदी
(प्रताप)

सुन्दरी कंठाभरण

सकल धर्म हित के बचन,
सुनो बहिन दे ध्यान ।
जग में सुख परलोक में,
जो चाहो कल्यान ॥
उठो सूर्य्य से प्रथम तुम,
कर मज्जन अस्नान ।
पुनि सब घर के कार्य्य को,
करो सहित शुभध्यान ॥

उठो प्रथम रवि से पिय प्यारी ।
कर मज्जन पुनि होउ सुखारी ॥
माँगहु प्रभु सन पति पद प्रीति ।
धर्म सनातन की यह रीति ॥
रहहु मात पितु आज्ञा कारी ।
बनो कभी मत इच्छा चारी ॥
सकल कार्य पुनि गृह के सीखो ।
दुखित मलिनमन कबहु न दीखो ॥
मलिन देह अरु वस्त्र न राखो ।
बचन असत्य कभी मत भाखो ॥
पढ़ो लिखो शुभ शास्त्र सयानी ॥
पढ़हु न क़िस्से कुटिल कहानी ।

आज्ञा निज पितु मातु की,
करो सदा शुभ जान ।
जा से सब सुख गुण मिलैं,
होवे जग में मान ॥
ऐसे बालकपन हिं में,
सीखो गुण गृह कार्य्य ।
जब विवाह होजाय तब
पतिपद रति अनिवार्य्य ॥

लावनी

तुम सुनो बहिन यह शिक्षा सुखद हमारी। पूजो पति पद मन लाय, बनो पिय प्यारी॥ पति की आज्ञा को मुख्य धर्म तुम मानो। मत उस को करना भंग सुखद पहिचानो॥ पति से पुनि कोई देव भिन्न मत जानो। यह निश्चय कर पति सेवा मन में ठानो॥ है जग में पति इक पुरुष और सब नारीं। पूजो पति पद मन लाय, बनो पियप्यारी॥ १॥

जो पति की सेवा करे वही सुखपावै। सो जगत् बीच में पतिव्रता कहलावै॥ जो पति से करै विरोध नरक में जावै। जहँ जन्मै विधवा होय शास्त्र यह गावै॥ है सब प्रकार पति सेवा में सुखभारी। पूजो पति पद मन लाय बनो पियप्यारी॥ २॥

तुम सास ससुर अरु पति का मानो कहना। जो कुछ कठोर भी कहैं उसे भी सहना॥ है लाज शील सन्तोष नारि का गहना॥ घर में सब से प्रिय बचन बोल कर रहना॥ तुम गृहलक्ष्मी हो गृह की शोभा सारी। पूजो पति पद मन लाय बनो पियप्यारी॥ ३॥

हों घर घर मंगल मोद कि जब तुम आओ। पुनि गृह में रह कर गृह-लक्ष्मी कहलाओ॥ क्यों शुभ मंगल में भ्रष्ट गालियाँ गाओ। निज लक्ष्मी-पन को अपने हाथ गवाओ॥ लक्ष्मी नारायण कहँ न गाओ गारी। पूजो पति पद मन लाय बनो पियप्यारी॥॥ ४॥

—एक शास्त्री

बाल विवाह

स्त्री-शिक्षा का कुठार

स्त्रियों की दशा ही देश की सभ्यता और शिक्षा का भली भाँति प्रमाण है। असभ्य जातियों में स्त्री दासी मात्र है। पति आलस्य का जीवन व्यतीत करता है और पत्नी परिवार के भरण पोषण करने के लिये प्रयत्न करती है।

सभ्य देश और जातियों में यह बात नहीं देखी जाती और स्त्रियाँ बहुत सम्मानित होती हैं। भारतवर्ष में स्त्रियों की दशा मध्यम है। वह पुरुषों की अपेक्षा वस्त्रादि अच्छे पहिनती तथा जिस प्रकार उनके पतियों की आय होती है गहने इत्यादि भी रखती हैं। साधारणतः वे अपने विचार में किसी प्रकार से असन्तुष्ट नहीं होती हैं पर यह केवल उनकी मूर्खतावश है। इस बात को वे नहीं जानतीं कि विद्या ही मनुष्य का भूषण है और वही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। पढ़ने लिखने ही की शक्ति पशुओं और मनुष्यों में एक बड़ी भारी भिन्नता की निशानी है। बुद्धिमान से बुद्धिमान कुत्ता एक अक्षर नहीं सीख सक्ता, पर प्रत्येक बालक जो कि ६-७ वर्ष की आयु का है यदि वह अत्यन्त ही मोटी बुद्धि का नहीं तो अच्छा प्रकार साफ साफ पढ़ सकता है। जो मनुष्य पढ़ लिखे नहीं होते वे पशुओं के तुल्य होते हैं।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि स्त्रियाँ यद्यपि पढ़ाई लिखाई जाती हैँ तथापि उन्हेँ कोई कार्य करने को नहीँ मिलता। पर धन कमाना ही शिक्षा का मुख्य अभिप्राय नहीँ है। स्त्रियाँ इससे अनेकोँ लाभ उठा सकती हैँ। चाहे उन्हेँ पढ़ने से एक पाई भी न प्राप्त हो। बालकोँ का अच्छा या बुरा होना हमारी स्त्रियोँ ही पर निर्भर है एक अन्धा अन्धे को मार्ग नहीँ दिखा सकता। अशिक्षित माता बालक को शिक्षा नहीँ दे सकती और वही बालक की उन्नति के मार्ग मेँ कुठार रूप हैँ। शिक्षित माँ अपने बालकोँ की शिक्षा मेँ सहर्ष भाग लेतीँ और उन्हेँ उनकी शिक्षा मेँ उत्साहित भी करती हैँ, इससे भी विशेष बात यह है कि शिक्षित पति और अशिक्षित पत्नी कभी किसी विषय मेँ आनन्दमय वार्ता नहीँ कर सकते। और दोनोँ मेँ बहुधा देखा गया है कि प्रेम की मात्रा भी बहुत कम होती है। इसका कारण स्त्रियोँ का अशिक्षित होना ही है, बालकोँ जैसे विचार वाली तथा असभ्य स्त्री कभी बुद्धिमती सङ्गिनी नहीँ बन सकती और न शोक मेँ धैर्य्य, न क्लेश मेँ अच्छी अनुमति ही दे सकती है जिसका कि होना दम्पती मेँ परमावश्यक है। स्त्रियोँ की असभ्यता (अशिक्षा) उनके पतियोँ पर अनेक भाँति से प्रभाव डालती है। उन्हेँ अन्य अन्य देशोँ तथा स्थानोँ मेँ अच्छे अच्छे भी स्थान मिल सकते हैँ, पर स्त्रियोँ का भय कि वहाँ जाने से सब प्रकार की बुराइयाँ ही उत्पन्न हो जायगी उन्हेँ जीवन मेँ ऐसे ऐसे उन्नति के मार्गोँ से च्युत करता है। अब इन सबको छोड़ हमेँ यह विचारना चाहिए कि हमारे देश मेँ स्त्री शिक्षा ठीक रीति से क्योँ नहीँ होती ? इस प्रश्न के उत्तर मेँ हमेँ अच्छी प्रकार मनन करने से विदित होता है कि यह सब "बाल्य-विवाह" का ही परिणाम है कि हमारे यहाँ महिलागण मूर्खा (अशिक्षिता) रह जाती हैँ।

इसमेँ सन्देह नहीँ कि हमारे देश मेँ स्त्री-शक्ति जागृत हो रही है इसके प्रत्यक्ष प्रमाण चारोँ ओर हमारे देखने मेँ आरहे हैँ, जिसके आशापूर्ण सुन्दर फल अच्छे फलैँगे। इन बालिकाओँ के जीवन मेँ जो सुबीज बोया जारहा है उसके सुन्दर मीठे फलोँ को हमारी मनुष्य समाज भली प्रकार भोग करेगी।

पर भारत मेँ इस समय सब से प्रथम और प्रधान प्रश्न यही है कि हमारी कन्याओँ के लिए हमारा कर्तव्य क्या है ? उनको भली प्रकार शिक्षित करना या बाल विवाह की जंजीर मेँ फाँसना ?

मैँ प्रत्येक महिलाओँ से यही पूँछता हूँ कि क्या उन्होँने अपनी कन्याओँ के लिए इस प्रश्न पर विचार किया है ? प्रत्येक माता पिता पर सन्तान की बड़ी जिम्मेवारियाँ हैँ। अपनी सन्तान को ठीक ठीक शिक्षित करने के सिवाय इस समय

ऐसा कोई विषय नहीँ जिस पर माता पिता को अधिक ध्यान देने की आवश्यकता हो।

बाल विवाह की पृथा अनेक बालिकाओँ को उत्तम शिक्षा से वञ्चित करती है। छोटी उमर मेँ विवाह से सम्बन्ध रखने वाला कोई भी संस्कार उत्पन्न कर देने से अनेक प्रकार के अति विस्मयकारक बुरे फल निकलते हैँ, मंगनी के समय लड़का और लड़की विवाह के असली अर्थ को नहीँ समझते और कैसे दुःख का विषय है कि बालिका को विद्यालय छुड़ा करके बाल्य काल मेँ ही उस पर पत्नीत्व और मातृत्व का भारी बोझ डाल दिया जाता है!

यदि माता पिता श्वसुर और सास धनाढ्य न होँ तो बालिका की शिक्षा सदा के लिये बन्द हो जाती है। मैँ ने एक महिला के लेख मेँ पढ़ा था जिसमेँ कि यह लिखा था कि "श्रीमती गायत्रीदेवी ने कलकत्ता मेँ कहा था कि गृहरूपी राज्य मेँ पति राजा और पत्नी मन्त्री स्वरूपा है। मन्त्री स्वरूपा पत्नी यदि अशिक्षिता होतो गृहरूपी राज्य मेँ अनियम फैल जाता है। महिलाओँ को उत्तम रीति से शिक्षित करना परमावश्यक है नहीँ तो सुशिक्षित पुरुष के लिये उपयुक्त सङ्गिनी नहीँ हो सकती" अन्त मेँ उसने कहा कि "बाल विवाह, अयोग्य विवाह, स्त्री शिक्षा का अभाव और विधवाओँ का दुखड़ा इन चार विषयोँ पर प्रत्येक भारतवासी को विशेष ध्यान देना उचित है।" क्या हम सब अच्छी प्रकार नहीँ जानते कि गृहस्थ जीवन का केन्द्र है। स्त्री यदि पत्नीत्व व मातृत्व के कर्तव्योँ के पालन करने मेँ समर्थ हो, तो गृहस्थ संसारिक सुख, शान्ति और कल्याण का धाम हो सकता है। अन्यथा नहीँ।

स्त्री शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक स्त्री सदाचारिणी बन सके तथा गृह के और समाज के कर्त्तव्य पालन करने मेँ समर्थ हो सके। बहुत से विद्यालयोँ मेँ पढ़ाई के साथ स्वास्थ्य-विद्या, व्यायाम गृहकार्य और सदाचार की भी शिक्षा दी जाती है तथा स्त्रियोँ की विशेष विशेष अवस्था व रोगादि सम्बन्धी चिकित्सा तथा संतान के पालन-पोषण की विधि की शिक्षा भी अत्यावश्यक समझी जाती है। यदि स्त्री-जाति के अधिकांश भाग को पर्दा की बुरी पृथा के कारण घरोँ मेँ बन्द न रख कर भारत की पुरानी रीति के अनुसार तथा उपरोक्त प्रणाली के अनुसार शिक्षित होने का सुभीता दिया जाए, यदि वे पूर्व काल की तरह अपने पिता तथा भ्राता के समीप यथा योग्य स्थान पाकर अपने न्याय और सामर्थ्य को काम मेँ ला सकेँ, यदि एक बार अनुभव कर सकेँ कि उनके द्वारा चिकित्सा परोपकार इत्यादि मानव जाति की उन्नति के मूल यदि कुछ

स्वाधीन कार्य सम्भव हो सकें तो इसमें सन्देह नहीं कि भारत अपने खोये हुए गौरव को पा सकता है तथा भारतवासियों का जीवन भी सदा के लिए सुखमय हो सकता है। हम कन्याओं को क्या बनायें, जब हम इस विषय पर विचार करते हैं तब हमारे नेत्रों के सामने यह सब चित्र खिच जाता है कारण कि स्त्री शिक्षा के विना भारत की सचमुच वही दशा है जैसा कि एक अङ्गलवसी महाशय ने लिखा है "भारत वर्ष की दशा विना स्त्री शिक्षा के ठीक वैसी ही है जैसी कि एक पक्षी की जिसका एक बाजू तोड़ दिया गया है होती है।"

हमारे देश में बालिकाओं की अपेक्षा बालकों का विशेष आदर होता है पर यह कदापि न होना चाहिए।

मैं देवियों से यही कहता हूँ कि आप लोग कन्याओं को पुत्रों की भाँति पालन करें शिक्षा दें। बाल विवाह ही स्त्री शिक्षा में केवल बाधक है यह बात नहीं परन्तु बालिका माता की जीवन शक्ति और सामर्थ्य-हीनता के कारण सन्तान अच्छी प्रकार से हृष्ट पुष्ट नहीं हो सकती। अनेक बालिकाएँ निर्बल शरीर होने से सन्तानोत्पत्ति के समय मृत्यु के मुँख में गिरती हैं। अनेक बालिकएँ जीवन भर कष्टदायक रोगों में फँस कर सच्चे सुख से सदा दूर रहती हैं। बड़े बड़े वैद्य व डाकृर कहते हैं कि निर्बल माता पिता की सन्तान अनेक प्रकार के स्नायु सम्बन्धी रोगों में फँसती हैं और उनमें से बहुत सी सारे जीवन में रोगी रहती हैं। निम्न लिखित मर्दुम शुमारी के हिसाब से ज्ञात होता है कि एक से लेकर चौदह वर्ष तक की कितनी बालिकाएँ बिवाहिता हैं:—

१ वर्ष तक की कन्या	१०,५०७
४ " "	२५८,७६०
५ से ६ वर्ष तक की	२२,०१४०४
१० से १४ वर्ष "	६०,१६७५६

यह सभी योग्य और अयोग्य अवस्था के बरों के साथ विवाहिता हैं। मेरा निश्चित विश्वास है कि थोड़े काल में ही भारत में छोटी आयु की स्त्री और अपरिपुष्ट शरीर वाले पिता माता की सन्तान देखने में नहीं आवेगी। बाल विवाह की बुरी पृथा के अनुसार मँगनी और अयोग्य विवाह का एक और बुरा फल फल यह है कि भारत में असंख्य बालबिधवाओं का होना देखा जाता है।

मेरा विश्वास है कि भारत वर्ष की अवनति का मुख्य कारण बालविवाह है। मैं विचार करता हूँ कि हमारी बहिनें व भ्रातृगण भी मेरे इस विश्वास के साथ सहमत होंगे। बाल-विवाह की यह बुरी प्रणाली नाना प्रकार के उत्तम सुधारों की विरोधिनी तो है ही किन्तु उत्तम शिक्षा में विशेष हानिकारक है। मूर्खता तथा नाना दोषों का भण्डार और मनुष्य स्वभाव के नियम विरुद्ध यह सर्वनाश-

कारी पृथा बनावटी है स्वाभाविक नहीं। यह पृथा शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक आध्यात्मिक; आदि सब प्रकार की अवनतियों का मूल कारण है। इस पृथा को जड़ से उखाड़ कर जब तक विवाह के योग्य आयु न बढ़ावेंगे तब तक भारत की आर्यजाति का कल्याण नहीं हो सकेगा। स्त्री शिक्षा का प्रचार और बालविवाह के बुरे फल को बतलाने वाले पुस्तकादि का बाँटना तथा व्याख्यान देना एवम् सभा करते हुए सब के मिले हुए परिश्रम के द्वारा सर्वसाधारण हिन्दू लोगों की सम्मति को एकत्रित करके समूल इस पृथा को नाश कर देना ही उचित है। आशा है कि हमारी महिलागण तथा अन्य सज्जनगण मेरे इस लेख से अवश्य कुछ न कुछ लाभ उठा कर मेरे भी परिश्रम को सफल करेंगे और फिर भी अपनी सेवा में कुछ न कुछ लिखने के लिए उत्साहित करते रहेंगे।

—शिवनन्दन पाण्डेय

नवीन पहेलियां

(दो प्रश्नों का एक उत्तर)

(१) औरतों ने तमाशा क्यों न देखा,
हारमोनियम क्यों न बजा।

(२) व्याह क्यों न हुआ,
ठोकर क्यों लगी॥

(३) लड़के ने क्यों न पढ़ा,
गाँव उजाड़ क्यों कहलाया।

(४) कढ़ी क्यों न बनी,
घोड़ा तेज़ क्यों चला॥

(५) खाना क्यों न खाया,
फोड़ा क्यों न चीरा।

(६) मकान क्यों न नापा,
बूट क्यों न पहिना॥

(७) डोल कुएँ से क्यों न निकाला,
साहब ने खाना क्यों न खाया।

(८) चमार ने छप्पर क्यों न छाया,
मकानों में चोरी क्यों हुई॥

(९) लड़के ने तख़ती क्यों न लिखी,
कुत्ते खुले क्यों फिरे।

(१०) छानी क्यों न पीटा,
लड़का मेह में क्यों भीगा॥

(११) पानी ठंडा क्यों न हुआ,
लोहा खुरखुरा क्यों रहा।

(१२) देबी क्यों रूठी,
संत्री ने मुसाफिर क्यों मारा॥

उत्तर

(१) परदा न था।

(२) सूझा न था॥

(३) बस्ता न था।

(४) मट्ठा न था॥

(५) पक्का न था।

(६) फीता न था॥

(७) काँटा न था।

(८) बन्द न थे॥

(९) कटखने न थे।

(१०) छाता न था॥

(११) रेत न था।

(१२) बोला न था॥

—नन्दे देवी

अशोक बाटिका में सीता

अति रमणीक अशोक बाटिका
जो थी नित नव सुख की वास।
हुई सशोक विरह दावा से
सरल चित्त वैदेही त्रास॥ १॥

राम विरह में विकल जानकी
अहो जानकी लखती बाट।
बैठी थी अशोक छाया में
मलिन बदन दुःख नूतन काट॥२॥

विकसित थी निज मलिन वस्त्र में
करती थी सौन्दर्य्य-प्रकाश।
जलद पटल में निशानाथ नव
शोभित ज्यों अति मध्य अकाश॥३॥

लंकेश्वर कामान्ध मूढ़,
अति रूपवती सीता को देख।
बोला हो मदान्ध वह कामी
करि भ्रू विकट कराल कुवेष॥४॥

राक्षसेन्द्र की सुन मदनोक्ति
व्यथित हुई सीता सुपुनीत।
सिंहनाद के सुनने ही से
ज्यों गजराज सुता भयभीत॥५॥

रोती थी हा फूट फूट कर
सीता, था सन्ताप अथोर।
निर्जन बन में त्यक्त सुबाला
वह सहती थी दुःख घोर॥ ६॥

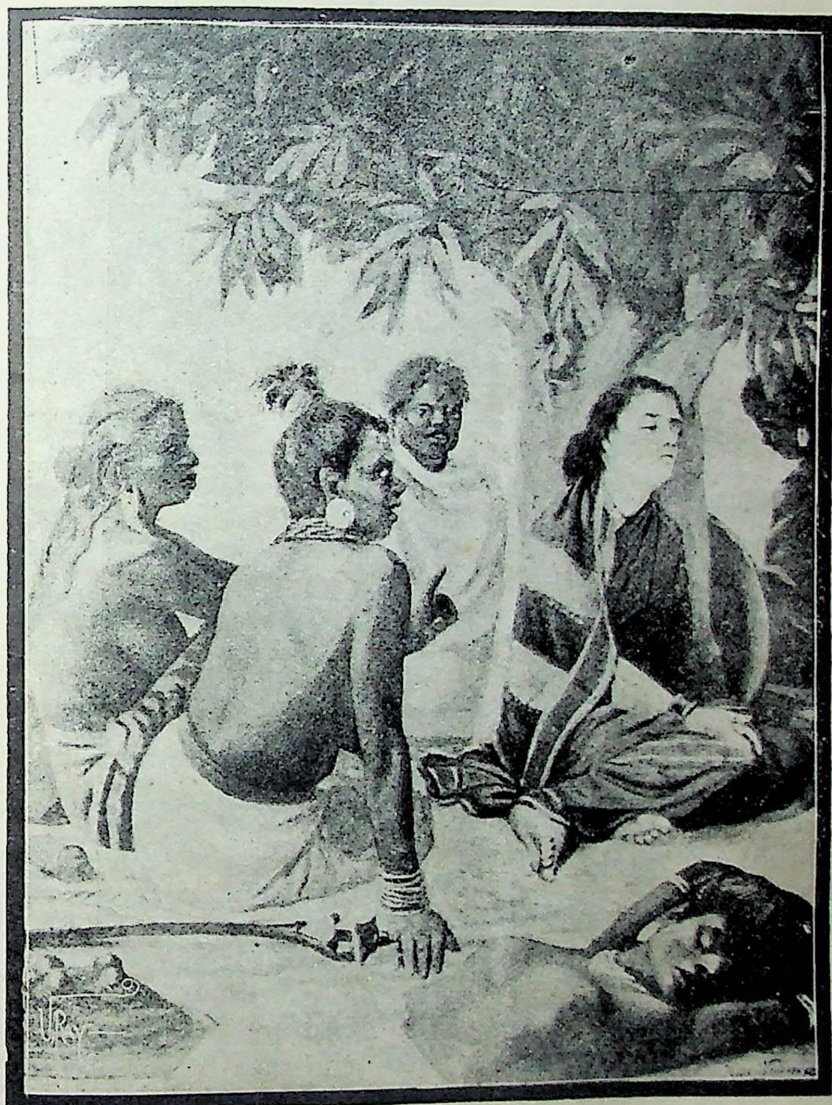
बोल उठी सकोप अभिरामा
करि निज प्राणेश्वर का ध्यान।
"तू है अधम नराधम रावण
क्यों न देखता निज अभिमान॥७॥

सदा पराभव को पाते हैं
पर दारा रत पुरुष अजान।
सुनु शठ घोर पाप बतलाते
इसको धीर सुवीर सुजान॥ ८॥

रामचन्द्र की बाहुलता कर
सकती या तब तीक्ष्ण कृपाण।
स्पर्श सुभग काया मेरी का
जान इसे मम व्रत प्रमाण॥ ९॥

क्यों सह सकती थी रावण का
बचन वज्र दुस्सह संताप।
आश्वासन था उसे विरह में
प्राणनाथ ही का सुप्रताप॥१०॥

—पाटेश्वरी प्रसाद त्रिपाठी



अशोक बाटिका में सीता जी

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग।



भारतीय सौन्दर्य

आत्म-कहानी

आज मैँ गृहलक्ष्मी के पाठक और पाठिकाओँ की सेवा मैँ यह लिखती हूँ कि स्त्रियोँ का प्रेम पुरुष मैँ कितना होता है। मेरे पिता ने जब मेरा विवाह किया था, तब मेरी आयु दस वर्ष की थी मगर मुझे इस बात की चिन्ता तभी से थी कि ऐसा कोई कार्य मुझसे न हो जाय, कि जिससे मेरे पति अप्रसन्न हो जाँय। जिन कामोँ मैँ मैँ सुनती थी कि स्वामी की रुचि है, चाहे जितना मुझे कष्ट होता, मैँ वही करती थी। एक समय मेरे पिता के यहाँ स्वामी जी गये। मैँने सुना था कि इनको लाल मुनिया का बहुत शौक है। मेरे घर मैँ लाल बहुत आया करते थे। मैँ बड़े ही परिश्रम से उनको पकड़ पकड़ कर भाँति भाँति के रँग से सुशोभित कर कर जहाँ सब समाज सहित आप रहते थे वहाँ ही अपने छोटे छोटे भाइयोँ से कह कर भेजती थी। खिड़की वा झरोखोँ से छिप छिप कर मैँ भी अवलोकन किया करती थी। स्वामी जी की आयु भी तब थोड़ी थी और उन चिड़ियोँ को देख कर वे बहुत ही प्रसन्न होते थे। चन्द्र से मुखारविन्द को कमल सा खिला हुआ देख कर मैँ आनन्द के मारे फूली न समाती थी।

घर मैँ मेरी माता और भावजोँ ने सुना कि कल जमाई जी की बिदा होगी। तीन चार घरोँ मैँ एक मैँ ही लड़की थी, भाई कई थे। इससे मेरा लाड़ प्यार मेरी चाची और भावजेँ बहुत किया करती थीँ। इस कारण भावजोँ ने मुझे उसी कमरे मैँ भेजा जो कि झाड़ फ़ानूस लम्प इत्यादि वस्तुओँ से सुशोभित किया गया था। क्योँ कि मेरे भ्राता का यज्ञोपवीत था और नये दामाद को नये कमरे मैँ ही भावजोँने शयन कराना ठीक समझा। हे बहिनो, स्वामी के समीप जाने का यह पहला अवसर था। मुझे डर वा लज्जा बहुत लगती थी, इस से न तो नेत्र भर दर्शन ही किए, न कुछ वार्तालाप ही कर सकी। मन ही मन तो बहुत कुछ विचार करती रही, मगर बात चीत करने की कौन कहे, पास जाने तक का साहस न पड़ा। फिर सूर्य्य निकलने के पहिले ही उनकी बिदा हो गई।

अब पाठिकाएँ स्वयम् ही विचार लेँगी, कि ऐसी समय मैँ मेरी क्या दशा हुई होगी। इस घटना के पाँच वर्ष बाद फिर गौने की बात पक्की हुई और मेरा गौना आमोद प्रमोद के साथ हो गया। अब मैँ ससुराल मैँ आकर नई बहू बनी। जो जो कष्ट मुझे भोगने पड़े, उसके लिखने मैं मैँ असमर्थ हूँ। बस दो चार ज़रूरी बातेँ ही लिख कर समाप्त करती हूँ। मुझे सास ससुर बहुत ही प्यार से रखते थे। खाने पहरने की कोई तकलीफ़ न थी।

जो दुःख मुझे था, वह सत्य ही बताती हूँ। अब मुझे आये करीब छः महीने हुए, मगर स्वामी जी के दर्शन अभी नहीँ हुए। सदैव मुझ से रुष्ट ही प्रतीत होते थे। अब मुझे बहुत चिन्ता हुई कि क्या करूँ, क्या न करूँ। जो उनसे कोई कुछ कहता, तो वह यही उत्तर देते कि जब हम उसके यहाँ गये, तब वह हम से बोलीही नहीँ, फिर हमेँ क्या आवश्यकता है कि उस से बोलैँ। दो चार बार जब मैँ ने ऐसा सुना, तो मुझे बहुत दुःख हुआ और अच्छा खाना, अच्छे कपड़े पहरना, सिर मेँ तेल डालना, अच्छे पलंग मेँ सुख से सोना, हँसना ये सब और भी कष्ट कय थे। मैँ यही चाहती थी कि घर भर का काम जहाँ तक मुझ से हो सके, मैँ ही किया करूँ।

सब का प्यार वैसा ही बना रहा। मैँ जानती थी, कि स्वामी की अपमान की हुई स्त्री का कोई सन्मान नहीँ करता और स्वामी जी मेरा किया हुआ काम पसन्द नहीँ करते थे।

प्यारी बहिनो ! होते होते दो वर्ष इसी भाँति व्यतीत हुए। स्वामी का मन वैसा ही रहा। अब मुझे आशा न रही कि मैँ भी अन्य बहिनोँ की तरह आनन्द प्राप्त करूँगी। हाल यह रहा कि जहाँ कहीँ स्वामी के जूते या खड़ाऊँ के दर्शन होते, वहीँ बड़े चाव से उसे उठा कर हृदय से लगा लेती और सादर प्रणाम करती और डरती सी रहती कि कहीँ कोई देख न ले। या स्वामी ही को मालूम न हो जाय, नहीँ तो मुझ मूर्ख समझ कर और भी घृणा करने लगैँगे। यह सब जान कर भी मुझ से न रहा जाता था। जब उनकी कमीज धोबी को देने को उतारी जाती थी, तो मैँ छिपा कर अपने कमरे मेँ ले जाती थी और उसकी बाँह अपने गले मेँ डाल कर और दूसरी कुरसी पर रख कर उस मेँ अबीर गुलाल लगाया करती थी। जगत पिता ईश्वर से सविनय प्रार्थना करती। मैँ सोचती, कि कब ऐसा समय होगा, कि जिसकी मैँ नकल कर रही हूँ, वह सत्य ही मुझे प्राप्त होगा। इतना सब कुछ करने पर भी स्वामी जी कभी ध्यान नहीँ देते थे। एक समय की बात है कि जीवनेश्वर के ओढ़ने का दुशाला भाग्यवश प्राप्त हुआ। मैँ बड़े यत्न से उसे अपने पास रखती और रात को ओढ़ती थी। जब मैँ उसे ओढ़ती तो, जो तेल स्वयम् बनाया हुआ जीवनाधीश लगाते थे उसकी सुन्दर मनोहर सुगन्ध आती थी। उस सुगंध की लहर विना प्राणप्यारे के हृदय के जलाने वाली अग्निकी लपट के समान जान पड़ती थी। यह जान कर कि यह प्राणेश्वर के समीप रहने वाला दुशाला है, उसे कभी छाती से लगाती, कभी मुख पर डालती, कभी नाक के पास लाकर ख़ूब ही ज़ोर से स्वास खीँच कर सूघंती और अनेकोँ घटना सोच सोच कर घंटोँ रोया करती और रोते रोते ही न

मालूम किस समय नीँद आ जाती थी। नेत्रोँ से इतने आँसू निकलते थे, कि आँख के नीचे का बिछौना भीग जाता था। इन्हीँ दिनोँ मेरे पिता जी मुझे बिदा कराने आये। अब मैँ इस दुविधा मैँ पड़ी कि मेरा पिता जी के यहाँ जाना स्वामी जी अच्छा समझेँगे या बुरा। जो मुझे मालूम हो जाय कि स्वामी जी को भेजना स्वीकार नहीँ है, तो मैँ स्वयम् ही पिता जी से कह दूँ, कि मुझे यहीँ अच्छा लगता है, मैँ अभी न चलूँगी। हे देश बहिनो! मैँने जानने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु मुझे पता न लगा कि उनके मन मैँ क्या है। लाचार मुझे जाना ही पड़ा।

अब तो घर मैँ आते जाते समय जो दर्शनोँ का सौभाग्य प्राप्त होता था वह भी बन्द हो गया। भाई बहिनोँ से वार्तालाप करते समय सुन्दर मधुर बचन जो सुनने को मिलते थे, वे भी नहीँ मिलते। रात दिन यही चिन्ता रूपी घुन मुझे लगा रहता। माता पिता भावजेँ मुझे देख देखकर अति ही खेदित रहा करतीँ। मैँने सोचा कि यहाँ किन किन नियमोँ से कालक्षेप करना चाहिए। यदि मैँ पलंग पर न सोऊँगी, सफ़ेद चादर न बिछाऊँगी, दो वक्त भोजन न करूँगी, मेवा मिष्ठान्न का परित्याग करूँगी, तो मेरे माता पिता मुझे सब सुखोँ से रहित देखकर अत्यन्त दुःखित होँगे। मैँने अपनी माता जी से कहा कि माता जी मैँ कार्तिक नहाऊँगी और इन इन नियमोँ का पालन करूँगी। माता जी मुझे आज्ञा नहीँ देती थीँ और कहती थीँ, "नहीँ नहीँ बेटी! तुम्हारी अवस्था अभी बहुत छोटी है, अभी से ऐसा कठिन व्रत मत धारण करो।" पर मैँने हठ पूर्वक आज्ञा लेही ली और मैँ उन्हीँ नियमोँ से रहने लगी और एक पत्रिका लिख कर स्वामी जी के पास डाक द्वारा भेजी—

'मेरे प्यारे स्वामी,

प्रणाम,

हे नाथ! मैँ आपके चरणोँ की दासी हूँ। क्योँ मुझे भुला रक्खा है। मैँने कौन अपराध किया, जो मुझसे सदैव दूर रहते हो। समीप रहने वाले दूर शोभा नहीँ देते। जो मुझसे अनजान मैँ चूक हुई हो, कृपाकर उसे क्षमा कीजिए। हे नाथ! दासी को न भूलिए। यह वियोग मुझ से नहीँ सहा जाता। आज दिन पर्यन्त मैँने कोई ऐसा अपनी जान मैँ अपराध नहीँ किया, जो आप की अप्रसन्नता का कारण हुआ हो। स्त्री का भूषण लज्जा है। वह भी मैँने नहीँ त्यागी। हे प्राणेश्वर, स्त्री का मुख्य धर्म पति सेवा है, उससे भी मैँ कभी विमुख नहीँ होती। हे स्वामी जी, कुछ काल मैँ लोग मुझे वृथा दोष लगावेँगे। माता पिता को छोड़ कर आपकी शरण गही है। अब आप का कोप भला मैँ दुखिया कैसे सहूँ और किस से अपना दुःख कहूँ। जैसे चातक सर्व जल की आशा छोड़ केवल स्वाति बूँद

के भरोसे जीता है, पपीहा केवल मेघ की आशा रखता है, उसी प्रकार मैं सब को छोड़ कर केवल आप की ही आशा करती हूँ, क्योंकि माता पिता ने मुझे आपके अर्पण कर दिया। अब मैं आप की हो चुकी। आपके तिरस्कार करने से मैं सब की दृष्टि से गिर जाऊँगी। देखिए, अनुसूया जी ने भी श्री जानकी जी को यही उपदेश दिया था—

नारी के पति देव वेद नित यही बखानै।
ब्रह्मा विष्णु महेश नारि पति ही को मानै॥

स्त्री के लिए सब से उत्तम पति को बस में करने का वशीकरण मंत्र पति-भक्ति ही है। इसका मैं प्रति दिन अनुष्ठान करती हूँ। परन्तु न जाने क्या प्रारब्ध में लिखा है, जो कार्य्यसिद्धि नहीं होता है। आर्यपुत्र स्त्री पति के निकट ही शोभा होती है।

बसौ आप मम हृदय में, यासों नहीं वियोग।
नैन दुखी दिन रैन हैं, चाहत प्रीतम योग॥
करौं निवेदन, दीन हूँ, क्षमा करो श्रीमंत।
अधिक विनय अब का लिखौं न्याय करो भगवंत॥

अधिक क्या लिखूँ आँसुओं की झड़ी अब लिखने नहीं देती। आप की दासी,

मनोहर बाई, जैपुर"

* * *

मैं अपने एकान्त के कमरे में खिड़की खोल कर कौच पर पड़ी पड़ी शकुन्तला नाटक पढ़ पढ़ कर रो रही थी कि मेरी माता जी ने मुझे एक पत्र दिया। मैं माता जी को देख कर शीघ्र ही नेत्रधारा पोंछ कर खड़ी हो गई। हे प्यारी बहिनो, मुझे आशा न थी कि लक्ष्मीपति विष्णु भगवान मेरे भी दिन फेरेंगे। भगवान की कृपा से अब विधि के अंक पलट गये। स्वामी जी का प्रेम पत्र हस्तगत हुआ। उसमें यह लिखा था—

"प्रिये,

शोक मत करो! दुःख का समय गया। खुश हो जाओ।" इतना पढ़ते ही नेत्रों के सामने बिजली का सा प्रकाश हो गया। अन्धकार दूर हो गया। बहिनो, वह दिन वह समय बहुत ही शुभ फल का देने वाला था, जिस समय मैं पत्र लिखने बैठी थी, जिसके उत्तर में प्राणनाथ के कर कमल से अंकित हुआ यह पत्र प्राप्त हुआ। वह आनन्द व सुख किस प्रकार मैं आप के सन्मुख प्रगट करूँ। मैं कहने लगी 'हे ईश्वर! क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ या जाग रही हूँ! हे दीन दुःख भंजन, क्या आप मेरा दुःख अब हरा चाहते हैं! क्या पत्थर में कहीं दूब जमती है! यह क्या आश्चर्यजनक घटना दिखाई पड़ रही है!' बहुत देर तक सहमी सी खड़ी रही। फिर यह जान कर कि प्यारे पति के चरण कमलों में सच्चा प्रेम देख कर त्रिभुवन नाथ ने मुझ दुखिया को कृपा कटाक्ष से देखा है, मैं धीरज धर कर ईश्वर को शतशः धन्यवाद दे कर उन्हीं चरण कमलों का ध्यान करने लगी।

कुछ ही दिनों में कमल रूपी हृदय को खिलाने वाले भास्कर भगवान के समान पति देव के दर्शन हुए, और फिर मैं ने पिता गृह से ससुर गृह में प्रवेश किया। मेरी जिठानी जी ने भोजन बनाया। वह मौसम गरमी का था। कमरे की छत्त पर ठंडी २ हवा चल रही थी। गगन मंडल में चन्द्र-देव दरबार सहित उपस्थित ह रहे थे। बहिनो, वह समय बहुत ही सुहावना था। जिठानी जी ने मुझे आज्ञा दी, कि देवर राजा छत पर गये हैं। शीघ्र ही भोजन ले जाओ। मैं उनकी आज्ञानुसार परोसी हुई थाली लेकर गई। मेरा दिल धड़कता जाता था। थाली देकर बड़ा साहस कर मैं पूँछने लग कि क्या मिश्री इलायची मलाई में अभी मिला दूँ। इस बात के पूँछने पर बड़े प्यार से उन्होंने मेरे गले में हाथ डाल कर कहा, "नहीं, रहने दो, मिला लूंगा। अब तुम कष्ट न करो। मेरे पीछे तुमको बहुत दुःख उठाना पड़ा। अब आओ, और मेरे साथ भोजन करो।" मैं हाथ जोड़ कर बोली, कि आपके पीछे सदा खाती हूँ उसी प्रकार आज भी दासी जूठन खायगी। पर स्वामी जी नहीं माने और अपने कोमल करों से मुझे खिलाया। इस समय जो मुझे आनन्द हुआ वह पाठि-काएँ स्वयं ही विचार लें। ईश्वर करे पढ़ने वालियों को भी यही सुख प्राप्त हो।

देखो बहिनो, परिश्रम निष्फल नहीं जाता। धीरज धरे अपना यथार्थ कार्य करते रहने से मन की आशा पूर्ण होती ही है। जल्दी में घबड़ाकर काम छोड़ देने से कोई लाभ नहीं होता। मुझे बहुत आश्चर्य होता है, जब मैं अपनी बहिनों को अपने स्वामी से वाद विवाद करते बात बात पर झगड़ा करते देखती हूं। मैं आशा करती हूँ कि मेरा हाल सुन कर थोड़े से अपराध में इतना भारी कष्ट उठाने पर आनन्द की प्राप्ति होती देख, मेरी सभी बहिनें धीरज को हृदय में स्थान देंगी और अपने धर्म वा स्वामी में सच्चा प्रेम रखती हुई प्राचीन बहिनों की संख्या को बढ़ावेंगी, और असीम सुख की भागी होंगी।

—मनोहर बाई

मूर्ख अबला

(१)

किसी शहर में एक सेठजी
थे दौलत के खास गुलाम।
भरे हुए थे चंचलता से
चंचलमल था उनका नाम॥

पत्नी उन की कलह कारिणी
विष की बुझी कटारी थी।
कुमति भरी औगुण की मूरत
विधि ने खूब सुधारी थी॥

(२)

हुए पुत्र कन्या बहुतेरे
बड़ा कष्ट हर साल सहा

लेकिन किसी पाप के फल से
एक पुत्र भी नहीं रहा ॥
यत्न अनेकों किये जन्म भर
रेख कर्म की कटी नहीं।
पुत्रवान होने की आशा
लेकिन दिल से हटी नहीं ॥

(३)

खोकर भी धन धर्म जगत में
गये काल की गति से हार।
दत्तक पुत्र गोद लने का
लालाजी ने किया विचार ॥
झूंठ बोल कर धन जोड़ा था
वही अन्त में खर्च किया।
पूरे दाम बाप को देकर
कूड़ामल को गोद लिया ॥

(४)

उसे देखकर सेठानी की नस
नस तनकी तड़क गई।
पिछले पुत्रशोक की ज्वाला
दूनी दिल में भड़क गई ॥
उसी वक्त से भाँति भाँति के
पल पल बढ़ने लगे विकार।
बुद्धि हीन होने से बिलकुल
रुके न उस के बुरे विचार ॥

(५)

जाते थे जब कहीं सेठजी तब
वह अवसर पाती थी।
कूड़ामल का हाथ पकड़ कर
खूब उसे धमकाती थी ॥

पत्थर ईंट खाट का पाया
जो कुछ भी पा जाती थी।
हड्डी उसकी कूट कूट कर
अपनी आग बुझाती थी ॥

(६)

हृदय विदारक दृश्य देखकर
जो कोई समझाता था।
अपना पिंड छुड़ाना उस को
महा कठिन होजाता था ॥
इसी सबब से सभ्य पड़ोसी
अक्सर आँख चुराते थे।
ऐसे समय निकल कर घर से
बाहर को उठ जाते थे ॥

(७)

इसी भाँति से अधम अकेली
घंटों मार लगाती थी।
हथिनी के मानिन्द पेट पर
दोनों पैर अड़ाती थी ॥
फूट फूट कर बदन, नसों से
गरम रक्त बह जाता था।
कर्म भोग करने को केवल
प्राण कहीं रह जाता था ॥

८

इन बातों पर अगर सेठजी
कड़ी आँख दिखलाते थे।
पिटें नहीं तो सेठानी की
लाखों गाली खाते थे ॥
बालू के मानिन्द फैलकर
घंटों शोर मचाती थी।

विष खाकर के मर जाने का
रोकर डर दिखलाती थी॥

(९)

इसी सबब से पातक उसका
नहीं किसी से रुकता था।
कूड़ामल की बुरी दशा पर
कोई कभी न झुकता था॥
निकल गया आँखों का पानी
आखिर चिकना घड़ा हुआ।
सहता हुआ मार मन मानी
चन्द रोज में बड़ा हुआ॥

(१०)

पापों से पर धन हरने में
चंचलमल से द्विगुण हुआ।
चुगली और चबाई चोरी
सब कामों में निपुण हुआ॥
झेल चुके थे यदपि मुसीबत
चंचलमलजी बहुत कड़ी।
तोभी हटी न उनके दिल से
पुत्र-वधू की चाह बड़ी॥

(११)

माल मुफ्त का खानेवाले
इधर उधर से लगे दलाल।
लाँबी चौड़ी बातें कर के
फंसा लिया पंजे में हाल॥
धन को देख रीझने वाले
मूरख निरे भैंस के बाप।
कूड़ामल को देकर कन्या
गिरे कुँए में अपने आप॥

(१२)

धूम धड़का हुआ ब्याह में
भेद भाव सब छूट गया।
पराधीन निर्दोष जीव का
भाग सरासर फूट गया॥
यद्यपि वह गुणवती बालिका
ठीक राह पर चलती थी।
लेकिन तो भी सास कर्कशा
उस के ऊपर जलती थी॥

(१३)

खाते पीते चलते फिरते
लाखों बात सुनाती थी।
छोटे छोटे ऐब छाँट कर
तृण का ताड़ बनाती थी॥
कूड़ामलको सिखा सिखा कर
तन की खाल खिचाती थी।
भाँति भाँति से उस के दिल पर
खुद भी छुरी चलाती थी॥

(१४)

कभी कभी तो तीनों मिलकर
घटों तान उड़ाते थे।
उस अबला के कोमल तन पर
अपना बल अजमाते थे॥
अगर कभी कूड़ामल उस पर
तनिक दया दिखलाता था।
करता हुआ प्रेम की बातें
सन्मुख पकड़ा जाता था॥

(१५)

तो वह अपने किये कर्म का
उसी समय फल पाता था।

सेठानी के कर कमलोँ का
मधुर स्वाद पा जाता था ॥
इसी तरह वह दीन बालिका
दिलमँ होती हुई अधीर ।
पाती रही कष्ट बहुतेरे मगर
किसी से कही न पीर ॥

(१६)

एक रोज पीहर मँ जाकर
माता से सब हाल कहा ।
सास ससुर स्वामी का सारा
कपट भरा जंजाल कहा ॥
सुन कर उन की बदमाशी को
सब लोगोँ ने जान लिया ।
चंचलमल के घर कन्या को
नहीँ भेजना ठान लिया ॥

(१७)

इस घटना से चंचल मन का
खून क्रोध से पिघल गया ।
रहा सहा भी ज्ञान एक दम
उन के दिल से निकल गया ॥
चंद रोज़ के बाद कहीँ पर
सब लोगोँ की थी ज्यौनार ।
उसी समय पर पिता पुत्र ने
पाया अवसर भली प्रकार ॥

(१८)

सजकर साज क्रोध के ऊपर
दोनोँ सुभट सवार हुए ।
मार पीटकर बरजोरी से
लाने को तैयार हुए ॥

दैव योग से एक बालिका
निकली वहाँ किसी के संग ।
उसे देखकर चंचलमल के
बदल गया चेहरे का रंग ॥

(१९)

धन के मद मँ अंधे होकर
बिलकुल किया विचार नहीँ ।
कूड़ामल की बहू जानकर
पकड़ा उसका हाथ वहीँ ॥
चोटी पकड़ घसीटा उसको
खूब लगी दोनोँ की दून ।
हाहा करने लगी बालिका
बहने लगा वदन से खून ॥

(२०)

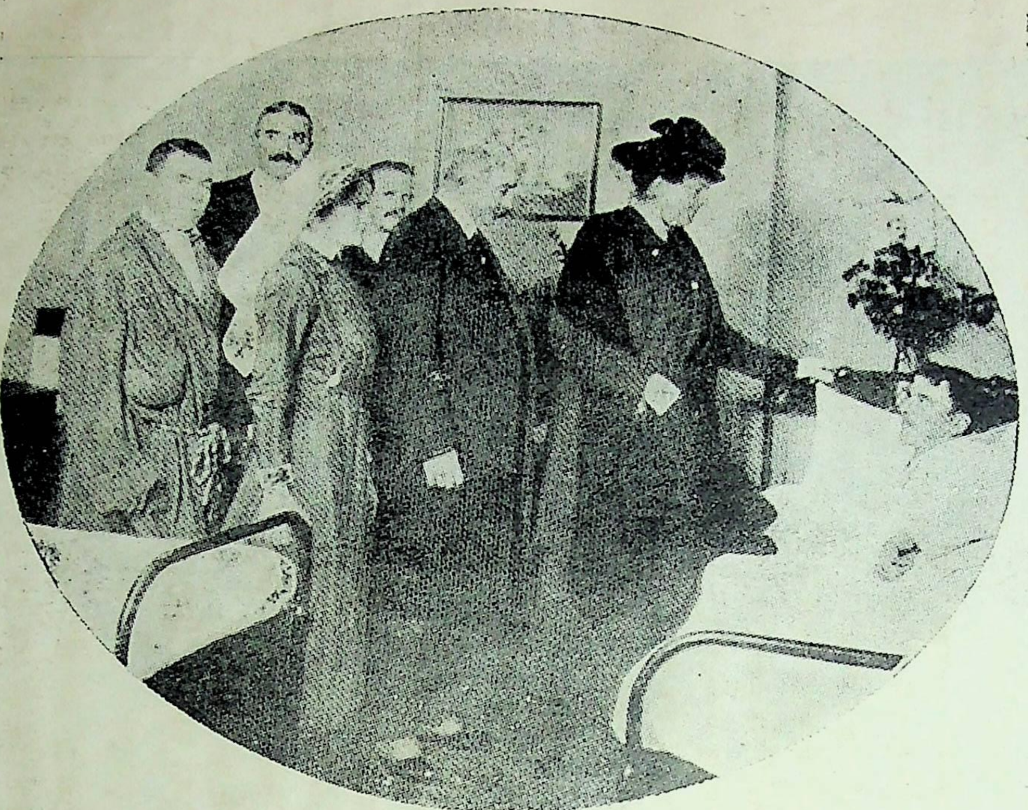
किन शब्दोँ मँ बे-शरमी का
पूरा हाल बताऊँ मैँ ।
उस मोके का चित्र खीँच कर
किस किस को दिखलाऊँ मैँ ॥
बहुत देर तक उस अबला पर
चंचल मन का चला कुठार ।
बना नहीँ जब यत्न किसी से
तब ईश्वर ने सुनी पुकार ॥

(२१)

हाहाकार हुआ बहुतेरा
खूब सड़क पर धूम हुई ।
उस अबला के घर वालोँ को
यह घटना मालूम हुई ॥
आये वहाँ दौड़कर जल्दी
चार सिपाही लेकर साथ ।



युद्ध-प्रिय जर्मनी में फ़ौजीपन इतना अधिक हो गया है कि राजघराने की बहुत सी स्त्रियाँ भी फ़ौज में भाग लेती हैं। देखो, इस चित्र में क़ैसर की पुत्री और पुत्र-वधू सैनिक वेष में खड़ी हैं।



बेल्जियम की रानी घायलों की देखभाल कर रही हैं।

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग।

उचित कर्म का फल देने को
पिता पुत्र का पकड़ा हाथ ॥

(२२)

मिला जुल्म का खूब नतीजा
करने लगे छटी की याद ।
भली भाँति से नीच कर्म का
पिता पुत्र ने पाया स्वाद ॥
पातक भरे कलंकित मुख पर
पड़े चनकटे नम्बरवार ।
दर्शक भी निन्दा करते थे
कोटि कोटि देकर धिक्कार ॥

(२३)

खुला हुआ है यही कायदा
साफ समझ में आता है ।
जैसा कर्म करो फल उसका
वैसाही मिल जाता है ॥
कस कर मुश्कें पिता पुत्र की
हवालात में बन्द किया ।
समझ मामले को मुंशी ने
दोनों का इजहार लिया ॥

(२४)

गड़े हुए धरती में धन की
आजादी से लूट हुई ।
टके टके को बिकी अशरफी
सारे घर की लूट हुई ॥
फूटी कौड़ी जिसके कर से
नहीं किसी ने पाई थी ।
अधम प्राण के लिए उसी ने
धन की नदी बहाई थी ॥

(२५)

लेकिन धनसे नहीं पाप का
अंत कभी हो सकता है ।
सुख से भरी नींद में पापी
कभी नहीं सो सकता है ॥
चंचलमल के घोर पाप का
पता पुलिस ने लगा लिया ।
जाँच आखिरी पूरी करके
सेशन को चालान किया ॥

(२६)

सरगर्मी से हुई पैरवी
धन दौलत की छोड़ी ढील ।
घर की चीजें बेच बेचकर
आधे दर्जन किये वकील ॥
सुन कर सारी मिसल शुरू से
मजिस्ट्रेट ने किया विचार ।
चंचलमल से कहा उन्होंने
ऐसे जीवन को धिक्कार ॥

(२७)

पराधीन दुखियों के दिल को
जो कोई दुख देता है ।
अपने सर्वनाश का कारण
मानों वह कर लेता है ॥
बिना कसूर दीन अबला को
तुमने बहुत सताया है ।
उसी पाप का बुरा नतीजा
विधि ने आज दिखाया है ॥

(२८)

मजिस्ट्रेट के किये हुक्म की
दर्जे दर्जे हुई अपील।
नहीं सफलता मिली कहीं भी
कोशिश करके थके वकील॥
आखिर लाला चंचलमल को
कारागृह में ठूँस दिया।
लोहे के भूषण पहिनाकर
उचित मान सन्मान किया॥

(२९)

सेठानी का उसी रात से
चला नहीं कुछ पता कहीं।
कूड़ामल ने वैर भाव से
पूछी उसकी बात नहीं॥
सोच लीजिये प्यारे पाठक!
कैसा बुरा विषाद हुआ।
अबला के मूरख रहने से
सारा घर बरबाद हुआ॥

—छेदा लाल

(जयाजी प्रताप)

पितृभक्त पुत्री जहानआरा



मारे यहाँ कन्या का जन्म सुन कर प्रायः लोगों का मुँह फीका पड़ जाता है। हमारी समाज में बहुधा कन्याओं के लालन पालन और शिक्षा की ओर भी ध्यान कम दिया जाता है। इतने पर भी आश्चर्य की बात है, कि बहुत सी कन्याएँ पुत्र की अपेक्षा अपने माता-पिता पर अधिक प्रेम रखने वाली निकलती हैं। विवाह होने के पश्चात गरीब घर की बेटी बड़े घर में जाने पर भी अपने माता-पिता की झोपड़ी के लिए दो आँसू बहाती है। और जब मायके में आती है तब वहाँ की सूखी रूखी रोटी भी वह बड़े आनन्द से खाती है। ससुराल में जो पलँग पर से धरती पर पैर भी नहीं रखती वही पुत्री अपने माता-पिता के घर में रोटी पकाने ही का काम नहीं, वरन बर्तन माजने और चौका देने का काम भी बड़े उत्साह से करती है। वह जो आनन्द माँयके में मानती है वह ससुराल में नहीं मानती। ससुराल वालों की प्रीति भय सहित प्रीति है, परन्तु मायके के लोगों पर उसका जो प्रेम है, स्वाभाविक है। यदि कोई गरीब मा-बाप का पुत्र बड़े पद पर पहुँचता है, तो वह अपने नातेदारों अथवा गाँव के लोगों से खुल कर बात करने में भी अपनी हतक समझता है। परन्तु वैसी ही स्थिति में पड़ने से गरीब मा-बाप की बेटी अपने गाँव की छोटी से छोटी जाति की स्त्री के साथ बात चीत करने का या मिलने का मौका पाकर अपना अहो भाग्य मानती है।

प्रायः देखने में आता है कि बहुत सी लड़कियाँ जो दुर्भाग्य वश विधवा हो जाती हैं, वह अपने पिता-गृह में वास

करती हैं, और अपना शेष जीवन माता पिता की सेवा में व्यतीत करती हैं। जिन पुत्रों को उनके माता पिता बड़ी देख भाल के साथ पढ़ा लिखा कर बड़ा करते हैं उनमें से कितने कृतघ्नी तो जवानी के मद में पड़ कर उनको कुछ भी नहीं मानते और व्यवहार भी ऐसा करते हैं कि जिससे उनके आत्मा पर वज्राघात होता है। कोई कोई तो अपने जीवन व्यवहार में इतने मस्त रहते हैं कि उन बेचारों को अपने मा-बाप की सेवा करने का अवकाश ही नहीं मिलता। ऐसे अवसर पर उनकी विधवा पुत्रियाँ उनकी अच्छी सेवा करती हैं और उनके किये हुए श्रम का बदला भली प्रकार से देती हैं।

इसका एक उत्तम और शिक्षा-पूर्ण दृष्टान्त अपनी स्त्री पर अगाध प्रेम रखने वाले और उसके स्मारक में करोड़ों रुपये खर्च कर हिन्दुस्तान में प्राचीन शिल्पकला का अनुपम उदाहरण और संसार भर की अद्वितीय इमारत ताज महल के बनवाने वाले मुग़ल सम्राट शाहजहाँ की प्यारी पुत्री जहानआरा है।

जिस घटना का वर्णन हम नीचे करते हैं। वह शहाजहाँ बादशाह के बुढ़ापे के समय की है।

इतने बड़े मुग़ल राज्य के बादशाह होते हुए भी जो जो दुःख उस बेचारे शाहजहाँ को अपने बुढ़ापे में सहने पड़े उनको सुन कर हृदय विदीर्ण होता है। काल की गति विचित्र है। जो एक समय लाखों पर दया दिखाने में समर्थ था आज वह हमारी दया का पात्र बन रहा है। 'बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा'।

शाहजहाँ की बीमारी का समाचार पाकर उसके चारों पुत्र आपस मे राज्य गद्दी के लिए लड़ने लगे। यह दुखदाई लड़ाई ५ वर्ष तक होती रही, परन्तु अन्त में औरंगज़ेब विजयी हुआ। तख्त-ताऊस (मयूरासन) लेने के लिए उसने किले में प्रवेश किया। वृद्ध पिता की यह इच्छा थी कि उसके जीते जी उसके प्यारे मयूरासन पर कोई न बैठे। यह मयूरासन इतना सुन्दर और बहुमूल्य था कि वैसे आसन पर विराजने का सौभाग्य शायद किसी भी देश के बादशाह को प्राप्त न हुआ होगा। जब जब शाहजहाँ को मालूम हुआ कि औरंगज़ेब उसका तख्त लेने के लिए आ रहा है तब वह बेचारा, बुढ़ापे और बीमारी से अशक्त तो था ही, दुष्ट औरंगज़ेब के भय से मूर्छित हो गया। उस समय जहान आरा वहीं पर मौजूद थी। उसने अपने भाई को धमका कर उसे बहुत कुछ लज्जा-जनक बचन कहे, परन्तु औरंगज़ेब उसकी काहे को मानने वाला था। बादशाह को एक पलंग पर रखवा कर एक दूसरे मकान म भिजवा दिया। तख्त को अपने अधीन कर लिया और उस पर सख़्त पहरा बिठा दिया। औरंगज़ेब ने जहानआरा से पूछा कि वह

क्या चाहती है। जहानआरा ने कहा "मैं अपना शेष जीवन अपने परम पूज्य प्यारे पिता के साथ ही व्यतीत करूँगी। यही मेरी अभिलाषा है।"

उसी दिन से जहानआरा ने राजकन्या का वेश छोड़ दिया और साधारण दासी के वस्त्र पहिन लिए। उसके पास जो बहुमूल्य वस्त्र आभूषण और जवाहरात थे। उन्हें ग़रीबों को दे डालने का संकल्प कर दिया, और जिस घर में वह रहती थी। उस में भोग विलास की कोई भी सामग्री उसने न रहने दी। उसको यह प्रतीत हो गया कि सारे संसार के सुख 'चार दिनों की चाँदनी हैं'। वह सोचती—

"मेर पिता जो एक समय पूर्णरीति से वैभवशाली सम्राट थे, आज वही ताज़ी हवा के लिए भी तरस रहे हैं! उनकी शुश्रूषा के लिए आज मेरे सिवाय कोई भी हाज़िर नहीं है। बाहर तो यह धूमधाम मच रही है, पर मेरे पिता के लिए तो केवल यह अन्धकारमय कोठड़ी ही है।"*

* कहां तो वैभवप्रिय बादशाह शाहजहां के महल और कहां यह आगरे के किले की कोठड़ी जिसमें वह कैद था, कहां उसके बादशाही ठाठ बाट और कहां उसकी यह कंगाल-स्थिति, एक ओर तो उसका बुढ़ापा और दूसरी ओर यह कारागृह-वास और उसकी तकलीफें—इन बातों के स्मरणमात्र से ही कठोर से कठोर हृदय पर असर पड़े बिना नहीं रहता।

क़ैद होने के बाद वह सात वर्ष तक जीवित रहा। अरे, जीवित क्या रहा, इस जीने से तो मर जाता तो अच्छा होता। इस बीच में उसकी पितृ-भक्ता पुत्री ने बड़े मान और प्रेम सहित उसकी सेवा की। अब वह अपने को शाहज़ादी नहीं बरन एक आफ़त के मारे बुड्ढे क़ैदी की अनाथ बालिका समझती थी। और उसी दर्जे के गरीब और निराधार मनुष्यों पर अधिक प्रेम रखने लगी। बहुत समय तक तो औरंगजेब ने जहानआरा पर बहुत कड़ी चौकसी रखी थी, उसके रहन सहन की खबर देने के लिए उसने जासूस नियत कर रक्खे थे, क्योंकि उसे इस बात का बड़ा भय था कि कहीं बाप बेटी मिल कर कोई उपद्रव न मचावें। सच है "जो जैसा हैता है वैसा ही वह सब को समझता है।"

पर अधिक काल बीत जाने पर जब औरंगजेब ने देखा कि वृद्ध और रोग पीड़ित बादशाह में कुछ भी करने कराने की शक्ति नहीं है और जहानआरा की भी सांसारिक वैभव पाने की इच्छा नहीं है तब उसने अपनी बहिन को स्वतन्त्र कर दिया।

जहानआरा दीन दुखियाओं पर बहुत दया करती थी और अपने प्यारे पिता के दुःख के दिनों तो उसकी वैराग्य-वृत्ति अधिक बढ़ गई थी। पिता के मरने के बाद वह अधिक दिनों तक न जी सकी। जब

उसका उठना बैठना बंद हो गया और खबर मिलने पर औरंगज़ेब जब उसकी मुलाकात के लिए गया तो देखता क्या है, कि उसकी ही बहिन—शाहजहाँ की प्यारी पुत्री—जिसकी आज्ञा में एक समय सैकड़ों दासियाँ हाज़िर रहती थीं वहीं आज एक साधारण खाट पर पड़ी है; जिसके मामूली सिरके दर्द में हकीमों के झुंड के झुंड इकट्ठे हो जाते थे वही राजकुमारी आज असह्य कष्ट होते हुए भी चुपचाप अकेली आँखें मीचे हुए अपने प्यारे पिता के पास जाने की प्रतीक्षा कर रही है। यह दृश्य देख औरंगज़ेब जैसे कठोर हृदय की भी आँखों में आँसू आ गये। उसने बहिन के पास बैठ कर करुण शब्दों से उसे सचेत किया। जहानआरा ने आँखें खोल कर प्रेम भरी दृष्टि से भाई की ओर देखा और एक पत्र दिया। उसे औरंगज़ेब ने बड़े आदर से ले लिया और अपने अपराधों की क्षमा माँगी। जहानआरा ने आकाश की ओर दृष्टि फेरी अर्थात् परमात्मा सब को क्षमा करता है। ऐसा समझा कर परमात्मा के ही ध्यान में उसके पवित्र आत्मा ने प्रभु के दरबार की राह ली। जहानआरा ने औरंगज़ेब को जो पत्र दिया था उसमें लिखा था कि:—

बग़ैर सब्ज़ः नपोशद कसे मज़ार मरा।
कि क़ब्र पोश ग़रीबां हमीं गयाह बस अस्त॥

"मेरी क़ब्र के ऊपर सिवाय घास के और किसी तरह का आच्छादन न कराना क्योंकि ग़रीबों की क़ब्र के लिए यही ढक्कन है।"

जहानआरा की ऐसी दृढ़ इच्छा थी कि मेरी माता के लिए जैसा सुन्दर महल बनवाया गया और दूसरी शाहज़ादियों के लिए जैसे बड़े बड़े मक़बरे बनाये जा रहे हैं वैसे मेरे लिए न बनाए जायँ। उसने अपना अंत का समय बड़ी ग़रीबी से काटा था, इस लिए मरने पर भी उसका शरीर ग़रीबों की सी क़ब्र में रखा जाय और उसके ऊपर घास का ही आच्छादन रहे, यही उसके हृदय का भाव था।

धन्य भारत पुत्री! धन्य!!

—गंगाशंकर त्रिवेदी

स्त्रियों के रोग

आज कल स्त्रियाँ अधिकतर किसी न किसी रोग से पीड़ित रहती हैं और आज भारत के अभाग्य से स्त्रियों की कुछ भी परवाह नहीं की जाती है। और दूसरे वर्तमान काल में औषध द्वारा रोगों की चिकित्सा इतनी महँगी हो गई है और होती जाती है, कि सधारण मनुष्यों को इस से लाभ प्राप्त करना कठिन हो गया है। जर्मनी के निवासी मिस्टर लुई कुहनी के मति के अनुसार सब रोग एक ही कारण से अर्थात् विजातीय

द्रव्य या हानिकारक द्रव्य के संचय से उत्पन्न होते हैं और सब रोग उनकी निकाली हुई चिकित्सा के स्नानों से जिनका वर्णन आगे किया गया है, दूर किये जा सकते हैं। हम उनको कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि जिनके बताये स्नानों ही से और परहेज़ से रहने से हमारी माताएँ और बहिनें अपने तमाम रोगों से छुटकारा पा सकती हैं। हमें आशा है स्त्रियाँ इस चिकित्सा को सहर्ष ग्रहण करेंगी। क्योंकि इनको इसमें किसीसे दिखाने भलाने या परीक्षा कराने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार की परीक्षाएँ किसी स्त्री को भी भली नहीं लगतीं। मैं पहिलें इसके कि स्त्रियों के मुख्य रोगों का वर्णन करूँ, मिस्टर लुई कुहनी के निकाले हुए स्नानों का वर्णन करना चाहता हूँ। फिर बाद को उनके मुख्य मुख्य रोगों का वर्णन किया जावेगा। आशा करता हूँ कि हमारी माताएँ और बहिनें ध्यान से पढ़ेंगी और इसका प्रचार करने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न करेंगी। अवश्य ही इन स्नानों का प्रभाव आश्चर्य जनक है। मेरे साथ एक मेरे मित्र रहते हैं, जो कि गत वर्ष प्रमेह रोग से पीड़ित रहा करते थे और अनेक वैद्यों और डाक्टरों से चिकित्सा करवाई, किन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। वे बहुत ही निर्बल हो गये थे और उनको बी० ए० की परीक्षा में सम्मिलित होना था, किन्तु वे उठने के भी योग्य नहीं थे। परीक्षा में सम्मिलित कैसे होते। आखिरकार किसी ने उनको मिस्टर लुई कुहनी के स्नानों की विधि बतलाई। उन्हों ने यथाविधि से स्नान किया और दो तीन मास के अनन्तर वे अच्छे हो गये और परीक्षा में भी सम्मिलित हुए और उत्तीर्ण भी हो गये। इन स्नानों के और परहेज से रहने ही के कारण उनका स्वास्थ भी अच्छा हो गया।

मेरी निकाली हुई चिकित्सा के स्नान

(मेरी और मैं से आशय मिस्टर लुई कुहनी से है। और इसमें स्नानों के नाम बहुधा अंग्रेजो के ही लिखे गये हैं। विस्तार पूर्वक हर एक स्नान का हाल इस अध्याय में दिया गया है। अंग्रेजी नामों से पाठिकाएँ पृथक पृथक स्नान को विचार में लावें)

मेरे स्नान चार प्रकार के हैं:—(१) फ्रिक्शन हिपबाथ्ज़ (Friction hip-baths) अर्थात् कटि वा पेड़ू के स्नान। (२) फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ्ज़ Friction sitz-baths । (३) स्टीम बाथ्ज़ Steam-baths अर्थात् भाप के स्नान। (४) सन बाथ्ज़ Sun-baths अर्थात् धूप के स्नान या खास तरीके से शरीर को या उसके किसी भाग को धूप देना।

फ्रिक्शन हिप बाथ्ज़

यह स्नान निम्न लिखित रीति से

किया जाता है। स्नान करने का एक टब जल से इतना भरा जाता है, कि जल नाभी और जंघों तक पहुँचे। इसका टब खास तरह का होता है। यदि ऐसा टब न मिल सकता हो, तो मामूली टब जो बाजार में मिलते हैं, या मट्टी के पक्के हौदे से भी काम लिया जा सकता है। जल की गरमी ६८ और ८४ दर्जे फहरन हाइट थर्मामीटर के दर्मियान होनी चाहिए। कुएँ का ताजा जल प्रत्येक ऋतु में इस कार्य के लिए ठीक होता है। वह लगभग इन्हीं दर्जों के बीच का होता है। स्नान करने वाला व्यक्ति इस हौदे में वस्त्र रहित लेट कर विना ठहरे हुए और जल्दी जल्दी कुल पेड़ू को नाभी से नीचे की ओर को और एक कोख से दूसरी कोख तक किसी मोटी और भीगी तौलिया या दूसरे मोटे वस्त्र या महीन गाढ़े के कपड़े से मले। यह स्नान उस समय तक करना चाहिए, जब तक कि शरीर भली भाँति ठंढा न हो जावे। प्रथम तो ५ मिनट से १० मिनट तक स्नान करना चाहिए, फिर कुछ अधिक देर तक भी स्नान किया जा सकता है। अति निर्बल लोगों और बच्चों के लिए चन्द मिनट ही काफी हैं। यह अति आवश्यक है कि टाँग, पैर और शरीर के ऊपर के भाग पेड़ू व जंघों के साथ ठंढे न किये जाने चाहिए। क्योंकि इन भागों में रक्त की न्यूनता हुआ करती है। इस कारण इन अंगों में कम्बल लपेट लेना उचित है। टब में बैठने के पश्चात् शरीर को शिर से पाव तक एक ऊनी कम्बल या दुलाई से ढक लेवे। कम्बल ऊपर से फैला लिया जावे, ताकि टब के बाहर दोनों ओर कुछ कुछ लटका रहे और ऐसा फैलाना चाहिए कि जिसमें कम्बल का बोझ सिर पर न पड़े और पेड़ू मलने में हाथ न रुके। फ्रिक्शन हिपवाथ्ज़ के अनन्तर देह को शीघ्र ही गरम करना चाहिए, जो कि खुले हुए स्थान पर कुछ मेहनत का कार्य करने से किया जाता है। यह कार्य केवल गर्मी लाने और पसीना निकालने के हेतु किया जाता है। जितना ही पसीना निकले, उतना ही उत्तम है। उन रोगियों के लिए जो अति निर्बल हैं, या जिनके शरीर कोमल हैं, यह गर्मी पलंग पर भली भाँति उढ़ा कर लेटाने से आ जाती है। फ्रिक्शन हिप वाथ्ज़ प्रति दिवस एक से तीन बार तक लिए जा सकते हैं। प्रायः इसके बदले फ्रिक्शन सिट्ज़वाथ्ज़ लेना उचित है, या दोनों प्रकार के स्नान किये जाएँ। यह ध्यान रखना चाहिए कि भोजन के तुरन्त ही पीछे इस चिकित्सा के विधि का कोई स्नान नहीं करना चाहिए, कम से कम दो तीन घंटा भोजन के पहिले या बाद स्नान करना चाहिए।

—॥ फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ्ज़ ॥—

यह स्नान स्त्रियों के रोगों के लिए विशेष लाभदायक होता है।*

—॥ स्टीम बाथ्ज़ ॥—

यह कई प्रकार से लिए जाते हैं। त्वचा अर्थात देह की ऊपरी खाल से उसका काम कराने के लिए यह स्टीम बाथ की विधि एक बड़ी श्रेष्ठ क्रिया है। और उन सब स्त्रियों के लिए जो आरोग्य रहना चाहती हैं, इसी बात की आवश्यकता है, अर्थात् उनको त्वचा उनका ठीक ठीक काम करे।

सब शरीर का स्टीमबाथ। यह कार्य लुई कुहनी का बनाया हुआ यन्त्र और पतीलियों से, जोकि "रामचरण प्राइवेट मास्टर, सिविल लाइन, मुरादाबाद" के पते से मँगाने से मिल सकते हैं, भली भाँति सिद्ध हो सकता है। किन्तु इन यंत्रों के अभाव में बानों से विनी हुई चारपाई, मट्टी की बड़ी बड़ी हाँड़ी से काम लिया जा सकता है। जल गरम करते समय हाँड़ियों को किसी बरतन से ढक देना चाहिये। ३ या ४ हाँड़ियों में जल भर कर किन्तु कुछ खाली कर चूल्हे पर पकाना चाहिये। ज्योंही जल पकने लगे, त्योंही रोगिणी को कपड़े उतार कर चारपाई पर पीठ के बल अर्थात पेट को ऊपर कर के चित्त लेटा दे और एक ऊनी कम्मल या रजाई या लिहाफ को ऊपर से ऐसे उढ़ा देना चाहिए कि कम्मल या रजाई चारपाई के चारों ओर ऐसा लटकता रहे, जिससे कि भाप बाहर न जा सके। और दूसरी औरत को चाहिए कि कम्मल को कुछ उठा कर पकते हुए जल की हाँड़ी को चारपाई के नीचे रख देवे। बड़ी स्त्री के लिए दो बरतन काम में लाना चाहिये और छोटी कन्याओं के लिये एक ही काफी होगी और एक फालतू जल की हाँड़ी चूल्हे पर पकती रहे। प्रथम हाँड़ी रोगिणी के कमर के छोटे भाग के नीचे अर्थात कूले के नीचे और दूसरी पाँव के नीचे रखनी चाहिये और तीसरी की यदि आवश्यकता हो तो पहिली से ऊपर यानी पीठ के नीचे रख लेवे।

ज्योंही भाप कम आने लगे (कोई १० मिनट के बाद) तो फालतू हाँड़ी को उठा कर पहिली की जगह पर रख दे और पहिली को उठा कर चूल्हे पर चढ़ा दे। प्रायः पैरों के नीचे की हाँड़ी को बदलने की आवश्यकता नहीं होती। दस पंद्रह मिनट में रोगिणी को पेट के बल लिटा देना उचित है जिसमें पेड़ू और छाती को गरमी भली भाँति लगे। यदि पसीना उस समय तक नहीं आया होगा तो अब खूबही आवेगा। १५ मिनट से एक घंटा तक अपनी इच्छानुसार पसीना लेना

* इस स्नान की विधि कई कारणों से यहां पर हम नहीं लिख सकते। जिनको इस विषय में जानने की इच्छा होवे कृपाकर "श्रीयुत रामचरण जी, प्राइवेट मास्टर, सिविल लाइन, मुरादाबाद" से लिखकर पूछ सकते हैं।

चाहिये और इच्छानुसार ही बरतनोँ को भी बदलना चाहिये अर्थात यदि भाप के बरतनोँ के बदलने को चित्त न चाहे तो न बदले। एक बरतन से १० या १५ मिनट तक भाप खूब निकलती है। इस से अधिक समय तक भाप लेने की यदि इच्छा हो, तो बरतनोँ को बदलना चाहिये। शरीर के वह भाग जिनमेँ विकार जनक वस्तु की मात्रा अधिक है, कठिनता से पसीजते हैँ और रोगिणी को स्वयं इस बात की चाह होवेगी, कि इन स्थानोँ पर गरमी भी अधिक पहुँचे। उसकी इस इच्छा को भली भाँति पूरा करना उचित है क्योँकि यही बात है कि जिसके करने से भाप के इन स्नानोँ के द्वारा आरोग्यता प्राप्त करने मैँ बड़ी सफलता होती है। एक सप्ताह के अन्दर एक ही स्टीम बाथ लेना चाहिए या ज्यादा से ज्यादा दो बार और दो से ज़्यादा कदापि न लेना चाहिए।

स्टीम भाप के अन्त मैँ तुरन्त ही एक फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ अथवा फ्रिक्शन हिप बाथ अवश्य लेना चाहिए। यदि हिप बाथ लिया जावे, तो हिप बाथ के आदि वा अन्त में पेड़ू के सिवाय शरीर के कुल शेष भागोँ को अर्थात् छाती, दोनोँ बाँह, टाँग, शिर व गर्दन को शीघ्रता से धो डालना चाहिए, जिससे वे भी साफ सुथरे और ठंढे हो जायें। यह याद रखना चाहिए कि जब फ्रिक्शन हिपबाथ, स्टीम बाथ के बाद लिया जावेगा, तब तो कुल देह के भाग धोये जायगे, किन्तु जब फ्रिक्शन हिपबाथ अकेला ही लिया जावेगा तो पेड़ू और जाँघों को छोड़ कर बाकी शरीर के भाग कदापि न धोये जायँगे। फ्रिक्शन हिपबाथ के पश्चात् यह आवश्यक है कि स्नान करने वाले को गरमी पहुँचाई जावे जिससे उसके कुछ कुछ पसीना निकले।

पेड़ू का स्टीम बाथ अर्थात् पेड़ू के लिए भाप स्नान

यह स्नान कठिन कठिन रोगोँ मैँ और उस रोग मैँ जिसमैँ शरीर कुछ कुछ पीला पड़ जाता है, स्त्री मासिक धर्म के बिगड़ जाने मैँ और अन्य रोगोँ मैँ अत्यन्त लाभदायक है। इसमैँ चारपाई पर या कुरसी पर स्त्री को वस्त्र उतार कर बैठाना चाहिए, और कम्बल या रजाई से ऐसा उढाना चाहिए, कि जिससे भाप न निकल सके। इसमें केवल एक ही बरतन काम मैँ लाना चाहिए, और रोगिणी के इच्छानुसार बदल भी दिया जाता है। इसके पश्चात् उसी प्रकार जैसे स्टीम बाथ के पश्चात् हिप या सिट्ज़ बाथ से शरीर को ठंढा करना चाहिए पेड़ू को भी ठंढा करके गरमाई लानी चाहिए।

सन बाथ अर्थात् धूप के स्नान लेने की विधि

इसके करने में कुछ अटकन सी मालूम होती है और इसका काम स्टीम बाथ से भी चल सकता है। इस

लिए इसके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है।

हम क्या खायें, हम क्या पियें ?

मिस्टर लुई कुहनी इस प्रश्न का उत्तर निम्न लिखित बातों में देते हैं :— (१) रोगिणी को अपनी पाचन शक्ति के विचार से वह भोजन करना चाहिए, जिसको उसका आमाशय पचा सके (२) भोजन बनस्पति हो, फलहो, चाहे दूध हो (३) जितना ही शीघ्र पचने वाला भोजन रोगिणी को दिया जावेगा उतना ही लाभकारी होगा। (४) भोजन केवल नमक और जल के साथ बनाना चाहिए। मसाले काम में न लाने चाहिए। यदि घृत डाला जावे तो थोड़ा। चिकित्सा के आरम्भ में घृत से सर्वथा बचाव रखना चाहिए। (५) रोटी बिना छने हुए अर्थात् चोकर सहित कुछ मोटे आटे की खानी उचित है, रोटी बिना छने गेहूँ या किसी नाज के आटे की (गरम देशों में बाजरा जुआर, मक्का की गेहूँ या चावल के आटे के साथ) बनानी चाहिए। (६) तरकारी बनाने की विधि सब स्त्रियाँ जानती हैं। नम्बर ४ की शिक्षा पर विचार करके उनको बनाना चाहिए। पकाने में उनको पूर्ण रीति से गलाना चाहिए। जहाँ तक हो सके रसादार तरकारियाँ न खाई जावें। (७) मसालों में जीरा, सौंफ, धनिया और अजवाइन छौंकते समय या उसके पश्चात् पीस कर तरकारियों में मिलाये जा सकते हैं। गरम मसाला जैसे लौंग, मिर्च, हींग इत्यादि कभी न मिलाना चाहिए। बिना किसी मसाले के केवल थोड़ा सा नमक मिला कर पकाना श्रेष्ठ है और अधिक लाभकारी है। (८) भोजन जहाँ तक हो सके अकेला खाना उचित है। जैसे यदि एक समय में रोटी और एक प्रकार की तरकारी खा सकते हैं। उसके साथ में दूसरी तरकारी या दाल न खानी चाहिए। (९) रोगिणी को भोजन थोड़ा देना चाहिए, और उसे अच्छी प्रकार चबा चबा कर खाना चाहिये जिससे मुँह का रस अर्थात् थूक भोजन में पूर्ण रीति से मिल जावे। मिस्टर ग्लैडस्टोन, इंग्लिस्तान के मन्त्री थे। वे प्रत्येक ग्रास को ३२ बार चबाते थे। उनकी उत्तम आरोग्यता और दीर्घायु होने का कारण उनके कथनानुसार एक यह भी था (१०) सदा क्षुधा शेष रखके खाना चाहिए। बार बार के खाने से बचे रहना चाहिए। जबतक एक बार का खाया हुआ पच न जावे तबतक दूसरी बार कोई वस्तु न खानी चाहिए। (११) भोजन के बीच में अधिक पानी न पीना चाहिए।

ध्यान रहे कि यह कहावत कि "बद परहेज स्त्री अपनी कबर खुद अपने मुँह से खोदती है।" वास्तव में बहुत सत्य है। कुपथ्य के साथ कोई चिकित्सा भी

लाभ नहीँ कर सकती, पूर्ण आरोग्यता प्राप्त होने की तो संभावना कहाँ? कुपथ्य मेँ रहने वाली रोगिणी को स्वास्थ्य प्राप्त कराने का भार कोई वैद्य अपने ऊपर नहीँ ले सकता। हे माताओ और बहिनो, यदि पूर्ण स्वास्थ की इच्छा रखती हो तो आपको प्रथम मिस्टर लुई कुहनी की शिक्षाओँ पर ध्यान रखना चाहिए और फिर उनकी चिकित्सा के स्नान की रीति को कार्य में लाना चाहिए।*

—नवलविहारी त्रिवेदी

शांता की परीक्षा

"अच्छा जाता हूँ"

"फिर कब आओगे?"

"बन पड़ा, तो अगली छुट्टियोँ मेँ अवश्य आऊँगा"

"थोड़ी देर ठहरिए, अभी तो कुछ देर है"

"मुझे अपने एक मित्र के पास जाना है, उन्हीँ के साथ जाऊँगा"

इतना कह कर एक युवक एक फूटे से घर से बाहर हुआ। उसके साथ मेँ एक ट्रंक था। बाहर आकर वह एक सड़क की ओर मुड़ा और एक बड़े द्वार पर ठहर गया और आवाज दी, "सोहन! ओ भाई सोहन!! अरे भाई सोहन!!"

तीसरी आवाज़ को सुन कर सोहन द्वार से बाहर निकला। युवक ने सोहन से पूछा कि आप कालिज चलने को तय्यार हो गये।

सोहन—घर की स्त्रियाँ कहती हैँ, "हम तीजोँ के त्योहार पर कैसे चले जाने देँगी"। आप मेरी अर्जी (प्रार्थना-पत्र) लेते जाइए, कदाचित् मैँ चार दिन तक न आ सकूँ। इतना कह कर सोहन ने एक पत्र लिख कर युवक को दे दिया। पत्र को लेकर वह स्टेशन की ओर मुड़ा और स्टेशन पहुँच कर टिकट लेकर गाड़ी पर बैठ गया। थोड़ी देर पश्चात् रेल ने सीटी दी और चल दी।

इस युवक का नाम हेमचंद्र है। कानपुर मेँ कृषि कालिज मेँ यह काम सीखता है। इन की स्त्री का नाम शांता है, और पिता का नाम रामचंद्र है। डेढ़ वर्ष हुए, इनके पिता की मृत्यु हो गयी। पति के दुःख मेँ एक मास पीछे ही इन की माता का स्वर्गवास हो गया। पिता धनी मनुष्य नहीँ थे। बुलन्दशहर मेँ २५ रु० पर अध्यापक थे। हेमचंद्र की स्त्री बुलन्द शहर मेँ है। अपनी

---

* मिस्टर लुई कुहनी की "The new science of healing" का हिन्दी अनुवादक "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" के नाम से श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप जी, बी. ए. वकील मुरादाबाद जी ने किया है। दाम २॥) हैं। इस विषय में यह पुस्तक पढ़ने योग्य है। उक्त श्रोत्रिय जी से पुस्तक मिल सकती है।

स्त्री को वह ८) मासिक भेजता रहता है। २५ रु० मासिक यह बालकों को पढ़ा कर पैदा कर लेता है। १५ रु० मासिक अपने खाने पीने व फीस में उठा देता है और २ रु० मासिक बंक में जमा कर देता है। आरंभ में जो बात चीत हुई थी, वह इन्हीं स्त्री पुरुषों की थी।

पति के चले जाने पर शांता अपने गृह कार्य्य में लग गयी। प्रति दिवस पति देव के आने के दिवस गिना करती थी। शांता अशिक्षिता न थी। वह मुहल्ले की लड़कियों को सीना पिरोना और नाना प्रकार की शिक्षा सिखाया करती थी। इस कारण छुट्टी के दिवस इसका घर लड़कियों से भरा रहता था। किन्तु रात में उसका घर सूना रह जाता था। एक दिवस शांता अपने चौके में बैठी हुई गृहलक्ष्मी पढ़ रही थी कि इतने में एक बुढ़ी औरत अंदर आयी और अपनी मीठी मीठी बातों से शांता को बह-काने लगी और कहने लगी कि "एक मनु-ष्य तुमको बहुत प्यार करता है और वह तुझे बहुत सा धन देगा।" यह कहकर उसने अपनी जेब से ५ रु० निकाल कर उसके सामने रख दिये। शांता यह देख कर भभक उठी और रु० उठा कर फेंक दिये, और बूढ़ी को घर से बाहर निकालने लगी। किन्तु उसे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह वृद्धा कमर से कटारी निकाल कर उसके पीछे दौड़ी और कहने लगी, "क्या तू अब भी नहीं मानेगी?" यह कहकर उसने अपने कपड़े उतार दिये और पुरुष रूप हो कर शांता से कहने लगी, "मैं तुझे अपना जीवन तक सौंपने को तय्यार हूँ और यदि तू नहीं मानती, तो इस कटारी से तेरी गर्दन अभी उड़ाये देता हूँ।" शांता ने यह बातें सुनकर उसके हाथ में से कटारी छीन ली और उसकी छाती में घुसेड़ने को ही थी कि उस पुरुष ने उसका हाथ पकड़ लिया। शांता यह देख कर कोलाहल मचाने लगी। कोलाहल को सुन कर हेमचंद्र के मित्र सोहनलाल अन्दर आ गये। वह बाहर किसी कार्य्य के लिए जा रहे थे।

उन्होंने आकर उस मनुष्य का हाथ पकड़ लिया। हाथ पकड़ते ही वह बोल उठा, "मित्र क्या तुमने मुझे नहीं पहचाना?" यह बात सुनकर सोहन हँसने लगा। हेमचंद्र ने अपना भेष बदल डाला और मित्र से कहने लगा, "मैंने इस की परीक्षा लेनी चाही थी। वास्तव में मेरी स्त्री सती है। इस कोलाहल को सुन कर मुहल्ले के कुछ लोग जमा हो गये और शांता से कहने लगे, "धन्य है तेरे माता पिता को, हे सती, तू धन्य है धन्य है। तेरा पति धन्य है, जिसने तुझ सी लक्ष्मी स्त्री पायी है।"

भारतवर्ष! तेरी कोख में ऐसी ऐसी स्त्री रत्न उत्पन्न हो गयी हैं, जिन के कारण तू आज तक अति प्रशंसनीय हो रहा है।

—गौरीशंकर शर्मा और
श्याम सुन्दर शर्मा

हमारे अवगुण



एक भारतीय सज्जन भारतीय आन्दोलनों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि "प्रतिष्ठित हिन्दू एक घिसा हुआ सिक्का है और आज संसार के बाज़ार में उसकी कोई पूँछ नहीं।" तात्पर्य्य यह है कि आज कल पाश्चात्य देशों में हम लोगों की कुछ भी क़दर नहीं। हम यहाँ बैठे हुए अपने को कितना ही बड़ा माने, अपने से भिन्न जातियों को अछूत और म्लेच्छ समझते रहें, चाहे उनको छूकर सौ बार स्नान करें, चाहे आँखों पर पट्टी बाँधते हुए उठते बैठते, चलते फिरते, सोते जागते कहते फिरें कि हम श्रेष्ठ, हमारा देश श्रेष्ठ, दूसरे मनुष्य निकृष्ट, उनका देश निकृष्ट। परन्तु हमारे आँखें बन्द करने, हमारे न मानने से दूसरे लोग वैसा नहीं मान सक्ते। पाठकगण, आश्चर्य्य न कीजिए, बात यथार्थ में ऐसी ही है। हमारा आदर भिन्न देशों में बिल्कुल नहीं है। क्या आप प्रमाण चाहते हैं? अच्छा, लीजिए। प्रमाण समाचार पत्र और अफ्रिका और अमेरिका प्रवासी भारतवासी हैं। किसी समाचार पत्र को उठा कर पढ़िए। देखिए ट्रांसवाल और नैटाल में भारतवासी किस प्रकार रहते हैं। संयुक्त-राज्य अमेरिका वालों के भारतियों के प्रति कैसे विचार हैं। यह मैं मानता हूँ कि भारत माता के कुछ सपूत स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गोखले सरीखों ने विदेश जाकर इस कलंकित भारत का मुख कुछ कुछ उज्ज्वल कर दिया, परन्तु यह दाल में नमक के बराबर ही है। उससे उन विदेशियों को इतना तो मालूम हो गया ही होगा कि भारतवर्ष में भी दो एक पुरुष हैं, जिनकी गिनती नर रत्नों में हो सक्ती है। परन्तु यहाँ के जन साधारण के विषय में उनके विचार वैसे ही बने हुए हैं।

तो क्या हमारे प्रति उपर्युक्त आक्षेप मिथ्या हैं? क्या हम में कोई अवगुण हैं! हाँ अवगुण हैं, नहीं, नहीं, हम अवगुणों की खानि हैं। जिन्होंने लगभग दो शताब्दी उदार गवर्नमेण्ट की छाया में रह कर भी कुछ उन्नति न की, उनके विषय में और क्या कहा जा सकता है। लोग कोसों आगे बढ़ गये हैं, परन्तु हम अभी सुख की नींद ही सो रहे हैं। लोग कहते हैं कि हमने यह देखा, हमने यह किया। हमारी आँख जो खुलती है, तो कहते हैं, "हटो जी, तुम क्या देखोगे, क्या करोगे! हमारे बाप दादों ने जो किया, उसके देखने और करने के लिए कम से कम सौ जन्म और परिश्रम कर लो।" भला, ऐसे लोगों का निरादर न हो, तो किसका हो? विदेशी हमारी इसी सुसुप्तावस्था पर हँसते और कहते हैं कि अजब जाहिल

हैं; अब भी अपनी पुरानी बड़ाई के गीत गाये ही जा रहे हैं।

अस्तु, अब आप लोगों को मालूम हो गया होगा कि हम लोगों में कुछ अवगुण अवश्य हैं और इसी कारण हमारी विदेश में पूँछ नहीं। वे अवगुण कौन कौन से हैं। उन अवगुणों की तालिका में से केवल दो का ही दिग्दर्शन कराना इस क्षुद्र लेख का उद्देश्य है।

अकर्मण्यता

हम में एक अवगुण 'अकर्मण्यता' है। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि अभी हम में से बहुतों की आँखें अच्छी तरह से नहीं खुली हैं। हम अभी राम और कृष्ण ही के समय का स्वप्न देख रहे हैं। अभी तक हमारे कानों में निम्न लिखित श्लोकों ही की भनक गूँज रही है—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गाऽऽस्पदमार्गभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
एतद्देशप्रसूतस्य, सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वं मानवाः॥"

हमारे महर्षिगण योगनिद्रा में समाधिस्थ रहते थे, हमारे उपनिषत्कार अपनी शान्ति संगति से योगियों को मोहित कर देते थे। परन्तु हम क्या करते हैं। ज्यों के त्यों पड़े हुए हैं। आँखे खोलने और उठने की आवश्यकता नहीं समझते। किसी को दया आती है, तो एक ठोकर लगा देता है। परन्तु हम एक बार चौंक कर फिर सो जाते है। समझते हैं कि कुछ खाने कमाने को थोड़े ही है, जो अकारण अपने शरीर को कष्ट दें। हमारे बाप दादों ने इतना कमा कर रख दिया है कि बिल्कुल हाथ पैर हिलाने की ज़रूरत नहीं। हमारे लिए ही नहीं, हमारी सात पीढ़ियों तक के लिए काम आवेगा। भौंकने दो इन कुत्तों को, ऐसी कौन सी बात है, जो हमारे वेदों में नहीं। ऐसा कौन सा वैज्ञानिक सिद्धान्त है, जिसको हमारे पूर्वजों ने सोच नहीं निकाला। ये अपने हवाई जहाज (Aireoplanes) की डींग मारते हैं। ये तो हमारे पूर्वजों ने महाराज रामचन्द्र के समय में ही बना लिये थे। कुछ भी हो, संसार कितनी ही उन्नति कर जावे, वह अभी तक हमारे बराबर नहीं पहुँचा है और न इस कलियुग भर बराबर होने की सम्भावना है। बस, फिर क्या? कम से कम कलियुग भर तो और सो लें। फिर जब २९ वीं चतुर्युगी का आरम्भ होगा और फिर जब वामन अवतार होगा, तब फिर साढ़े तीन पग में तीनों लोकों को लांघ कर सब के शिर मौर हो जावेंगे और ये लोग मेंढक की चाल चलते ही रह जायँगे।

इसी को अकर्मण्यता कहते हैं। बातें बनाना लेकिन काम न करना। यह अवगुण हम सब (हिन्दू मात्र में) पाया जाता है।

इस से मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि पूर्व काल का स्मरण ही न करना चाहिए, या कुछ लोगों के मत के अनुसार अपने पुरुषाओं को जङ्गली, और वेदों को किसानों के गीत समझना चाहिए। यदि मेरे उपर्युक्त कथन से आपने यही सार निकाला है, तो मेरी सविनय प्रार्थना है कि आपने नतीजा निकालने में जल्दी की। मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है। मेरी भी यही राय है कि अपने पूर्वजों का खूब ही आदर कीजिए। प्रति दिन सायं और प्रातःकाल उनके पवित्र चरणों को स्मरण कीजिए। ऐसा सौभाग्य बहुत कम जातियों को प्राप्त है। बहुतों का तो पूर्व समय नितांत मेघाच्छन्न है। मेरा अभिप्राय यहाँ पर केवल इतना ही है कि उस समय के स्मरणमात्र से ही हम लोगों को संतोष न करना चाहिए। अपनी पूर्व उन्नतावस्था का चित्र अपनी आँखों के सामने रख कर हमको उन्नति की राह पर क़दम बढ़ाना चाहिए। अपनी पूर्वोन्नति और आज कल की अधोगति की तुलना करके लज्जित होना चाहिए और अपने पूर्वजों का नाम रखने के लिए अपनी समकालीन जातियों से बाजी लेना चाहिए। हमारे पूर्वज अपने समय में सब जातियों से श्रेष्ठ समझे जाते थे। हम अपने समय में कम से कम सब के बराबर तो हो जावें। इसी में हमारा भला है, नहीं तो हम लोगों को कहीं रहने को भी ठौर न मिलेगा। सदा से संसार का यही नियम है कि जो जाति उन्नति नहीं करती, गिरती ही जायगी, और फिर कभी न कभी लुप्त प्राय हो जावेगी। संसार-क्षेत्र में कमज़ोर पौधों के लिए जगह नहीं। वृक्षराज वटवृक्ष के नीचे घास फूस उगने नहीं पाते।

अनुचित सन्तोष

सन्तोष अवगुण! यह कैसी बात!! शायद आप यह सुन कर चकित होंगे। हमारे धार्मिक और नैतिक ग्रन्थों ने सन्तोष को बड़ा भारी गुण माना है। उन्होंने इसकी तारीफ़ के पुल बाँध दिये हैं। तारीफ़ है भी ठीक। सन्तोष है भी अच्छा, परन्तु सब जगह नहीं। मान लीजिए कि आप एक विद्यार्थी हैं। आपने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। एक व्याकरण की पुस्तक पढ़ ली। अब क्या आप इतने पर सन्तोष कर लेंगे। क्या अपने गुरु से कहेंगे कि "महाराज मेरे लिए इतना ही बस है, मुझको इतना पढ़ने से सन्तोष है?" क्या आपके गुरुजी इस सन्तोष को सराहेंगे? मैं तो नहीं समझता। मेरा तो अनुमान है कि वे उलटा आपको बेवक़ूफ़ समझेंगे और जिस प्रकार होगा, आपको आगे पढ़ने के लिए आग्रह करेंगे। और लीजिए। मान लीजिए कि आप किसी प्रकार का व्यवसाय करना चाहते हैं। आपने पहले १०० रुपया उस में लगाये। माल बिक

जाने पर आपको २०० रुपया लाभ हुआ। अब क्या आप उतने ही पर सन्तोष कर लेंगे और फिर व्यवसाय करना बन्द कर देंगे? आपके इस सन्तोष को लोग क्या कहेंगे—अच्छा या बुरा?

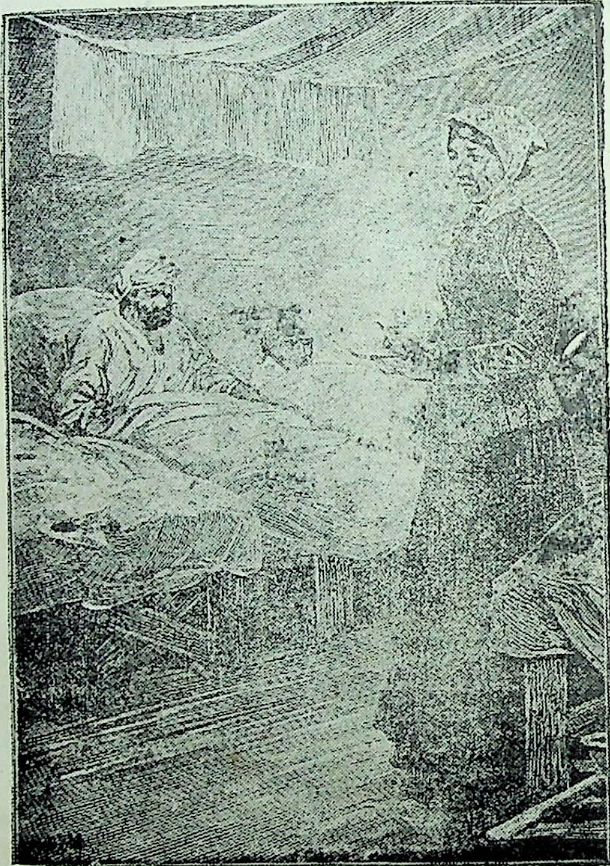
इन उदाहरणों से क्या सूचित होता है? क्या आप नहीं कहेंगे कि कभी कभी असंतोष भी अच्छा होता है। हाँ! इतना ध्यान रहे कि ऐसे समय में भी असंतोष को अपने मन में स्थान देते समय उस को कार्य में परिणत करने के लिए किसी अनुचित उपाय का अवलम्बन न करना चाहिए। एक विद्यार्थी को दूसरे विद्यार्थी से स्पर्द्धा करनी चाहिए। उससे बाज़ी मार ले जाने की चेष्ठा करनी चाहिए, परन्तु किस तरह से? खुद मेहनत करके, धोखा देकर नहीं। यहाँ मुझको एक कहानी याद आ गयी। यह कहानी दो छात्रों की है। वे दोनों बड़े तीव्र-बुद्धि और परिश्रमी थे। एकही पाठशाला में एकही पाठ पढ़ते थे।

जिस समय की यह कहानी है, उस समय पाठशालाओं में एक नियम था, कि शिक्षक एक प्रश्न किसी छात्र से पूछता था। यदि वह उसका उत्तर न दे सका, तो उसके बाद बैठने वाले दूसरे विद्यार्थी से वही प्रश्न पूछा जाता था। यदि उसने बता दिया, तो झट वह उस भूलने वाले विद्यार्थी के स्थान पर आजाता था अर्थात् एक नम्बर ऊपर चढ़ जाता था और वह भूलने वाला विद्यार्थी एक नम्बर नीचे उतर जाता था। इस नियम से बड़ा लाभ था। परन्तु वह आजकल की पाठशालाओं से उठ गया है।

अस्तु, इसी नियम के अनुसार ये दो छात्र चलते थे। अपने दरजे में वे ही दो छात्र तेज़ थे। इन दोनों में बराबर चढ़ा ऊपरी रहती थी। प्रत्येक यही चाहता था कि दरजे में पहला नम्बर मेरा ही रहे। इन विद्यार्थियों में एक कुछ बड़ा था और दूसरा छोटा। बड़े का पहला और छोटे का दूसरा था। छोटे को दूसरे नम्बर से संतोष नहीं था। वह कहता था कि मैं पहला ही नम्बर लेकर मानूंगा। परन्तु बड़ा लड़का उस से किसी प्रकार कम न था। शिक्षक जो प्रश्न उससे पूँछते, वह झट उसका उत्तर दे देता। छोटे को नम्बर लेने का अवसर ही न मिलता। बहुत दिन बीत गये, परन्तु वह नम्बर न ले सका। जब उसने देखा कि खाली मेहनत करने से काम न चलेगा और पहला नम्बर लेना ही है, तो कोई चाल चलनी चाहिए। बस वह इस सोच में पड़ गया। एक दिन पाठशाला में उसकी दृष्टि अपने प्रतिद्वंदी सहपाठी पर जापड़ी। जिससमय वह शिक्षक के प्रश्न का उत्तर दे रहा था। क्या देखता है कि वह उत्तर देरहा है और अपने कोट के एक बटन को बार बार पकड़ता और छोड़ता है। दूसरे दिन भी यह हाल देखा। बस अब उस छोटे



लड़ाई का एक दृश्य



रेडक्रास सोसाइटी की जन्म देने वाली
मिस फ्लारेन्स नाइटिङ्गेल

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग ।

छात्र को मालूम हो गया कि मेरे इस सहपाठी का यह स्वभाव ही है, कि जब वह प्रश्न का उत्तर देता है, तब अपने बटन को टटोलता रहता है। बस उस को एक चाल सूझी। उसने पाठशाला जाने के कुछ समय पहले अपने सहपाठी के उस बटन को काट लिया, जिसको वह उत्तर देते समय बार बार पकड़ता था, उसके सहपाठी को इसकी कुछ भी खबर न लगी। पाठशाला में ज्योंही वह (बड़ा विद्यार्थी) शिक्षक के प्रश्न का उत्तर देने लगा, त्योंही उसका हाथ अपने स्वभाव के अनुसार उसी बटन पर गया। परन्तु उस दिन बटन नदारद। झट उसका ध्यान प्रश्न के उत्तर से हट कर बटन की ओर चला गया और थोड़ी देर के लिए वह उत्तर भूल गया। स्वभाव का ऐसा ही प्रभाव होता है। छोटा विद्यार्थी तो ताक ही में था। उसने झट प्रश्न का उत्तर दे दिया और पहला नम्बर ले लिया। इस छोटे विद्यार्थी ने अनुचित प्रयोग द्वारा अपने सहपाठी से प्रतियोगिता में जय लाभ की। विद्यार्थियों को ऐसी प्रतियोगिता से बचना चाहिए। उस छोटे विद्यार्थी का असंतोष सराहनीय था, परन्तु उसका प्रयोग सराहनीय नहीं था।

जो कार्य एक व्यक्ति के लिए अच्छा है, वह एक जाति के लिए भी अच्छा हो सकता है। जाति क्या है? बहुत से व्यक्तियों का समारोह। यदि विशेष विषयों में एक व्यक्ति को संतोष न करना चाहिए, तो उन्हीं विषयों में एक जाति को भी संतोष करना ठीक नहीं।

अब लीजिए, हमारी हिन्दू जाति की इस विषय में क्या राय है? हम में से कितने ऐसे हैं, जो अपने पूर्वजों के निधि (खजाने) को बढ़ाने के पक्ष में हैं अथवा बढ़ा रहे हैं? शायद उँगलियों पर गिनने के लायक। अधिकांश ऐसे ही निकलेंगे, कि संतोष—दृढ़ संतोष किये बैठे हैं। उनकी प्रकांड बुद्धि में आगे बढ़ना ही मना है। हमारे पूर्वजों ने रख ही क्या छोड़ा जो हम करें। हमारा ख़ज़ाना भरपूर है! खर्च करते चले जाओ। भला अब भी संतोष न करेंगे, तो कब करेंगे! बस, इसी संतोष ने हम को मटियामेट कर डाला। खाने में संतोष, पीने में संतोष, उठने में संतोष, बैठने में संतोष, पुराने चर्खों पर संतोष, यहाँ तक कि भूखों मरने में संतोष, बस संतोष ही संतोष हाथ लगा। सब विद्या, बुद्धि, बल, धन, धान्य खो बैठे और अब भी सतोष किये जा रहे हैं। 'संतोषः परमं सुखं।' इसी संतोष ने हमको नीचे गिराया, इसी संतोष ने पाश्चात्यों को ऊँचा उठाया। संतोष के ही प्रभाव से हमारा भारत कूप-मंडूक बन गया। असंतोष ही के बल से हमारे प्रभुओं ने सुन्दर आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड प्रदेश बसाकर अपना साम्राज्य फैलाया। हमारे बालकों को शिक्षा

दी जाती है "बेटा संतोष कर, भाग्य के भरोसे रह, जिस ईश्वर ने तुझको पैदा किया है, वह तुझको खाने को भी देगा। वृथा कष्ट मत उठा"। ठीक इस से उलटी शिक्षा पाश्चात्य बालकों को दी जाती है। उनको सिखाया जाता है—"बेटा तुम्हारा जन्म उन्नति करने के लिए ही हुआ है। संसार में कुछ भी आदर नहीं, जो हाथ पर हाथ रक्खे बैठा रहता है। तुम्हारे बाप दादों ने सुन्दर प्रशांत महासागर के टापू आबाद किये, तुम ध्रुव देश की सैर करना। तुम्हारे बाप दादे रेल और जहाजों पर यात्रा करते थे। तुम आकाश यानों पर विहार करना। देखो, कैसी भिन्न शिक्षा है।"

प्यारे बन्धुओ! जब तक ऐसी शिक्षा ग्रहण न करोगे, जब तक अपने बच्चों को पूर्वजों की कीर्ति-स्मरण के साथ साथ उनके हृदयों में स्वयं उन्नति करने का बीज न बोओगे, जब तक उन्नति-शील विषयों में संतोष करने और भाग्य के भरोसे बैठे रहने के बदले उन्नति शील होने की चेष्टा न करोगे, तब तक तुम्हारा भला नहीं। देखो, नन्हा सा जापान तुम से सौ कदम आगे बढ़ गया है। चीन भी बर्षों की पिनक को छोड़ कर उठ बैठा है और अब कसम खा ली है कि फिर कभी सुस्ती न करूँगा। संसार की बड़ी बड़ी जातियाँ अपने उद्देश्य की ओर सीधी दौड़ी जा रही हैं। तुम्हीं ऐसे हो, जो पड़े पड़े करवटें बदल रहे हो। तुम्हारे ये अवगुण तुम्हारी उन्नति के बाधक हैं। इन्हें विना किसी संकोच के छोड़ दो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है।

प्रिय पाठक तथा पाठिकाओ! इस छोटे से लेख में मैंने महान् हिन्दू जाति के केवल दो अवगुणों का उल्लेख किया है। यदि यह लेख आपको रुचिकर हुआ, तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार दो एक और अवगुणों का ज्ञान आपको कराऊँगा। इस समय इतना ही बस होगा।

—एक हिन्दू

सुकुमारी

(गताङ्क से आगे)

चतुर्थ परिच्छेद

शिक्षा

शाम के चार बज गये। दिननाथ जी का तेज मन्द पड़ने लगा। मकान के बाहर मनुष्य निकलने लगे। ठीक इसी समय एक सुसज्जित कमरे में हम एक शान्तिमयी मनोहर देवी को देखते हैं। चंपई रँग का इकहरा बदन, हँसता चेहरा, चंचल नेत्र, काली काली पुतलियाँ, कोमल बाल और बँधी हुई बेणी, जिसमें चमेली के फूल लगे थे, देखने में बड़ी सुन्दर मालूम होती है। यह सुन्दरता काम भाव से पूर्ण नहीं थी, इसके सामने जाने से देखने वालों के हाथ जुड़ जाते हैं।

और यह मालूम होता है, कि हम विश्व-जननी के सामने खड़े हैं। इसकी आँखें, जितनी सरल हैं, उतनी ही दयावती भी हैं, उसका नव पल्लव के समान कोमल मनोहर मुख है, जितनाही सुन्दर है उतनी ही मीठी वाणी भी उस से निकलती है, उसके हाथ जितने ही सुडौल हैं, उतना ही उन के द्वारा धनहीन जीवों का उपकार भी होता है। यह देवी सरस्वती के समान, दूध के सदृश झकाझक सफ़ेद शय्या पर बैठी हुई वीणा बजा रही है। अपनी पाठिकाओं को हम भ्रम में न डाल कर बताये देते हैं कि यह सरल मूर्ति मदन की स्त्री सुशीला है। बैठी हुई सुशीला वीणा के साथ निम्न लिखित पद्य अपने वीणा विनिन्दित स्वर में गा रही है—

"उत्तम के अस बस मन माहीं ।
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम पर पति चितवहिं कैसे ।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
काम समझि कुल महँ जे रहहीं ।
ते निकृष्ट तिय अस श्रुति कहहीं ॥,,

सुशीला की आवाज़ चारों तरफ़ हवा में तैरने लगी। उसके समाप्त होने पर सुशीला ने देखा, कि सामने ही मदन खड़े हुए उसका गाना सुन रहे हैं। सुशीला ने वीणा उठा कर ज़मीन पर रख दिया। और खड़ी हो कर मदन से बोली, "कब से खड़े हो ?"

म०—बहुत देर से खड़ा हूँ सरकार, वीणा के सामने आप को और किसी का ख्याल थोड़े ही रहता है। सुशीला ने सकुचा कर तनिक धीरे से कहा, तो बैठ जाओ, हाथ मुँह धो कर पानी पी लो, फिर तुम्हें आज एक अच्छा सा गाना सुनाऊँ। मदन ने कहा, नहीं, आज हम अपना गाना सुनावेंगे।

सु०—तो बैठ तो जाओ।

म०—क्यों थक गयी हो क्या ? ठीक है। अपने भार से अपने आप झुक भी तो रही हो। अच्छा लो, बैठ जाते हैं। आज पहिले हम अपना गाना सुनावेंगे, फिर पीछे और।

सु०—अच्छा यही सही, कहो ! गाओ।

म०—अच्छा सुनो ! अविनाश और और मोहिनी दोनों अब बड़े हो चले। अब इनके पढ़ने का प्रबन्ध करो।

सु०—हैं भगवान ! यही तुम्हारा गाना है। मैंने कहा, न जाने आज कहाँ से कौन सा विहाग सीख आये हैं।

म०—इस गाने के बिना तो काम चल जाता है मगर इसके बिना न चलेगा। इस गाने का तुम्हें अधिक ध्यान रखना चाहिए।

सु०—अच्छा, सुनाओ।

म०—एक बार तो कह दिया।

सु०—पहिले मेरी पढ़ायी तो ख़तम हो जाने दो, तब पीछे स्कूल में बैठना।

अभी तो मैं ही पढ़ाऊँगी। थोड़ा बहुत पढ़ा भी दिया।

म०—कौन कौन से ग्रन्थ खतम करा दिये ?

सु०—लो, तुम तो हँसी करने लगे।

म०—हँसी कैसी ? बात ही तो पूँछता हूँ, मास्ट्राइन साहेबा !

सुशीला ने चिढ़ कर कहा, "मैं नहीं बोलती।"

म०—अच्छा कहो। सुनता हूँ।

सु०—स्वर खतम हो गये। अब व्यंजन शुरू करा रही हूँ।

म०—अरे ! इतनी जल्दी ? तुम ने तो मास्टर के भी कान काट लिये। क्या मोहिनी भी सीख गयी ?

सु०—हाँ दोनों। मैं ने कुछ थोड़े से लड्डू बना कर रख छोड़े हैं। सो जब कभी अविनाश या मोहिनी माँगती हैं, तब कहती हूँ, कि पहिले चार हरूफ़ याद कर लो। वह मिठाई के लालच से बड़ी जल्दी—सप्ताह का पाठ दो दिन में याद करते हैं। पहिले कुछ दिन इसी तरह पढ़ाऊँगी। फिर मास्टर साहेब का अनुकरण करूँगी।

म०—सचमुच ही तुम बड़ी गुणवती हो। जितने दिन तुम्हारी इच्छा हो, तुम दोनों को अपने पास पढ़ाओ। जब तुम्हारी अनुमति होगी, तभी मैं अविनाश को स्कूल भरती कराऊँगा। तुम्हारी ही ऐसी स्त्रियाँ और माताएँ यदि भारतवर्ष में होने लगें, तो इस विचारे की काया पलट हो जाय।

सु०—बैठो, बैठो। मुझ में ऐसे कौन से गुण हैं, जो तुम मेरी इतनी तारीफ़ कर रहे हो। हमेशा की हँसी थोड़े ही अच्छी होती है।

म०—नहीं नहीं, मैं सच कहता हूँ। कहावत है, एक अच्छी माता सौ मास्टरों के बराबर होती है। वास्तव में तुम उस कहावत को चरितार्थ कर रही हो। मैं तुम्हारी ऐसी स्त्री पा कर अपने को धन्य समझता हूँ। यों कह कर मदन ने सुशीला के एक मीठी चपत लगायी।

अच्छी माता का प्रभाव बालकों पर बहुत ही अच्छा पड़ता है। वह जिस ढंग पर बालक को लाना चाहे, बड़ी सरलता से ला सकती है। सुशीला आठ वर्ष की अवस्था तक अविनाश और मोहिनी को पढ़ाती रही। काम काज से जब कभी अवकाश मिलता, तब बैठ कर दोनों को सुन्दर उपदेशप्रद कहानियाँ सुनाया करती। और अच्छे ख्यालात उन के दिमाग में भरती रहती।

अविनाश को उस ने आठ वर्ष की अवस्था में अंग्रेजी स्कूल में भरती करा दिया। अविनाश चौथे दर्जे में भरती हो गया। मोहिनी भी कन्या पाठशाला में पढ़ने के लिए बैठाल दी गयी।

दिन जाते देर नहीँ लगती । अविनाश को पढ़ते हुए पाँच वर्ष हो गये। आज कल वह इन्ट्रेंस मेँ हैँ । और परीक्षा भी निकट है । एक दिन माँ बेटोँ मेँ इस प्रकार वार्तालाप शुरू हुआ ।

अ०—माँ ! मेरी परीक्षा आ गयी ।

सु०—तो क्या हुआ बेटा ! क्या तू किसी विषय मेँ कमज़ोर है । यदि है, तो मैँ तेरे चाचा जी से कह कर उसे पूरा करा दूँगी ।

अ०—नहीँ माँ ! सब ठीक है । बल्कि मैँ तुम्हारे आशीर्बाद से क्लास भर मेँ अव्वल हूँ ।

सु०—शाबास बेटा ! क्योँ न हो। यदि तू पास हो गया, तो तुझे एक बढ़िया घड़ी मगा दूँगी । और यदि इसी तरह तू बी० ए० मेँ पास हुआ, तो एक साइकिल ।"

अ०—बस पक्की रही ।

* * * *

परीक्षा हो गयी । अविनाश अपने पुस्तकालय मेँ बैठे हुए एक चित्र बना रहे हैँ । उस के बनाने मेँ वह इतने लवलीन हैँ, कि उन्हेँ आस पास की कुछ खबर नहीँ । इतने ही मेँ किसी ने मृदु परिचित स्वर मेँ कहा, "अविनाश !" अविनाश ने पीछे फिर कर देखा, कि मदन हाथ मेँ घड़ी लिये हुए आ रहे हैँ । आते ही मदन ने कहा, "अविनाश ! अपनी घड़ी सँभालो । देखो अच्छी है न !"

अ०—ठीक । आशीर्वाद दीजिए, कि आप के इन्हीँ कर कमलोँ से इसी तरह साइकिल लेने का भी सौभाग्य मुझे प्राप्त हो । यह कह कर अविनाश ने घड़ी को अपनी वास्केट की जेब मेँ धर लिया ।

म०—अविनाश परमेश्वर के आधीन बात है । पर मैँ तुझे आशीष देता हूँ, कि तेरी इच्छा पूर्ण हो । यह पवित्र आशीर्वाद दे कर मदन अन्तःपुर मेँ चले गये ।



पांचवा परिच्छेद

विवाह

"अविनाश अब सत्रह वर्ष का हो गया ।" मोहन ने मदन से कहा ।

"जी ! आज उसकी परीक्षा का परिणाम भी प्रकट हो गया ।"

"पास हो गया न ?"

"हाँ" यह कह कर मदन ने अपना सिर नीचा कर लिया ।

मोहन ने कहा, "आज सहारनपुर से बाबू लक्ष्मणप्रसाद आये ह । वह अविनाश के साथ अपनी लड़की की शादी करने का अनुरोध कर रहे हैँ । तुम्हारी क्या इच्छा है ?" मदन ने ज़रा संकुचित भाव से कहा," आप के रहते हुए मुझे बोलने का क्या अधिकार है । आप की जो इच्छा हो, सो कीजिए । परन्तु अभी

उसकी अवस्था ही क्या है।" मोहन ने कहा, "हाँ, ठीक है। पर माताजी के सामने मेरी एक भी न चलेगी। लक्ष्मणप्रसाद के आने से पहिले भी उन्हों ने कितनी ही बार मुझ से कहा है।"

म०—अम्मा की बात अवश्य माननी चाहिए। किन्तु जल्दी करने से उस की पढ़ायी में विघ्न पड़ने की संभावना है। मैं तो समझता हूँ, कि शरम के मारे अविनाश कुछ कहेगा नहीं, पर विवाह करने की इच्छा अभी उस की भी न होगी।

मो०—मैं भी समझता हूँ, पर अम्मा को कैसे समझाऊँ।

म०—पढ़ने में जो थोड़ा बहुत नुकसान होगा, सो होगा। पर आप अम्मा को बात मत टालिए।

सगाई पक्की हो गयी। ब्याह की तैयारियाँ होने लगीं। धीरे धीरे ब्याह का दिन भी आ गया। रामलाल नामक एक पड़ोसी ने मदन से कहा, "कहो जी, कुछ तमाशा भी मँगाया है।"

मदन ने कहा, "हाँ, बहुत बढ़िया दस गाने वाले, दो सितार और दो मृदंग बजाने वाले आगये हैं। रहसधारियों का नाच आया है, और शायद भाई साहेब ने थोड़ी आतिशबाजी मँगा ली है।"

रामलाल बोले, "वाह! बड़े चोर का हिस्सा ही नदारद। यह तो कहो, दो चार डेरे वेश्याओं के भी बुलाये हैं या नहीं?।"

म०—शिव शिव, आप यह क्या कह रहे हैं। मैं ने निश्चय कर लिया है कि जो रुपया वेश्याओं को दिया जायगा, उन्हीं रुपयों से मैं दो चार अच्छे अच्छे उपदेशकों को बुलवा लूँगा, वा अनाथालय को दान कर दूँगा। मैं अपनी कमायी के पैसे इन वर्णशंकर की लड़कियों को क्यों देने लगा।

"परन्तु बारात फीकी पड़ जायगी" रामलाल ने चिढ़कर कहा।

म०—कोई परवाह नहीं है। पर फीकी कैसे पड़ जायगी। रहसधारी तो हैं। देखना साहेब! वह भीड़ होगी, कि कंधे छिल जाँयगे।

रा०—कहीं हो न ऐसा। मुँह धो रक्खो। जनाब! बिना किसी गाने वाली के ठीक न होगा।

म०—अजी! गाने वाली न सही, गाने वाले तो हैं। यों कह कर मदन किसी काम के लिए अन्दर चले गये। और महात्मा रामलाल जी उदास हो कर अपने घर को पधारे। परन्तु उन्हों ने निश्चय कर लिया, यदि वेश्या न गयी, तो मैं भी बरात न जाऊँगा। धन्य है, इन ज्ञानहीन महा पुरुषों को। पहिले तो भारतवासियों के कोई भी उत्सव बिना वेश्याओं के पूरे ही नहीं होते। यदि सौभाग्य वश कोई माई का लाल या यों कहिए, कि कीचड़ में पुष्प खिल उठा, तो इन महात्माओं के मारे और भी नहीं खिलने पाता। यदि यही हाल रहा

तो अभी वह दिन दूर हैँ, जब कि भारत वर्ष उन्नति के शिखर पर पहुँचेगा। रामलाल की इच्छा पूरी न हुई। और बरात बिना वेश्या महारानी के ही चली गयी।

* * * *

आज बरात आने वाली है। सुशीला के सभी आत्मीय प्रसन्न मुख हैँ। यदि किसी को रंज है भी, तो केवल मानिनी को। सुशीला को पुत्र-बधू देखने का जो अरमान है, उसे वेही देवियाँ समझ सकती हैँ, जिन को कि ऐसा सुखमय अवसर प्राप्त हो चुका है। राम राम कर के रात्रि हुई, और बरात आने की खबर टहलुए ने आकर दी।

मानिनी के सिर मेँ अकारण दर्द होने लगा और वह अपने कमरे मेँ जा कर पड़ रही। सुशीला ने समझा, कि सचमुच दर्द हो रहा है, सो वह सब काम छोड़ कर मानिनी के पास आकर बैठ गयी, और नम्रता से बोली, "जीजी? क्या बहुत दर्द है?" योँ कह कर मानिनी के सिर पर सुशीला ने एक बर्फ़ का टुकड़ा फोड़ कर रक्खा। और बोली, "जीजी! घबड़ाओ मत। अच्छा हो जायगा।" मानिनी तकिये मेँ मुँह छिपाये पड़ी रही कुछ बोली नहीँ। यदि वह वास्तविक दर्द होता, तो अच्छा हो जाता। वह तो मन का दर्द था। चाहे सिर पर बर्फ़ की चट्टानेँ रक्खी जातीँ, तो भी वह अच्छा न होता। सुशीला उसका सिर दबाती रही। कुछ देर बाद शारदा ने उसे पुकारा। "मैँ अभी आती हूँ" यह कह कर सुशीला बाहर चली गयी।

इतने ही मेँ मोहन आये। और युवती मंडली मेँ मानिनी को न देख कर अपने शयनागार मेँ गये। देखते क्या हैँ, कि देवी जी सो रही हैँ। मानिनी का यह हाल देख मोहन ने ज़ोर से ताली बजाई। मानिनी ने आवाज सुन कर आँखेँ खोल दीँ। और योँ ही झूठ मूठ कराहने लगी। मोहन ने कहा, "क्योँ जी! क्या हाल है। तबियत कैसी है।"

मा०—सिर मेँ बहुत दर्द है। यह ढोलक मंजीरे की आवाज सुन कर तो और झन्नाता है। क्योँ यह बंद होगा, और क्योँ मेरा सिर अच्छा होगा।

मो०—बड़े कुसमय मेँ दर्द शुरू हुआ, बहू का डोला आता है। ज़रा थोड़ी देर के लिए दर्द अच्छा कर लो। और, स्त्रियोँ मेँ जा कर बैठो।

"भाड़ मेँ गया डोला, और तुम को मैँ क्या कहूँ। मेरी तो जान की लग रही है, वहाँ जा कर मैँ और भी सिर पिटवाऊँ।" एक दम सातवाँ स्वर चढ़ा कर यह बात मानिनी ने कहा।

और कुछ कहना व्यर्थ समझ कर मोहन उस समय बैठक मेँ चले आये।

बहू का डोला आया। यथा उचित सब रीति रस्म की गयी। और बहू मकान के अन्दर चली गयी। इस के बाद उस

दिन कोई ऐसी घटना नहीं हुई, जो वर्णन करने लायक हो। सुशीला उस दिन बहुत थक गयी थी, सो सब कामों के बाद बहू को साथ ले कर पलंग पर लेट गयी, और थोड़ी ही देर में निद्रा देवी की गोद में खेलने लगी।



छठा परिच्छेद

माता की मृत्यु और उसके अन्तिम बचन

आकाश चन्द्र हीन है, किन्तु अनन्त तारे चमक रहे हैं। सारा संसार शान्ति मय है किन्तु बीच में कभी झिल्ली की झनकार और कभी कुत्तों की आवाज़ से यह शान्ति भंग हो जाती है। मोहन के घर में अब भी शमादान जल रहा है। और एक पलंग पर मदन की माँ पड़ी हुई ज्वर और सिर दर्द के कारण तड़प रही है। इस समय रात्रि तीन पहर से अधिक जा चुकी थी। माता को बोलने में बड़ी तकलीफ़ होती थी, इस कारण उसने बड़ी कठिनता से अपने पैताने बैठी हुई सुशीला से कहा, "बेटी सुशीला! मैं अब चली। तुझ से मेरी यही अन्तिम भेंट है, और यही अन्तिम कहना है, तूने अब तक जैसे मेरे मन को शान्ति दी है, मुझे भरोसा है, कि स्वर्ग में भी मेरी आत्मा को तू इसी तरह शान्ति देती रहेगी।" सरोज नयनी सुशीला की आँखों से आँसू निकल पड़े। वह रोती रोती बोली, "अम्मा! क्यों ऐसी बातें कह कर मेरा मन दुखाती हो।"

माँ—नहीं बेटी! मैं सच कहती हूँ। मेरे जीवन की बत्ती तेल रहित हो गयी। अब वह हवा के झोंके की बाट देख रही है। थोड़ी देर में वह बुझ जायगी।

सु०—नहीं अम्मा! उसके बुझ जाने से मेरे मकान में बिलकुल अंधेरा हो जायगा।

माँ—ईश्वर की इच्छा। परन्तु बेटी! अपनी और तेरी इस अन्तिम मुलाकात के समय मैं तुझ से एक बात और कहती हूं। बड़ी बहू एक में नहीं रहना चाहती, और मैं चाहती हूँ, कि जैसे मेरा घर अब तक फूला फला है, वैसे ही आगे भी फूले फले।

सु०—अम्मा! जीजी चाहे जो कुछ कहें। परन्तु मैं अपने जीते जी अलग न होऊँगी। तुम मेरी बातों का विश्वास करो।

माँ—बेटी सुशीला! मेरी छोटी बहू! मेरे घर की चन्दा! भगवान तेरा सौभाग्य अचल रक्खें। अब मैं शान्ति पूर्वक बिदा होऊँगी। अच्छा अब मेरा समय निकट है। घरके आदमियों को मुझे एक बेर और दिखा दो। बात के समाप्त होते ही मदन शारदा को लिए हुए आ पहुँचे। माता फिर बोली, "मोहन और बड़ी बहू

को लिवा लाओ। अविनाश और उसकी बहू को बुला लो। मैं उस युगुल जोड़ी को एक बार मन भर फिर देख लूं। अभी मेरी इच्छा उन दोनों को देखने से नहीं भरी।

मोहन आये। मानिनी भी आ गयी। अविनाश और सुकुमारी (अविनाश की स्त्री) भी आ गयी। मोहिनी, शारदा, सुकुमारी और अविनाश चारों एक ओर खड़े थे। माता ने मन भर अपनी किशोरी नववधू की ओर देखा। शारदा और मोहिनी की तरफ स्नेह भरी दृष्टि से देख कर फिर अविनाश का हाथ पकड़ कर उसका मुँह चूमा, और हाथ के इशारे से जाने को कहा। इसके बाद कुछ देर तक शान्त रही। फिर माता मोहन से बोली, "बेटा मोहन! चिरंजीव रहो, अब तुम एक बार अपने मुह से कह दो कि मदन को मैं अपनाये रहूँगा। कहो, "हाँ"। परन्तु मोहन के "हाँ" कहने के पहिले ही 'नारायण' कहते हुए माता की महान आत्मा शान्त हो गयी। मदन और सुशीला ने एक चीख़ मारी, और माता के मृत शरीर पर बेहोश हो कर झुक गये।

(क्रमशः)

उठो बहिनो उठो

भानु की किरणोंने,
आकर अब उजेला कर दिया।
थे पथिक जितने सभी ने,
रासता अपना लिया॥

प्यारी बहिनो उठ पड़ो,
अब क्यों बनी हो आलसी।
पक्षियों की पाँति अपने,
घोसलों से चल बसी॥

है बड़ा ही लाभदायक,
प्रात का नित जागना।
घर के कामों में लगो,
झारो बुहारो आँगना॥

आज का जो काम करना
है अभी से सोच लो।
भूली भटकी वस्तुओं को,
शीघ्रता से खोज लो॥

प्यारे बच्चों को उठा कर,
गोद में उन को धरो।
नैन में काजल लगाओ,
ऊबटन उनकी करो॥

दिन निकलने के प्रथम,
उठती हैं जो सुकुमारियाँ।
शास्त्र कहता होती हैं,
धनवान ऐसी नारियाँ॥

बस यही बिनती है मेरी,
बहिनो तुम दिन दिन बढ़ो।
पत्रिका "गृहलक्ष्मी" को,
चित लगा करके पढ़ो।

—रामदेव लाल

आज कल्ह का ब्याह।



पाठिकाओ !, आज दिन समय के साथ हम लोगोँ के विचारोँ मेँ भी परिवर्तन होने लगा है। विद्या की प्रबल धारा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। लोग मज्जन कूचो लेकर उसी धार मेँ मज्जन स्नान आदि कर रहे हैँ। उसी धार मेँ तैरते भी हैँ। विद्या नदी ही के रम्य तट पर मसहरी लगा कर विश्राम भी करते हैँ। उसी के जल मेँ नौका जलयान आदि चला कर व्यापार भी करते हैँ। उसी की सहायता से मनुष्य भी पखेरू हो आकाश मेँ चील्ह की तरह मँडराते हैँ। विद्या की शक्ति चंडी का रूप धारण कर हाथ मेँ खप्पर, कृपाण, गोली, बारूद, कार्तूस, राइफल ले मनुष्य रक्त, पशु रुधिर, पान करने को रण भूमि मेँ विचरती है। उसी की घोर गरज तोपोँ द्वारा कान के पर्दे फाड़ती है। यह विद्या की एक मामूली सी करामात है कि क्षण भर मेँ नगर को ऊसर और ऊसर को नगर बना दे और उसे कलावती गंगा, बिजली की रोशनी पंखे से सम्पन्न कर दे।

रेल की सड़क बनाना, पहाड़ मेँ रास्ते निकालना, हवा मेँ झूलने वाले पुलोँ पर से सेना पार करना, समुद्र की गहराई नापना, विना तार के एक स्थान पर बैठ दूर दूर की बात चीत सुनना, पानी से अग्नि प्रगट करना इत्यादि, इत्यादि, यह सब विद्या देवी के बाएँ हाथ के केवल खेल हैँ।

पाठिकाओ ! फिर आश्चर्य ही क्या है कि विवाह सम्बन्धी विचार भी बदल गया। जब पल पल, घड़ी घड़ी, मिनट मिनट, घंटे घंटे, दिन दिन, इस वेग से परिवर्तन हो रहा है ! दुनियाँ दूसरी होती जाती है ! नित्त ही नये नये फ़ैशन की भर मार हो रही है ! जो चीज़ अभी कल्ह ही देख कर आप बाज़ार मेँ अचम्भे मेँ हुई थीँ, आज उस से भी बढ़ कर आप ही के चित्त को लुभाने के लिए साफ़ करके सजाई जा रही है ! और कल्ह इस से भी अधिक मन मोहनी, चितचोर वस्तुएँ पहुँच जावेगी ! बीजक उनका आज ही सुबह की डाक से मिला है ! चीज़ेँ भी कल्ह जहाज़ से उतर कर तुम्हारे शहर को बम्बई पार्सल एक्सप्रेस से रवाना हो गयीँ ! तो क्या हम लोगोँ के विचारोँ पर इनका कुछ असर भी न पड़ा होगा ? नहीँ ! नहीँ ! अवश्य पड़ा होगा ! यह तो संसार का नियम है ! मनुष्य भी भेड़ बकरी की तरह एक को कूप मेँ गिरते देख पीछे आँखे बन्द कर झमा-झम झमा-झम कूदे पड़ते हैँ ; चार आदमियोँ को एक स्थान पर बात चीत करते देख सड़कोँ पर भीड़ लग जाती है; कोई यह भी नहीँ सोचता

कि इक्के गाड़ियाँ, मोटरों से दब कर पिस जायँगे. क्रूम इन्हें चटनी कर देगा। बस, आप ध्यान से यदि देखती चलें. तो यही भेड़िया-धसान मामला आप को स्टेशन से लेकर गंगा जी के घाट तक बराबर मिलेगा। मैं भली भाँति जानता हूँ कि आप अभी कह उठेंगी कि पढ़े लिखे लोग ऐसा नहीं करते, पर बहनो! मुझे शोक से कहना पड़ता है कि आप का यह कथन ग़लत है। पढ़े बे-पढ़े लोगों में केवल इतना ही फ़रक है कि पढ़े मनुष्य एक से एक जुड़ कर ऊँट की भाँति शान्ति पूर्वक एक के पीछे एक होकर चलते हैं और बे-पढ़े भेड़ की तरह 'मैं मैं' करते, लड़ते भिड़ते गर्द उड़ाते चलते हैं। बात फिर भी एक ही है, केवल दृश्य दो हैं, सो भी महज़ देखने ही में। आप मनुष्य की प्रकृत मनुष्य ही के साथ रहने दीजिए। हम लोगों को इस से क्या करना है! यह काम वैद्य, हकीम, डाक्टर का है. वही मनुष्य की नाड़ी देखें, निदान मिलावें। हम लोगों को अब ऐसी गोल-माल की बातें छोड़ अपने विषय पर चलना चाहिए।

पाठिकाओ! आप अब केवल पढ़े लिखे मनुष्यों के विचारों पर ध्यान दीजिये! आप भी पढ़ी लिखी हैं, आप से कोई बात छिपी नहीं है, हम ने आपने अलग अलग तो बहुत कुछ देखा होगा, पर अब आज आइये हम आप मिल कर अच्छे प्रकार देखें। शाम हो गई!, चलिये हवा खाने को पार्क चलें। वहाँ हवा भी खाएँगे और बहुत से पढ़े लिखे मनुष्यों को देखेंगे भी। बस अब क्या है! एक पन्थ दो काज हो जाएँगे।

बहन ज़रा बाएँ ओर बच जाना! वह बाइसिकिल की घंटी सुनाई देती है! यह भी सूट, बूट, कालर, नाइट कैप से सजे धजे कोई पढ़े लिखे ही जेन्टिलमैन दीखते हैं। हमारी समझ में तो अभी वह कोई कालेज के विद्यार्थी क्वारे नवयुवक ही जान पड़ते हैं। शादी तो यह एक न एक दिन करेंगे अवश्य ही। फिर रहा यह कि इनके रुचि अनुसार कैसी कन्या चाहिये? आप इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकीं पर मैं बहुत आसानी से कुल बातें बताए देता हूँ; कारण यह कि यह मेरे ही सहपाठी हैं; मुझसे इनसे इस संबन्ध में कई बार बातें भी हो चुकी हैं; यह बेचारे अपने व्याह ही के लिये पत्रों में बराबर वर की आवश्यकता ढूँढ ढूँढ कर देखा करते हैं; इसी प्रकार इनको सर मारते आज दिन छ महीने हो गये, पर बात क्या कि अब तक इनकी शादी पक्की नहीं हुई। साहब बहादुर ने अपने ही व्याह के लिए कई चिट्ठी पत्री भी भेजी थीं पर सभी जगह शादी कच्ची ही हो हो कर टूट गई। आखिर बात क्या है! गाँव में तो लड़के

९ वर्ष के भी नहीँ होने पाते तभी बहू का भार इनकी गर्दन पर धर दिया जाता है, और यह बेचारे तो बी० ए० पास भी हैँ घर खाने पीने को सब कुछ मौजूद है पर २२ वर्ष के हो गये अभी तक इन्हेँ हल्दी नहीँ, गरम मसाले की कौन कहे! कारण तो कुछ ज़रूर ही होगा। वह कारण क्या? आप कुछ सोच सक्ती हैँ?

ख़ैर देर होती है! लो मैँ बताता हूँ! कारण यह है कि आज कल जिसके घर खाने का सुख है और कन्या दो एक पुस्तक भी पढ़ी है, वह उस कन्या के लिए एक सुन्दर हृष्ट पुष्ट विमल बी०ए० पास ही वर चाहते हैँ! जिसमें दहेज़ भी न देना पड़े, शादी भी नवीन फ़ैशन के अनुसार करेँ। फिर क्या, लड़के ने अपनी हजामत बनवा डाली हैं, जो चुपचाप कान दबाए अपने आप को ससुर जी के हवाले कर दे और कुल नियमावली का पालन करना भी स्वीकार करले। नहीँ ऐसा कोई न करेगा और न यह इन्साफ़ ही है कि डिग्री बिलकुल इकतर्फ़ा हो, बेचारे वर का, जिसके ऊपर अन्त मेँ जन्म भर के लिए भार पड़ेगा, इज़हार न लिया जावे। अब आप ज़रा उसके विचारोँ को सुनिए! वह भी चाहता है कि कन्या मेँ निम्न लिखित बातेँ होँ।

(१) कन्या सुरूपा हो, जिसमेँ पति के नेत्रोँ मेँ किसी प्रकार की इच्छा या भूख गली कूचोँ के चारोँ को देखने या पेखने की बाक़ी न रहे।

(२) लड़की पढ़ी लिखी भी हो, नहीँ तो अल्प काल के लिए भी बिछुड़ने पर किसी ऐसे मनुष्य की आवश्यकता हो, जो इन दोनोँ के घरेलू समाचार को इधर उधर पहुँचावेँ।

(३) कन्या गृहकार्य मेँ कुशल हो नहीँ तो ब्याह होते ही घर मेँ भी एक स्कूल स्थापना भी ज़रूरत पड़ जावेगी। नई बधू को भी नये घोड़े की भाँति निकालना होगा।

(४) कन्या को मधुरभाषी होना चाहिए, नहीँ तो बड़ा भारी गोल-माल उत्पन्न हो जावेगा। ज़माना बिलकुल बदल गया है, लोग जानते हैँ कि कुनीन और चिरायता बहुत उपयोगी औषधियाँ हैँ, तिस पर भी बिला मिठाई मेँ पागे हुए कोई जेन्टिलमैन इन्हेँ नहीँ खाता, फिर कहो कौन कड़वे बोल से प्रसन्न होगा?

(५) कन्या का मिजाज कभी कड़ा न होना चाहिए। यह हमने माना कि अंग्रेज़ी मेँ पति को 'ब्राइडग्रूम' जोरू का साईस अथवा टट्टू कहते हैँ। पर कितनी तो स्त्री अबला होती हैँ। सत्य है कि अंग्रेज़ी पढ़े घोड़े बड़े सीधे, शान्त-चित्त के होते हैँ। तब भी सम्भव है कि कभी दुलत्तियाँ झाड़ देँ और कन्या का अंग भंग हो जावे। यदि टट्टू भी वैसे ही कड़े मिजाज़

का हुआ तो, क्या कहना है ? फिर तो मल्ल-युद्ध सदा ही हुआ करेगा।

(६) कन्या को सीना, बुनना, इत्यादि भली भाँति जानना चाहिए, नहीं तो फिर चैनपूर्वक गुजर होना कठिन ही है। पति साहेब यदि बी० ए० पास जेन्टिलमैन हुए, तो क्या खुद खाएँगे पहनगे और क्या मेमसाहबा को देंगे। साहब के तो पढ़ने ही का ख़र्च ५०) माहवार है, सो अभी मकान का किराया सिर्फ़ ३॥) ही है। नौकर चाकर कोई नहीं। जब ज़रा आज़ादी मिलेगी, तो १००) मासिक से अधिक तो साहब ही का ख़र्च होगा, मेम-साहिबा का हिसाब तो अलग रहा। अभी नौकर चाकर, चौकीदार, किराया बंगला, ख़र्च गाड़ी घोड़ा का तो अभी ज़िक्र ही नहीं है। बाल बच्चों का ख़र्च, उनकी पढ़ाई लिखाई का ख़र्च जोड़ते हुए तो डर मालूम होता है। डरता हूँ कि कहीं कोई बिला ब्याहे जेन्टिलमैन न इस को पढ़ लें वरना वह शादी की आशा ही छोड़ देंगे। ख़ाली कपड़ों की सिलाई ही साल में २००) से कम न लगेगी। यदि मेम साहिबा इतने की भी बचत न करेंगी, तो फिर अर्धांगिनी किस बात की ?

(७) कन्या को भी हृष्ट पुष्ट होना चाहिए नहीं तो कौन ऐसा बुद्धि का शत्रु है जो जान बूझ कर अपने घर को शादी करके हस्पताल बनावेगा।

(८) भोजन बनाना भी बहुत ज़रूरी है। यदि स्त्री को यह न मालूम हो तो समझना चाहिए कि उसने अपनी उम्र वृथा ही गवाँई। आप कहेंगी रसोइया रख सकते हैं। पर यह तो ख़र्च बढ़ाने की बात है। अलावा इसके रसोइया जो नौकर रक्खा जावे वह भोजन बना देगा पर पाक कदापि न बना सकेगा। हर एक स्त्री का धर्म है कि वह अपना ही बनाया हुआ भोजन पति को खिलावे—क्या मालूम कोई ज़हर खिला दे तो फिर स्त्री क्या करेगी ?

(९) गृह-चिकित्सा का भी ज्ञान आवश्यक है। इस से भी बहुत कुछ डाक्टर की फ़ीस बच सकती है।

(१०) संगीत विद्या भी ख़ास स्त्रियों ही की है। यदि यह विद्या स्त्री को भली भाँति मालूम हो तो पति को जंगल में भी स्वर्ग का आनन्द दे सकती है। मुर्झाये दिलको हरा करने के लिए इस से बढ़ कर और दूसरी युक्ति नहीं।

पाठिकाओ! यदि आप विचार करके देखें तो स्त्रियों में ऊपर की बातें ज़रूर होनी चाहिए नहीं तो इस ज़माने में आनन्द पूर्वक जीवन बिताना कठिन है। बी० ए० पास करने से मास्टरी सहज में मिल जाती है पर तनख्वाह ही क्या मिलती है ? केवल ५०) या ६०) बहुत अगर कहीं भाग्य लड़ गये तो ७०) रुपये मिल गये। अगर बी० ए० पास करने के बाद एम०

एल० बी० भी पास किया तो भी कौनसा कारूँ का खज़ाना मिल जाता है। वकीलों की आज कल्ह वैसे ही ज्यादती है। अधिक तो मारे मारे ही घूमते हैं। नये की तो और भी मिट्टी खराब है। यहाँ तो हमें कहना पड़ता है।

'एक तो गिलो दूसरे नीम चढ़ी'

एक तो वकील वैसे ही ज़रूरत से अधिक; दूसरे नये भी है। फिर क्या पूछना है! आमदनी की यह दशा और खर्च की नींव पहले ही से पड़ चुकी है। यदि स्त्री पूरे तौर से काबिल न हुई तो रोटी की जगह तिनके चुनने होंगे और तब भी पेट न भरेगा!

पाठिकाओ! अब हमारी आप से यही प्रार्थना है कि कन्या को बहुत समझ कर शिक्षा दीजिए कि वह पति के साथ ही खर्च में सुख से जीवन व्यतीत कर सके। बदन की सफ़ाई का भी खयाल रखना भी अति उपयोगी है। ऐसा करने से रोग नज़दीक नहीं आते। खानापकाना, तरह तरह की मिठाइयाँ तैयार करना भी ज़रूर सिखाना चाहिए। मैंने अकसर कहते सुना है। "खाना पकाने के लिए एक मिसरानी रखलेने में कितना खर्च पड़ेगा?" यह हमने माना पर फिर भी जब तक पाक विद्या अपने आपको न मालूम हो मिसरानी से भी नहीं पकवा सक्ती। अगर कोई एन-जिनियर बना चाहे तो पहले उसको लोहार बढ़ई का काम सीखना होगा। तारीफ़ भी जभी है कि कुल काम मालूम ज़रूर हो। विलायत में बादशाह की कन्या को कपड़ा सीना भोजन बनाना, गाना, बजाना, इत्यादि, इत्यादि सब सिखाये जाते है। अंग्रेज़ी में एक मसला है जिस का अर्थ यह है कि 'यदि रानी की भाँति खाना चाहती हो तो बाँदी की भाँति परिश्रम से कमाओ भी।'

कपड़े की काट छाँट बहुत कठिन है इसको अवश्य सीखना चाहिए। लाट साहब तक की मेम साहिबा अपनी पोशाक बहुधा खुद ही बनाती हैं, फिर हमारे यहाँ की स्त्रियाँ क्यों इससे मुख मोड़ती हैं। हर एक माता का धर्म है घर में कपड़ा सीने का कुल सामान मशीन इत्यादि अपने यहाँ रक्खे और कन्या को इस गुण में पूरे तौर से कुशल कर दे।

यदि यह बातें न हुईं तो मैं फिर कहे देता हूँ कि आप तो एक बी० ए० पास के साथ कन्या का व्याह सुख के लिए कर देती हैं पर आमदनी की कमी और मूर्खता के कारण सारा सोचा हुआ स्वप्न हो जाता है। कन्या को तो पापड़ ही बेल कर जिन्दगी टेर करनी पड़ती है।

—पी० एन० द्विवेदी

पुत्र शोक

एक समय मैं शिकार करने,
दंडक के बन सघन गया।
थीं तुम जब क्वाँरी कौशल्या,
मैं भी था युवराज नया॥

कहते मुझे शब्द-वेधी थे,
फूला नहीं समाता था।
हाय! गर्व तू महा अधम है,
तू मुझ को बहकाता था॥

मैं ने कई शूर शेरों को,
निज बाणों से मारा था।
कितने ही जीवों को देखे,
बिन घायल कर डाला था॥

हाय! हुआ उत्साहित दिन दिन,
करने लगा नित्य ऐसा।
नहीं जानता था भविष्य मैं,
मुझे शोक होगा कैसा॥

मैं ने उसी दिवस हे रानी,
सुना शब्द पानी पीते।
छोड़ा अति ही पैने शर को,
"हाय" एक क्षण के बोते॥

सुनी मर्म-भेदी यह बाणी,
हृदय विदारण मम करती।
हाय नहीं थी वह बन-पशु की,
थी वह इक विह्वल यतिकी॥

"हे नृप क्या इस भूतल में अब,
धर्म शेष कुछ रहा नहीं।
क्या मैं ने अपराध अहो नृप,
कुछ अनजाने किया कहीं॥

फिर मुझ निरपराध बालक को,
क्यों तुमने यह दंड दिया।
मुझ को मार कहो नृप तुमने,
क्या राजसी न्याय किया॥

मेरे बूढ़े नेत्र हीन मा बाप,
बैठ कर आश्रम पर।
बाट जोहते होंगे मेरी,
लाता होगा पानी भर॥

हाय! उन्हें मालूम नहीं यह,
विधि का कर्तब न्यारा है।
उन का प्यारा पुत्र शीघ्र ही,
यमपुर जाने हारा है॥

सुनो नृपति वर मेरी बिनती,
मुझ पर तुम यह कृपा करो।
ले जल शीघ्र इसी सरिता से,
प्यास पिता की शीघ्र हरो॥

पर जाने के पहिले हे नृप,
क्रूर तीर लो हाय निकार।
है जो करता दग्ध हृदय मम,
हे नृप उससे मुझे निवार"॥

जल लेकर जब मैं कौशल्ये,
पहुँचा मुनि के आश्रम को।
बोले मुनि, "हे पुत्र निकट आ,
हृदय लगा लूँ मैं तुझको॥

प्यारे पुत्र सकुचते क्यों है,
मैं ने क्या कटु बचन कहे।
वृद्ध पिता के वचन पुत्र क्या,
तुझसे जाते नहीं सहे॥

हे अन्धे के रत्न ! निरुद्यम
की लाठी सम, मेरे लाल ।
क्योँ हो तुम चुपचाप अरे,
बोलो मेरे अति सुंदर बाल" ॥
कौशल्ये उस वृद्ध पिता ने,
ऐसा आदर कर मेरा ।
स्वागत हा निजपुत्र-वधिक का,
किया उन्होंने बहुतेरा ॥
शोकतप्त हो तब कौशल्ये,
उनको मैँ ने बतलाया ।
तब बालक का हाय बधिक हूँ,
जल ले कर हूँ मैँ आया ॥
मैँ ने उसे बनैले पशु के,
धोखे मैँ बध डाला नाथ ।
क्षमा क्षमा हे नाथ चाहता,
हूँ मैँ धर चरणोँ मैँ माथ" ॥
"सब शोकोँ से ज्यादा विह्वल,
करता है प्रिय पुत्र वियोग ।
तू भी जानेगा अय दशरथ,
होगा जब ऐसा संयोग ॥
देख पिता का पुत्र शोक मैँ,
निज प्राणोँ को हा तजते ।
ऐसे ही तुझ को भी तजना,
होगा" बोले मुनिवर वे ॥
उसी शापके वशीभूत हो,
हे रानी हूँ तजता प्राण ।
राम सरीखे विपिन सिधारे,
है मुझ को यह दुःख महान ॥
बोये मैँ ने हैँ बबूल तो,
आम कहाँ से अब पाऊँ ।
आहत होकर पुत्र शोक से,
उसी तरह सुरपुर जाऊँ" ॥

—प्रेमा

देवोपूजा



पाठक ! आप प्रति वर्ष देखते हैं कि चैत मैं सम्वत्सर के लगते ही देवी पूजा होने लगती है। यह आर्योँ का स्त्री जाति की प्रतिष्ठा करने का आदर्श है। प्राचीन समय मैँ उन स्त्रियोँ का बहुत बड़ा मान होता था, जो रणक्षेत्र मैँ प्राणार्पण करती थीँ।

मार्कंडेय पुराण मैँ स्त्री जाति की वीरता के अध्याय के अध्याय भरे पड़े हैँ, उनका रण-कौशल बहुत अच्छी दर्शाया गया है। यदि हम अत्युक्तियोँ पर ध्यान न देँ, तो कह सकते हैँ कि वे पुरुषोँ से युद्ध से किसी प्रकार कम न थीँ। जो दुर्गापाठ घर घर और देवियोँ के मठ मैँ पढ़ा जाता है, क्या है ? उसे ध्यान देकर पढ़ने से जान पड़ता है कि जिस काम को पुरुष नहीँ कर सके, उसे स्त्रियोँ ने कर दिखाया था। देवता समरांगण मैँ महिष राक्षस और शुंभादि से पराजित हुए। देवताओँ के शत्रु असुरोँ का बध करने को उनकी देवियोँ

ने उग्र रूप धारण किया। विजय भी प्राप्त की। जब ये कोपवती हो रुद्ररूप धारण करती हैँ, तो विना संहार किये नहीँ रह सकतीँ, इसी रूप का नाम काली कराली है। दुर्गा देवी की उत्पत्ति मेँ लिखा है, सम्पूर्ण देवताओँ के शरीर से तेज निकल कर एकत्र हुआ, उससे एक देवी रूप शक्ति उत्पन्न हुई। उसने महिषासुर का संहार किया।

शुंभनिशुंभ जैसे उग्र और बल प्रताप-पूर्ण राक्षसोँ से युद्ध मेँ जब देवता हार गये, तो प्रत्येक देव के शरीर से एक वैसी ही शक्ति निकली, जैसा कि वह देव था। यथा महादेव के शरीर से जो माहेश्वरी शक्ति निकली, वह बैल पर सवार थी। उसके हाथ मेँ त्रिशूल था, सर्प लिपट रहे थे और चन्द्र रेखा से मस्तक चमक रहा था। इसी प्रकार विष्णु की वैष्णवी शक्ति शंख चक्र गदा पद्म धारण किए समरांगण मेँ विचरण करती थी। यह अलंकार कथा है। बात यह है कि प्रत्येक देव की देव-पत्नियाँ रणक्षेत्र मेँ भगवती दुर्गा के सहाय के लिए उपस्थित होकर युद्ध करती थीँ। जिस वीरता से इन का युद्ध हुआ है पढ़ते ही रोमाञ्च खड़े हो जाते हैँ और पुलकावली से हृदय भर जाता है। विजयपर लिखा है "पुष्पवृष्टिमुचोदिवि" अर्थात् अकाश मेँ विमानोँ पर बैठे हुए देव गण इनके युद्ध पर मुग्ध हो फूलोँ की बर्षा करते थे। जयघोष से नभोमंडल को व्याप्त करते थे, जो प्रतिध्वनित हो दशोँ दिशाओँ मेँ गूँजता था। समय पाकर इन वीर नारियोँ को भी रामकृष्ण की भाँति मान लिया गया और उसी भाव से पूजा होने लगी।

इस समय यूरोप के रणक्षेत्र मेँ रूस फ्राँस, जर्मन और इंगलैंड की स्त्रियाँ उपस्थित हैँ। वे युद्ध तो नहीँ करतीँ किन्तु रोगियोँ की सेवा आदि भली भाँति कर रही हैँ।

पाठक पढ़ चुके हैँ कि मानभूमि बेलजियम की वीर पत्नियोँ के पास जब गोला बारूद चुकगया तो उन्होँने जर्मन सैनिकोँ पर अत्युष्ण जल की वर्षा की थी कि और नहीँ तो इसी उपाय से शत्रुओँ के शरीर झुलस कर आवले उठ आवेँ। आप यह भी पढ़ चुके हैँ कि इंगलेंड मेँ स्त्रियोँ की एक सेना बनने वाली है। आज युरोपियन बीराङ्गनाएँ बीर रसभरे राष्ट्रीय गीत गाती हुई पुरुषोँ को उत्साह दे रही हैँ।

हमारी प्राचीन महिलाएँ न केवल युद्ध मेँ वरन विद्यादि गुणोँ मेँ भी किसी प्रकार पुरुषोँ से कम न थीँ, यही कारण है कि वे यज्ञ मेँ प्रतिष्ठा के साथ बिठलाई जाती थीँ। यज्ञाधिकार उसी पाणि गृहीता भार्या को प्राप्त होता था जिसका विवाह विधिवत् होता था। अर्थात् घर मेँ डाली हुई का यज्ञमेँ आसन न था। भारतीया महिलाओँ की प्रतिष्ठा का प्रमाण आज दिन पुरुषोँ के नामोँ से ही

स्पष्ट है कि प्रथम पत्नी का नाम उपरान्त पति का होता है, यथा—गौरीशंकर, सीताराम, लक्ष्मीनारायण इत्यादि नामों के आरम्भ में गौरी, सीता और लक्ष्मी का नाम है।

धर्म, शास्त्र में भी कहा है कि—

"पितृभि र्भ्रातृभि श्चेताःपतिभि र्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहु कल्याणमीप्सुभिः॥
"यत्र नार्यस्तु न पूज्यते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रेतास्तु न पूज्यते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

जहाँ स्त्रियों का सत्कार होता है वहाँ देवता रमण करते हैं किन्तु जहाँ उनका अपमान होता वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। इस लिए पिता भ्राता, पति और देवर आदि सब से ही स्त्रियाँ पूज्य हैं।

यह भारतवर्ष सदा से गुणज्ञ रहा, क्या पुरुष क्या स्त्री सब ही गुणियों का इसने मान किया। ये बड़े मठ मंदिर जिनमें देव देवियों की प्रतिष्ठा है देश के गुणी जनों के मान के चिन्ह हैं। कोई समय ऐसा आया कि गन्धाक्षत चढ़ाना ही (जो जीवित समय की पूजा है) सत्कार का साधन ठहर गया और इन मूर्त्तियों में लोग ईश्वरीय भाव रखने लगे हैं।

हमें देशभक्तों का चाहे पुरुष हों चाहे स्त्रियाँ सच्चे भाव से हार्दिक मान करना चाहिये, उनके स्मारक चिन्ह भी स्थापित करने चाहिए।

जब तक भारत, समय २ के देश हितैषी पुरुषों का स्त्री, पुरुष, जाति और धर्म का विचार छोड़ आदर न करेगा कभी देश न सुधरेगा। जगत में उसी कार्य की उन्नति होती है जिसकी देशवासी प्रतिष्ठा करते हैं। अतः हमें प्राचीन युग के समान गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, कौशिल्या और द्रौपदी आदि बनाने के लिये अपने प्राचीनों का अनुकरण करना योग्य है।

किसी स्त्री को विदुषी देखकर मुंह बनाना नीचता का व्यवहार है। इसका प्रभाव बुरा और हानिकर है।

हमारी सन्तान की शिक्षा, गृह-प्रबन्ध धनकी वृद्धि और रक्षा, एवम् राष्ट्र की उन्नति के लिये आवश्यक है कि हम तुम स्त्रियों को योग्य बनावें और उनकी पूजा करें।

(भा० सु० प्र०)

प्राणेश्वर

(१)

धन्य हो मम प्राणपति,
हे धन्य हो प्राणेश्वर।
वन्दना किस भाँति से,
तेरी करूँ परमेश्वर॥

(२)

सौभाग्य सुख सारे प्रभो,
मैं संग तेरे पा रही।

तन धन की तेरी संगिनी,
औ' स्वामिनी कहला रही ॥

(३)

हे प्राण प्यारे सँग तिहारे,
मैं सदा रहती सुखी।
सम्भावना ऐसी नहीँ,
प्रभु साथ मैं होऊँ दुखी ॥

(४)

निज जनक जननी छाँड़ि के,
प्रियतम तुम्हारे साथ हूँ।
पर ग्लानि मन में मैं कछू,
नहिँ मानती हे नाथ हूँ ॥

(५)

तव नाम को मैं हे प्रभो,
लेती सदा हूँ नेम से।
है विदित मुझ को आप,
जैसा चाहते हैं प्रेम से ॥

(६)

मम चिबुक छू हृदयेश्वर,
हो पूँछते इस भाँति से।
"मम संग हे प्राणेश्वरी,
रहती भला किस भाँति से" ॥

(७)

परदेश जाने के लिए,
जब माँगते हो तुम विदा।
हाय मुझ को छोड़ जब,
प्रभु चाहते होना जुदा ॥

(८)

कर्तव्य वश कहती सदा,
"अच्छा प्रभो जी जाइये।
मुझ पर कृपा ऐसी रहे,
जी से नहीं बिसराइये" ॥

(९)

पर हृदय मेरा प्राण वल्लभ,
सत्य सत्य यही चहै।
यह प्राण प्यारा प्रभु हमारा,
नैन ढिग नित ही रहै ॥

(१०)

मैं चाहती हूँ सर्वदा,
प्रभु जहँ रहैं सुख से रहैं।
मन कामनाएँ आप की,
पूरी सभी होती रहैं ॥

—एक पाठिका

फुट कर बातें

एक स्त्री को फांसी

अभी हाल में बम्बई हाईकोर्ट से एक स्त्री के लिये फाँसी का हुकम बहाल रहा। इस डाइन ने केवल १२३ रुपये के गहने के लालच में आकर एक छोटी बालिका को बड़ी निर्दयता के साथ बध करके तालाब में फेंक दिया था। जो बेसमझ स्त्रियाँ बच्चों को बिना गहना पहिनाये नहीं मानतीं वे इस दुर्घटना को ध्यान से पढ़ें और सचेत हों।

* * *

सिपाही की स्त्री सती

पञ्जाब-काङ्गड़े की डहरा तहसील के भनीगोटा ग्राम का ओङ्कार सिंह नामक एक राजपूत कमसरियट विभाग में नौकर था। वह कमसरियट के साथ रणस्थल को गया था। वहाँ युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी स्त्री ने अपने स्वामी की मृत्यु का समाचार पाकर अपने पति का क्रिया-कर्म इत्यादि विधि-पूर्वक किया। इसके उपरान्त रात को अपने पति के कपड़े पहन घर के अन्दर आग लगा वह सती हो गई।

***

बम्बई की स्त्रियों की ओर से सहायता

वर्तमान युरोपीय युद्ध के आरंभ में बम्बई प्रान्त की स्त्रियों ने सरकार को अच्छी सहायता दी है। कोई २५ हज़ार से ऊपर कपड़े रणक्षेत्र में भेजे हैं। इनके सिवाय सवा दो सौ से ऊपर थैले उन लोगों के लिए भेजे थे जो अस्पताल से चंगे होकर निकलें। उनमें पाजामा, कुर्ते, तौलिया, कम्बल और बनियाइन आदि अनेक आवश्यक चीज़ें रक्खी हुई थीं और उन पर लिखा था "बम्बई प्रान्त की स्त्रियों की ओर से एक ब्रिटिश सैनिक के लिये"।

***

पति से तिरस्कार किये जाने पर आत्महत्या

कटक के सब डिपुटी कलक्टर बाबू ब्रजसुन्दर भारद्वाज की कन्या ने हालही में आत्महत्या कर ली। कहते हैं कि मरने के पहले उसने अपने स्वामी तथा माता के नाम से दो चिट्ठियाँ लिखी थीं। स्वामी के पत्र में उसने लिखा था कि "यदि एक दिन भी मैं आपके चेहरे पर हँसी की रेखा देखती तो ऐसा काम मैं कदापि नहीं करती।" उसके स्वामी एक शिक्षित युवक हैं और हाल ही में उन्होंने बी० एल० की परीक्षा पास की है। भारतवर्ष में ऐसी अबला बालिकाओं की कमी नहीं है जो स्वामी से उचित आदर सत्कार न पा सकने के कारण हताश हो नाना प्रकार के कुकर्म करने को तैयार हो जाती हों।

***

स्वर्गीय महात्मा गोखले की कन्याएँ

महात्मा गोखले के विषय में अनेक लेख समाचार पत्रों में निकल चुके हैं। परन्तु उनके परिवार के विषय में बहुत कम बातें मालूम हुई हैं।

उनकी धर्मपत्नी का बहुत दिन हुए देहान्त हो चुका है। उनकी सन्तति केवल उनकी दो कुमारी पुत्रियाँ हैं। बड़ी बी० ए० में और छोटी एन्ट्रेंस में शिक्षा पाती है। यह स्पष्ट है कि महात्मा गोखले उनके निर्वाह के लिये कोई स्थायी सम्पत्ति नहीं छोड़ गये। इसलिए कुछ सज्जनों ने उन्हें आर्थिक सहायता पहुँचाना चाहा। परन्तु उन्होंने यह कहकर इन्कार कर दिया कि "हमारे पूज्य-पिता

की बनाई हुई एक गणित की पुस्तक से सत्तरह अठारह रुपया महीने की आमदनी हो जाती है। बस इतना हम दोनोँ बहिनोँ के निर्वाह के लिए बहुत है।" इन देवियोँ के इस आत्म-अवलम्बन का क्या ठिकाना है। महात्मा गोखले जैसे आत्मत्यागी पुरुष की सन्तति ऐसी ही होनी चाहिये।

* * *

हरिद्वार के कुंभ का मेला

इस वर्ष हरिद्वार मेँ कुंभ स्नान के निमित्त कोई ६ लाख के लग भग यात्री इकत्रित हुए। ऐसे हर एक मेले मेँ सरकार की ओर से उचित प्रबन्ध किया जाता है। परन्तु इस मेले मेँ विशेषता यह हुई कि स्वर्गीय गोखले की स्थापित "भारत सेवा समिति" "प्रयाग सेवा समिति" और कलकत्ते की "मारवाड़ी सहायक समिति" इत्यादि के स्वयम्-सेवकोँ ने यात्रियोँ के आराम और सुविधा के लिए ऐसा उत्तम प्रबन्ध किया कि क्या पुलीस और क्या यात्री सभी उनकी निस्वार्थ सेवा की मुक्तकंठ से आज प्रशंसा कर रहे हैँ।

इस सम्बन्ध मेँ सब से बढ़ कर आनन्द की बात यह है कि उक्त स्वयम् सेवकोँ मेँ केवल पुरुष ही न थे किन्तु बम्बई, नागपुर और पूने के सेवा-सदन की बहुत सी देवियाँ भी थीँ जो रोगियोँ की सेवा सुश्रूषा करती थीँ। मेले के अस्पताल के सरकारी डाक्टर ने इन लेडी नर्सो—महिला सेविकाओँ—को धन्यवाद दिया है।

* * *

रेड क्रास सोसाइटी

युद्ध सम्बन्धी ख़बरोँ मेँ प्रायः "रेड-क्रास" का नाम सुना होगा। यह क्या है? अनेक डाक्टर, डाक्टरनी अथवा मरहम पट्टी करने मेँ चतुर स्त्री पुरुषोँ का समूह है जो अपनी इच्छा से, युद्धक्षेत्र मेँ जाकर, घायलोँ की सेवा करता है। चाहे वे (घायल) किसी पक्ष के होँ।

इनके पास लाल रङ्ग के क्रास—सूली—के आकार की एक पताका होती है। उसे देखकर इनको कोई नहीँ मारता। यह बात बहुतोँ को न मालूम होगी कि इस परोपकारिणी संस्था का स्थापन करने वाली एक धार्मिक योरोपियन रमणी थीँ। आपका पवित्र नाम था मिस फ्लारेन्स नाइटिङ्गेल था। यह एक धनाढ्य और उच्च घराने की महिला थीँ। इन्होँने सन् १८५४ ई० मेँ इङ्गलैंड और रूस की क्रिमिया वाली लड़ाई मेँ उक्त प्रकार के स्वयम् सेवकोँ का एक दल बना कर हजारोँ घायलोँ को स्वास्थ्य लाभ करने मेँ सहायता पहुँचाई थी। अभी थोड़े दिन हुए इस वीराङ्गना का स्वर्गवास हुआ है परन्तु उसका चलाया हुआ काम जो अब भी वर्तमान युद्ध मेँ बरा-

बर हो रहा है, उसको अमर किये हुए हैं।

***

सोशल कानफ़रेन्स में स्त्रियों की चर्चा

ईस्टर की छुट्टियों में इस प्रान्त की सामाजिक सुधार समिति (शोशल कान्फ़रेन्स) का अधिवेशन गोरखपुर में हुआ था। सभापति महोदय ने अपने निबन्ध में कुछ स्त्रियों के विषय में कहा था। गृहलक्ष्मी की पाठिकाओं की सूचनार्थ उसका सार नीचे दिया जाता है:—

आपने कहा कि स्त्रियों के विषय में हम लोगों का यह कुविचार चला आ रहा है कि वे केवल पुरुषों की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए हैं, अर्थात् उनको शिक्षित इस लिए होना चाहिए कि वे पुरुषों के लिए अच्छे अच्छे व्यंजन पकवान तैय्यार कर सकें। सारांश यह कि उनको पुरुषों के लिए सब कुछ सीखना चाहिए इत्यादि।

सभापति ने पुरुषों के इस संकुचित भाव से बिरोध प्रकट किया और कहा कि स्त्रियों को न केवल पुरुष किन्तु अपने लिए भी उन्नति करनी चाहिए। जैसा कि प्रत्येक पुरुष का अपने तथा अपनी स्त्री के लिए उन्नति करना कर्तव्य है। इस विचार को तिलाञ्जलि दे देना चाहिए कि स्त्री का काम सेवा करना और पुरुष का काम उससे सेवा लेना है। स्त्री और पुरुष का परस्पर क्या सम्बन्ध है? इस विषय में एक ऐसे हिन्दू को जो अपने धर्म को जानता है कभी घबड़ाहट न होगी कारण यह है कि हिन्दू धर्म में इस प्रकार की ऊँच नीच का भेद विधान नहीं है किन्तु उसके अनुसार स्त्री और पुरुष संयुक्त होकर एक सर्वांग पूर्ण आदर्श-जीवन बनाते हैं।

इसके पश्चात् सभापति ने स्त्री शिक्षा के विषय में कहा कि अब भी स्त्रियों की शिक्षा आवश्यक होने के स्थान केवल शौक़िया समझी जाती है अर्थात् यदि आवश्यकता हो तो लड़के का पिता उसकी शिक्षा के लिए ऋण लेने को तैयार हो जायगा परन्तु कन्या की शिक्षा के लए वह इतना कष्ट कदापि न सहेगा। अभी तक यही बाद विवाद चला जाता है कि स्त्रियों को किस प्रकार की शिक्षा दी जाय और कहाँ तक। सभापति जी की राय में कन्याओं की शिक्षा के लिए कोई सीमा न होनी चाहिए जैसा कि लड़कों की शिक्षा के लिए कोई सीमा नहीं है। अब रही यह बात कि 'कन्याओं को कैसी शिक्षा दी जावे', यह कन्याओं की योग्यता स्वभाव और रुचि आदि पर निर्भर है। आपने कन्याओं के शारीरिक व्यायाम पर भी बल दिया और कहा कि इसके लिए उनको खेल कूद में भी सम्मिलित होना चाहिए।

प० सुदर्शनाचार्य, बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।

भारत गवर्नमेन्ट से रजिस्ट्री की हुई जगत प्रसिद्ध सैकड़ों प्रशंसा पत्र प्राप्त

८० बीमारियों की एक हुक्मी दवा **पीयूष रत्नाकर** ८० बीमारियों की एक हुक्मी दवा

यह एक ही दवा बिजली के मुआफिक सब अन्दर और बाहर की बीमारियों को सिर से लेकर पाँव तक दो तीन बूँद खाते ही और मलते ही आराम करती है। सैकड़ों दवाओं की शीशियाँ इस एक शीशी का मुकाबिला नहीं कर सकतीं। किसी रोग में दे दो बस आराम है। ऐसी दवा आपको घर बैठे मिलती है तो क्यों इधर उधर की जहरीली दवाओं को खरीद करने में अपना पैसा बरबाद करते हो, सबको छोड़ो और (पीयूष रत्नाकर) की एक एक शीशी मँगा कर अपने पास हर समय रक्खो। की० १) रु० बड़ी शीशी १॥।) वी० पी० ।) तीन लेने से वी० पी० ख़र्च माफ़, छै लेने से वर्मा घड़ी इनाम, बारह लेने से कलाई पर बाँधने की घड़ी इनाम॥



सुगन्धित पुष्पविलास

यह तेल अजीब तासीर रखता है, यानी सिर के गये हुए बालों को पैदा करता है, और छोटे बालों को बहुत लम्बे बढ़ाता है और काले भौंरे के माफिक मुलायम रेशम के समान कर देता है। दिमाग में ताकत मगज में तरावट रखता है। खुशबू इसकी बहुत मीठी प्यारी इत्र को मात करती है। कीमत एक शीशी ॥=) वी० पी० ।) तीन लेने से वी० पी० खर्च माफ़, छै लेने से वर्मा घड़ी इनाम, बारह लेने से कलाई पर बाँधने की घड़ी इनाम॥

गोरे खूबसूरत बनने की दवा

सुगंधित फूलों का दूध—यह दवा विलायती खुशबूदार फूलों का अर्क है। इसे विलाययत के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने बना कर अभी भेजा है। इसको ७ दिन चेहरे पर मालिश करने से चेहरे का रंग गुलाब का सा हो जाता है, बदन से खुशबू निकलने लगती है, चेहरे के स्याह दाग मुहासे छीप झुर्रियाँ फोड़ा फुंसी खुजली आदि दूर होकर ऐसी खूबसूरती आ जाती है कि काली रंगत चाँद सी चमकने लगती है। जिल्द मुलायम हो जाती है। कीमत १ शीशी १।) रु० वी० पी० ।) तीन लेने से ४) वी० पी० खर्च माफ़, छै लेने से वर्मा घड़ी इनाम, १२ लेने से कलाई पर बाँधने की सुनहरी चूड़ी की घड़ी इनाम॥

जसवन्त ब्रादर्स, नं० ७ मथुरा।

वैशाख विषय-सूची

गृहलक्ष्मी के नियम।

[१] गृहलक्ष्मी प्रति मास के आरम्भ में प्रकाशित होती है। [२] डाक-व्यय सहित इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) मात्र है। [३] नमूने की कापी मँगाने वालों को चाहिए कि =)॥ का टिकट भेज कर हम से नमूना मँगा लें। यदि वे ग्राहक हो जायँगे तो उन्हें शेष अङ्कों के लिए केवल १।=) देना पड़ेगा। [४] ग्राहकों को चाहिए अपना पता पूरा और साफ लिखें जिससे उनके पास पत्रिका पहुंचने में गड़ बड़ी न पड़े। [५] वर्त्तमान समय की राजनीति तथा धार्मिक झगड़ों से सम्बन्ध रखने वाले लेख इस पत्रिका में नहीं छापे जाते। [६] विज्ञापन की छपाई एक बार के लिए प्रति पंक्ति।=), आधे पृष्ठ के ५॥) और पूरे पृष्ठ के १०) हैं। अधिक दिनों के लिए विज्ञापन छपाना हो तो पत्र व्यवहार करके तै कर लेना चाहिए। [७] बैरङ्गपत्र नहीं लिए जायँगे। जवाबी कार्ड या आध आने का टिकट आये बिना किसी के पत्र का उत्तर नहीं दिया जायगा। [८] लेख, परिवर्त्तन के पत्र, समालोचना के लिए पुस्तकें आदि, रुपया-तथा और सब तरह के गृहलक्ष्मी सम्बन्धी पत्र इस पते पर भेजने चाहिए—

श्रीमती गोपालदेवी

'गृहलक्ष्मी'-कार्य्यालय, इलाहाबाद

आनन्द समाचार ! आनन्द समाचार

पण्डित सुदर्शनाचार्य्य, बी० ए०

द्वारा सम्पादित

शिशु

बालक और बालिकाओँ के लिए अनेक चित्रोँ से चित्रित हिन्दी भाषा का अपूर्व

मासिक-पत्र

शीघ्र ही प्रकाशित होगा

पृष्ठ संख्या ५० प्रतिमास

वार्षिक मूल्य १।) सवा रुपया

परन्तु

इस महीने के भीतर ग्राहक-श्रेणी मेँ नाम लिखाने वालोँ को इस वर्ष **केवल १) एक रुपये में** दिया जायगा।

बस अब देर न कीजिये

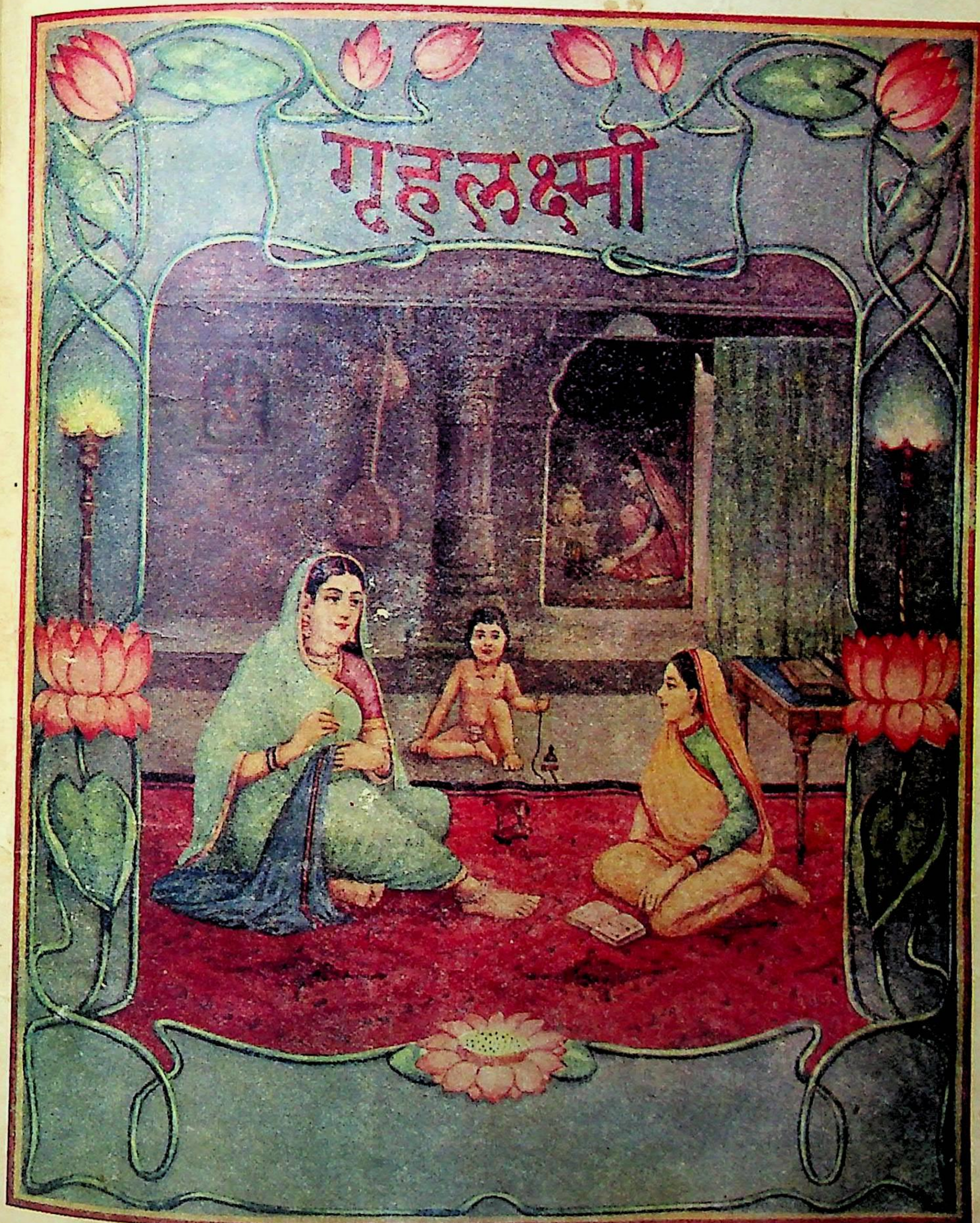
एक कार्ड भेज कर तुरन्त ग्राहकोँ में नाम लिखा लीजिये

☞ अभी से दाम भेजने की जरूरत नहीँ है। आप केवल एक कार्ड मैनेजर, "शिशु", इलाहाबाद के पते पर भेज कर ग्राहकोँ मेँ नाम लिखवा लीजिये, पत्र प्रकाशित होते ही १) रु० के वी० पी० द्वारा आपकी सेवा मेँ भेजा जायगा।

पत्र व्यवहार नीचे लिखे पते से कीजिये—

मैनेजर "शिशु" इलाहाबाद

षष्ठ वर्ष] ज्येष्ठ, सम्वत् १९७२ [तृतीय दर्शन



वार्षिक मूल्य १॥)] सम्पादक— [प्रति संख्या =)॥

पण्डित सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, श्रीमती गोपालदेवी।

विषय-सूची

पृष्ठ

विषय-सूची

पृष्ठ

गृहलक्ष्मी के नियम।

[१] गृहलक्ष्मी प्रति मास के आरम्भ में प्रकाशित होती है। [२] डाक-व्यय सहित इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) मात्र है। [३] नमूने की कापी मँगाने वालों को चाहिए कि =)॥ का टिकट भेज कर हम से नमूना मँगा लें। यदि वे ग्राहक हो जायँगे तो उन्हें शेष अङ्कों के लिए केवल १।=) देना पड़ेगा। [४] ग्राहकों को चाहिए अपना पता पूरा और साफ लिखें जिससे उनके पास पत्रिका पहुंचने में गड़बड़ी न पड़े। [५] वर्त्तमान समय की राजनीति तथा धार्मिक झगड़ों से सम्बन्ध रखने वाले लेख इस पत्रिका में नहीं छापे जाते। [६] विज्ञापन की छपाई एक बार के लिए प्रति पंक्ति ।≈), आधे पृष्ठ के ५॥) और पूरे पृष्ठ के १०) हैं। अधिक दिनों के लिए विज्ञापन छपाना हो तो पत्र व्यवहार करके तै कर लेना चाहिए। [७] बैरङ्गपत्र नहीं लिए जायँगे। जवाबी कार्ड या आध आने का टिकट आये बिना किसी के पत्र का उत्तर नहीं दिया जायगा। [८] लेख, परिवर्त्तन के पत्र, समालोचना के लिए पुस्तकें आदि, रुपया तथा और सब तरह के गृहलक्ष्मी सम्बन्धी पत्र इस पते पर भेजने चाहिए—

श्रीमती गोपालदेवी

'गृहलक्ष्मी'-कार्यालय, इलाहाबाद

सावित्री और यमराज



सावित्री सत्यवानकी कथा कईवार गृहलक्ष्मीमें प्रकाशित हो चुकी है। आज हम सावित्री सत्यवानका चित्र देकर आपको [illegible] व्रतका स्मरण दिलाते हैं।



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः

"सा पत्नी या विनीता स्याच्चितज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, ज्येष्ठ, संवत् १९७२ [तृतीय दर्शन

मातृ-भूमि की ईश-वन्दना

दीन-बन्धु, अशरण-शरण, केशव कृपानिधान ।
दोउ कर सम्पुट करि करौं, विनय सुनो भगवान ॥

करुणा-सागर दीनानाथ !
अब तो मेरी भी सुन लीजे ।
भरत-भूमि मैं बुड्ढी नाथ,
कोऊ मेरे संग न साथ,
पुत्रों ने हा ! छोड़ा हाथ,
हाय हाय मम बाँह गहीजे ।
करुणा-सागर दीनानाथ !
अब तो मेरी भी सुन लीजे ॥ १ ॥

पुत्र-रत्न जो थे दो चार,
वे भी हा अब गये सिधार,
हा प्रताप, शिव, प्राणाधार !
रे भगवन् अब काह करीजे ।
करुणा-सागर दीनानाथ !
अब तो मेरी भी सुन लीजे ॥ २ ॥

यदपि दीन धंधो भगवान,
तीस कोटि मेरी सन्तान,

पै न उन्हैं मम गति का ध्यान,
हा ! क्यौंकर यह दुःख सहीजे।
करुणा-सागर दीनानाथ !
अब तो मेरी भी सुन लीजे ॥ ३ ॥

बने हाय फैशन के भक्त,
रहैं सदा वे विषयासक्त,
निज जननी से हुए विरक्त,
काह कहौं हा ! हृदय पसीजे।
करुणा-सागर दीनानाथ !
अब तो मेरी भी सुन लीजे ॥ ४ ॥

प्रभु या तो इनको दे ज्ञान,
हा जिससे मम पुनरुत्थान,
या करुणा-सागर भगवान,
शीघ्र मोहिं अब नष्ट करीजे।
करुणा-सागर दीनानाथ !
अब तो मेरी भी सुन लीजे ॥ ५ ॥

—मिश्रीलाल कृष्णलाल माथुर

जापान तथा अमरिका में स्त्री शिक्षा



लकों की शिक्षा की ओर इस देश में पर्य्याप्त ध्यान दिया जा चुका है। बालिकाओं की शिक्षा का ओर अभी तक कुछ विशेष ध्यान नहीं है। इस बातको सुन कर दिल दुखता है कि चीन तक ने बालिकाओं की शिक्षा की ओर अपना सिर उठाया है परन्तु भारत वर्ष वैसे का वैसा ही सिर नीचे किये हुए सोया पड़ा है। जो लोग भारत की उन्नति को चाहते हैं बालिकाओं के शिक्षण के लिए उन्हें अच्छे तौर पर विचार करना ही पड़ेगा। बालिकाओं के शिक्षित होने से हमारी समाज की बहुत सी विकट समस्याएँ शीघ्र ही हल हो जावेंगी। इतना कहते हुए भी मैं ईसाई पादरियों की सम्मति से सर्वथा सहमत नहीं हूं कि भारत में स्त्रियों पर अत्याचार किया जाता है। हम अपने ईसाई मित्रों को अवश्यमेव सलाह देंगे कि वे महाशय ओकाकरा के कथन को ध्यान से सुनें। आप कहते हैं कि पूर्वीय देशों में स्त्रियों को माता के सदृश पूजा जाता है। जो प्रेम क्रिश्चियन नाइट् एक स्त्री के लिए रखता था वही प्रेम भारत में क्षत्रिय, जापान में सुमारी और चीन में मन्डदिन स्त्रियों के प्रति रखते रहे हैं। सारे संसार के इतिहास को यदि आँखों के सामने देखा जावे तो प्रतीत होगा कि भारत ही एक ऐसा देश है जिसने योग्य स्त्रियों को उत्पन्न किया है। यह होते हुए भी हम इस बातको कभी छिपा नहीं सकते हैं कि भारत की कई एक समाजों में स्त्रियों की स्थिति जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं है। हम जो कुछ चाहते हैं वह यह है कि भारतीय ललनाओं की स्थिति पुनः उसी ऊँचे दर्जे तक पहुँचानी चाहिए जिस ऊँचे दर्जे तक

वह पहिले पहुँची हुई थी । इस बात मेँ किसी भी विद्वान पुरुष का मतभेद न होगा कि स्त्रियोँ की शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिस से उनकी समाज मेँ स्थिति ऊँची की जा सकती है। जिस विषय पर आज मेँ लिखने लगा हूँ वह भारतीयोँ के लिए पर्य्याप्त रुचिकर होगा।

अमरिका मेँ बालिकाओँ को शिक्षा दी जाती है । जापान भी इस पवित्र कार्य्य मेँ अब पग बढ़ाता जाता है । इतना होने पर भी जापान तथा अमेरिका की बालिकाओं के शिक्षणोद्देश्य मेँ समुद्र और पहाड़ का अन्तर है ।

अमेरिका का उद्देश्य यह है कि बालिकाओँ को समाज का एक भाग बनाया जावे अर्थात् समाज मेँ स्त्री पुरुष समान रीति पर भाग लेने वाले होवेँ । परन्तु जापान बालिकाओँ को शिक्षा देता है इस लिए कि समय मेँ वे योग्य स्त्रियाँ तथा माताएँ बन सकेँ तथा वे सब उन गुणोँ को प्राप्त करेँ जो उनके अन्दर प्रेम तथा सुन्दरता को बढ़ाने वाले होँ ।

अमेरिका वाले कहते हैँ कि यदि कोई बालिका अच्छी साधारण शिक्षा प्राप्त कर लेवेगी—वह परिवार की श्रेष्ठ स्वामिनी स्वयम् ही होवेगी । इस लिए बालिकाओँ के शिक्षण मेँ वे लोग सामाजिक दृष्टि मुख्य रखते हैँ । परन्तु जापानियोँ की सम्मति है कि बालिकाओँ के शिक्षण मे पारिवारिक दृष्टि को मुख्य रखना चाहिए। इसका अर्थ कभी यह न समझना चाहिए कि सामाजिक दृष्टि का सर्वथा बहिष्कार ही कर देना चाहिए। नहीँ! नहीँ! सामाजिक दृष्टि भी रखना चाहिए पर गौण । इस उद्देश्य की भिन्नता के कारण अमेरिकावाले अपने देश मेँ बालिकाओँ को इस प्रकार की शिक्षा देते हैँ जिस से वे सामाजिक कार्य्य मेँ पुरुषोँ का हाथ बटा सकेँ। दूसरी ओर जापानी अपनी बालिकाओँ को इस प्रकार की शिक्षा देते हैँ जिससे वे परिवार को देश भक्ति, सत्यवक्तृत्व, न्यायप्रियता, तथा वीरतादि सिखाने वाला एक स्कूल बना देवेँ—जिसमेँ पले हुए बच्चोँ मेँ किसी प्रकार के दुर्गुण न रहेँ । इस प्रकार यह प्रत्यक्ष हो गया कि अमेरिकावासी स्त्री तथा पुरुषोँ का एक ही काम समझते हैँ। परन्तु जापानी स्त्री तथा पुरुषोँ का कर्तव्य भिन्न भिन्न समझते हैँ अब हम यह देखने का यत्न करेँगे कि दोनोँ देश अपने अपने उद्देश्य को किस प्रकार कार्य्य रूप मेँ परिणत करते हैँ।

भिन्न भिन्न उद्देश्य होने के कारण दोनोँ ही देशोँ मेँ शिक्षा की विधि भी भिन्न भिन्न है ।

अमेरिका मेँ स्त्री पुरुषोँ के शिक्षण की रीति एक ही है। इतनी विशेषता अवश्य है कि स्त्रियोँ के लिए गानविद्या तथा पारिवारिक मितव्ययता का सीखना आवश्यक रक्खा हुआ है। एक

यात्री अमेरिका के महाविद्यालयों में बड़ी आसानी से एक स्थान पर दर्शनशास्त्र पर व्याख्यान देते हुए एक मनुष्य को तथा एक दूसरे स्थान पर साहित्य पर व्याख्यान देते हुए एक स्त्री को देख सक्ता है। सारांश यह है कि एक ही कालेज में एक पुरुष जिस प्रकार प्रोफेसर का काम कर सक्ता है, एक स्त्री भी उसी प्रकार प्रोफेसर का काम सक्ती है-न केवल कर ही सक्ती है किन्तु यह प्रत्यक्षतः हो रहा है-प्रत्येक यात्री यह देख सक्ता है।

इसके विपरीत जापान में शिक्षण की रीति ही भिन्न नहीँ है प्रत्युत बालक और बालिकाओँ के विद्यालय भी भिन्न भिन्न हैँ। केवल प्रारम्भिक-विद्यालय ही ऐसे हैँ जिनमेँ बालक और बालिकाएँ इकट्ठी पढ़ सक्ती हैँ। बालक बालिकाओँ के प्रारम्भिक-विद्यालय भी भिन्न भिन्न होने चाहियें ऐसा विचार दिन पर दिन जापान में सर्वप्रिय हो रहा है। और शायद शीघ्र ही वह समय आ जावेगा जब इस प्रकार के प्रारम्भिक विद्यालय भी बालक बालिकाओँ के लिए भिन्न भिन्न होजावेँ। क्योँकि जापानी लोग कहते हैँ कि जब बालक बालिकाओँ के भावी जीवन में कार्य्य सर्वथा भिन्न भिन्न हैँ तब उनके भावी कार्यानुसार उनके विद्यालय भी पहिले ही से ही भिन्न भिन्न होने चाहिये।

इसी बात से यह भी परिणाम स्वयम् ही निकल आया कि जापानियोँ के अनुसार बालिकाओँ को बहुत उच्च शिक्षा देने की कोई विशेष आवश्यकता नहीँ है। यही कारण है कि जापानी गवर्नमेंट ने बालिकाओँ के शिक्षण के लिए कोई कालिज नहीँ खोला है। बालिकाओँ के लिए उच्च से उच्च शिक्षा हाई स्कूल तक रखी हुई है। उन हाईस्कूलोँ में जो शिक्षा दी जाती है वह पुरुषोँ के मिडिल स्कूल के बराबर है। जापान में बालिकाओँ को अत्युच्च शिक्षा देने के लिए एक प्राइवेट् कालिज है जो कि अच्छा काम कर रहा है। इस कालिज का भी बालिका शिक्षण में वही उद्देश्य है जो कि सारे जापान देश का। इस कालिज में बालिकाओँ को वैसी उच्च शिक्षा दी जाती है जो कि उनके लिए पारिवारिक दृष्टि से अत्यन्त लाभकर हो।

अमेरिकन जापानियोँ से ऐन उल्टे हैँ। अमेरिकन महाविद्यालयोँ में बालक बालिकाएँ इकट्ठी ही पढ़ती लिखती हैँ। प्रत्येक विषय में कुछ न कुछ बालिकाएँ अवश्य देखीं जा सक्ती हैँ। आश्चर्य की बात है कि एञ्जीनरिङ्ग जैसे कठोर काम में भी आपको बराबर बालिकाएँ व्याहृत मिलेँगी। यही नहीँ अमेरिका के अन्दर बहुतसारी बालिकाएँ व्यापार व्यवसाय के कार्य्य को भी पुरुषोँ की तरह ही सीखती तथा करती हैँ।

इस समय शिक्षण की दो विधियाँ

सामने हैं। दोनों एक दूसरी से उल्टी हैं। किसी एक पर अच्छा कह कर उंगली उठा देना कठिन प्रतीत होता है। जापानियों में भी बहुत से विद्वान हैं जो कि अमेरिकन रीति को पसन्द करते हैं। इसी प्रकार अमेरिका में भी ऐसे कुछ आदमी मिल सक्ते हैं जो कि बालिकाओं को उच्च दर्जे की शिक्षा देने के बिरोधी हैं।

इन सब बातों के होते हुए भी यह आसानी से कहा जा सक्ता है कि दोनों विधियों का फल उत्तम ही निकला है। जहाँ जापान की विधि ने देश में पति भक्त, देश प्रिय, वीर प्रसविनी माताओं की भरमार कर दी है दूसरी ओर अमेरिका ने बड़ी बड़ी योग्य विदुषियाँ उत्पन्न की हैं। दृष्टान्त के तौर पर कुछ एक के नाम यहाँ दिये जाते हैं।

स्त्रियाँ	कार्य्य
मिस आदमज़	शिकागो इलहाउस की सभापति
मिस यङ्	शिकागो के नागरिक स्कूल की प्रबन्धकर्त्री
मिस ईवज़	(१) कार्य्य कारिणी सभा की सभासद
	(२) निब्रासका की यूनिवर्सिटी में Practical sociology की प्रोफेसर।

अमेरिका में बालक बालिकाओं की पठन विधि भिन्न भिन्न नहीं है, अतएव स्त्रियों की शिक्षा-पद्धति पर लिखना कठिन है। उस देश में पद्धति ही एक है चाहे उसे आप स्त्रियों की समझिये चाहे पुरुषों की। अतः इस लेख में अमेरिका के विषय में कुछ भी लिखना वृथा होगा।

जापानियों की सम्मति है कि स्त्री पुरुषों के कार्य भिन्न भिन्न होने के कारण शिक्षा पद्धति भी भिन्न २ होनी चाहिये। वे कहते हैं कि बहुत काल से स्त्रियाँ दासता में गिर गयी हैं—उन्हें दासता से निकाल कर उनके कर्त्तव्यों को ठीक तौर समझाना ही शिक्षा का उद्देश्य है। उस शिक्षा में इस बात पर विशेष ज़ोर देना चाहिये कि उनका स्वास्थ्य अच्छा हो, उनका आचार अच्छा हो, वे देश प्रेम में दिन रात चूर रहें जिससे उनके बालक भी उसी प्रकार के हों।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बालिकाओं को दायी का काम, आचार, गान सम्बन्धी शिक्षा, सीना पिरोना, भोजन पकाने आदि का काम मुख्यतः सिखाया जाता है अर्थात् यह कार्य्य बालिकाओं के सब स्कूलों में आवश्यक हैं। शेष विज्ञान, अर्थशास्त्रादि इच्छानुसार चुनने पर हैं। इसके साथ साथ देशप्रेम उत्पन्न करने के लिए—जापानी इतिहास—इङ्गलैंडादि स्वतन्त्रताप्रिय देशों का इतिहास भी आवश्यक पाठ्य विषयों में है। इसी प्रकार व्यायाम करना भी बालिकाओं के लिए

ज़रूरी है क्योंकि जापानियों का सिद्धांत है कि यदि उनका शरीर निर्बल होगा तो बच्चों के कमज़ोर उत्पन्न होने के कारण सारे के सारे जापानी समाज को भविष्यत् में धक्का पहुँचेगा।

—प्राणनाथ

(प्रह्लाद)

वीर माता

सोजा लल्लू मेरे प्यारे ।
सोजा रे आँखों के तारे ॥
चाँद सा मुखड़ा देख तुम्हारो ।
उमगो प्रेम हृदय अति भारो ॥ १ ॥

मेरो दूध पियो है प्यारे ।
ताको नाम डुबायो ना रे ॥
बहुत आश है तो पर मेरी ।
पूरण तिनको क़रिये फेरी ॥ २ ॥

पढ़ि के विद्या अरु विज्ञान ।
क़रियो मात पिता को नाम ॥
जग में करियो नित शुभ काम ।
जाते अमर होय तव नाम ॥ ३ ॥

तेरे हित सहि दुःख महान ।
पाला तुझे पिरान समान ॥
ताको बदलो क्या तुम दोगे ।
जब हे पुत्र ! बड़े तुम होगे ? ॥ ४ ॥

कौशिल्यहिं जिमि राम पियारो ।
ताते दूनों तू मोहिं प्यारो ॥
राम समान लहो पितु भक्ति ।
गुरुजन नेह और खे शक्ति ॥ ५ ॥

दशा दुखित लखि के भारत की ।
करि न सकौं कछु वाके हितकी ॥
मन में कछू सोचि रहि जाती ।
तोकों देख जुड़ावौं छाती ॥ ६ ॥

यही सोच मन बाँधौं धीर ।
तू हरि है भारत की पीर ॥
दुखितनि को दुख दूर करैगो ।
मेरे मन अति मोद भरैगो ॥ ७ ॥

एक दिना सुख का आगार ।
"भारत" सब का था सरदार ॥
ताको, हाय दिनन के फेर ।
दुःखों ने लीन्हा है घेर ॥ ८ ॥

सच्चे पथ से कभी न टरियो ।
अपने प्रण को पूरा क़रियो ॥
भय से तथा लोभ में आकर ।
तजियो मति तू धर्म सुधाकर ॥ ९ ॥

पुत्र अन्न भारत को खायो ।
ताही को तू पानी पायो ॥
इन से तेरो बनो शरीर ।
दीजो देहि ताहि हित वीर ॥ १० ॥

तब ही पुत्रवती जानौंगी ।
अपने बड़े भाग्य मानौंगी ॥
मातृ-भूमि हित जो दे प्रान !
इतना मन तू निश्चय जान ॥ ११ ॥

—श्रीचन्द्र गोलस

मित्रता

(१)

जिन्हें न जी से दुख होता है
दृढ़ दुख देख, मित्र सब के।
सुख के साथी स्वार्थ परायण
वही मित्र हैं मतलब के॥

(२)

सुख में बातें झूठी गढ़ के
जो मित्रता दिखाते हैं।
बिपत समय सपने में भी जो
कभी काम नहिं आते हैं॥

(३)

रोग सोग में तन मन धन से,
जो न मित्र दुख हरते हैं।
कपटी और स्वार्थी है वह
मैत्री का दम भरते हैं॥

(४)

बिभवहीन लख मित्र संग तज,
मुँह अपना न दिखाते हैं।
वही जगत में दुष्ट असज्जन,
नकली मित्र कहाते हैं॥

(५)

जो समक्ष के प्रियवादी हैं
पीछे में कटु कहते हैं।
बुद्धिमान ऐसे मित्रों को,
चतुराई से तजते हैं॥

(६)

माता पिता बन्धु अपने ज्यों
हितके चिन्तक सहित सनेह।
त्यों ही सच्चा सुमति मित्र हित
कर होता है गुण का गेह॥

(७)

अपने दुख को दुख न मानते
मित्र दुःख से दुखित रहैं।
सुखी देख अपने मित्रों को
बड़े मगन मन मुदित रहैं॥

(८)

कुपथ पाँव धरते जो देखैं
देवैं उनकी चाल सुधार।
पूर्ण प्रेम का परिचय मिलता
तभी प्राप्त होता सुखसार॥

(९)

देते संग विचारों में भी,
जो मसान तक जाता साथ।
सच्चा सुहृद वही है जो सुख,
दुख में सदा बटावैं हाथ॥

(१०)

लेने देने में जो कुछ भी,
रखते हैं संकोच नहीं।
अपनी शक्ति थाह कर जो हित
करते रहते हैं नित ही॥

(११)

निज सुमित्र का सुखद सुदर्शन
जब सुभाग्य वश मिलता है।

रोग सोग सब मिट जाते हैँ
मन गुलाब सा खिलता है ॥

(१२)

नेत्रोँ को सुख देता है वह
रोग शोक सब हरता है ।
उर आनन्द बढ़ाता है वह
स्नेह अकारण करता है ॥

(१३)

दरस परस औ बोल चाल सब,
उसका सुख मय होता है ।
प्रेम नीर मय हृदय भूमि पर,
मोद बीच वह बोता है ॥

(१४)

जभी याद आती है उसके,
परम पवित्र प्रेम की बात ।
प्रेमी तुरत भड़क उठता है,
पुलकित हो जाते हैँ गात ॥

(१५)

ऐसे सुन्दर सहज मित्र की
शुभ गुण से करिये पहचान ॥
सदा साथ देने वाला सुख
दुख का, जो है हितू महान ॥

(१६)

ऐसा मीत पुनीत भाग्य से
कहीँ जो देखा जाता है ।
'सुमति' 'समाज' 'सुग्रन्थ' 'पन्थ'
सब सुयश उसी का गाता है ॥

—श्रीयुत एस० पी० गुप्त

मन की चंचलता

क्या मन तेरी चंचल चाल
का भी कभी अन्त आता है ।

देखा अभी तुझे जिस ठौर,
फिर देखा ज्योँही कर गौर,
पाया तुझे कहीँ फिर और,
जाना नहीँ जरा जाता है ॥१॥

तूही है सब का भंडार,
तूही सर्व चिन्तनागार,
तूही कार्य और करतार,
तूही खुद योँ बतलाता है ॥२॥

तज स्वकार्य तूही भग जाय,
तूही फिर कर याद दिलाय ।
योँ तूही है फिर पछताय,
अति आश्चर्य हमँ लाता है ॥३॥

निद्रा मेँ भी तुझको चैन,
मिनट एक भी कभी पड़ै न,
फिरते स्वप्न रहेँ सब रैन,
अद्भुत लीला दिखलाता है ॥४॥

ऐसा दृश्य न कारागार,
करे तुझे जो बंद बेजार,
शुचि स्वतंत्रता तुझे अपार,
चाहे जहाँ वहीँ जाता है ॥ ५ ॥

—भगवानदीन दुबे

गुड़ियों का विवाह



लोग जो चाहें कहें, युवती-विवाह, प्रौढ़ा-विवाह के नाम पर वे कितना ही नाक-भौं क्यों न सिकोड़ें किन्तु यह कहने का साहस कोई नहीं कर सकता कि भारत के अच्छे दिनों में कभी भी गुड़ियों का विवाह हो सकता था। शास्त्रों पर नज़र डालिए, मंत्रों के अर्थों को देखिए उनसे यह साफ साफ प्रगट होता है कि विवाह-संस्कार एक बहुत ही पुनीत संस्कार था और यह कि कम अवस्था में उसका होना असंभव था। यदि आप यह न मानें तो आपको विवश हो यह मानना पड़ेगा कि मंत्र जो पढ़े जाते थे, पति पत्नी से जो कुछ कहता था या पत्नी पति से कुछ कहती थी वह ढकोसलामात्र और निरर्थक था। मंत्रों से यह साफ विदित होता है कि वे जिस समय कहे जाते थे उस समय कहने वाला और सुनने वाली अवश्य ही परिपक्व अवस्था के होते थे। यदि यह बात हम लोग मानने को तैयार नहीं हैं तो हमको यह मानना होगा कि मंत्र यों ही पुस्तकों को भारी करने तथा सुन्दर करने के लिए रख दिये गये थे।

कल हम कह चुके हैं कि 'देश की दशा, उसकी सभ्यता और उसकी स्त्रियों की दशा से बहुत घना सम्बन्ध है' आज हम इसमें इतना और जोड़ देना चाहते हैं कि स्त्रियों की दशा से और उनकी वैवाहिक अवस्था से और भी घना सम्बन्ध है।

खुले शब्दों में इसका अर्थ यह है कि यदि आप देश की, नहीं नहीं अपनी दशा सुधारना चाहते हैं तो स्त्रियों की दशा सुधारिये अर्थात् उनकी वैवाहिक अवस्था बढ़ाइये।

जंगली जातियों में भी वैवाहिक अवस्था इतनी कम नहीं है जितनी कि आज दिन वह भारतवासी हिन्दुओं में हो रही है। आप ही कहिए ५ मास की कन्या या पुत्र का विवाह

विवाह है या तमाशा ?

मनुष्यगणना की रिपोर्ट को देखने से ज्ञात होता है कि इस समय भारत में १००० पीछे १० लड़कों और १८ लड़कियों का विवाह उस अवस्था में हो जाता है जब कि उनकी अवस्था

पांच मास

की होती है और १००० पीछे ४८ लड़के और १३२ लड़कियों का विवाह उस अवस्था में हो जाता है जब कि उनकी दशा

५ से १० मास

की रहती है। कलेजे पर हाथ रख कर सोचिये कि यह क्या है, और क्या वैवाहिक संस्कार का अर्थ यही है ?

यदि विवाह इसीको कहते हैँ तो क्या हम पूँछ सकते हैँ कि गुड़ियोँ के ब्याह मेँ और इस मेँ

अन्तर क्या है ?

तनिक सन् १९११ के अङ्कोँ को देख कर विचार करिये।

१००० पीछे विवाहित

अवस्था	बालक	बालिका
५ मास	७	१४
५ से १० मास	३७	१०५
१० से १५ मास	१२६	४३०

जिस देश मेँ १००० पीछे ४३० कन्याएं ऐसी हैँ जिनका विवाह १० से १५ मास तक की अवस्था मेँ हो जाता है आप ही कहिये उस देश से क्या आशा की जा सकती है ?

कौन कह सकता है कि ये विवाह शास्त्रानुकूल हैँ ? हम तो यह भी कहने को तैयार हैँ कि यदि कोई धर्मशास्त्र इन

गुड़ियों के खेल

को भी विवाह-संस्कार के नाम से पुनीत करता है तो वह शास्त्र शास्त्र नहीँ और सर्वथा न माने जाने के योग्य है।

कम अवस्था के विवाह, आँख को सुख पहुँचाने वाले विवाह, अँगनई मेँ छुम छुम की मधुर ध्वनि सुनने की लालसा वाले विवाह, विवाह नहीँ हैँ, ये देश रूपी कल्पवृक्ष की

जड़ पर कुठार

हैँ। जो शास्त्र इनकी व्यवस्था देता है, जो पंडित (क्योँ ? मूर्ख) मन्त्र पढ़ता है, जो माता-पिता, नहीँ नहीँ दुश्मन, इन्हैँ करते हैँ और जो सम्बन्धी और मित्रगण, नहीँ नहीँ नरक मेँ घसीटने वाले, इनमेँ योग देते हैँ वे भीषण पाप करते हैँ और इस पाप से उनका निस्तार होना दुश्वार है। देश को रसातल मेँ ले जाने का, एक दो नहीँ करोड़ोँ प्राणियोँ को दुःख पहुँचाने का, यातना पहुँचाने का और गुलामी के पाश मेँ उन्हेँ जकड़े रहने का पाप ऐसे विवाह करने वालोँ पर लगेगा।

एक समय वह था जब अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण कर विद्या पाठ कर लेने पर कम से कम २५ वर्ष की आयु मेँ किसी युवक का विवाह होता था, उस समय देश भी सुख और सम्पदा का निवास था। अब वह समय है कि हम 'अ आ इ ई' भी नहीँ जान पाते कि हम गृहस्थ हो जाते हैँ। संसार का बोझ हमारी कमर तोड़ देता है, हमारा मस्तिष्क और शरीर विद्या का नहीँ वरन् चिन्ताओँ का निवासस्थान हो जाता है। गुरु जी पढ़ाते कुछ हैँ, हम शरीर से उनके सामने बैठे हैँ मन हमारा कहीँ और है, और हम कुछ नहीँ सुनते। स्वयम् हम पक्व दशा को नहीँ पहुँचते कि इतने ही मेँ हमारी शाखा-प्रशाखाएँ फलने लगती हैँ, फल क्या होता है, हम तो क्षीण हो वैद्य-डाक्टरोँ के पास दौड़ते हैँ, और पत्नी प्रसूत की बीमारी से दिन दिन

घुलती है। शाखा-प्रशाखा भी माता पिता के अनुहार होती हैं; पैदा होते ही या तो वे जम्हुआ के शिकार होते हैं या बढ़ते हैं तो सदा आम बात के मारे हुए रहते हैं। जिस जाति का शरीर इतना हीन होगा, वह जाति मानसिक शक्तियों में भी नाम नहीं कमा सकती। जड़ ही खोखली है तो वृक्ष क्या बलिष्ठ होगा?

इस तरह से जाति की जाति का सत्यानाश होता है। यह दशा तो एक ओर होती है दूसरी ओर मृत्यु-संख्या में जो भयानक वृद्धि होती है उसका कहना ही क्या है? इसके कारण देश में विधवाओं की संख्या कितनी बढ़ती है और उनके रहने से देश को क्या हानियाँ पहुँचती हैं, यह किसी से छिपा नहीं।

इस समय देश में विधवाओं की संख्या इस प्रकार है :—

विवाहित गुड़ियों और विधवा गुड़ियों की संख्या

अवस्था	विवाहित	विधवाएँ
०–१ वर्ष	१३,२१२	१०१४
१–२ वर्ष	१७७५३	८५६
२–३ वर्ष	४६७८७	१८०७
३–४ वर्ष	८७५६८	४७५३
४–५ वर्ष	१३४१०५	६२६७

इस तरह से देखने से मालूम हुआ है कि इस समय देश में १७,७०३ ऐसी विधवाएँ हैं जिनकी अवस्था ५ वर्ष से कम है और ६४२७० ऐसी हैं जिनकी अवस्था १० वर्ष से कम हैं। केवल संयुक्तप्रान्त में इस समय १७,२०६ ऐसी विधवाएँ हैं जिनकी अवस्था १० वर्ष से कम है। जिस देश में इतनी देवियाँ केवल छोटी अवस्था में वैवाहिक संस्कार की वेदी पर बलि चढ़ाई जाने के कारण जन्म भर कलपती रहें, वह देश सुख और लक्ष्मी का निवास कैसे हो सकता है?

जब एक घर से जहाँ स्त्रियाँ सुखी नहीं रहतीं, उनकी हिमायत करनेवाली श्री और लक्ष्मी विदा हो जाती हैं, तब जिस देश से जहाँ इतनी निस्सहाय, निरपराध अबलाएँ दिन रात अपनी आहों से आकाश को जलाती रहें, श्री और लक्ष्मी के न विदा होने में ही आश्चर्य था।

ऐसी अवस्था में स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि

उपाय क्या है?

हम जहाँ तक समझते हैं उपाय वही सफल होगा जिससे श्री और लक्ष्मी की भगिनियें स्त्रियों का कष्ट कम हो, उनकी दशा सुधरे, वे सुखी हों, नाममात्र में देखने को नहीं वरन् वास्तव में सुखी हों। स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए यह प्रथम आवश्यक बात है कि उनका गुड़ियों का विवाह रोका जाय। चाहे उन्हें शिक्षा दी जाय या नहीं मानसिक सुधार की अपेक्षा पहिले शारीरिक सुधार आवश्यक है। हम यह मानते हैं कि शिक्षा स्वास्थ्य-सुधार को अपने साथ

घसीट लाती है किन्तु इतना होते भी हम यही चाहते हैं कि पहिले उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाय और अल्प समय में उनका विवाह रोका जाय।

इसके लिए देश के नेताओं को प्रयत्न करना चाहिये और इसके लिए उन्हें सरकारी कानून की सहायता लेनी चाहिये। जहाँ तक हम समझते हैं ८ वर्ष की कम अवस्था में विवाह का पक्षपाती कट्टर से कट्टर लकीर का फकीर भी न होगा। ऐसी अवस्था में सब से पहिले यही प्रयत्न होना चाहिये कि कानून द्वारा ८ वर्ष से कम अवस्था में विवाह रोक दिया जाय। यह सुधार कोई ऐसा सुधार नहीं जिस में किसीको किसी प्रकार की आपत्ति हो सके किन्तु इतना हो जाने से भी देश को बड़ा लाभ पहुँच सकता है। विरोध को कम करने के लिए ही हमने ऐसा प्रस्ताव किया है। आशा है देश के हितचिन्तकों का ध्यान इस ओर आकर्षित होगा।

देश के नेता और सरकार कानून के द्वारा इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत कर सकती है। देशी भाई और भी सहज रीति से काम कर सकते हैं। वे यह तय कर सकते हैं कि जो कोई ऐसा विवाह करेगा या जो ऐसे विवाहों में सम्मिलित होगा उसका वे समाज से बहिष्कार करेंगे। "सब से कठिन जाति अपमाना" की नीति से यह काम सहज में निकल जायगा। यह काम कठिन नहीं, इसमें कौड़ी का खर्च भी नहीं और न इसके लिए तनिक भी त्याग या कष्ट सहने की आवश्यकता ही है, ऐसी अवस्था में भी यदि हम लोग इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत न कर सके, और यदि सब कुछ जानते हुए भी हम गुड़ियों के ब्याह को न रोक सके तो फिर हम लोगों का राम ही मालिक है।

(अभ्युदय)

घमंड का फल



क्षिणी महासागर में एक बड़ा द्वीप है। जिसे सालोमन द्वीप कहते हैं। यहाँ के शासनकर्त्ता, अच्छे स्वभाव वाले, बड़े विद्वान और महान शक्तिशाली हुआ करते थे। संयोगवश इनके वंश में एक ऐसा कुपुत्र उत्पन्न हुआ जिसने अपने दुराचरण से अपने पूर्वजों के गौरव को नहश तहश कर डाला। प्रातःकाल उठकर वह अपनी मित्रमंडली को साथ लेता और सूर्य्यास्त तक मृगया किया करता था। इसी हेतु उसने समुद्र के सन्निकट एक घर भी बनवा लिया था। इस घर और समुद्र के मध्य में नरकुल पूर्ण एक क्षेत्र था। अतएव पशु पक्षी मारने में उसको कभी कभी बड़ी असुविधा हो जाया करती

यह क्षेत्र एक दरिद्र टोकरी बनाने वाले के अधिपतित्व में था जो उसी की आय से किसी प्रकार अपने कुल का पोषण करता था। भद्र पुरुष ने उसे बुला कर बड़ी तर्जना दी और अपनी पैतृक संपत्ति को थोड़े मूल्य पर बेच डालने के लिये बहुत कुछ कहा सुना परन्तु टोकरी बनाने वाले ने उसकी एक भी न सुनी। इसपर वह बड़ा क्रोधित हुआ और अपने सेवकों को आज्ञा दे दी कि इस दुष्ट पुरुष को खूब पीटो और इसके खेत में आग लगा दो।

एक धनी पुरुष के लिये ऐसा कर डालना कोई बड़ी बात नहीं है। गावों में ऐसे दृश्य बहुत से दृष्टगोचर होते हैं। जिस समय एक जमीदार अपनी रैय्यत को किसी निकृष्ट काम करने पर बाध्य करता है और वह अभागा उसके करने में आनाकानी करता है उस समय उसके ऊपर पड़ापड़ जूते पड़ने लगते हैं और उस बेचारे की फरियाद कोई भी नहीं सुनता। पुलिस यदि चाहे तो कुछ न कुछ इसका प्रतीकार कर सक्ती है परन्तु वह भी जमीदार साहब से कुछ ले देकर उस अनाथ को रास्ता बताती है।

टोकरी बनाने वाला रोता पीटता काँपता हुआ राजा के सन्निकट पहुँचा और सारा हाल कह सुनाया। राजा बड़ा बुद्धिमान और न्याय परायण था और दीनों पर उसकी विशेष कृपा रहा करती थी। एक जबरदस्त ने एक निर्बल के प्रति इस प्रकार अन्याय किया इसके स्मरण मात्र ही से उसका कलेजा धड़कने लगा और मारे क्रोध के उसकी आँखें लाल लाल हो गई। उसने अपने कर्मचारियों में से एक कर्मचारी को भेजकर उस धनी पुरुष को तत्क्षण बुला भेजा। वह सभा में बंदी करके उपस्थित किया गया। राजा ने उससे पूछा कि तुमने ऐसा घोर अन्याय क्यों किया। उस अमीर ने यह कह कर अपने आचरण की सफाई दी कि धनी पुरुष जन्मतः दूसरे पुरुषों से आदर किये जाने के लिये उत्पन्न किये गये हैं और चूँकि इस कमीने ने मेरी अवहेलना की है इसलिये उसको उचित दंड दिया गया है।

न्यायधीश ने उसे बड़ी भर्त्सना दी और उससे पूछने लगा कि तुम्हारे पितामह और परपितामह कौन थे वे इसी टोकरे वाले की तरह हमारे राज प्रसाद में बढ़ई का काम किया करते थे। मैं समझता हूँ उन्होंने अपनी योग्यता से इतना धन उपार्जन किया है जिसका संभोग तुम कई वर्षों तक सानन्द कर सक्ते हो परन्तु तुम ऐसे कुल कलंको पैदा हुए कि उन्हीं पुरुषों को ऐसी घृणा की दृष्टि से देखते हो,—इतना कहकर वह जहाज के कप्तान की ओर घूमा और कहने लगा कि इन दोनों को नग्न करके किसी दूरस्थ द्वीप में उतार आओ।

राजा के आज्ञानुसार वे दोनों नरकुल पूर्ण एक दल दल में उतार दिये गये। यहाँ भी अमीर नरकुलों में छिपा छिपा उस दरिद्र टोकरी बानने वाले से विलग रहने लगा। शनैः शनैः उनकी आहट वहाँ के ग्रामीण निवासियों के कान तक पहुँची। वे बड़े बड़े वज्र उठाये हुए उन अभागों के पास पहुँचे। अमीर भय से काँपने लगा और चुपके चुपके टोकरी बनाने वाले के पास आया। अब उसका घमंड चूर्ण हुआ। उसे ज्ञात हुआ कि मेरे और टोकरी बनाने वाले में कुछ भी अन्तर नहीं है परमेश्वर ने सर्व साधारण को समानतः सिरजा है।

विरुद्ध इसके टोकरी बनाने वाले को कुछ भी डर न मालूम हुआ। और पहिले से और भी अधिक साहसी हो गया। वह दौड़ कर थोड़े से नरकुल काट लाया और बैठ कर सिर हिलाता हुआ एक मुकुट बिनने लगा। उन जंगलियों को इसमें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने गदों को नीचे कर लिया और ध्यान पूर्वक टोकरी बुनने वाले की ओर देखने लगे। टोकरी बुनने वाले ने मुकुट तैय्यार करके उसके अध्यक्ष के सर पर पहिना दिया। उनके अनुयायी फूले न समाये और अपने सर्दार के चारों तरफ नाचने लगे।

सब जंगलियों को इस बात की अभिलाषा हुई कि हमको भी मुकुट मिलना चाहिए अतएव वे दौड़ दौड़ कर नरकुल लाने लगे और बेचारे टोकरी बनाने वाले को कई घंटे तक अविश्रान्त काम करना पड़ा। अमीर आदमी को व्यर्थ खड़ा हुआ देखकर जंगलियों को बड़ा क्रोध हुआ और वे उसे मारने के लिए दौड़े परन्तु टोकरी बुनने वाले ने यह कह कर उसके प्राण की रक्षा की कि यह आपको नरकुल लाने में सहायता देगा।

उस द्वीप के स्त्री और पुरुष जिन्होंने उस टोकरी वाले की ख्याति सुनी वे सब के सब उसके पास दौड़े आये और उसके लिए एक सुन्दर झोपड़ा निर्माण कर दिया जिसमें टोकरी बनाने वाला सानन्द अपने दिवस व्यतीत करने लगा। वह दैनिक उनके लिए मुकुट बनाता और वे उसके उपलक्ष में उसे अच्छे अच्छे भोजन खिलाते और सब प्रकार से उसकी सेवा करते थे। टोकरी बनाने वाला निर्दई नहीं था उसे अमीर का भी बहुत कुछ ख्याल था। जो कुछ भोजन उसे मिलता वह प्रथम अमीर को खिलाता और पश्चात आप खाता था।

ऐसी दुर्दशा में तीन मास अकेले रहने के कारण अमीर के विचार बिलकुल बदल गये। वह रुदन करता हुआ टोकरी बनाने वाले के पास पहुँचा और कहने लगा।

"महात्मन् अब मुझे इस बात का अनुभव हुआ कि धन से प्राप्त की हुई प्रतिष्ठा काल्पनिक और सार-रहित होती है।

वास्तविक उसी पुरुष का सत्कार होता है जो सचमुच योग्य है। सम्प्रति मैं धन के मद में भूला हुआ था। परन्तु मेरा वह मद अब दूर हो गया। जिस समय मैं अपनी मत्सरता और अन्याय को आपकी कृपा और उदारता से मुकाबला करता हूँ उस समय मुझे लज्जा आती है। यदि परमेश्वर की कृपा से मुझे मेरी खोई हुई संपदा पुनः प्राप्त हुई तो आधा आपको बाँट दूँगा।" कुछ दिनों में राजा ने उन दोनों को फिर बुला लिया। अमीर ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और उस दिवस से उस द्वीप में यह किम्वदन्ती फैल गई "कि कोई अमीर धृष्टता का वर्ताव किसीसे करे तो उसे टोकरी बनाने वाले के पास भेज दो।"

सारांश किसी वस्तु का घमंड न करें। अपनी दीन दुखिया अनाथ भाई बहिनों पर सदैव कृपा दृष्टि रक्खें और जहाँ तक हम से हो सके उनकी सहायता करें।

—रघुनाथ सहाय गुप्त

बड़ा कौन है



रमात्मा ने मनुष्य के दो भेद किये हैं— एक पुरुष दूसरा, स्त्री।

आज कल के पुरुष कहते हैं कि इन में से बड़प्पन पुरुषों को हैं, स्त्रियाँ स्वभावतः क्षुद्र और तिरस्करणीय हैं। परन्तु यह बात बहुत ही अनुचित है, क्योंकि प्रथम तो इस संसार में उत्तम और बड़ा वह है जो अपने को छोटा कहता तथा समझता है और छोटा वह है जो अपनी बड़ाई का अभिमान करता और बड़े होने की डींग मारता है। सो विचारी स्त्रियों ने सदैव से ही अपने को पुरुषों से छोटा जाना छोटा माना और छोटी ही बना कर रक्खा है। तो अब इस से क्या सिद्ध होता है इसका उत्तर पाठक स्वयम् विचार लें।

अब आप सोचें कि स्त्री और पुरुषों का आदि-सृष्टि से ही संग चला आता है और सृष्टि के अंत तक अवश्यमेव रहेगा भी। परन्तु दो साथियों में से बड़ा वही समझा जाना चाहिये जिसकी जिम्मे काम भी बड़ा हो अथवा जिसमें परोपकार, तपस्या और निष्कामता का भाव अधिक हो, अस्तु। अब देखिये कि इन दोनों साथियों (स्त्री और पुरुषों) में से यह बात किस में अधिक है। इस संसार के बनाने और उसके चलाने में पुरुषों का कितना सा भाग है। यह सब कोई जानते हैं कि स्त्रियाँ प्रत्येक मनुष्य को ९ मास तक गर्भ में रखने का कठिन कार्य्य करती हैं सदैव से किया है और आगे को करेंगी भी। स्त्रियाँ अपने नित्यआहार का सार भाग गर्भस्थ प्राणियों को देकर कितना परोपकार करती हैं, फिर उनको इन शरीरों के जन्म समयजो कष्ट

सहना और तपस्या करनी पड़ती है वह विचारे पुरुषों के अनुमान में भी नहीं आसकती। स्त्रियों को ६ मास तक गर्भ की रक्षा में क्या क्या दुःख उठाने होते हैं। पुनर्जन्म होने पर वह अपने समस्त शारीरिक बल को दुग्ध रूप बना कर सन्तान तथा संसार की सेवा करती हैं, यह सब कौन नहीं जानता है।

इस पर भी स्त्रियों का निष्काम भाव देखिये कि सन्तानोत्पत्ति की तरह तरह की कठिनाइयाँ झेलने पर भी उन्होंने अपना कुछ भी अधिकार और स्वत्व सन्तान पर नहीं चाहा, किन्तु पुरुषों ही के नाम से कुल और गोत्रादि की परिपाटी चलवाई है। यदि इन बातों पर विचार करते हुए भी पुरुष अपने को बड़ा कहें तो फिर उस के वास्ते विवाद करने को भी स्त्रियों का महत्वपूर्ण धर्म आज्ञा नहीं देता किन्तु संसार भर की स्त्रियाँ पुरुषों का मान्य करने उनके हित तथा सुख और सेवा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने को तयार रहती है और पुरुषों काजो कुछ व्यवहार व बरताब इस समय संसार भर में स्त्रियों के साथ है वह भी देख लीजिये और विचारिये दोनों में से प्रशंसनीय कौन है?

क्या आज संसार का एक भी पुरुष यह कह सकेगा कि वह नौ मास तक गर्भ में रहने आदि के कारण स्त्री जाति का परम ऋणी नहीं है, तथा उसे हमारी सजाति किसी स्त्री ने ही इस योग्य नहीं बनाया है, जिस योग्यता द्वारा उसे सर्वदा ही अपनी माता की सजाति समस्त स्त्री मात्र का मान्य और सत्कार करना चाहिये। परन्तु शोक है कि अन्य सजातियों का तो कहना ही क्या! निज माताओं का भी यथावत मान्य और सत्कार करने में पुरुष समुदाय समर्थ नहीं है और उस पर भी अपने बड़प्पन की ड़ींग मारी जाती है तो फिर इस का उत्तर देना ही बुद्धिमता के विरुद्ध है।

आज विद्या और सभ्यता में अग्रसर योरुप देश भी स्त्री जाति के साथ क्या व्यवहार कर रहा है। उसे विचारते हुए समझदार स्त्री मात्र के रोमाञ्च हुए विना नहीं रह सकते। कैसे शोक का स्थल है कि योग्यता को लक्ष्य बताने वाले योरुपीय पुरुष, योग्य स्त्रियों की योग्यता को मान्य देना नहीं चाहते, और सम्मति लेने की इस शैलीको कि सभी बुद्धि, विद्या और अनुभव रखने वालों से (चाहे स्त्री हो वा पुरुष) सम्मति लेकर काम करना ही उपयोगी होता है स्त्रियों के अपमानार्थ तिलाञ्जलि दे रहे हैं, जो किसी दिन संसार के इतिहास में स्त्रियों के आत्म बल और पुरुषों के परम पतन की भारी साक्षी होगा। परन्तु सब से अधिक दुःख तो इस बात का है कि हम स्वयम भी अपने को भुलाये हुए एक भयानक प्रवाह में बही जा रही हैं। हम में अपनी जाति

के वास्ते नाम मात्र भी प्रेम और आत्म त्याग नहीं है। हम स्वयम ही अपनी जाति की लहलहाती खेती में अपने अपमान और निरादरका जल सींचती रहती हैं। हमें स्वयम ही अविद्यादि के कारण यह अभ्यास हो गया है कि अपनी सन्तान में से पुत्रों का अति लालन पालन और पुत्रियों का ज्यों त्यों पालन करती हैं। मैं अधिक कुछ न लिख कर एक पद्य द्वारा अपने कुछ भावों को प्रकट करती हुई इस लेख को, समाप्त करती हूँ।

गजल

प्रभो, इस यज्ञ उत्सव को
रचा देते तो अच्छा था।
हमें भी धर्म पालन पर
लगादेते तो अच्छा था॥
भटकती फिर रही हैं हम
अविद्या के अँधेरे में।
पिता जी धर्म-पथ हमको
दिखा देते तो अच्छा था॥
बहुत छिन हो चुके स्वामिन,
गिरे हम दीन दुखियों को।
दया का हाथ अब हमको
गहा देते तो अच्छा था॥
बनें हितचिन्तिका हम सब
पिता जी अपनी बहिनों की।
हमें अब आप यह विद्या
सिखा देते तो अच्छा था॥
जो स्त्री जाति की रामेश्वरी
शुभ चिन्तकाएँ हैं।
मुझे उन योग्य बहिनों से
मिला देते तो अच्छा था॥

—रामेश्वरीदेवी

सुकुमारी

(गताङ्क से आगे)

सातवां परिच्छेद

कालिज प्रवेश

"अभी उनकी बरसी में सैकड़ों रुपये लगे हैं। अब दूसरा खर्च तैय्यार हो गया।" रात्रि का समय था। मोहन अपने कमरे में बैठे उस दिन का हिसाब लिख रहे थे। इतने ही में मानिनी ने आकर उनका ध्यान भंग कर दिया और ऊपर लिखी बात उन से कही।

"हो क्या गया। कह तो सही!" यह कह कर मोहन ने मानिनी के सिकुड़न पड़े चेहरे पर दृष्टि डाली। और देर तक देखते रहे।

"होश तो ठीक हैं न?"

"जी हाँ! बिलकुल।"

"मालूम है, कि किस से बातें कर रहे हो?"

"अपनी श्रीमती ताड़का देवी, नहीं नहीं, मानिनी देवी से।"

"मुझ से मज़ाक न करो।"

"आखिर कौन सा ऐसा खर्च तुमको बेचैन किये डालता है ?"

"और कौन सा खर्च होगा। सुनती हूँ, अविनाश पढ़ने के लिए इलाहाबाद जा रहा है।"

"बस यही !"

"क्या इसे तुम थोड़ा समझते हो ?"

"थोड़ा तो नहीँ समझता। मगर लोग लड़के को किस लिए पढ़ाते हैँ। इसी लिए न कि आगे चल कर हमेँ इस से सहायता मिले। ठीक है या नहीँ ?"

"ठीक है। मगर वह सहायता अपने माँ बाप को देगा, या तुम्हेँ पूछेगा।"

"मैँ तो समझता हूँ, कि वह उनसे ज्यादा मुझे मानेगा।"

"अजी वह जमाना गया। मेरा कहना मान लो। पीछे तुम को पछताना न पड़े, तो मुझे छूकर नहा डालना।"

"ऐसा नहीँ हो सकता। और अगर ऐसा भी हो, तो भी हमेँ उसे पढ़ने से रोकने का अधिकार नहीँ है। क्योँकि उसका बाप कमाता है।"

"तुम भी तो जिमीदारी सँभाल रहे हो और यदि तुमको उन्हीं के साथ रहना है, तो भाई तुम मुझे मेरे नैहर भिजवा दो। अब मुझ से नहीँ देखा जाता।"

"अच्छा देखा जायगा !" यह कह कर मोहन अपने हिसाब जोड़ने मेँ लग गये। और देवी मानिनी पलंग पर लेट कर खुर्राटेँ भरने लगीँ।

चन्द्रदेव की निर्मल और शीतल चन्द्रिका से सारा विश्व प्रकाशमान हो रहा है। इस समय शान्ति का अखंड राज्य है। सम्पूर्ण जीवधारी विश्व-जननी की गोद मेँ लेटे हुए शयन कर रहे हैँ। किन्तु सुशीला की आँखोँ मेँ नीँद नहीं है। मदन सोये हुए हैँ, और सुशीला उनके पैर दाब रही है। कुछ देर मेँ मदन की आँख खुल गयी, वह सुशीला को पैर दाबते हुए देख कर बोले, "क्योँ जी! अभी तक जाग ही रही हो ?"

सु०—क्या बताऊँ। नीँद ही नहीं आती।

म०—किस विचार सागर मेँ निमग्न हो।

"यही सोच रही हूँ, कि अविनाश कल पढ़ने जायगा, लेकिन अभी कुछ जाने का बन्दोबस्त नहीँ हुआ।"

"हो जायगा। जल्दी क्या है ?"

"अविनाश के जाने की बात चीत उनसे की थी क्या ?"

"किस से ? भैया से।"

"हाँ।"

"कहा था। मालूम होता है, भाभी की इच्छा नहीँ है।"

"किस बात की ?"

"अविनाश को पढ़ाने की। इस लिए कि खर्च अधिक लगेगा।"

सुशीला बोली, "हरे हरे। यह कृपणता। खैर! उसके पढ़ने में घर के रुपये न लगेंगे। मैं अपने गहने बेच डालूँगी और उसे मन भर पढ़ाऊँगी। अब तो कोई विघ्न नहीं है।"

म०—कुछ नहीं। तुम्हारी यह उदारता देख कर मुझे बहुत हर्ष होता है। यदि अविनाश के पढ़ने के लिए और जरूरत होगी, तो मैं खुद बिक जाऊँगा, और..............अपने दोनों हाथों से मदन के मुँह को दाबती हुई सुशीला बोली, चुप, चुप, 'अब चुप रहो, नहीं तो मैं चुटकी से काट खाऊँगी। बस अब चुप चाप सो रहो।"

* * * *

अविनाश दूसरे दिन पढ़ने के लिए एलाहाबाद चले गये।

आठवां परिच्छेद

प्रेम-संभाषण

आज अविनाश का गौना हुए दो सप्ताह हो गये। वह अपने कमरे में बैठे हुए हैं और सोच रहे हैं, कि कल कालिज जाना होगा। इतने दिन का सबक पिछड़ गया। इसे किसी तरह पूरा करना होगा। इसी विचार सागर की तरंगों में वे इधर उधर चक्कर लगा रहे थे। इतने दिन सुकुमारी ने नहीं जाने दिया। अब कल ज़रूर जाऊँगा, चाहे कुछ भी हो। इतने ही में इनकी पीठ पर किसी ने हाथ रक्खा। अविनाश चौंक उठे। पीछे फिर कर देखा, कि एक सोलह वर्ष की युवती खड़े खड़े इनकी तरफ, इनकी छबि देख देख कर मुस्करा रही है। उसके कपोलों पर मानो गुलाब खिले हैं। हरिन की सी बड़ी बड़ी आखें, नोकीली निर्दोष नासिका, पतले पतले गुलाबी होठ जो खूब सफ़ेद दांतों की दो लड़ियों को छिपाये थे, ठोढ़ी पर एक छोटा तिल, उभरे हुए वक्षस्थल, एकहरा परन्तु भरा हुआ बदन, साक्षात् देवी स्वरूप थी। अविनाश का हृदय प्रसन्नता से खिल उठा, क्यों कि युवती इन्हीं की पत्नी सुकुमारी थी। उसकी मनोहर छवि को देख कर अविनाश कालिज जाना भूल गये। सुकुमारीने हँसते हुए कहा, "तुम्हारे हाथ में हमेशा किताब ही रहती है। इतना मैं कहती हूँ, मगर तुम सुनते ही नहीं। इसी के साथ दिन रात सर पटकना क्या अच्छी बात है। किताबें क्या हैं, मेरी सौत हैं।"

अ०—इनके साथ दिन रात सर न पटकूँ, तो तुम तहसीलदारिन कैसे कहलाओगी?

सु०—मुझे नहीं चाहिए तहसीलदारी। तुम तो एल-एल० बी० पास करना और स्वतंत्रता से वकालत करना।"

अ०—यह ढंग। वकील की बीबी कहलाने की इच्छा है। क्यों यही न?

सुकुमारी निरुत्तर हो गयी। अविनाश फिर बोले अब मैं कल इलाहाबाद जाऊँगा।

सु०—यह क्यों? अभी तो तुम्हारी छुट्टी के दो दिन बाकी हैं न?

अ०—बाकी कहाँ हैं। दो दिन और ज्यादा हो गये।

सु०—यह तो तुम परसों भी कह रहे थे।

अ०—लेकिन आज सच मुच कह रहा हूँ। कर्तव्य के लिए मुझे तुम्हारा अधिक से अधिक सुखमय सहवास भी छोड़ना पड़ेगा। नहीं तो आखिर में यह थोड़ी देर की भूल बड़ा भयंकर परिणाम लावेगी। सुकुमारी का चेहरा उदास हो गया। आँखें भर आईं। अपनी दोनों बाहों को अविनाश के गले में डाल कर बोली, "प्राणेश्वर! मेरी बड़ी इच्छा है, कि सदैव रजनीपति चन्द्र देव की शीतल चन्द्रिका में बैठ कर तुम्हारे साथ हास्य विनोद करूँ। हमेशा आपके साथ रह कर एक पतिव्रता स्त्री की तरह अपना धर्म पालन करूँ, और आपकी सेवा कर पुनीत बनूं, परन्तु......एक हिचकी लेकर फिर सुकुमारी बोली, प्राणनाथ यह सब आशायें रखते हुए भी मैं आपको कर्तव्य से विमुख करना पाप समझती हूँ! आप प्रसन्नता से पढ़ने के लिए जाइये किन्तु—„सुकुमारी के आँसू जो आँखों में इकट्ठा हो रहे थे, एक दम नीचे आ गये और मोती के समान लुढ़क लुढ़क कर उसके कपोलों को सींचते हुए अविनाश के चेहरे पर गिर पड़े—किसी के जाल में पड़ कर इस दासी को एक दम न भूल जाइएगा। उस अवधि तक मैं आप को दूर ही से सूरज मुखी के फूल के समान पूजती रहूँगी।

अपनी बाहुपाश में सुकुमारी को बद्ध कर—अंक से लगा कर अविनाश चन्द्र बोले, रोती क्यों हो। आखिर......" अविनाश इतना ही कह पाये थे, कि नीचे से अविनाश को किसी ने बुलाया। धीरे धीरे सुकुमारी से हाथ छुड़ा कर अविनाश नीचे चले आये। सुशीला ने खाने के लिए बुलाया था। सो वह खाने के लिए चौके पर बैठ गये। खाना खा चुके। तयारी हो गयी, गाड़ी भी आ गयी। अविनाश ने जो असबाब ले जाने के लिए रखवाया था, वह भी लाद दिया गया। सब से मिल मिला कर अविनाश अन्तःपुर से चले आये और बैठक में आकर वह अपने ताऊ के पास खड़े हो गये। मोहन बोले, "अविनाश, चिट्ठी जल्दी लिखना।"

अ०—बहुत अच्छा। अब आज्ञा दीजिए। गाड़ी को देर होती है। यह कह कर उन्होंने ताऊ और अपने पूज्य पिता के पैरों पर सिर रक्खा और आशीर्वाद पा कर बग्गी पर बैठ गये। कोचवान ने धीरे से एक चाबुक घोड़ों को मार दी। घोड़े थोड़ी ही देर में हवा से बातें करने लगे।

नवां परिच्छेद

अकस्मात

अविनाश को विदा कर मदन घर में जा कर पलंग पर पड़ रहे। परन्तु पड़ने के साथ ही उनके कलेजे में बड़ा दर्द होने लगा। डाक्टर के बहुत प्रयत्न करने पर भी दर्द कुछ भी कम न हुआ। मदन ने सुशीला से कहा, लक्षण अच्छे नहीं हैं। भैया से कह कर अविनाश को बुलवा लो। अभी स्टेशन पर ही होगा। सुशीला घबड़ा उठी और बोली, घबड़ाते क्यों हो, अच्छे हो जावगे। कहने को तो सुशीला ने कह दिया, लेकिन चित्त में वह भी घबड़ाने लगी। मदन बोले, मेरा कहना मान कर अविनाश को बुलवा भेजो, सुशीला ने तब और आपत्ति न किया। और मोहिनी के द्वारा मोहन से कहलवाया कि वह जा कर अविनाश को बुला लावें। मोहन स्वयम् ही बाइस्किल उठा स्टेशन की तरफ चलते बने। अविनाश वहाँ टिकट ले रहे थे, इतने ही में उन्होंने देखा; कि मोहन साइकिल पर सवार उसे शक्ति भर चलाते हुए आ रहे हैं। वे टिकट का लेना छोड़ कर मोहन की तरफ दौड़े, बोले, ताऊ जी क्या है? यहाँ इतनी जल्दी आप कैसे आये?

मो०—मदन की तबियत खराब है। घर लौट चलो। अभी? टिकट तो नहीं लिया

अ०—"नहीं, अभी नहीं लिया।"

अच्छा तो जल्दी करो। यह कह कर उसी साइकिल पर बैठ वह घर चले। और अविनाश भी उसी बग्गी पर चढ़ कर घर की तरफ बढ़े। थोड़ी देर में वह मकान पहुँच गये। वहाँ जा कर क्या देखते हैं, कि मोहिनी मदन के पंखा हाँक रही है। और सुशीला उन के पैताने बैठी आँखों से आँसू बहा रही है। अविनाश को देखते ही मदन मोहन से बोले, भाई! मैं अब थोड़ी देर का मेहमान हूं। अब मैं आप से इस जन्म के लिए बिदा होता हूँ। मुझे खेद है, कि मैं अधिक दिन आप की सेवा न कर सका। चलते चलाते आप से मेरी प्रार्थना यह है, कि आप अविनाश को अपने हृदय से अलग न कीजिएगा। आशा है, आप अपने छोटे भाई की यह अंतिम विनय अवश्य मानेंगे। मैं अब चला। अविनाश बोले, चाचा जी! तुम तो चले। मुझे किस के भरोसे छोड़े जाते हो। मदन कठिनाई से बोले, "बेटे! ईश्वर के भरोसे ही तुझे छोड़ता हूँ, उस के सिवाय और कौन है?" पास ही सुकुमारी खड़ी थी। सुकुमारी के सिर पर हाथ फेर कर मदन बोले, बहू! तुम सदैव सुखी रहो सदैव सौभाग्यवती रहो। इस से अधिक-अच्छा आशीर्वाद स्त्रियों के लिए दूसरा नहीं है। मदन की आँखों का रंग बदलने लगा। धीरेधीरे बोली, भावी! प्रणाम। धीरे धीरे रोते रोते सब

लोग कमरे के बाहर हो गये। तब मदन ने सुशीला से कहा, अब और क्या रहा। अब तुम सदैव के लिए मुझ से बिदा हो लो। अब इस जन्म में तुम्हारा मुँह नहीं देख सकूँगा।

मदन के सिर को अपनी गोद में रख कर और अपने हृदय से चिपटा कर सुशीला बोली, मेरे सर्वस्व! जीवितेश्वर मेरे शिरोमणि! यह कठोरता तुम ने कब से सीखी है। सुशीला की आँखों से टपाटप आँसू निकल कर मदन के मुँह को भिगोने लगे। वह फिर बोली—अभी तुम ने उस दिन कहा था, कि तुझ से मेरा कभी वियोग न होगा और आज ही यह निराशा से भरे शब्द कहते हो सुशीला रोते रोते हिचकियाँ लेने लगी। वह बड़ी जोर से मदन के कंठ से लग कर बोली, तुम मुझ से सदैव के लिए बिदा होने को कहते हो, मगर मैं तुम से एक क्षण के लिए भी जुदा न होऊँगी। तुम मुझे छोड़ते हो, मगर मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती। तुम ने कहा था, कि तेरे विना मुझे स्वर्ग में भी सुख न मिलेगा। सो मैं स्वर्ग में तुम्हारी सेवा करने के लिए तुम्हारे साथ चलती हूँ.............सुशीला के मुँह से फिर कोई शब्द नहीं निकला। वह पतिव्रता अपने पति की अगवानी करने के लिए स्वर्ग में जा पहुँची। मदन समझे, सुशीला दुख से बेहोश हो गयी। इस लिए फिर धीरे धीरे बोले, सुशीला! मेरी सुशीला!, जवाब नहीं मिला। मदन ने सुशीला का मुख चूम लिया और मर्मभेदी स्वर में बोले, "आह!" आत्मा शान्ति हो गयी। और एक अंधेरे घर का दीपक सदा के लिए बुझ गया।



दसवां परिच्छेद

समय का फेर

रात्रि बीती। दिन बीता। समय बीता। धीरे धीरे वह भयंकर दुःख भूलने लगा। परन्तु किस को मानिनी को मोहन को, और न जाने किस किस को। हाँ! दो तीन प्राणी ऐसे हैं, जिन को सुशीला और मदन जन्म भर न भूलेंगे।

रात्रि के ग्यारह बज गये। मोहन के यहाँ सब लोग खा पी कर निश्चिन्त हो गये। सुकुमारी ने भी थोड़ा बहुत जो कुछ खाया गया, खाया। मोहनी को खिला पिला कर सुला दिया और वह स्वयम् सोने का प्रबन्ध करने लगी। इतने ही में मानिनी आ कर बोली—

"बहू! महरी की तबियत खराब है। वह न आयेगी। वह तनखाह भी पाँच रुपये बहुत लेती है। उसका न आना ही अच्छा। अब मैं उसे जवाब दे दूँगी। तुम खुद रोटी करके चौका बरतन कर लिया करो। जाओ, रात ही को चौका बर्तन कर डालो। देखना इसमें भूल न होने पावे। मैं अब सोने जाती हूँ। यह

बातेँ सुन कर सुकुमारी धीरे धीरे बोली, अम्मा, आज मैँ किए डालती हूँ. पर महरी को किस लिए छुड़वाओगी। पाँच रुपये तो वह हमेशा से पा रही है। फिर वह ज्यादा कैसे हुआ। मानिनी नाक पर उंगली रख कर बोली, ओ बाबा! अब इतना खर्चा कहाँ से आवेगा। वह दिन गये। अब तो अपने हाथ से करना ही पड़ेगा। सुकुमारी इन बातोँ को सुन कर अपने आँसू न रोक सकी। मानिनी के सामने ही उसकी आँखोँ से दो बड़े बड़े आँसू निकल कर उसके वक्षस्थल पर गिर पड़े। मानिनी ने यह देख कर कहा, सुनो जी! असगुन मत मनाओ। हमारे फले फूले घर पर इस तरह आँसू डाल कर अपवित्र मत करो।

सुकुमारी के हृदय मेँ मानोँ किसीने चाबुक मार दिया। उसके वदन मेँ कँप-कपी आ गयी। वह बोली, ओफ़! अब भी तुम्हारा घर फूला फला है। इतना कह कर वह पत्थर की छत पर गिर कर बेहोश हो गयी।

"ढोंग तो देखो। अजी बहूरानी जी! चौका बरतन तुम्हेँ करना ही पड़ेगा। ऐसे काम न चलेगा। सुबह को सब तयार मिलना चाहिए।" यह कह कर मानिनी चली गयी। बड़ी देर के बाद सुकुमारी की बेहोशी दूर हुई। रोती रोती उसने चौका बरतन किया। और करीब दो बजे के वह सोने के वास्ते अपने कमरे मेँ गयी। मोहिनी सो रही थी, उसी के पास जाकर उसे अपनी छाती से लगा और अपने प्राणनाथ का ध्यान करती करती सो गयी।

आखिर चौका बरतन का काम कोमल सुकुमारी के सिर मढ़ ही दिया गया। विचारी मायके मेँ बड़े नाज़ से पली थी। यहाँ भी उसे अब तक बड़ा सुख मिला था। किन्तु सुशीला और मदन के साथ साथ सुख का भी अन्त हो गया।

सुकुमारी इतना कठिन परिश्रम नहीँ कर सकती थी। दोनोँ समय रोटी बनाना, चौका बरतन करना, सफ़ाई रखना, कूटना, पीसना, सब अकेले कहाँ तक करे। यद्यपि उसकी ननँद मोहनी भर सक काम करवाती थी, तो भी मोहिनी की सहायता यथेष्ठ सहायता न थी। आख़िर वह बीमार हो गयी और इतनी बीमार हुई, कि यह सब काम उससे बिलकुल न होते थे। मानिनी तो उस से बात भी नहीँ पूँछती, कि तू मरती है, या जीती। विचारी मोहिनी ही इसकी इस समय जीवनाधार है। वही उसे खिलाती पिलाती थी। और सब सेवा करती थी। जब से सुकुमारी बीमार हुई, तब से महरी फिर आने लगी और मानिनी के खजाने से पाँच रुपये उसे फिर मिलने लगे। सुकुमारी की बीमारी का एक पत्र भी अविनाश के पास मानिनी ने न भिजवाया था।

सुकुमारी की हालत बहुत खराब हो गयी। उसके चित्त में यह संदेह होने लगा, कि मैं अब न बचूंगी। उसके प्राण कंठ में आ गये थे, लेकिन निकलते न थे। किस लिए——अपने स्वामी के दर्शन करने के लिए। उनके देखने के लिए। सुकुमारी ने मानिनी से चुरा कर अविनाश के पास पत्र भिजवा दिया था।

* * * *

अविनाश उस दैवी घटना के बाद कुछ दिन रह कर फिर पढ़ने के लिए एलाहाबाद चले गये थे। आज उनकी परीक्षा का अन्तिम परचा है। परचा तोड़ कर वह हाल से बाहर निकल आये। और सीधे बोर्डिंग हाउस पहुँचे। वहाँ उन्हें एक पत्र मिला। अक्षर परिचित थे। हाल जानने के लिए उन्होंने जल्दी जल्दी लिफ़ाफ़ा खोला। उसमें लिखा था—

"भाई साहेब !

भावी की तबियत बहुत खराब है। उनकी दवा करने वाला यहाँ कोई नहीं। प्रबन्ध अच्छा न होने के कारण बीमारी बढ़ गयी है। जहाँ तक संभव हो, शीघ्र ही चले आइए, और किसी डाक्टर को साथ लेते आइएगा।

मोहिनी।

अविनाश का मस्तक घूम गया। मेज़ पर सिर रख कर वह बड़ी देर तक रोते रहे। कुछ देर के बाद उठे। अपने दूसरे मित्रों का रास्ता उन्होंने नहीं देखा। शीघ्र ही इक्का बुलवाया और उस पर असबाब रख कर इक्के वाले को स्टेशन चलने के लिए कहा। स्टेशन पर पहुँच, टिकेट ले, गाड़ी पर जा बैठे। इनके बैठते ही गाड़ी छुटी। और आकाश के नीचे अपनी गड़गड़ाहट के शब्द को फैलाती तेजी के साथ चलने लगी।

—बावली बहू

शेष फिर

पति-पत्नी-संवाद*

हे हे सुशीले ध्यान दो,
निज कार्य को विश्राम दो।
तव पति पधारो द्वार पे,
जंजीर ध्वनि पर ध्यान दो॥
आभरण झंकारित न हों,
विचलित न हो सन्मान में।
निज कार्य को विश्राम दो
लखि पति सुदिवस अवसान में॥ १॥

---

*यह पद्य जगत्प्रसिद्ध कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "गार्डनर" नामक ग्रन्थ की दशम लाइरिक अर्थात् शृङ्गाररस प्रधान कविता का अनुवाद है। कवि ने शृङ्गार-रस प्रधान कविता लिखते हुए भी अपूर्व अपने धार्मिक मास्तिष्क का पूर्ण परिचय दिया है। इसमें यदि "अन्तरात्मा" को "दुलहिन" तथा "मृत्यु" को "पति" माना जावे तो अत्युक्त न होगा अनुवादक

कुछ भूत प्रेत न है यहाँ
मति ग्रसित हो भय-पाश में।
शुभ शरदपूर्ण "मयंक" है
यह उदित पूर्वाकाश में॥

ऊपर प्रभामय गगन है
प्रतिविम्बपति निकुंज में।
कर लो प्रफुल्पित मुख कमल
निज नील अंचल पुंज में॥

ले दीप जाओ द्वार पै
यदि हो ग्रसित कछु त्रास में।
कुछ भूत प्रेत न है यहाँ
मति फँस प्रिये भयपाश में॥२॥

यदि हो शुभे लज्जावती
तो प्रश्न का उत्तर न दो।
शुभ मिलन में द्वार पै
प्रिये मौन का आश्रय गहो॥

प्रश्नादि यदि प्रीतम करे
इच्छा तुम्हारी हो तथा।
करलो विलोचन नमित तो
करि मौन धारण सर्वथा॥

कङ्कनादिक ध्वनित हों
नहिं, दीप लै स्वागत करो।
प्रश्न का उत्तर न दो
शुचि शीलयुत लज्जा धरो॥३॥

कर चुकीं अब भी न क्या
तुम कार्य निज अविशेष हो।
प्रीतम पधारो द्वार पै
मिलनार्थ उत्कण्ठित लखो॥

सुप्रदीप दीप्त न कर सकीं
क्या गोधनालय में अभी।
दिवसान्तकालिक हो न
सामग्री न प्रस्तुत हो सकी॥

सौभाग्य चिन्ह न माँग में
सिन्दूर रेख विराज ही।
मङ्गलमयी शुभरात्रि के हित
क्या शृङ्गार किया नहीं॥

होकर रही क्या श्रवणगोचर
पति पधारो द्वार पै।
निज कार्य को विश्राम दो
न विलम्ब का अब है समै॥४॥

—लक्ष्मणसिंह वर्मा

मैं तो जाउँगी



रिद्वार के इस बार के कुम्भ के मेले को कौन नहीं जानता। पहली अप्रेल से भी कुछ दिन पहिले से मेले के यात्रियों ने जाना आरम्भ कर दिया था। १२ अप्रेल तक कई लाख यात्रियों की संख्या होगयी थी। ऐसे यात्रियों के दलों से हरिद्वार की पवित्र भूमि पर तिल रखने को भी स्थान नहीं बचा। गंगा महारानी भी अपने शीतल पावन और मधुर जल के वेग के कारण कल कल शब्द करती हुई यात्रियों का स्वागत कर रही थीं। यात्रियों की इतनी संख्या हो गई कि

कहीं बैठने उठने को ठौर न रही तो भी गंगाजी के प्रभाव से मनुष्य आने बंद न हुए। थोड़ी थोड़ी देर में दनादन माल-गाड़ी पर माल-गाड़ी यात्रियों से भरी हुई आ रही थीं। हर एक आर्य पुरुष और सती स्त्री का विचार यही था कि १२ वर्ष के पीछे एक कुम्भ आता है उस पर भी एकबार हरिद्वार जाकर हर की पेड़ी पर दो डुबकी न लगाईं तो हमारा कल्याण कैसे होगा। मुझको गत १३ तारीख की एक घटना लिखते हुए बहुत दुःख होता है। किन्तु उस को मैं अपनी बहनों से ज़ाहिर करना फ़रज़ समझता हूँ जिस से विदित हो कि बड़ों की सीख न मानने से कितनी हानि होती है और स्त्रियों को बड़े मेलों में जाना उचित है या नहीं। नीचे एक सेठ सेठानी की बातें लिखती हैं। उनकी बातों को मैं उनके प्रान्त की भाषा में ही लिखना उचित समझता हूँ जिस से भाव में अन्तर न पड़े।

एक सेठ जी जिनका नाम यहाँ पर लिखना अनुचित समझता हूं दोपहर के १२ बजे के लगभग अपने घर को भोजन करने के लिये आये। बड़े चाव के साथ स्त्री ने भोजन लगाया और पति के सामने थाली रखदी। आप भी वहीं पास ही को बैठ गई।

सेठानी—क्यों जी कल्ल कु तो कुम्भ का मेल्ला है। तम क्या मेल्ला देखणे नहीं जाओगे। सारी खलकत तो जिब की जा रही है। गंगा असनान कर रही है। क्या जाने थारा ऐसा कैसा दिल है जो तम कहीं नहीं आत्ते जात्ते। कोई एक दिन में थारा दुकान हाट को काम बंद हुआ जाए है? क्या तम एक ही दिन में बोहत सा धन समेट के रख लोगे? नूँ तो सोचते नीं के बारह वर्ष के पीच्छे तो कुम्भ आवे। साल महीने पीछे आत्ता नीं जो यूँ सिमझ रक्खे कि इबके नीं फेर चले चलेंगे। बड़े बड़े म्हातमा के दरसन होंगे। कुम्भ नहाए से पाप कटेंगे। बड़े म्हातम की बात है। तम यूँ ही कहे जाओ हो कि क्या करेंगे जाके। घर पिछवाड़े जमना की नहर बह रही है, बस उसी में कुम्भ के दिन दो गोत्ते लगा लेंगे। कहीं इन बात्तों से पूरे पड़े हैं। हमतो नूँ कहैं थे कि तम चले चलते, होर हम भी थारी गेल हो आत्ते। म्हारा तीरथ भी हो जात्ता और हरिद्वार भी देख आत्ते। अब तम बताओं थारी क्या मरजी है? आज का दिन होर बीच में है।

सेठजी—अरी बावली, तू तो समझती नीं। अपनी बको जा है। म्हारी बात तेरी सिमझ में ही नीं बैठती। इतने भीड़-भड़क्के में तू कहाँ मरने जागी। तुझे कौन से हर की पैड़ी के असनान मिले जाँ हैं। माल म्हारा ठाके कोई लेगया तो होर ताकते रह जाँगे। किसकी गेल माँगके

जाँगे। कोई भीक बी नीं डालने का। म्हारा मोटा सरीर, चल्या फिरा बी नीं जात्ता। तू जाने क्या क्या हमते करवावणे कू फिरे। ले होर सुन, आज रामलाल हरिद्वार से आया था। केहवण लागया (कहने लगा) कि भाई बड़ी भीड़ है बेठने तक को ठोर नहीं मिलती। केहे था कि कितने ही आदमी हैजे में मर गए कितने ही कुचले गए, कितनो ही के आदमी बिछुड़ गए। अब तू बता, लाल, मैं कैसे करूँ। तुझे कैसे कह दूँ कि तू चली जा। ना, क्या जरूरत पड़ी है, ऐसे मैं जाने की। मैं तो कही आत्ता जात्ता नीं। कहाँ रेल बेल मैं घुसता फिरूँगा। बैठने को लोग ठौर बी नीं देत्ते और मेरा भारी बदन, दो की ठोर तो पहले ही घेरूँ। मुझे कोण घुसने दे है इतनी भीड़ मैं। बस मैं ने कह दिया कि मैं तो मेले ठेले मैं कहीं आत्ता जाता नीं। फेर तू कैसे जा सके। तू भी रह जा। कल को हम तुम दोनों नेहर पर असनान कर लेंगे, आनो वही गङ्गा। कहा नहीं करते के 'मन चंगा तो कठोती मैं गङ्गा।' नहाना सब जगह का एक सा, कहीं नहा लो, म्हारे बदन की शुद्धि चाहिये।

सेठानी-तो यह सारा जिहान बावला, जो दूर दूर से गङ्गा नहाणे (नहाने) जा रहा है। सब के सब नहा लिए होते एक एक बालटी पानी मैं। क्या उनकी मत मारी गी थी जो सारे जा हर की पेड़ी ही मैं मरे। (सेठानी का क्रोध बढ़ रहा है जो कहे सो थोड़ा) और घर की क्या है सब ही अपने अपने घरों मैं न्हात्ते हैं। कोन सा नीं न्हात्ता पर तीरथ की होर बात है। थारे मन मैं तो पाप भर रहा है।। पैसा तम फ़क़ीर को नीं देते, तीरथ जात्रा तम नहीं करते। थारा तो मन पापी है। तम कैसे हरिद्वार जा सको। हमने तो इब कह दी के "मैं तो जाऊँगी।" बुधवा की माँ कलवा की बहन हो सब जा रही हैं। उनही की गेला (साथ) हम दोनों सास बहू चले जाँगे। चहि तम एक नी हज़ार सुणाया करो तो भी हम नी सुनते। म्हारा मन पापी थोड़ा ही है। गङ्गा नहाए का तो बड़ा म्हातम है।

सेठजी—तू मेरे पुच्छे बिना चली जा सकती है? तुझे ताले में बन्द कर दूँगा। कहाँ की लिए फिरे गङ्गा पङ्गा, सब भूल जागी जो दो घंटे भी पड़ी रही।

सेठानी—तम मुझे क्या बन्द करोगे? थारे बन्द करे से क्या होए है। कोन से मुझे मारे डालो हो। जब खोलोगे जब कोतवाली मैं चलीं जाऊँगी। तम कैसे सरकारी हुकम के खिलाफ बन्द कर सको।

सेठ जी का रङ्ग मारे गुस्से के लाल हो गया। मगर कहावत मशहूर है "बन्द की धमकी और लाला की धौंस" बराबर है। बड़ बड़ाते हुए अपनी दुकान की ओर चल दिये। वहाँ जाकर बड़ी चिन्ता में हो गये कि स्त्री किसी प्रकार भी बस में

नहीं आती और उलटा दबाए लेती है। ख़ैर देखो, शायद समझ में आ जाय, नहीं तो कोई हरज नहीं है और स्त्रियों के साथ तो जा रही है।

इस बीच में सेठानी ने कुछ परांठे रास्ते के वास्ते सेक लिए और नये कपड़े बदल एक जोड़ा धोती का और बिस्तर इत्यादि ले बहू सहित बुध्वा की माँ के मकान पर जा डटी।

[२]

शाम के पाँच बजे होंगे कि सेठानी सहित आठ दस स्त्रियाँ अपनी अपनी गठरी बगल में दबाये स्टेशन की ओर चल दीं। टिकट ले लिये। गाड़ी आने का समय भी हो गया। किन्तु कोई भी टिकट बाबू इनको अन्दर नहीं जाने देता। यह लो यह तो गाड़ी भी आ गई। अब भी कोई घुसने नहीं देता।

सेठानी—अजी बाबूजी, हमने जावणे द्यो। थारा भला हो! लो (एक रुपया निकाल कर) तम मिठाई खाइयो।

एक वालंटियर* ने लपक कर कहा—"क्यों भाई यह तुम क्या दे रही हो? थमो थमो" (टिकट बाबू से) "बाबू तुमको लज्जा नहीं आती कि ऐसे धर्म के कार्य में तुम उलटा मुसाफ़िरों को लूटते हो और इनसे लेकर जेब में डालते हो। शर्म की बात है। छोड़ते क्यों नहीं?"

वालंटियर सेठानी से—"माई आओ मेरे साथ साथ चलो, मैं गाड़ी में बिठलाता हूं।"

सेठानी—चल बेटा, तेरा रामजी भला करैं, बड़ी उमर हो।

वालंटियर की कृपा से जैसे तैसे सब स्त्रियाँ गाड़ी में धसा दी गईं क्यों कि जगह बिलकुल नहीं रही थी। बहुत देर गाड़ी में घुटकर और कठिनाई के साथ सब सहेलियाँ हरिद्वार पहुँच गईं। चहुं-ओर बिजली की रोशनी अपने तेज से रास्ते को जगमगा रही थी। रात्रि का मध्य तो आगया था किन्तु अब तक हल-चल मच रही थी। एक दफ़े तो इन स्त्रियों ने यह दृश्य देख कर प्रफुल्लित हो चहचहा मचाया। फिर कुछ भोजन आदि तथा रात्रि को विश्राम करने के अनेक प्रयत्न होने लगे। सोचते सोचते अंत में सेठानी की बात ही पर सब धर्म-शाला की ओर चलने लगे। कोठरी मिलना तो बहुत ही मुशकिल बात थी इसलिए आँगन ही में बिस्तरा लगाने की सोची गई। वह रात जैसे तैसे कटी। प्रातःकाल का समय बहुत ही मनोरंजक था परन्तु शोक है कि उसी प्रातःकाल को बहुत से यात्रियों का बलिदान होगया।

आठ बजे का समय है। सब यात्री

* वालंटियर—सेवा समिति के स्वयंसेवकों को वालंटियर कहते हैं क्योंकि वह विना तनख़्वाह के अपने को यात्रियों की सेवा के लिये नियत करते हैं

गंङ्गा स्नान को तैयार हो रहे हैं। यह देख सेठानी जी उनकी बहूजी पुत्री और सब स्त्रियाँ गठरी बाँध उसी ओर चल-पड़ीं। धर्मशाला से निकलते ही मालूम हुआ कि जाने वाली भीड़ थोड़ी है उन्हींके पीछे पीछे ये भी चल पड़ीं। पर आगे जाने पर मालुम हुआ कि भीड़ तनिक बढ़ गई है, फिर और आगे जाने पर तो रास्ता ही बन्द पाया। परन्तु सावधानी के साथ यह सब आगे बढ़ती चलीं। अब तो कुछ हल चल आदमियों की ऐसी हुई कि सब को अपनी अपनी पड़ने लगी। अब संगी साथी का किसी को विचार न रहा। कोई किधर कोई किधर। बल्लो की माँ, कटोरी, राम कली, बुद्धू की माँ सब तित्तर बित्तर हो गईं। सेठानी ने अपनी बहू और पुत्री का हाथ मज़बूत थाम रक्खा था, इसीसे वह नहीं बिछड़ीं। पर इस समय सेठानी बहुत घबराने लगी।

सेठानी—किरपी ! (पुत्री का नाम) हाय अब मैं कैसे करूँ। साथनें तो जाने कहाँ की कहाँ होगई। मैं केल्ली (अकेल्ली) रह गई। मेरा तो दम घुटा जाए है। सेठजी ने ठीक बताई थी कि भीड़ बोहत है, तम मत जाओ। पर क्या करूँ मत मारी गई। अब यहाँ मालुम हुआ। दम सा घुटा जाए है। जाने जिन्दी रहूँ या मर जाऊँ। खेर, रामजी मालिक है। तूभी रोए मत। आगे भीड़ स्यात कम हो जाए। हे गंङ्गा म्हारानी ! तुमैं एक रुपये का पर-साद चढ़ाऊँ, जो वह सब साथनें मिल जाएँ।

रेले के साथ में सेठानी आगे चलीं गई। जब दम घुटता, तो चिल्लाती किन्तु कोई संभालने वाला न था। इसी तरह हर की पैड़ी पर पहुँच गईं। सीढियों का आना था कि इतने धक्के पीछे से पड़े कि कोई अपने को संभाल नहीं सकता था।

"अरी बहू ! तू गिरी ! सिँभल। अरे-भाई ओ ! बचाना, बहू गिर रही है।" वहाँ कौन संभाले। अपने संभालने की सबको फ़िकर पड़ रही थी। बहू जी भीड़ में दबने की वजह से बेहोश हो गई थी। धम से सीड़ी पर गिरी। सैकड़ों आदमी ऊपर से उतरने लगे। वहा मजबूत पुरुष भी अपने को नहीं सँभाल सकतेथे। बेचारी बहू को कौन उठाता। सेठानी बहू के उठाने को झुकी ही थी, कि धक्के से खुद भी गिर गई और मृत्यु की शिकार बन गई। बेशुमार आदमी दोनों के ऊपर से उतरने लगे। दोनों का कुचला हो गया, सब हड्डी पसली चूर चूर हो गईं। सेठानी और उसकी बहू श्रीगंङ्गा जी की भैंट होकर स्वर्ग को सिधारी। अब रही उनकी पुत्री किरपी सो वह भी बेहोश होगई थी और संभव था कि वह ठोकर खाती और अपनी माता और भौजाई का सा हाल उसका होता यदि एक दयालु पुरुष उसे कंधे से ऊँचा न उठा लेता और मैदान में लाकर पंखा न झलता। चोट तो उसके

भी आई परन्तु इतनी नहीँ जो मरजाती। जब उसे चेत हुआ और पूछा गया कि तू कौन है। उसने सब पता और हाल बताया और अपनी माता को पुकारने लगी। पर माता कहाँ थी, जो बोलती। इस लिए वह खड़ी खड़ी रोने लगी। एक सिपाही ने दौड़के उसके पिता को तार दिया। तार का मज़मून यह था—

"Your wife and daughter-in-law are crushed to death, come soon".

"तुम्हारी स्त्री और लड़के की बहू कुचल कर मर गईँ, तुम जल्दी आओ?"

अब बाहर से आदमी आने रोक दिये गए और देखा गया कि हर की पैड़ी पर सिवाय इन दो के और भी कोई मरा है या नहीँ। हा शोक! न एक, न दो, न तीन, बल्कि ४१ लाशेँ पड़ी मिलीँ। सब बुरी तरह से कुचली हुई थीँ। कोई तो ऐसी थीँ कि उनकी सूरत नहीँ पहचानी गई। इन लाशोँ मेँ दो तो वह थीँ और क़रीब २६ स्त्रियाँ और थी बाकी खूब मोटे ताजे जवान १३—१४के क़रीब थे। सब लाशेँ बराबर बराबर लिटाई गईं और पानी से नहला के एक एक खाट पर गति के वास्ते ले जाई गईँ।

सेठ की पुत्री किरपी अपनी माँ भावज को ऐसी दशा मेँ देख रोते रोते बेहाल हुई जाती थी किन्तु सिवाय संतोष के दूसरा इलाज न था।

* * * *

[३]

तार वाला—सेठजी! ओ सेठजी! लो तार आया है।

सेठजी—क्याँ है भाँई क्या है? ज़रा सट पटा के तारवाले से ही तार का मतलब पूँछा। जब सुनाकि स्त्री मर गई, दहाड़ दहाड़ के रोने लगे—"हाय! मेरा घर बरबाद हो गया। मैँ ने उसको पहिले ही समझाया था कि मत जा मगर वह न मानी। धिक्कार है स्त्रियोँ की बुद्धी पर अब मैँ क्या करूँ। मेरा कहना मान लेती तो काहे को अपनी जान गंवाती। हाय! तेरी मत को क्या होगया था जो तूने मेरी बात न मानी।" इस तरह बहुत विलाप करते हुए और सारे मेलोँ को धिक्कारते हुए सेठजी अपने पुत्र सहित उसी समय हरिद्वार की ओर चल दिये। वहाँ पहुँच कर फिर बहुत रोए और पुत्री से कहने लगे, "अरी तू क्योँ रह गई, तूभी वहीँ चली जाती जहाँ उसका धर्म अब उसे ले गया है।" पुत्री ने सावधानी से उत्तर दिया, "लाला जी जाने की तो मेरी भी तैयारी हो चुकी थी। यदि एक दयालु मनुष्य मेरी सहायता न करता तो मैँ भी मर गयी होती।" निदान रो पीट कर सेठजी अपने घर वापस आये।

इस मेँ कुछ सन्देह नहीँ कि बड़ोँ के आज्ञानुसार न चलने से बहुत ही हानि होती है। यह बात भी बहुत देखी गई है कि मेलोँ मेँ स्त्रियाँ बहुत जाती हैँ। इस

रीति के प्रचलित होने से दिन दिन अधिक अत्याचार होने लगे हैं। कारण यह है कि हर प्रकार के मनुष्य मेलों में आते हैं। बदमाशों की संख्या अधिक होती है जो कि स्त्रियों के सामने बहुत बुरे शब्द बोलते हैं जिसमें स्त्रियों के खयालात भी ख़राब होते हैं। जहाँ तक हो सके स्त्रियों को मेलों में न जाना चाहिये। और यदि जावें भी तो घर के पुरुषों के साथ ही जावें। आशा है इस सच्ची घटना से हमारी बहनें कुछ शिक्षा अवश्य ग्रहण करेंगी।

—हरस्वरूप माथुर

चम्पा और चमेली

(१)

आओ प्यारी बहन चमेली।
क्यों बैठी हो यहाँ अकेली॥
काँप रहा सब गात तुम्हारा।
है माथे पर हाथ तुम्हारा॥

(२)

दोनों पलक तुम्हारे भारी।
सूरत भी अनमनी तुम्हारी॥
फैल रहे चहरे पर बाल।
मुझे बताओ इसका हाल॥

(३)

यह सुन कहने लगी चमेली।
क्या बतलाऊँ तुम्हें सहेली॥
जयदेवी ने गजब किया है।
मुझे बड़ा ही कष्ट दिया है॥

(४)

आज सवेरे हम सब मिलकर।
खेल रही थीं खेल परस्पर॥
मैं ने अपने घर में जाकर।
माताजी से भेद छिपाकर॥

(५)

दोना भर पकवान मिठाई।
सब के पास चुराकर लाई॥
सब सखियों ने करके प्यार।
खाई भली भाँति ज्यौनार॥

(६)

जयदेवी ने यह सब हाल।
माँ से जाय कहा तत्काल॥
माँ ने मुझ पर क्रोध किया है।
गले लगाना छोड़ दिया है॥

(७)

करती नहीं ज़रा भी प्यार।
यही खेद है मुझे अपार॥
जयदेवी को मजा चखाऊँ।
तब मैं इसका बदला पाऊँ॥

(८)

मन में गुस्सा उमड़ रहा है।
दल बादल सा घुमड़ रहा है॥
उसे मिलादूं अभी खाक में।
बैठी हूँ मैं इसी ताक में॥

(९)

कब तक यहाँ नहीं आवेगी ।
आखिर अपना फल पावेगी ॥
यह सुन चम्पा ने सब हाल ।
कहा बहन यह छोड़ो ख्याल ॥

(१०)

पकड़ लिया नरमी से हाथ ।
चली लिवाकर अपने साथ ॥
गई बाग मैं थोड़ी दूर ।
करती हुई प्यार भरपूर ॥

(११)

हमदर्दी दुख मैं दिखलाकर ।
कहने लगी उसे समझाकर ॥
देखो बहन खिली फुलवारी ।
परम मनोहर इसकी क्यारी ॥

(१२)

रोसों पर बेला अलबेला ।
खिला हुआ है आप अकेला ॥
इसमैं सुन्दर महक बड़ी है ।
बीच चमेली खिली खड़ी है ॥

(१३)

सुन्दर फूला हुआ गुलाब ।
इसका जग में नहीं जवाब ॥
खिले हुए हैं फूल निराले ।
भाँति भाँति सुन्दर मतवाले ॥

(१४)

रंग बिरंगा रूप सही है ।
महक मनोहर निकल रही है ॥
छटा अनोखी दिखा रहे हैं ।
सबके मन को लुभा रहे हैं ॥

(१५)

इन्हें किसी से नहीं खेद है ।
शत्रु मित्र का नहीं भेद है ॥
सबको एक रूप पहचान ।
कर देते हैं जीवन दान ॥

(१६)

रखते हैं मन मैं संतोष ।
नहीं किसी से करते रोष ॥
सबसे सच्चा प्रेम निबाहैं ।
नहीं किसी से बदला चाहैं ॥

(१७)

देखो वृक्षों की छबि भारी ।
लिपटी हुई लता अति प्यारी ॥
सबके मनको सुख देते हैं ।
बदला कभी नहीं लेते हैं ॥

(१८)

पक्षी पाते हैं आराम ।
तिनकों के घर बने तमाम ॥
पथिक दुपहरी बिलमाते हैं ।
छाया पाकर हर्षाते हैं ॥

(१९)

मीठे मीठे फल खाते हैं ।
गाँठ बाँध कर ले जाते हैं ॥
इनका जीवन जग मैं सार ।
करे बड़ाई सब संसार ॥

(२०)

आगे मंडप तने हुए हैं।
स्वर्ग सदन से बने हुए हैं॥
फूल रहा है बाग तमाम।
मन को मिलता है आराम॥

(२१)

देखो आगे साफ सरोवर।
बने हुए हैं घाट मनोहर॥
भरा हुआ है निर्मल नीर।
हर लेता है मन की पीर॥

(२२)

सब जीवों को सुख देता है।
ताप हिये का हर लेता है॥
नहीं समझता गुण और दोष।
करता नहीं किसी पर रोष॥

(२३)

राजा रंक बराबर जान।
करता है सब का सन्मान॥
इसमें किंचित नहीं विकार।
करता है सच्चा उपकार॥

(२४)

देखो इसका ठाट मनोहर।
बैठो यहाँ जरा खुश होकर॥
खेल खिला कर शोक मिटाया।
हाथ पकड़ कर पास बिठाया॥

(२५)

जान गई चम्पा तत्काल,
उसके दिल का सारा हाल।
भरा हुआ है मोद अपार,
दिलसे जाते रहे विकार॥

(२६)

हर्षित होकर फूल गई हैं,
पिछली बातें भूल गई हैं।
तब चम्पा ने अवसर जान,
नरमी से बतलाया ज्ञान॥

(२७)

सुनलो प्यारी बहन चमेली,
मेरी बात बड़ी अलबेली।
जो तुम इस पर ध्यान धरोगी,
कभी न ऐसा क्रोध करोगी॥

(२८)

मन में इसका सोच करो तो,
अपने ऊपर ध्यान धरो तो।
तुमने कैसा काम किया है,
जयदेवी को दोष दिया है॥

(२९)

इसमें बहुत तुम्हारी भूल,
यही बात है दोष की मूल।
किया सरासर तुमने दोष,
फिर भी किया अकारण रोष॥

(३०)

पूछे बिना मिठाई खाई,
माताजी को नहीं बताई।
पकड़ी गई तुम्हारी चोरी,
फिर करती हो सीनेजोरी॥

(३१)

यह तो काम बड़ाही पोच,
करो जरा तो मन में सोच।
जो बहनें चोरी करती हैं,
मन में जरा नहीं डरती हैं॥

(३२)

उनका आदर घट जाता है,
प्रेम बड़ों का हट जाता है।
रहता नहीं जरा विश्वास,
नहीं बिठाता कोई पास॥

(३३)

यही टेव फिर पड़ जाती है,
इज्जत साफ बिगड़ जाती है।
जिसे लगा चोरी का स्वाद,
उसका जीवन ही बरबाद॥

(३४)

जिसने सीखा चोरी करना,
जीते जी है उस का मरना।
चोरी करके जो हर्षाय,
उसका जन्म अकारथ जाय॥

(३५)

बहुत बुरी चोरी की चाट,
कर देती है बारहबाट।
जिसे चढ़ा चोरी का भूत,
उसके दुख का नहीं सबूत॥

(३६)

बहन तुम्हारा यह छल छन्द,
मुझको बिलकुल नहीं पसन्द।
एक तुम्हारा और कुसूर,
वह भी मुझे नहीं मंजूर॥

(३७)

जयदेवी पर करके रोष,
तुमने किया भयानक दोष
वह तो बहुत तुम्हारी प्यारी,
सकल भाँति हित चाहनहारी॥

(३८)

उसने तुम को बचा लिया है,
बहुत बड़ा उपकार किया है।
अगर तुम्हारी बात छिपाती,
यही टेव तुम को पड़ जाती॥

(३९)

होता फिर तो कष्ट अपार,
समझो इसको भली प्रकार।
गुस्सा करना बहुत बुरा है,
छिपा हुआ यह तेज छुरा है॥

(४०)

जब गुस्सा मन में आता है,
नरम कलेजा जल जाता है।
गुस्सा मन को दुःख देता है,
ज्ञान बुद्धि को हर लेता है॥

(४१)

गुस्सा घोर पाप का मूल,
पैदा करे अनेकों शूल।
गुस्से की ही बुरी जलन में,
थी तुमको बदले की मन में॥

(४)

क्यों कर बदला तुम भर लेतीं,
जयदेवी का क्या कर लेतीं।
उस से नहीं जरा वश चलता,
केवल हृदय तुम्हारा जलता॥

(४३)

क्या तुम उससे बदला पातीं,
उलटी अपनी हँसी करातीं।
लड़ने वाली नाम धरातीं,
दुनियाँ में दूना दुख पातीं॥

(४४)

इससे सुनलो मेरी प्यारी,
यह भी अतिशय भूल तुम्हारी।
जो तुम ऐसा काम करोगी,
घरवालों से नहीं डरोगी॥

(४५)

तो तुम खोटी कहलाओगी,
आगे चलकर दुख पाओगी।
बहुत बुरा होगा परिणाम,
कभी न पाओगी आराम॥

(४६)

मैं भी हरदम दूर रहूँगी,
कभी न तुमसे बहन कहूँगी।
सुनकर यह उपदेश सहेली,
मनमें लज्जित हुई चमेली॥

(४७)

काँप उठा सब उसका गात,
कहने लगी शरम के साथ।
बिलकुल होने लगी अधीर,
बहने लगा दृगों से नीर॥

(४८)

विविध भाँति से व्याकुल होकर,
कहने लगी चमेली रोकर।
अब मैं ऐसा नहीं करूँगी,
इन बातों से सदा डरूँगी॥

(४९)

कहती हूं मैं दिल से साफ,
अब तुम मुझको कर दो माफ।
कभी किसीसे नहीं लड़ूंगी,
जयदेवी के पैर पड़ूंगी॥

(५०)

उसी समय जयदेवी आई,
परम प्रीति से कंठ लगाई।
तीनों को सुख हुआ अपार,
दिल से जाते रहे विकार॥

(५१)

उसी समय माता जी आईं,
तीनों बहनें कंठ लगाईं।
बहुत किया चम्पा को प्यार,
गले लगाया भली प्रकार॥

(५२)

तू बेटी है बड़ी सयानी,
सुखपाने की यही निशानी।
सुन माता की बातें प्यारी,
तीनों बहनें हुईं सुखारी॥

—छेदालाल
(जयाजी प्रताप)

गर्भस्राव और गर्भपात के उपाय

कुछ स्त्रियों को बार बार गर्भस्राव और गर्भपात हो जाता है। चतुर्थ मास में गर्भ गिर जावे तो वह गर्भस्राव कहलाता है और उसके पश्चात् गिर जाय वह गर्भपात कहलाता है। ऐसी स्त्रियों को अधिक समय पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। गर्भ रहे पीछे भी ब्रह्मचर्य का पालन करना उचित है। इससे गर्भ का गिरना रुक जाता है। नीचे दिये हुए उपाय आर्य वैद्यकशास्त्रों में लिखे हुए हैं और इनका विधिपूर्वक पालन किया जाय तो लाभ हो सकता है।

१ मास में गर्भस्राव होता हो तो—मुलैठो, सागके वृक्ष के बीज, शितावरी, देवदारु, हर एक को एक २ तोला लेकर ठंडे जल में पीस कर ५ रुपये भर दूध में मिलाकर पिला देना चाहिये।

२ मास में गर्भस्राव होता हो तो—आसोंदर की छाल, काले तिल मजीठ व शितावरी इनका उपरोक्त रीति से सेवन करना चाहिये।

३ मास में गर्भस्राव होता हो तो—गिलोय, शितावरी, प्रियंगु, उपलसरी इनका उपरोक्त रीति से सेवन करना चाहिये।

४ मास में गर्भस्राव होता हो तो—धमासा, उपलसरी, रास्ना, कमलकी नली मुलैठी का ऊपरोक्त रीति से उपयोग करना उचित है।

५ मास में गर्भपात होता हो तो—दोनों प्रकार की भटकटैया, शीवणमूल, काकरा शींगी, दालचीनी और जिनमें से दूध निकलता हो वैसे वृक्षों की अर्थात् वट, पीपर, अश्वत्थ, इत्यादि की छाल का क्वाथ करके किम्वा चूर्ण करके घृत में मिलाकर या दूध के साथ सेवन करना चाहिये।

६ मास में गर्भपात होता हो तो—पीठघण किम्वा पीलुड़ी, पोपटी, बलदाना, सरगवा, गोखरू शीवणमूल, इनका क्वाथ किम्वा चूर्ण दूध के साथ पीना उचित है।

७ मास में गर्भपात होता हो तो—शींघोंड़े, कमल के तन्तु, द्राक्ष, मुलैठी कचुरा इन का चूर्ण बनाकर उसका शक्कर व दूध में हलुआ बनाना और खाना चाहिए।

८ मास में गर्भपात होता हो तो—रोंठ की जड़, बेल वृक्ष की जड़, जीवन्ती की जड़ पटोल, इषकी जड़ और भटकटैया इनका क्वाथ बनाकर उसमें दूध मिलाना और उसको उबालकर पीना चाहिये।

९ मास में गर्भपात होता हो तो—मुलैठी धमासा, शितावरी, सारीवा, इनका क्वाथ बनाना फिर उस क्वाथ में दूध डाल कर उबालना और पीछे उसे पीना चाहिये।

१० मास में गर्भपात होता हो तो—सोँठ व शितावरी का क्वाथ पीना चाहिये।

११ मासमें गर्भपात होता हो तो—राण वृक्ष की जड़ की छाल, काला कमल, लाजवंती, और आँवला इनको दूध में पीस कर पीना चाहिये।

१२ मास में गर्भपात होता हो तो—भैंकोला, असगंध, शितावरी, कमल के तन्तु इन्हें पीस कर पीना चाहिये।

गर्भास्राव किम्वा गर्भपात होने वाला हो, तो दाह, पसली में शूल, प्रदर (स्राव) पेडु में दर्द और पिशाब का प्रतिवन्ध इत्यादि लक्षण मालूम होने लगते हैं। जब ये लक्षण हों तब ऊपरोक्त रीति से उपाय कुछ दिन करने चाहिये। ऐसा करने से गर्भका गिरना रुक जाता है।

(वैद्य-कल्पतरु)

एक तीर और एक गीत *

(१)

इक दिन छोड़ा तीर
　　एक मैं ने नभ ऊपर।
पर जाना नहिँ गिरा
　　जाय कह वह इस भूपर॥
उसका योँ था वेग
　　निराला नभ मण्डल मैं।
दृष्टि न मेरी सकी काम
　　कर कछु तिहिँ पल मैं॥

(२)

इक दिन गाया गीत
　　एक योँ ही निज सुर मैं।
वह कहँ जाकर हुआ बिलीन
　　न जाना उर मैं॥
किसे अहै अस तीव्र
　　दृष्टि जो शब्दहिँ पावै।
अरु उसके अति शीघ्र बेग
　　सँग वैसहि धावै॥

(३)

बहुत दिवस जब गये
　　बीत तब इक तरु माँही।
देख पड़ो वह तीर बहुरि
　　टूट्यो कछु नाहीँ॥
अरु निज गीतहि आदि
　　अन्त लौं वैसहि पाया।
एक सुहृद के हृदय बीच
　　था जैसा गाया॥

(४)

इन सुपंक्तियोँ बीच
　　अहै शिक्षा एक भारी।
लहो बहन! यदि चहो
　　रहन जग बीच सुखारी॥
"बिन विचार कछु किये
　　नहीं इक शब्द निकालो।
नतरु पड़त अति दृढ़ प्रभाव
　　नहिँ भी यदि डालो॥"

—परशुराम चतुर्वेदी

* लाङ्गफेलो के "दि एरो एण्ड दि सांग" का छायानुवाद।

बालक कैसे बिगड़ जाते हैं



पाठिकाओ, आज मैं आप लोगों की सेवा में एक तुच्छ लेख समर्पण करता हूँ। आशा है कि आप ध्यान पूर्वक इसको पढ़ेंगी। इस लेख में और कुछ नहीं केवल यही दिखाया है कि आज कल के लड़के कैसे बिगड़ जाते हैं। इस लेख में केवल इन्हीं बातों का उल्लेख किया जायगा आप ध्यान पूर्वक सुनिये—

वर्तमान समय में प्रायः देखा जाता है कि माता पिता का ध्यान बालकों की तरफ़ न रहने से बालक बिगड़ जाते हैं और अपना मनमाना करने लगते हैं। इस लिए माता पिता को सब से प्रथम उचित है कि वे अपने बालकों को विद्या तथा नीति के भूषण से सुशील, साहसी, धैर्य्यवान, विद्वान तथा कर्म वीर बनावें। परन्तु हम वर्तमान समय में यह देखते हैं कि प्रायः एक अथवा दो बालकों के होने तक तो उनके माता पिता भी पूर्णतया शिक्षित तथा तरुण नहीं होते हैं और जब माता पिता ही पूर्णतया शिक्षित तथा तरुण नहीं हैं तो किसी भी प्रकार संभव नहीं कि वे अपने प्यारे बालकों की रक्षा तथा शिक्षा का यथोचित प्रबन्ध जैसा कि होना चाहिए कर सकें।

यह प्रत्यक्ष है कि जो स्वयं योग्य है वही दूसरे को सुशिक्षा करके योग्य बना सकता है। छोटी अवस्था के माता पिता जो स्वयम् शिक्षा पाने के योग्य होते हैं भला वे अपने बालकों को किस प्रकार शिक्षा दे सकते हैं। जब यह दशा है तो वे बालक सिवाय असभ्य रहने के और किस हालत में रह सकते हैं। इसलिए यदि माता पिता तरुण तथा योग्य हैं तो उन्हें उचित हैं कि वे सदा बालकों को लेख के आखीर की लिखी हुई बातों के अनुसार छोटेपन ही से चलाने की कोशिश करें क्योंकि छोटेपन में बालकों का मन अत्यंत कोमल होता है, उनसे जो कुछ कहा जाता है वे उसे ही करने को तत्पर हो जाते हैं। माता पिता को यह भी उचित है कि वे बालकों की शारीरिक और मानसिक रक्षा की ओर भी अधिक ध्यान दें।

शारीरिक तथा मानसिक रक्षा में सब से प्रथम ब्रह्मचर्य्य की आवश्यकता है क्योंकि ब्रह्मचर्य्य ही के पालन से विद्या, बुद्धिबल, पराक्रम आदि की प्राप्ति होती हैं। आजकल प्रायः १० फी सदी ऐसे मनुष्य न होंगे जिन्होंने पूर्णतया ब्रह्मचर्य्य पालन किया हो। इसके बाद फिर उत्तम भोजन, शुद्ध जल और वायु का सेवन, मादक तथा हानिकारक वस्तुओं का निषेध, देश काल के अनुसार बर्ताव, कुसंगति से बचाना, और फिरना, बैठना, खेलना, सोना आदि यथोचित शिक्षा पूर्वक सिखावे, उनको विद्या तथा नीति

सम्बन्धी विषयों में प्रवृत्त करावें। इस प्रकार जैसे जैसे शारीरिक शक्ति बढ़ती जाती है उसी प्रकार मानसिक शक्ति का भी उदय होता है जिस से संतान हृष्ट पुष्ट तथा धार्मिक और विद्वान हो जाती है।

प्रायः देखा जाता है कि बालकों के लिए नीति का उदाहरण मुख्य बालक के माता पिता ही हैं। जैसे जैसे आचरण माता पिता करते हैं, वैसे ही आचरण बालक भी करने लगता है, क्योंकि बालक में यह प्राकृतिक गुण है कि जैसा वह देखता है वैसे ही करने की चेष्टा करता है और जो आदत बचपन में पड़ जाती है वह मरण पर्य्यंत नहीं छूटती। जैसा किसी बालक का पिता शराब पीता है और वह बालक से कहता है कि बेटा शराब नहीं पीना चाहिए शराब बड़ा हानिकारक पदार्थ है। इस कहने का प्रभाव बालक पर कुछ भी नहीं होता क्योंकि वह तो पहले से जानता है कि इस में अवश्य कोई गुण होगा नहीं तो पिता जी इतने बुद्धिमान होकर इसे क्यों पीते। इसलिए शराब आदि चीजें उदाहरण रूप हो पिता की ओर से उपदेश करती हैं। इस लिए माता पिता को भी उचित है कि वे भी अपने आचरणों को सम्हालें और बालकों को उत्तम शिक्षा दें। माता पिता के आचरणों का खराब होना भी आज कल के बालकों के बिगड़ने का कारण है।

अब संगति के बारे में सुनिये। यद्यपि संगति का फल मनुष्य मात्र को होता है तथापि बड़े मनुष्यों की अपेक्षा बालक को संगति का फल बहुत शीघ्र होता है। गुण संगति ही से तो पैदा होता और संगति ही से चला जाता है यथा किसी कवि ने कहा है कि–

> संगति ही गुण ऊपजै संगति ही गुण जाय।
> बांस फांस और मिश्री एकहि भाव बिकाय॥

सुसंगति ही के कारण मनुष्य धर्मात्मा विद्वान संतोषी तथा कीर्तिमान होकर संसार में हमेशा के लिए नाम छोड़ जाता है और कुसंगति में पड़ कर बालक अनेकानेक दुराचारों को सीख लेते हैं। इस लिए बालकों को कुसंगति से भी बचाना परमावश्यक है क्योंकि आज कल बालक प्रायः इसी कारण से अधिक बिगड़ते हैं।

बहिनो, बालकों के सुधारने से कुटुम्ब और संसार का सुधार और बिगड़ने से हानि होती है यह जानने पर भी माता पिता का उस तरफ ध्यान न होना इस से अधिक मूर्खता क्या होगी। प्रायः मनुष्य अपने बालकों को जैसा वे भोजन तथा वस्त्र चाहते हैं नहीं देते। इसी प्रकार खेलने कूदने बाहर जाने आने और किसी वस्तु को नहीं देखने देते। अभिप्राय यह कि जो बालक चाहता है उसे वे नहीं करने देते, किन्तु एक प्रकार की रखवाली में रखते हैं। उस बालक के दिल में जो जो उमंगे उठती है

वे भूमि में पिघली हुई धातु की भाफ़ के समान दिल ही में रह जाती है। धातु की भाफ जब बहुत बढ़ जाती है तब समय पा एक साथ भूमि को फाड़ कर बाहर निकल आती है और उस स्थान के नगर वन उपवनादि को नष्ट कर देतो है। ठीक इसी प्रकार जब वह बालक बड़ा होता है और स्वतंत्रता का समय मिलता है तब सब मन की उमंगें एक साथ बाहर निकल पड़ती हैं जिनकी पूर्ति के लिए घर ज़मीन गहना आदि सब कुछ बेचना पड़ता है। यह देख कर माता पिता छाती पीट पीट कर रोते हैं। यह फल उचित रीति की शिक्षा के न होने का है। इसलिए माता पिता को उचित है कि वे अपने बालकों को उचित प्रकार से पूर्णतया शिक्षा दें।

बालकों को ऐसी बातें भी सिखानी उचित हैं कि संसार में जितने पदार्थ हैं वे उद्योग करने ही से प्राप्त होते हैं आलसी बन कर या प्रारब्ध के भरोसे पर बैठ रहने से कुछ भी नहीं मिल सक्ता। इसके सिवाय बालकों को पदार्थों की प्राप्ति के उपाय, आपत्ति पड़ने पर निर्वाह करने के नियम, निन्दित कामों के करने का निषेध और सदाचार के व्यौहार प्रिय तथा सत्य भाषण आदि उनके हित की उत्तम बातें सभी सिखा देनी उचित हैं जिस से बालक स्वार्थी निर्दयी, निर्लज्ज और संसार को हानि पहुँचाने वाले न होकर परोपकारी दयालु सज्जन विद्वान होकर देशोन्नति का कारण हों। जो मनुष्य अपने बच्चों को नियम पूर्वक उचित प्रकार की शिक्षा देते हैं उनके लड़के भी उत्तम दीर्घायु कीर्तिमान होते हैं। देखिये नीतिशास्त्र क्या कहता है कि-

माता शत्रु पिता बैरी बालो येन न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये बको यथा॥

अर्थः-वह माता पिता बालक के बड़े शत्रु हैं जिन्होंने उसे नहीं पढ़ाया वह सभा के बीच में ठीक उसी प्रकार से नहीं शोभता है जैसे हंसों के बीच में कौआ शोभा नहीं पाता।

इस लिए माता पिता को उचित है कि वे अपने बालकों को पूर्णतया शिक्षित करें ताकि हमारे देश कुटुम्ब आदि की फिर से उन्नति होवे। अंत को अब मैं कुछेक उत्तम बातें लिख कर लेख समाप्त करता हूँ। अगर प्रत्येक मनुष्य अपने बालकों सहित निम्न बातों के ऊपर चलें तो संभव है कि भारतवर्ष के वे दिन फिर लौट आवें। वे बातें और कुछ नहीं केवल यह हैं—

१—जिसे आज कर सको उसे कल पर न टालो।

२—जिसे स्वयम् कर सको उसके लिए दूसरों को कष्ट मत दो।

३—जिससे तुम्हें काम नहीं उसे सस्ता होने पर भी मोल न लो।

४—कमाने से पहले खर्च न कर बैठो।

५—भूख प्यास सर्दी से जो हानि नहीं वह अहंकार से है।

६—थोड़ा खाओ पछताओ न।

७—मन से किया काम दुखदाई नहीं जान पड़ता।

८—गुस्सा आने से पूर्व १०० तक धीरे धीरे गिन्ती गिन लो।

९—हमेशा अपने पास कुछ दाम तथा चाकू रखो।

१०—मुसाफिरों में किसी का भी विश्वास न करो।

११—सब जीवों पर दया करनी उचित है।

१२—अपने से बड़े मनुष्यों का आदर तथा आज्ञापालन करते रहो।

१३—मीठी वाणी बोलो क्योंकि वशीकरण यही मन्त्र है।

१४—ईश्वर को हमेशा याद रखो।

१५—हमेशा सत्य बोलो।

१६—दूसरे के नाम का पत्र कभी न पढ़ो।

१७—परोपकार में तन मन धन उतना ही लगाओ जिसमें अपने नष्ट भ्रष्ट होने का भय न हो।

१८—रात्रि में केवल ६ घंटे सोओ।

१९—आलस्य कभी न करो क्योंकि यह मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है।

बाबूराम मिश्र

कन्या महत्व

प्रिय पाठक और पाठिकाओ!

मेरा सदैव से यही विचार रहा करता था कि मैं अपने भावों को प्रगट करूं। परन्तु किस के सामने और किस रीति से इस बात की विशेष शंका थी सो आज जगदाधार जगदीश की कृपा से उस की निवृत्ति हुई। शंका दूर होने का मुख्य कारण केवल "गृहलक्ष्मी" के दर्शन ही हैं। मेरे पास पहिले कई पत्र आते रहे परन्तु उनसे मेरे चित्त को कुछ भी शान्ति न हुई। हाँ, इतना तो अवश्य हुआ कि मुझको यह भेद मालूम हो गया कि स्त्रियाँ इतनी उन्नति कर सकती हैं, विशेष नहीं। कारण यह है कि न तो उन में कोई महत्व पूर्ण लेख ही थे और न रोचकता ही थी।

एक दिन मैं ने अपने गुरू से कहा कि आप कोई स्त्री शिक्षा की उत्तम पत्रिका मुझको मँगा दीजिये जिस में लेख भी उत्तम हों और लेख प्रणाली भी अच्छी हो! तब उन्होंने मुझको "गृहलक्ष्मी" प्रयाग से मँगा दी जिसके देखते ही चित्त को विशेष रूप से शान्ति प्राप्त हुई।

सब से प्रथम मुझको कुछ कन्याओं के विषय में कहना है क्योंकि स्त्रियों की प्रथमा अवस्था यही है। जब तक कन्याओं का सुधार न होगा तब तक स्त्रियाँ सुधर ही नहीं सकतीं। जैसे—पुरुष बाल्यावस्था में पढ़ते हैं और बड़े होने पर

विद्वान् बन जाते हैं किन्तु वृद्ध होने पर पढ़कर विद्वान् नहीं बन सकते हैं।

कन्याओं का सुधार उनके माता पिता आदिकों पर निर्भर है। वे जैसे चाहें वैसे सुधार या बिगाड़ सकते हैं। जब उन को विद्या पढ़ाई जायगी और विद्वान् होंगी तब वह स्वयं ही सब कार्य करने में समर्थवान् हो जायँगी। फिर उनके पीछे लाठी लेकर टिक टिक करने की कोई आवश्यकता न होगी। ऐसी कन्याएँ स्त्री बन कर जिस गृहस्थाश्रमी के जायँगी उसके नरकवत् गृहस्थ को भी स्वर्गवत् बनाने में त्रुटि न रक्खेंगी। और यदि आप कहें कि स्त्रियों को शिक्षा दी जाय या बूढ़ी पढ़ाई जायँ तो असम्भव और असंगत है। मेरा अभिप्राय यह नहीं कि बड़ी स्त्रियाँ पढ़ाई न जायँ या वह अशिक्षित ही रह जायँ बल्कि शिक्षा देना, पढ़ना, पतिव्रत आदेश आदि यह तो वृद्धावस्था में ठीक है परन्तु जैसा स्त्रियाँ कन्यावस्था में पढ़कर लाभ उठा सकती हैं वैसा बड़ी होने पर नहीं। क्योंकि कन्यावस्था में सबसे बढ़ कर लाभ यह है कि स्वतन्त्रता रहती है पूर्ण शक्ति रहती है और उत्साह रहता है। गृहस्थ (निज पति के गृह) में उपरोक्त तीनों बातों का अभाव पाया जाता है।

स्वतंत्रता तो पति गृह में किसी प्रकार हो ही नहीं सकती। शक्ति भी नित्य प्रति न्यूनता को प्राप्त होती जाती है फिर बतलाइये जब शक्ति नहीं तब उत्साह कहाँ से होगा?

प्रिय पाठिकाओ। अब मैं इस लेख को विशेष न लिखकर यहीं विश्राम देती हूँ और यह निवेदन करती हूँ कि यदि तुम को संसार में कुछ करना है, यदि तुम को विद्या पढ़ कर संसार के घोर अन्धकार को मिटाना है तो प्रथम अपनी कन्याओं को पढ़ाओ। जब वह स्त्री होंगी तब स्वयं सम्पूर्ण गृहस्थ को सुखमय कर देंगी। पति देव की सेवा में उन का ध्यान सदैव बना रहेगा। सासु श्वसुर भी उनसे प्रसन्न रहेंगे।

ऐसी स्त्रियों की सन्तान भी बलवान् गुणवान् विद्वान और रूपवान उत्पन्न होंगी। आज कल ऐसी ही "गृहलक्ष्मी" की घर घर में आवश्यकता है। मैं आशा करती हूं कि "गृहलक्ष्मी" पत्रिका द्वारा भारत महिलाओं का अच्छा सुधार होगा और किसी समय यह घर घर गृहिणियों के हाथ की आभूषण होगी।

—गङ्गावती देवी

दुष्कर्म का फल

माकांदिका नामक पुरी
अमरावती सी अपूर्व थी।
मनमुग्धकर सुखदायनी
शोभा अतीव अपूर्व थी॥
मौनव्रती शिष्यों–सहित
था एक सन्यासी वहाँ।
निर्वाह करता था सदा वह
भीख माँग जहाँ तहाँ॥ १॥

उस पर वहाँ सारे जनों की
भक्ति की जड़ थी जमी ।
यदि ढोंग नाना ज्ञात हैं तो
भक्तगण की क्या कमी ॥
दिन एक एक धनी वणिक
गृह माँगने को वह गया ।
लख वैश्य कन्या सुन्दरी
वह शठ विमोहित हो गया ॥२॥
फिर मौन मुख से शीघ्र उसके
"हाय" शब्द निकल पड़ा ।
जिसको श्रवण करके हुआ
वह वैश्य आश्चर्यित बड़ा ॥
हो सामने कर जोड़ कर वह
भाव निज मन मैं जगा ।
आदर-सहित अति नम्रता से
इस तरह कहने लगा ॥३॥
"जिस पर सदा रखते कृपा
धर्मसिन्धु जिसका नाम है ।
हे देव ! करता है वही
तुमको सभक्ति प्रणाम है ॥
जो सर्वथा अघटित रही
सो होगई घटना अहो !
क्या हेतु बोल पड़े सदा के
मौन को तज कर कहो ?" ॥४॥
वह धूर्त यह सुन, वैश्य को
झट लेगया एकान्त मैं ।
बस शून्य-थल मैं बंचना
करते छली संसार मैं ॥
"दुहिता तुम्हारी देव-कन्या
सी अतीव ललाम है ।
पर खेद, भूरि कुलक्षणों का
धाम वह अभिराम है ! ॥५॥
"वर-वेद विधि से ब्याह उसका
वत्स ! जब हो जायगा,
निज पुत्र और कलत्र-संयुत
शीघ्र तू मर जायगा !
तू भक्त मेरा है अतः
अनुमान तेरा दुख बड़ा;
मम कंठ से वह खेद सूचक
हाय ! शब्द निकल पड़ा ॥६॥"
पूछा वणिक ने जोड़ कर,
"अब क्या मुझे कर्त्तव्य है ?
जिसके हितैषी आप उसको
कौन यत्न अलभ्य है ?"
"अच्छा सुनो बस एक ही
सदुपाय तव आधार है ।
अपना हिताहित जो न समझे
वह महान गँवार है ॥ ७ ॥
"संदूक मैं कर बंद उसको
दीप ऊपर बाल दो ।
ध्रुव आजही निशि मैं उसे
जाकर नदी मैं डाल दो ॥
बस इस तरह ही दूर होगी
तव गले की यह छुरी,
जब बाँस ही जल जायगा
कैसे बजेगी बाँसुरी ?" ॥ ८ ॥
पुत्री-वियोग विचार उसने
दुःख अति पाया वहाँ ।
सन्तान परित्यागन सदृश
क्या अन्य दुख होता कहाँ ?

पर सोचते कायर कभी यह
कार्य है कि अकार्य है ?
बोला अतः "आदेश तब
हे आर्य ! शिरसाधार्य है" ॥६॥

हे मित्र ! अब करके कृपा
कर लीजिए उर को कड़ा,
सुनना पड़ेगा क्योंकि तुमको
हाल करुणामय बड़ा ?
उस धूर्त के ही कथन-सदृश
साज़ सज कर हाय हा ?
निष्ठुर वणिक ने रात को
कन्या-अगत्या दी बहा ? ॥१०॥
उस ओर संन्यासी वही
जो रूप-रस में था घुला,
कहने लगा इस भाँति अपने
मुख्य शिष्यों को बुला ॥
"ऊपर सु-दीपक-धारिणी
उज्ज्वल दिशा करती सभी,
पुण्योदका में एक पेटी
जा रही बहती अभी ॥२१॥
"झट उसे तुम लोग मेरे
पास ले आओ यहीं ।
देखो किसी भी हेतु से,
हाँ, खोलना उसको नहीं ॥
मम दृष्टि-बल औ योग बल को
जानते हो तुम सभी ।
गुरु की प्रखर क्रोधाग्नि से
कोई न बच सकता कभी" ॥१२॥
कह "बहुत ही अच्छा" चले
वे वायु सम अति वेग से ।

गुरु जी लगे मोदक बनाने
मानसी उद्वेग से ॥
निःशक्त नर ! सिर लाख पटको
बात सच्ची है यही—
जो ईश को स्वीकार है
संसार में होता वही ॥१३॥
उस ओर एक महीप सुत ने
पहुँच सुरसरि तीर में,
आश्चर्य्य हो संदूक को
बहते विलोका नीर में ॥
निज निकट मँगवा अनुचरों से
खोलने के हित कहा ।
झुक झाँक कर ज्योंही विलोका
विवश बोल उठा "आहा" ॥१४॥
उस सुन्दरी को शीघ्र उसने
मुक्त-बन्धन कर दिया ।
उसही जगह में एक बन्दर को
विहँस कर भर दिया ।
फिर पूर्ववत दीपक जला
पेटा बहा कर नीर में,
उससे लिया कर ब्याह अपना
जान्हवी के तीर में ॥१५॥
दलबल-सहित युवराज जब
निज राज्य-ओर चले गये,
सुनिये इधर क्या क्या हुआ
अद्भुत सुदृश्य नये नये ॥
बहते हुए सन्दूक को जब
शिष्य गुरु-ढिग ले गये,
वे धूर्तराज प्रसन्न हों अति
इन्द्र मानो बन गये ? ॥१६॥

सानंद बोले, "शिष्य गण !
अन्यत्र जाकर सो रहो ।
आना न मेरे पास कोई
जो भलाई निज चहो ॥
घर-मंत्र अपना शांत-चित हो
मैं जगाऊंगा यहीं ।
सम्मुख किसी के मंत्र कोई
सिद्ध होता है नहीं" ॥ १७ ॥

यों कह स्वयं ही वहन कर
संदूक ऊपर ले गए ।
सब शिष्य-सेवक नीचले के
खंड में जा सो गए ॥
करके परम शोभामयी
कन्या मिलन की लालसा,
कुछ थाम उर को धड़कते
वह नीच गद्गद हो हँसा ॥१८॥
संदूक का बन्दर भयानक
क्रोध से था भर रहा ।
वह काटने औ नोचने का
नाट्य सा था कर रहा ॥
ढकना उठाया दुष्ट ने
ज्योंही बड़े ही हर्ष से,
द्रुत आक्रमण त्यों ही किया
कपि ने विकट आमर्ष से ॥१९॥
युग ओष्ठ, नासा, श्रवण
उसके काट डाले दाँत से ।
फिर अङ्ग सारा खुरच डाला
निज नखों की धार से ! !
करने लगा चीत्कार दारुण
दुःख पाकर वह महा ।
सब शिष्य दौड़े शीघ्र ही
आश्चर्य्य के जल में नहा ॥२०॥

लख के उन्होंने गुरु-दशा
रोकी हँसी अति यत्न से ।
कपि को भगाया मार कर
ज्यों त्यों अनेक प्रयत्न से ॥
हे बालको ! फल नीच कृति का
शुभ कभी मिलता नहीं ।
विष वृक्ष बोने से कहो
स्वादिष्ट फल फलता कहीं ॥२१॥

—शुकलाल प्रसाद पाण्डेय
(हितकारिणी)

स्त्रियों और बच्चों के उपयोगी कुछ अनुभूत औषधियां

१—यदि गर्भिणी स्त्री को खुल कर दस्त न आते हों और मलावरोध-क़ब्ज़ रहता हो तो हड़ का मुरब्बा या गुलक़न्द का सेवन करना बहुत ही लाभदायक है। इन औषधियों से गर्भ को किसी प्रकार की हानि पहुँचने का भय नहीं है ।

२—गर्भावस्था में प्रायः स्त्रियों के मुँह में थूक बहुत आता है। इसके दूर करने का उपाय यह है कि एक तोला बबूल की छाल आध सेर पानी में जोश दे कर छान ली जाय और फिर उसमें

दो माशा फिटकिरी मिला कर और ठंढा करके दिन में कई बार उस जल से कुल्ला किया जाय।

३—सातवें महीने से यदि गर्भिणी एक दो बादाम को छिलका निकाल कर घिस कर थोड़ा ताज़ा दूध और मिश्री के साथ सबेरे सेवन करे तो एक तो जनते समय उसे बहुत ही कम कष्ट होगा, दूसरे बच्चे को बहुत लाभ पहुँचेगा और उसका रङ्ग बहुत ही साफ़ होगा। बहुत सी स्त्रियाँ यह समझती हैं कि बादाम गर्म चीज़ है और इससे उनके गर्भ को किसी प्रकार की हानि पहुँचेगी, परन्तु यह उनकी भूल है। चाहे कोई ऋतु हो, बादाम का सेवन, जैसा कि मैंने ऊपर बताया है, गर्भिणी के लिए बहुत ही लाभदायक है। याद रहे कि बादाम सड़ा हुआ न हो। इसकी पहचान यह है कि सड़े हुए की गिरी कुछ मैली होती है और चखने से स्वाद उसका कुछ कड़ुआ मालूम होता है।

४—प्रायः बच्चों को सूखे का एक रोग हो जाया करता है, जो यदि जल्दी अच्छा न हुआ तो कितने बच्चे बेचारे नष्ट हो जाते हैं। इसकी एक बहुत ही सरल दवाई यह है कि यदि बच्चा छोटा हो तो उसको पहले दिन १ बूँद नीम का तेल माता के दूध में मिला कर पिलाया जाय, दूसरे दिन से एक एक बूँद बढ़ाता जाय। यहाँ तक कि सातवें दिन सात बूँद तक पिलाया जाय। और यदि बच्चा कुछ बड़ा हो तो उसको एक माशे के लगभग नीम का तेल पाव आध पाव बाहरी दूध में खूब मिला कर सात आठ दिन तक पिलाया जाय। अपूर्व दवाई है। इससे अवश्य लाभ होगा।

—शालिग्राम

शारीरिक रक्षा और उसके मुख्य नियम



क डाक्टर का कथन है कि पुरुष उदर पालने वाले होते हैं और स्त्रियाँ सारे कुटुम्ब की शारीरिक रक्षा करनेवाली होती हैं। अगर ध्यान से सोचा जावे, तो यह कहना बिलकुल ठीक है, क्योंकि बालक की आरोग्यता उसकी माता पर ही निर्भर है। संसार में आरोग्यता सब से मुख्य चीज़ है, मगर बड़े आश्चर्य्य की बात है कि बहुत कम मनुष्य इसकी कदर करते हैं। मेरी समझ में तो यह आता है कि जिस चीज़ में जितने पैसे खर्च होते हैं, उसी हिसाब से उसकी क़दर की जाती है, क्योंकि आरोग्यता में किसी का टका खर्च नहीं होता, इसी कारण वह इसको सब से सस्ती समझते हैं।

अगर किसी निर्बल स्त्री से कहें, कि तुम्हारी आरोग्यता ठीक नहीं है, इसका तुम कुछ यत्न भी नहीं करतीं, तो उत्तर मिलता है कि आरोग्यता तो आप ही ठीक हो जावेगी। उनको इतना भी नहीं मालूम, कि धन और विद्या तो हर समम आ सकती है, परन्तु आरोग्यता शुरू से यत्न किये बिना नहीं आती और एक बार बिगड़े पीछे फिर सुधरना बहुत कठिन है। जब माताओं की ज़रा सी भूल से बालक की आरोग्यता नष्ट हो जाती है और वह अनेक रोगों में फँस जाते हैं तब माताओं को अपनी भूल का पश्चात्ताप होता है। मैं आपको अच्छी आरोग्यता के लाभ बतलाऊँगा।

जो मनुष्य आरोग्य हैं, वह सब तरह का कठिन काम कर सकते हैं, संसार के सब प्रकार के सुख भोग सकते हैं, खेल कूद में उनका जीवन बड़ी प्रसन्नता से व्यतीत होता है। उनको हर काम के करने में आनन्द प्राप्त होता है। कभी सुस्ती नहीं आती और न किसी काम में आलस्य होता है। वह अपना काम कर दूसरों को मदद देने में तैयार रहते हैं। मगर जो मनुष्य निर्बल हैं, जो आरोग्यता के अमूल्य रत्न को खो बैठे हैं, उनके दिल से पूँछो 'उनको संसार के सब पदार्थ बुरे मालूम होते हैं। हर रोज़ उनको एक न एक नया रोग दबाए रहता है। अपने में संसार के सुखों को भोगने की शक्ति न पाकर उनका मन सदा दुःखित रहता है और जीवन उनके लिए भार हो जाता है। किसी बात में आनन्द नहीं आता, किसी काम में चित्त नहीं लगता, जी हर समय उदास रहता है, ऐसे जीवन से तंग आकर कर वह मृत्यु की अभिलाषा करने लगते हैं। उनका स्वभाव तेज़ हो जाता है, ज़्यादा बोलना या सुनना बुरा लगता है। ऐसे दुःखी मनुष्य से आरोग्यता की क़दर पूँछो, वह आपको ठीक ठीक बतलावेगा कि इसके नष्ट कर देने से जीवन की क्या दशा हो जाती है।

आप किसी निर्बल मनुष्य के पीले चेहरे, अन्दर को बैठी हुई आखों और दुबले शरीर का किसी आरोग्य मनुष्य के दमकते हुए चेहरे और आँखों और सुन्दर सुडौल बदन से मिलान करें, तो आपको आरोग्यता के लाभों का कुछ अनुभव हो सकता है।

आप एक घड़ी खरीदें, तो वह दो तीन साल ठीक काम देकर बन्द हो जाती है, तब आप उसके बनाने वाले को दोष देने लगते हैं। परन्तु घड़ीसाज़ जब उसको खोल कर देखत है, तो सूक्ष्म पुरजों में बहुत सी धूल लगी पाता है, जिसको बनाने वाले ने पहिले नहीं रक्खा थी। उसको साफ़ करने पर वह घड़ी फिर चलने लगती है। बनाने वाले को दोष देने से पहिले यह जानना आवश्यक

है कि उसके बन्द होने का क्या कारण था और किसकी भूल से हुआ।

एक ही कारखाने की दो एक सी घड़ियाँ दो मनुष्य लाते हैं। उनमें से एक तो अपनी घड़ी को बहुत सँभाल कर काम में लाता है, मगर दूसरा बेपरवाही से बरतता है। साल भर बाद हम देखते हैं कि पहिले मनुष्य की घड़ी तो बहुत ठीक समय बता रही है परन्तु दूसरे की घड़ी कभी तेज़ हो जाती है, कभी चलते चलते बन्द हो जाती है। दोनों घड़ियाँ एक सी थीं, मगर जिसने उसको नियम के अनुसार समय पर चाबी देकर सँभाल के रक्खा उसके पास बराबर काम देती रही, जिसने परवाह न की, उसके पास थोड़े ही दिनों में खराब हो गई।

इसी तरह हम सब के पास एक बड़ी सुन्दर किन्तु बहुत सूक्ष्म शरीर रूपी घड़ी है और इसका चलाने वाला अपना मन है जिसको उचित है कि इसको धूल और गर्द से बचा कर बहुत सँभाल के रक्खे।

आप जानते हैं कि हर घड़ी को चलाने के कुछ खास क़ायदे होते हैं जिनके विरुद्ध चलाने से वह घड़ी खराब हो जाती है। इसी प्रकार इस शरीर रूपी घड़ी को चलाने के भी कुछ नियम हैं, जिन पर न चलने से यह शरीर निर्बल होकर रोगी बन जाता है। यह रोग अच्छी औषधि खाने से मिट जाते हैं मगर जिस तरह कि एक बार बन्द होने के बाद साफ की हुई घड़ी इतना अच्छा काम नहीं देती, जितना कि पहिले देती थी, इसी प्रकार औषधि से निरोगी बनाया हुआ शरीर आरोग्य शरीर की तुलना नहीं कर सकता।

हर मनुष्य को चाहिए कि अपने शरीर में छोटे से छोटे रोग को भी कभी न आने दे। मुझे विश्वास है कि जो मनुष्य अपनी शारीरिक रक्षा का ध्यान रखते हैं वह बहुत कम रोगी होते हैं।

जिस तरह ठीक समय बताना और बराबर चलना अच्छी घड़ी की पहिचान है इसी प्रकार देह को सुख और मन को शान्ति, शरीर का निरोगी होना बतालाते हैं।

यदि ऐसा न हो तो अवश्य जानो कि कोई रोग होने वाला है और उसके नष्ट करने का पहिले से ही यत्न करना चाहिये।

अब मैं यह बतलाऊँगा कि शरीर को निरोगी रखने के लिए सुख से जीवन व्यतीत करने के लिए और संसार के सच्चे सुख भोगने के लिए किन किन नियमों का पालन करना आवश्यक है।

जब हम किसी कारखाने में जाते हैं तो वहाँ हमको एक बहुत बड़ी मशीन ज़ोर से चलती हुई दिखाई देती है। देव समान बड़े बड़े पहिये इस फुरती से

चलते हैं कि देख कर भय लगता है परन्तु इन सब को चलाने वाला एक मनुष्य है। देखें यह अकेला मनुष्य इतनी बड़ी मशीन को किस तरह चलाता है। हम देखते हैं कि उसको भट्टी की सब से ज़्यादा फ़िकर है और उसमें अन्दाजे से ईंधन डालता है। अगर हम उसको अन्दाज़े से ज़्यादा या कम ईंधन डालता देखें तो समझ लेते हैं कि यह अच्छा मिस्त्री नहीं है और मशीन को जल्दी ख़राब कर देगा। उसको दूसरा फ़िकर इस बात का रहता है कि भट्टी के मुँह पर राख कोयले आदि का ढेर न हो जावे, जिस से कि साफ़ हवा अन्दर जाने से रुक जावे, क्योंकि वह जानता है कि बिना हवा के आग अच्छी तरह नहीं जल सकती।

हम देखते हैं कि वह सब मशीन को बराबर साफ़ करता रहता है और ज़ोर से चलते हुए पहियों में तेल देता फिरता है। ज़रा सी भी धूल मशीन के अन्दर नहीं जाने देता। वह जानता है, कि यह धूल अन्दर जाकर मशीन को ख़राब कर देगी और उसको आसानी से चलने से रोकेगी। यही नियम हैं जिनका कि मशीन चलाते समय हर मिस्त्री ध्यान रखता है यदि इन नियमों के अनुसार न चले, तो मशीन जल्दी ख़राब हो जावेगी।

हम सबके पास भी यह शरीर रूपी मशीन है, जिसके हम ही मिस्त्री हैं और इसको ठीक चलाने के लिए भी ऊपर लिखे समान कुछ नियम हैं, जिनके विरुद्ध चलने से यह शरीर बलहीन और रोगी बन जाता है।

अगर आपसे पूछूँ कि जीवन के वास्ते कौनसी वस्तु अवश्य होनी चाहिए, तो आप उत्तर देंगे कि भोजन और जल।

इसमें कुछ संदेह नहीं कि जीवन इन दोनों के आधीन है। जैसे मशीन बिना ईंधन के नहीं चलती, इसी तरह हम बग़ैर भोजन के जीवित नहीं रह सकते। मगर मैं आपको बताऊँगा कि एक चीज़ इन से भी ज़्यादा जरूरी है।

आप जानते हैं कि सब मनुष्य एक दो तीन व्रत कर सकते हैं और जो बलवान हैं वह और भी ज़्यादा दिन भूके रह सकते हैं। अच्छा किसी बलवान पुरुष को एक ऐसे सन्दूक में बन्द कर दो, जिस में हवा न जा सके और उसी में अच्छे अच्छे भोजन भी रख दो फिर देखें, वह कब तक जीवित रह सकता है। आप देखेंगे कि वह बहुत जल्दी ही व्याकुल हो जावेगा और कुछ मिनटों तक न निकाला जावे, तो अवश्य मर जावेगा और भोजन उसकी कुछ भी सहायता न करेगा। इस से सिद्ध हुआ कि हवा जल और भोजन से भी ज़्यादा ज़रूरी चीज़ साफ़ हवा है। मगर बड़े शोक की बात है कि ऐसी मुख्य चीज़ की सब से कम

परवाह है और स्त्रियाँ जिन पर कि सारे कुटुम्ब की शारीरिक रक्षा निर्भर है, इस बात को जानती ही नहीँ कि साफ़ हवा भी जीवन के लिए उपयोगी है। इस ज़रा सी भूल से वह अपनी आरोग्यता को नष्ट कर देती ह और उनकी गोद के छोटे बालक भी शुद्ध वायु न मिलने से ऐसे पीले और निर्बल हो जाते हैँ कि बड़े होने पर भी नहीँ सुधरते। जन्म के समय से मृत्यु तक सोते जागते चलते फिरते हम सदा साँस के द्वारा शुद्ध वायु ग्रहण किया करते हैँ। बिना भोजन के तीन चार दिन रह सकते हैँ परन्तु बिना शुद्ध वायु के तीन चार मिनट भी नहीँ रह सकते। इस लिए ताज़ी हवा आरोग्यता के लिए सब से मुख्य है।

हम अपने शरीर रूपी मशीन मेँ ईँधन के बदले भोजन देते हैँ और हवा जो वहाँ ईँधन को जलाती थी हमारे शरीर की अग्नि को भड़का कर गर्मी पैदा करती है। यह शारीरिक गर्मी जीवन के लिए बहुत आवश्यक है। यदि यह शरीर से बिलकुल निकल जावे, तो मृत्यु हो जावेगी। इस गर्मी को रोकने के लिए वस्त्र पहिनने की आवश्यकता है, इस लिए ऋतु के अनुसार वस्त्र पहिनना भी आरोग्यता के नियमोँ मेँ से एक है।

सब माताएँ जानती हैँ कि बालक स्नान कराने से निरोगी रहता है। अच्छे स्नान से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसको भी सब जानते हैँ, इस से बहुत से रोग भी नष्ट होजाते हैँ। नर नारी आदि सब को हर ऋतु मेँ दिन मेँ एक बार अवश्य ही नहाना चाहिए। इसके बगैर शरीर आरोग्य नहीँ रह सकता और अनेक प्रकार के चर्म रोग हो जाते हैँ। शरीर का मैल जो पसीने के द्वारा निकल कर खाल पर जम जाता है, स्नान करने से साफ़ न किया जावे तो रोग उत्पन्न कर देता है। स्नान के लिए ठंडा जल बहुत उपयोगी है। जो निर्बल मनुष्य इसको नहीँ सह सकते वह जल को गरम करलेँ परन्तु स्नान का आलस्य कभी नहीँ करना चाहिए। आरोग्यता के वास्ते सफ़ाई बहुत आवश्यक है इस लिए सब को अपना शरीर वस्त्र मकान आदि साफ़ रखने चाहिये।

रोशनी का भी आरोग्यता पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। अंधेरे मेँ कोई भी आरोग्य नहीँ रह सकता। एक विद्वान ने सच कहा है कि "जिस घर मेँ रोशनी नहीँ जाती वहाँ डाक्टर अवश्य जाता है।" जो ग़रीब मनुष्य छोटे छोटे घरोँ मेँ रहते हैँ वह पीले और निर्बल होते ह। विलायत मेँ ग़रीब लोग ज़मीन के अन्दर मकान बना कर रहते हैँ जहाँ सूर्य्य देवता के दर्शन तक नहीँ होते। वह अपना सब काम बिजली की रोशनी मेँ करते हैँ मगर देखा गया है कि वह सब पीले और निर्बल होते हैँ। अगर किसी फूल के गमले को

ऐसी जगह रख दे जहाँ उसको रोशनी न लग सके तो कुछ दिन बाद उस के पत्ते पीले और कमज़ोर पड़ जावेंगे। यही हाल मनुष्य शरीर का बिना रोशनी के होता है। मगर बड़े शोक के साथ लिखना पड़ता है कि देश के परदे में रहने वाली स्त्रियाँ इस बात पर भी कुछ ध्यान नहीं देती। वह हर समय कोठरी में बैठना पसन्द करती हैं जहाँ रोशनी और शुद्ध वायु जो आरोग्यता के लिए मुख्य चीज़ें हैं काफ़ी नहीं मिलतीं और यह ही कारण है कि स्त्रियों की शारीरिक दशा दिन ब दिन बिगड़ती जाती है और जब तक वह इस बात पर ध्यान न देंगी उनका सुधार होना मुशकिल है।

आप जानते हैं कि बालक पैदा होते ही हाथ पैर चलाने लगता है और जो बालक जल्दी ही उठने और चलने का प्रयत्न करता है वह बहुत आरोग्य होता है। निरोगी बालक एक मिनट भी चुप लेटना पसन्द नहीं करता। यह काम उसको कोई नहीं सिखाता। ईश्वर ही उसको ऐसा ज्ञान देता है। और जो बालक ऐसा नहीं करते वह कमज़ोर और रोगी रहते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि मेहनत या व्यायाम करना ईश्वर की आज्ञा है और आरोग्यता के लिए बहुत ही आवश्यक है। बालक के लिए हाथ पैर चलाना ही काफ़ी व्यायाम है और इसको बड़े होने पर भी नहीं छोड़ना चाहिये। इससे शरीर बलवान होता है और कोई रोग उत्पन्न नहीं होने पाता।

जो बालक और बालिकाएँ बड़े होकर व्यायाम नहीं करतीं वह रोग की बहुत जल्दी ग्रास बन जाती हैं; इसलिए निरोगी रहने के लिए थोड़ा बहुत व्यायाम अवश्य करना चाहिये।

आप देखते हैं कि जो बालक सारे दिन खूब खेल तमाशे करता है वह रात को बड़े आनन्द की नींद सोता है। आप को भी सारे दिन काम करने के बाद रात को आराम करने की अभिलाषा होती है। आराम करने से सब थकान दूर हो जाती है और आप दूसरे रोज़ फिर काम करने को तैयार हो जाते हैं। अगर आराम न किया जावे तो शरीर गिरा हुआ सा रहता है। कोई काम करने को जी नहीं चाहता और कुछ दिन बाद शरीर रोगी हो जाता है।

ईश्वर ने दिन काम के वास्ते बनाया है और रात आराम के वास्ते। सारे दिन काम करने के बाद रात को हमें नींद आती है, इससे सिद्ध हुआ कि काम के बाद आराम करना बहुत आवश्यक है।

शारीरिक रक्षा के नियम संक्षेप में यह हैं—

(१) अच्छा भोजन।

(२) ताज़ी हवा।

(३) ऋतु के अनुसार वस्त्र।

(४) शरीर, वस्त्र, मकान, जल आदि की सफ़ाई।

(५) सूर्य्य की रोशनी।

(६) व्यायाम।

(७) काम के बाद आराम।

इस शरीर रूपी मशीन को चलाने के लिए ऊपर लिखे सात नियम बहुत ज़रूरी हैँ। जो मिस्त्री इन नियमोँ के अनुसार इस मशीन को नहीँ चलाता वह जल्दी ही इसको खराब कर काल का ग्रास बन जाता है। जो मनुष्य आरोग्यता के साथ संसार के सच्चे सुखोँ को भोगना चाहते हैँ, वह इन नियमोँ की भली भाँति पालना करेँ। सुखी वह ही हैँ जो शारीरिक रक्षा को मुख्य धर्म समझते हैँ।

मुझे आशा है कि जो मनुष्य इन नियमोँ का पालन करेँगे उनको डाकृर की बहुत कम ज़रूरत होगी और उनका सारा जीवन निरोगी और बड़े आनन्द से व्यतीत होगा।

—नारायणसिंह वर्म्मा

फुटकर बातेँ

एक देशी महिला की सच्ची प्रतिष्ठा

यह समाचार स्त्री जगत में विशेष हर्ष से पढ़ा जायगा कि भाऊनगर की महारानी साहिबा इंगलेण्ड जैसे विद्वान देशकी अखबार लिखनेवाली स्त्रियोँ की सभा की प्रधान निर्वाचित हुई हैँ। पत्र-पाठकोँ से छिपा न होगा कि वे एक गुजराती पत्र की सम्पादिका हैँ। उनका जैसा सन्मान इस समय हुआ इससे पूर्व भारतीय किसी महिला ने यह उच्चासन नहीँ पाया था। एक भारतीया नारी का विद्या सम्बन्ध मेँ इतना मान भारत का सौभाग्य हैँ। (भा० सु० प्र०)

***

मिस आगिन्ज़ टामसन

क्लोराफ़ार्म एक प्रसिद्ध दवाई है, जिसको डाकृर लोग रोगी को सुँघा कर बेहोश करके उसके शरीर पर चीर फाड़ करते हैँ। पहले पहिल इस दवाई को सर जेम्स सिम्पसन ने खोज निकाला था। परन्तु उन्हेँ परीक्षा करने के लिये कोई आदमी नहीँ मिलता था। यह सोच कर कि यदि तनिक भी असावधानी हुई, तो इस दवाई से प्राणघात का भय है, सभी उसके सूँघने से जी चुराते थे। परन्तु एक स्त्री की वीरता देखिये कि वह केवल परोपकार के भाव से तुरन्त उसके प्रयोग के लिए तैयार हो गई। और इस तरह सब से पहले ४ नवम्बर सन् १८४७ ई० को एडंबर्ग मेँ मि० सिम्पसन ने उक्त रमणी पर क्लोराफ़ार्म का प्रयोग करके इसके गुणोँ को सिद्ध किया, जिससे आज संसार लाभ उठा रहा है। इस महिला का नाम था मिसेज़ आगिन्ज़ टामसन। अभी थोड़ेही दिन हुए कि ८२ वर्ष की अवस्था मेँ इनका देहान्त हुआ है।

***

सती हो गयी

हरदोई (अवध) से हरिरामजी मिश्र लिखते हैं:—यहाँ पण्डित भगवानदीन रहते थे। आप संस्कृत में बहुत निपुण थे। आप कुम्भ के मेला में हरद्वार गये थे। वहाँ उनकी तबियत खराब हो गयी। पण्डित जी का इलाज किया गया मगर कुछ फल न हुआ। उनकी मृत्यु हो गयी। कुटुम्बी लोगों ने मृत्यु होने का तार घर को दिया। २२ अप्रैल को तार पहुँचा। पति की मृत्यु का समाचार सुनकर उनकी स्त्री ने उसी वक्त से माया मोह छोड़ दिया। सुनते हैं, कि अपने पुत्र और पुत्री से भी नहीं बोली। पुत्र १॥ वर्ष का है और कन्या ४ वर्ष की। वह बेल के पेड़ के नीचे खजानची साँवलिया प्रसाद के बाग में सती हो गयी। रात को आग की लपट देख कर लोग दौड़े। इस कारण बिलकुल भस्म न होने पाई, मगर प्राण पखेरू तुरंत उड़ गये। सुबह खबर होते ही डिपुटी कमिश्नर तथा अन्य हाकिम लोग मौके पर पहुँचे। तहकीकात हुई। घर के लोग निर्दोष पाये गये। अन्त में डिपुटी कमिश्नर साहब ने उसी जगह समाधि बनाने का हुक्म दे दिया।

* * *

पूने की गायकी बालिका

अभी तक मास्टर मदन के गाने की बात सुनकर ही लोग आश्चर्य मानते थे, पर अब उससे भी आश्चर्य जनक समाचार आया है। सहयोगी "मराठा" कहता है कि, पूने में एक लड़की आयी है, जो मुशकिल से सात वर्ष की होगी। पर उसे तामिल तलंगू और संस्कृत के कुछ श्लोकों के सिवाय समस्त भगवद्गीता और गोपिका गीत कण्ठ हैं और कहने पर वह सुना भी देती है। कहते हैं कि जब वह साल भर की भी नहीं थी तब अच्छी तरह साफ बोल सकती थी और दो साल की होने के पहिले उसने बहुत से मंत्र कंठ कर लिये थे, जो उसका पिता देवताओं का पूजन करते समय पढ़ा करता था। लड़की का नाम "बाला सरस्वती लक्ष्म्बा" है। डा० भंडारकरके पास जब जब लोग इस लड़की को लेगये तब इसका चमत्कार देख वे बड़े चकित हुए। हम समझते हैं कि, बचपन से लड़कों को अच्छी बातें सुनाने से वे उन्हें याद हो जाती हैं और कभी नहीं भूलतीं ?

(भारतमित्र)

* * *

पति को विष दे दिया

बाई सूरज गुजराती पाटीदार पन्द्रह बरस की एक लड़की है। उसने अपने पति भागा रणछोड़ को बिष खिला दिया, जिससे भागा चल बसा। बाई-सूरज को २ वर्ष कड़ी कैद का दण्ड मिला उसकी अपील इस सप्ताह बंम्बई की हाईकोर्ट में माननीय जज सर जान हीटन और मि० जस्टिस शाहके इजलासमें सुनी गयी।

फरियादी पक्षने इस मामलेकी जो

कथा सुनायी उसमेँ, कहा कि बाई सूरज का विवाह बाल्यावस्था मेँ भागा से होचुका था। लड़की अपने बापके घर ही रहा करती थी। जब वह १४ वर्षकी हुई तो उसके बापने एक दूसरे मर्द से उसका विवाह पक्का किया। इसकी खबर भागा को मिली। उसने बिरादरी की पंचायन बिठाकर उसके सामने अपना मामला पेश किया। अन्त मेँ बाघा का चचा बाई सूरजको बाघाके घर ले आया और दोनोँ पति पत्नी साथ रहने लगे। परन्तु उनमेँ बनती नहीँ थी। नित्य लड़ाई झगड़े मचे रहते थे। सूरज लड़की अपने बाप से पति के बुरे वर्ताव की शिकायत किया करती थी। फरियादी पक्षका कहना है, कि सूरजके बापने उसे एक पुड़ियामेँ कुछ चूर्ण देकर कहा, कि यह भोजनमेँ मिलाकर अपने पतिको खिला दे। इसके खाने से तेरा पति तुझसे बुरा बर्त्ताव नहीँ करेगा।

बाई सूरज ने गत ५ दिसम्बर को वही पुड़िया भोजन बनाते समय खिचड़ी मेँ मिला दी। वह खिचड़ी खाकर अभागा पति भागा उसी रात का चल बसा।

पीछे रासायनिक जाँचसे मालूम हुआ, कि वह संखियेसे मरा। बाई सूरज पकड़ी गयी और उसपर बिषप्रयोगका अभियोग चलाया गया। भड़ुचके सेशन जजने दो असेसरोँ सहित इसका विचार किया।

बाई सूरजका कहना था कि पुड़ियाके चूर्णको मैँ संखिया नहीँ जानती थी। मैँ तो यह समझे हुई थी कि उस चूर्ण के खाने से पति मुझसे बुरा वर्त्ताव करना छोड़ देगा और मेरे वश मेँ हो जायेगा।

सब कुछ सुनकर एक असेसर ने सूरज को निर्दोष माना और दूसरेकी रायमेँ वह बिषसे केवल साधारण आघात पहुँचाने की अपराधिनी ठहरी। जजसाहबकी यह राय हुई कि बाई सूरज यह जानती थी कि चूर्ण खालेनेसे पति को कुछ आघात जरूर पहुँचेगा। मृत्यु हो जाना तकभी सम्भव है, शायद यह बातवह नहीँ जानती थी। कम उम्र और अनुभवहीन होनेपर भी लड़कीमेँ इतना जाननेकी समझ जरूर है, कि उक्त चूर्ण हानिकर था या नहीँ। इसलिये जज साहबने दूसरे असेसर से सहमत होकर विष द्वारा आघात पहुँचानेका अपराध ही सिद्धमाना और उसके लिये बाईको २ वर्ष कठिन कारावासका दण्ड दिया और अन्तमेँ इस पर बड़ा खेद प्रगट किया कि पुलिस लड़कीके बापका चालान नहीँ कर सकी।

हाईकोर्टके माननीय जजोँ ने यह सब सुन और विचार कर बाई सूरजकी अपील रद कर दी और दण्डाज्ञा बहाल रखी।—यह देखो बाल्यावस्था के विवाह का भयङ्कर परिणाम! (श्री बेंकटेश्वर स०)

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।



वार्षिक मूल्य ३||)] सम्पादक— [प्रति संख्या =)||

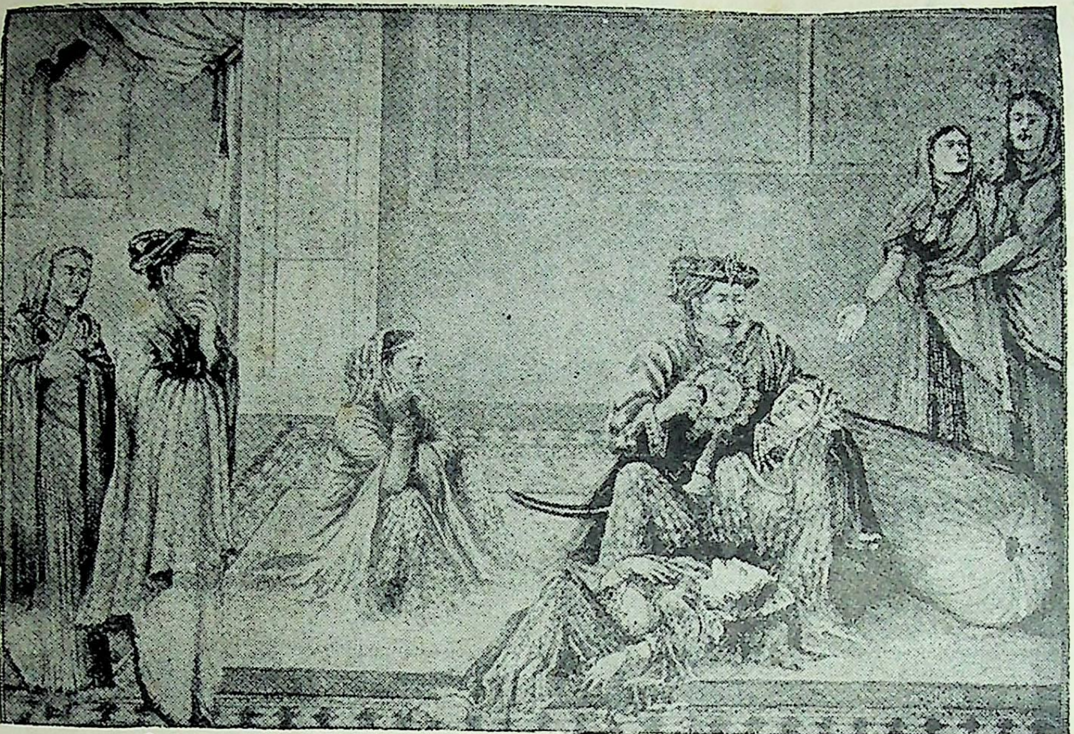
पण्डित सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, श्रीमती गोपालदेवी ।

विषय-सूची

गृहलक्ष्मी के नियम।

[१] गृहलक्ष्मी प्रति मास के आरम्भ में प्रकाशित होती है। [२] डाक-व्यय सहित इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) मात्र है। [३] नमूने की कापी मँगाने वालों को चाहिए कि =)॥ का टिकट भेज कर हम से नमूना मँगा लें। यदि वे ग्राहक हो जायँगे तो उन्हें शेष अङ्कों के लिए केवल १।=) देना पड़ेगा। [४] ग्राहकों को चाहिए अपना पता पूरा और साफ लिखें जिससे उनके पास पत्रिका पहुंचने में गड़बड़ी न पड़े। [५] वर्त्तमान समय की राजनीति तथा धार्मिक झगड़ों से सम्बन्ध रखने वाले लेख इस पत्रिका में नहीं छापे जाते। [६] विज्ञापन की छपाई एक बार के लिए प्रति पंक्ति ।=), आधे पृष्ठ के ५॥) और पूरे पृष्ठ के १०) हैं। अधिक दिनों के लिए विज्ञापन छपाना हो तो पत्र व्यवहार करके तै कर लेना चाहिए। [७] बैरङ्गपत्र नहीं लिए जायँगे। जवाबी कार्ड या आध आने का टिकट आये बिना किसी के पत्र का उत्तर नहीं दिया जायगा। [८] लेख, परिवर्त्तन के पत्र, समालोचना के लिए पुस्तकें आदि, रुपया तथा और सब तरह के गृहलक्ष्मी सम्बन्धी पत्र इस पते पर भेजने चाहिए—

श्रीमती गोपालदेवी
'गृहलक्ष्मी'-कार्यालय, इलाहाबाद



कृष्णा कुमारी ।



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः

"सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, आषाढ़, संवत् १९७२ [चतुर्थ दर्शन

कृष्णा कुमारी

(१)

है यह घिरी चित्तौर में क्यों दुख-घटा घनघोर ?
क्यों छा रहा है आज ऐसा विषम भय चहुँ ओर ?
हत बुद्धि हो नर ले रहे क्यों हाय दीर्घ स्वास ?
मेवाड़-माता हो रही क्यों इस प्रकार उदास ?

(२)

हैं इधर जयपुर अधिप श्रीयुत जगतसिंह नरेश,
हैं उधर धन्य मानसिंह प्रसिद्ध जोधपुरेश ।
ले साथ में सेना विपुल ये रोक दुर्ग-द्वार,
मेवाड़ के विध्वंश का हैं कर रहे कुविचार ॥

(३)

ये उभय राजा साथ ही हो राज-मद में अन्ध,
राणा-सुता से चाहते हैं व्याह का सम्बन्ध ।
प्रत्येक कहता है "मुझे दें जो न कन्या-दान,
राणा समझ लें फिर नहीं है आपका कल्याण ॥"

(४)

ले साथ पिंडारी लुटेरे कुटिल, क्रूर अपार,
मेवाड़ चढ़ आया प्रसिद्ध अमीरखां सरदार ।
दो शत्रु थे ही, तीसरा यह और पहुँचा एक,
आतीं कुदिन में विपद हा ! हा !! एक साथ अनेक॥

(५)

"वन सुन्दरी कृष्णा कुमारी कमल राजस्थान का,"
न प्राप्त वह मुझको हुई तो विषय है अपमान का।
देखें भला, राणा-सुता का व्याह कर, राठौर तू !
निज भवन कैसे जा सकेगा, त्याग कर चित्तौर तू !

(६)

जयपुर पराजयपुर बनेगा समझ ले कछवाह तू !
घर लौट जा ले प्राण, तज राणा-सुता की चाह तू!
मत मानसिंह महीप से हठ युत लड़ाई ठान तू !
मत आप होकर मृत्यु को इस भाँति कर आह्वान तू!

(७)

हैं सेंधिया-द्वारा निकलवा दूत जो तेरे दिये—
चित्तौर से हमने, हमारा क्या हुआ तेरे किये ?
तू साथ क्या न अमीरखां के जोधपुर में जा चढ़ा?
पर प्राण लेकर घर भगा, कुल मान तू अपना बढ़ा॥"

(८)

यों एक ही कुल के प्रकट कलहाग्नि कर दो वंश—
करने चले मेवाड़रूपी वीर वन को ध्वंश।
अति प्रबल मारुत-तुल्य यवन अमीरखां दे योग—
करने लगा पर-अहित-हित निज कुटिल शक्ति प्रयोग॥

(९)

घन-पाश से हो बद्ध जोधपुरेश-द्वारा हाय !
यह क्रूर यवन अमीरखां रच रहा घृणित उपाय।
बलहीन लख मेवाड़पति को, है दिखाता त्रास,
हैं स्वान भी पा समय करते सिंह से परिहास॥

(१०)

"राणा ! कुशल निज चाहते हो, तो करो यह काम,
फिर अन्यथा होगा विषम इसका दुखद परिणाम।
या तो सुता दो मानसिंह नरेश को विधि युक्त,
या वध सुता का कर स्वयं होओ विपद से मुक्त॥

(११)

यह हुक्म वीर अमीरखां का जो न होगा पूर्ण,
सच जान लो, मेवाड़-भू, बस, हो गई फिर चूर्ण।
हैं साथ मेरे लक्ष पिंडारी लुटेरे क्रूर,
संकेत पाते वे करेंगे गेह, गढ़ सब धूर॥"

(१२)

हत बुद्धि हा ! मेवाड़पति श्री भीमसिंह नरेश हो,
चिन्ता विविध बिधि कर रहे, कैसे विगत यह क्लेश हो।
"हे एक लिंग ! उपाय अब है क्या ? हुआ असहाय मैं!
है लाज जाती पूर्वजों की, अधम हूं अति हाय मैं !

(१३)

हे पूर्वजो ! हा ! हो रहा मेवाड़-गौरव अस्त है।
तज कर हमें जा रहे श्री, स्वातंत्र्य, शक्ति, समस्त हैं।
थे बन्धु जिनको मानते हम, वे बने रिपु आज हैं !
हा हन्त ! स्वार्थी मानवों की कुछ न रहती लाज है॥

(१४)

मेवाड़ ! तेरी यह दशा, हा ! हा !! मुझे धिक्कार है !
हे मातृ-भूमे ! कठिन अब इस दुःख से उद्धार है !
निज गर्भ में मेवाड़-भू ! इस अधम सुत को धार तू !
हा ! हा ! हुई दुख-दुर्दशा से ग्रस्त विविध प्रकार तू!

(१५)

सीसोदिया-कुल-सूर्य वीर-प्रताप-उदित प्रताप !
निज मातृ-भू की यह दशा क्या देखते हैं आप ?
हे राजसिंह महीप अनुपम मातृ-भक्त, उदार !
इस दुःख से आकर करो मेवाड़ का उद्धार॥

(१६)

जिस रत्न के हित यत्न कर अकबर थका आजन्म,
जिस वीर मस्तक को न वह नत कर सका आजन्म।
अति विषय, मत्सर, द्वेश, आपस के कलह, छल, पाप—
हैं सौंपते उस रत्न को, ले यवन कर में आप !!

(१७)

क्या अब नहीं है रक्त हम में पूर्वजों का लेश,
जो हो रहा सीसोदियों पर यवन का आदेश ?
होता न हममें एकता का जो विशेष अभाव,
तो क्या दिखा सक्ता यवन यह आज स्वीय प्रभाव?

(१८)

कृष्णा ! हुए तेरे लिये दो भूप प्रार्थी साथ,
किसका करूं मैं मान, अब किसका कटाऊँ माथ?
किस हृदय से मैं आत्मजा का वध करूंगा आप !
है दोष क्या तेरा ? हहा ! तू है सुते ! निष्पाप !!"

(१९)

इस भाँति राणा कर रहे हैं आत्म-निन्दा चित्त में,
है घोर अपयश लग रहा स्वाधीनता के वित्त में !
पर यवन के आदेश की कर श्रवण यह कर्कश कथा,
पाठक न समझें आप, कृष्णा को हुई होगी व्यथा!

(२०)

वह वीर वंशोद्भव स्वयं थी वीर बाला षोड़सी,
वर वीरता उसकी नसों में धीरता युत थी धँसी।
फिर वह भला अस्थिर कभी इस बात से होती कहीं?
हैं मृत्यु से भी वीर क्षत्राणी कभी डरती नहीं ॥

(२१)

यद्यपि अवस्था अल्प थी, निज जनति प्राणाधार थी,
कोमल कमल के कुसुम सम सुकुमार से सुकुमार थी;
पर धैर्य्य साहस में बड़ों से भी अहा ! बढ़ कर रही,
सुकुमारता में ही अतुल दृढ़ता अहा ! उसने गही ॥

(२२)

निज देश-रक्षा के लिये, निज देह का तज ध्यान,
निज देश-रक्षा के लिये, निज गेह का तज ध्यान,
निज देश-रक्षा के लिये, पति-स्नेह का तज ध्यान,
कृष्णा कुमारी कर रही यह हर्ष युत विष-पान !

(२३)

जननी अभागिनि देख कर निज सुता का यह हाल,
वात्सल्य-वशतः रो रही है, हो विकल, बेहाल !
निज अंग से कोमल कमल को देख होता छिन्न,
उसके विरह से क्या न मंजु मृणाल होता खिन्न ?

(२४)

पर कह रही कृष्णा, धराते धैर्य मा को स्वीय,
"यह मरण है, जननी ! कदापि न शोचनीय मदीय।
तू रो न गद्गद कण्ठ से, मेरे लिये अब और,
मुझ पापिनी के हित, विपद सहती विपुल चित्तौर!

(२५)

निज मृत्यु-द्वारा हरण कर निज मातृ-भू का क्लेश,
मैं पा रही हूं अमरता होते कृतार्थ विशेष।
होगा निरापद शीघ्र अब मम परम पूज्य स्वदेश,
मैं धन्य हूं, है जननि मेरा पूर्व-पुण्य अशेष !!

(२६)

है धन्य उसका जन्म, जिससे देश का कल्याण हो,
है धन्य वह, 'निज-धर्म-हित' जिसका विसर्जित प्राण हो
निज तात को देना सदा सुख, धर्म है सन्तान का,
रखती सदा है ध्यान सन्तति, तात के कल्याण का।

(२७)

रक्षा मुझे तो ध्येय है अपने पिता के मान की,
सुख की न मुझको चाह है, चिन्ता नहीं निज प्राण की।
इस विपद से अपने पिता को, मा ! करूंगी त्राण मैं,
उनके लिये निर्भय हृदय हो, दान दूंगी प्राण मैं ॥

(२८)

लाखों नरों के शिर कटाने की अपेक्षा शान्ति से—
यों मुक्त होना श्रेष्ठ है, दुख, शोकमय भव-भ्रान्ति से।
भुज वीर माता की न मैं क्या वीर कन्या हूं ? अहा !
कर्तव्य पालन में मुझे इस लोक में है भय कहाँ ?

(२९)

तू रो न मा ! मेरे लिए चिन्ता न कर अब लेश,
तज सोच, मुझको धैर्य धर दे मुदित चित आदेश।
हे जनक ! हे हे जननि ! यह मम लो सभक्ति प्रणाम,
अब ले रही है तव अधम यह सुता चिर विश्राम !

(३०)

क्षत्रानियो ! मेवाड़-वासिनि, दो मुझे आशीश,
मेवाड़ ही में जन्म दे फिर भी मुझे जगदीश।
हे मातृ-भूमे ! दे मुझे, अपनी अलौकिक भक्ति,
निज देश-सेवा हित रहे मुझमें बनी यह शक्ति।"

(३१)

यो वचन कह, रज मातृ-भू की शीश पर निज धार—
विष-पान कृष्णा ने किया, कह "जयति जय मेवार।"
उत्तर प्रतिध्वनि ने दिया यह "जयति जय मेवार,"
घोषित जयध्वनि ने किया "मेवार का उद्धार॥"

(३२)

कृष्णा ! तुझे है धन्य, तेरा धन्य विमल चरित्र,
है धन्य तेरी यह अलौकिक पितृ-भक्ति पवित्र !
है धन्य तेरी शक्ति, अनुपम देश-भक्ति ललाम,
संसार में कल्पान्त तक है अमर तेरा नाम॥

(३३)

आदर्श, गौरव-गेह है तू, भव्य भारत-वर्ष का,
तू स्थान है सीसोदिया के गर्व-संयुत हर्ष का।
क्या वस्तु इस विष-पात्र के आगे सुधा का भाण्ड है?
कृष्णा ! अतुल इस विश्व में यह वीरता का काण्ड है!

(३४)

यह जाति-देश-हितैषिता तेरी अपूर्व, अनन्य है,
है नाम तेरा अमर, तू "कृष्णा कुमारी" धन्य है !
तुझसी जहाँ, जिस देश में वर वीर बाला जात हो,
वह क्यों न इस संसार में वन्दित तथा विख्यात हो?

(३५)

लावण्य-निधि ! रति-मान-मोचनि पद्म राजस्थान का!
तूने दला सब दर्प पैतृक रिपु गणों के मान का।
अल्पायु ही में तू गई हा ! यदपि अमरागार को,
पर कर गई तू सौरभित निज सुयश से संसार को॥

—लोचन प्रसाद पाण्डेय।

(प्रभा)

वीरांगना

राजा जसवंत सिंह की सती।

इतिहासज्ञों को विदित है कि शाहजहाँ बादशाह के पुत्र दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद में राज्य सिंहासन के लिए कठिन संग्राम हुआ। युवराज दारा की ओर से मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह ८००० योधाओं को ले उज्जैन देशान्तर्गत धर्मातपुर के निकट औरंगजेब और मुराद के विरुद्ध जी खोल कर लड़े। अनेक कारणों से दारा की फौज की हार हुई और राजा जसवन्तसिंह भी ६०० शेष सिपाहियों समेत अपने देश को रवाने हुए। उधर उनकी रानी ने पराजित पति का आगमन सुन महल का फाटक बन्द करवा दिया और कहा मैं पराजित पति का मुख नहीं देखूँगी।

इसी के आधार पर पाठकों के विनोदार्थ कुछ कविता लिखता हूँ: ।—

धिक्कार! नाथ, धिक है! क्या शूरता तुम्हारी ?। जीते भगे समर से भयभीत हो पिछारी ॥१॥ रजपूत रंग-रण में निज अंग को गमाते। पाकर परम पवित्रा पुनि मृत्यु हर्ष पाते॥ २॥ सुरराज के सदन में घुसते बगैर टोके। डरपोक, भीरु जग में जीते सदैव रोके॥ ३॥ क्यों नाथ, जन्म तुमने रजपूत कुल लिया था ?। या दैव मूढ़ जिसने तुमको पटक दिया था॥४॥ कुल को कलंक लाकर निज जन्म को बिगारा। आकर घनी घघरिया घुसने का क्या बिचारा? ॥५॥ पापी पती तुम्हारा मुख देखना नहीं है। घुस हाय! मैं न जाती फटती न क्यों मही है ?॥ ६॥ धिक! कर्म जोग मेरा तुम से हुई जो शादी। शादी हुई तो जल्दी मर जाती होके माँदी॥ ७॥ पर क्या करूँ समझ में अब हाय कुछ न आता। मारूँ, मरूँ महल में कर जो कटार आता॥ ८॥ ऐसे धवा से बिधवा जीना मुझे भला था। कर क्रूर, भीरु भर्ता क्यों हाय! यह गढ़ा था ?॥ ९॥ जीते न तुम समर में पर मर न क्या सके थे ?। होकर अनाथनी भी कहती कि "पति भले थे"॥ १०॥ अब अंधिनी बनूँगी पर मुख न मैं लखूँगी। पाकर पती भगोड़ा जीती न अब रहूँगी॥ ११॥ लाओ जहर हलाहल प्याला अभी बनाओ। अब क्यों विलम्ब करते पीकर मुझे पिलाओ॥ १२॥ तलवार से कठिन कर सिर धड़ से या उड़ाओ। जीते जमीन अन्दर या खोद के मिलाओ॥ १३॥ कुछ भी करो न अन्दर मन्दिर के नाथ आओ। जब तक जिऊँ जगत में मुझको न मुख दिखाओ॥ १४॥ निर्लज्जता यही जो प्रभु लादना तुम्हें थी। तलवार तेग कटि में क्यों बाँधना तुम्हे थी ?॥१५॥ सिर ढाँक ओढ़नी से घर क्यों न बैठ जाते ?। पुरुषों का नाम नाहक ऐसे न हा! डुबाते॥ १६॥ जो जानती यही मैं खुद खेत साथ जाती। दुश्मन को काट रण में अच्छा मजा चखाती॥ १७॥ जय जो न हाथ आती कीरति अवश्य लाती। जीते कदम न पीछे रण रंग से हटाती॥ १८॥ पर क्या कहूँ तुम्हें मैं उपजे भले खबैया। खा खा के आज बोरा निज नाम के डुबैया॥ १९॥ राना के सूर्य कुल में उपजे हो राहु भारी। क्यों नर सृजा विधाता अच्छे फबे थे नारी ?॥ २०॥ तुमको तलाक देती तुम लो सलाम मेरा। धिक्कार जन्म तेरा धिक्कार जन्म मेरा॥ २१॥

—कृष्णबिहारीलाल बाजपेई।

(जयाजी प्रताप)

वीर जाति का बालक

बालक—अम्मा खिद्दो ऊँ ऊँऊँ।
माता—बिगल बजाले तूँ तूँतूँ॥
(टालने के लिये)

छोड़ २ मत लाड़ी लाँच ?
कौवा नहीं तो मारे चोंच॥

बालक—ना ना अम तो खिद्दो लैंगें।
माता—काका आवेंगे तब दूँगी।

बालक—अम्मा! काका कहाँ गए हैं।
माता—भारत हित रणखेत गए हैं॥

बालक—अम्मा कैसा हो रणखेत।
माता—गोले जहाँ उड़ावें रेत॥

बालक—आहा हा हम बी जावेंगे।
गोले से खिद्दो खेलेंगे॥
अँहूँ अँहूँ काका के पास।

माता—(प्रणय कोप से गेंद देकर)
ले रे हठीले जा खा घास॥

बालक—अम्मा आख़िर हम ही जीते।
खिद्दो ली कर बीस फजीते॥
(अम्मा हंस बोली दे प्यार)

माता—बनना बच्चा अजय सवार॥

अम्मा से लड़ खिद्दो लाया।
मटक २ कर गाल फुलाया॥
चला शान से कूद अधीर।
घर में जीत बना हैं बीर॥

—"मराल"
(स० प्रचारक)

लड़की का बलिदान



नोआखाली जिले के फेनी सब-डिवीजन से एक ब्याहता बंगालिन के फाँसी लगा कर आत्महत्या करने का हृदय विदारक समाचार आया है। लड़की का नाम यशोदा था। अपने पिता की वह इकलौती बेटी थी। वह लोअर प्राइमरी तक पढ़ी लिखी थी। विवाह की अवस्था होने पर उस के पिता गौरचन्द्र बिना माने बेचाराम नामा नामक एक युवक से उसका ब्याह कर दिया। बेचाराम ससुराल में ही रहने लगा। गत फाल्गुन महीने में यशोदा ऋतुमती हुई। लड़की के ऋतुमती होने पर नामा जाति में बिरादरीवालों को खिलाना पिलाना पड़ता और पुरोहित महाराज की भी मुट्ठी गरम करनी पड़ती है तब कहीं गौना होता है। पर गौरचन्द्र के पास इतने रुपये कहाँ कि वह इतना कुछ कर सके। दूसरे महीने भी वह बिरादरी वालों के भोज की व्यवस्था न कर सका। सामाजिक नियमानुसार विचारी यशोदा न तो स्वामी के साथ रह सकती और न रसोई के वर्त्तन ही छू सकती।

दुःखी होकर गौरचन्द्र समाज के मुखिये की शरण में गया और उनके पाँव छूकर बहुत आरज मिन्नत की पर उनका हृदय नहीं पसीजा। हृदय हो तब न,! दूसरे दिन सबेरे मुखिये का बेटा रामचन्द्र गौर

के घर आया और उसके पाँव पर सिर रख कर बहुत गिड़गिड़ाया कि मुझ पर दया करो—मेरी लाज रखो, पर कोई फल नहीं हुआ। उधर बेचाराम भी पत्नीसे बात न कर सकने के दुःख से घर से चला गया।

यशोदा ने यह सब कुछ देखा। देख कर उसके हृदय में बड़ी चोट लगी। पिता की यह दुर्दशा उसे असह्य हो गयी उसने आत्महत्या की ठानी सवेरे ७ बजे वह घर से निकली। उस समय उसका पिता और रामचरण दोनों घर के वरंडे में बैठे हुए थे। पिता को पुत्री को घर से बाहर जाते देख किसी प्रकार का सन्देह नहीं हुआ। कुछ ही देर बाद यशोदा की चाची ने देखा कि यशोदा गले में फाँसी लगाकर आम के पेड़ में लटक रही है। उसकी चाची चिल्लायी। उसका चिल्लाना सुनकर गौरचन्द्र और रामचरण वहाँ पहुंचे औ तुरत उन्होंने उस की फाँसी काट दी। यशोदा घर लायी गयी। दो तीन घंटे सिसक कर यह परमधाम को प्रयाण कर गयी।

धन्य यशोदा! तू धन्य है!! तूने सामाजिक-कुप्रथा की वेदी में अपना बलिदान कर दिया।

भगवन् क्या हम लोगों में से कभी ऐसी कुप्रथाओं के दूर होने का सुदिन भी आवेगा। प्रभो अब तो भारत को बहुत दिन दुर्दशा में पड़े हो गये अब तो इसकी ओर नेक कृपा दृष्टि करो।

लक्ष्मी की दो ठोकरें



किसी नगर में एक दरिद्र ठाकुर रहता था जो केवल भिक्षा द्वारा ही अपना निर्वाह कर लेता था। यद्यपि अकाल के कारण देश में बड़ा हाहाकार मच रहा था, परन्तु यह बेचारा तो किसी न किसी प्रकार रो पीट कर और गिड़गिड़ा कर अपना उदरपूर्ण करही लेता और मस्त पड़ा रहता था।

इसी प्रकार इसको कई वर्ष व्यतीत होगये। भाग्यवश एक दिन अचानक इसको एक खंडहर में एक कलशा मोहरों से भरा मिल गया, अब तो ठाकुर साहेब लखपती बन गये। दूसरे ही दिन से उनके घर द्वार घोड़ा गाड़ी दास दासी इत्यादि सब हो गये और अब ठाकुर साहब नित्य अच्छे अच्छे कपड़े पहिन कर चौक में अकड़ कर टहलने लगे।

लोग इनके ठाट बाट देख कर चकित रह गये, क्योंकि इस समय धन के मद ने इन्हें एक दम अन्धा बना दिया था। एक दिन चौक में टहलते समय इनको पुराने समय का साथी एक भिखारी मिल गया। उसने इनको पहिचान कर डरते डरते पूँछा" महाशय! इतने अकड़ कर क्यों चलते हो और आपकी गर्दन इतनी टेढ़ी क्यों है?" यह सुन ठाकुर साहेब ने अकड़

कर कहा—"बेवकूफ़" यह लक्ष्मी की ठोकर का फल है"।

ठाकुर साहेब अब तो नये नये रङ्ग पलटने लगे और उनके यहाँ बड़े ठाट के साथ नित्य दावत जलसे और सैर सपाटे उड़ने लगे। इस प्रकार आनन्द उड़ाते इनको दो वर्ष होगये। आप जानते हैं कि लक्ष्मी चंचला है—यह एक स्थान पर जम कर नहीं रहती और यथाक्रम प्रत्येक का सत्कार कर चल देती है, इसी के अनुसार ठाकुर साहब भी अब खुक्खल हो चले तथा एक दिन रहा सहा जो कुछ था, उसे चोर ले भागे और ठाकुर साहब फिर वही "ढाक के तीन पात" रह गये।

ठाकुर साहब की दशा इस बार बहुत ही शोचनीय होगई। हाथ पाँव पर झुर्रियाँ पड़ गँई, मुख सूख गया और कमर झुक गई। उदरपूर्ण के लिये अब फिर वही भिक्षावृत्ति ग्रहण करनी पड़ी। एक दिन उसी चौक में जिसमें कि अकड़ कर चला करते थे, जब यह भीख माँग रहे थे, इनका पहिला साथी भिखारी मिल गया और इनकी ऐसी दीन दशा देख कर पूँछने लगा—"मित्रवर! आज आपकी ऐसी दशा क्यों देखता हूँ?"

ठाकुर—भाई यह लक्ष्मी की दूसरी ठोकर का फल है।

भिखारी--भाई! तुमने अपनी अच्छी दशा में भी एक बार ऐसा ही उत्तर दिया था, किन्तु मैं इन दोनों बेर कुछ भी नहीं समझा। आज कृपा कर मुझे अपनी बात का मतलब तो समझा दो।

ठा०—अच्छा, सुनो, लक्ष्मी की दो ठोकरें प्रसिद्ध हैं, जब यह किसी पर कृपा करती हैं तो उसकी छाती पर एक ठोकर लगातीं हैं, जिससे आदमी अकड़ जाता है और गर्दन भी ऐंठ जाती है तथा जब यह उसके कर्मों से रूठ कर जाने लगती हैं तो पीठ पर दूसरी ठोकर जमाती जाती हैं, इससे मनुष्य की कमर झुक जाती है और वह अशक्य होजाता है।

भि०—तब तो भाई मेरे ध्यान में इस का आना भी बुरा और जाना भी बुरा।

ठा०—निस्सन्देह तुम सत्य कहते हो, किन्तु यह मनमोहिनी ऐसी माया भरी है कि इसका भेद जान कर भी मुझे हरदम इसी का ध्यान रहता है और इसको याद जी पर बिजली गिराती है—यदि सच पूँछो तो यह उसकी तीसरी ठोकर है, जो मरण पर्यन्त चैन नहीं लेने देती। परमात्मा इसकी ठोकरों से शत्रु को भी बचावे।

—लक्ष्मीनारायण गुप्त

जर्मनी में स्त्री शिक्षा

जर्मनी की सब देवियाँ पढ़ी लिखी हैँ। विद्या के प्रभाव से वे अपने घर को जैसा सुखी रखती हैँ वैसाही अपने मन और आत्मा को सुखी रखना वे जानती हैँ। "सुमाता" कहाने के लिये आज जितने गुणोँ और भावोँ की ज़रूरत है, वे जर्मन देवियोँ मेँ पाये जाते हैँ। वे चूल्हे के सामने बैठकर तरकारी उबाल डालने भर मेँ ही अपने कर्तव्य की इति-श्री नहीँ समझतीँ, बल्कि महाविद्यालयोँ मेँ ऊँची ऊँची शिक्षा देती देखी जाती हैँ, चिकित्सालयोँ मेँ दवा और रोगी की पूरी सँभाल करती मिलती हैँ, अनाथ अपाहजोँ के लिए अनेक प्रकार के काम तलाश करती हैँ, दीन दुखियोँ की आपत्ति का सहारा बनती हैँ, सर्व साधारण के उपयोगी विद्यालय, अनाथालय, चिकित्सालय चलाती हैँ, और दफ्तरोँ मेँ बैठकर पुस्तकेँ लिखती हैँ और अख़बारोँ का सम्पादन करती हैँ। जर्मनी मेँ कई ऐसी बड़ी बड़ी संस्थाएँ हैँ जिन्हेँ स्त्रियाँ ही चलाती हैँ। ऐसे विद्यालयोँ की तादाद जर्मनी मेँ ज़ियादा है जिनमेँ स्त्रियाँ और पुरुष बराबर काम करते हैँ। बहुत से विद्यालयोँ मेँ स्त्रियोँ की देख रेख मेँ पुरुष काम करते हैँ। बहुत से "किंडरगार्टन्" विद्यालय स्त्रियोँ ने केवल अपने भरोसे पर चला रक्खे हैँ। जर्मनी मेँ स्त्रियाँ भी सामाजिक कामोँ मेँ पुरुषोँ के बराबर हिस्सा लेती हैँ। ऐसी कितनी ही स्त्रियाँ जर्मनी मेँ हो गई हैँ जिन्होँने कुरीतियोँ के बरख़िलाफ़ आवाज़ उठाकर उन्हेँ रोक ही दिया। जर्मनी भर की स्त्रियाँ आज एक धागे से बँधी हुई हैँ। जर्मनी मेँ स्त्रियोँ की एक महासभा (फ्राउन फराइन) है, इस महासभा की शाखाएँ तमाम मुल्क भर मेँ हैँ, और तमाम स्त्रियाँ उसकी सभासद हैँ। स्त्रियाँ अपने व्याख्यानोँ और लेखोँ से अपनी बहिनोँ ही को नहीँ बल्कि पुरुषोँ तक के चित्तोँ को सुधार के साँचे मेँ ढाल देती हैँ।

इस लेख के पढ़ने वालोँ के चित्तोँ मेँ यह बात आ रही होगी कि जर्मन स्त्रियोँ की उन्नति के विषय मेँ हद से अधिक तारीफ़ की जा रही है पर जो जर्मनी की स्त्री-शिक्षा को ज़रा भी जानते हैँ वे दृढ़ता के साथ कह देँगे कि ये शब्द वहाँ की स्त्रियोँ के लिए वास्तव मेँ कम मूल्य वाले हैँ, और वे देवियाँ वास्तव मेँ कहीँ अधिक योग्यता वाली हैँ। जर्मन देवियोँ की उन्नति देख कर हमेँ अवाक रह जाना पड़ता है। वास्तव मेँ जर्मनी ने जो विद्या, बुद्धि, और ज्ञान मेँ उन्नति की वह केवल अपनी माताओँ की दया से। उन मेँ

"फ्राउ क्लारारिस्टर" के समान योग्य और बुद्धिमती देवी "किंडरगार्टन् विद्यालय" चलाती हैं, "औगुष्टे स्मिट्" जैसी परोपकारिणी देवी समाज सुधार और परोपकार में अपना जीवन बिताती हैं, "फ्राव रानरिएत-गोल्डास्मिट्" के समान विदुषी रमणी स्त्रियों के विश्वविद्यालय की नेत्री है। यह कौन सा जादू है जो उन्हें ऐसी परोपकारिणी देवियाँ मिल गईं ? उत्तर में कहेंगे, केवल "शिक्षा" ही ये सब करतब दिखाती है।

जर्मनी में भी स्त्री शिक्षा की हालत पहिले भारत के ही समान थी। हमारे यहाँ जैसे ब्याह से पहिले लड़की को साल दो साल "कन्या विद्यालय" भेज देते हैं, और बाद में सदा के लिए उठा लेते हैं, यही हाल जर्मनी में भी था। शिक्षा का ढाँचा भी इतना नहीं सुधारा गया था, माज़े बुनना, नाचना गाना और कुछ लिख पढ़ लेना ही वहाँ शिक्षा की मर्यादा थी। स्त्रियों की शिक्षा की ओर लोगों का इतना ध्यान भी नहीं था, सब लोग स्त्रियों को एक तमाशे की चीज़ समझते थे। इसीलिए दिखावे की शिक्षा दी जाती थी, किसी उपयोग के लिए नहीं।

धीरे धीरे जैसे जैसे शिक्षा की तरक्की का ज़माना आता गया वैसे वैसे हालत बदलती गई। जब वहाँ "अनिवार्य शिक्षा प्रणाली" हो गई, तब लोगों का ध्यान स्त्री शिक्षा के सुधार की तरफ अधिक गया। "पेस्टालोज़ी" नामक शिक्षा-विज्ञान-वेत्ता ने बड़ा परिश्रम करके जर्मनी वालों का ध्यान स्त्री शिक्षा पर खींचा। इस मनुष्य ने अपनी तमाम उम्र एक ऋषि के समान परोपकार में बिता दी। उसने जर्मनी वालों को यह तत्व सिखाया कि "प्रारम्भिक शिक्षा" अपने घर में शिक्षित होना, और दिखावे के लिए नहीं, बल्कि प्रकृत रूप से उसकी बुद्धि का विकसित होना आवश्यक है। इसके फल में ही जर्मनी में "होअरमेडशेन्शूल" नामक विद्यालयों की जड़ जमी।

धीरे धीरे ये विद्यालय वहाँ तमाम देश भर में हो गये। थोड़े दिनों के लिए स्त्रियों की शिक्षा भी वहाँ पुरुषों के ढाँचे पर चली, पर इसे बुरा समझ कर उन लोगों ने उसे जल्दी ही छोड़ दिया। फिर प्रकृति के अनुसार बुद्धि के विकसित करने की शिक्षा दी जाने लगी, और इस शिक्षा ने जर्मनी के घर घर में अपना प्रवेश कर लिया।

जर्मनी में कन्याओं को दस वर्ष तक शिक्षा दी जाती है। छः वर्ष की अवस्था से यह शिक्षा शुरू होती है और सोलह वर्ष की अवस्था में वह पूरी हो जाती है। इन दस वर्षों में पहिले तीन साल की शिक्षा को प्रारम्भिक शिक्षा कहना चाहिए। फिर दूसरे तीन साल में कुछ इतिहास आदि विषय के कारण शिक्षा

का दायरा और बढ़ जाता है अन्त के चार वर्ष में दूसरी भाषा (अंग्रेजी और लैटिन, ग्रीक या संस्कृत भाषाएँ विशेष सीखता हैं) और उपयोगी विषय सिखाये जाते हैं। इसके अलावा नाचना, गाना, चित्र बनाना, सीना और गृहस्थी के उपयोगी कोई कला हर एक को ज़रूर सीखनी पड़ती है। जितने विषय आवश्यक है उनके अलावा और विषय लेना या न लेना छात्रिका के आधीन हैं। जर्मनी की "होअर मेउशेनशूल" विद्यालयों का उद्देश्य यही है कि कन्याओं की ग्रहण और धारणा शक्ति का पूर्ण विकाश हो जाय। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि ये विद्यालय इसलिए शिक्षा नहीं देते कि आगे जाकर उनकी कन्याएँ विश्वविद्यालय में दाखिल हो जाँय, इसीलिए उनमें आवश्यक, पर स्त्रियों के लिए अनुपयोगी, लैटिन, ग्रीक और कठिन गणित की शिक्षा नहीं दी जाती। इन विषयों को यदि कोई अपनी इच्छा से पढ़ना चाहे तो वह पढ़ सकती है। इन दस वर्षों में प्रत्येक जर्मन कन्या अपने आप को गृहस्थी और समाज के योग्य बना लेती है, और एक योग्य माता में जितने गुणों की आवश्यकता होती है, वे सब उस में आ जाते हैं।

बुद्धि-विकास के ये दस वर्ष कन्याओं के लिए बड़े ही महत्व के हैं। इस में उन्हें व्याकरण और साहित्य का अच्छा ज्ञान हो जाता है। यहाँ तक कि सभ्य संसार के भूषण "गेटी, शिलर" आदि कवियों के ऊँची प्रतिभा के ग्रंथ वे अच्छी तरह समझने लगती हैं। जर्मनी का इतिहास उन्हें बहुत अच्छी तरह से आने लगता है, और "फ्रेडिरिक दि ग्रेट" से अब तक का इतिहास तो वे विशेष रूप से जान जाती हैं। इसके अलावा संसार के इतिहास और भूगोल से वे परिचित हो जाती हैं। एक "हिन्दू" शब्द आते ही हिन्दुस्तान का पुराना और नया इतिहास उनकी आँखों के सामने घूम जायगा। सृष्टि-शास्त्र, प्राणिशास्त्र, विकासवाद, वनस्पति शास्त्र, रसायन शास्त्र, समाजविज्ञान आदि इतने विषय उन्हें आ जाते हैं, कि हमारे यहाँ अच्छे से अच्छे विद्वान कहलाने वाले पण्डित को उतने विषय नहीं आते। उत्तम शिक्षा के द्वारा जर्मन देवियों को बुद्धि का विकास देखकर चकित रह जाना पड़ता है। इतनी बुद्धि के बढ़ जाने का सबब यह है कि वहाँ किताबों के अक्षर ही विद्या का मूल मन्त्र नहीं माने जाते, वहाँ बुद्धि का विकास प्रकृति रूप से कराया जाता है।

यद्यपि विज्ञान द्वारा यह बात साबित हो चुकी है कि स्त्री और पुरुष में बुद्धि बराबर है, किन्तु फिर भी पुरुष म बुद्धि की शक्ति विशेष काम करती है, और स्त्री में हृदय की। स्त्रियों में प्रम, दया, सहानुभूति का भाव जियादा होना है, और पुरुषों में विचार, तर्क, बुद्धि आदि

का—यह बात संसार में कुदरती मालूम होती है। स्त्रीशिक्षा की हर एक बात पर विचार करते समय जर्मनी में इस कुदरती बात पर ज़ियादा ध्यान दिया जाता है। गाने, बजाने और कविता का विशेष ध्यान दिया जाता है। बहुत से गृहस्थ दश वर्ष की शिक्षा के बाद अपनी कन्याओं को केवल गाना बजाना, सिखाने के लिए "गान्धर्व महाविद्यालयों" में भेजते हैं।

जर्मनी वाले शिक्षा का मूल बुद्धि का विकास मानते हैं। जिस शिक्षा से बुद्धि का विकास न हो उसे वे शिक्षा ही नहीं मानते। बालिकाओं के कोमल अन्तःकरण को विकसित करने के लिए वे "कन्यामहाविद्यालय" को हरे भरे जङ्गल में बनाते हैं, और हरिण, खरगोश जैसे सीधे पशु और भाँति भाँति की पुष्प वाटिकाएँ उन के मन बहलाने को रहती हैं। कविकुलगुरु कालिदास आदि की कविता में जो हम शकुन्तला का प्रकृति से ज्ञान प्राप्त करना और जंगली पशुओं के साथ स्नेह करना पढ़ते हैं, वह जर्मनी की कन्याशालाओं में प्रत्यक्ष हो जाता है। प्रसिद्ध कवि वर्ड्स्वर्थ के वर्णन किये हुए प्रकृति शिक्षा (नेचर्स-एजुकेशन) के अनुसार सृष्टि ज्ञान से बुद्धि विकास का क्रम रक्खा गया है।

जहाँ तक होता है ऐसा यत्न किया जाता है कि कन्याएँ सभ्य, सरल, पाप से डरने वाली और समाज की उपयोगिनी बनें। इस विषय में माता पिता और अध्यापक अध्यापिका समान यत्न करते हैं। सप्ताह में एक बार कन्याएँ अपनी अध्यापिका के साथ किसी स्थान पर घूमने जाती हैं। उनके मुख पर प्रसन्नता, मुस्कुराहट और उत्साह सदा फैला रहता है। कोई मनुष्य दो मिनट के लिए भी उनसे मिलकर प्रसन्न हुए बिना नहीं रह सकता। यह योग्य शिक्षा का ही फल है।

शरीर के निरोग, लावण्ययुक्त और चपल रखने के लिए कसरत भी कराई जाती है। कभी कभी कसरत बाजे के साथ कराई जाती है, जो बड़े ही मज़े की होती है। सोलह सत्रह वर्ष की विद्यालय से पढ़कर निकली हुई कन्या लावण्ययुक्त गठे हुए बदन की देवकन्या सी मालूम होती है। उसका ओज और प्रसन्नता से भरा हुआ मुख वास्तविक शिक्षा का सच्चा उदाहरण मालूम होता है। हम अपने देश में देखते हैं कि बीस वर्ष की आयु में स्त्रियाँ एक दो बच्चे की माता हो जाती हैं और इसी उम्र से उनका बुढ़ापा शुरू हो जाता है। आवाज कड़ी हो जाती है, और शरीर में आलस अपना घर बना लेता है। पर वहाँ की देवियाँ बाईस वर्ष की उम्र तक यह भी नहीं जानतीं कि विवाह किस चिड़िया का नाम है। यह विषय हमारे लिए अफसोस का है।

संसार में "स्त्री" और "पुरुष" शब्द को सार्थक करना बड़े अहोभाग्य की बात है। जिस देश की देवियाँ, बहन के नाते से समाज की सेवा करती हैं, गृहणी के नाते से संसार चलाती हैं, और माता के नाते से बच्चों का पालन पोषण और शिक्षा देती हैं,—उस देश के बच्चे यदि मिट्टी में हाथ लगावेंगे तो वह सोना बनी हुई दीखेगी।

जर्मन स्त्री समाज की जीवन प्राण फ्राउ कोडर, रिस्टर, स्मिट्, गोल्डस्मिट् आदि देवियाँ हैं। इन्होंने स्त्री शिक्षा में बहुत बड़ा भाग लिया है। अवकाश के अनुसार इस विषय पर फिर लिखेंगे।

—शिव नारायण द्विवेदी।

(प्रताप)

अतुले! धन्य तेरा मातृ-भाषा प्रेम

(१)

दीजिए मुझे यही बरदान।
हे शुभ दाता विश्व विधाता जगत्राता भगवान।
तन मन धन हिन्दीहित वारूँ अर्पणकर दूँ प्रान॥
सदा बसे परमार्थ हृदय में दूँ न स्वार्थ पर ध्यान।
नित हिन्दी-साहित्य-सुधा का करूं हर्ष से पान॥
हिन्दू हिन्दी हिन्द देश का सहूँ न मैं अपमान।
यश फैलाउँ आर्य्य-जाति का कर हिन्दी गुणगान॥

भगवान-भास्कर अस्ताचल पहुँच चुके। अब पूर्ण-कला-युक्त इन्दु भगवान अगणित नक्षत्रों से सुसज्जित गगन-मण्डल में उदित होकर अपनी असंख्य किरणों द्वारा सुधा-वृष्टि कर रहे हैं। मंद मंद वायु चल रही है। जेन्टलमैन साइकलें टनटनाते अकड़ते मकड़ते सैर सपाटे से घर लौट रहे हैं। आगरे में एक युवती अपने शयनागार के आगे खुली छत पर बैठी पयानो के साथ साथ उपर्युक्त गायन गा रही है। उस युवती की आयु लगभग सोलह सत्रह वर्ष की है। उसका सौन्दर्य्य अद्वितीय है। काली रेशमीन साड़ी तथा पुष्पमय आभरणों से विभूषित वह युवती साक्षात् बन देवी सी प्रतीत होती है। अहा! उस युवती का कंठ कैसा सुरीला और मीठा है। ऐसा जान पड़ता है मानो कोई स्वर्गीय अप्सरा भगवद्भजन में लीन हो रही है।

पयानो की आवाज़ सुनते ही एक प्रायः चार पाँच वर्ष का बालक "भाभी, भाभी, मैं भी बाजा बजाऊँगा" कहता दौड़ता हुआ उस सुन्दरी के पास आया। उस बालक को देख युवती को जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है। वह चट पयानो छोड़ खड़ी हो गई; और उस बच्चे को गोद में ले प्यार करने लगी। "मेरे प्यारे शशि, मेरे प्यारे बच्चे, तूभी बाजा बजावेगा? अच्छा आ तुझे बाजा बजाना सिखलाऊँ" कहती हुई उस सुन्दरी ने बड़े प्रेम से शशि को अपनी गोद में बिठाया। शशि

के आनन्द की सीमा न रही। वह बड़े उत्साह से पयानो पर अपनी नन्हीँ नन्हीँ उँगलियाँ रखने लगा।

(२)

प्यारे पाठक और पाठिकाओ ! जिस युवती का वर्णन हमने पूर्व परिच्छेद में किया है उसका नाम है अतुला। अतुला स्वर्गीय राय बहादुर कैलाशचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र निर्मलचन्द्र की नव-विवाहिता स्त्री है। निर्मल बाबू की आयु यद्यपि अभी पच्चीस ही वर्ष की है परन्तु इस छोटी उम्र में भी आपने बड़ा नाम हासिल कर लिया है। योँ तो आप प्रयाग-विश्वा-विद्यालय के एम० ए०, एल० एल० बी०, और आगरे की सेन्ट-जोहन्स-कालिज मेँ अँग्रेज़ी भाषा के प्रोफेसर भी हैँ परन्तु जो प्रसिद्धि आपने प्राप्त की है वह आपको अपनी लेखन-शक्ति द्वारा प्राप्त हुई है। आपके लेख बड़े सारगर्भित तथा ओज-स्विनी भाषा मेँ लिखे होते हैँ। जिस पत्र पर आपने कृपा दृष्टि की कि बस दो ही तीन मास मे उसकी ग्राहक-संख्या दुगनी तिगुनी हो गई। अतएव इन्डियन रिव्यू, मार्डन रिव्यू, हिन्दुस्थान रिव्यू इत्यादि सामयिक-पुस्तकोँ के सम्पादक सदा आपकी लेख लिखने के लिए प्रार्थना किया करते हैँ। विलायत मेँ भी आपके लेख बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैँ। हाल ही मेँ आपने दो एक पुस्तकेँ भी लिख कर अँग्रेज़ी साहित्य पर बड़ा उप-कार किया है।

(३)

"भाभी, श्यामा कहती थी कि आज आपने यहाँ दावत है। आज क्या है। भाभी ?" बालक शशि ने पयानो पर उँगलियाँ चलाते चलाते पूँछा।

"मेरे प्यारे बच्चे, आज मेरी वर्ष गाँठ है।" अतुला ने शशि को प्यार से चूम कर उत्तर दिया।

"अच्छा तो भाभी तू आज.. ......" शशि कुछ और कहना चाहता था इतने ही मेँ तो साहिबी ठाट मेँ निर्मल बाबू आ पहुँचे। अतुला कुर्सी छोड़ खड़ी हो गई। शशि दौड़ कर निर्मल के पैरोँ से लिपट गया और बड़े चाव से कहने लगा,

"भय्या जी, भय्या जी, आज भाभी ने मुझे बाजा बजाना सिखाया।"

"ओहो ! अब तो हमारा शशि बाजा बजाना सीखता है" निर्मल बाबू ने बड़े प्रेम से कहा।

"भय्या, आज हमारे भाभी की वर्ष गाँठ है" शशिने निर्मल का हाथ खीँच कर कहा।

'हमारे' शब्द का यह अनोखा प्रयोग सुन पति पत्नी दोनोँ खिल खिला कर हँसने लगे। दोनोँ को हँसते देख बालक शशि झेंप गया और अपनी झेंप छुपते

के लिए खुद भी हँसता हुआ नीचे दौड़ गया।

"हाँ तो सब के यहाँ इन्वीटेशन 'न्यौता' भेज दिया ?" निर्मल बाबू अतुला से पूँछने लगे।

"इन्वीटेशन तो सवेरे ही भेज चुकी अब तो महमान आना चाहते हैं।" अतुला ने उत्तर दिया।

"कितने बजे आने को लिखा है ?" निर्मल ने जेब में से घड़ी निकालते हुए पूँछा।

"आठ बजे" अतुला ने कहा।

"अच्छा यह देखो तुम्हें एक अच्छी चीज़ दिखलावँ" यह कह कर निर्मल बाबू ने अपनी पाकिट में से दो सोने के कर्ण-फूल निकाले।

"ये किस के लिए हैं" अतुला ने पूँछा।

"ये मेरी प्यारी स्त्री के लिए हैं" निर्मल ने हँस कर कहा।

"बस जी तुम्हें हर वक्त मज़ाक ही सूझती है। मुझे नहीं चाहिए तुम्हारे कर्ण-फूल" अतुला ने लज्जित हो कर कहा।

निर्मल—"क्यों प्रिये अच्छे हैं न ?"

अतुला—"मेरी वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में यह भेंट ! नहीं प्राणनाथ मैं ऐसी हलकी चीज़ हरगिज़ नहीं लेने की।"

नि०—"तो फिर क्या चन्द्रहार लोगी ?"

अ०—"चन्द्रहार ! नहीं यह भी हलका ही है।"

नि०—"अच्छा तो फिर क्या लोगी ? तुम ही तो कहो।"

अ०—"अच्छा मैं जो कहूँ सो दोगे न ?"

नि०—"हाँ देंगे"

अ०—"पहिले वचन दो।"

नि०—"अच्छा वचन दे दिया।"

अ०—"मेरे प्राणनाथ ! मैं कर्ण फूल या चन्द्रहार ले कर क्या करूँगी ? उनसे तो केवल मेरी ही शोभा बढ़ेगी। सिर्फ मुझे ही लाभ होगा मैं तो आपसे यह माँगती हूँ कि आप भविष्य में जो लेख अथवा पुस्तक लिखें वह अपनी मातृ-भाषा हिन्दी में लिखें ताकि सारे भारत को लाभ पहुँचे। प्राणेश्वर अपने देश की उन्नति अपनी मातृ-भाषा की उन्नति पर निर्भर है। अतएव आइये प्रतिज्ञा कीजिए कि आप सदा मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा करेंगे। क्यों प्राणनाथ मंजूर है न ?"

नि०—"मंजूर है।"

अतुले ! धन्य तेरा मातृ-भाषा-प्रेम। तू वास्तव में अतुला है। प्यारी माताओ, प्यारी बहिनो ! तुम्हारे भी तो पति, पिता, और भाई इत्यादि हैं। वे भी तो बी० ए०, एम० ए०, हैं। क्या तुम उनसे ऐसी

प्रतिज्ञा करवा कर अपनी माता तुल्य मातृ-भाषा पर उपकार न करोगी ?

—मिश्रीलाल कृष्णलाल माथुर

सती सुकन्या*



वैवस्वत मुनि के पुत्र शर्याति राजा के अनेक रानियों में एक ही रूप गुणवती सुकन्या नामी कन्या थी। एक दिन शर्याति राजा रानियों सहित मान सरोवर में जल विहारार्थ आया वहाँ सरोवर के आस पास कदम्ब, नीम, झाई झूई इत्यादि तरह तरह के सुन्दर वृक्षों पर नाना प्रकार के पक्षी मधुर स्वर से किलोलें कर रहे थे। उस शोभा को देख अति आनन्दित होकर सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ फूलों को तोड़ती तोड़ती तथा बन लक्ष्मी की शोभा देखती देखती एक टेकड़ी के निकट आ पहुँची। उसके भीतर भृगु-ऋषि के पुत्र महात्मा च्यवन वहाँ घोर तपस्या द्वारा भगवती की आराधना कर रहे थे। बात यह थी कि च्यवन ऋषि के ऊपर मट्टी जम गयी थी और वह टेकड़ी सी दिखाई देती थी। चंचल चित्त सुकन्या वहाँ पर खेलती हुई आई और अचानक उस छोटी टेकड़ी पर जहाँ कि च्यवन आराधना करते थे दो छिद्रों में से कुछ चमकता हुआ देख अति विस्मित हुई और एक नुकीले काँटे को उन छेदों में डाला। और इस प्रकार च्यवन ऋषि की आँखें उसने फोड़ दी। इस पर ऋषि पीड़ा से अत्यन्त व्याकुल हुए। उस पापसे शर्याति राजा अपने सैन्यादिकों सहित रोगग्रस्त हुआ। यह खबर सुनते ही राजा बहुत सोच विचार कर कहने लगा कि हम लोगों में से किसी ने तपस्वी च्यवन ऋषि का अपराध अवश्य किया होगा कि जिससे हमारी यह दशा हुई है। तलाश करते करते कोई भी मुनि के अपराध का भागी न हुआ। तब शर्याति राजा और भी अधिक चिन्तित हो कहने लगे कि अब क्या करना चाहिए। लोगों को और अपने पिता को दुःखित देख सुकन्या को काँटे गाड़ने की बात एकाएक स्मरण हुई। तब उसने अपने पिता से कह सुनाया कि मैं बन में खेलती खेलती एक छोटी टेकड़ी में दो छिद्र अत्यन्त चमकीले देखें उनमें कीड़ा समझ नुकीला काँटा घुसेड़ दिया और ज्यों ही उसे बाहर निकाला त्यों ही क्या देखती हूँ कि काँटा पानी से भीगा दिखाई दिया। और वहाँ से हाय हाय का अस्पष्ट शब्द मेरे कर्ण गोचर हुआ। राजा इतना सुनते ही शीघ्र मुनि के पास गया। वहाँ की मिट्टी वगैरह अलग कर सिर नाय प्रणाम करके

---

* देवी भागवत के आधार पर यह लेख तैयार किया गया।

हुए अत्यन्त नम्रता पूर्वक प्रार्थना कर कहने लगा कि महाराज अज्ञानता के कारण मेरी अनजान पुत्री के द्वारा आप को यह असह्य वेदना हुई। कृपया बालिका का अपराध क्षमा कीजिए। यह सुन कर च्यवन बोले कि न मैं ने उसको क्रोध की दृष्टि से देखा और न श्राप दिया। मैं निरपराधी था फिर भी मुझे दुःख दिये, पाप का फल है अब मैं अन्धा पीड़ित होने से किसी अन्य व्यक्ति के बिना कैसे तप करूँ। अब मेरी सेवा करने के लिये अपनी पुत्री मुझे ब्याह दें। यह सुन राजा को चिन्ता हुई। राजा चिन्तित हो महल में आये। ज्यों ही यह खबर सुकन्या को मालूम हुई त्यों ही वह अपने पिता के पास आ प्रार्थना कर कहने लगी कि हे पिता जी! आप लेश मात्र चिन्ता न करिये। सहर्ष आप मुझे मुनि जी को दान कर दीजिये। मैं परम भक्ति से इस पवित्र पति की सेवा करूँगी। इस पर सुकन्या का ब्याह च्यवन ऋषि के साथ करके राजा अत्यन्त शोकित हुए। अब सुकन्या मुनि के साथ तपस्विनी बन पतिव्रता धर्म पालन कर स्वामी की सेवा करने लगी। वह पतिभक्ति में इतनी निमग्न हो गई कि उसे लेश मात्र भी स्मरण न रहा कि मैं राजा की लड़की हूँ। अग्नि-होत्रादि की सामग्री एकत्रित कर नित्य कर्म करती थी। अपने पति को भोजनादि करा उत्तम आसन पर आदर पूर्वक बैठाल हाथ जोड़ आज्ञा लेकर स्वयं भोजन कर गृह कार्य से निवृत हो स्वामी को शयन करा स्वयं पर दाबती थी। जब उसे तन्द्रा आती तो स्वामी के चरणों के पास लेट जाती थी। इसी तरह अपना कर्त्तव्य पालन किया करती थी।

एक समय सूर्य के दो पुत्र अश्विनी कुमार स्नानादि कर मुनि के आश्रम पर आये। उसी वक्त सुकन्या को स्नान कर आश्रम की ओर आते देख वे अत्यन्त मोहित हो पूछने लगे। कि आप किस की कन्या हैं और आप का पति कौन? लजाते हुए सुकन्या ने अपने पिता तथा पति का नाम बताया। तब अश्विनी कुमार ने कहा कि तू ने इस वृद्ध अंध पति से ब्याह कर अपना जन्म वृथा गवाँया। इस लिए अब तू हम में से किसी एक को अपना पति बना। तब सुकन्या ने कहा कि कुलवती अपने पति को छोड़ दूसरे को किस प्रकार स्वीकार करेगी। आप देव हैं आप धर्म्म वगैरह जानते हैं फिर ऐसे कटुवचन क्यों कहते हैं। इतना सुनते ही मुनि के कोप के भय से वे सुकन्या से कहने लगे कि हम तुम्हारा पातिव्रत धर्म देख कर अति प्रसन्न हैं इस लिए अब तुम्हारे पति को हम अपने समान युवा रूप धारण कराते हैं तब हम तीनों में से एक को ब्याह लेना। यह सम्पूर्ण समाचार सुकन्या ने अपने

पति से जा कहा और पति की आज्ञानुसार सूर्य पुत्रों को बुला लाई।

दोनों अश्विनीकुमार मुनि के साथ सरोवर में स्नान कर बाहर आये। आतेही वे तीनों एक स्वरूप हो गये और फिर तीनों ने कहा, "किसी एक के साथ व्याह करले।" सुकन्या सबों को एक ही रूप में देख भयभीत होगई, घबड़ा कर भगवती के ध्यान से च्यवन ऋषि को ही व्याहा। सुकन्या को पातिव्रत धर्म में इस प्रकार निपुण देख अश्विनी कुमार प्रसन्न हुए और उन्होंने उसको दो बर प्रदान किये। इस अहसान के बदले मुनि ने उनको सोमपान कराने की प्रतिज्ञा की।

कुछ दिन बीतने पर शर्याति राजा अपनी सेना सहित सुकन्या का हाल देखने वन में आया। वहाँ दिव्य युवा पुरुष को आश्रम में बैठे देख आश्चर्य हुआ और मन ही मन में अनेक तर्कनाएँ करके कहने लगा कि पिता को कन्या का विवाह योग्य ही वर के साथ करना उचित है, क्योंकि युवावस्था में यह कामदेव महा प्रबल होता है। मैंने तो इसे एक वृद्ध—अंध वरको दिया था। ख़ैर हुआ क्या? मुझे तो ऐसा भासता है कि सुकन्या ने अपने वृद्ध अंध पति को छोड़ दिया और किसी दूसरे पति के साथ है। अपने पिता की ऐसी स्थिति देख सुकन्या उसके हृदय की आन्तरिक बातें ताड़ गई और प्रणाम कर उभय कुमारों द्वारा सम्पूर्ण समाचार कहलाया। और बोली, "मैं महामतिमंद हूँ सही, पर ऐसा पाप कर्म कभी न करूँगी। यदि आपको इतने पर भी विश्वास न हो तो आप मुनि जी के पास जाकर अपनी शंका निवारण कर लीजिये। अथवा सीता जी के समान अग्नि में डाल परीक्षा कर देखिये।" राजा शंका निवारणार्थ मुनि के आश्रम में गये। वहाँ मुनि से आद्योपांत कथा श्रवण कर अपनी कन्या की पतिभक्ति देख, हार्दिक धन्यवाद देते हुए, सम्पूर्ण विघ्न बाधाएं दूर कर शर्याति मंगल को प्राप्त हुए।

जो अबला तन अर्पण करके,
टहल स्वामि की करती हैं।
पूर्णानंदित होकर जग में,
भव सागर को तरती हैं॥

—कृष्णराव रामचन्द्र कलसकार

विधवाओं की दशा

बहिनो! मुँह न फेरना, विधवाएँ भी हमारे भारत की पूजनीय स्त्री रत्नों की संतान है। ये सुख की पली हुई। अपने स्वजन बान्धवों की आँखों की पुतलियाँ, आज कर्म की अलख गति से इस दशा को प्राप्त हुई है। हमारे हृदय की अनेक घनी और सुदीर्घ आशा-लताएं इनके सहारे उग रही थीं। देश के

दुर्भाग्य से उन पर सहसा पाला तो पड़ ही गया, पर देखना उनका रहा सहा मूल उच्छेद न होने पावे।

विधवाओं की ओर से कुछ कहने में बड़ी कठिनता पड़ती है। इसका कारण यह है कि कुछ लोग तो परम्परा के नाम पर गाल बजाकर आँख मीच लेते हैं, दूसरे अपनी चंचलता में प्राचीन मर्यादा को उल्लंघन कर के सुधार के नाम बहक जाते हैं। विधवाओं का प्रश्न इसी हेतु अति गहन है। पर इस स्थान पर कोई बखेड़े की बात कहने का मेरा अभिप्राय नहीं है।

उलाहना इतना ही है कि देवियो! यदि तुम किसी की राह में फूल नहीं छींट सकतीं तो काँटे भी मत फैलाओ।

ईश्वर ने किसी को तुम्हारे हँसने के लिए दीन दुखिया नहीं बनाया है। तुम्हारे बुरा भला कहने के लिए भगवान ने किसी को दण्ड नहीं दिया है। साधारणतः देखने में आता है कि जब तुम किसी को गाली देकर कुढ़ाना चाहती हो तो उसे राँड़ कह कर पुकारती हो। क्या राँड़ शब्द से किसी घृणित कर्म को करने वाली का तात्पर्य है? क्या इस जन्म की किसी कुचाल या निन्द्य कर्म के मारे कोई स्त्री वैधव्य दशा को प्राप्त होती है? यदि कहो कि इस जन्म में नहीं तो पूर्व जन्म में, तो मैं फिर कहूँगा—क्या विधाता किसी को, उसके कर्मों का फल देकर, तुम्हारी दया, कृपा और सहृदयता की परीक्षा नहीं लेता? कौन ऐसा धर्म है जिसमें दूसरों को बिपत देख कर न पसीजना और उलटे वाक्य बाण मारना लिखा हैं। बहिनो, यदि तुम्हारे चित्त में तनिक भी कोमलता है तो विधवाओं के विषय में मुँह से ऐसे कुवाक्य न निकालो, जले पर निमक न छिड़को।

देखो! विधवाओं का तुम कितना तिरस्कार करती हो। घर बाहर चारों ओर उन्हें तुम दुरदुराती रहती हो। चार स्त्रियों के बीच उनके जाते ही मुँह मटका कर सरक जाती हो। मंगल कार्य में उन्हें उपस्थित नहीं रहने देती। हँसी खुशी की बातों से भी उन्हें अलग रखती हो। भला बताओ, यह किस अपराध के लिए! क्या विधवा होना उसके वश में था? क्या मनुष्य का जीना मरना ईश्वर के अधीन नहीं है? क्या अपने भाग्य से लोग नहीं मरते और अपने भाग्य से नहीं नहीं जीते, फिर किसी निर्दोष बालिका पर कलंक का टीका लगाने से क्या?

विधवाओं पर जो नारायण का कोप है उससे उनकी मति गति तो बिगड़ जाती ही है, उसके अतिरिक्त उनका आहार काट काट कर, कपड़े लत्ते के लिए उन्हें तरसा तरसा कर, सिर मुंडवा कर उन्हें बिलकुल पगली बना देती हो।

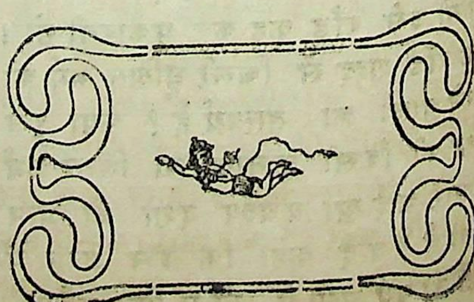
स्मरण रखो, भूखी मार कर, नंगी बूची रख कर तथा कुरूपा बनाकर तुम विधवाओं को सती साध्वी नहीं बना सकोगी यह उनके मन के विचारों पर, तथा हृदय की वासनाओं पर निर्भर है। यदि वे पढ़ी लिखी हैं, धर्म की ओर उनकी रुचि है, नियम व्रत में श्रद्धा है और परोपकार में वे रत रहती हैं तो सर्व प्रकार से वे पवित्र जीवन व्यतीत करेंगी और अपने वंश परिवार की कीर्ति अचल रखेंगी।

इस लिए, बहिनो, तुम कभी आर्य-कुल विधवाओं के साथ कुव्यवहार न करो, किसी प्रकार अनादर की दृष्टि से उन्हें न देखो।

यदि तुम सती होने की प्रथा की पक्षपाती नहीं हो—स्त्रियों का अपने मृत पति के शव के साथ अपना भी शरीर भस्म कर देना पाप और अत्याचार जान पड़ता है। यदि अंतःकरण से विधवाओं को घर में जीवित रखने की तुम्हारी सम्मति है, तो उनका जीवन असहनीय न होने दो, उनका भार अधिक न बढ़ाओ। अब मन से यह भ्रान्ति उठा दो कि विधवाओं का दर्शन या संग किसी प्रकार अशुभ या मनहूस है। ये भले घर की बहू बेटियाँ अपने स्वर्ग वासी पति की स्मृति की पूजा और ध्यान करती हुई साक्षात तपस्विनी हैं। इन पर व्यर्थ अपवाद लगाना वा इन्हें अकारण सताना बड़ा अनर्थ है। बहिनो! इन्हें किसी प्रकार कलपने न दो, नहीं इनका रोम रोम ईश्वर के घर हमारे विरुद्ध साक्षी देगा और उनका रोना हम पर और हमारी संतान पर पड़ेगा।

हमारे देश के बीच शिक्षा के प्रचार में, घर के सुधार में, सामाजिक संस्थाओं के संचालन में इन देवियों की सेवा की बड़ी आवश्यकता है, उनका स्त्रियों की दशा में परिवर्तन करने के लिए, तथा राष्ट्रीयता के भाव को पुष्ट कर देश भक्तों का हाथ बटाने के निमित्त उचित सन्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है। देखो, पूना का सेवा सदन किस महान उद्देश्य से विधवाओं की रक्षा और पालन कर रहा है, तुम्हें भी वही पाठ पढ़ना चाहिये और विश्वास रखना चाहिये कि जब तक स्त्रियों में क्या सधवा क्या विधवा जागृत नहीं होगीं जब तक उनमें देशानुराग की लहर नहीं उठती तब तक केवल पुरुषों ही को लेकर कोई जाति संसार में अपना शिर नहीं उठा सकी।

—गो० ना० सेनसिंह



माया

"मैं और मोर तोर यह माया"

(तुलसी)



किसी ने क्या अच्छा कहा है कि "परमात्मा किसीको बढ़ा कर न घटाये, यदि उसके कर्म बड़े ही विकट होँ तो मृत्यु भले ही दे दे"—किन्तु नहीँ, इस संसार मेँ नित्य ही हम इसके बिपरीत होता देखते हैँ—कहा भी है—

"मन चीतौ नहीं होत है, प्रभु चीतौ तत्काल"

उपर्युक्त कथन के अनुसार ही सेठ जमुनादास आज रुई के व्योपार मेँ तीन लक्ष का घाटा देकर बिल्कुल खुक्खल हो गये हैँ, घर-द्वार-बाग-बाड़ी मकान-दुकान आदि सब देने मेँ बिक गये, सब कुछ होते हुए आज उनके पास एक कौड़ी भी उदरपूर्त्ति के लिए नहीँ बची और उनका अपना कहने को कुछ न रहा। गिरे को सब ही चार लात मारते हैँ इसलिए इस समय उनसे पुराने डाह रखने वाले अच्छी तरह कमर कसकर खड़े हो गये और सूद समेत बदला चुकाने को मूछे मरोड़ने लगे।

जब निरन्तर का उपवास प्राण लेने लगा और कष्टोँ की कोई सीमा न रही तब निरुपाय हो जमुनादास अपनी गर्भवती सुशीला भार्या को एक दयालु पड़ोसी के यहाँ बिलखती छोड़ स्वयम् धन उपार्जन करने दूर देश चल दिये।

बिरह कातरा दुखिया सुशीला बड़े ही कष्ट के साथ निर्वाह करती रही। यथा-समय उसके एक पुत्र हुआ, दयाशील पड़ोसी ने उस समय बड़ी सहायता की और आगे भी उसके लालन पालन मेँ यथासाध्य सहायता करता रहा।

होते २ इसी प्रकार दुख सुख से निर्वाह करते ४, ६, १० वर्ष करके पूरे सोलह वर्ष बीत गये, किन्तु अभागिनी सुशीला को जमुनादास का कोई समाचार तक न मिला। पति बियोग से बेचारी की बुरी दशा थी और समय समय पर तनिक २ सी बात पर अधीर हो बालकोँ की नाँई रोने लगजाती थी। बालक शंकरदास अब बच्चा नहीँ है-वह पढ़ लिख कर भले बुरे को समझने लगा है, माता के शोक का कारण जानकर उसके जी पर भी बड़ी ठेस लगी और मनही मन उसने एक प्रतिज्ञा भी कर ली।

कुछ काल इसी प्रकार और भी बीता, किन्तु माता के दिन रात के रुदन से शंकर की व्याकुलता भी बढ़ने लगी। एक दिन सुअवसर देख शंकर ने बड़ी ही कठिनता से हठ पूर्वक माता से पिता को ढूढ़ने की अनुमति ली और एक ओर को चल दिया।

(२)

विजयगढ़ की सराय में आज बड़ा कोलाहल हो रहा है। घोड़ों की हिनहिनाहट, पालकीवालों की गलखप, नौकरों की चपड़चीं और गुमाश्तों की भाग दौड़ से एक ऊधम सा मच रहा है—कारण यह है कि यहाँ आज एक बड़े भारी साहूकार ने आकर डेरा डाला है। सराय वाला भी विशेष इनाम पाने की लालच से हाथ जोड़े पीछे पीछे हुक्म में खड़ा है।

रात्रि हुई सबने खा पीकर शयन किया, एक बड़े स्वच्छ कमरे में साहूकार महोदय का पलंग बिछा—पहरेदार सिपाही हाथों में बन्दूक तलवार ले पहरे पर आडट; यह सब कुछ हुआ किन्तु साहूकार महादय को गुल-गपाड़े के कारण नींद नहीं आई, बस तुरन्त ही सराय वाल को बुला कर हुक्म दिया "फ़ौरन सराय का गुल-गपाड़ा बन्द करो और जो न माने उसे बाहर निकाल दो।"

सराय वाले ने शीघ्र ही आज्ञा का पालन किया, किन्तु एक कोठरी से लौट कर उसने साहूकार से निवेदन किया कि "एक दीन युवक जो आज ही दूर देश से आया है उसे यकायक हैज़ा हो गया है जिसके कारण वह कष्ट से कराह रहा है। उसके ऊपर श्रीमान दया करें और उसे सराय में ही रहने की आज्ञा दें?"

इसके सुनते ही साहूकार क्रोध से अन्धा हो चिल्ला कर बोला—"ओह! ऐसी छूत की बीमारी वाले को अभी निकाल, नहीं तो याद रख तेरी सराय में आग लगवा दूँगा।"

शोक! कि लालची सरायवाले ने लालच में फस और अपने कर्त्तव्य से विमुख हो उस दीन रोगी युवक को तुरन्त ही घसीट कर सराय के बाहर कर दिया।

प्रातःकाल हुआ और इधर साहूकार साहब की सवारी आगे को चल दी, मार्ग में उस दीन हीन युवक को कष्ट में पड़ा देख बहुतेरों ने मुख मोड़ लिया और जल्दी से घोड़ा बढ़ा ले गये। एक सवार जो किसी कारण से कुछ पीछे रह गया था उस युवक के पासही होकर निकला और दया भाव से उसका हाल पूँछने लगा। युवक ने बड़े ही कष्ट के साथ कहा—"भाई मैं मर रहा हूँ—मुझे थोड़ा पानी तो पिला दो? ईश्वर तुम्हारा भला करेगा।" दयावान सिपाही निस्सहाय युवक की ऐसी शोचनीय दशा देख गद्गद हो गया और तुरन्त ही युवक को गोद में लेकर पानी पिलाया तथा दिलासा देने लगा। युवक ने कुछ स्वस्थ होकर कहा—"भाई ऐसी दशा में इस प्रेम और उपकार के लिये अनेक धन्यवाद देता हूँ। मैं मर रहा हूँ। सत्य ही मुझे इसका कुछ शोक नहीं। किन्तु हाय! 'माता के दुःख को मैं

दूर न कर सका', यही शूल मेरे हृदय में खटकता जायगा।"

सिपाही—मित्र इतने निराश न हो ईश्वर चाहेगा तो तुम शीघ्र ही स्वस्थ होकर माता का कष्ट दूर कर सकोगे।

युवक—नहीँ, मित्र! अब आशा नहीँ। हाय! पिता के बियोग में वह अधमरी हो रही है और मेरे अतिरिक्त कौन उसकी सुधि लेगा, हाय! हाय!! यही सोच कर मेरी छाती फटी पड़ती है।

सिपाही—मित्र, तुम अपना जी हलका कर डालो? इससे तुम्हारे रोग और शोक दोनोँ घटेँगे और मैँ भा यथासाध्य तुम्हारी हर तरह की सहायता को तैयार हू।

यह सुन युवक ने बड़ो ही अधीरता से अपनी सारी दुःख कथा उस सिपाही को कह सुनाई।

(३)

पाठक वृन्द, एक बार फिर बिजयगढ़ की सराय की ओर दृष्टि कीजिये? देखिये आज इसमेँ पहिले से भी अधिक दौड़ धूप मच रही है और प्रत्येक जन घबड़ाया हुआ यह और वह लारहा है। यह क्योँ? इसलिये कि वही साहूकार महोदय अचानक फिर यहीँ लौट आये हैँ। इस बार पहिले का सा धूम धड़ाका नहीँ है, किन्तु उसके स्थान पर चारोँ ओर क्रन्दन और शोक उमड़ रहा है और लिखते आश्चर्य होता है कि वह दीन दुखिया युवक इस समय चारोँ ओर वैद्य और डाकृरोँ से घिरा एक मखमली कौँच पर अचेत पड़ा है।

वाचकवृन्द, अब शायद आप समझ गये होँगे कि यह साहूकार और दीन युवक कौन हैँ? यदि नहीँ समझे तो सुनिये, यह साहूकार तो हमारे वह पूर्व परिचित सेठ जमुनादास हैँ जो इतने दिनोँ पीछे बिदेश से अपार सम्पत्ति उपार्जन कर घर लौट रहे हैँ और यह दीन युवक उनका वह पुत्र है जो कि सेठ जी के गृहत्याग के समय अपनी माता के उदर मेँ था और जो इन को ही खोजने घर से निकला था तथा बीमार होकर सराय से पिता द्वारा ही निकलवाया गया था।

उसी दयाशील सिपाही द्वारा युवक की दुःख कहानी सुन कर सेठ जमुनादास बड़ी ही बिकलता के साथ आधे ही मार्ग से बिजयगढ़ की सराय को लौट पड़े थे और उसी युवक को जिसको कि रात को सराय मेँ रखना तक पसन्द नहीँ किया था जाकर लिपट गये और फूट फूट कर रोने लगे। कल जिसे कोई पानी पिलाने वाला न था आज उसीके लिए सहस्रोँ सेवक घबड़ाये हुए वैद्य और डाकृरोँ पर फिर रहे हैँ और अब वही निठुर जमुना दास जो उसके कारण सराय मेँ आग लगवा रहे थे उसी की ऐसी दशा देख बेसुध हो रहे हैँ—यह किस लिये! केवल इस विचार से कि यह 'मेरा' पुत्र है।

हायरे, 'मैं' और 'मेरा'। तेरा नाश हो तूने हम हिन्दुओं के सारे स्वर्गीय गुणों का नाश कर दिया और यह केवल तेरा ही प्रताप है कि आज प्यारे भारत को लोग गारत कहते हैं। दुष्टे ममता तेरी जकड़ से निकलना हम ऐसे निर्बलों का काम नहीं है। प्यारे परमपिता! देखो, आज आपकी लीला भूमि भारत का इस मैं और मेरे ही ने इतना नाश कर दिया है। प्यारे जगदाधार, अब तो टेर सुनो, डूबती नैय्या को सहारा दो? इस समय आपकी चुप्पी हमें नहीं भाती? निसन्देह प्यारे हम इस योग्य नहीं रहे कि तुमसे रक्षा की भिक्षा भी माँग सकें किन्तु क्या तुम भी इस योग्य नहीं रहे कि हमारी रक्षा कर सको।

प्यारे दीन बन्धु, हमारी वर्त्तमान दशा का दिग्दर्शन तो केशव कवि ने खूब ही किया है:—

काम कहै रहो मेरे ही संग में,
क्रोध कहै कहुँ नैक न जाई।
लोभ कहै तू मूं ही लगो रह,
मोह कहै रह्यो हूं मैं समाई॥
श्रवण त्वचा दृग नासिका जिह्वा,
यह अपने सुख चाहत भाई।
केशव कैसे फ़साद मिटै,
एक किसान घनी ठकुराई॥ १॥

तुम्ही ने बनाई नाथ इन्द्रिन की चंचलता,
तुमही कहत इन्हें जीते सो बली है।
तुमही कहत काया राखे से धर्म होत
तुमही कहत काया धर्म सों पली है॥
तुमही कहत दारा सुत बिन गति नहीं,
तुमही कहत यह तो मोह की गली है।
कहा करौ महाराज नाहि कोई दूसरो है,
केशव जापै न्याव करन चली है॥ २॥

पाठकवृन्द क्षमा करना इस समय मैंने भैरवी में गौरी छेड़ दी थी, अस्तु। ऊपर आप पढ़ ही चुके हैं कि केवल एक मेरे के कारण प्रायः सारी बिघ्न बाधाएँ छू मंतर हो गई थीं। डाकूरों के लगातार परिश्रम और दवा दारु के प्रभाव से बेचारे शंकर का प्राण बच गया पिता के हर्ष का अब क्या ठिकाना था शुभ सम्मेलन के अवसर पर सुशीला ने बड़ा भारी दान पुन्य किया और उन सदाशय पड़ोसी जी तथा उस दयाशील सिपाही को दोनों पति पत्नी ने इतना धन दिया कि वे प्रसन्न हो गये। जैसे जमुनादास जी के दिन फिरे ऐसे ईश्वर सब के शुभ दिवस दिखावे॥

—लक्ष्मीनारायण गुप्त

दान

"दान" यद्यपि एक छोटा सा शब्द है किन्तु हमें इसके गूढ़ अर्थ की ओर ध्यान देना चाहिये, क्योंकि दान देने का विचार हर मनुष्य को होता है, परन्तु बहुत कम लोग ऐसे हैं जो इस



इङ्गलेण्ड में स्त्री-पुलिस

इङ्गलेण्ड मेँ कुछ देश-भक्त स्त्रियोँ ने स्त्रियोँ की पुलिस कायम की है। उसमेँ वे स्त्रियाँ भरती होती हैँ जो अपना दो तीन घंटे समय सार्वजनिक काम मेँ लगा सकती हैँ। यह सब स्वयं-सेवकोँ की तरह अवैतनिक काम करती है। स्त्री-पुलिस की एक उच्च कर्म-चारिणी अपनी पूरी वरदी पहिरने पर कैसी दीखती है यह इस चित्र से प्रगट हो जायगा। यह चित्र हमको सेण्ट जान एम्बुलेन्स सोसाइटी की कृपा से मिला है जिसके लिए हम उसके कृतज्ञ हैं।

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग।

बात का विचार करते हैं कि दान क्या वस्तु है । मेरी तुच्छ बुद्धि में किसी की आवश्यकता निवारण करने को दान कहते हैं । हमारे भारत में दान देने की रीति बहुत प्रचलित है और दान करने वाला बहुत प्रतिष्ठा पाता है। बहुधा भारत के राजाओं तथा अमीरों की यह रीति है कि वह तुलादान करके सोना चाँदी भिखारियों को देते हैं । शिवा जी महाराज ने भी ऐसा किया था और इनके पीछे जितने राजा हुए, सब ही ने शिवा जी का अनुकरण किया और इस रीति को स्थित रखा। बहुधा बड़े बड़े शहरों में सराएं, अस्तपताल, और बड़ी बड़ी उच्च अट्टालिकाएँ भी ऐसे ही धनाढ्यों के दान और उदारता का चिन्ह स्वरूप हैं, जैसे लखनऊ में आसफ़ुद्दौला का इमामबाड़ा है, जो इस कीर्तिवान के उदार और गुप्त दान का एक उत्तम चिन्ह है। किन्तु इस बात का भी विचार रखना चाहिये कि दान देना केवल अमीरों ही के लिए नहीं है वरन् जैसा महाभारत में लिखा है कि उस मूल्यवान दान से जो सकाम किया जाता है अर्थात् हमें अगले जन्म में इसका फल मिले—इस आशा से जो किया जाता है, उससे परमेश्वर उतना प्रसन्न नहीं होता है, जितना उस दान से होता है, जो निष्काम किया जाता है अर्थात् परमेश्वर ही के निमित्त बिना किसी कामना के श्रद्धा पूर्वक किया जाता है। और यदि निर्धन आदमी कैसा भी तुच्छ दान करे, तो वह स्वर्ग में भी प्रतिष्ठा पूर्वक रक्खा जाता है। आज कल बहुत लोग बड़े बड़े दान इस लिए करते हैं कि हमारी कीर्ति संसार भर में फैल जावे अथवा सरकार के कृपापात्र बन जावें, किन्तु असल दान वह है जो गुप्त रीति से बिना किसी से कहे सुने किया जाता है, जैसा कि हमारे पुरुषाओं का कहना है कि "बाएं हाथ को मालूम न हो कि दाहिना हाथ क्या करता है।" अच्छे बुरे दान में भेद करना भी एक आवश्यक बात है। एक बहुत बड़ा गुर दान देने का यह है कि वह निर्धन और दुःखी मनुष्यों की विपत्ति और कष्ट को दूर करे। क्योंकि बिना विचारे अपात्र (संडे फ़क़ीर) को दान देकर उनको मुफ़्तख़ोरी में उत्साह दिलाने से कोई लाभ नहीं वरन् उल्टी हानि ही है। क्योंकि इस से संसार की विपत्ति और द्विगुण हो जाती है। यदि कोई हृष्ट पुष्ट निकम्मा मनुष्य हम से भिक्षा माँगे और हम उसे एक आना दे देवें और वह दो पैसे में रोटी खावे और दो पैसे की अफ़ीम खा कर एक वृक्ष के नीचे नशे में मग्न हो जावे और नशा छूटने पर वह विचारे कि क्यों किसी काम करने का कष्ट उठाऊँ । लोग इतने दयालु हैं कि उसकी इस दशा को देख कर दया कर उसे पेट भर खाने को पैसे दे ही देंगे। यह सोच कर वह कोई

काम मिलने का उद्योग नहीँ करता, उद्योग कैसा ? वह उस मार्ग से होकर भी नहीँ जाता, जहाँ काम करना पड़े। क्योँकि वहाँ एक आना इतनी सुगमता से नहीँ प्राप्त होगा। अब विचारिये कि हम ने उस व्यक्ति के साथ क्या भलाई की। हमारे द्वार पर एक स्त्री आ रो रो हम से कहती है कि मैँ विधवा हूँ, खाने कुछ नहीँ है, गोद का बालक बिना दूध के बिलख रहा है, घर मैँ दो छोटी छोटी लड़कियाँ क्षुधा से पीड़ित हो रही हैँ, यह दशा देख हमारा हृदय करुणा से भर उठता है और एक दुअन्नी उस स्त्री को दे देते हैँ। अब यदि वह कोई झूठा वा कुलटा स्त्री नहीँ है, तो वह उस दुअन्नी मैँ दोनाँ बेर क्षुधा निवारण का प्रबन्ध कर लेगी और दूसर दिवस फिर दुअन्नी का खोज मैँ निकलेगी। उस स्त्री के हृदय मैँ काम करने का विचार उत्पन्न नहीँ होता और उसकी दशा सदा समान गिरी हुई रहती है। फिर भला हमारी दुअन्नी मैँ क्या लाभ हुआ। इसी तरह से बहुधा लोग बिना विचारे जो कोई उन से कुछ इच्छा प्रगट करता है, उसे पूरी कर देते हैँ। यदि बुद्धिमान मनुष्य इस प्रकार के दान देने को त्याग दैँ, तो बहुत से ऐसे निकम्मे आदमी जो दरिद्रता और अपमान सह कर अपने जीवन के दिन व्यतीत करते हैँ और आलस्यवश कोई कार्य करने की चेष्टा भी नहीँ करते, वह अच्छे और देश-हितैषी कार्योँ की ओर आकर्षित होँ और देश अथवा समाज को लाभ पहुँचाने मैँ सहायता दे सकैँ। आजकल की दशा मैँ तो वह इस निर्लज्ज, निरुद्देश्य जीवन को ही अच्छा समझते हैँ और कोई कोई इन मैँ से ऐसे हैँ जो भिक्षा माँगते और धूर्तता से उससे बहुत धन इकट्ठा कर लेते हैँ, जितना कि एक विचारा गृहस्थ जन्म भर उद्योग करके जमा कर सके। ऐसी दशा मैँ कोई आश्चर्य्य की बात नहीँ यदि हम इन झूठे दुष्ट फ़क़ीरोँ को हर शहर मैँ विशेषतः तीर्थ स्थानोँ मैँ बिचारे पथिकोँ को सताते तथा पीछा कर के उनके नाक मैँ दम करते हुए देखैँ। इस लिए हमैँ दान देते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि वे समझे बूझे भण्ड फ़क़ीरोँ को रुपया देकर उनको इस कार्य मैँ उत्साह न दिलाएँ। ऐसे सज्जनोँ को जो पुण्यकार्य मैँ अपना रुपया लगाना चाहते हैँ, उचित है कि प्रथम वे स्वयम् जाँच लैँ, कि कौन से ग़रीब असल मैँ सहायता के पात्र हैँ और कौन से नहीँ।

निदान यह बात बहुत ज़रूरी है कि दान देते समय देश, काल और पात्र का पूरा ध्यान रक्खा जावे। भगवान श्री कृष्ण जी ने भी तीन तरह के दान बतलाये हैँ और सब से उत्तम दान सात्विक दान को बताया है जिसका लक्षण उन्होँने कहा है कि—

"देशे काले च पात्रे च यद्दानं सात्विकं स्मृतम्"

—कृष्णमोहनी नेहरू

आज कल की सास पतोहू



भारत वर्ष में स्त्री शिक्षा लुप्त होते ही भाँति भाँति की बुराइयाँ हिन्दू जाति में प्रवेश कर गई हैं। एक दो चार नहीं, बुराइयाँ अनेक हैं। उनके अनगिनित होने के कारण यहाँ सिवाय एक के अधिक के लिए स्थान देना उचित नहीं। स्त्री शिक्षा जिस जिस देश में प्रचलित है वहाँ का क्या कहना है। वही देश आज पूजनीय हो रहे हैं; वही आज सभ्य हैं; उन्हींकी गिन्ती मनुष्यों में की जा सकती है; वही आज वीर है, वही आज शिल्पकलाओं। में पंडित हैं। उन्हीं का वैभव भण्डार कुबेर के भाँति धन से पूरित हैं; वही धर्मिक और वही जगत गुरू हैं। उनकी संतान को हम लोगों की तरह आज कादर की टाइटिल नहीं है। उनकी माताएँ अपने बच्चों को पालने से प्रेतों का पाठ नहीं पढ़ातीं उनकी संतान झूठ चोरी और कुकर्म ही से डरायी जाती हैं और उसी को वे जन्म भर भारत के हउआ, राक्षस, बैताल, चुड़ैल जानते हैं।

हमारे दादों नकड़ दादों को कुछ मयलखोलिया (पागलपन की) की बीमारी नहीं हो गई थी जिन्होंने विद्या की मालिक स्त्री ही को बताया था। इसमें कोई शक नहीं कि आज भारत की सारी दुर्दशा केवल भारत माताओं के मूर्खत्व के ही कारण हैं। बुराइयाँ तो जैसा मैं ऊपर लिख चुका हूँ बहुत ही ज़्यादः हैं पर यहाँ मैं एक ही बताता हूँ और वह सास पतोहू के प्रचलित सम्बन्ध पर है। प्रत्येक भारतवासी का यह पृथम धर्म है कि इसकी सारी बुराइयों को रोके। हमारी अपील अपनी भारत माताओं। व बहिनों ही से है कि वे ख़ुद इसको रोकें क्योंकि ये उन्हीं लोगों से अधिक सम्बन्ध रखती हैं। आज समस्त संसार की सभ्य जातियों में सास को पतोहू माता करके जानतीं है और सास भी उसको बेटी से कम नहीं मानतीं। नदद भौजाई का नाता बहिन का होता है। इसी कारण उनको वहाँ माता और सास दोनों को चिट्ठी पत्री में (माता Mother, ही लिखा जाता है। बेटी और पतोहू को इसी तरह (बेटी Daughter, करके लिखा जाता है। उनका आपस का प्रेम देख कर औरों को बड़ा आश्चर्य होता है। परन्तु खेद का विषय है कि हमारे भारत में आज सास को पतोहू चुड़ैल समझती है और पतोहू को सास एक बलाय समझती है। हमारे यहाँ की सास यह समझती हैं कि पतोहू उनके घर की दासी है जिसको उनका लड़का केवल दासत्व के लिए जहेज़ में लाया है और लड़के को दूध पिलाने के कारण लड़के की माता का सर्व प्रकार पतोहू पर अधिकार है। चाहे वह पतोहू को मारे काटे चाहे उसके शरीर को आग पर

धर कर तड़पने तक की सज़ा दे उसको सब अधिकार है इसमैं किसी दूसरे मनुष्य का इतना भी साझा नहीँ है कि वह उस को बुरा भला कहे। इसका कारण केवल स्त्री शिक्षा का न देना ही है। अपनी मूर्खता मैं लड़के का विवाह बाल अवस्था ही मैं कर देती हैं। कारण यह कि वह चाहती है कि जन्म भर पशू बना कर रक्खें। यदि पतोहू बड़ी होगी तो उसके ऊपर उनका अधिकार जल्दी न जमैगा अगर उसको यह दस बुरा भला कहैगी तो दो वह भी कहैगी। अब यहाँ एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि सास क्यों चाहती है कि पतोहू कष्ट मैं रहे? उत्तर मैं इतना ही कहना काफी होगा कि नीच जातियोँ की कुरीतियाँ बहुत जल्द प्रचलित हो जाती हैं। यदि यह बात न होती तो हिन्दू जाति क्यों कलुआ, वोर-मुहमदा, शहदी मर्द, ताज़िया मज़ार को पूजतीं? क्या इन्होँ ने अपने यहाँ के ३३ करोड़ देवताओँ मैं से किसी को उनसे अच्छा नहीं समझा जो गा-भट्टी यमन-देवता इन्हें अधिक प्रिय लगे।

जहेज़ के कारण लड़की की शादी ज़रा देर मैं होती है इस कारण लड़के के बालक होते हुए भी पतोहू अधिकतर बड़ी आती है। अब जब पतोहू आई तो सास चाहती है कि उसको दासी करके रक्खें। सब पतोहू दासत्व नहीँ चाहती हैं सास नहीँ चाहती कि नये नये कपड़े व गहने बराबर दिये जाँय। घर के ऊपर अधिकार ही के कारण उसे (पतोहू को) कष्ट देने को अनेक अवसर मिलते हैं। कभी उसको बेशऊर बताती है, कभी उसके बनाये हुए भोजन को कच्चा, जला, बे नमक, अधिक नमक का बताती है और हज़ार हज़ार फटकारों की वर्षा करती है। उसे हरदम किसी अन्धेरे कमरे मैं रहने को कहेगी। गर्मी की रात्री मैं भी उसे वही अन्धेरी कोठरी जो कारागार के सदृश है नसीब होगी। यदि वह अपने पति की ओर भी नज़र उठा कर देखेगी तो उस पर तरह तरह के आक्षेप होंगे। कभी उसके मुँह ही पर उसके बाप, भाई, वा चचा का नाम लेकर फ़रमाइशी गालियाँ देकर कहेगी कि उसने क्या सिखाया था, बेहतर होता कि लड़की को अपने ही घर रखते। जब लड़का घर पर आवेगा तो तरह तरह की बातों से उसका कान भरेगी और सौ पड़ोसी बालकों का दृष्टान्त देकर उसे जोश दिलावेगी कि वह मार। लड़का तो लड़का ही है उसका क्या दोष। माँ की बातों को सत्य मान कर विना सोचे विचारे अपनी अर्धांगिनी को जो इसकी जन्म भर की साथी है, दुख सुख की बाँटने वाली है, मारता पीटता है गालियाँ देता है। ख्याल करने की बात है यदि वह बालक मर जावे तो माता पिता दोनों दो एक दिन रोकर आँस बहा कर भूल जाते हैं। परन्तु जन्म भर इसी बेचारी पतोहू को दुखिया बन कर बन बन फिरना

होगा। इसका सारा शृंगार पति ही के जीवन में है पर कुछ न सोच कर वह अज्ञान बालपति अपनी बे कसूर पत्नी के अंग को भंग और निकम्मा कर देता है। वह दुखिया कहीं जाकर मुँह लपेट कर किसी अँधेरी कोठरी में कुछ तो चोट और कुछ अभाग्य के कारण सर पीट पीट कर रात काटती है। वह निर्दई सास खुशी में अपने आज्ञा पालक बालक की सराहना करती है। हाय! कोई घर में ऐसा भी नहीं जो उसकी चोट पर हलदी भी रक्खे; कोई ऐसा भी नहीं जो साँप आदि के बचाव के हेतु उसके कमरे में जहाँ वह पड़ी है एक दीपक तो जला दे; हाय भारत! तेरा नाश क्यों नहीं हो जाता? जल! तू पृथ्वी का तीन गुना होते हुए भी इस भारत को जहाँ इतना अत्याचार होता है क्यों नहीं डुबा देता कि सारा झंझट सदा के लिए बन्द हो जाय?"

सास के बुरा कहने से घर भर बुरा कहते हैं यहाँ तक कि मुहल्ले व ग्राम निवासी भी पतोहू का निरादर करने लगते हैं। वह अपने मैके (पिता के घर) चली जाती है, वहाँ भी लोग उसे इस बात का ताना देते हैं कि पति ने छोड़ दिया, अन्त में फिर ससुराल भेजी जाती है। वह ससुराल जाने के पहिले ही विष खाकर प्राण दे देती है। या किसी हिन्दू वा मुसलमान के साथ निकल जाती है। अगर यह बहू ने न किया, तो वह भी कुत्तों से सताई हुई बिल्ली की भाँति सास पर चोट करती है और सास जब उसे बुरा भला कहती है तो वह भी अपने पति के पित्रों को गाली द्वारा तारती है। इस प्रकार घर में सदा महाभारत ठना रहता है। सास यदि डंडा लेकर दौड़ती है तो वह भी चूल्हे के अंगारे की वर्षा करती है। नतीजा और भी बुरा होता है।

पति तो अभी बालक ही है वह क्या कमा सकता है। सास खाना कपड़ा से हर्ताल कर देतीं हैं। कभी बहू को किसी काठरी में डाल ताला लगा दिया। या तो बहू बेचारी घुल घुल कर मर जाती है, या तो सदा के लिए सास ससुर माँ बाप के भी मुख में कालिमा लगा, चल देती है। कुछ दिन तक तो वह व्यभिचारियों के घर छिपी रहती है, और बाद को मुसलमान रंडियों का साथ कर लेती है, और बाजार में कमाती है। बहुत से लोग बहू ही को दोषी ठहराते हैं; पर मैं उनसे सहमत नहीं। इसमें सासु का दोष है; पर उस बिचारी को भी क्यों दोषी ठहराऊँ? इन सब कुरीतियों का कारण है "शिक्षा का अभाव"। प्रीति का प्रभाव प्रबल होता है। यदि सास बहू से प्रीति करे तो यह कदापि सम्भव नहीं कि बहू भी सास को माता करके न माने। संसार में सभी प्रीति के दास हैं। मनुष्य क्या ईश्वर भी अपने भक्तों

का दास है। श्रीकृष्ण भगवान स्वयम् कहते हैं कि, "मैं तो तुलसी के पत्तों पर बिकता फिरता हूँ पर मुझे प्रेम से कोई मोल नहीं लेना।" बहू को उमदा गहने कपड़े न दो वह उनकी कुछ परवाह न करेगी, उसको आधा ही पेट खाने को दो परन्तु उससे प्रेम सहित मीठे वचन बोलो। वह दासी से बढ़ कर हो जावेगी। तुलसीदासजी कहते हैं:—

तुलसी मीठे वचन ते, हित उपजत चहुं ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, तजि दे वचन कठोर॥

कवि रहीम जी भी कहते हैं:—

अमी पियावत मान बिन, रहिमन मोहिं न सोहाय।
प्रेम सहित मरिबो भलो, जो बिष देहिं बोलाय॥

यह तो संसार की रीति है उसपर हमारी माताओं का यह कथन है कि, "यदि दूध रहेगा तो दूध की हांडी बहुत मिलैंगी। आज अगर एक फूट गई तो कल दूसरी आवेगी।" मतलब उसका यह है कि अगर लड़का ज़िन्दा रहेगा तो बहुओं की क्या कमी है। भला इस मूर्खता का क्या ठिकाना है। इसमें लिखित बातें शोचनीय हैं।

(१) हांडी को जान बूझ कर फोड़ना कौन सी बुद्धिमानी है। अगर किसी की हांडी उसके यत्न से कभी भी न फूटे तो कितना अच्छा हो।

(२) लड़के और लड़की दोनों सब ही के घर होते हैं। अगर ऐसी ही जगत की रीति है, तो क्या बहू की ननद को यही कष्ट नहीं उठाना होगा। किसी ने सच कहा है:—

यह कलयुग नहीं करयुग है, इस हाथ दे उस हाथ ले। किसी बहू ही ने अति दुःख पाकर अपनी सास से कहा था:—

मत कर सास बुराई, नहिं धी के आगे आई।

(३) पिता माता का धर्म है कि वे लड़के और बहू में प्रेम उत्पन्न करने का प्रयत्न करें। परस्पर प्रेम न होने से दोनों व्यभिचारी हो जावेंगे – पति या तो वेश्यागामी होगा, या तो सन्यासी हो जावेगा। धन धान्य सब को त्याग देगा और केवल पछताना ही रह जावेगा।" परन्तु स्मरण रखना कि "बूँद का चूका घड़े से नहीं भरता" तब पछिताये होत क्या जब चिड़िया चुग गईं खेत।

(४) सभी अपनी सन्तान को बुरों की संगत से बचाते हैं। कारण यह कि कोई बुराई न देख पावें, नहीं तो वह बुराई हृदय में बैठ जाने से सन्तान बुरी हो जाती है। कारण यह कि बच्चों का हृदय मोम की भाँति अत्यन्त कोमल होता है। अगर किसी के घर में सास बहुओं में महाभारत नित्य नित्य होगा तो घर के बालक भी ऐसे ही महाभारत के योग्य वीर बनेंगे।

(५) घर के विद्रोह से घर बिगड़ जाता है। फूट, से परस्पर प्रेम का

नाश हो जाता है। कोई किसी का विश्वास नहीं करता—बहू सास में कब ईमान रह सकता है। नतीजा यह होगा कि कोई दूसरे की वस्तु दी हुई विष के भय से न खायगी। किसी ने फूट के लिए सच कहा है—

खेत में उपजै सब कोई खाय।
घर में उपजै तो घर बह जाय॥

(६) जिस घर में सदा लड़ाई होती है, वह थोड़े ही दिनों में दुख का धाम हो जाता है। यदि कोई बीमार पड़ता है तो दूसरा कोई किनारे नहीं लगता—चूल्हे अलग अलग जलने लगते हैं, लड़ाई अधिक होने पर थाना, अदालत की नौबत आ जाती है—जीत हार दोनों में घर ही मिटता है। किसी ने सच कहा है:—

पानी सारे घर पर कहीं बरसे,
मगर ओलती ही से चूता है।

(७) जहाँ झगड़ा होता है वहाँ लक्ष्मी का वास नहीं रहता और वहाँ दरिद्रता डेरा डाल देती है। गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी लिखा है।

जहां सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहां कुमति तहँ विपति निधाना॥

भारत माताओं से यह मेरी प्रार्थना है कि वे अपनी बालिकाओं को भी उसी प्रकार पढ़ावें जिस प्रकार पुत्रों को शिक्षा देती हैं। जिस में यह घरेलू झगड़े बन्द हो जावें। जन्म ही से मनुष्य के हृदय में मूर्खता का अन्धकार होता है, यह अन्धकार केवल विद्या रूपी दीपिका से नाश होता है। विद्या न होने से मूर्ख भी अपनी अज्ञानता के कारण बहुत से हानि-कारी कार्य्यों को कर बैठता है। इस कारण विद्या पढ़ना मनुष्य का मुख्य कर-तव्य है। जो कुछ लिखा गया है बिलकुल सत्य सत्य लिख गया है। यह सब सदा हुआ करता है, पर अब भी ध्यान देकर कोई बचाव का पूरा उपाय नहीं करता। उपाय तो केवल यह है कि सास, पतोहू को अपनी ही बेटी के समान माने और पतोहू भी सास को निज माता से कम न समझे। पर यह तो केवल स्त्री शिक्षा ही से हो सकता है।

—पी० यन० द्विवेदी

पनडुब्बी नाव



भी तक लोग यह समझते थे कि जहाज़ केवल पानी के ऊपर ही चलकर काम कर सकते हैं किंतु बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने ऐसे जहाज़ भी बनाये हैं जो पानी में डुबकी लगाकर एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते हैं और चाहें तो पानी के ऊपर भी तैर सकते हैं। विद्या और बुद्धि के सामने कुछ भी असम्भव नहीं है। जब बुद्धि के द्वारा मनुष्य

हवाई जहाज़ बनाकर हवा में चिड़ियों की भाँति वरन उनसे भी कहीं स्वतन्त्र हो कर उड़ सकता है, तो क्या पानी में जहाज़ का चलाना असम्भव है? यदि हम यह कहें कि जिस तरह हवाई जहाज़ हवा में गोता लगाते हुए स्वतन्त्रता पूर्वक इधर उधर विचरण कर सकता है उसी तरह जलीय जहाज़ जल में गोता लगाकर अपना काम कर सकता है तो इस में कोई सन्देह न उपस्थित होना चाहिए क्योंकि दोनों बातें एक ही प्रकार की हैं। जल में गोता लगानेवाली चीज़ के ऊपर नीचे इधर उधर सभी ओर जल है और हवा में उड़ने वाले पदार्थों के भी ऊपर नीचे इधर उधर सभी ओर हवा है, इसलिए हवा में उड़ने वाली चीज़ को यदि यह कहें कि वह हवा में गोता लगा रही है तो अनुचित नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि हवा में गोता लगाने वाले जहाज़ को यदि वे बहुत उचाई पर न हों तो सभी देख सकते हैं किंतु पानी में गोता लगाने वाली नाव को कोई भी नहीं देख सकता। इस लिए ऐसी नावें समुद्रीय-युद्ध में पानी के भीतर छिप कर बहुत कुछ काम कर सकती हैं। आज कल युरोपीय महाभारत में ऐसे जहाज़ दोनों ओर से बहुत कुछ काम कर चुके हैं और कर रहे हैं। इस लिए यह वर्णन करना कि वह कैसे काम करते हैं और पानी के भीतर उन पर रहने वाले मनुष्य कैसे साँस लेते होंगे अनुचित न होगा।

पहले पहल स्टाकहाम का निवासी नारडेन फ़ेल्ट ने एक ऐसा पन-डुब्बा जहाज़ बनाया था जो ४६ फीट लम्बा था और स्टील (इस्पात लोहा) का बना हुआ था। उसे चलाने के लिए पानी की भाप काम में लायी जाती थी; इसमें चार मल्लाह काम करते थे जो पानी के भीतर ६ घंटे तक दबायी हुई हवा के द्वारा साँस ले सकते थे। यह मल्लाहों की इच्छानुसार पानी के भीतर बाहर आ जा सकता था और इस पर से बड़े बड़े गोले शत्रुओं के जहाज़ों को नाश करने के लिए काम में लाये जाते थे।

इसके पश्चात बहुत से और अच्छे जहाज़ बनाये गये। बनावट की भिन्नता के कारण यह दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के पनडुब्बे ऐसे होते हैं जैसा कोई खोखला गोल बीचो बीच काट देने से दिखाई पड़ता है और इसी वृत्ताकार खोखले में बैलेस्ट टेन्क वा भारकुंड होता है जिस में पम्प के द्वारा पानी भर देने से बोझल हो, जहाज़ पानी में डूब जाता है और पानी को निकाल देने पर उतरा आता है। दूसरे प्रकार के पनडुब्बे की बनावट साधारण जहाज़ (नाव) से मिलती जुलती है। यह दोहरे इस्पात (स्टील) का बना होता है और इन्हीं दोनों पत्तरों वा चादरों के बीच में भारकुण्ड होता है। ऐसे पनडुब्बे चलने में बहुत तेज़ होते हैं, इसलिए यही अधिकता से बनाये जाते हैं।

पनडुब्बी के भीतर क्या होता है ?

उसकी भीतरी बनावट दिये हुए चित्र पर विचार करने से प्रकट हो जायगी। यह चित्र ऐसे पन-डुब्बे का है जो पहले बनाया जाता था। पिछले पनडुब्बों की बनावट मेँ बहुत सी बातेँ बढ़ायी गयी हैँ किन्तु वह सब गुप्त रक्खी जाती हैँ। यह पानी पर तैरते हुए पनडुब्बे का चित्र है। इससे यह प्रकट होता है कि जहाज़ का थोड़ा ही सा ऊपरी अंश पानी के बाहर देख पड़ता है। जहाज़ के अगले भाग मेँ *टारपीडो होता है और इसी के नीचे तेलकुंड (Gasolene tank) होता है जिसकी गैस के द्वारा जहाज़ को पानी पर चलाने की शक्ति पहुँचायी जाती है। इनके पीछे दबायी हुई हवा से भरे हुए बर्त्तन होते हैँ जो मल्लाहोँ को जब जहाज़ पानी के भीतर गोता लगाये रहता है, साँस लेने के लिए हवा पहुँचाते हैँ।

इन हवा से भरे हुए बर्त्तनोँ के नीचे दो और टारपीडो रक्खे रहते हैँ और जब अगला टारपीडो किसी शत्रु के जहाज़ के ऊपर छोड़ दिया जाता है तब इनमेँ से एक उसकी जगहपर लाया जाता है, इनके नीचे बिजली की बैटरी (घटमाला) होती है जिसके द्वारा जहाज़ को पानी के भीतर ही भीतर चलाने की शक्ति मिलती है, क्योँकि तेलकुंड से पानी के भीतर काम लेने से जो धुआँ पैदा होता है वह सुगमता से बाहर नहीँ निकल सकता और उससे मल्लाहोँ को बड़ी तकलीफ़ होती है। इसका अनुभव चलती हुई मोटरगाड़ी या हवागाड़ी के पीछे चलने से कोई भी कर सकता है क्योँकि मोटरगाड़ी मेँ भी तेलकुंड से काम लिया जाता है। इनके साथ मुख्य भारकुंड और सहायक भारकुंड होते हैँ जिनका काम पाठकोँ को पहले बतलाया जा चुका है। जहाज़ के पिछले भाग मेँ उसे चलानेवाले दो अंजन लगे रहते हैं। एक गैसोलीन का अर्थात् तेल का अंजन होता है, दूसरा बिजली का। तेल का अंजन जहाज़ को पानी के ऊपर चलाता है और बिजलीवाले अंजन मेँ विद्युत् शक्ति भर कर इकट्ठी करता है जिससे जहाज़ पानी के भीतर चलाया जाता है।

झरोखा और दिग्दर्शक

(Conning tower and Periscope)

---

* टारपीडो ५, ६, गज लम्बा और डेढ़ फुट के लगभग चौड़ा साहब लोगों के तम्बाकू पीने के सिगार की शकल का होता है। इसमें भक से उड़ा देनेवाली ऐसी चीज़ होती है जो निशाना पर लगते ही जल उठती है और कई करोड़ के जहाज़ को जिसमें हज़ारों आदमी काम करते रहते हैं दम भर में भवसागर पार उतार देती है। इसकी बनावट और कारीगरी का पूरा परिचय आगे दिया जायगा।

जहाज़ के बाहर पिछले भाग में ढकेलने के लिए एक पेंच होता है जिसकी रक्षा के लिए और बहुत से पेंच लगे रहते हैं और इनके पीछे खड़ी पतवारें होती हैं जिनसे जहाज़ को दाहिने बाएँ घुमा सकते हैं। जहाज़ के ऊपर बीचों बीच पथ-प्रदर्शक वा झरोखा होता है जहाँ कप्तान खड़ा रहता है और कप्तान के सामने ही दिग्दर्शक (Periscope) होता है। यह एक लम्बी नली होती है जिसमें तिपहले शीशे ऐसे लगे होते हैं कि कप्तान को आसपास के सभी दृश्य दीख पड़ते हैं। जब भारकुंड पानी से भर दिये जाते हैं, झरोखा और दिग्दर्शक के सिवाय सब जहाज़ पानी के भीतर चला जाता है और जब भारकुंड में से पानी निकाल दिया जाता है तो पूरा झरोखा और जहाज़ का कुछ ऊपरी हिस्सा भी दीख पड़ता है। भारकुंड को भर देने पर भी जहाज़ इतना भारी नहीं हो जाता कि अपने आप डूब जाय, बल्कि डुबोने के लिए वह नीचे की ओर झुकाव के साथ ढकेला जाता है। मछली के गलफड़े की तरह कुछ पेंच ऐसे होते हैं जिनके द्वारा जहाज़ को जिस ओर ले जाना होता है उस ओर कर देते हैं और जितनी गहराई तक ले जाना होता है, ढकेल देते हैं। यह जहाज़ इतने पुष्ट चद्दर के बने होते हैं कि २०० फ़ीट गहराई में भी पानी के दबाव को सह सकते हैं, परन्तु साधारणतः ५० फ़ीट से अधिक का गोता नहीं लगाते।

ऐसे पनडुब्बों में काम करना बड़ा भयानक है और जो लोग इनको चलाने के लिए नौकर रक्खे जाते हैं वह अपने प्राणों का सदैव हथेली पर रक्खे रहते हैं। इसीलिए इनमें काम करने वाले अफ़सरों को ४॥) रोज़ और मल्लाहों को २) रोज़ साधारण वेतन से अधिक देना पड़ता है। यह खर्च उसी समय सुफल होता है जब इनका टारपीडो जिसकी लागत ६ हज़ार रुपये तक होती है तीन करोड़ की लागत वाले युद्ध के जहाज़ ड्रेडनाट को जिसमें ६०० मल्लाह तक काम करते रहते हैं क्षण भर में समुद्र के तले पहुँचा देता है। ड्रेडनाट के पास एक धीमी भड़ भड़ाहट और थोड़े से पानी के उछाल के सिवाय और कुछ नहीं मालूम पड़ता। बात यह है कि जब पनडुब्बा पानी के भीतर रहता है तो पथ-प्रदर्शक के सिवा और कुछ बाहर नहीं रहता और यह भी आधमील से अधिक दूर वाले जहाज़ों को दीख नहीं पड़ता इसलिए शत्रुओं के जहाज़ों को सदैव भय लगा रहता है कि न मालूम किस समय ४० मील प्रति घंटा की चाल से चलता हुआ टारपीडो पानी के भीतर ही भीतर आकर तहस-नहस कर डाले। ऐसे पनडुब्बों के रहते हुए देश का बड़ा बचाव हो सकता है

क्योंकि कोई युद्ध का जहाज़ जान बूझ कर इनके चंगुल में नहीं फसना चाहता।

(विज्ञान)

सुकुमारी

(गताङ्क से आगे)

ग्यारहवां परिच्छेद

स्वास्थ्य-परिवर्तन

भगवान भास्कर अब ठीक मस्तक पर चमक रहे हैं। बड़ी प्रचंड धूप है। इस समय गली और सड़कों पर कोई भी नहीं देख पड़ता। इस समय मजदूर तक आराम करते हैं। मोहन के यहाँ भी इस समय शान्ति है। मानिनी सो रही है और मोहन अपने उसी पुराने काम में लगे हैं। बिचारी छोटी सी मोहिनी अपनी बीमार भौजाई के पास बैठी उस का सिर दबा रही है।

सुकुमारी बेहोश है। दुनिया में इस समय क्या होता है, उसे बिलकुल खबर नहीं। एक बार होश हुआ, आँख खुलते ही मुँह से निकल पड़ा, "अभी नहीं आये ?"

मोहिनी—भाभी! किसे पूछती हो?

सु०—किसी को नहीं। यह कह कर उसने आँख बन्द करलीं। वह मन ही मन भगवान से प्रार्थना करने लगी, "हे भगवान! यदि मेरा स्वामी पर सच्चा स्नेह है, यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ, यदि भूल कर भी मैं ने किसी का दिल नहीं दुखाया है, तो, हे कमल-नयन! इस अंतिम शयन के समय मुझे उन्हें एक नज़र दिखा दो। परमेश्वर, मेरी इस विनय को मान लो।" यह प्रार्थना कर वह कुछ सो सी गयी। फिर एक दम चौंक उठी और बोली, "मेरे सिर में बड़ा दर्द है।" आँख खुल गयी, देखती क्या है, कि डाक्टर को साथ लिए हुए, रूमाल से माथे का पसीना पोंछते हुए अविनाश उस की ओर आ रहे हैं। सुकुमारी ने उठना चाहा किन्तु निर्बलता ने आज्ञा न दी। धीरे धीरे उसने घूँघुट काढ़ लिया। अविनाश के कहने से डाक्टर ने सुकुमारी की नाड़ी देखी। कुछ देर बाद वे बोले, "अविनाश! घबड़ाने का कोई काम नहीं है। यह शीशी लो, और इस दवा को दिन में तीन बार पिलाओ। हालत संतोष-जनक है। यदि इस के पहिले हमें खबर मिलती, तो यह बीमारी अब तक न रहती।" अविनाश बोले, "डाक्टर साहेब! खबर कौन देता। मैं तो इलाहाबाद में था, आज आया हूँ। वहाँ से आ कर मैं पहिले आप ही के पास गया था।"

डाक्टर—क्यों, तुम्हारे ताऊ थे न?

अविनाश—थे तो, लेकिन वह क्यों नहीं गये, यह मुझे मालूम नहीं है। यह कह कर वे डाक्टर को फीस देने लगे।

डाक्टर ने कहा—"अविनाश ! मैं तुमसे फीस न लूँगा, यदि फीस लेना देना होता तो इस समय मैं कदापि न आता। तुम जानते नहीं हो, कि हम से और मदन से कितनी मित्रता थी।" यह कह कर डाक्टर चले गये।

सुकुमारी को नियमित रूप से दवा दी जाने लगी। मोहनी तथा अविनाश के सरतोड़ परिश्रम करने से कुछ दिनों बाद सुकुमारी अच्छी होगयी।



बारहवां परिच्छेद

निराशा

सुकुमारी अच्छी हो गयी। अविनाश किशोर ने भी छुट्टी पायी। अविनाश की इच्छा थी, कि एल-एल० बी० पास कर वकालत करें। परन्तु ईश्वर को यह स्वीकार न था परीक्षा का परिणाम प्रकट हुआ। बी० ए० पास होगये। यह जान कर सुकुमारी को आनन्द हुआ। एक दिन अविनाश ने मोहन से कहा, "ताऊजी, मेरी इच्छा थी, मैं एल-एल० बी० पास कर डालूं। आपकी क्या इच्छा है।"

मोहन बोले, "कोई जरूरत नहीं है। अब तुम को नौकरी की फिकर करनी चाहिए।" अविनाश फिर कुछ नहीं बोले। चुप चाप चले गये। उन के कमरे में मदन का फोटो टंगा था, उसी जगह खड़े खड़े कुछ देर तक उसे देखते रहे। दो चार प्रेम के आँसू निकल कर जमीन पर गिर पड़े। वह दिन उसी तरह बीत गया। दूसरे ही दिन अकस्मात मोहिनी और मानिनी में कहा सुनी हो गयी। आखिर मानिनी ने मोहिनी और साथ ही साथ सुकुमारी और अविनाश को भी खूब खरी खोटी सुनायीं। अविनाश को संबोधित कर के मानिनी बोली, "सुनो जी ! अब हम से नहीं सुना जाता। अब आज मैं तुम से साफ़ साफ़ कहती हूँ, कि तुम अपना बंदोबस्त करो।"

अविनाश—ताई जी, कैसा बंदोबस्त करने को कहती हो ?

मानिनी—अब तुम बहू और मोहिनी का प्रबन्ध करो। इस घर में गुज़र नहीं है।

अ०—बहुत अच्छा। तुम मेरी माता के समान हो। तुम्हारी आज्ञा मैं टाल नहीं सकता। मैं आज मकान से निकला जाता हूँ। मोहिनी और उसे पन्द्रह दिन और यहाँ रहने दीजिए। मैं यदि प्रबन्ध कर सकूँगा, तो इतने दिनों के अन्दर इन दोनों को लिवा जाऊंगा, यदि न कर सका, तो आप की जो इच्छा हो, कीजिएगा।

यह कह कर अविनाश मोहन के पास गये। उन्हें आशा थी, कि मोहन कुछ फैसला करेंगे। मगर वह तो सिखायी बातें थी। दिल कैसे पसीजता। अविनाश ने समझ लिया, कि ताई ने

ताऊ के कान में विष की शीशी उलट दी है। अब इस समय कुछ नहीं हो सकता। वह अपने कमरे में गये। सुकुमारी से उन्होंने कहा, "आज मैं इलाहाबाद जाता हूँ।"

सुकुमारी--किस लिए ?

अविनाश—नौकरी ढूढने के लिए। ताई जी ने आज हम लोगों को जुदा कर दिया। आज प्रयाग जाता हूँ। यदि पन्द्रह दिन के अन्दर कुछ प्रबन्ध कर सकूँगा, तो आकर तुम को लिवा जाऊँगा, यदि न कर सका, तो वहीं त्रिवेणी जी के गर्भ में समा जाऊँगा। सुकुमारी ने एक ठंढी साँस ली और बोली, "हम लोग......"

अविनाश बीच ही में बात काट कर बोले, "तुम लोग ईश्वर के भरोसे कुछ दिन रहो। इस बात का ध्यान रखना, कि मोहिनी को तकलीफ़ नहो।"

सुकुमारी—तकलीफ क्यों होगी। मेरे गहने बेच कर रुपये मुझे दे जाओ और कुछ तुम ले जाओ। क्योंकि संभव है, कि तुम्हारे जाने के बाद इन की मति बदला, और उसी दिन हमें निकाल बाहर किया, तो मैं फिर क्या करूँगी। तुम्हारे पास भी कुछ नहीं है। रुपये पास रहेंगे, तो खाने की तो तकलीफ़ न रहेगी।

अविनाश—नहीं मेरे पास सौ रुपये का एक नोट है। मेरे लिए काफी है। देखो, तकलीफ़ न उठाना और मोहिनी का ध्यान रखना।—यह कह अविनाश किशोर इलाहाबाद चले गये।

(क्रमशः)

—बावली बहू

निन्नानबे का फेर



प्राचीन काल में अमरावती नाम की एक नगरी थी। उसमें एक धनाढ्य वैश्य चन्द्रगुप्त नाम का रहता था और उसी के पड़ोस में कृष्णकान्त नाम का एक शिल्पकार भी रहता था।

एक दिन कृष्णकान्त की पत्नी कमला ने घरसे निकल कर आँगनमें आकर शशि-मुखी को पुकारा, "प्यारी सखी शशि-मुखी!"

उसकी आवाज सुनकर वैश्य की पत्नी ने ऊपर अटारी की छत पर आकर कहा, "अहा! सखी आज तुमने यहाँ आने में बहुत विलम्ब लगाया। मैं तो बड़ी देर से तुम्हारी बाट जोह रही थी।"

कमला—"सखी! आज मैं अपने पति के लिये कुछ मिष्ठान्न बनाने में लगी थी। इसी कारण कुछ देर हो गई। क्षमा करना, सखी।"

शशिमुखी—"अरी तू तो प्रतिदिन नया नया मिष्ठान्न बनाया करती है। इतना रुपया कहाँ से आता है? अरी सखी! तेरे पति तो एक रुपया मात्र प्रतिदिन कमा कर लाते हैं, और इतना खर्च।"

यह सुनकर कमला ठट्ठा मार हँस कर बोली, "अरी सखी! तू तो बड़ी बावली है। इतना भी नहीं समझती। मेरे प्राणपति प्रतिदिन एक रुपया लाते हैं और हम दोनों बड़े आनन्द से भाँति भाँति के मिष्ठान्न खाते तथा अच्छे अच्छे कपड़े भी पहिरते हैं। तेरे पति तो प्रतिदिन बहुत धन कमा कर लाते हैं, और तू ऐसी बातें करती है कि कभी रुपये की सूरत न देखी हो। एक रुपये में साधारण दाल भात तो पाँच रुपये मासिक पाने वाला भी खा सकता है। फिर यदि तीस रुपये मासिक मिलने पर भाँति भाँति का पकान्न खाया जावे तो अचम्भा क्या है?"

इतने में शशिमुखी ने बाहर कुछ आहट सुनी। तब वह कमला से बोली, "सखी! जान पड़ता है कि आज प्राणनाथ जल्दी आगये हैं क्योंकि बाहर किवाड़ों की आहट आई है। अब मैं जाती हूँ। कल फिर इसी समय भेंट होगी। राम राम।" यह कह कर शशिमुखी छत पर से उतर कर नीचे आई। किवाड़ खोलने पर विदित हुआ कि नौकरानी आई है। यह जान कर वह भीतर आई और घर का सब काम-धाम ठीक कर अपने प्राण-पति की बाट जोहने लगी।

* * * *

(२)

ठीक पाँच बजे का घंटा बजा और चन्द्रगुप्त दूकान पर से घर आये। चन्द्रगुप्त को आता देख कर शशिमुखी ने उठ कर मृदु स्वर से उनका स्वागत किया। फिर उनको पलँग पर बैठा कर पंखा करने लगी। इतने में नौकरानी ने आकर कहा, "बहू जी सब काम हो गया है। अब मैं घर जाती हूँ।"

उसको घर जाने का आदेश देकर शशिमुखी ने एक लोटे में जल लाकर अपने प्राणपति को हाथ मुँह धोने के लिए दे दिया। चन्द्रगुप्त ने जब हाथ मुँह धो लिया। तो वह उनको भोजनार्थ लिवा ले गई। आसन पर बैठा कर भोजन की थाली आगे धर कर हाथ में पंखा लेकर वह हवा झलने लगी।

चन्द्रगुप्त भोजन करने लगे और बार बार अपनी प्यारी पत्नी की ओर देख कर बोले, "प्रिये! आज तुम कैसी उदास सी दीखती हो।"

शशिमुखी मुसकुरा कर बोली, "प्राणनाथ! आज मुझे एक शंका उत्पन्न हुई है। वह यह कि अपना पड़ोसी शिल्पकार कृष्णकान्त प्रति दिन एक रुपया

कमाकर लाता है। और आनन्द से नाना भाँति के कपड़े तथा पक्वान्न प्रति दिन बदल बदल कर दोनों पति-पत्नी पहिनते तथा खाते हैं। अपने यहाँ तो इतना धन है। फिर हम लोग क्यों साधारण भोजन तथा वस्त्रादिकों का उपयोग करते हैं?'

अपनी प्राण प्यारी के ऐसे मीठे और भोले बचन सुन कर चन्द्रगुप्त हँस कर बोला, "प्राणप्रिये! तू बड़ी पगली है। तुझे इतना भी ज्ञान नहीं कि वह अभी तरुणावस्था में है। प्रति दिन कमा कर लाता और आनन्द पूर्वक दोनों पति-पत्नी उड़ाते खाते हैं। जब वे लोग वृद्धावस्था को प्राप्त होंगे हाथ पैर भी न चल सकेंगे तब उनके ऊपर कैसी विपदा आवेगी! कैसा दुःख उन्हें उठाना पड़ेगा! उनके पीछे जो उनके लड़के बच्चे होंगे, उनको भी कैसा कष्ट झेलना होगा! तब उनको रुपये बचाने का लाभ ज्ञात होगा। वृद्धावस्था की बात तो दूर रहीं, अभी एक या दो दिन भी यदि काम पर न जा सके तो क्या दशा होगी, यह तुम सोच सक्ती हो।"

इस दुःख भरे वृत्तान्त को सुन कर शशिमुखी का हृदय काँप उठा। वह शोकित वाणी से बोली, "प्राणनाथ! इसका कोई उपाय भी है जिससे अपने पड़ोसी कृष्णकान्त तथा मेरी प्रिय सखी कमला की अवस्था सुधर जाय? यदि उस उपाय करने में कुछ धन भी लगे तो भी कोई चिन्ता नहीं। आप अवश्य ऐसा उपाय करें जिससे हमारे पड़ोसियों का भला हो तथा उनकी अवस्था (दशा) सुधर जाय।"

अपनी धर्म पत्नी को शोकातुर देखकर चन्द्रगुप्त बोला, "हे प्रिये! धीर धर। इतनी व्याकुल मत हो। ईश्वर करेगा तो उनकी दशा शीघ्र सुधर जायगी।"

इतना कह कर उसने शशिमुखी को कुञ्जियाँ देकर निन्नानबे रुपये लाने के लिए कहा। उसने निन्नानबे रुपये सन्दूक में से लाकर अपने पति के सामने रख दिये। चन्द्रगुप्त ने उन्हें एक कपड़े के टुकड़े में बाँध कर अपनी पत्नी को देकर कहा, प्रिये! इसको लेजा और जैसे हो वैसे आज रात को उसके आँगन में फेक देना।"

शशिमुखी ने वैसा ही किया जैसा उसके पति ने कहा था।

* * *

(३)

प्रातःकाल दूसरे दिन जब कमला सोकर उठी और बाहर आँगन में आई। उसकी दृष्टि उसी पोटरी पर जा पड़ी। पहिले तो वह डरी। तत्पश्चात् उसको उठाकर ज्योंहीं खोल कर देखा तो मारे खुशी के अपने पति के पास दौड़ी गई। और उस पोटली के मिलने का सब वृत्तान्त कहा।

सब बातेँ सुन कर कृष्णकान्त बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "प्रिये ! आज का दिन बड़ा शुभ प्रतीत होता है कि बड़े सवेरे ही श्रीमती लक्ष्मी महारानी ने कृपा की।" फिर वह रुपये गिनने लगा। गिन चुकने पर उसको ज्ञात हुआ कि वे सब रुपये निन्नानवे हैँ। एक बार गिने, दो बार गिने, तीसरे बार गिने पर निन्नानवे रुपये ही निकले।

उसकी पत्नी कमला ने कहा, "प्राणनाथ ! क्या बात है जो आप बार बार रुपयोँ को गिन रहे हो।" उसने उत्तर दिया, "प्रिये ! ये रुपये तो निन्नानवे ही हैँ।"

अब इन की आत्माओँ को रुपयोँ के मोह ने घेरा और आपस मेँ कहने लगे कि जैसे बने तैसे इनको पूरे सौ रुपये करना चाहिये। उन्होँने मन मेँ ठान लिया कि आज से चार आने बचावेँगे और बारह आने खाने मेँ खर्च करेँगे, तो चार दिनोँ मेँ पूरे सौ रुपये हो जावेँगे। उन्होँने ऐसा सी किया। और चार दिन मेँ पूरे सौ रुपये हो गये। फिर रुपये बढ़ाने का अधिकाधिक मोह उन दोनोँ को होने लगा। दिन दिन उनका व्यय कम होने लगा। वे रुपये जोड़ने मेँ तन मन से तत्पर हो गये। अब साधारण भोजन तथा साधारण वस्त्रोँ पर ही उनकी रुचि हो गई। इसी मेँ वे आनन्दित रहने लगे।

* * *

(४)

निन्नानवे रुपयोँ की वह पोटली कृष्णकान्त के घर मेँ फैंकने के कुछ दिन उपरान्त शशिमुखी ने अटारी की छत पर आकर अपनी सखी कमला को पुकारा।

शशिमुखी का शब्द सुन कर कमला शीघ्र ही बाहर आँगन मेँ आकर कहने लगी, "प्यारी सखी ! तुमने बहुत दिनोँ मेँ दर्शन देने की कृपा की।"

इसकी बात सुन कर शशिमुखी बोली, "वाह सखी ! तुम तो मुझको दोष देने लगीँ। मैँ तो प्रति दिन यहाँ आती हूँ, पर तुम तो दीखती ही नहीँ।"

कमला—अरी सखी ! काम के मारे अवकाश ही नहीँ मिलता। इस कारण तुम्हारे दर्शन नहीँ हो पाते।

शशिमुखी—अब तो तुम्हारी रहन सहन कुछ और ही दीखती है। अब वे पहिले के भड़कीले वस्त्रादि कुछ भी नहीँ दीखते। और तन मन धन से काम करने मेँ ही लवलीन रहती हो। इसका क्या कारण है ?

कमला ने सब हाल आदि से अन्त तक निष्कपट होकर सुना दिया।

आद्योपान्त वर्णन सुनकर शशिमुखी ने कहा, "हाँ ! प्यारी सखी अब तुम को रुपये का मूल्य ज्ञात हुआ। ईश्वर को धन्यवाद है। जिसने तुम लोगोँ को सच्चा सुख दिया।"

इतना कह कर शशिमुखी ने कहा, "प्यारी सखी ! अब मैँ जाती हूँ जब अवकाश होवेगा तब फिर मिलूँगी ।" इतना कह कर और राम राम कर घर मैँ आकर अपने प्राणपति चन्द्रगुप्त के पास गई ।

शशिमुखी को अपनी ओर प्रसन्न मुख आता देख कर चन्द्रगुप्त उसका हाथ पकड़ कर लिवा लाया । और उसको अपने पास बैठाल कर पूँछा, "प्राण प्यारी आज तुम कहाँ गई थीँ ? बहुत देर से तुम्हैँ घर मैँ नहीँ देखता हूँ ।"

चन्द्रगुप्त के बचन सुनकर शशिमुखी हँस कर बोली, "प्राणनाथ ! आज मैँ अपनी पड़ोसिन कमला की भैँट के लिये छत पर गई थी । अहा ! प्राणनाथ ! अब तो उसके यहाँ बिलकुल फेरफार हो गया......"

बीच मैँ टोक कर चन्द्रगुप्प बोल उठा, "फेरफार क्योँ न होगा । है भी तो वही निन्नानबे का फेर ।"

—नारायण प्रसाद श्रीवास्तव

पनडुब्बे पीपे

(Submarine mines)

युद्ध में यह क्या काम करते हैं ?

आजकल जल-युद्ध मैँ इन पीपोँ का प्रयोग उसी प्रकार किया जाता है जैसे स्थल-युद्ध मैँ किलोँ के पास तक नीचे नीचे सुरंग खोद कर गोली बारूद से किले उड़ाये जाते थे । बहनेवाले पीपे जल-धरातल के कुछ नीचे जंजीर के द्वारा बँधे रहते हैँ और बैठनेवाले पीपे भारी होने के कारण समुद्र की तह मैँ रख दिये जाते हैँ । जब सूक्ष्म पेचोँ के द्वारा यह पता चलता है कि कोई जहाज़ इनके पास अथवा इनके ऊपर आया है तो इन पीपोँ का गन काटन मैँ बिजली के द्वारा आग लग जाती है और यह पीपे फट-कर उस जहाज़ का सत्यानाश कर डालते हैँ । चूँकि उन पेचोँ से यह पता नहीँ चलता कि पीपोँ के पास वाला जहाज़ शत्रु का है कि मित्र का, इस लिए ऐसे पीपोँ से शत्रु और मित्र दोनोँ को भय लगा रहता है । पहले पहल यह अस्त्र जर्म्मनी और इङ्गलैंड के युद्ध मैँ प्रयोग किया गया था जिससे एक जर्म्मनी वाला युद्ध का जहाज़ और एक इङ्गलैंड का नष्ट हो गया था । १८७० ई० के फ्रान्स और प्रशिया के (जर्म्मनी का एक प्रान्त) युद्ध मैँ प्रशिया के समुन्दरी किनारे की रक्षा इन्हीँ पीपोँ के द्वारा की गई थी । उत्तरी सागर (जर्म्मनी और ग्रटब्रिटन के बीच के समुद्र का टुकड़ा) मैँ प्रशिया के एक किनारे से दूसरे किनारे तक यह पीपे फैला दिये गये थे ।

रूस-जापान युद्ध मैँ एक बार ऐसे ही पीपोँ से २३ मिनट मैँ जापान वालोँ ने रूस के एक बड़े भारी जहाज़ को जिसमैँ ७०० सिपाही मौजूद थे डुबा कर

रसातल को पहुँचा दिया था । इस के पश्चात् ऐसे पीपों की बनावट में दिन दिन उन्नति होती गई। अनुभव द्वारा यह प्रकट हो गया कि पक्के लोहे के गोल पीपे इस काम के लिए बहुत अच्छे होते हैं। इन्हीं पीपों में दबाया हुआ गीला गन-काटन भरा रहता है। ऐसे गोलों में बाहरी दबाव के सहने की अधिक शक्ति रहती है और पानी के भीतर तीव्र लहरों के धक्के भी कुछ प्रभाव नहीं डालते। इसलिए यदि पास ही कोई दूसरा पीपा फूट पड़े तो इन पर कुछ असर नहीं होता और नियत स्थान से इनको कोई घसीट भी नहीं सकता । गन काटन के सिवाय और कोई भक से उड़ जाने वाली वस्तु नहीं प्रयोग की जाती क्योंकि इसके जमा करने और इससे काम लेने में बड़ा बचाव रहता है । यह जब तक गीला रहता है तब तक दूसरे स्थान के पीपों के उड़ जाने से जो धक्का लगता है उससे कुछ विकार नहीं पैदा होता। इसके सिवाय इसको दबाकर किसी रूप में रखने पर भी पानी का अंश सर्वत्र एक सा फैल जाता है । इन पीपों के उड़ाने में फलमीनेट आफ मरकरी और सूखा गन-काटन दो पदार्थ प्रयोग किये जाते हैं जो बिजली की गरमी के द्वारा दाब दिये जाते हैं।

बिजली की गरमी कैसे पहुँचाई जाती है ?

जिन शहरों में बिजली के द्वारा प्रकाश और पंखा चलाने का काम लिया जाता है वहाँ का एक साधारण आदमी भी यह जान सकता है कि ज़रा सा 'बटन' दबा देने से पंखा कैसे चलने लगता है और अन्धकारमय कोठरी क्षण भर में कैसे प्रकाशमान होकर चकाचौंध पैदा करने लगती है। बात यह है कि लैम्प के पास तक बिजली को जाने के लिए सब सामान पहले ही से दुरुस्त रहता है । 'बटन' दबाकर बैटरी से (जिससे विद्युत शक्ति की धारा निकलने लगती है) मिलान करना ही रह जाता है जो जिस समय आवश्यकता होती है कर दिया जाता है। यही कारवाई पीपों के फैर करने में भी की जाती है। बिजली की धारा ले जाने के लिए बैटरी से पीपे तक तार लगा रहता है। जिस समय चुम्बक की सुइयों के द्वारा यह मालूम हुआ कि पीपे पर कोई जहाज़ पहुँच गया उसी समय स्टेशन पर 'बटन' दबा दिया जाता है और पीपा फटकर जहाज़ का काम तमाम कर देता है।

पीपे दो प्रकार के होते हैं, एक बैठ जाने वाले और दूसरे बहने वाले। बैठ जानेवाले पीपों (Moored or ground mines) में ५०० पौंड अथवा २५० सेर गन काटन भरा जाता है जिससे एक ड्रेडनाट बहुत ही आसानी से रसातल को भेजा जा सकता है। ऐसे ही पीपों से रक्षक का काम लिया जाता है क्योंकि इनके रहते हुए

शत्रु का कोई जहाज़ इनके पास से निकल नहीं सकता यदि उसमें यह तरकीब न हो कि इन पीपों को मार्ग से हटा दिया जाय। बहने वाले पीपे (Floating mines) लङ्गरों से इस प्रकार बाँध दिये जाते हैं कि वह पानी के १०, १२ फिट नीचे बहते रहते हैं। शत्रु के जहाज़ जब इन में फँस जाते हैं तो यह पीपे, जिन में ५० से १०० पौंड तक गन-काटन भरा रहता है और जो छोटे छोटे जहाजों को जैसे टारपीडो-बोट या पनडुब्बे, डुबो देने के लिए अलम होते हैं, फट जाते हैं और फँसे हुए जहाज़ को छेद डालते हैं जिससे उसका आगे बढ़ना रुक जाता है। ऐसे पीपे एक विशेष प्रकार के बनाये हुए जहाज़ के द्वारा जिनको माइन लेयर (Mine Layer) कहते हैं समुद्र में फैला दिये जाते हैं और यह बैठ जाने वाले पीपों को भी समुद्र में डाल देते हैं। ग्रेटब्रिटन के पास ७ ऐसे जहाज़ हैं जो पीपों के डालने के लिये हैं। इनके दोनों सिरों पर बड़े बड़े छिद्र होते हैं जिन में से पीपे ऐसी सावधानी से डाल दिये जाते हैं कि जहाजों पर स्वयम् कुछ बुरा असर नहीं होता।

पीपों के बटोरने वाले (Mine sweepers)

यह संसार द्वन्दमय है। गरमी सरदी, दिन रात, प्रकाश अन्धकार, मित्र शत्रु, स्वर्ग नरक—सभी द्वन्द संसार के कारण है। प्रत्येक वस्तु का द्वन्द संसार में पाया जाता है। इसी नियम के अनुकूल पीपों के डालने वालों (mine layers) के साथ साथ पीपों के बटोरने वालों (mine sweepers) का भी बनना आवश्यक है। ग्रेटब्रिटेन के पास इस समय आधे दर्जन से अधिक पीपों के बटोरने वाले बड़े जहाज़ हैं और बहुत से छोटे छोटे बटोरने वाले उत्तर सागर में पीपों के ढूँढ़ने में सदैव लगे रहते हैं। यदि जहाज़ों वा गोल पीपों से घिर जाय तो उसका छुटकारा केवल इसी में हो सकता है कि सब पीपे बटोर कर अलग कर दिये जाँय नहीं तो उस गोल की दशा वैसा ही होगी जैसी जापानवालों ने रूस के जहाज़ के साथ किया था। बटोरने के लिए दो जहाज़ एक दूसरे से कुछ दूर पर इस प्रकार चलते हैं जैसे मछुवे लोग मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल लेकर पानी में चलते हैं। इन जहाज़ों के ऊपर नीचे कड़ियाँ लगी रहती हैं जिनमें जाल की नाई बहुत सी लोहे की जंजीर एक जहाज़ से दूसरे जहाज़ तक फैली रहती हैं और यही जाल का काम देती हैं। जब पीपों की जंजीरें इनमें फँस जाती हैं तो इन्हीं के साथ पीपे भी दूर ही से लुढ़कने लगते हैं। जब सब पीपे बटुर जाते हैं तो उड़ा दिये जाते हैं। बटोरते समय कभी कभी पीपे स्वयम् उड़ जाते हैं किन्तु इससे जहाज़ों को कुछ भी हानि नहीं पहुँचती क्योंकि यह उनसे सदैव दूर रहते हैं।

टारपीडो

इसी अङ्क में पन-डुब्बी का वर्णन करते हुए कुछ थोड़ा सा टारपीडो नामक शब्द से परिचय करा दिया गया था। उसी का खुलासा यहाँ वर्णन किया जाता है। इसका रूप, इसका गुण, और इसका काम कुछ न कुछ सभी जानते होंगे। किन्तु ऐसे यमदूत के पेट में कौन से कल पुरजे रहते हैं जिनके द्वारा यह सीधा अपने निशाने पर पहुँच जाता है न दाहिनी ओर मुड़ता है और न बाँई ओर; यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी। इसलिये इसकी भीतरी बनावट का वर्णन करना अनुचित नहीं समझ पड़ता—

टारपीडो की लम्बाई १६ से १८ फीट तक होती है अंग्रेजी जल-सेना में तीन प्रकार के टारपीडो काम में लाये जाते हैं। इनका व्यास १४ इंच, १८ इंच और २१ का होता है। इनका मुख नोकीला नहीं होता और पूँछ में दो ढकेलने वाले डैने होते हैं। इन्हीं के सामने आड़े और खड़े डैने मछलियों के गलफड़ों की तरह होते हैं जिन का काम यह होता है कि टारपीडो को सदैव सीधा और पानी के नीचे आवश्यक गहराई पर चलावें। इनको चलाने की शक्ति टारपीडो के भीतरी कल पुरजों से पहुँचाई जाती है। टारपीडो के पेट में जो कोठे होते हैं उनके स्थान इस क्रम से होते हैं; प्रथम मुख होता है जिसमें युद्ध के समय गन काटन भरा रहता है। यह गन काटन किसी चीज़ से टकराने पर एक पेँच के द्वारा भक से बल उठता है किन्तु बचाव के लिए ऐसा पेँच भी होता है कि जब तक टारपीडो अपनी नली से जो छोड़ने वाले जहाज़ पर लगी रहती है कुछ दूर न निकल जाय तब तक टकराने से भी नहीं उड़ सकता। मुख के बाद दूसरा कोठा हवा का होता है। यह बेलन की शक्ल का होता है और $\frac{1}{2}$ इंच मोटी स्टील की चद्दर का बनाया जाता है और प्रत्येक वर्ग इंच पर २२५० पौंड के दबाव को सह सकता है। इसमें हवा भरने वाले अंजन के द्वारा हवा ठूँस ठूँस कर उसी तरह भरी जाती है जैसे बाइसिकिल या मोटर-कार में पिचकारी से हवा भरते हैं। तीसरा कोठा बैलेन्स-चैम्बर कहलाता है। इसके भीतर ऐसा पेँच लगा रहता है जो पीछे लगे हुए आड़े डैनों को आवश्यक गहराई पर चलाता है। यह गहराई टारपीडो के छोड़ने के समय नियत कर दी जाती है। बैलेन्स-चेम्बर के पीछे अंजन वाला कोठा होता है जिसमें हवा के अंजन की शक्ति से टारपीडो पानी के भीतर चला करता है। इसमें और भी पेँच होते हैं जो टारपीडो को निशाने तक पहुँचा देते हैं। यह अंजन इतने बलवान होते कि टारपीडो को ४० मील प्रति घंटा के वेग से चला सकते हैं।

घुमनी पहिया (Gyroscope)

अंजन वाले कोठे के बाद उछाल का कोठा (Buoyancy chamber) होता है। इसमें घुमनी पहिया (gyroscope) होता है, जिसके घूमते रहने से टारपीडो (दाहिने बाँये न मुड़कर) एक ही दिशा में चलता रहता है। इसमें पीतल की घूमने वाली फिरकी होती है जो टारपीडो के छोड़ते समय घुमा दी जाती है। यह फिरकी सदैव एक ही धरातल में घूमती रहती है। इसका फल यह होता है कि यदि मार्ग में टारपीडो की दिशा बदल जाय तो फिरकी अपने घूमने के बल से खड़े डैनों को (जो उसमें जुड़े रहते हैं) फिर उसी दिशा में कर देती है जिसमें वह पहले थे। टारपीडो की फिरकी में बहुत ही सूक्ष्म कारीगरी होती है इसी से इसकी लागत भी ५० पौन्ड अथवा ७५० रु० होती है। इस उछाल के कोठे के द्वारा ही जब टारपीडो अभ्यास के लिए छोड़ा जाता है तो गति बन्द हो जाने पर ऊपर तैरने लगता है लेकिन युद्ध के समय जब इसके मुख में गन-काटन भरा रहता है यदि यह निशाना पर न पहुँच कर इतनी दूर चला जाय कि गति रुक जाय तो तैरने लगेगा और ऐसी दशा में शत्रु मित्र दोनों को हानि पहुँचावेगा। इसलिए एक पेंच ऐसा भी लगा रहता है जिससे जब यह रुक कर ऊपर तैरने लगता है तो अपने आप पानी भरने लगता है और पानी के भर चुकने पर डूब जाता है।

सब से पिछले कोठे को पूँछ कहते हैं। इसमें वह मशीन लगी रहती है जिससे पीछे के दानों ढकेलनेवाले डैनों पर चालन-शक्ति पहुँचाई जाती है। एक ढकेलने वाला उस दिशा में घूमा करता है जिसमें घड़ी की सूइयाँ और दूसरा इसके ठीक प्रतिकूल ऐसे दाहिने बाएँ चक्कर से टारपीडो साम्यावस्था पाकर दाहिने बाएँ न मुड़कर ठीक अपनी सीध में चला जाता है।

४६॥ मील की चाल।

उन्नति करते करते अब १८ इंच व्यास वाला टारपीडो ऐसा बनने लगा है कि वह १००० गज तक ४० मील प्रति घंटा की चाल से चल सकता है किन्तु यह वेग भी ४२ मील प्रति घंटा गतिवाले जहाजों के लिए किसी काम का नहीं होता। इस लिए ऐसे टारपीडो बनाये गये हैं जिनका व्यास २१ इंच होता है और जो १००० गज तक ४६॥ मील प्रति घंटा की चाल से और ४००० गज तक ३२ मील प्रति घंटा की चाल से चल सकते हैं। ऐसे टारपीडो ७००० गज वा ३॥ मील दूरी वाले निशाने तक जाकर अपना काम कर सकते हैं और इनमें ३०० पौंड अथवा १५२ सेर गन काटन भरा जा सकता है। टारपीडो का भीतरी भाग बहुत ही पेंचदार होता है क्योंकि इसके बनाने में उन सब बातों का प्रबन्ध करना पड़ता है

जिससे यह ठीक गहराई मैँ, आवश्यक गति के साथ और ठीक दिशा मैँ चलकर अपने निशाने तक पहुँच जाय। इसके प्रबन्धकर्ता अफ़सर और माँझी ऐसे भयंकर हथियार से काम लेने के लिए इस सम्बन्ध की विशेष शिक्षा प्राप्त किये रहते हैँ जिसके लिए पोर्टस्मथ मैँ एक शिक्षागार है। बड़े जहाज़ोँ मैँ एक लफटन्ट केवल टारपीडो के प्रबन्ध के लिए नियत किया जाता है।

टारपीडो कैसे फ़ैर किये जाते हैं?

युद्ध के बड़े बड़े जहाज़ोँ और *क्रूजरोँ मैँ उन नलियोँ मैँ से, दबी हुई हवा के बल से फैर किये जाते हैँ, जो पानी मैँ डूबी रहती हैँ। लेकिन छोटे छोटे जहाज़ोँ मैँ जैसे टारपीडो बोट, डेस्ट्रायर (रिपु मर्दन) और स्काउट (भेदिया जहाज़) मैँ वे ऊपर वाले तखते पर से बारूद के द्वारा फैर किये जाते हैँ। बारूद केवल इतनी रहती है कि टारपीडो फैर करने वाले जहाज़ से कुछ दूरी तक निकल जाता है फिर तो यह अपने आप भीतरी पैँचोँ के बल से चलने लगता है। यद्यपि इन टारपीडोकी चलन थोड़े ही दिनोँ से हुई है तथापि बहुत से जल-युद्ध मैँ इनसे बहुत अच्छा काम लिया जाचुका है। रूस जापान युद्ध मैँ टारपीडो वाले जहाज़ ने आरम्भिक दशा मैँ ही कई युद्ध के जहाज़ोँ को डुबो दिया था। अब तो ऐसे जहाज़ोँ मैँ बहुत उन्नति की गई है और इनका वेग भी पहले से बहुत अधिक हो गया है।

टारपीडो से बचने की तरकीब

जल सेना के बड़े बड़े जहाज़ोँ मैँ फुरती से छोड़ी जाने वाली बहुत सी बन्दूकेँ रक्खो रहती हैँ जिनसे टारपीडो दूर ही से भगा दिया जाता है। लेकिन इतने पर भी टारपीडो छिपकर कभी कभी धावा कर बैठता है। इस लिए प्रत्येक जहाज़ मैँ टारपीडो के पकड़ने के लिए जाल बने रहते हैँ। यह जाल ईस्पात लोहे के तार के होते हैँ और जब काम नहीँ होता तो जहाज़ के चारोँ ओर मोड़ दिये जाते हैँ और आवश्यकता पड़ने पर लोहे के बड़े बड़े छड़ोँ के द्वारा फैला दिये जाते हैँ। फैलाने से यह जाल जहाज़ के सामने ३०फीट की दूरी पर और पानी से ३[illegible] फीट गहराई तक परदा की तरह हो जाते हैँ। लेकिन तीव्र गति वाले टारपीडो के मुक़ाबिले यह भी बेकार हैँ। अभी तक सब से अच्छी विधि यही मालूम हुई है कि बड़ी बड़ी तोपोँ के द्वारा आता हुआ टारपीडो दूर ही से उड़ा दिया जाय।

अर्वाचीन युद्ध के जहाज़

आज कल जल-युद्ध के सामान के सम्बन्ध मैँ दो मत हैँ। एक मत वाले कहते हैँ कि

*क्रूजर उन छोटे छोटे जहाज़ोँ का नाम है जो समुद्र में शत्रु के जहाज़ों के खोज में घूमा करते हैं और अपने देश के व्यापार की रक्षा करते हैं। शत्रु के जहाज़ों को यह लूट भी लेते हैं।

जल-युद्ध में वही दल विजयी होगा जिसके पास बड़े बड़े युद्ध के जहाज़ (डे्डनाट) होंगे। दूसरे मत वाले यह कहते हैं कि बड़े बड़े जहाज़ों से लड़ने का समय गया, अब तो उसी दल की जय होगी जिसके पास पनडुब्बी नाव, टारपीडो बोट और पनडुब्बे पीपे बहुतायत से होंगे और उसी की जल सेना की शक्ति भी प्रबल समझी जायगी। परन्तु अधिकतर लोगों की राय यही है कि युद्ध के जहाज़ अधिक रहने चाहिए। युरोप के बड़े बड़े शक्तिवाले राज्यों ने भी ग्रेटब्रिटन के पीछे चलते हुए बड़े बड़े युद्ध के जहाज़ों के रखने की पालिसी ग्रहण कर ली है। लेकिन ग्रेटब्रिटन ऐसे बड़े बड़े जहाज़ों के बनाने में अब तक अगुवा बना हुआ है। जर्म्मनी सामना करने में कभी प्रयत्न नहीं करता किन्तु तौभी जितने समय में ग्रेट-ब्रिटन के २६ युद्ध के जहाज़ तैयार किये गये उतने समय में जर्म्मनी केवल १७ जहाज़ बना सका।

प्रथम ड्रेडनाट

यह नाम और इसका काम सर्व साधारण को इतना परिचित हो गया है कि इसका गुमान नहीं होता है कि १० वर्ष पहले ड्रेडनाट का चिन्हमात्र भी नहीं था। सन् १६०५ ई० में समाचार पत्रों में यह निकलने लगा कि पोर्टस्मथ के नौका-कार्य्यालय में एक ऐसा जहाज़ गुप्त रीति से बन रहा है जो उस समय तक के बने हुए जहाज़ों से बिलकुल निराला है, और जब आवश्यक युद्ध का सामान रख दिया जायगा तो २० लाख पौन्ड अथवा ३ करोड़ रुपये की लागत का ठहरेगा। इसका बनाना दूसरी अक्टूबर सन् १६०५ ई० को आरम्भ हुआ, १६०६ ई० के फरवरी मास में समुद्र में छोड़ा गया और उसी सन् के दिसम्बर मास में बिलकुल तैयार हो गया। इस प्रकार उसकी तैयारी में कुल १५ महीने लगे। इसके पश्चात और सामुद्रिक शक्ति वाले राज्यों अर्थात् जर्म्मनी, फ्रान्स, अमेरिका का संयुक्त राज्य, जापान इत्यादि ने इसी सांचे का जहाज़ बनवाना प्रारम्भ किया। प्रथम ड्रेडनाट पोर्टस्मथ में बना और महाराजधिराज एडवर्ड सप्तम ने इसको फरवरी मास में समुद्र में निकाला। वह ४६० फीट लम्बा और ८२ फीट चौड़ा है और १७६०० टन पानी हटाता है अर्थात् उस जहाज़ की तोल १७६००टन है। इसके चारों ओर गोलों की चोटों से बचाने के लिए ११ इंच मोटी पक्के लोहे की चद्दर लगी हुई हैं।

तोपें—इसकी तोपें सब एक ही सांचे की बनी हुई हैं। सब में गोले की नलियों का भीतरी व्यास १२ इंच है। यह तोपें ४५ फीट लम्बी हैं और ८५० पौन्ड वा ४२५ सेर वाले गोलों को २६०० फीट के प्रारम्भिक वेग से छोड़ती हैं। ऐसे भारी गोले ३ मील की दूरी पर जाकर १३

इंच मोटी पक्के लोहे की चद्दर को छेद कर पार चले जा सकते हैं। यह तोपें तौल में ५८ टन होती हैं और एक मिनट में दो बार फ़ैर की जा सकती हैं, कभी कभी इससे भी अधिक ! ऐसी तोपों की जोड़ियाँ पाँच स्थानों में रक्खी जाती हैं। एक जोड़ी अगले भाग में रहती है और दो जोड़ियाँ जहाज़ के बीच में और दो पिछले भाग में। इस ड्रेडनाट के पहले किसा जहाज़ में १२ इंचवाली तोपें ४ से अधिक नहीं रक्खी जाती थीं। इसमें २७ तोपें १२ पौन्ड वाले गोलों को फ़ैर करके टारपीडो का सामना करती हैं। यह २५ मील प्रति घंटा की चाल से चलता है और इसके चलाने वाली जल पहिया (turbin) तेईस हज़ार अश्व-बल* की शक्ति से घूमती है। ऐसी पहिया पीछे के बने हुए तमाम जहाज़ों में लगाई गई है क्योंकि यह बड़े काम की समझी गई है।

और भी बड़े ड्रेडनाट

इतने थोड़े समय में भी ड्रेडनाटों के बनाने में बड़ी उन्नति हुई है। १९०९ ई० में जो ड्रेडनाट तैयार हुए हैं उनकी तौल १८६०० टन और चाल २५ मील प्रति घंटा है। इनमें सामान वैसा ही रक्खा गया है जैसा पहले ड्रेडनाट में था। केवल टारपेडो के मुकाबिला के लिए १६ तोपें ऐसी हैं जिनकी नलियाँ ४ इंच व्यास की हैं जिनके द्वारा १२ पौन्ड वाले गोलों से भी भारी गोले फ़ैर किये जाते हैं। सन् १९१० ई० में जो तीन ड्रेडनाट तैयार हुए हैं उनका तोल १९२५० टन है परन्तु और बातें वैसी ही हैं जैसे १९०९ वाले जहाज़ में हैं। इन छः जहाज़ों में बहुत कम भेद मालूम होता है। पहले ड्रेडनाट में एक बड़ा और एक छोटा मस्तूल लगाया गया था और इनमें दोनों बड़े बड़े मस्तूल लगाये गये हैं।

१९११ ई० के ड्रेडनाट

तीसरे समूह में और तीन ड्रेडनाट बने, इसमें से एक १९६०० टन का है और दो २०२५० टन के हैं। इनकी साधारण चाल २४ मील प्रति घंटा है लेकिन २५००० अश्वबल से २५ मील तक चलाये गये हैं। इनमें भी १५ जोड़ी तोप पाँच स्थानों में लगाई गई हैं।

अत्यन्त बड़े ड्रेडनाट

चौथे समूह वाले ड्रेडनाट ऊपर वाले ड्रेडनाटों से अत्यन्त बड़े हैं और इनमें तोपें भी अधिक लगाई गई हैं। इस समूह में चार ड्रेडनाट हैं इनकी

*अश्वबल बल नापने की इकाई है। १ मिनट में ३३००० पौंड वा १६५०० सेर की कोई चीज़ १ फुट ऊपर उठाने में जो बल लगता है अथवा ३३० पौन्ड की चीज़ को १०० फुट उठाने में जो बल लगाने की आवश्यकता होती है उसको एक अश्व-बल कहते हैं।

लम्बाई ४५४ फीट है और तोल २२६८० टन है। चलाने वाले अंजनों में २७००० अश्व-बल की शक्ति है जिससे यह जहाज़ प्रति घंटा २४ मील बड़ी आसानी से जा सकते हैं। इनमें १० तोपें १३.५ इंच चौड़ी नली की लगी हुई हैं और इस बुद्धिमत्ता से रक्खी हुई हैं कि जहाज़ के चारों ओर फ़ैर किया जा सकता है। चार और ड्रेडनाट इनसे भी बड़े बनाये गये हैं जिनकी तोल २४००० टन है। १३.५इंच चौड़ी नली वाली १० तोपें और ४७इंच नली १०वाली मौजूद रहतीहैं। इन जहाज़ों की गति २४ मील प्रति घंटा है। ता० ६ मार्च १९१५ई० के 'लीडर' में एक लेख निकला है जिससे यह मालूम होता कि एक ड्रेडनाट २७००० टन का हाल ही में तैयार किया गया है। इसकी चाल २७, २८ मील प्रति घंटा है। भविष्यत् में मालूम नहीं कितने बड़े बड़े ड्रेडनाट तैयार किये जायँगे!

ड्रेडनाटों का नाम-करण

इन ड्रेडनाटों के जुदे जुदे नाम हैं। उन नामों की सूची देने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है; हाँ, इनके सम्बन्ध में कुछ थोड़ा सा लिखना अनुचित न होगा। यह ड्रेडनाट उन वीर पुरुषों और योद्धाओं के नाम से पुकारे जाते हैं जो पुराने समय के युद्धों में नाम कर गये हैं जैसे वेलिङ्गटन, नेलसन, ड्रेक इत्यादि। कुछ ड्रेडनाट उन जहाज़ों के नाम से पुकारे जाते हैं जिन्होंने १८०५ ई० की ट्राफालगर की लड़ाई में नाम किया है जैसे टेमरेर, नेपच्यून, कांकरर इत्यादि। इन पुराने ऐतिहासिक नामों को रख कर वैसे ही कामों की आशा की जाती है जो इन्हीं नाम वाले पहले के जहाज़ों से हुए थे। वास्तव में यह नाम सदैव वही कर्त्तव्य स्मरण दिलाते रहते हैं जो पुराने लोगों ने करके विजय प्राप्त की थी और यह बात भी है कि किसी काम में सफली-भूत होने की आशा से सफल होने के सब कर्त्तव्य जैसे पुरुषार्थ, उत्साह इत्यादि सदैव वर्त्तमान रहते हैं और इसका वर्त्तमान रहना ही विजयी होना सूचित करता रहता है।

टारपीडो-बोट-मर्दन (Destoyer or Torpedo-boat destr yer)

ग्रेट ब्रिटेन की जल सेना का प्रथम टारपीडो-बोट 'दामिनी' नाम की थी जो १८७७ ई० में बनी थी। यह एक छोटी सी नौका थी और इसका तौल २७ टन का था। इसकी गति २२ मील प्रति घंटा थी और इसमें एक टारपीडो-नली थी। पीछे से और जल-सैनिक राज्यों ने भी टारपीडो-बोटों का बनवाना आरम्भ किया और इसकी बनावट में बड़ी उन्नति भी की। फरासीसियों ने बहुत सी छोटी छोटी टारपीडो-बोटें बनाई जिससे ग्रेट-ब्रिटन को बड़ा भय बना रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रेट-ब्रिटन ने बहुत सी नावें ऐसी बनवायीं जो

चढ़ाई करने वाले टारपीडो-बोटोँ को नष्ट कर सकेँ। ऐसी नावोँ का बनाना १८८६ ई० मेँ आरम्भ किया गया और इसका नाम टारपीडो-पाश (Torpedo catcher) अथवा टारपीडो-गन-बोट रक्खा गया। यह ५०० टन से १००० टन तक तौल मेँ होते थे और इनकी गति २२ से २४ मील तक की होती थी। इनमेँ एक जोड़ी ऐसी तोप रक्खी जाती थीँ जिनकी नलियाँ ४ इंच और ४.७ इंच चौड़ी होती थीँ और जिनसे बहुत जल्दी जल्दी फ़र किया जा सकता था। इन तोपेँ के सिवा और भी छोटी छोटी तोपेँ रक्खी जाती थीँ। ऊपरी भाग पर टारपीडो के चलाने की दो नलियाँ भी रहती थीँ। किन्तु इनके द्वारा आवश्यकतानुसार यथेष्ट काम नहीँ निकल सकता था। इस लिए १८९३ ई० मेँ जल सेना की प्रबन्धकारिणी समिति ने टारपीडो-बोट-मर्दन (Torpedo-boat destroyer) बनाने की आज्ञा दी।

पहले पहल २५० टन (६८०० मन) तोल के टारपीडो-बोट-मर्दन तैयार किये गये जिनकी चाल ३१ मील प्रति घंटा थी। यह दो प्रकार का काम कर सकते थे। इनमेँ ऐसी तोपेँ प्रयोग की जाती थीँ जो १२ पौन्ड और ६ पौन्ड भारी गोले बरसा कर छोटी और मन्द गतिवाली टारपीडो-बोटोँ को विध्वंस कर सकती थीँ, और इनमेँ टारपीडो की नलियाँ भी लगाई गयी थीँ, जिनसे यह टारपीडो-बोटोँ का भी काम कर सकते थे। कुछ दिन के पश्चात और शीघ्रगामी 'मर्दन' की आवश्यकता पड़ने लगी इस लिए तीस वर्ष मेँ इनकी गति ३४॥ मील प्रति घंटा तक की गई, जिससे इनकी तोल भी कुछ बढ़ गयी।

कुछ दिनोँ के पश्चात ऐसे 'मर्दन' भी व्यर्थ ठहरे। इस लिए १९०२—०३ मेँ और मर्दन बनवाये गये और यह संयुक्तराज्य (ग्रेट ब्रिटन और आयरलैंड) की नदियोँ के नाम से पुकारे जाने लगे। यह बहुत ऊँचे बने हुए थे, इसलिए बड़े बड़े समुद्रोँ मेँ भी काम कर सकते थे और इनकी तोल ५५० टन से ६०० टन के बीच मेँ थी। इनकी चाल २९ मील के लगभग थी। इनमेँ चार तोपेँ १२ पौन्ड वाले गोलोँ के चलाने के लिये थीँ और दो टारपीडो चलाने की नलियाँ थीँ। १८९९ ई० तक टारपीडो-मर्दन ऐसे अंजनोँ से चलाये जाते थे, जिनके पिस्टन आगे पीछे चल कर जोर लगाते थे। जैसे रेलगाड़ी के अंजनोँ मेँ देखा जाता है। लेकिन इसी साल 'वाइपर' (Viper) नामक एक मर्दन बना, जो घुमनी पहियोँ के द्वारा चलाया जाता था और इसकी गति ४२, ४३ मील थी।

नदियोँ के नाम वाले 'मर्दन जो अधिकतर अंजनोँ के द्वारा चलाये जाते थे, १९०५ तक बनते रहे। इस साल ऐसे

नये मर्दन बने जिनका नामकरण जाति के नामों से हुआ अर्थात् इनके नाम वीर जातियों के नाम पर रक्खे गये। जैसे 'गोरखा, 'तातरी, जूलू इत्यादि। ऐसे 'मर्दन, एक दर्जन के लगभग अब भी काम कर रहे हैं। इनकी तोल ८६५-१००० टन के लगभग होती थी। इन पर से ५ तोपें १२ पौन्ड वाले गोले फैर कर सकती हैं। इनमें एक जोड़ी टारपीडो की नलियाँ भी रहती हैं व चलाने का काम घुमनी पहिया वाले अंजन करते हैं और कोयले के स्थान में तेल जलाया जाता है। इनकी साधारण चाल ३८ मील प्रति घंटा है किन्तु बहुत से और भी तेज़ चलाये जा सकते हैं। तातार नाम वाला मर्दन ४७ मील के लगभग प्रति घंटा चलता है।

१९०८ ई० में १६ टारपीडो-बोट मर्दन और निकाले गये। इनमें से किसी का नाम मच्छड़ किसीका बिच्छू किसी का शिकारी कुत्ता और लोमड़ी इत्यादि रक्खा गया अर्थात् यह सब नाम हानि-कारक और चीड़फाड़ कर खाने वाले जीवधारियों की तीक्ष्णता को प्रगट करते हैं। इनकी तोल ८६० टन से ९४० टन तक है और टरबाइन अंजन (घुमनी पहिया वाले अंजन) लगे हुए हैं जिससे इनकी चाल ३१ मील प्रति घंटा की होती है। इनमें केवल कोयला जलाया जाता है, जो १६५ से २१५ टन तक लादा जा सकता है। इन में २१ इंच व्यास वाली दो टारपीडो की नलियाँ एक चार इंच वाली फुरती से फ़ैर करने वाली नली, १२ पौन्ड वाले गोलों की चलाने वाली ३ तोपें काम में लायी जाती हैं। यह १६ मर्दन 'बीगुल क्लास' के नाम से विख्यात हैं। १९१० ई० में 'अकार्न क्लास' के २० मर्दन निकाले गये, जिनकी तोल ७८० टन के लगभग है और जिन में १३० टन तेल जलाने के लिए लादा जा सकता है। यह ३१ मील की चाल के लिए बनाये गये थे किन्तु कभी कभी ३३ मील प्रति घंटा भी चलाये जा सकते हैं। इनमें चार इंच व्यास वाली एक तोप अधिक और १२ पौन्ड वाले गोले को चलाने वाली एक तोप कम रह सकती है। और बातों में यह बीगुल क्लास के मर्दनों के समान हैं।

हर ऋतु में काम देने वाले मर्दन

२० मर्दन अभी हाल में निकाले गये हैं जो पिछले मर्दनों से काम में कुछ चढ़े हुए हैं। इनमें सब सामान वही है जैसा अकार्न क्लास वालों में होता है, केवल ३० टन तेल अधिक लादे जाने का प्रबन्ध होता है और चाल भी कुछ अधिक है। जो मर्दन अब बन रहे हैं, उनकी चाल ३७, ३८ मील के लगभग है। मर्दनों में एक विशेषता यह होती है कि इनके नाम जुदे जुदे होते हैं और टारपीडो बोटों का नाम नहीं रक्खा जाता, वरन् नम्बर लगा रहता है। इस लिए पहचा-नने में कोई असुविधा नहीं होती। अब

ऐसे मर्दन बनाये जा रहे हैं जो हर ऋतु में काम कर सकें।

(विज्ञान)

फुटकर बातें

रोमानिया की महारानी

रोमनिया युरोप में एक छोटा सा राज्य है। इटली के मित्र-दल के साथ मिल जाने से आशा की जाती है कि रोमानिया भी अब जल्द ही हमारी ओर होकर युद्ध क्षेत्र में उतरेगा। वहाँ के पिछले राजा चार्लस के समय में इस राज्य के हर एक विभाग में आशातीत उन्नति हुई है। कहते हैं चार्लस की महारानी ने अपने देश को उन्नत और शक्ति शाली बनाने में अपने पति का बहुत कुछ हाथ बटाया था। सन् १८७६ में जब टर्की के साथ रोमानिया का युद्ध छिड़ा था तो राज्य महिला ने नर्स बन कर युद्ध-क्षेत्र में घायल सैनिकों की सेवा की थी। वह अस्पतालों में दिन रात काम करती थी। जब युद्ध समाप्त हो गया तो सैनिकों ने थोड़ा थोड़ा रुपया इकट्ठा करके महारानी का एक स्मारक बनाया और उसका नाम रक्खा गया "घायलों की माता का स्मारक।"

***

विगत मनुष्य गणना के अनुसार भारतवर्ष में १००० पीछे पढ़ी लिखी स्त्रियों की संख्या इस प्रकार है—

	कुल	प्रान्तिक भाषा जानने वाली	अन्य भाषा जानने वाली
ईसाई स्त्रियों में	१२५	७४	५१ अंग्रेज़ी
बौद्ध ,, ,,	४२	४२	
जैन ,, ,,	१८	१७	१ ,,
सिक्ख ,, ,,	७	७	
हिन्दू ,, ,,	५	४	१ ,,
मुसलमान ,,	३	२	१ अन्य

हज़ार पीछे पढ़ी लिखी स्त्रियों का प्रान्तिक ब्यौरा इस प्रकार है:—

बङ्गाल ८३, बम्बई २७, युक्तप्रान्त १७, मद्रास १६, मध्य प्रान्त १६, मारवाड़ ११ और बरार ६।

इस तालिका से पाया जाता है कि बङ्गाल स्त्री शिक्षा में सब से आगे है।

***

समालोचना

रामायणी कथा—अनुवादक बा० भगवान दास हालना तथा पं० बद्रीदत्त शर्म्मा, प्रकाशक अभ्युदय प्रेस प्रयाग। मूल्य १) सजिल्द १।)

मूल पुस्तक बँगला के प्रसिद्ध विद्वान श्रीयुत दिनेश चन्द्र सेन ने लिखी है। उसी का यह सरस हिन्दी अनुवाद है। इस में, जैसा कि नाम से प्रकट है, रामायण की कथा के मुख्य मुख्य पात्रों का विस्तार पूर्वक बहुत ही विचार पूर्ण वर्णन किया है। शैली मनोरञ्जक और आलोचनात्मक है। कहीं कहीं बीच में मूल (बाल्मीकीय) रामायण के श्लोकों को भी दे दिया है। हिन्दी में यह अपूर्व पुस्तक है और संग्रह करने योग्य है।

बालधर्म शिक्षक—लेखक बा० काशीनाथ। प्रताप प्रेस कानपुर मूल्य =)

इस छोटी सी पुस्तक में प्रश्नोतर के रूप में विविध उपदेशों का संग्रह है। इस में जो कुछ वर्णन किया गया है वह सब ही उपयोगी और काम की बातें है। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इस पुस्तक के लिखते समय उसके नाम पर विशेष ध्यान नहीं रक्खा गया। क्योंकि इसमें ऐसे विषयों का भी समावेश है जिनका सम्बन्ध बालकों से नहीं किन्तु युवा और वृद्ध पुरुषों तथा स्त्रियों से है। दूसरे यह पुस्तक यदि बालकों के लिए लिखी गयी है तो इस के शब्द भी अत्यन्त सरल होने चाहिये थे। रचयिता का साहस फिर भी सराहनीय है। आशा है कि वे अगले संस्करण में इन बातों पर उचित ध्यान देंगे।

हिन्दी केसरी—श्रीयुत बाबू गङ्गा प्रसाद गुप्त जी द्वारा सम्पादित और काशी से हर पन्द्रहवें दिन प्रकाशित। वार्षिक मूल्य २)

मराठी पत्रों में लोकमान्य तिलक के "केसरी" पत्र का बड़ा नाम है। उसी के आधार पर कुछ दिन हुए, नागपूर से "हिन्दी केसरी" सप्ताहिक निकला था। वह भी बड़े आन बान का पत्र था। परन्तु अनेक कारणों से थोड़े दिन चल कर बन्द हो गया। अब फिर काशी से पाक्षिक केसरी निकलना आरम्भ हुआ है। जैसी कि इसके विषय में घोषणा की गयी थी, निसन्देह पत्र वैसा ही बढ़िया है। बीच में युद्ध सम्बन्धी कई एक चित्र भी हैं। लेख सब ही उत्तम और सुपाठ्य हैं। एक बहुत अच्छा लेख ऊपर्युक्त "साप्ताहिक हिन्दी केसरी" के तत्कालीन सम्पादक श्रीयुत पं० माधवराव सप्रे बी० ए० का भी है। हम इस पत्र का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी के प्रेमी इसका उचित आदर करेंगे।

जयाजी प्रताप (क्रारेष्ट नम्बर।)

ग्वालियर राज्य का "जयाजी प्रताप" दिनों दिन आशातीत उन्नति कर रहा है।

२ जून १६१५ का उसका अङ्क विशेष अंक है जिसके सारे लेख ग्वालियर राज्य के वन सम्बन्धी हैं। इन लेखों में धन क्या है, क्यों उनकी रक्षा की जाती है, ग्वालियर राज्य के उन विभागों के प्रबन्ध का इतिहास, वहाँ के मनुष्य तथा पैदावर आदि का उपयोगी और विचार पूर्ण वर्णन है। बीच में कहीं कहीं चित्र भी हैं। अगले मास में इसी प्रकार शिक्षा सम्बन्धी इस पत्र के एक विशेष अङ्क निकलने की सूचना दी गई है। हम सम्पादकों को उनके उद्योग की सफलता पर बधाई देते हैं और और विश्वास करते हैं कि उनका अगला विशेष अङ्क भी ऐसा ही बढ़िया होगा।

युरोपीय महायुद्ध का इतिहास

डबल-क्राउन अठपेजी पृष्ठ संख्या १०, मूल्य ॥=) मिलने का पता-आर० एल० बर्मन एण्ड को० ४०१।२ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता।

आज कल युरोप में जो युद्ध हो रहा है उससे संसार के सभी नर नारी थोड़े बहुत परिचित है परन्तु जिन जिन देशों में यह युद्ध हो रहा है उनके सम्बन्ध में यथार्थ जानकारी बहुत कम लोगों को है। इस पुस्तक में उन सब देशों का अच्छा परिचय दिया गया है। हिन्दी में अभी तक इस विषय की ऐसी पुस्तक नहीं छपी है। युरोप के युद्ध का रहस्य समझने के लिये इस पुस्तक को पढ़ना चाहिये। इसमें २६ चित्र हैं और युरोप का एक बहुत सुन्दर रङ्गीन नक़शा भी है। ॥=) आने में पुस्तक सस्ती है। आशा है लोग इस पुस्तक का आदर करेंगे।

इङ्कोटाइन (Inkotine)

अंग्रेजी ढंग की स्याहियों में अभी-तक स्टीफन की स्याही ही सबसे अधिक काम में लाई जाती है और वह स्याही होती भी अच्छी है। पर कुछ वर्षों से बम्बई की जी० एल० रानडे कम्पनी ने 'ब्ल्यूब्लेक' और 'लाल, दोनों ही तरह की बहुत बढ़िया स्याहियाँ तयार की हैं। इन दोनों स्याहियों को हम बराबर कई वर्षों से काम में ला रहे हैं हमारे विचार में यह स्याहियाँ स्टीफन आदि की स्याहियों से किसी बात में कम नहीं है। एक शीशी स्याही जिसमें २४ आउन्स स्याही तयार होती है।-) को मिलती है। जब स्वदेशी वस्तुएँ हमें विदेशी के मुकाबिले मे अच्छी और सस्ती मिल सकती हैं तो इतने पर भी यदि हम इन्हें काम में न लावें तो हम से अधिक मूर्ख और कौन होगा। आशा है कि अंग्रेजी ढंग की स्याही व्यवहार करने वाले इसको जरूर इस्तेमाल करेंगे। प्रयाग म गुरु नारायण ब्रादर्स' इसके एजेंट हैं और इनके यहाँ से यह मिल सकती है।

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।

Registered No. A. 511

षष्ठ वर्ष] श्रावण, सम्वत् १९७२ [पञ्चम दर्शन



वार्षिक मूल्य १॥)] सम्पादक— [प्रति संख्या =)॥

पण्डित सुदर्शनाचार्य्य बी॰ ए॰, श्रीमती गोपालदेवी।

विषय-सूची

गृहलक्ष्मी के नियम।

[१] गृहलक्ष्मी प्रति मास के आरम्भ में प्रकाशित होती है। [२] डाक-व्यय सहित इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) मात्र है। [३] नमूने की कापी मँगाने वालों को चाहिए कि =)॥ का टिकट भेज कर हम से नमूना मँगा लें। यदि वे ग्राहक हो जायँगे तो उन्हें शेष अङ्कों के लिए केवल १।=) देना पड़ेगा। [४] ग्राहकों को चाहिए अपना पता पूरा और साफ लिखें जिससे उनके पास पत्रिका पहुंचने में गड़बड़ी न पड़े। [५] वर्त्तमान समय की राजनीति तथा धार्मिक झगड़ों से सम्बन्ध रखने वाले लेख इस पत्रिका में नहीं छापे जाते। [६] विज्ञापन की छपाई एक बार के लिए प्रति पंक्ति।≈), आधे पृष्ठ के ५॥) और पूरे पृष्ठ के १०) हैं। अधिक दिनों के लिए विज्ञापन छपाना हो तो पत्र व्यवहार करके तै कर लेना चाहिए। [७] बैरङ्गपत्र नहीं लिए जायँगे। जवाबी कार्ड या आध आने का टिकट आये बिना किसी के पत्र का उत्तर नहीं दिया जायगा। [८] लेख, परिवर्त्तन के पत्र, समालोचना के लिए पुस्तकें आदि; रुपया तथा और सब तरह के गृहलक्ष्मी सम्बन्धी पत्र इस पते पर भेजने चाहिए—

श्रीमती गोपालदेवी
'गृहलक्ष्मी'-कार्य्यालय, इलाहाबाद



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः

"सा पत्नी या विनीता स्याचितज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, श्रावण, संवत् १९७२ [पञ्चम दर्शन

पावस विनय ।

(१)

आओ आओ श्याम घटाओ
आओ ताप घटाओ ।
आओ हम सबके हृदयों की
कलियों को विकसाओ ॥
इस प्यासी पृथ्वी को शीतल
पानी शीघ्र पिलाओ ।
अपनी वह नव छवि दरशाओ
श्याम घटाएँ आओ ॥

(२)

इन नीरसता के भावों को
अब तो अहो ! भगाओ ।
बल से हीन मीन से हमको
आओ फिर हरषाओ ॥
अपनी छटा निराली दिखला
ग्रीष्म-हृदय दहलाओ ।
भारत जग की बिपदा मेटो
श्याम घटाएँ आओ ॥

(३)

अहह ! ग्रीष्म ने किये बड़े
उत्पात न इसे बचाओ ।

एक बार तो शंख विजय का
इस पर शीघ्र बजाओ ॥
जल वर्षा का बाण चला
अब ग्रीषम दूर भगाओ ।
छिन्न भिन्न कर डालो इसको
श्याम घटाएँ आओ ॥

(४)

आशा जगत लगाये बैठा
हहर हहर घिर आओ ।
अब न बिलम्ब लगाओ, आओ,
निर्मल जल बरसाओ ।
इन बागो की बिगड़ी शोभा
आओ सपदि बनाओ ।
राख हो गई फूली कलियाँ
श्याम घटाएँ आओ ॥

(५)

देखो मोर मार मन बैठे
मोहनि मूर्ति दिखाओ ।
इनसे चित की तपन मिटाओ
करो प्रसन्न नचाओ ॥
ताप निहत यह हुआ जगत
दे जल हरियाली लाओ ।
अधिक प्रतीक्षा अब न कराओ
श्याम घटाएँ आओ ॥

(३)

इन श्री-हत कुसुमों को आओ
आओ धैर्य बँधाओ ।
ग्रीष्म हाथ से गये सताये
इन में जीवन लाओ ॥
नीरस जल बिन पुष्प हुए ये,
फिर इनको सरसाओ ।
मत त साओ बस आ जाओ
श्याम घटाएँ आओ ॥

(७)

नई तरंगें नई उमंग
मन मानस लहराओ ।
सुन्दर सलिलमयी पृथिवी कर
आनँद मोद बढ़ाओ ॥
इस उजड़े संसार बाग में
नूतन पुष्प खिलाओ ।
मृदु मृदु शीतल पवन बहाओ
श्याम घटाएँ आओ ॥

(८)

आओ आओ, सहा न जाता,
आओ शीघ्र सिधाओ ।
सरस आस अटके इन भ्रमरों
को रस कमल पिलाओ ॥
"कवि-प्रिय" की बस विनय यही
अब आओ नभ में छाओ ।
पूरी करो जगत की इच्छा
श्याम घटाएँ आओ ॥

—गिरिजादत्त शुक्ल

प्रेम परीक्षा

पहिला प्रकरण



ने मेरठ के एक मोहल्ले में जिसका नाम लालकुरती है, एक छोटा सा मकान किराये पर ले रक्खा था। उसी में मैं अपनी अर्धाङ्गिनी कमला और एकलौते लड़के श्याम के साथ रहता था। मैं नहर के दफ़तर में एक साधारण क्लार्क था और मुझे ३०) मासिक वेतन मिलता था। आप जानती हैं कि ३०) में आज कल क्या होता है। ३ तो मकान के किराये ही में चले जाते थे, ५ नौकर ले लेता था। रहे २२, उसमें से खाना पीना, लेना देना, पहरना सब ही कुछ करना होता था। मुझे लोग "बाबूजी" "बाबूजी" कहते थे। दफ़तर में बड़े साहब के सन्मुख बहुधा जाना पड़ता था। इस हेतु 'अपना मान अपने हाथ' कपड़े भी सुफ़ेद पहनने होते थे। हिन्दुस्तानी जूता पहिन कर साहब के कमरे में जाने का हुक्म नहीं था, इस कारण एक बूट जूता भी मोल ले लिया था। मेरे मकान के पास ही एक पीरबख़्श दुकानदार भी था। जब उसकी दुकान में नीलाम हुआ तो दो तीन पुराने कालर और टाई भी मोल ले लिये थे, उनही को उलटा सीधा बाँध कर दफ़तर को चला जाता था। रहा खाने का सामान, सो तरकारी इत्यादि तो नौकर ही ला देता था, किन्तु आटा दाल घी आदि मैं स्वयं पन्द्रह बीस दिन में दिन छिपने के पीछे ला दिया करता था। मेरा लड़का श्याम ४ वर्ष का था। जब मैं सायंकाल को छः सात बजे दफ़तर से आता तो वह बहुधा मकान के दरवाज़े पर मेरी बाट देखता हुआ मिलता। जब मैं दीख जाता तो वह दौड़कर मेरी गोद में चढ़ जाता। मैं भी उसको प्यार करके दिन भर की थकान, मियाँ महताबदीन हेडक्लार्क के कटु वाक्य और साहब के दुर्वचन तुरन्त भूल जाता था। जब मैं घर के अन्दर घुसता तो मेरी प्राणप्यारी कमला आनन्दमय मुस्कयान, अथाह प्रेम और एक निराली मन मोहिनी चित्तचोर छबि से प्रणाम करती हुई दीखती। अभी रास्ते में जब मैं साहब के बरताव और हेड क्लार्क के बात बे बात बुरा भला कहने पर सोचता आ रहा था तो मैं मन ही मन में यह कहता था कि इस अपमान और अनादर के जीवन से मौत लाख गुनी अच्छी है। ऐसी नौकरी से भीख माँग कर खा लेना अच्छा है। वह जीवन जिसकी प्रत्येक घटना दूसरे की 'हाँ' और 'ना' पर अवलम्बित हो, क्या जीने योग्य है। किन्तु श्याम और कमला के इस स्वागत के सामने मेरी सारी निराशाएँ लोप हो गईं, मेरा सारा दुःख इनके अथाह प्रेम की धारा में घुल गया, मेरे चेहरे की मुरदनी दूर हो गई, तरुण अवस्था

का उत्साह फिर मुझे अपनी रगों और पट्ठों में प्रतीत होने लगा। मेरा जीवन मुझे जीने के योग्य ज्ञात होने लगा। सचमुच मेरा घर स्वर्ग के समान था, कमला और श्याम मेरे जीवन के एक मात्र आधार थे और इनका प्रेम संजीवन बूटी के समान मेरी शोक-मूर्छा को दूर कर देता था और मैं समझने लगता था कि मैं जीवन के निकट और मृत्यु से बहुत दूर हूँ।

अब एक दिन का हाल सुनिए। छुट्टी का दिन था। मैं बाहर वाले कमरे में बैठा हुआ कुछ इधर उधर की उधेड़ बुन में लगा हुआ था कि इतने में अन्दर से आवाज आई, "देखो जी, यह श्याम रो रहा है, मुझे काम नहीं करने देता।" मैं अन्दर गया तो क्या देखता हूँ कि श्याम सहन में लोट रहा है और "मैं तो स्कूल जाऊँगा, मैं तो जाऊँगा," कह कह कर रो रहा है। मैं उसे गोद में उठा कर बाहर ले आया और एक मिठाई बेचने वाले के पास से थोड़ी सी मिठाई ले दी। जब वह कुछ शान्त हुआ तो मैं ने पूछा, "श्याम तुम क्यों रो रहे थे ?"

श्याम—मैं स्कूल जाने के वास्ते रो रहा था।

मैं—इसमें रोने की कौन सी बात थी?

श्याम—मोहन (पड़ोसी का लड़का) रोज़ चिढ़ाता है कि तू स्कूल नहीं जाता, तेरे पास मेरे जैसा कोट नहीं, तेरे पास मेरे जैसा बूट भी नहीं। उसको तो मैं पीट देता था, पर उसकी देखा देखी आज और लड़के भी मुझे चिढ़ाने लगे।

मैं—अच्छा तुम्हें उन से भी अच्छी चीज़ें ले देंगे और स्कूल में तुम्हारा नाम लिखा देंगे।

श्याम तो खुश खुश चला गया और सारी बात चीत अपनी माँ को जा सुनाई, किन्तु मेरे मन पर इसका बड़ा असर हुआ। पाठकगण! सब से बड़ा दुःख मनुष्य को उस समय होता है, जब उसे यह प्रतीत होता है कि वह अपने कर्तव्य को पालन नहीं कर सकता। जब मैं श्याम को देखता था तो मुझे यह प्रतीत होता था कि बच्चे केवल गुड़ियों के समान प्यार करने को नहीं होते, यह प्यार झूठा प्यार है, बल्कि इस वास्ते होते हैं कि वह बड़े होकर हमारे नाम को उज्वल करें, हमारी जाति के सच्चे प्रेमी, हमारे देश के सचेत रक्षक और हमारे धर्म के वास्ते प्राण न्योछावर कर देने वाले बनें। किन्तु मैं क्या करता आप मेरे खर्च और आमदनी दोनों को जानते हैं, केवल ५) मासिक मुझे बड़ी मुशकिल से बचता था, उसको मैं डाकखाने में जमा करता था। मेरी इतनी आमदनी ही नहीं थी कि मैं कुछ फजूल खरची कर सकता, हाँ! हुक्के और पान की अवश्य आदत थी, सो आज से मैं ने प्रण कर लिया कि हुक्का पीना और पान खाना बन्द और जो दो तीन रुपये इस प्रकार बचेंगे,

उन्हें श्याम के पढ़ने में लगाऊँगा। अब मुझे अपनी नौकरी से घृणा होने लगी।

दूसरा प्रकरण

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जागृति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

दिवाकर की बिचरती हुई किरणें सारे संसार के स्वर्ण को लूट आकाश पर चढ़ गईं और श्याम बादलों में रम कर उनको भाँति भाँति के रंगों से आभूषित करने लगीं। कर्म के बंधनों में बँधे हुए बंदी दिन भर की दौड़ धूप के पश्चात् अपने अपने कारागारों में आ गये और अपने स्वामियों का क्रोध स्त्रियों और बच्चों पर उतारने लगे। मैं भी दफ़तर से आया और हाथ मुँह धोने के पश्चात् खाना खाया। जब खाना खा चुका तो कमला बोली, "घी हो चुका है।" मैं ने उत्तर दिया कि "अच्छा थोड़ी देर में लादूँगा।" किन्तु बैठे बैठे मुझे ध्यान आया कि १ रुपये का घी हमारे घर में दस दिन चलता है। १४ छटाक घी दस दिन में प्रति दिन डेढ़ छटाक से कुछ कम पड़ा। उस में से सवा छ० तो मुझे ही दोनों वक्तों में मिल जाता है बाकी पाव छ० में श्याम को मिलता है और तरकारी इत्यादि का छौंकना अलग रहा। कमला के हिस्से में क्या रहा? मैं ने अपने अनुमान की परीक्षा लेनी चाही। जब प्रिया अपनी थाली लगा चुकी, तो मैं ने उसे किसी काम के बहाने से ऊपर भेज दिया और आप रसोई में जाकर थाली देखी। हा दैव! मेरे खाने और उसके खाने में कितना अन्तर था! सूखी सूखी कहीं कहीं से जली हुई बे चुपड़ी चार रोटी जरा सी बहुत जरासी दाल जिसमें एक बूँद घी नहीं, तरकारी बिलकुल नदारद और थोड़ा सा नमक—दूसरे दिन फिर मैं ने इसी प्रकार देखा। उस दिन दाल भी नदारद थी। हाँ, नमक का परिमाण पहिले दिन से अधिक था।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मेरा घर स्वर्ग के समान था। आज मुझे पता चला कि स्वर्ग और नरक में कितना भेद है। जिस स्वर्ग की नीव नरक की दीवारों के ऊपर हो वह स्वर्ग नरक से भी अधम है। जो सुख दुःख की शिला पर स्थापित हो, उस सुख से दुःख कई गुना अच्छा है। जिस महल की दीवारों में मानुषिक पीड़ा और आँसुओं का आवेश हो, उस से फूँस की झोपड़ी उत्तम है। कारण यह है कि यह स्वर्ग, सुख और मंदिर मुलम्मे के गहनों के समान हैं, जिनको देख कर मनुष्य को स्वर्ण का धोखा हो जाता है। प्यारे पाठक गण! मेरा विचार है कि केवल मैं ही नहीं हूँ, जिसको इस प्रकार एक देवी के निर्व्याज प्रेम के हेतु धोखा हुआ है, किन्तु और भी बहुत से हैं जो श्वेत रेत को जल की धारा समझे बैठे हैं। यदि आप अपने घरों की पड़ताल करेंगे, तो आपको भी पता चलेगा कि जिस उजाले के मद में आप मतवाले हैं,

वह उस मोमबत्ती का उजाला है जो स्वयं जल जल कर आपको उजाला पहुँचा रही है।

मुझे अपने घर की दशा को देख कर बड़ा दुःख हुआ। जिसको मैं प्राणेश्वरी कहता था, वह मुझे सुख पहुँचाने के वास्ते कैसे कैसे कष्ट उठाती थी। मेरे प्रेम और उसके प्रेम में कितना अन्तर था, मेरा प्रेम केवल दिखावटी था, मैं झूठ मूठ का प्रेमी बना बैठा था। मेरे दुःख का शूल क्षण प्रति क्षण तीक्ष्ण होने लगा। मैं ने अपने भावों को प्रिया से छिपाया और कुछ वस्तु लाने के बहाने बाज़ार चला गया।

उस दिन रात को मुझे नींद नहीं आयी। रात को कई बार उठ कर मैं ने कमला का आनन्दमय चेहरा देखा। सच है! जो सच्चे प्रेम के उपासक होते हैं जो अपने कर्त्तव्य को पालन करते हैं, वह वैसी ही मीठी नींद सोते हैं जैसी कि मेरी कमला सो रही थी। उपाय सोचते सोचते प्रातःकाल हो गया किन्तु उपाय न सूझा। मैं दफ़्तर को चला गया और काम में मन को बहलाने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु मेरा मन ऐसा चंचल था कि बार बार उसी हृदय के घाओं को दुखाता था। सायंकाल होते होते मेरा पक्का इरादा हो गया कि इस नौकरी को छोड़ दूँगा।

बड़ी मुशकिल से यह बात मैं ने तै की किन्तु ज्योंही मैं इस परिणाम पर पहुँचा, मेरे मन में एक खलबली मची। ग्रामोफोन बाजे के समान उसमें घूँ घूँ होने लगी और फिर उसमें से यह आवाज़ आयी—"नौकरी छोड़ कर खाओगे कहाँ से?"

मैं ने उत्तर दिया, "तू जानता है कि मैं बहुत दिन से अपमान का जीवन जी रहा हूँ, बहुत दिन से गालियाँ खा खा कर अपने रक्त की घूँट पी रहा हूँ, अपने जीवन का एक बड़ा भाग नीच दासत्व में गला रहा हूँ, तिस पर भी जिनके वास्ते यह सब कुछ सहता हूँ, उनको खाना पीना भली प्रकार नसीब नहीं होता। अब मुझ से यह दुःख नहीं सहा जाता, मैं भीख माँग कर खा लूँगा, मैं कुलियों के समान मिट्टी ढो कर जीवन पालन करूँगा।"

मेरा मन कुछ देर तो चुप रहा किन्तु फिर बोल उठा, "भीख कहाँ माँगोगे! मजदूरी कहाँ करोगे? "बाबू साहब" कहला कहला कर तुमसे यह नीच काम किस प्रकार हो सकेगा।"

मैं ने उत्तर दिया, "बाबू जी" कहलाने में मैं कोई गौरव की बात नहीं समझता। इस उपनाम के साथ बहुत सी अपमान जनक बातें, मुझे याद आया करती हैं। साहब का "डेमफूल" और हेड क्लार्क के दुर्वचन मेरी मानसिक पीड़ा की वृद्धि किया करते हैं। जब कोई 'बाबू जी" हा नहीं कहेगा, तो यह दुःख

देने वाली बातें भी मुझे याद नहीं आया करेंगी। रहूँगा कहाँ? सो मैं ऐसे दूर देश में चला जाऊँगा, जहाँ मुझे कोई न जानता हो और वहाँ एक साधारण कुली के समान अपने मान और गौरव की रक्षा करते हुए अपनी आजीवका पालन करूँगा।" मैं यह अपना कथन समाप्त भी न करने पाया था कि मेरा मन बोल उठा, "कमला और श्याम? यदि यह विचार था तो विवाह क्यों किया था।" मैंने उत्तर में कहा, "मेरे चंचल साथी! तू तो भली प्रकार जानता है कि विवाह करना मेरे बस में नहीं था। मेरा विवाह उस समय हो गया था, जिस समय मेरी और तेरी भली प्रकार जान पहिचान भी नहीं हुई थी। मैंने हिन्दू गृह में जन्म लिया था, मेरे कोई अधिकार नहीं थे मेरी सम्मति किसी बात में नहीं ली जाती थी, माता पिता अपनी मनमानी करते थे। मेरे पढ़ाने लिखाने में मेरी सम्मति नहीं थी, मेरे भविष्य के ढालने में मेरा हाथ नहीं था। विवाह के समय किसी ने मेरी सलाह नहीं ली, फिर तू ही बतला कि मैं क्या करता।"

मेरा मन बोला, "तुमने यह सब कथाएं कहीं, अब इसके दुहराने से क्या लाभ? अब बतलाओ कि नौकरी छोड़ कर कमला और श्याम का किस प्रकार पालन करोगे? पागल मत बनो, दूर देश में जाकर इन्हें कहाँ रक्खोगे? इनके कोमल शरीर चने खा-कर किस प्रकार रहेंगे। एक दो दिन इनको रूखी सूखी रोटी खाते हुए देख कर तुम नौकरी छोड़ने को तत्पर हो गये हो। आये दिन इन्हें भूखे प्यासे किस प्रकार देख सकोगे? देखो कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी हठ-धर्मी से तुम्हारी कोमल कँमलरूपी कमला कुम्हला जावे। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारा श्याम भूख और प्यास, दुःख और कष्ट का लड़कपन व्यतीत कर और बड़ा होकर तुम्हें तुम्हारे इस बरताव को याद दिलावे। उस समय मुझे दोष मत देना।" मेरा मन इतना कह कर चुप हो गया और मुझे एक अथाह भँवर में धक्का दे गया।

—उमराव सिंह गुप्त

प्रेम की भिखारिन

न है धनकी वा जनकी कुछ चाह मुझको।
न जीवन की, जोबन की परवाह मुझको॥
तुम्हारो रहूँ औ' तुम्हारी कहाऊँ।
सिवा इसके कुछ भी नहीं चाहती हूँ॥
प्रभो, प्रेम की मैं भिखारिन बनी हूँ।
वही चाहती हूँ, वही चाहती हूँ॥१॥
न कोयल की कू कू मुझे है सुहाती।
पपीहा की पी पी भी मुझको न भाती॥
सदा चाहती हूँ सुनू तेरी बोली।
सिवा इसके कुछ भी नहीं चाहती हूँ॥
प्रभो, प्रेम की मैं भिखारिन बनी हूँ।
वही चाहती हूँ, वही चाहती हूँ॥२॥

गुलशन में गुल कितने फूले हुए हैं।
भ्रमर भी जिन्हें देख भूले हुए हैं॥
न वैसे गुलों की भी है चाह मुझको।
न वैसे पै भौंरी बना चाहती हूँ॥
प्रभो, प्रेम की मैं भिखारिन बनी हूँ।
वही चाहती हूँ, वही चाहती हूँ॥ ३॥

सुनो ऐ मेरे हुस्न[1] के अयन[2] प्यारे।
तेरी शक्ल पर लाख हूँ मयन[3] वारे॥
अरे दिल दुलारे वो नैनों के तारे।
तुम्हारे सिवा कुछ नहीं चाहती हूँ॥
प्रभो, प्रेम की मैं भिखारिन बनी हूँ।
वही चाहती हूँ वही चाहती हूँ॥ ४॥

—मनोरञ्जनप्रसाद सिंह

नोट—१ रूप २ घर ३ कामदेव

वृद्ध विवाह का मनोरञ्जक दृश्य

यदि एक ओर बालविवाह हमारे सामाजिक कुरीतियों का मुख्य अङ्ग है तो दूसरी ओर वृद्ध विवाह भी उससे कुछ कम नहीं है। आश्चर्य्य है कि सोशल कान्फ्रेन्सों में हमारे नेता बालविवाह के विरुद्ध तो बड़े बड़े लम्बे व्याख्यान देकर प्रस्ताव पास करते हैं, परन्तु वृद्ध विवाह पर एक शब्द भी नहीं कहा जाता।

हे सामाजिक सुधार के दम भरने वालो! क्या कभी इस ओर भी तुम्हारा ध्यान गया है कि हर साल कितनी बे मुँह की बालिकायें माता पिता के लोभ और दरिद्रता के कारण बुडढों के गले मढ़ी जाती हैं? ऐसे पैशाचिक विवाह का परिणाम किसी से छिपा हुआ नहीं है। सभी जानते हैं कि चार दिन के पीछे बुढ़ऊ बाबा तो परलोक को चले जाते हैं और बेचारी स्त्री युवा अवस्था ही में राँड बन कर जन्म भर नाना प्रकार के कष्ट भोगा करती हैं।

क्या ही अच्छा हो यदि—नीचे लिखी घटना के सदृश—ऐसे विवाहों का स्वयं कन्याओं की ओर से बहिष्कार होने लगे।

इसी आषाढ़ के महीने की बात है कि प्रयाग राज के एक मुख़्तार साहब, जिनकी आयु पचास वर्ष से ऊपर होगी, एक नवयुवती कन्या को चाहने के लिये दुल्हा बन एक गाँव में गये। दैवयोग से बरात कुछ दिन रहे द्वारे लगी, जिससे कन्या को वर देखने का पूरा अवसर मिल गया। कदाचित् पहले से वह जानती न थी कि दुल्हा की क्या अवस्था है। जब बरात द्वार पर से जनवासे गई और पाणिग्रहण संस्कार के लिये व्यवस्था होने लगी तो कन्या ने हिम्मत करके अपने संरक्षकों से स्पष्ट रूप से कह दिया कि मैं ऐसे विवाह से तो कुँये में गिर जाना उत्तम समझती हूँ।" कहते हैं उसने अपने गाँव वालों से दोहाई दी कि मुझे इस बुड्ढे के पंजे से बचाओ। फल यह हुआ कि सब लोग उसकी सहायता के लिए आ खड़े हुए और मुख़्तार साहब उल्टे पाँव चुप चाप अपने घर लौट आये।

यदि इस कन्या का दो चार कन्याएँ और अनुकरण करें तो बुड्ढों को बालिकाओं के साथ ब्याह करने का साहस न हो।

—शालिग्राम

स्त्री-शिक्षा का एक सरल उपाय

सुभद्रा—क्यों बहिन! आज रसोई बनाने में इतनी देर क्यों? क्या भय्या को आज कचहरी नहीं जाना है?

सुशीला—बहिन सुभद्रा! तुम को नहीं मालूम कि आज तमाम स्कूल व कचहरियाँ बन्द हैं; आज १२ दिसम्बर है। दो वर्ष हुए कि आज ही के दिन श्री महाराज जार्ज पंचम ने दिल्ली में राजसिंहासन को अपने चरणों से पवित्र किया था। मेरी समझ में आर्य्य राजाओं के बाद यदि कोई दूसरा चक्रवर्त्ती सम्राट हुआ है, तो वे हमारे महाराज जार्ज पंचम ही कहे जा सक्ते हैं। यह दिन इस शताब्दी में हिन्दुस्थानियों के आनन्द मनाने का है। इसी कारण आज कुछ थोड़ी देर हो गई है। तुम थोड़ी देर ठहरो, तो हम तुम दोनों बातें करें। पाठक यह जानने के बड़े उत्सुक होंगे, कि ये दोनों लड़कियाँ कौन थीं, इस लिए उनका मैं यहीं परिचय दिये देता हूँ।

दोनों लड़कियाँ काशी की रहने वाली हैं। दोनों का विवाह हो गया है। एक की अवस्था अभी केवल १६ वर्ष की होगी और दूसरी की २० वर्ष की। सुभद्रा के पति काशी के एक कालिज में बी० ए० क्लास में पढ़ते हैं। आपकी अवस्था लगभग २२ वर्ष की होगी। आपको सभा सोसाइटी इत्यादि से अधिक रुचि है। इसी कारण आप कई एक सभाओं के सभासद भी हैं। आप आर्य्य समाज से भी प्रेम रखते हैं और हर रविवार को समाज मंदिर में भी जाते हैं। पर शोक के साथ लिखना पड़ता है कि "आर्य्य समाज के उद्देश्यों का प्रभाव आप के हृदय पर कितना पड़ा है और सभाओं से आपको क्या लाभ पहुँचा है" इन सवालों का उत्तर पाठक गण को इनकी स्त्री की नीचे लिखी बातों से ही मिल जायगा।

सुशीला के पति काशी में वकील हैं। इनकी अवस्था लगभग ४० वर्ष की होगी। इनके ऊपर भी बीसवीं शताब्दी का कम असर नहीं पड़ा है। इनको भी सभा सोसाइटी से कम प्रेम नहीं। आप भी कई सभाओं से सम्बन्ध रखते हैं। आपको नीचे लिखी अंग्रेजी कहावत से अधिक प्रेम है। मानो आप इसका नित्य पाठ करते हैं। और अपने चरित्र पर घटाने का प्रयत्न करते हैं। कहावत यह है।

"If you want to be a reformer, first reform yourself."

अर्थात्—"अगर तुम सुधारक बनना चाहते हो, तो सब से पहिले अपने को सुधारो।"

आप एक अच्छे व्याख्यानदाता भी

है, पर इनके हर एक व्याख्यान का सारांश (Practical work) अर्थात् "करके दिखाना" ही रहता है। जिसके वे स्वयम् भक्त हैं।

अस्तु! थोड़ी देर सुभद्रा ठहरी रही, कि इतने में सुशीला ने खा खिला कर छुट्टी पाई। तब वह सुभद्रा से प्रसन्न चित्त होकर बोली।

सु०—क्यों बहिन! आज किधर सूरज उगे हैं, जो तुम्हारा दर्शन मिला।

सुभद्रा—क्या कहैं बहिन! हमको अपने भाग्य पर बहुत दुःख होता है। जब तक मैं १० वर्ष की नहीं हुई थी और मेरा विवाह नहीं हुआ था तब तक मैं अपने नैहर में कुछ स्वतंत्र थी। पड़ोसियों के घर आ जा भी सकती थी, पर जब से मैं इस नगर में आई हूँ, तब से मानों एक बंदिनी की नाईं घर में बन्द रहती हूँ। आपके घर आने को कौन कहे, बाहर दरवाजे तक आना मना है। आज तो मैं बड़े संयोग से यहाँ आई हूँ। कई बार मैंने सास जी से विनती की, तब उनके कहीं चले जाने पर अम्मा ने यहाँ आने की आज्ञा दी है। सो भी बहुत झिड़कियाँ सुना कर। चलते समय उन्होंने तिरस्कार दिया है कि "देखना कहीं सारा दिन न बिता देना। एक घंटे में चली आना। मैं जानती हूँ कि शहर की स्त्रियाँ बड़ी चंचल होती हैं उनको घर में रहना अब्र लगता है, शौक़ीन परले दर्जे की होती हैं, बिना पान पत्ता के वे एक पल भर भी नहीं रह सकतीं। मुझ को देखो कि मेरी सारी उम्र व्यतीत हो गई, पर मैंने गंगा स्नान की कौन कहे, ड्योढ़ी के बाहर भी पाँव न रक्खा।" मुझको ये बातें तीर सी लगीं, पर मैंने फिर अपने जी को समझा कर यहाँ चली आई।

सुशीला—सुभद्रा! तुम्हारे यहाँ आने की कृपा करने के लिए मैं तुमको सहर्ष धन्यवाद देती हूँ।

फिर सुशीला कुशल क्षेम पूछने के बाद बड़े आदर से सुभद्रा को अपने कमरे में ले गई। जहाँ वह प्रति दिन दोपहर को पुस्तकावलोकन किया करती थी। उसने अपनी अलमारी से एक पुस्तक निकाल कर पढ़ना आरंभ किया। यह देखते ही सुभद्रा झट बोल उठी।

सुभद्रा—क्या बहिन तुम भी पढ़ती हो? तुम पढ़के क्या करोगी?

सुशीला—सुभद्रा! तुम्हारे इन प्रश्नों पर मुझ को आश्चर्य होता है। तुम एक ऐसे नव युवक की पत्नी होकर भी ऐसी बात पूछती हो। क्या वे तुमको नहीं पढ़ाते?

अन्तिम बात सुनते ही सुभद्रा की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वह रो रो कर कहने लगी।

सुभद्रा—बहिन पढ़ाने की कौन कहे,

वे तो मुझसे बोलना तक नहीं चाहते। घर में पाँव रखते ही उनकी आँखें लाल हो जाती हैं। मानो वे मुझको जीती भी नहीं देख सकते। वे कहते हैं कि "तुम मूर्ख हो। मेरा विवाह यदि एक पढ़ी लिखी स्त्री से हुआ होता, तो अच्छा था। तुम को अगर मैं कोई धर्म की बात बतलाता हूँ, तो तुम चुप होकर बिना समझे बूझे इस तरह सुनती हो जैसे भैंस के सामने वेद पाठ हो और वह एक अक्षर न समझे। बस, तुम से बात ही करना व्यर्थ है।"

सुशीला—बहिन ! तुम शोक मत करो। वे स्वयं ज्ञानवान नहीं जान पड़ते। आज कल के नव युवकों की यही दशा है। व्याख्यान देते समय तो वे गुरु वशिष्ठ ही जान पड़ते हैं, पर स्वयं एक तिल भर भी उसके अनुसार नहीं चलते! बहिन ! बुरा मानने की बात नहीं, मालूम पड़ता है, कि वे धर्म की किताबें बहुत कम पढ़ते हैं। उनको इतना भी नहीं मालूम, कि स्त्री पुरुष में कैसा प्रेम होना चाहिए। स्त्री को अपने पति के साथ और पति को अपनी पत्नी के साथ कैसा वर्ताव करना चाहिए। यह मैंने माना कि तुम निरक्षरा हो, पर उनकी अर्धाङ्गिनी तो हो न ? तो क्या वे अपने आधे अंग को रोग लग जाने पर काट कर फेंक देंगे व औषधि इत्यादि से अच्छा न करेंगे जो तुम को पढ़ाकर सुयोग्य नहीं बनाना चाहते।

यह विशेषतः उन्हीं का हाल नहीं है। आज कल सारे नवयुवक यही चाहते हैं कि हमको पढ़ी लिखी पत्नी मिले, पर अपने घर पढ़ाने का यत्न नहीं करते। उनको यही नहीं सूझती कि क्या स्त्रियाँ पेट से पढ़ कर निकलेंगी जबकि पुराने विचार के माता पिता लड़कियों का पढ़ाना अधर्म समझते हैं और ये आधुनिक नवयुवक केवल व्याख्यान के अन्त समय तक ही (Reformer) सुधारक बने रहते हैं, पर घर के सुधार का कुछ भी फ़िक्र नहीं रखते। अस्तु ! ठीक है यदि यही लोग सुधर जायँ, तो फिर भारत की उन्नति में क्या कोर कसर रहे।

पर बहिन सुभद्रा ! चाहे वे तुम्हारे साथ कितना ही बुरा वर्ताव क्यों न करें, पर तुम अपने धर्म्म से मुख न मोड़ना। उनकी बात का उत्तर कभी न देना। मनु महाराज अपने धर्म शास्त्र में आज्ञा देते हैं कि—

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः

अर्थात्—"शील रहित कामी तथा विद्यादि गुणों से हीन भी पति हो, तथापि अच्छी स्त्री को वह देववत् आराधन योग्य है।

फिर कहते हैं कि—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥

अर्थात्—"स्त्रियों का अलग कोई यज्ञ नहीं हैं, न व्रत, न उपवास, केवल एक पति की सेवा सुश्रूषा से स्वर्ग में पूज्य हो जाती हैं।

फिर—

पत्यौ जीवति या स्त्री उपवासं व्रतं चरेत्।
आयुष्यं बाधते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति।

"जो स्त्री पति के जीते हुए भूकी रह कर व्रत करती हैं, वह पति की आयु को बाधा पहुँचाती और नरक को जाती हैं।" परन्तु बहिन, इस श्लोक के विपरीत आजकल सभी स्त्रियाँ चलती हैं। वे झूठी पूजा पाठ के आगे पति को कुछ भी नहीं समझतीं। अपने मुहल्ले ही में जानकी पंडिताइन को देखो, कि कल रात को वह करवा गौर की पूजा करती थीं, उसी समय उसके पति ने पानी माँगा, वह पहिले तो कुछ न बोलीं। उनके कई बार कहने पर वह झुंझला कर उठीं और उनके आगे एक लोटा पानी पटक कर कहने लगीं कि "क्या पानी विना जान निकली जाती थी, जो इतनी जल्दी करने लगे।"

इसी तरह दोनों में वार्तालाप हो ही रहा था कि सुभद्रा की नौकरानी ने हाँक लगाई और सुभद्रा को चलने के लिए कहने लगी। सुभद्रा का दिल जाने को न चाहता था, पर क्या करें, मजबूर थी। आखिरकार सुशीला से दूसरे दिन आने का वादा करके अपने घर चली गई।

(क्रमशः)

—महावीर प्रसाद वर्मा

दिल्लगी से हानि



पाठिकाओ, आज आपको मैं ग्रामीण होली का एक ऐसा हृदय बेधक सच्चा दृश्य दिखाना चाहता हूँ कि जिसे पढ़ रोंगटे खड़े होते हैं और दिल्लगी का अनिष्ट परिणामी होना स्वयम् सिद्ध हो जाता है। आश्चर्य मुझे इस बात का है कि स्त्रियों और पुरुषों की दिल्लगी ही कैसी ? क्योंकि कहीं भी कोई लेख या प्रमाण हमे ऐसा नहीं मिलता जिसमें कुलबालाओं का किसी भी पुरुष के साथ दिल्लगी करना वर्णन हो।

बात इसी होली की है। अपने घर से कुन्दन नामी अहीर अपनी सुसराल रजपुरा ग्राम में बूरा खाने और होली खेलने आया। सुसराल में केवल उस का साला और साले की बहू दो ही थे। इन्होंने कुन्दन की बड़ी आवभगत की और बड़े आदर मान के साथ स्वागत किया।

होली के दिवस कुन्दन और उसकी सलहज दोनों में बड़े ज़ोर की होली हुई।

रंग गुलाल मिट्टी कीचड़ द्वारा कुन्दन ने अपनी सलहज की खूब ही मट्टी पलीद की, किन्तु निर्बल होने के कारण सलहज अपने जी का अरमान न निकाल सकी, इसलिए उस समय मन मसोस कर रह गई।

दोपहर हुआ और सब कोई स्नान आदि से निश्चिन्त हो खा पीकर सोये। कुन्दन भी खाकर एक बड़े से घने वृक्ष के नीचे चारपाई डाल कर सोरहा। सलहज देवी अभी तक अपनी होली का बदला भूली नहीँ थी—उसने ऐसा सुअवसर देख झट ही एक दिल्लगी करने का मन्सूबा पक्का कर लिया।

घर मैं जाकर तुरन्त ही वह दो मोटी रस्सियाँ लाई और चुपचाप एक रस्सी से कुन्दन का पैर बाँध कर दूसरा सिरा पेड़ की जड़ से बाँध दिया तथा दूसरी रस्सी से उसका दूसरा पैर बाँध कर वहीं बैठी हुई एक भैंस के पाँव से उसका दूसरा सिरा जा बाँधा और तब लगी ज़ोर से तालियाँ पीट पीट कर हँसने और भैंस को एक लकड़ी से पीटने।

पाठिकाओ, अब तनिक हृदय थाम कर सुनिये? जब भैंस पर मार पड़ी तो भैंस उठकर भागने लगी, उस समय—हा! उस समय बेचारे निरपराध कुन्दन के क्रन्दन से सारा गाँव मीठी नींद से चौंक पड़ा और बहुतेरे युवक घबराये हुए वहाँ पर आ पहुँचे, किन्तु अब क्या हो सकता था, कुन्दन तो बीच से चिड़कर दो टुकड़े हुआ पड़ा था।

इस ख़बर के फैलते ही पुलिस भी आ पहुँची और मामले की तहकीकात करके रिपोर्ट सलहज देवी सहित जिले को चालान कर दी। जज महोदय ने इस अनौखी दिल्लगी पर बड़ा शोक प्रगट किया और उस दिल्लगी की भूखी सलहज को द्वीपान्तर वास की आज्ञा दी।

देवियो, आपने देखा? दिल्लगी का कैसा भयानक परिणाम हुआ, उपरोक्त कथा से अवश्य ही यह आशय निकलता है कि कभी किसी कुलबाला को स्वप्न मैं भी किसी परपुरुष के साथ दिल्लगी नहीं करनी चाहिये।

हा! समय तेरी बलिहारी है, कभी जो भाभी या सलहज इत्यादि पूज्य दृष्टि से देखी जाती थीँ आज तेरी कृपा से आधी स्त्री समझी जाती हैं और उनसे करनी न करनी सब ही प्रकार की दिल्लगी की जाती है। किन्तु नहीँ—इसमैं पुरुषोँ का उतना दोष नहीँ क्योँकि किसी ने सत्य कहा है—कि "जब अपना दाम खोटा है तब परखने वाले को क्या दोष है।" इस- लिये देवियो अब कृपा कर इन दूषणोँ को दूर कर आत्मबल का सहारा लीजिये। तब ही ईश्वर आप पर सदय होंगे।

—लक्ष्मीनारायण गुप्त

स्नान किस प्रकार करना चाहिये ?

खान, पान और स्नान इत्यादि नित्य क्रियाओं में अपनी अज्ञानता दूर हो और कुदरत के नियमाके अनुसार आचरण किया जाय, तो वे ही नित्य क्रियायें कई रोग मिटाने में सहायता कर सकती हैं। जल के प्रयोगसे अनेक रोग नष्ट होते हैं, यह बात वर्तमान समय में विशेष अनुभव में आती जाती है। प्राचीन समयमें स्नानको एक अति उपयोगी दिन चर्या माना है। तीर्थ के स्थानों में स्नान का ही अधिक महत्व कहा गया है। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातियों को स्नान किस प्रकार करना, इसके लिये "स्नान विधि" की दिनचर्या में गणना की है। मुसलमान बादशाही के समय के हमाम-खाने वर्तमान समय के रूम (स्नान करनेके लिए बनाये हुए खास मकान) इस बातके स्पष्ट प्रमाण हैं और रोग नष्ट करने के लिये पानी के प्रयोग करनेवाले वर्तमान समयके डाक्टर पानी के आश्चर्य जनक लाभोंके सम्बन्ध में अपना अनुभव प्रकट करते हैं।

जैसे खानपान में हमने कुदरत व आरोग्यता के नियमों का विशेष रूप से उल्लंघन किया है, वैसेही स्नान के विषय में हम अत्यन्त अज्ञान हैं। यह अज्ञान यहाँ तक है कि स्नान का आरोग्यताके साथ कुछ सम्बन्ध है या नहीं, इस विषय में लाखों मनुष्य कुछ भी नहीं समझते। स्नानकी क्रिया के साथ आरोग्यता का सम्बन्ध है इस बात को बहुत कम मनुष्य समझते होंगे। स्नानके विषय में अपनी इतनी अज्ञानता होने से स्नानकी क्रियाको कुछ विस्तारपूर्वक समझना चाहिये। अमेरिका के सुप्रसिद्ध डा० जे एच० केलोग एम० डी० अपने "मैन दि मास्टरपीस" नाम के ग्रन्थमें स्नान के सम्बन्धमें इस प्रकार लिखते हैं।

बीमार मनुष्यों को निरोगी बनाने के कार्यमें सहायता करनेके लिये कुदरत ने जलमें अत्यन्त उपयोगी गुण रक्खा है। जिन्दगी के अस्तित्व के लिये जो आवश्यकीय वस्तुएँ हैं उन में पानी एक सबसे महान बड़ी वस्तु है। डा० केलोग कहते हैं कि—

"कोई भी एक दवा अथवा मेटीरिया मेडिकाकी समस्त वस्तुओं से भी पानीका अच्छी तरहसे उपयोग हो, तो इस पुस्तक में लिखे हुए समस्त रोगों में पानी अधिक गुण करने के लिये शक्तिमान है। जो समस्त वस्तुएँ लाभ करनेवाली हैं, वे हानि भी कर सकती हैं इस लिये पानी का विवेक से व शास्त्रीय रीति से किस प्रकार उपयोग करना चाहिये यह जानना जरूरी है।

स्नान करने के प्रथम नियम—यहाँ पर

दिये हुए प्रधान नियम हर एक प्रकार के स्नान के लिये उपयोगी होते हैं।

१—भोजन के पश्चात दो तीन घंटे के भीतर सम्पूर्ण स्नान कभी नहीं करना चाहिये। पूर्ण शरीर से स्नान करना इस का नाम सम्पूर्ण स्नान है।

२—हो सके तो प्रतिदिन स्नान करने की गरमी को निश्चित करने लिये थरमामेटर का उपयोग करे। प्रतिदिन के अभ्यासवाली अंगुलिये भी इस कार्य्य को कर सकती हैं।

३—स्नान करने के समय स्नानगृह के भीतर की गरमी ७५ से ८५ डिग्री तक होनी चाहिये।

४—वृद्ध मनुष्यों को अधिक ठंडे किम्वा अधिक गरम जलसे कभी भी स्नान नहीं करना चाहिए।

५—थका हुआ हो, किम्वा ठंड लग गयी हो, उस समय ठंडे जल से कभी भी स्नान नहीं करे।

६—त्वचाको दृढ़ करने के लिये गरम जल से स्नान करने के पश्चात उससे भी कम गरम जल किम्वा ठंडा जल शरीर के ऊपर डाले या ऐसे जल में तौलिया भिगो कर शरीर पर फिरावे।

७—गरम जल से स्नान करनेके पूर्व सदैव अच्छी तरह से जल पीवे, अथार्त जल पीकर तुरन्त गरम जल से स्नान करे।

८—स्नान करने के पूर्व प्रथम मस्तक भिगोना उचित है।

९—स्नान करने पश्चात शरीर को अच्छी तरह से स्वच्छ करना चाहिए।

१०—स्नान करने के पश्चात और शरीर स्वच्छ करने के पश्चात् भी ठंड को रोकने के लिये और शरीर में रक्तको गति देने के लिये शरीर को हाथसे बलपूर्वक मलना चाहिए।

११—ठंडे जल के स्नान के पश्चात् शरीर में गरमी लाने के लिये थोड़ा व्यायाम करना चाहिये।

१२—गरम जल के स्नान के पश्चात् आध घंटे तक आराम लेना अर्थात् शरीर को श्रम नहीं देकर स्वस्थता से बैठे रहना चाहिए।

तौलिया स्नानः—बादली किम्वा तौलिया से शरीर धोया जाय उसे "तौलिया स्नान" कहते हैं। बादली किम्वा तौलिया के बदले हाथ से भी स्नान हो सकता है। शरीरको पानी लगा कर त्वचा को स्वच्छ करने की यह एक सादी रीति है; क्योंकि कोई भी मनुष्य किसी भी समय इस सादे स्नानका उपयोग कर सकता है। इसमें अधिक जल की भी आवश्यकता नहीं हैं। इस प्रकार के स्नान के लिये थोड़ा सा जल बस है। इस स्नान में एक कोमल अँगोछा किम्वा सूती वस्त्र का टुकड़ा और एक आध कोमल तौलिया इतनी ही वस्तुओं की आवश्यकता है। शरीर पर जल लगानेके लिये अँगोछा किम्वा वस्त्रका टुकड़ा न हो, तो हाथ

से भी काम चल सकता है। उस कार्य के लिये मोटे वस्त्रका टुकड़ा और भी अच्छा है। इस प्रकार स्नान करनेका जल ९५ डिग्री से अधिक गरम नहीँ होना चाहिये। ९० डिग्री गरम जल अच्छा है। आदत हो तो मनुष्य ७५ से ८० डिग्री वाले जलका सुखसे उपयोग कर सकता है। यदि अच्छी तरहसे सहन होसके, तो उससे भी अधिक ठंडे जलका स्नान शरीर मेँ अधिक बल देता है।

स्नानका प्रारंभः—प्रथम शिर भिगोना। पीछे मुख, फिर गला, छाती, कंधा हाथ और कमर—ये क्रमशः भिगोने चाहिये। बदन खूब रगड़ कर नहाना चाहिये, जिस से ठंड न लगे। स्नानगृह की गरमी शरीर की गरमी की बराबर हो तो, भी शरीर मेँ लगा हुआ पानी जब सूखने लगता है तब त्वचा की गरमी कम होने लगती है और उस समय शरीर खूब मलनेसे वह गरमी अच्छी तरह से सुरक्षित रहती है।

शरीरके ऊपरका भाग अच्छी तरहसे धोनेके पश्चात् नीचे का भाग धोना, और ऊपर के भाग की गरमी को स्थायी रखने के लिये उस भागको भी बीच बीच मेँ घिसना। स्नानके पूर्ण होते ही तुरंत शरीर पर कपड़ा ओढ़ लेना और सूखे वस्त्र से किम्वा तौलिया से शरीरको पोँछ डालना चाहिये। जब शरीर की त्वचा स्वच्छ होजाय, तब शरीरको केवल हाथसे खूब जोर से मलना चाहिए।

स्नान करने मेँ १० से १५ मिनिट से अधिक विलम्ब नहीँ करना चाहिये। पाँच मिनिट और तीन मिनिट भी बस होगा। जिन मनुष्योँ को जल्दी जाड़ा लगता हो, उनको शरीरके एक एक भागको क्रमशः धोना व स्वच्छ करना चाहिये।

निर्बल रोगियोँको इस प्रकारका स्नान बिछौने मेँ सुला करके भी सरलता से कराया जा सकता है। एक भागको उघाड़ कर धोना, स्वच्छ करना, मलना और पीछे उस के ऊपर वस्त्र रख कर उसी प्रकार दूसरा भाग धोना। इस प्रकार एक के पीछे एक भागको धोकर सम्पूर्ण शरीरका स्नान कराना चाहिये।

शय्याके ऊपर या सतरंजी के ऊपर स्नान करने के लिये अँगौछा अधिक उपयोगी होता है। तौलिया को जलपात्र मेँ भिगो कर हाथ से निचोड़ देना चाहिए, जिससे पानी शय्या के ऊपर नहीँ गिरेगा। शरीर के ऊपर से मैल को निकाल देने के लिये प्रति दिन किम्वा दो तीन दिनमेँ अवश्य थोड़े अच्छे साबुन का भी उपयोग करना चाहिए। जिससे त्वचा के ऊपर की तेलकी भी चिकनाई निकल जाय।

शरीर मेँ जब उससे अधिक गरमी रहती हो, तब इस प्रकारका तौलिया स्नान अधिक लाभ करता है और ऐसी स्थिति मेँ यह स्नान आध २ घंटेमेँ बार २ करने से भी किसी प्रकारकी हानि नहीँ है।

मज्जातन्तुओं की निर्बलता में हैजे में और अनिद्रा में भी यह स्नान उत्तम है।

(वैद्य कल्पतरु)

सुकुमारी

तेरहवां परिच्छेद

मर्म भेदी शब्द

सुकुमारी की रही सही आशा भी कुछ दिन के लिए चली गयी। सुकुमारी और मोहिनी पर ताड़ना पर ताड़ना पड़ने लगी। सिवा रोटी करने और चौका बरतन करने के और किसी चीज़ पर उसका अधिकार नहीं है। दूसरे समय मानिनी को पूरी तरकारी, दही, चटनी, अचार के बिना खाना अच्छा ही नहीं लगता किन्तु सुकुमारी और मोहिनी को बासी भात ही मिलता है, सो भी पेट भर नहीं, पहिरने के लिए एक धोती के सिवाय दूसरी न मिलेगी, इस लिए कि खर्च अधिक लगता है, किन्तु मानिनी की पोशाक दिन में आठ बार बदली जायगी। सुकुमारी के पास आज कल अपने ज़ेवरों के सिवाय एक पैसा भी नहीं है।

एक दिन की बात है, कि नाशपाती वाला चिल्लाता हुआ मोहन के मकान की तरफ से निकला। मोहन कहीं बाहर गये थे। मोहिनी ने सुकुमारी से कहा, "भावी, दो पैसे दो, तो नासपाती ले आऊँ।"

सुकुमारी बोली, "मोहिनी! तू जानती है, कि इस समय मेरे पास ज़ेवरों और अपने शरीर के सिवाय कुछ नहीं है। यदि कोई होता, तो मैं एक आध ज़ेवर गिरवीं रख कर तुझे नाशपाती मंगवा देती, लेकिन इस समय कोई भी नहीं। अच्छा, तुझे कल मंगवा दूंगी।" यह सुन कर मोहिनी चुप रही, लेकिन उस बालिका का मन नहीं माना। अपने ताऊ के कमरे में गयी। इधर उधर देखने से पैसे न मिले। खूँटी पर मोहन का कोट टंगा था, मोहिनी ने सोचा, कि इसमें पैसे जरूर होंगे, यह सोच कर वह कोट उतारने का प्रयत्न करने लगी। कोट ज़रा ऊँचे टँगा था। इस लिए मोहिनी कुर्सी पर चढ़ कर कोट की जेब टटोलने लगी। पैसे तो थे नहीं। चाँदी की छोटी सी घड़ी उस में पड़ी थी। मोहिनी ने समझा कि पोटली में पैसे बँधे हैं, इस लिए उसने हाथ डाल कर घड़ी निकाल ली। लेकिन घड़ी हाथ में लेते ही इत्तिफाक से हाथ हिल गया और घड़ी गिर कर चकना चूर हो गयी।

घड़ी के गिरने का शब्द बड़ी ज़ोर से हुआ था, इस लिए शब्द सुन कर मानिनी कमरे में आयी और घड़ी को टूटी देख कर सिर से पैर तक जल उठी। हाथ पकड़ कर

मोहिनी को कुर्सी से उतार दिया, और दो तमाचे लगाये।

जब मोहन बाहर से आये, तब मानिनी ने और निमक मिरच लगा कर घड़ी का हाल उनसे कहा। मोहन बाहर से आये थे, गरमी के मारे वैसे ही दिमाग़ चढ़ गया था, ऊपर से नमक मिरच मिली बातें सुन कर जामे से बाहर हो गये। हाथ में बेत लेकर मोहिनी के हाथों में मारने लगे। सुकुमारी भी खड़ी चुपके चुपके देख रही थी। मोहन एक नहीं दो नहीं, पाँच सात बेत एक दम मारते चले गये। मानिनी से यह नहीं हुआ, कि उठ कर मोहिनी को वहाँ से उठा दे। खड़ी खड़ी तमाशा देख रही थी। मोहिनी दर्द से छट-पटा कर कह रही थी, "कि ताऊ जी! अब न मारो, अब मैं तुम्हारे कमरे में न आया करूँगी।" मगर ताऊ जी ने एक न सुना, मारते ही चले गये। अब सुकुमारी से नहीं रहा गया। तनिक अच्छी तरह से घूँघट काढ़ कर बोली, "लाला जी! इसकी सज़ा हो चुकी। अब माफ़ कीजिए। आयन्दा यह यहाँ न आवेगी। ज़रा देखिये तो इसके हाथ कैसे लाल हो गये हैं।"

मोहन का हाथ रुक गया। पर मानिनी ने कहा, "वाह! यह तो खूब रही। लड़का जो नुकसान करे, तो उसे डाटे भी नहीं।" सुकुमारी ने कहा, "अम्मा, बाज समय तुम तो गजब कर डालती हो। घड़ी क्या मारने से बन जायगी। डाटना तो हो चुका। अब छुड़वा दो।" मानिनी मारे गुस्से के काँपने लगी। मोहिनी से बोली, "छोड़ दो जी।" फिर मोहिनी का हाथ पकड़ कर सुकुमारी की तरफ़ ढकेल दिया। सुकुमारी ने दोनों हाथों से उसे रोक लिया, नहीं तो बिचारी मोहिनी पत्थर पर गिर पड़ती, और उसकी सज़ा डबल हो जाती। फिर वह सुकुमारी से बोली, "बस! आज ही तू अपना बन्दो-बस्त कर और खाने पीने का प्रबन्ध अपना कर। मेरे यहाँ तेरा गुजारा नहीं है।" यह कहती हुई मानिनी गुस्से से काँपती हुई वहाँ से चली गई और नीचे आ कर जिस सन्दूक में सुकुमारी के आभूषण रक्खे थे, उसे उठा कर अपने बड़े सन्दूक में डाल दिया और ताला बन्द कर चाभी अपने पास रख ली।

मोहिनी को लिये हुए सुकुमारी नीचे आयी। आते ही मानिनी बोला, बस हो गया। आज ही तुम दूसरी कोठरी में अपना अटू पटू ले जाओ। कुछ काम नहीं है।

सुकुमारी ने कमरे में जाकर देखा, जेवरों का सन्दूक गायब। पता ही नहीं। समझ गयी, मानिनी ने हाथ साफ़ किया। किन्तु कुछ कहना व्यर्थ है। यह समझ कर चुप रही। रँग ढँग देख कर जरूरी सामान ले जाकर उस कोठरी में रख लिया। और खाने की फिक्र करने लगी। पास में पैसा था ही नहीं। जेवर इस तरह गया

मोहिनी को क्या खिलावे। खुद क्या खाय। उसके गले में एक मोतियों की माला थी। वह कोई तीन सौ रुपये की थी। सुकुमारी ने उसे दो सौ में बेच डाला। और उन रुपयों से काम चलाने लगी। पन्द्रह दिन हो गये, लेकिन अविनाश न आये।



चौदहवां परिच्छेद

अदल बदल

अविनाश को कुछ दिन तक किसीने न पूँछा। बहुत कुछ नौकरी ढूढ़ी, परन्तु न मिली। रुपये भी ख़तम हो चले। अब कहाँ से खायँ। अभी दो ही आदमियों की फिकिर थी, अब तीसरे की भी हुई। बिना नौकरी किये खाली हाथ घर कैसे जाँय। जाँय भी, तो वहाँ रक्खा ही क्या है। इन्हीं विचारों ने अविनाश को व्याकुल कर दिया। आखिर एक दिन ऐसा आया, कि अविनाश के पास खाना तक न रहा। संसार से अनिच्छा होगयी। दुख का पारावार न रहा। इस समय सब कुछ भूल गया। शाम का समय था। अविनाश किले होता हुआ त्रिवेणी के क़िनारे चला गया। क़िनारे पर पहुँच कर पहिले गंगा और जमुना के संगम को देखने लगा, आँखे शीतल हो गयी। फिर बड़े ही मर्मभेदी शब्दों में त्रिवेणी को संबोधन कर के बोला, "देवि! मैं दीन हीन बालक हूँ। मेरे दुःखों का अंत नहीं है। कल के भोजन का भी ठिकाना नहीं। आखिर भूख के मारे किस का प्राण नहीं व्याकुल होता। अन्न के बिना कौन जी सकता है। आखिर मेरी एक दिन ऐसी ही दशा होनी है, जो ऐसे मनुष्यों की हुआ करती है। किन्तु उस मृत्यु से मैं आप की गोद में मरना उत्तम समझता हूँ। मुझे अपनी शरण में लो और उन दो अनाथ बालिकाओं की रक्षा करना। इतना कह कर अविनाश ने त्रिवेणी की गंभीर धारा को नमस्कार किया और उस के गर्भ में समाने के लिए गले भर में चला गया। चाहता था, कि आगे बढ़ कर जल मग्न हो जाऊँ कि किसी ने किनारे से पुकार कर कहा—

"संसार के कष्टों से बिधे हुए युवक! आत्महत्या करना पाप है। इस से मुँह मोड़ो और धैर्य्य से काम लो, भगवान तुम्हारा भला करेगा।" अविनाश ने पीछे फिर कर देखा, कि पचास वर्ष का वृद्ध मनुष्य एक अंग्रेज के पास खड़ा खड़ा उन्हें लौट आने को संकेत कर रहा है। अविनाश लौट आये। और वृद्ध पुरुष की तरफ़ कातर दृष्टि से देख कर फिर गौरांग प्रभु को सलाम किया।

उस वृद्ध पुरुष ने पूछा, "युवक! तुम ने आत्म हत्या करने की चेष्टा क्यों की।"

अविनाश—कुछ न पूछिए महाशय! मुझ से अपनी दुखमय कहानी कही नहीं जाती।

वृद्ध—तब भी, कुछ तो बताओ?

अविनाश ने आदि से अंत तक सब अपना हाल कह सुनाया। साहेब बहादुर ने यह हाल सुन कर अविनाश की तरफ़ कृपा की दृष्टि से देखा। यद्यपि वे अंग्रेज थे, किन्तु उनका हृदय दया से भरा था। वह एक बड़े भारी कारखाने के स्वामी थे। वे हवा खाने के लिए गंगा के तट पर घूमते थे। इतने ही में अविनाश वहाँ से उन के पास से हो कर निकले, और बिना इधर उधर देखे सीधे त्रिवेणी किनारे चले गये थे। साहेब ने उस समय सोचा, कि यह युवक अकेला इस समय त्रिवेणी किनारे क्यों जाता है। उन को कुछ संदेह होने लगा, और संदेह ठीक भी निकला। वह उन के पीछे उनकी दृष्टि बचा कर चलते चलते किनारे तक चले गये और जिस समय उन्होंने अविनाश को आत्महत्या के लिये तयार देखा, उसी समय अपने साथ के मनुष्य से अविनाश को बुलाने के लिए कहा था।

अस्तु गौरांग प्रभु बोले,

"युवक! क्या तुम अंग्रेजी भी जानते हो?"

"जो हाँ! मैं ने इसी साल बी०ए० पास किया है।"

"बड़े शरम की बात है, कि तुम सुशिक्षित युवक हो कर के ऐसी नादानी का काम करते हो। क्या तुम को धैर्य्य छू तक नहीं गया?"

"कहाँ तक धैर्य्य धरूँ। आखिर मैं भी तो मनुष्य हूँ। दुर्भाग्य के समय धैर्य्य काम नहीं देता।"

साहेब बोले, "खैर! जो हुवा सो हुआ, अब यदि तुम नौकरी करना चाहो, तो हमारे यहाँ कर सकते हो। हमारे आफिस का हेडक्लर्क पेनशन लेकर घर चला गया। उस की जगह तुम को मिल जायगी। अभी फिल हाल तुम्हें डेढ़ सौ रुपया महीना दिया जायगा, लेकिन यदि काम अच्छा कर दिखाओ गे, तो बहुत जल्द तुम्हारा ढाई सौ रुपया मासिक वेतन कर दिया जायगा। इस समय तुम हमारे पास चलो। कल पहिली तारीख है। कल से ही आफिस एटेंड करो।"

अविनाश को और क्या चाहिए था। खुशी खुशी उन्होंने नौकरी स्वीकार कर ली और साहेब के साथ उन के बंगले चले गये।

महीने भर के बाद अविनाश ने साहेब से कहा, कि आप आज्ञा दें, तो हम अपनी बहिन इत्यादि को लिवा लावें। वह लोग कष्ट में होंगी। साहेब ने खुशी से उन को छुट्टी दे दी। और इस बात की ताकीद कर दी, कि जल्दी आना। अविनाश सम्मति सूचक संकेत करके वहाँ से घर आये और दूसरे ही दिन अपने मकान के लिए रवाना हो गये।

—o—*—o—

पन्द्रहवां परिच्छेद

दुष्टता की अवधि

सुकुमारी और मोहिनी को एक छोटी सी कोठरी में गुजारा करते करते डेढ़ महीने हो गये। रुपये भी खतम हो चले। जेवर भी नहीं। अब मैं क्या करूँगी। अभी तक उनकी चिट्ठी भी न आयी—' अभी तक स्वामी कैसी अवस्था में हैं, नहीं मालूम ! इन विचारों ने उस मन मोहिनी बाला के छोटे से हृदय को व्याकुल कर दिया।

सवेरे मोहिनी को प्यास लगी। आँगन में आयी। वहाँ एक फूल का गिलास रक्खा था, वह मानिनी के नैहर का था। आस पास और कोई बर्तन न देख कर मोहिनी ने उसे ही उठाया और जल्दी से भर कर खड़े ही खड़े इस लिए पानी पीने लगी, कि कहीं मानिनी देख न ले। लेकिन न मालूम किधर से वह कमर लचकाती हुई आ ही पहुँचीं। मोहिनी चौंक गयी और दहशत के मारे गिलास उस के हाथ से छुट पड़ा। गिरने से उस का पेंदा फूट गया। बस ! फिर क्या था। मोहिनी के ऊपर वाक्यबाण बरसने लगे। उस समय मानिनी की मूर्ति बड़ी ही डरावनी हो गयी। मोहिनी ने उस की सरल मूर्ति देखी थी, चंचला मूर्ति को भी देख चुकी थी, एक दफ़े मोहिनी मूर्ति के भी देखने का अवसर प्राप्त हुआ था, उस की विषादिनी मूर्ति भी देख चुकी थी, किन्तु आज की सी भीषण मूर्ति उस ने कभी न देखी थी। क्रोध से उस के होंठ काँप रहे थे। मोहन भी उसी जगह खड़े थे, लेकिन उस समय उन को भी बोलने का साहस न हुआ, चुपके चुपके उस जगह से सरक गये।

मानिनी का क्रोध बड़ी देर में शान्त हुआ सुकुमारी ने मोहिनी से कहा, तू ने क्यों उन के गिलास में पानी पिया था। क्या तेरे पास न था ? उसीसे पी लेती। रोती क्यों है। क्या वह बातें तेरे लग गयीं। यह कह अपनी साड़ीसे उस के आँसू पोंछ दिये। और बड़े प्रेम से उस के मुँह को चूम लिया।

धीरे धीरे दोपहर बीती; तीसरा पहर बीता। शाम हो कर फिर रात हुई। खाने पीने से छुट्टी पा कर मोहिनी को पास बैठाकर अपनी चारपाई पर सुकुमारी बैठ गयी। कुछ सोचने लगी। सोचते सोचते उसने अपनी पहिले की अवस्था पर विचार किया। फिर अपनी वर्तमान दशा पर ध्यान दिया। आँखों से आँसू निकलने लगे। कुछ ही देर में वह शान्त हुई। मोहिनी तो उस की गोद में अपना सिर रख कर सो गयी। और सुकुमारी धीरे धीरे यह बिहाग गाने लगी—

"सबहि दिन नाहिं बराबर जात।
कबहूँ कला बला पुनि कबहूँ,
कबहूँ करि पछतात।

कबहूँ राज रंक पुनि कबहूँ,
ससि उड़गन दिखलात ।
पर करनी अपनी सब चाखैं,
फल बोये को खात ।
अनरथ करम छिपै नहिं कबहूँ
अन्त सबै खुलि जात ।
सबहि दिन नाहिं बराबर जात ॥"

सुकुमारो का गाना समाप्त हुआ। और समाप्त होते ही उस के पीछे से आवाज़ आयी, "बहुत ठीक प्रिये! सचमुच सब दिन एक से नहीँ जाते। तुम ने बहुत कष्ट देखा। परन्तु अब ईश्वर तुम्हेँ सुख देवेँगे।"

सुकुमारी ने पीछे फिर कर देखा, कि अपनी कालिज जाने वाली पोशाक पहिने हुए अविनाश खड़े हैँ और हँस रहे हैँ।

मोहिनी सो गयी थी। इस लिए उसका सिर तकिये मेँ रख कर वह अविनाश के पैरोँ पड़ गयी। अविनाश ने उसे उठा कर--छाती से लगा कर उसका मुँह चूम लिया। सुकुमारी ने धीरे धीरे पूँछा, "कहो, क्या हाल है। लाला जी से मिल आये, कि नहीँ।"

अ०—हाँ! अभी मिला चला आ रहा हूँ। क्या आज तुम से और ताई से लड़ाई हुई है।

सुकुमारी ने सब सच्चा हाल कह सुनाया। अविनाश बोले, वही तो बात है। अभी मुझे वह फटकार बतायी, कि क्या कहूँ। आखिर आज वह भी अच्छी तरह खुल पड़े।

सु०—क्या खुल पड़े?

अ०—साफ़ साफ़ कह दिया, कि सबेरा होते ही सब को लेजाओ। इस लिए तो मैँ आपही आया था, ज़रा देखता था, कि क्या रङ्ग लाते हैँ। नौकरी तो मेरी बड़ी बढ़िया लग गयी। आपस मेँ और बहुत सी बातेँ हुई। थोड़ी देर बाद यह बात निश्चय हुई, कि कल ही यहाँ से चल देँ।

सबेरा हुआ। अविनाश मोहन के पास गये और बोले, "ताऊ जी! आपकी आज्ञानुसार आज मैँ मोहिनी वग़ैरह को एलाहाबाद लिये जाता हूँ। मेरी तो इच्छा थी, कि सदैव आप के पास रह कर मैँ आप की सेवा करता, अपने पिता की अंतिम आज्ञा मानता, किन्तु ईश्वर को यह स्वीकार नहीँ। चलते समय मैँ आप से विनय करता हूँ, कि जब कभी आप को मेरा कुछ काम हो, अथवा किसी चीज़ की जरूरत आप को पड़े, तो बिना संकोच लिखिएगा। आप मेरे पिता के समान हैँ। आप को मैँ उसी पूज्य दृष्टि से देखता हूँ। यह ईश्वर का मेरे ऊपर कोप है, कि मैँ ताई जी की दृष्टि से गिर गया हूँ, कुछ भी हो, मैँ उन्हेँ सदैव अपनी माता के समान समझूँगा। यह कह कर अविनाश ने उनके चरणोँ मेँ अपना सिर रख दिया।

मोहन का चित्त चाहे कितना ही कठोर क्यों न हो गया हो, मानिनी ने चाहे कितना ही निठुर क्यों न कर दिया हो, और चाहे कितना ही क्यों न सिखाया हो, लेकिन तो भी वे मनुष्य थे, अविनाश की इस दीनता को देख कर उनकी आँखों से आँसू निकल पड़े। अविनाश को छाती से लगा कर बोले, "बेटा! मैं क्या करूँ। मैं तो समझता था, कि मेरे कोई लड़का नहीं है, मैं तुम्हीं को लड़का समझूँगा, और तुम्हीं से एक होनहार लड़के का सुख प्राप्त करूँगा। परन्तु बेटे! मेरे भाग्य में वह सुख नहीं है। मैं क्या करूँ। यह कह कर मोहन ज़ोर ज़ोर रोने लगे। उनके आँसू पोंछ कर अविनाश बोले, "आप रोते क्यों हैं, मैं तो आप का आज्ञाकारी हूँ।" यह कह कर उन्होंने मोहन को प्रणाम किया। बग्घी खड़ी थी। सुकुमारी और मोहिनी मानिनी को प्रणाम कर बग्घी पर जा कर बैठ गयीं। अविनाश भी ताई को प्रणाम कर बग्घी पर बैठे। गाड़ी स्टेशन की ओर चल दी।

अविनाश, सुकुमारी और मोहिनी के प्रणाम करने पर मानिनी कुछ भी न बोली थी।

(क्रमशः)

—"बावली बहू"

प्रथम समागम

(सौभाग्य निशा)

"आज उनके पास जाना पड़ेगा। वे तो मांस, मदिरा का सेवन करते हैं, कैसे निभेगी? आज एक बोतल मदिरा और उसके साथ भक्षण के लिये कई प्रकार से पका हुआ मांस छत के कमरे में रक्खा है। न जाने क्या करें? मैंने न तो कभी मदिरा ही को छुआ है, और न कभी मांस ही खाया है। हाय! मुझे बड़ा डर तो यही है कि, वे कहीं ज़बरदस्ती ही मेरे मुँह को पकड़ कर न खिला देवें। यदि ऐसा हुआ, तो मैं क्या करूँगी?"

कृष्णा एक नव विवाहिता वधू अपनी ससुराल में गई हुई एकान्त में बैठी सोच रही है और ये भी विचारती जाती है कि मेरे पूज्य पिता भी इसको ग्रहण न करते थे। यदि वे कहेंगे तो मैं क्या करूँगी? हाय! कुछ न हुआ। धन्य भाग्य, हमारी भगिनी का कि हमारे बहनोई न तो माँस ही खाते हैं और न मदिरा आदि किसी मादक वस्तु का ही सेवन करते हैं। खैर जो कुछ हो, मैं बिना त्यागन कराये न मानूँगी और यदि न मानेंगे तो मैं अपने जीजा को पत्र लिखकर विनय करूँगी, कि आप कृपा पूर्वक हमारे ऊपर दया करके अपने सहयोगी को भी इन बातों से मुक्त कीजिए।

रात्रि के बारह बजने में कुछ ही

विलम्ब है। घर का कार्य सुचारु रूप से संपादन कर घर की सभी स्त्रियाँ निद्रा माता की गोद में अठखेलियाँ ले रही हैं। केवल कृष्णा और उसकी ममेरी सास बैठी पान लगाती खाती और बातें करती जाती हैं।

मामी—दुलहिन जी! क्या तुम कलिया शराब खाती पीती हो?

कृष्णा—छिः छिः माईं जी, मैं तो कोई मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करती हूँ और न मेरे घर ही में कोई खाता है। मांस की तो कौन चलावे, मेरे यहाँ तो पियाज़ भी नहीं छुआ जाता है। एक बार घर में बड़े भाई जी लाये थे, तो सिवाय हमारी भाभी के और किसी ने भी उसे नहीं छुआ था। न जाने कैसी बू पियाज़ में आती है। मैं और मेरी बहिन जब कभी छू लेती थीं, तो कै हो जाती थी।

मामीं—ओह! बड़ी पंडिताइन बनी हैं, भला मांस खाने में दोष क्या है? हमारे घर में तो सब कोई खाता है।

कृष्णा—बड़ा भारी ऐब है। एक जीव की जान जाती है, क्या यह थोड़ी बात है? अपनी अपनी जान सब को प्यारी होती है। अपने शरीर में कहीं भी अगर एक काँटा तक चुभ जाय तो कितना दुख होता है, फिर मारना तो बड़ी कठिन बात है। यदि सभी सभ्य मांस खाना छोड़ दें तो बेचारों की जान तो बच जाय।

मामीं—अच्छा तो अब सवेरे देखा जायगा। सब तो सो रही हैं, चलो तुम भी छत पर सो रहो।

ममेरी सास कृष्णा को छत पर के कमरे में भेज कर अपने शयनागर को चली गई।

(स्वजन से वार्त्तालाप)

पुरुष—वहाँ क्यों खड़ी हो? हमारे साथ बैठ कर शराब पियो।

स्त्री—क्षमा कीजिये, मैं इसको नहीं ग्रहण कर सकती। मैं आप की आज्ञा को तो नहीं टाल सकती हूँ, किन्तु मेरा प्रण है कि मैं न ग्रहण करूँगी। और मुझे आशा है कि आप ऐसी आज्ञा दे कर मेरा प्रण न तुड़ावेंगे।

पुरुष—कुछ तो पी लेना और यदि कड़वी लगे तो ये कबाब रक्खा है, ज़रा सा चख लेना।

स्त्री—कबाब कैसा?

पुरुष—बकरे के गोश्त को ला कर खूब छोटे छोटे टुकड़े में करके और बेसन के आटे में सान कर सब मसाला वा पियाज़ देकर गोला और टिकियाँ घी में भून ली जाती हैं।

स्त्री—छिः! छिः!! छिः!!! शोक, जो जीव बकरे में है, वही मुझ में और

आप में है । क्या उसे मारते समय पीड़ा न हुई होगी ! शरीर में जब काँटा तक चुभ जाता है तो कितना क्लेश होता है ?

पुरुष—अच्छा तो ज़रा सी शराब ही पी लेतीं । ये तो बड़ी सफ़ाई के साथ उतारी जाती है, इसमें तो जीव नहीं हतन होता है ? इसे तो देवी जी का प्रसाद समझना चाहिये ।

स्त्री—सुना है, ओह ! बड़ी सफ़ाई से उतरी जाती है, क्या कहना है ? धन्य देवी ! तुम्हें दूर ही से प्रणाम है ।

पुरुष—क्यों ? क्यों ? इतना नाक भो क्यों सिकोड़ती हो ?

स्त्री—नाक भौं सिकोड़ने की कोई बात नहीं । मझले भाईजी बतला चुके हैं एक शराब की कोठी का हाल ।

पुरुष—कैसा ?

स्त्री—वे बतलाते थे कि मैं ज्यों ही गोदाम के भोतर गया त्योंही बड़ी ज़ोर की भभक आई । खैर जैसे तैसे भीतर जाकर क्या देखते है लोग महुआ भर भर कर डेगों में डाल रहे हैं जिनमें कीड़ों और पतिंगों की तो गणना नहीं, छिपकली और कई चूहे भी पहुँच गये हैं । और महुँआँ के साथ उनका भी अर्क खिच आया । भाई जी देख कर बड़े घबराये । और शीघ्र ही मदिरा देवी को नमस्कार कर चल दिये । ऐसी प्रशंसा मदिरा की है, आप पीते हैं तो इन सैकड़ों कीड़ों और चूहों का सत पीजिये और मुझे क्षमा कर कर दीजिये ।

पुरुष—नहीं-तुमको पीना पड़ेगा ।

"भइ गति साँप छछूँदरि केरी" सी दशा होर ही है क्या करें कुछ विचार में बा त आती नहीं । उधर ध्यान होता है कि चलते समय बहिन ने कहा था कि आज्ञा उल्लंघन करने में पाप है । अब क्या करूँ ।"

यह सोच ही रही थी बाबू साहब ने हाथ पकड़ कर ज़बरदस्ती ही कुछ अंश मांस का और थोड़ी मदिरा उसके मुँहमें डाल दी और पानी से उतरवा दी किन्तु तुरन्त ही बड़े वेग से स्त्री को उलटी हो गई; उलटे लेने के देने पड़े । बार बार उपकाई दुख देने लगी, सुख की रात्रि का दुःख की रात्रि के साथ परिवर्त्तन होता हुआ दिखाई दिया । किन्तु पिपरमेंट की शीशी पास होने से कुछ शान्ति हुई । पश्चात् दोनों ने निद्रा देवी की गोद का आश्रय लिया ।

नींद किसको थी । कृष्णा तो बिकलता के कारण कुछ सुस्त सी होगई । बाबू साहब शोच सागर में लहरा रहे हैं बिचार करते हैं कि इसका कहना सत्य है वास्तव में जीव तो हतन होता है । यदि इसे हम त्याग ही दें तो क्या जीवत न रह सकेंगे । मदिरा की दशा तो ये कई बरातों में तथा होली के त्योहार में देख चुके थे । और उसके मुँह नहीं

कहानी छिपकली तथा चूहों की उसके अर्क के विषय में सुनकर और भी उनका चित्त भाग उठा था। वे भी जानते थे कि ईश्वर ने जितना मस्तिष्क दिया है, उसको मादक वस्तुओं द्वारा विशेष उत्तेजित करना एक प्रकार प्रकृति के नियम में बाधा सी डालनी है। एक विद्वान का कथन उन्हें भली भाँति स्मरण आगया कि "दुग्ध में जितनी जिस वस्तु की आवश्यकता है उतनी उसमें उपस्थित है अस्तु उसे केवल छान कर ही पी लेना श्रेयस्कर है। विशेष मीठा मिलाना उसके गुणों को नाश करके अपनी रसना शक्ति को बिगाड़ना है।" जान पड़ता है कि मेरी रसना शक्ति इसी कारण बिगड़ गई है, अस्तु मदिरा को त्याग देने में कोई हानि नहीं।

बस! चटपट तर्कना शक्ति से न्याय कर बोतल और मांस के पात्र में लात मारी। और परमेश्वर से प्रार्थना कर पिछले दोषों की क्षमा माँग मांस, मदिरा को सदा के लिये तिलांजुली दे डाली। और फिर शुद्ध अन्तःकरण होने से निश्चिन्त भाव से सो गये।

"धन्य कृष्णा! यद्यपि तेरे प्रण पर कुछ दोष आगया परन्तु तूने पूज्यपति को सदा के लिये इस दोष से मुक्त कर दिया।" *

—प्यारेलाल श्रीवास्तव

* बाला-निबंध कौमुदी से उद्धृत।

आर्य बालाओं की दया शीलता



जिस समय हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण निवासी प्रत्येक पल विपत्ति की आशंका से अधीर चित्त हो रहे थे और समस्त भारतवर्ष वायु से चलायमान सागर की नाँई कंपायमान होरहा था ऐसे कठिन समय में एक आर्य ललना ने जो अपूर्व दयालुता और महान हृदयता का परिचय दिया था वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है। उस दयावती देवी ने अपने जीवन की आहुत दे विदेशी-विधर्मी-निराश्रय अंगरेज स्त्री और उनके छोटे छोटे बच्चों की रक्षा करके संसार में हिन्दुओं के देवभाव और परोपकार का ज्वलन्त दृष्टान्त स्थापित कर दिया है।

सन १८५७ के बलवे की मारकाट का समय प्रत्येक विचारवान के हृदय को कंपित कर रहा था और सम्पूर्ण देश बेचारे अंगरेजों का विरोधी हो उठा था तथा रावराजा रामसिंह जी भी अपनी सेना के साथ अंगरेजों से युद्ध कर रहे थे। ऐसे ही विकट समय में रामसिंह जी की रानी ने सुना कि अंगरेजों के बालक और स्त्रियाँ जो कभी सुख पूर्वक प्यार में रहते थे वे इस समय अन्न वस्त्र हीन होकर आश्रय स्थान न मिलने से मध्याह्न

काल के सूर्यताप से और रात्रि की कड़ी सरदी से दुःख झेलते और तड़पते कलपते पास ही के घने जंगल में छिपे पड़े हैं।

यह समाचार मिलते ही राजमहिषी का कोमल अन्तःकरण दया से भर आया और उन्होंने बहुत ही गुप्त रीति से अपने व्यय से एक विश्वासी भृत्य द्वारा उनके पास अन्न वस्त्र जूता छत्री इत्यादि काम की वस्तुएँ भेज दीं। महारानी की इस अमूल्य सहायता को पाकर वह निराश्रय अंगरेज स्त्री बालक बिना किसी कष्ट के दिल्ली में पड़े हुए अपने अंगरेजी लश्कर में पहुंच गये।

रानी जानती थी कि गुप्त सहायता का हाल यदि रावराजा को विदित हो गया तो महा अनर्थ होगा, किन्तु फिर भी दया की देवी ने विपद-ग्रसितों की सहायता करके गौरव और हितैषिता की लाज रख ली; परोपकार और दया हिन्दू धर्म्म के मूल मंत्र हैं—यही रहस्य विचार कर उसने अपना कर्त्तव्य नहीं छोड़ा।

अंत में, जो सोचा था वही हुआ। हाय! वही हितैषिता, उदारता, दयालुता और परोपकार अंत में रानी के प्राणान्त के कारण हुए। रावराजा जब युद्ध से लौटे तो किसी दुष्ट ने उन्हें सारी बातें कह सुनाईं—रावराजा को बड़ा क्रोध हुआ और रानी को बहुत कुछ भला बुरा कहकर तुरन्त ही उसका महल त्याग दिया।

परित्यक्ता रानी को इससे बड़ा भारी कष्ट हुआ, क्योंकि बात का यहाँ तक बढ़ना उन्होंने नहीं सोचा था। इस दुःख से उन्होंने सारे सुख और वैभव को तिलांजुलि दे दी तथा दिन रात्रि अखण्ड अश्रुओं की धाराएँ उनके कमल नेत्रों को प्लावित करने लगीं। इसी प्रकार कुछ समय बीता किन्तु एक दिवस अचानक सुना गया कि रानी जी का शरीरान्त हो गया।

दयावती अबला ने भूमंडल को परम दया का अपूर्व उदाहरण दिखा दिया और इस संसार में अपनी कीर्ति कहानी अजर अमर छोड़ गईं। पृथ्वी के इतिहास पर दृष्टि डालिये। शायद आपको निष्काम धर्म का एक भी ऐसा उच्च दृष्टान्त सिवाय सरल और सरस हिन्दू धर्म के इतिहास में मिलना कठिन होगा।

—लक्ष्मीनारायण गुप्त

पद्य

अशआरके ढंग पर

मेरी गृह देवियों से अर्ज़ यों है,
कि भारत को लगा यह मर्ज़ क्यों है।
अधोगति हो रही उन्नति तजी है,
बसा आलस्य तन फुरती भजी है।
विमनता द्वेष रिपुता हर कहीं है,
परस्पर प्रेम प्रीती कुछ नहीं है।

तजा निज धर्म्म अरु शुभ कर्म्म त्यागे,
जुहैं दुष्कर्म्म तिन सों नेह पागे।
न पातिव्रत न पति का कुछ अदब है,
सुशीलापन का बाकी नाम अब है।
स्वेच्छा चार का व्यवहार याँ है,
पठन पाठन का अब कुविचार याँ है,
सचाई गत झुँठाई उर वसीं है,
कपट के जाल मैं बुद्धी फँसी है।
हुई हैं कैसी कैसी नारियाँ याँ,
पती के प्रेम की शुभ प्यारियाँ याँ।
सहे बहु कष्ट पर नहिं धर्म्म छोड़ा,
पती सेवा से हर्गिज़ मुँह न मोड़ा।
गई काया पलट इस देश की है,
यती योगी बनावट भेष की है।
न ब्राह्मण जानते ब्रह्मत्व क्या है,
न क्षत्री शूरता का तत्व क्या है।
हुआ वैश्यों का भी व्यापार झूँठा,
हुआ शूद्रों का सब आचार झूँठा।
वर्ण आश्रम का पथ त्यागा है सबने,
फ़क़त स्वारथ का रस पागा है सबने।
इसी कारण से ऐसी दुर्दशा है,
महा आपत्ति ने भारत ग्रसा है।
सब आपद दूर हो जो तुम बिचारो,
धर्म्म पथ तुम गहौ संतति सुधारो।
कृपा ईश्वर की होगी एकदिन फिर,
कि भारत मैं बसै आनन्द सुस्थिर।
मेरी बिन्ती को सुन कटिबद्ध होकर,
दशा भारत सुधारो द्वेष खोकर।

—विद्यावती देवी

माता का कर्त्तव्य



बहिनों माता का कर्त्तव्य बहुत ही बड़ा है। संसार में मनुष्य की उन्नति या अवनति का भार माता के ही ऊपर निर्भर है। माता का बनना आसान नहीं। माता होने के लिए बड़े बड़े यत्न और साधन करने पड़ते हैं। पहिले तो एक बच्चे को गर्भ में रखना और जन्म देना ही बहुत कठिन काम है। तिस पर इतने से ही कोई प्रकृत जननी नहीं कहला सकती। सच्ची माता तभी बन सकती है, जब अपनी सन्तान को हर प्रकार से सब विषयों में पूर्ण विद्वान् और योग्य बना दे। इसमें सफलता प्राप्त करना सहज नहीं है।

जन्म लेना और मरना जीव के लिए एक प्रकार की सज़ा है। पर इस सज़ा से बचने के लिए ही जीव जन्म लेता और मरता है। मनुष्य की देह पाकर ही जीव इस जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा पा सकता है। जिस प्रकार एक दीन दरिद्र की कठिन यंत्रणा को दूर करने से तुम्हारा चित्त प्रफुल्लित होता है, उसी प्रकार तुम्हें एक जीव को जीवन-मुक्त करने से इससे भी अधिक सुख का अनुभव होगा। संसार में

इससे बढ़ कर पुण्य कर्म भी नहीँ है। इस पुण्य को तुम जिस सुगमता से इकट्ठा कर सकती हो, बड़े बड़े ऋषि और मुनि भी वैसी सुगमता नहीँ प्राप्त कर सकते।

बहनो, एक दिन न एक दिन तुम भी किसीकी माता बनोगी। वह अपनी बुराई भलाई कुछ भी नहीँ जानता। उसके लालन पालन का भार तुम्हारे ऊपर ही होगा। इस भार को जब तुम भली प्रकार दूर करदोगी, तभी वह सद्यः जात पुत्र कुछ दिनोँ मेँ हृष्ट पुष्ट और बलिष्ट हो जायगा। यदि तुम ने उसे बचपन मेँ एक सच्चा बालक बना दिया होगा तो वह अवश्य तुम्हारा कृतज्ञ रहेगा, ज़रूर तुम्हारी कीर्त्ति को संसार मेँ फैला देगा।

हनुमान् बली था। उसने अपने बल से असंख्य राक्षसोँ को मार श्री मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र को विजयी होने मेँ सहायता दी। जब तक, आर्य्यजाति, इस संसार मेँ जीती जागती रहेगी तब तक उस महाबली के गुण गाए जाया करेँगे। क्या कोई मनुष्य इस बात के कहने का साहस करेगा कि हनुमान् को ऐसा पराक्रमशाली बनना उसकी माता अंजना का क़ाम नहीँ था ?

स्मरण रक्खो अंजना ने अपना नाम, हनुमान को केवल जन्म देकर ही हासिल नहीँ किया। वरन् उसके सविधि लालन पालन और बचपन मे उचित शिक्षा देने से प्राप्त किया। अंजना बड़ी विदुषी थी। उसके गुण को गाथा आज भी गाई जाती है। यदि संसार हनुमान का दिन मेँ चार बार नाम लेता है तो अंजना का आठ बार। अंजना का कीर्ति-मन्दिर पृथ्वी का सर्व्वोच्च पहाड़ हिमालय खड़ा उसकी शुभ यशस्कान्ति से संसार का मन मुग्ध कर रहा है।

यह जाबाला ही थी जिसने सत्य-काम को ब्रह्मऋषि की पदवी दिलाई। इसी से आज तक उसका पवित्र नाम इतिहास मेँ जगमगा रहा है।

कुन्ती को देखो। उसने अपने जिन पुत्रोँ को जन्म देकर यथाविधि पालन किया, वे संसार मेँ किस प्रकार श्रद्धेय माने जाते हैँ। धर्मराज युधिष्ठर, महा-बली भीम, और धनुर्धर अर्जुन सा, आज यदि दीपक लेकर ढूँढो तो, एक भी नहीँ मिल सकता। संसार इनको कुन्ती पुत्र ही कह कर सम्बोधित करता है। कर्ण जैसा वीर पुत्र उसी की कोख से जन्मा, जिसने तमाम महाभारत को एक बार समूल हिला डाला। यदि वह बचपन मेँ कुन्ती के पास रहता, तो इस मेँ सन्देह नहीँ कि वह अपने सब भाइयोँ मेँ अद्वितीय होता है। पर विधि की विडम्बना, वही उनका जानी दुश्मन हो गया।

भारत की दशा सुधार ने का ख्याल, आज सब के दिल में है। और ऐसे ऐसे वीर भी मौजूद हैं जो तन मन धन इसके सुधार में खर्च कर रहे हैं। पर सुधार में अभी कमी है तो इस बात की, कि हमारी माताएँ अशिक्षिता होती हैं। यदि वे शिक्षिता होवें तो अपनी सन्तान को भारत का सच्चा पुत्र बना कर देश के उद्धार का महा मन्त्र क्या न पढ़ावें।

इस कारण हम अपनी बहिनों का इस ओर ध्यान आकार्षित करते हैं कि जब तक वे स्वयम् शिक्षिता नहीं बनेंगी, तब तक, सन्तान को किस प्रकार लालन पालन करना चाहिए और उनके साथ कैसा वर्त्ताव करना करना चाहिए यह नहीं जान सकतीं। अतः यदि आप सच्ची माताएँ बनना चाहती हैं यदि अपनी सन्तान को कुसन्तान नहीं बनाया चाहती हैं तो पहिले अपनी शिक्षा का प्रबन्ध करें।

—भूपकुमारी देवी

चौपाई

वृक्षबंध

कीजे नहीं ध्यान पीपरका,
कपट त्यागि आदर हो बरका।
आम काम में प्रीति जनाऔ,
मत अनार पन तुम दरसाऔ॥
जो अमली तुम रही सयानी।
पति की कर हाँसी हुलसानी॥
तौ न रती भर तुम सुख पाऔ,
जामन कैसे प्रेम जमाऔ।
नीम कपट की तनक न डारौ,
पाकर अनहित हू तन वारौ॥
फलसाधन के कारण जेते,
पती सेवसों कठिन न तेते।
कदम निहारौ तन मन वारौ,
आज्ञा पा सब काज सम्हारौ॥
जाहीसों रहु सदा सुहागिन,
केला बेला हो मन भामिन।

नगर बंध

सुनिये मेरी प्यारी आली,
रखौ बनारस मन खुशहाली।
पानी पति सा नर नहि दूजा,
मान भूमि तजि नित कर पूजा॥
होउ मैनपुरी तुम तन में,
गुन आगरा सुक्ख दे छन में।
कासमीर लगि जीय हटावै,
सखी कालपी पास न आवै॥
कर विहार पी मन सुख छावै,
गया समय सखि फेर न आवै।
लखनौ तम तिरिया करतूती,
कानपूर देती हैं दूती॥
ठट्ठा करौ न तुम बतराऔ,
रखौ हाथरस अति सुख पाऔ।
पति सिर मौर काज सारन है,
हांसी प्रेम नेम कारन है॥
सुख बेतोल तभी तुम पाऔ,
चित हित नित पतिप्रेम बढ़ाऔ॥

—विद्यावती देवी

पहेली

आदि कटे अगिनी का मारा,
मध्य कटे हो धरती बारा।
अंत कटे हो पखी शिकारी,
विद्या उसकी साथिन ज्वारी ॥१॥

जले हुए विच डरी मिलाया,
मेरे संग जनम से आया।
उत्तम पैसा द्रव्य न कोई,
विद्या मो खन खन दियो भोई ॥२॥

दूजी का सखी कंथ कहावै,
पूजनीय मेरे मन भावै।
बालम पर मैं ने लगवाया,
विद्या क्या है नाम बताया ॥३॥

अरी सखी उलटौरी टालो,
ना भावै दूजे घर वालो।
मैंनापीतर केसे देखे,
जीपर लोटे रहे परेखे ॥ ४ ॥

वर्ष कार्टिके रहा तरासा,
पीछे खोरा सन्त खरासा।
राखै फाँकै रंगी चंगी,
खाल कढ़ावै ऐसा जंगी।
सब को खाते लागै प्यारा,
विद्या बागन होने हारा ॥ ५ ॥

उत्तर

(१) बाजरा (२) दुग्ध (३) पीपर (४) लोटा (५) सन्तरा

—विद्यावती देवी

सामान्य नेत्र-रोगों की चिकित्सा

आंख अति कोमल इन्द्रिय है, यहाँ तक कि यह ज़रासी भूल से ही खराब हो सकती है। इस कारण आँख की विशेष रूप से संभाल रखनी चाहिए। नेत्र में रोग के उत्पन्न होने पर तत्काल किसी वैद्य से चिकित्सा करानी चाहिए। एकदम घबराकर जिस तिसकी औषधि लगानी ठीक नहीं।

नेत्ररोग अनेक प्रकार के हैं उनमें नेत्रों का दुखना, स्राव, खुजली, रतौंधा और आघात का लगाना इत्यादि नेत्रों के कई साधारण रोगों पर यहाँ कुछ परीक्षित प्रयोग लिखे जाते हैं।

साधारण व्यवस्था—नेत्रों का दुखना एक संक्रामक रोग है, इस लिए इस में रोगी को और दूसरे मनुष्यों को खूब सावधान रहना चाहिए। नेत्रों के दुखने पर रोगी जिस से नेत्रों को बारबार हाथों से या कपड़े से न रगड़े, इस विषय में अधिक ध्यान रखना आवश्यक है। दुखते नेत्रों पर लगाया हुआ कपड़ा दूसरे मनुष्यों को बिना धोए कभी व्यवहार नहीं करना चाहिए। यदि दुखते नेत्रों के सामने धूप की चकाचौंधी लगे अर्थात् प्रकाश न सहा जाय तो नेत्रों के ऊपर नीले रंग का

या हरे रंग का चश्मा लगाना चाहिए। यदि नेत्रों में से स्राव होता हो या पीप निकलती हो तो नेत्रों को रात में पट्टी आदि से नहीं बाँधना चाहिए। क्योंकि ऐसी अवस्था में नेत्रों को बाँधने से नेत्रों का महाअनिष्ट होता है। जब तक दुखते नेत्र अच्छे न हो जाँय, तब तक स्नान नहीं करना चाहिए। नेत्र पीड़ा में अत्यन्त गरम, तीक्ष्ण, और उत्तेजक पदार्थ प्रायः सब छोड़ देने चाहिए। सीधा सादा, हलका और पौष्टिक भोजन करना चाहिए। मस्तिष्क की दुर्बलता के सबब जो नेत्र रोग उत्पन्न होते हैं उनमें अधिक पौष्टिक और स्निग्ध भोजन करना चाहिए।

चिकित्सा—(१) नेत्रों के दुखने पर पहले उत्तम रसौत २ माशे ले, यदि रसौत अच्छा न मिले तो बाज़ार के साधारण रसौत को लेकर गरम जल में घोल कर फिर उसको वस्त्र में छान कर मंद मंद अग्नि से अफीम की समान पका कर सुखा लेवे. फिर इस रसौत को स्त्री के दूध में घोल कर उसकी चार पाँच बूँद दिन में ३ या ४ बार नेत्रों में डाले और लोध ४ माशे लेकर उसका बारीक चूर्ण करके आधपाव गरम जल में भिगो देवे, फिर आध घंटे के बाद उसको वस्त्र मे छान कर उससे दिन में ३ या ४ बार नेत्रों को भीतर तक खूब धोवे। इस से नेत्रों की पीड़ा शीघ्र कम हो जाती है।

(२) हरे आमलों को स्वच्छ पत्थर पर या खरल में छेद कर और उसका रस निचोड़ कर उससे पूर्वोक्त विधि से नेत्रों को धोने से नेत्रों की पीड़ा कम हो जाती है।

(३) सैंधा नमक, गेरू, हरड़ और रसौत इन सब को एकत्र खरल करके नेत्रों के ऊपर लेप करने से नेत्रों का दुखना और नेत्रों से पानी का गिरना आदि, सब उपद्रव दूर होते हैं।

(४) अडूसे की जड़ की छाल, आमले, नगरमोथा, बहेड़ा और परवल प्रत्येक औषधि दो दो तोला लेकर १ सेर जल में पकावे, जब आध सेर जल बाकी रह जाय तब उतार कर छान ले। इस जल के द्वारा नेत्रों को धोने से नेत्रों की सूजन नेत्रों की पीड़ा, लाली और जल का गिरना आदि उपद्रव दूर होते हैं और दृष्टि की शक्ति बढ़ती है।

(५) एक कागज़ी नीबू लेकर उसकी कुछ दूर तक चाकू से चार खाँपे चीर कर उसमें हलदी का बारीक चूर्ण और लोह चूर्ण भर देवे फिर उसको एक बारीक कपड़े में लपेट कर या बाँध कर उसे बारम्बार नेत्रों के ऊपर फेरे, परन्तु नेत्रों के ऊपर फेरते समय नीबू को ज़रा ज़रा हाथ से दबाता जाय, जिस से उसका रस निकल कर थोड़ा थोड़ा नेत्रों के भीतर भी पहुँचता रहे। यह दवा नेत्रों के दुखने में अत्यन्त हितकर है।

(६) उत्तम और बड़ी बड़ी हरड़ें लेकर उनकी गुठली निकाल ले, फिर एक लोहे के करछे में थोड़ा ताजा गाय का घी डाल कर गरम करले। जब घी अच्छी तरह गरम हो जाय, तब उस में पूर्वोक्त हरड़ के छिलके डाल कर थोड़ी देर तक भून ले। इस घी में भुनी हुई हरड़ों को स्वच्छ जल से पीस कर, नेत्रों के पलकों के ऊपर लेप करने से नेत्रों की पीड़ा, लाली, खड़क आदि सब उपद्रव दूर होते हैं।

(७) इमली के पत्तों के रस में रसौत हरड़ और किंचित् सेंधा नमक को घिस कर इनकी २-३ बिन्दु डालने से नेत्रों की लाली और खड़क दूर होती है।

(८) कागजी नीबू के रस में बबूल की छाल को लोहे के पात्र में घिस कर नेत्रों के चारों ओर पलकों के ऊपर लेप करने से दाह, लाली और सब पीड़ा कम हो जाती है।

(९) लाल चंदन को जल में लेप करने से लाली और पीड़ा कम हो जाती है।

(१०) गुलाब के अर्क में किंचित् फिटकिरी या सेंधा नमक घिस कर उससे नेत्रों को धोने से नेत्रों की लाली और खड़क दूर होती है।

नेत्रों में खुजली होने पर—एक साफ कपड़े का टुकड़ा लेकर काँसी की थाली में रख कर जलावे, जब उसकी जलकर छाई हो जाय, तब उसमें १०-१५ बूँद सरसों का तेल और किंचित् कपूर डाल कर अँगुली से १०-१५ मिनट तक थाली में घिसे। फिर इसको एक पात्र में अच्छे प्रकार से ढक कर रख देवे। इसको २-३ बार नेत्रों में लगाने से नेत्रों की खुजली दूर होती है।

(२) कपूर का बारीक चूर्ण करके बड़ के दूध में मिला कर नेत्रों में आँजने से नेत्रों की खुजली दूर होती है।

(३) केवल त्रिफले के जल से प्रति दिन नेत्रों को धोने से नेत्रों की खुजली दूर होती है और दृष्टि-शक्ति बढ़ती है।

नेत्रों से अधिक पानी का स्राव होने पर—

किंचित् अफीम को सेम के पत्तों के रस में घिस कर नेत्रों के ऊपर लेप करने से, पानी का गिरना, सूजन और पीड़ा दूर होती है।

रात्र्यंध अर्थात रतौंधे की चिकित्सा—

पियाज के रस की या पान के रस की दो तीन बूँद नेत्रों में भर कर, थोड़ी देर बाद नेत्रों को शीतल जल से धो डालने से रतौंधी दूर होती है।

(२) एक मुट्ठी मेंहदी के पत्तों को लेकर संध्या के समय आध पाव गरम जल में भिगो देवे। दूसरे दिन प्रातः काल मेंहदी के पानी को वस्त्र में छान फिर इसमें समान भाग कच्चा दूध मिला कर पान करे। इस प्रकार दो तीन दिन तक करने से रतौंधी दूर होती है।

(३) ताज़े गोबर के ५ बिन्दु रस में थोड़ा स्त्री का दूध मिला कर प्रति दिन दो बार नेत्र में लगाने से रतौंधी में विशेष उपकार होता है।

(४) रात्रि में सिर के ऊपर गाय के घी की कुछ दिनों तक मालिश करने से रतौंधी दूर होती है।

(५) रीठे की गुठली को जल में घिस कर रात्रि के समय किंचित् नेत्रों में आँजने से रतौंधी दूर होती है।

नेत्रोंमें आघात लगने की चिकित्सा—एक या दोनों में चोट के लगने पर नेत्रों में सूजन या पीड़ा हो, तो एक नरम और स्वच्छ कपड़ा गरम करके उससे धीरे धीरे नेत्रों को ऊपर से सेंके। अथवा पोस्त के फलों के बक्कल का क्वाथ बना कर उसमें कपड़ा भिजो कर सुहाता सुहाता उससे सेंके। इससे नेत्रों की पीड़ा और सूजन दूर होती है।

(२) गरम भात के ऊपर थोड़ा ताजा घी चुपड़ कर उस भात को कपड़े में बिछा कर, नेत्रों के ऊपर बाँधने से अथवा मैदा का गरम गरम हलुआ बाँधने से, नेत्रों की चोट और उससे उत्पन्न हुई सूजन पीड़ा आदि में बहुत लाभ होता है।

(३) यदि आघात के लगने से पीड़ा और शोथ अधिक हो, तो किंचित् अफीम को गुलाब के अर्क में घोल कर नेत्रों के ऊपर लेप करना चाहिए।

नेत्र की गुहेरी पर—चन्दन को जल में घिस कर लगाने से या चन्दन के इत्र की अथवा मेंहदी के इत्रकी एक दो बूंद नेत्र को बचा कर लगाने से गुहेरी बहुत जल्द नष्ट हो जाती है।

(वैद्य)

एक खुली चिट्ठी

श्रीमती चाँदरानी "साहिबा" की सेवा में

माननीय बहिन !

सादर प्रणाम,

मैं पहले इस ढिठाई के लिए आप से क्षमा मागना चाहती हूँ कि अपरिचित होने पर आप को पत्र लिखने का साहस करती हूँ और वह भी खुला पत्र। इस समय कष्ट देने का मुख्य कारण यह है कि मैं ने सौभाग्य से आपका एक लेख "धर्म्म" शीर्षक इसी जेठ के "इन्दु" में पढ़ा, जिसको हिन्दी में रूपान्तर करके एक मुसलमान सज्जन हमारे धन्यवाद के पात्र बने हैं।

लेख का विषय प्रशंसनीय है, परन्तु खेद है कि उसके लिये मैं आप को धन्यवाद नहीं दे सकती। कारण यह है कि आप अपने विचार ऐसी भाषा और लिपि द्वारा प्रगट किया करती हैं, जिस से सौ में निन्नानवे हिन्दू स्त्रियाँ अनभिज्ञ हैं। आपके इस लेख को यद्यपि श्रीयुत पीर मुहम्मद जी ने नागराक्षरों में प्रकाशित

किया है, फिर भी इसमें उर्दू और फ़ारसी के कठिन शब्दों की कमी नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि कितनी हमारी बहिनें "जमाना" और "साधू" या "मार्तण्ड" इत्यादिक उर्दू पत्रों को पढ़ सकती हैं, और कहना नहीं होगा कि इन्हीं में प्रायः आपके लेख निकला करते हैं।

आपने अपने इस लेख में स्त्रियों को अनेक उपदेश दिये हैं और उनके बहुत से धर्म्म वा कर्त्तव्य गिनाये हैं, परन्तु आप को मालूम होना चाहिये कि मातृभाषा की सेवा करना भी हम सब का एक मुख्य कर्त्तव्य है। माताएँ बालकों की "प्रथम गुरु" समझी जाती हैं। जब उन्हीं की भाषा यावनी होगी, तो उनकी सन्तान से अपनी जातीय भाषा की सेवा तथा उसके आदर की आशा कहाँ तक की जा सकती है।

आप अपने इसी लेख में एक जगह लिखती हैं, "हम क्यों दूसरों की नकल करें" फिर कुछ दूर चल कर लिखा है, "यदि हंस भी मछली खाने लगे, तो बकुला कहलाये, हंस कोई न कहे" इत्यादि।

प्यारी बहिन, क्षमा करना, क्या ये उदाहरण आप पर चरितार्थ नहीं होते। मैं अन्यान्य भाषाओं में लिखने पढ़ने को बुरा नहीं समझती किन्तु मेरा तात्पर्य्य यह है कि हम को पहले मातृ भाषा में लिखने पढ़ने का अभ्यास करना चाहिये, जिसका जानना अन्य भाषाओं की अपेक्षा कहीं सरल है और परम आवश्यक भी है। यह मेरा अपना अनुभव है। फिर यदि आवश्यकता हो तो अन्य भाषाओं में भी लिखा पढ़ा जाय। परन्तु अपनी भाषा को बिल्कुल ही छोड़ कर दूसरी भाषा का आश्रय लेना मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार बहुत ही निन्दनीय है। क्योंकि ऐसा करने से आप की बहिनों को कोई लाभ नहीं है। वे तो उसी भाषा में आप के लेख पढ़ सकती हैं, जिसको वे जानती हैं। इस प्रान्त की स्त्रियों में क्या, शिक्षा आप बंगाल और महाराष्ट्र की रमणियों की ओर दृष्टि डालिये। पाश्चात्य विद्या में बड़ी बड़ी ग्रेज्युएट विदुषी होने पर भी अपनी भाषा में अधिकांश लिख पढ़ कर अपनी बहिनों को लाभ पहुँचाया करती हैं।

आप सच जानिये कि हिन्दी के पत्र और पत्रिकाएँ-विशेष कर स्त्री शिक्षा सम्बन्धी जैसे गृहलक्ष्मी आदि में आप के लेखों की बड़ी आवश्यकता है, और वे उन के हरदम स्वागत करने को तैय्यार हैं।

मातृभाषा रूपी माता की इस समय बड़ी हीन दशा है। शिर के बाल छिटके हुए हैं। सारा शरीर जर्जर हो रहा है। वह नेत्रों में जल भर कर आप जैसी विदुषी देवियों से याचना करती है—अपील करती है—कि "हे देवि! उर्दू बीबी के फन्दे में मेरे पुत्र ही क्या कम फँसे थे, जो तुम जैसी योग्य पुत्रियाँ भी

उसकी दासी बन रही हो। अब भी चेतो और मेरी सेवा को अपना पहला कर्त्तव्य समझो" इत्यादि। आशा है कि आप इस पर अवश्य ध्यान देंगी।

प्यारी बहिन! अब मैं आपका अधिक समय नहीं लेना चाहती। इस पत्र को समाप्त करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि यदि इसमें कोई अनुचित शब्द मेरी लेखनी से निकल गये हों तो आप कृपा करके मुझे क्षमा करेंगी क्यों कि आपको मैंने अपनी बहिन समझ कर इतना लिखा है।

आपकी,
कृपाभिलाषिणी
द्रौपदी देवी

नोट—मुझे श्रीमती जी का पता मालूम नहीं है, इस लिए गृहलक्ष्मी के पाठक और पाठिकाओं से निवेदन है कि यदि वे कृपा करके इस पत्र को उन तक पहुंचा देंगे, तो मेरे धन्यवाद के भागी होंगे।

भारत वर्ष के उद्धार में स्त्रियों का भाग



इस बात को सब लोग स्वीकार करते हैं कि जबतक किसी देश के स्त्री-पुरुष मिल कर उसकी उन्नति के लिए प्रयत्न नहीं करते तब तक वह संसार के राष्ट्रों में उच्च स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। स्त्री पुरुष किस प्रकार मिल कर कार्य करें, इस विषय में मत भेद हो सकता है, और भिन्न भिन्न समाजों ने इस विषय पर भिन्न भिन्न दृष्टियों से विचार किया है; पर इस बात को सब लोग मानते हैं कि राष्ट्रीय उन्नति के लिए जिस प्रकार उच्च श्रेणी के मनुष्यों की आवश्यकता है, उसी प्रकार उच्च श्रेणी की स्त्रियों की भी आवश्यकता है। आज आधुनिक भारत वर्ष में स्त्रियों का स्थान अप्राकृतिक और अनिश्चित है और इसका मुख्य कारण यह है कि पिछली शताब्दी में भारत वर्ष में दो सभ्यताओं का साथ साथ प्रचार रहा है और देश की आवश्यकता के कारण पुरुषों का चरित्र दूसरी सभ्यता से संगठित हुआ है। सब बातों में स्त्रियाँ अपनी पूर्वीय बातों को ग्रहण करती रहीं, साथ ही पुरुष पश्चिमीय (यूरोपीय) बातों को ग्रहण कर रहे हैं और इसी कारण आपस में स्त्री पुरुष के साथ सार्वजनिक जीवन में कोई सहानुभूति नहीं है। इससे दोनों दुर्बल हो गये हैं और दूना नुकसान हो रहा है; विचार शीलता के विना धार्मिक जीवन सङ्कीर्ण हो गया है और आदर्श के विना सार्वजनिक जीवन दुर्बल हो गया है। भारत वर्ष न्यायालयों और गृहों में विभक्त हो गया है; यह दो मुँही एकता के स्थान में अलग अलग खण्डों में विभक्त हो गया है और यद्यपि इन

खण्डा में कितना ही प्रेम क्यों न हो पर ये दो ही हैं एक नहीं।

यद्यपि स्त्री में पूर्वीय (देशीय) भाव है, पुराने ढङ्ग की पूर्वीय स्त्री नहीं है, उसका ज्ञान नष्ट हो गया है, पर भक्ति अभी तक मौजूद है। सार्वजनिक जीवन में अब वह कोई भाग नहीं लेती, पर गृह में उसकी प्रभुता बनी हुई है। भारत वर्ष के आधुनिक और प्राचीन इतिहास से यह स्पष्ट है कि आज कल की दशा अत्यन्त शोचनीय है और वह प्राचीन आदर्श की भद्दी नकल है। प्राचीन भारतवर्ष की आदर्श रमणियाँ वीरत्व के साँचे में ढली थीं। दमयन्ती से उसके पति के राजमन्त्री और राजपुरुष सलाह लेते थे, दमयन्ती ने अपने पति को जूआ खेलने से निषेध किया; सीता अकेली और शत्रुओं से घिरी रहने पर भी निर्भय डटी रही और अपने सुख की जरा भी परवा न करके शान्तिपूर्वक बन को गई; गार्गी ने बड़े बड़े पण्डितों से शास्त्रार्थ किया और बड़े से बड़े पण्डित को परास्त कर दिया; कुन्ती ने अपने पुत्रों को वीरत्वपूर्ण परामर्श दिया; गान्धारी वीरों और मुखियों की सभा में अपने हठी पुत्र को डाँटने के लिए चली गई और राजपूताने और महाराष्ट्र की वीर स्त्रियाँ उनकी उत्तराधिकारणी बनीं; ये रमणियाँ अपने पतियों को सभा में सलाह देती थीं। आवश्यकता पड़ने पर उनके साथ युद्ध में लड़ती थीं, गद्दी पर रक्षक के रूप में बैठती थीं, रानी होकर राज्य करती थीं। ताराबाई, चाँद बीबी और अहिल्या बाई को कौन नहीं जानता। अहिल्या बाई तो उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मौजूद थीं। यह अङ्गरेज़ी शिक्षा का ही फल है कि स्त्री पुरुष अलग हो गये हैं। इसी से स्त्रियों में हीनता आ गई है और जीवन की परिपूर्णता में वे अलग हो गई हैं और इसी से पुरुषों को अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं और उनका प्रभाव और उनकी देश भक्ति कम हो गई है, क्योंकि स्त्री पुरुष की महत्ता को उकसाने वाली है और विना स्त्री के यज्ञ करके हम देवताओं को तृप्त नहीं कर सकते।

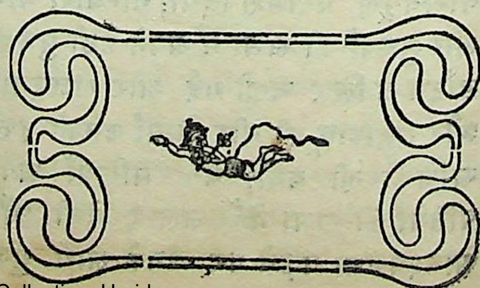
अतएव भारत वर्ष के उद्धार के लिए उसकी बालिकाओं को एकान्त से निकल कर फिर सार्वजनिक जीवन में अपनी पुरानी जगह पर आना चाहिये, जिससे पिछली शताब्दी में वे हट गई हैं और जिस से मातृ भूमि को बड़ा नुकसान हुआ है, उन्हें उन पश्चिमीय (यूरोपीय) स्त्रियों की जो आर्थिक अवस्थाओं के कारण जीवन संग्राम में पुरुषों की प्रतिद्वन्द्विनी हो गई हैं, नकल करने की ज़रूरत नहीं है। इससे उन यूरोपीय स्त्रियों से उत्पन्न होने वाले बच्चों को बड़ी हानि होती है, जन्म विरुद्ध कठिनाइयों के कारण उनकी शक्ति कम हो जाती

है; स्त्री पुरुष से बड़ी नहीं है पर उसका अङ्ग है और पुरुष भी उस का अङ्ग है। स्त्री और पुरुष मनुष्यत्व की दो आँखें हैं और उनकी सब बातों के देखने के लिए भिन्न भिन्न दृष्टियाँ होने पर भी उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है और एक आँख जो देख सकती है, उसकी अपेक्षा उनकी दृष्टि चौड़ी हो जाती है। पर कृत्रिम रूप से स्त्री और पुरुष किसी के कार्य को सीमा-बद्ध नहीं करना चाहिये; हरएक को अपनी अपनी योग्यताओं। को पूर्ण रूप से विकसित करना चाहिये और उनके लिए कानून या रीति रस्म के कारण किसी कार्य में योग्यता प्राप्त करने का निषेध नहीं होना चाहिये। मनुष्य जन्म धारण कर आदमी जो काम करसकता है, उसे वह निश्चय ही करेगा, यदि वह किसीको नुकसान नहीं पहुँचाता।

स्त्रियों को शिक्षा देना सबसे अधिक आवश्यक है; दर्शन, साहित्य विज्ञान और कलाकौशल के खजाने पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए भी खुले रहने चाहिये। ज्ञान का कोई भंडार ऐसा न हो, जिसमें स्त्री या पुरुष जाति की ताली लगी हो। सती स्त्रियों की आवश्यकता है और पण्डिता स्त्रियों की भी आवश्यकता है और नवीन भारत, स्वतंत्र लोगों के भारत की नींव को गहरी खोदने और उसे दृढ़ बनाने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों की बुद्धिमत्ता की ज़रूरत है। स्त्री का धर्म दर्शन और विज्ञानपूर्ण होना चाहिये। और विज्ञान को भी धर्म का दास होना चाहिये। वह जिन सत्यपूर्ण बातों को सीखेगी, उनका पुरुष का अपेक्षा बहुत अधिक उपयोग करेगी, क्योंकि पुरुष जैसे जन्म ही से कानून बनाने वाला होता है, वैसे ही स्त्री जन्म ही से शासन करने वाली होती है।

भारत वर्ष के उद्धार के लिए स्त्रियों के लिए सब क्षेत्र खुले रहने चाहिये; उनके हाथ स्वतंत्र रहने चाहिये और उनके कार्यों में किसी प्रकार की बाधा नहीं होनी चाहिये। स्त्री और पुरुष इस-लिए नहीं बनाये गये हैं कि एक दूसरे को गुलाम बनावें किन्तु इसलिए कि स्त्री और पुरुषों में जो जो विभिन्नताएँ हैं जीवन को परिपूर्ण करने में उनका वे उपयोग करें। मातृ भूमि के लिए पुरुषत्व और स्त्रीत्व दोनों का उत्सर्ग होना चाहिये क्योंकि उन्हीं की एकता में भारतवर्ष की शक्ति, दृढ़ता और स्वतं-त्रता है।

(मर्य्यादा)



सास का चित्र



सारी दुनिया में शिक्षा की आवश्यकता बालक और बालिकाओं को है, पर भाग्य के फेर से भारत के बूढ़े और बूढ़ियों को शिक्षा की आवश्यकता है। यह सच है कि बूढ़े तोते पढ़ नहीं सकते पर मेरे विचार में परिश्रम द्वारा कुछ साधारण बातें अवश्य सिखलाई जा सकती हैं। विशेषतः इस देश की सास कहलाने वाली महिलाओं को इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है। यहाँ की अधिकांश सासुओं की दशा बहुत ही शोचनीय है। उनकी क्रूरता, निर्दयता, और अमानुषी व्यवहार से बहुओं के स्वास्थ्य, हृदय, मस्तिष्क, चरित्र और शान्ति पर जैसा कठोर दुष्प्रभाव पड़ रहा है और समाज में जैसी अशान्ति और पाप का राज फैल रहा है उसके लिखने में लेखनी का मुँह भी लज्जा से काला हो जाता है। ऐसी दुष्टा सासुओं के घोर अत्याचारों के अभ्यास के लिए मानो विचारी बहुएँ एक यंत्र सी बनी हुई हैं जिनके द्वारा वे कर्कशाएँ स्वतन्त्रता से मन माना अपने अभ्यास की क्रिया सिद्ध किया करती हैं।

गाली झिड़की बात बात में कोसना, उन पर भाँति भाँति के निन्दनीय कलंक आरोपित करना, चोरी चटोरापन के अकारण दोषों से उनको अपमानित करना, उनके कोमल अंगों को ठौर कुठौर चपत, धौल, घूसों और डंडों से पीटना तो उनका एक साधारण व्यवहार और नित्याचार है, पर यह शोक सम्बाद सुन कर पत्थर का कलेजा भी पानी हो जाता है कि कभी कभी वे राक्षसी निःसहाय बहुओं को गरम चिमटों से भी दाग दिया करती हैं।

घर के सारे काम जो चार आदमियों से भी सुगमता पुर्वक नहीं किये जा सकते निर्दयी सास उन विचारी दुर्बल बहुओं के सिर पर छोड़ देती हैं और सब काम समय से पहले तैयार चाहती हैं। यदि विलम्ब हुआ (और विलम्ब होना प्राकृतिक है) तब क्या कहना है, फिर तो सासु जी की मानो माँगी मुराद पूरी हो गई। फिर जितना चाहें उस दीन अबला की हजामत बनावें इसका उनको पूरा अधिकार है। अपने हृदय की पापमयी मोरी खोल कर उस हत भागिनी बहू को जिस गड्ढे में चाहें बहा दें इसका उनको पूरा अधिकार है।

इतने अत्याचारों पर भी क्रूर-चरिता सास यह नहीं जानती कि उस विचारी मातृ वियोगिनी, मनुष्य की कन्या ने दोपहर तक मुँह भी धोया है और अन्न का कोई कण भी उसके मुँह में गया है या अभी तक उनके लिए पूरी एकादशी ही है।

देखो जाड़ों की हिममयी रजनी से सनसनाती हुई ठंढी हवा में बारह बजे एक पतली साड़ी पहने हुये खुले आँगन में सर्दी से काँपती हुई एक रमणी ठंढे जल से बरतन मल रही है और बार बार सिसिकती और दाँत खटखटाती जाती है। इस शीत काल में इस युवती को बड़ी निर्दयता के साथ कौन सता रहा है? क्या यह काम सूर्य निकले नहीं हो सकता था? हां क्यों नहीं सकता, पर सास जी के क्रूर मानस को सन्तोष कैसे हो। वही इस अत्याचार की उत्तरदायिनी हैं।

ग्रीष्म की दोपहरी में धूएँ से भरी हुई एक बेझरोखे वाली तंग कोठरी में एक युवती घंटों से रसोई बनारही है। उसका सारा अंग सम्पूर्ण वस्त्र पसीने में डूब रहे हैं। आँखों से साफ दिखाई भी नहीं पड़ता। धूएँ से उसका मतिस्क भर गया है, एक दर्जन से अधिक खाने वालों की रोटी तैयार करनी है, पर सहायता के लिये आदमी के बदले एक बिल्ली भी उसके पास झाँकने नहीं जाती। विचार करो, इस अनाथ महिला को इस यम यातना में डालकर कौन पाप कमा रहा है? कोई नहीं, वही सास जी हैं।

एक क्षीणांगी अबला जिसकी आखें चढ़ी हुई हैं, शरीर पर हाथ रखते ही हाथ जलने लगता है, उसका सिर पीड़ा से फटा जारहा है, अभी घर आँगन बुहार कर पोकशाला में गई है। जूठे बरतनों को आँगन में निकाल कर गोबर मिट्टी से पाकशाला लीप कर आँगन में आयी है। बरतन मल रही है और स्वाँस स्वाँस पर कराह रही है। एक पड़ोसिन आकर आश्चर्य से पूछती है, "अरी! इसको क्या हुआ है, यह तो बीमार है, ज्वर से इसका शरीर भस्म हो रहा है, यह धंधा कैसे करती है?" एक दूसरी महिला उत्तर देती है, इसको क्या हुआ है, तुम इसका छल छिद्र नहीं जानतीं, इसने काम से जी चुराने के लिए यह कला प्रकट की है। यह अठवारों से यही कला दिखला रही है। यह डाक्टर बुलवाना चाहती है और मरदों को अपनी बीमारी का समाचार सुनाने को उत्सुक है। बहिन! यह अपने बाप की बड़ी दुलारी है, यह अलबेली है, यह रानी बनना चाहती है। देखो, मैं जीती रही, तो इसको रानी बनने का मज़ा चखा कर छोड़ दूँगी। पाठिकाओ! तुम इस उत्तर के देने वाली महिला को पहचान गई। यह भी वही सास कहलाने वाली महाकालिका की अवतार हैं।

प्रातःकाल से आधीरात तक एक बैल का परिश्रम करके एक अबला बे सुध सो रही है। अभी पहर रात शेष है, एकाएक उस के सिराहने शब्द रूपी बिजली की कड़क सुन पड़ती है। "राजरानी! अभी नींद नहीं खुली। पौ फटने को आया। क्या पलँग छोड़ने को जी नहीं चाहता?

बाप से क्यों नहीं कहा, मुझको राजा के घर डालो, मैं दस बजेतक शय्या पर पड़ी पड़ी करवटें बदला करूँगी। घर का सारा धंधा पड़ा है, इस निगोड़ी को सुख नींद घेरे है।" पाठिकाओ, तुम तो समझही गई होंगी कि यह बिजली सी गिराने वाली देवी भी वही यमरानी सास हैं।

होली का त्यौहार दो दिन रह गया है। एक युवती महीनों से एक साड़ी रंगा कर यत्न से रक्खे हुए है और "त्यौहार के दिन पहिनूँगी", यह विचार कर प्रसन्न हो रही है। एक बूढ़ी महिला को दिखला कर बड़े उत्साह से कह रही है, "अम्मा! इसे मैं ने होली के दिन पहनने के लिए रक्खा है।" महिला कहती है, "वाह बड़ी पहनने वाली निकली। यह साड़ी कल लल्ली के यहाँ जावेगी। पुरानी साड़ी धुली रक्खी है, जी चाहे तो गुलाबी रंगमें रंग कर पहन, चाहे नंगी रह। बड़े बाप की बेटी बनी है, बाप से मंगा कर क्यों नहीं पहनती?" पाठिकाओ! तुम्हें कुछ संशय तो नहीं है? यह बुड्ढी चुड़ैल भी भारत की गौरव-नाशिनी इस सास ही है।

हा! इस घोर अत्याचार के कारण कितनी बहुएँ स्वर्गलोक को चली जा रही हैं, पर इन पापपरायणा दयाशून्या सासों को तनिक दया नहीं आती। मेरी आँखों की देखी एक घटना है, जिस को १८ वर्ष बाद भी स्मरण करके आज मेरा कलेजा खण्ड खण्ड हो रहा है।

मेरे मुहल्ले में एक कहार था। उसकी एक बूढ़ी माँ, एक बहन और एक पत्नी थी। वह बूढ़ी भी उसी नमूने की सासों में से थी, जिनकी थोड़ीसी महिमा मैं ने ऊपर वर्णन की है। बिचारा कहार बड़ा सीधा था। उसकी पत्नी वैसी ही क्षमा शीला और सदाचारिणी थी। पर माँ बेटी कर्कशाओं की सेना के दल की सरदार थीं। उन सबों ने मुहल्ले में पाँच छः घरों का चौका बर्तन और पानी भरने का काम उठा रक्खा था। मा बेटी तो लल्लो पत्तो ही करके बैठी रहती थीं, पर सारा काम उसी बेचारी बहू के सिर पर पड़ता था। तिस पर भी मा बेटी कभी प्रसन्न चित से बहू से एक बात भी नहीं बोलती थीं। हाँ! बहाना ढूढ़ कर कोसना पीटना रोज़ जारी था और पेट भर कर अन्न पतोहू को किसी दिन नसीब नहीं होता था। उसके दो बच्चे पैदा हुए और दोनों मर गये। मरते क्यों नहीं, पहले तो आहार की कमी से बेचारी के दूध होता ही बहुत कम था। तिस पर दिन भर काम धन्धे के मारे उसको समय पर दूध पिलाने का मौका ही नहीं मिलता था। जब उसके दूसरा बच्चा पैदा हुआ, माँ बेटियों ने उस प्रसूती की कोई दुर्गति उठा नहीं रक्खी और सब सत्कार तो किनारे रहा, प्रसूतागार में उसको दोनों ने दाने दाने को सता डाला। उसकी शारीरिक शक्ति बिलकुल नष्ट हो गई और दस दिन भी नहीं बीते

थे कि उन दुष्टाओं ने उसके सिर पर हंडा रख दिया और घर घर का पानी भराना और उद्यम कराना प्रारम्भ करा दिया। १५ दिन बाद बच्चा मर गया और महीना भर बाद आप रोगी होकर खाट पर गिर गई। ११ दिन बीमार रह कर मृत्यु की सहायता से इस घोर आपत्ति से मुक्त होकर स्वर्ग को सिधार गई।

कुछ दिन बाद उस कहार ने दूसरा ब्याह किया। वह दो जीते पतियों को तिलाञ्जुली देकर आई थी। अबकै यह वह बहू नहीं थी, वह सास जी की भी चची थी। यह एक इक्ष थी तो वह नव इक्ष थी। उसने घर में चरन पधारते ही सास जी के बाल नोचने शुरू कर दिये, पहले तो सास जी ने पुरानी कला प्रगट करने में बड़ी योग्यता दिखलायी, पर लोहे को लोहा ही काटता है, अब के उनकी कला दब गई। बहू ने एक गाली के बदले दस गाली और एक चपत के बदले दस धौल का भाव निर्धारित कर दिया। भला इस विकट संग्राम में सास जी को जय कैसे प्राप्त होती। अन्त में विष हीन सर्प के समान थक कर हार बैठीं। फिर तो बहू ने सारी गृहस्थी अपने हाथ में लेली और सास जी को दाने दाने को तरसाने लगी। अन्त में उनको किनारे कर हाँडी डाली भी अलग कर लिया। कहार था निरा सीधा, वह भी जोरू का टट्टू बन गया। अब वह सास जी की दिन दिन भर हड्डी तोड़ती थी, तब कहीं मुँह में अहार पड़ता था, नहीं तो बस उपवास ही उपवास हुआ करता था। मैं ने उस बुढ़ी को एक दिन उस मोहल्ले की एक मालिन से रो रो कर यह कहते हुए कान से सुना था, "बेटी किसी का दोष नहीं, मैं ने पहले लक्ष्मी का निरादर किया है, वह फल भोग रही हूँ।" पाठिकाओ, विचार करो, जिस देश के सहस्रों घरों में इस प्रकार पाप हो रहा है, जहाँ निर्दयता, निठुरता और कराल क्रूरता की भयानक ध्वजा इस तरह फहरा रही है, जहाँ अन्याय स्वार्थ-दर्शिता और अत्याचार की कालिमा से गृह रंगा हुआ है, वहाँ की अवनति दुर्गति कष्ट क्लेश और नारकी जीवन के कारण विचारने में क्या परिश्रम है। हे देश की सास कहलाने वाली देवियो! दया करो अब बहुओं को चाट जाने वाली पापाग्नि की अवलम्बित लहरों को सिकोड़ लो अब हृदय पर से पाप पंक को साफ करो, उसको दया, क्षमा, सुशीलता और शान्तिमय प्रेम-पियूष से भर दो। बहुओं पर प्रेम प्रभाव डाल कर उनको वशी भूत करो, उनके दुख, दर्द, स्वार्थ, और मानस का विचार करते हुए उचित समय पर काम लो वह मातृ वियोगनी असहाय कन्याएँ भी तुम्हारी पुत्री हैं। फिर देखो, तुम्हारी गृहस्थी कैसी सुखद कैसी शान्ति मयी, कैसी आनन्ददायिनी और कैसी मन मोहिनी बन जाती है। देखो, तुम्हारे

क्रूर आचरणों से भारत का बड़ा अपकार हो चुका, अब अपने चरित्र परिवर्तन से यह क्लेश दूर करो, एक दिन परमात्मा को भी मुँह दिखाना है।

—बैजनाथसहाय मुख्तार

—— ——

नारी जीवन का प्रश्न।

क्या यह सत्य नहीं है बहिनो !
योग्य हृदय में करो विचार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥
जननी सम उस ऊँचे पद पर,
हम अपने को पाती हैं।
सहधर्मिणि व अर्धांगिनि,
दुनियाँ में कहलाती हैं ।
सचमुच इस जीवन में हम,
कितना कर्तव्य निभाती हैं॥
किन्तु कहाँ तक हम सब,
इसका ध्यान हृदय में लाती हैं।
"कुछ भी नहीं" हमें यह,
कहने में होता है दुःख अपार।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार॥
यह बतलाना नहीं अशिक्षा ही,
हम में हो रही प्रधान।
शिक्षित भी हैं तो हमको बस,
वही चार अक्षर का ज्ञान ॥
फूट कलह वा बैर जानतीं,
हानियुक्त झूँठे अभिमान ।
दुनियाँ के सद्गुण क्या जानें,
विदित नहीं जब उनका नाम ॥
नारी जीवन जीवन क्या है,
इसी भाव का है संचार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥
शिक्षित होने पर भी,
यदि हम नहीं करेंगी इसका ध्यान ।
गौरान्वित हो देश हमारा,
सबका होवे ऊँचा ज्ञान ॥
हो सुयोग्य सन्तान हमारी,
पावे दुनियाँ में सन्मान ।
सब के उच्च हृदय में होवे,
प्यारे भारत का अभिमान ॥
यदि हम इसका नहीं करेंगी,
साहस से उद्योग प्रचार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥
पा कर हाय विदेशी शिक्षा,
वैसी ही बन जावेंगी ।
यदि हम अपने देश धर्म पर,
ध्यान नहीं कुछ लावेंगी ॥
फ़ैशन ही पर सब शिक्षा का,
अन्त हाय दिखलावेंगी ॥
धर्म सनातन को हम,
कोरी मूरखता बतलावेंगी ॥
कौन लाज रक्खे भारत की,
जीवित हो किसके आधार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥

आपत्तियोँ से घिरा हिन्द था,
एक समय वह आया था ।
अपने उच्च हृदय का परिचय,
जब हमने दिखलाया था ॥
दीनोँ के रक्षार्थ हमीँ ने,
सुख अपना बिलगाया था ।
समरक्षेत्र मेँ हमने अपना,
रक्त पवित्र बहाया था ॥
पूर्णरूप से यही भाव तब,
रहा हृदय मेँ लहरेँ मार ।
हमीँ रहेँगी अंधकार मेँ,
क्योँ होगा भारत उद्धार ॥
किन्तु आज यवनोँ का ऐसा,
घोर घृणित अन्याय नहीँ ।
हम होँ उन्नतियुक्त जगत मेँ;
यह तज और उपाय नहीँ ॥
इतने पर भी भारत के हित,
होती रंच सहाय नहीँ ।
शिक्षित और अशिक्षित सम है,
ध्यान किसी का हाय नहीँ ॥
आश्चर्य है हमको अब भी,
होवे यदि यह नहीँ विचार ।
हमीँ रहेँगी अंधकार मेँ,
क्योँ होगा भारत उद्धार ॥
जिन्हेँ बात कहकर करने का,
रहता है स्मरण अपार ।
कठिन प्रतिज्ञा कर, जो लेती हैँ,
आगे बढ़ने का भार ॥
जिन्हेँ और कुछ ध्यान नहीँ हैँ,
छोँड़ एक निज देश सुधार ।
जो सिखलाती हैँ दुनियाँ को,
करना देश धर्म का प्यार ॥
जिनका प्रश्न सदैव यही है,
उनकी गिनती है दो चार ।
हमीँ रहेँगी अंधकार मेँ,
क्योँ होगा भारत उद्धार ॥
अस्तु! अन्त मेँ यह बिनती है,
कृपया इस पर करिये ध्यान ।
लोप न हो जावे भारत का,
पूर्व समय का ऊँचा मान ॥
उन्नति अवनति का कारण,
बस, होती स्त्री जाति महान
इससे बनेँ कर्मवीरा अब,
सब से पावेँ शुभ सम्मान ॥
'लली' प्रश्न यह कभी न भूलो,
जिसका ही यह है सब सार ।
हमीँ रहेँगी अंधकार मेँ,
क्योँ होगा भारत उद्धार ॥

—श्रीमती तोरन देवी (लली)

मच्छर का जीवन वृत्तान्त



रत वासियोँ को दुख देने वाले रोग तो बहुत हैँ पर जूड़ी जिसके जड़य्या, जाड़े का बुखार, अंतरा, चौथिया, आदि अनेक नाम और रूप हैँ सब से दुःखदायिनी है और

ताऊन और हैज़े के समान हज़ारों का संहार करती है। यह रोग कुछ थोड़े से टापुओं को छोड़ कर जो महासागर में इधर उधर छिटके हुए हैं पृथ्वी के समस्त देशों में होता है। उत्तर और दक्खिन के ठंडे देशों में रहने वाले इससे इतने परिचित नहीं हैं। सुना गया है कि एक बार इस रोग ने इंगलैण्ड पर भी कोप किया था। इस रोग को अंग्रज़ी में मलेरिया कहते हैं। यह रोग दलदल और नीची धरती में बहुधा अपना जन्म ग्रहण करता है। नदियों के मुहाने के पास और उन स्थानों में जहाँ पानी जमा रहता है और जहाँ धरती भीगी रहती है, इसकी जन्म भूमि है। बहुत दिनों तक लोग यह समझते थे कि दलदलों से जो विष भरी हवायें निकलती हैं उन्हीं से यह रोग उत्पन्न होता है। पीछे जब लोगों ने जाना कि अनेक प्रकार के कीटाणुओं (Germs) से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं तो विद्वानों ने अनुमान किया कि मलेरिया के छोटे छोटे कीड़े होते हैं जो मनुष्य के शरीर में मैला पानी पीने से प्रविष्ट हो जाते हैं। पर इस बात को प्राचीन समय में भी विद्वानों ने देखा था कि जहाँ जूड़ी का बुखार बड़े वेग से फैलता था उसी के साथ ही साथ मच्छर और भुनगों की भी अधिकता होती थी। अब यह बात सिद्ध हो गई है कि मलेरिया ज्वर को फैलाने वाले मच्छर ही हैं। यह सम्भव है कि किसी प्रान्त में मच्छर हों पर मलेरिया न हो पर ऐसा कभी देखने में नहीं आया कि जहाँ मलेरिया हो वहाँ मच्छर न हों। मलेरिया का कीटाणु मच्छर के शरीर में ऐसे ही रहता है जैसे वृक्षों पर अमरबेल और उसी के द्वारा मनुष्य के रक्त में पहुँचता है। यहाँ हम मलेरिया ज्वर और मलेरिया के कीटाणु को छोड़ कर मच्छर ही का जीवन वृतान्त लिखना चाहते हैं। उसका जीवन इस प्रकार आरम्भ होता है। मादा मच्छर भनभनाती हुई मैले पानी के कुन्ड के ऊपर अपनी अगली टाँगों के बल किसी बहती हुई लकड़ी के टुकड़े पर बैठती है और वहीं अंडे देने लगती है। इसके घंटे भर पीछे उसकी पिछली टाँगों के बीच में एक छोटी सी नौका के आकार की वस्तु दीख पड़ती है जिस पर दो तीन सौ अंडे अलग अलग रक्खे रहते हैं अंडे एक दूसरे से एक ऐसे रस से जुड़े रहते हैं जिस में पानी नहीं समा सकता। यह अंडे बहुधा सूर्योदय से पहिले दिये जाते हैं। अंडों का बेड़ा बनते ही मादा मच्छर का काम निबट जाता है और वह उनको पानी में छोड़ कर उड़ जाती है। अंडों का यह बेड़ा पानी में डूब नहीं सकता। झकोरा आने पर या ठेला जाने पर नीचे चला जाता है परन्तु फिर उतराने लगता है। उस पर पानी का कुछ भी असर नहीं होता। एक दिन व रात बीत जाने

पर हर अंडे के नीचे के भाग से एक कीट (Lav) निकलता है। यह छोटा कीट पानी के भीतर पैदा होता है हवा में साँस लेता है और इस हवा के लिए इसको बार बार पानी के तल पर आना पड़ता है। हवा को यह दुम की ओर से एक नली के द्वारा खींचता है। यह कीट बहुधा पानी के तल पर ही उलटा लटका रहता है और उसकी दुम का छोर जहाँ नली का मुँह होता है हवा में निकलता रहता है।

पहले चित्र में अंडों के कई बेड़े दिखाये गये हैं जिसमें कीट अंडों से निकल रहे हैं और बहुत से पानी के तल पर लटके हैं। यह याद रखना चाहिए कि १, २, ३, ४, चित्र में जन्तु लगभग चार गुना बड़े दिखाये गये हैं। इन अंडों के बेड़ों के परिमाण का अनुमान इस से हो सकता है कि यदि दस या बारह ऐसे बेड़े बराबर रक्खे जावें तो शायद एक इंच के बराबर हों। कीट तो इस समय और भी छोटे होते हैं।

चित्र में पानी का तल सीधी सतर से दिखाया गया है जिसके नीचे सैकड़ों कीट हैं और हवा में साँस ले रहे हैं। आठ नौ घंटे के पीछे सैकड़ों कीट दिखाई देते हैं। उनमें से बहुत से तो पानी के तल पर हैं और बहुत से पानी में बिलबिला रहे हैं (बरसात में गड़हों में जहाँ पानी बहने नहीं पाता यह कीट बहुत दिखाई देते हैं। पुराने घड़ों और टूटे बरतनों में जो बरसात में खुले पड़े रहते हैं और जिनमें बरसाती पानी जमा हो जाता है उनमें और जिन घड़ों का पानी कई दिन तक नहीं बदला जाता उनमें भी ये कीट बिलबिलाते हुए देखे जा सकते हैं।

यह कीट बहुत जल्दी बढ़ते हैं। जो कुछ घंटे पहिले अंडों से निकलते हैं वे पीछे निकलने वालों से अलग पहिचाने जा सकते हैं। चित्र ४ में यह कीट चार दिन के दिखाये गये हैं जिसमें यह अपनी साँस लेने वाली नलियों के सहारे उलटे लटके हुए हैं। ये कीट ऐसे ही उलटे लटके रहते हैं पर यदि कोई पानी के पास पहुँचता है तो यह चट नीचे गोता लगा जाते हैं। छाया पड़ने से भी ये तुरन्त ही पानी में चले जाते हैं। यदि खाने पीने का सामान कीट के लिए बहुतायत से हुआ तो यह कीट दस दिन के भीतर अपनी सूरत बदलता है। इन दस दिनों तक यह कुछ खाता दिखाई नहीं देता। इसका कारण यह है कि हम लोग उतनी छोटी खाने की चीज़ें जो यह खाता है नहीं देख सकते। ये चीजें, इस कीट के मुँह में पानी के प्रवाह के साथ चली जाती हैं। जब खाने की कमी होती है तब यह कीट महीनों ऐसा ही रह सकता है मरता नहीं और खाना पाने पर फिर ठीक हो जाता है।

हम अपने लेख के लिये यह मान लेंगे कि हमारे कीट को न तो किसी दूसरे जन्तु ने खाया न उस पानी में जिस में यह पैदा हुआ कुछ खाने ही की कमी हुई। दस बारह दिन पीछे इस कीट का एक विचित्र रूप हो जाता है । यह बिलकुल गोलाकार हो जाता है और सिर ही सिर दीख पड़ता है। यह सूरत इसकी बारहवें दिन हो जाती है जब यह पहिली बार कैंचुल बदलता है।

इस रूप में भी मच्छर हवा मे साँस लेता है परन्तु पूँछ की नली द्वारा नहीं । यह पूँछ छोटी होती है और पानी के नीचे रहती है। इसमें दो डाँड़ ऐसे लगे रहते हैं जो उसको तैरने में सहारा देते हैं। इस कीट की पीठ पानी के तल के ऊपर निकली रहती है। इसका सिर नीचे की ओर मुड़ा रहता है इस की पीठ की दोनों ओर दो नलियाँ निकली रहती हैं जिन से यह साँस लेता है । यह नलियाँ पानी के ऊपर निकली रहती हैं। कीट के इस रूप को अंग्रेज़ी में पूपा (pupa) कहते हैं। यह कीट इस समय तक कुछ खाता नहीं क्योंकि इस समय इसका मुँह और धड़ का बीच वाला भाग बिलकुल गोले के भीतर बन्द रहता है और इसी समय उसके मुँह के वह भाग, जो बड़े मच्छर में सुई और छोटे मच्छर में छुरे की भाँति होते हैं जिनको गड़ा कर मच्छर रक्त चूसता है, बनते हैं। यह दशा चार पाँच दिन तक रहती है और इसी समय में मच्छर का पूरा शरीर बन जाता है। इसके छोटे छोटे चिकने पंख इसकी ६ लम्बी टागें और इसका फिर दो आँखें, और उसकी सुई भीतर ही भीतर बन जाती हैं । इसके पीछे यह जन्तु टेढ़ा हो जाता है। जहाँ पर साँस लेने वाली नलियाँ होती हैं वहाँ की खाल चिटकती है और धीरे-धीरे मच्छर निकलने लगता है।सब के पीछे टागें निकलती हैं। उसके पीछे मच्छर पानी से उड़ने का उद्योग करता है । यह पहिले अपने पर सम्हालता है और खाल को धक्का देकर हवा में उड़ जाता है। इसी रीति से निश्शंक अंतरिक्ष में उड़ जाने का ज्ञान उसको कहाँ से हुआ यह ईश्वर ही जानता है। मच्छर जी के सांसारिक जीवन का यही श्री गणेश है जो पीछे अधिकांश मनुष्य जाति को रात्रि के समय अपना गाना सुनाने के लिए बाध्य करता है। कोई विरल ही भाग्यहीन होगा जिसको इनका गाना सुनने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ हो।

—ब्रजराज किशोर

(विज्ञान)

रंग रीति



गल झाड़ियों में गोखलू, रँगनी, बबूल, कितने ही प्रकार के काँटे होते ह, पर जैसा रूप, रंग और गंधमय कोमल गुलाब के काँटे हम लोगों को खटकते हैं वैसा और कोई नहीं, इसका यही कारण है कि जिसके रूप और गुण पर हम लोग मोहित रहते हैं यदि वह भी हमें चुभने लगे तो हमारे मन की व्याकुलता और दुःख का क्या कहना है। इसी भाँति जिन स्त्रियों की स्वाभाविक सुन्दरता और लावण्यता की प्रशंसा और सराहना में जग भूला रहता है उन के व्यवहार की अशिष्टता और गँवारपन देख कर केवल हम लोगों को आश्चर्य ही नहीं वरन बहुत हताश होना पड़ता है। उस समय उनके मुख की कांति, हमें विष सी लगती है और उनकी बातें, वाण जैसी हृदय को बेधती हैं।

अभाग्य से हमारे घर की लड़कियों की शिक्षा के साथ साथ उनकी बोल चाल और रंग रीति पर भी ध्यान नहीं दिया जाता उन्हें मिलने जुलने उठने बैठने और आये गये का सत्कार के नियम नहीं बताये जाते। इससे जब तक वह अपने ही घर में बैठी रहती हैं तब तक तो किसी तरह उनका निर्वाह हो जाता है पर भले आदमी के घर या अच्छी संगत में जाते ही उन्हें अपना भद्दापन जचने लगता है। यहाँ तक कि उनके लिये वहाँ घड़ी भर रहना भी कठिन हो जाता है, लज्जा के मारे वह दौड़ी फिर अपने घर की शरण लेती हैं। इसमें अधिक दोष हमारी कन्याओं का नहीं है, क्योंकि शिष्टता का व्यवहार देखने को उन्हें अवसर ही कहाँ मिलता है! ये बातें समाज या बड़ी मण्डलियों से सीखी जाती हैं और वहाँ तक हमारी देवियों की गति नहीं होती। इसलिये यह आवश्यक है कि यहाँ शिष्टाचार के कुछ साधारण नियमों की चर्चा की जाय।

अच्छे व्यवहार से जो चाहे जिसका मन मोह ले। कोई कुछ दे वा न दे, कोई हित करे या न करे लोगों से अच्छी तरह मिलता है और हँसकर बातें करता है, सब प्रश्नों का धीरता और प्रसन्नता से उत्तर देता है तो वह सबका प्यारा हो जायगा। अपने बर्त्ताव से सब को प्रसन्न रखना और दूसरों के कार्य पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करना यही शिष्टता का मुख्य लक्षण है। कोई ऐसा कुढंगा सवाल न करना जिसके उत्तर देते हुए लोगों को संकोच हो, वा जिससे लोगों को अपनी छोटाई सिद्ध होने लगे। बहुधा देवियाँ एक दूसरे के गहने कपड़े आदि की बात किया करती हैं। कोई कहती है हमारा गहना तो कटक का बना हुआ है

तुम्हारा यहीं का बना है। कोई कहती है हमारे गहने गद्दी की चाँदी के हैं तुम्हारे गलाई चाँदी के। कोई अपने कपड़े के बढ़ियापन की बात हाँकती है, कोई दूसरों के गहने कपड़े का मोल पूँछ कर अपनी श्रेष्ठता बताती है। कोई पूछती है तुम्हारे पिता या स्वामी कितना पाते हैं हमारे तो इतना नहीं, इतना पाते हैं। कोई कहती है ब्राह्मणी हूँ तुम कौन जाति की हो। भला एक तो दरिद्र वा छोटा होना और दूसरे अपने मुँह से ऐसा कहना किस से सहा जासकता है। कुछ स्त्रियाँ तो यहाँ तक स्पष्टता दिखलाती हैं कि मुह पर ही लोगों से कह देती हैं—हाय भगवान न करे कोई ऐसे कंगाल के घर पड़े। लड़के नहीं जीते हैं कहाँ से जीये, पूर्व जन्म की कमाई हो तब न। काहे, ऐसी बिपत कभी नहीं पड़ी थी, अच्छा लो अब तो पड़ी न। जैसा किया आगे आया इत्यादि। कभी ये अपने घर की निन्दा की झड़ी भी वैसी ही लगाती हैं। सुनने वाला अपने मन मे कहता है कि जब अपना यह हाल है तब दूसरों का भेद कैसे छिपा सकेंगी। कुछ स्त्रियाँ चार जने के बीच से एक को अलग काना फूसी करने या बात कहने के लिये उठा ले जाती है। इससे बहुत लोगों के चित मे इर्षा की अग्नि भड़क उठती है। यदि ऐसा करना ही हो तो उसके लिए आज्ञा मागना उचित है। यह सदा का नियम होना चाहिए कि आते जाते उठते बैठते उपस्थित लोगों से आज्ञा ले लें। जो बाहर से आवे उसका उठकर आदर भाव करना, लड़के बच्चों पर छोह दिखलाना, उन्हे गोद उठाना, चूमना, खिलोने मिठाई देना भी बहुत प्रचलित नियम है। पर्व त्यौहार या उत्सव के दिन बाहर से आये हुए लोगों की अपेक्षा सादे कपड़े पहनना या हलके गहने पहनना जिस में गरीब से गरीब न्योतहारिन को उससे मिलने या बात करने में लज्जा न हो, यह मालकिन या ज्येष्ठ स्त्री का कर्तव्य है, बिदा लेकर जाने वालों को द्वार या फाटक तक चलती बेर पहुँचाना। तिलक बिदाई या पान देना भी उसका काम है। कौन कहाँ है, किसके खाने सोने या रहने का क्या प्रबन्ध है, इसका पता रखना, नित सबसे मिलना हाल पूछना और प्रसन्नता प्रकट करना उसका धर्म है।

सुगृहिणी किसी के पीछे जब उसकी बात चलाती है तब सिवा गुण के उसके अवगुण का नाम नहीं लेती है। कुछ कहना होता है तो बैठाकर उसके सामने ही सब कह सुनाती है। इससे उसके ऊपर सबका विश्वास जम जाता है और वह जो कहती है बड़े ध्यान से लोग सुनते हैं। उसको फिर शपथ खाना नहीं पड़ता, देव देवी की दुहाई नहीं देनी होती, गन्दी कहावतों का सहारा ढूँढना नहीं पड़ता। उसकी बातों के अक्षर अक्षर पर लोग श्रद्धा

रखते हैं। सब विषयों में वह मध्यस्थ बनती है। उसका कुल परिवार कैसा ही हो, वह सबके आगे रहती है। झूठमूठ बड़े और धनिक लोगों से नाता जोड़कर अपना मान कराना उसे व्यर्थ मालूम पड़ता है। उसे बनना और अकड़ना नहीं सुहाता। वह निरन्तर अपना सहज, सरल और नम्र स्वभाव रखती है। अपनी बड़ाई वह आप क्या करेगी उसे दूसरे के मुह से सुनकर भी वह शरमाती है। उसकी चाल में लेश भर अभिमान नहीं होता, क्योंकि "वह जानती है कि मुझमें रूप है तो भगवान की कृपा से, विद्या है तो गुरु के अनुग्रह से और धन है तो पूर्वजों की दया से।"

—गोपालनारायण सेनसिंह

लेखकोंके लेख लौटानेकी युक्ति

चीन देश में, जब कभी कोई लेखक अपना लेख, वहाँ के किसी मासिक पत्र में प्रकाशित करने के लिए भेजता है और जब वह लेख सम्पादक के मनोनुकूल नहीं होता, तब सम्पादक, उस लेख के साथ, निम्न लिखित सम्पादकीय पत्र भेजता है। इससे वहाँ के पत्र-सम्पादकों की कार्यकुशलता मालूम हो सकती है।

"सूर्य और चन्द्र के अत्यन्त पूज्य बन्धु-घर, आपका दास, बड़ी नम्रता से, आपके चरण कमलों में नमस्कार करता है और आपके चरण रज को सिर पर धारण कर जीवित रहने की और सेवा में कुछ प्रार्थना करने की आज्ञा चाहता है।

आपके लेख-दान से हम कृतकृत्य हो गए! इस लेख के प्रकाश से हमारी दृष्टि अधिक स्वच्छ हुई। इसे पढ़ कर हमें अत्यानन्द हुआ। आपके ऐसा लेखन-सौन्दर्य, रसिकता, चतुरता हमें आज दिन तक कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहीं हुई।

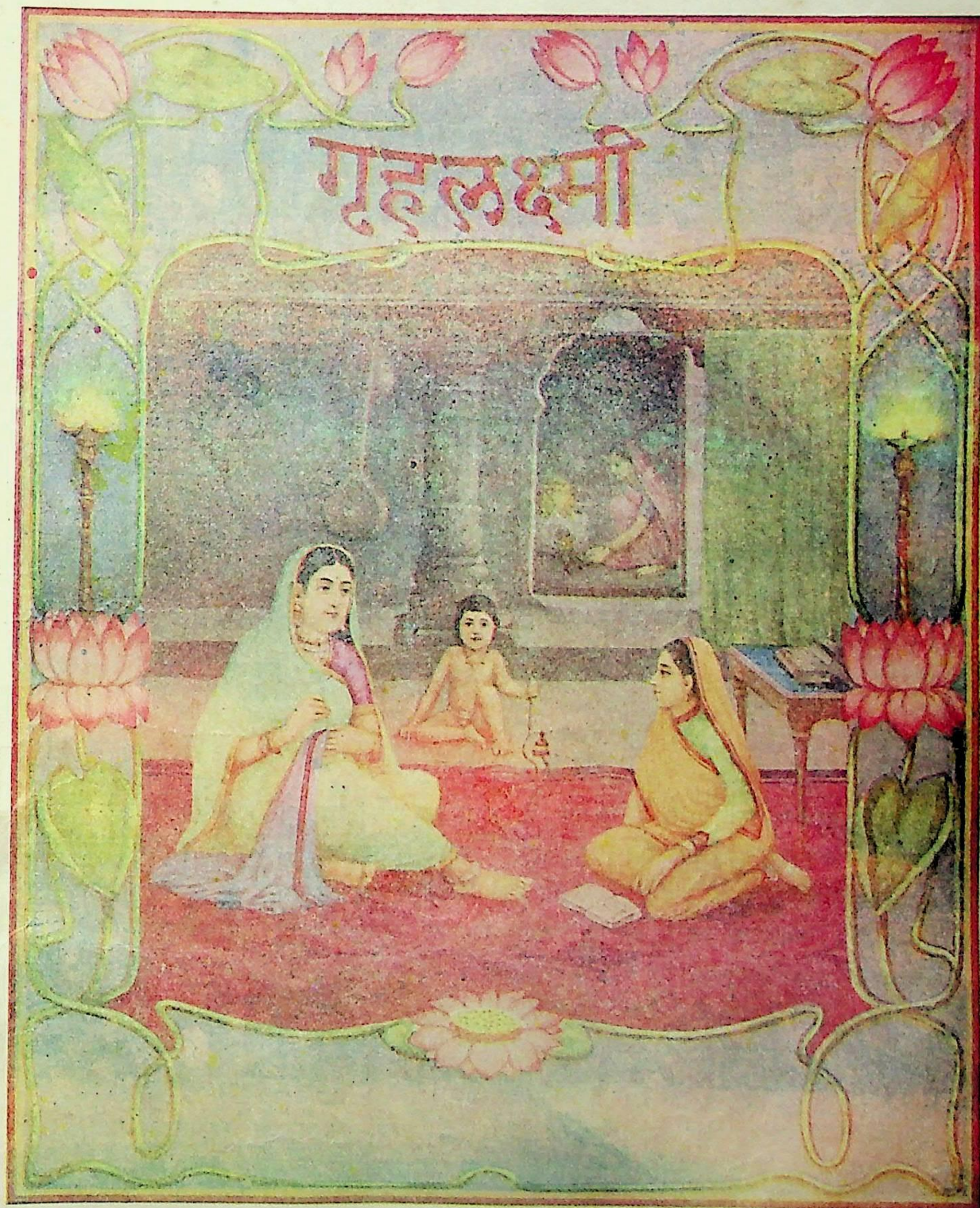
बड़े कष्ट से और भयान्वित अन्तःकरण से हम आपके भेजे हुए लेख को वापिस करते हैं। यदि हम उसे अपने पत्र में प्रकाशित करने का साहस करते तो नगर के कर्मचारी आपके अमूल्य लेख को ही आदर्श लेख बतला कर भविष्य में इससे कम दर्जे का कोई लेख हमारे पत्र में प्रकाशित करने की हमें आज्ञा नहीं देते।

हम बहुत वर्ष से समाचार पत्र के सम्पादन का कार्य करते हैं, अतएव हम अब तक के अनुभव से कह सकते हैं कि आपके लेख के सदृश सुन्दर लेख बहुत ही कम दृष्टिगोचर हुआ करते हैं। हमें बारम्बार ऐसे सुन्दर लेख नहीं मिल सकेंगे, अतएव हम आपके लेख को वापिस करते हैं।

इसके उपलक्ष में हम आपसे क्षमा-याचना करते हैं। हम आपके चरण सेवक हैं। हम पर कृपा दृष्टि रखिये!"

(चित्रमय-जगत्)

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।



वार्षिक मूल्य २॥)] सम्पादक— [प्रति संख्या =)॥

पण्डित[illegible], श्रीमती गोपालदेवी ।

विषय-सूची

गृहलक्ष्मी के नियम ।

[१] गृहलक्ष्मी प्रति मास के आरम्भ में प्रकाशित होती है। [२] डाक-व्यय सहित इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) मात्र है। [३] नमूने की कापी मँगाने वालों को चाहिए कि ≈)॥ का टिकट भेज कर हम से नमूना मँगा लें। यदि वे ग्राहक हो जायँगे तो उन्हें शेष अङ्कों के लिए केवल १।=) देना पड़ेगा। [४] ग्राहकों को चाहिए अपना पता पूरा और साफ लिखें जिससे उनके पास पत्रिका पहुंचने में गड़ बड़ी न पड़े। [५] वर्त्तमान समय की राजनीति तथा धार्मिक झगड़ों से सम्बन्ध रखने वाले लेख इस पत्रिका में नहीं छापे जाते। [६] विज्ञापन की छपाई एक बार के लिए प्रति पंक्ति ।≈), आधे पृष्ठ के ५॥) और पूरे पृष्ठ के १०) हैं। अधिक दिनों के लिए विज्ञापन छपाना हो तो पत्र व्यवहार करके तै कर लेना चाहिए। [७] बैरङ्गपत्र नहीं लिए जायँगे। जवाबी कार्ड या आध आने का टिकट आये बिना किसी के पत्र का उत्तर नहीं दिया जायगा। [८] लेख, परिवर्त्तन के पत्र, समालोचना के लिए पुस्तकें आदि, रुपया तथा और सब तरह के गृहलक्ष्मी सम्बन्धी पत्र इस पते पर भेजने चाहिए—

श्रीमती गोपालदेवी

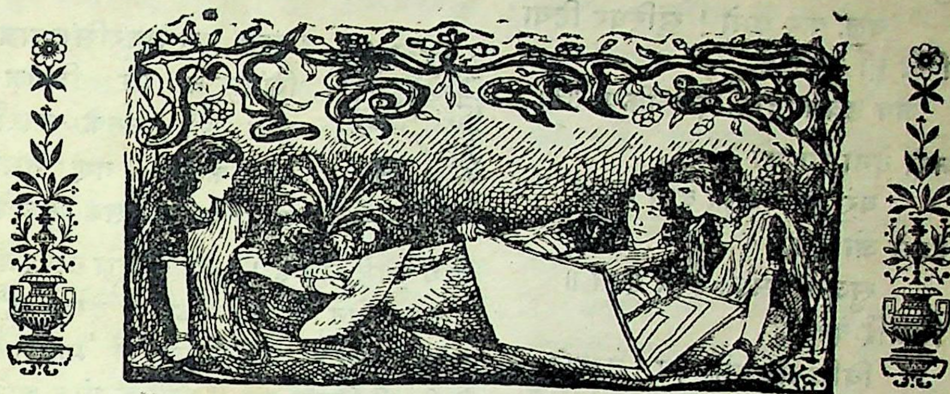
'गृहलक्ष्मी'-कार्यालय, इलाहाबाद



राजकन्या मेरी

आप बड़ी उदार और दयालु हैं। इन्होंने बहुत सा द्रव्य एकट्ठा करके आजकल के युद्ध में लड़ने वाले वीरों को तरह तरह के पुरस्कार दिये।

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग।



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः
"सा पत्नी या विनीता, स्याच्चितज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, भाद्रपद, संवत् १९७२ [षष्ठ दर्शन

प्रार्थना

किया है क्या ऐसा
प्रभुवर ! महापाप हमने ?
हमैं जो देते हो
दुख विविध यों निष्ठुर बने ॥
घिरा दुखों से है
हृदय रहता अस्थिर बड़ा ।
सदा चिन्ता का है
कटक रहता सम्मुख खड़ा ॥१॥
रहा कर्तव्यों को
सावध करने का बल नहीं ।
रुजों की पीड़ा से
पल भर हमें है कल नहीं ॥
सदा ही दो एक
ग्रसित रहते रोग-रिपु से ।
व्यथा जो पाते हैं
किस बिधि बतावें हम उसे ॥२॥
लखो तो कैसे हैं
घर भर पड़े रोग मुख में ।
न आती थोड़ी भी
हम पर दया गाढ़ दुख में ॥

तुम्हारी आशा के
बल, कर प्रभो ! सुस्थिर हिया
किये ही जाते हैं
जप हवन दानादिक क्रिया ॥३॥

नहीं देना था जो
वर, न उसको दान करते।
जिसे जो दे देते
सुजन उसको हैं न हरते ॥
दिखाई देती है
विधि तब हमैं देव ! उलटी।
नहीं तो आती क्या
विपद जो थी सब हटी ॥४॥

न कांक्षा है कोई,
सुयश प्रभुता भूमि धन की।
विलासों से पूर्ण
प्रचुर सुखमा है सदन की ॥
सभी है, छाया है
प्रभु ! यदि तुम्हारे चरण की।
नहीं ! पै क्यों होती
सुलभ हमको शान्ति मन की ॥५॥

दया सिन्धो ! नाना
रुजगण हमैं नित्य दहते।
सहे ही जाते हैं
उन सकल को मौन रहते।
रही ऐसी ही जो
स्थिति प्रभु ! न रक्षा अब यहाँ !
बताओ जावेंगे
शरण हित हा ! हा ! हम कहाँ ? ॥६॥

—एस० पी० गुप्त

अभागी राणक



महाराज हारपावरसिंह राज सिंहासन पर विराजमान हैं, उनके चारों ओर कर्मचारी गण, तथा मन्त्री आदि सिर झुकाये हाथ जोड़े खड़े हैं। कन्या के मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने से और उसके देखते ही अपने अन्धे हो जाने के भय से महाराज ने किसी निर्जन वन में पुत्री के छोड़ आने की आज्ञा दी है। सब लोग उसी शोक सागर में डूबे हैं, उसी समय एक सेवक ने धीरे से आन कर मन्त्री के कान में कुछ कहा, मन्त्री ने ठन्डी साँस लेकर थोड़ी गर्दन हिला दी। महाराज ने व्याकुल हो पूछा, "क्या है ?" मन्त्री ने उत्तर दिया, "कुछ नहीं। महाराज की आज्ञानुसार कार्य्य हो गया !!" सब यह सुन कर चुप हो गये और दो एक सभासदों के आँसू भी निकल आये—

हा ! जो राज कन्या पुष्पों की शय्या पर शयन करने वाली, अनेक दास दासियों की रक्षा में रहने वाली, प्रिय माता की गोद में लालित व पालित होने वाली थी, आज वही सुकुमारी कन्या अनाथिनी हो कर कठोर धरती पर पड़ी हुई निर्जन स्थान में क्षुधा से व्याकुल हो कितनी ही देर से बिलख बिलख कर रो रही है। पर हा ! उसकी

पुकार को सुनने वाला, उसके सूखे हुए होठों पर एक बूँद पानी डालने वाला, उस को धूप में से उठा कर छाँह में रख देने वाला आज कोई दिखाई नहीं देता। बिधाता! तेरी गति अपरम्पार है, तेरी लीला किसी से जानी नहीं जाती, तेरे भेद कोई पहिचानने नहीं पाता, कल जो टुकड़ों को मुहताज था, आज राज सिंहासन पर बैठा दिखाई देता है और दो दिन पहिले जो राज सिंहासन पर आरूढ़ था आज भूमि पर लोटता नजर आता है!!!

एक कुम्हार कुछ समय में बन में मिट्टी लेने आया। उसने शिशु के रोने का शब्द सुना और शीघ्रतासे उसकी ओर गया। अत्यन्त रुपवती कन्या को पृथ्वी पर पड़ा देख उसने उसे गोद में उठा लिया और लिए हुए अपने घर को चला आया। कुम्हार की गृहिणी परम सुन्दरी कन्या को पाकर अत्यन्त हर्षित हुई और बोली, "स्वामी! यह देवी रूपिणी कन्या आपको अरण्य में मिली है, इस कारण इसका नाम 'राणक देवी' होना चाहिए। सन्तान बिहीना होने से जो दुख हमें निशिवासर हुआ करता था, वह दुख आज जगदीश्वर ने इस परम सुन्दरी बालिका को दे कर दूर कर दिया, हम उस को बार बार धन्यवाद देते हैं।

कुछ दिन पीछे यह कुम्हार अपने पुराने निवासस्थान को छोड़ कर कच्छ देश में भुज नगर के समीप एक ग्राम में स्त्री कन्या सहित जा बसा। राणकदेवी युवावस्था को प्राप्त होती हुई अपने असाधारण गुणों का परिचय देने लगीं। क्यों न हो, आखिर को राजकन्या ही है न? अपनी सुयोग्य सर्व गुणालंकृत माता के गर्भ से उत्पन्न हुई है। माता के गुणों का प्रभाव कन्या में आता ही है।

दैवयोग से कच्छ देश के महाराज शिकार खेलते हुए इस ग्राम में आ निकले और अचानक राणकदेवी पर उनकी दृष्टि पड़ गई। महाराज के मन में नाना प्रकार की भावनाओं का सञ्चार होने लगा। वे आश्चर्य्य में हो सोचने लगे कि ऐसी स्वर्गीय कन्या इस स्थान पर कहाँ से आई, निस्सन्देह यह लावण्यमयी नवयौवना राजरानी ही होने योग्य है। दूसरे दिन कुम्हार को राजदूत द्वारा संवाद मिला कि 'महाराज तुम्हारी कन्या से विवाह करना चाहते हैं।' कुम्हार ने इस सम्बन्ध को उचित न समझा और चुपचाप अर्द्ध-रात्रि के समय इस ग्राम को छोड़ कच्छ राज्य से बाहर निकल जूनागढ़ के समीप मजेवड़ी में अपना निवास ठहराया। धन्य है!!! क्या आज कल के कन्या तथा भगिनियों को राज दर्बार में नजर करने वाले इस स्वतन्त्र कुम्हार के चरित्र से शिक्षा नहीं ले सकते?

'कहीं गुदड़ी में भी लाल छिपते हैं!' राणक देवी की बुद्धि, गुण और सौन्दर्य्य

यहाँ भी प्रसिद्ध हो गये। और पाटन के महाराज सिद्धराज ने भाट द्वारा उनकी प्रशंसा सुन उनके पास विवाह का सन्देसा भेजा। राणक देवी के भाग्य में महारानी होना लिखा था। फिर एक साधारण कुम्हार से उनका विवाह सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता था? विधाता ने उनका ऐसा कोमल सुकुमार शरीर समस्त दिन परिश्रम करने और मिट्टी ढोने के लिए नहीं बनाया था। उनके पालक पिता कुम्हार ने भी सोचा कि उसके किये राणक देवी का भाग्य नहीं पलट सकता। वह महारानी ही हो कर रहेंगी। कुम्हारिन न बनेंगी। अन्त में उसने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया और सिद्धराज अपने आगामी सुख के विचारों में लीन होकर आनन्द मनाने लगे।

इस समय राह खेंगार जूनागढ़ के महाराज थे। राणक देवी की प्रशंसा वे भी सुन चुके थे और सिद्धराज के विषय में भी उनको संवाद मिल चुका था। तुरन्त ही राणक देवी को अपनाने के हेतु कुछ सेना लेकर उन्होंने कुम्हार का गृह घेर लिया और झटपट रूप की राशि राणक को राज महल में लाकर अपना विवाह उनसे कर लिया।

सिद्धराज इस समाचार को पाकर अत्यन्त कुपित हुआ। क्रोध से उनका समस्त शरीर कम्पायमान हो गया। इस अपमान को सहन न करके वे एक लाख सेना सहित राह खेंगार से युद्धार्थ चल दिये। राह खेंगार भी एक साहसी बीर योद्धा थे। सिद्धराज इस युद्ध में पराजित हुए कुछ समयोपरान्त सिद्धराज ने द्वितीय बार राह खेंगार से युद्ध किया, इस बार भी सिद्धराज को पराजय मिली। और वह लज्जित होकर अपने राज्य को लौट गये।

भाग्य का कैसा विचित्र खेल है! कहाँ राणकदेवी का जन्म हुआ, कहाँ उनका पालन पोषण हुआ, कहाँ से प्रथम विवाह संदेश आया, कहाँ का विवाह उनके पालक पिता ने स्वीकार किया और कहाँ जाकर अन्त में उनका विवाह हुआ। महारानी राणक देवी सर्व प्रिय थीं। वे अपनी प्रजा पर बड़ी दया रखती थीं, जूनागढ़ उनके पहुँचते ही सुख सम्पति की खानि हो गया। किन्तु राहखेंगार दिनों दिन बिलासता में फंसते गये। वह समझते थे कि सिद्धिराज इतनी हानि से दो बार पराजित हो कर लौटे हैं, अब इस ओर वे कभी आँख उठा कर भी न देखेंगे। इधर सिद्धराज के दिल में काँटा चुभा हुआ था। वह दिन प्रति दिन अपना सैन्य बल दृढ़ करते गये और अवसर पाते ही तृतीय बार जूनागढ़ को जा घेरा। राहखेंगार तथा सिद्धराज से घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में राह खेंगार कपट द्वारा जीवित

पकड़ लिये गये। महारानी राणक देवी वीर वेश से सुसज्जित हो कर विद्युति की भाँति तुरन्त युद्ध क्षेत्र में शत्रु का सामना करने के लिए आन पहुँची और उधर सिद्धराज की माता मीनल देवी पुत्र की सहायता के लिए रणभूमि में पहुँच गई। राणक देवी की सेना बहुत थोड़ी रह गई थी, अन्त में वे घायल हो कर शत्रु के हाथ में पड़ गई। युद्ध समाप्त हुआ। जूनागढ़ पर सिद्धराज की विजय पताका फहराने लगी—

राणक देवी के इस समय तक दो पुत्र उत्पन्न हो चुके थे। अभी वे बहुत छोटे थे, पर वे भी अपनी माता के साथ सिद्धराज के हाथ पकड़ गये थे।

अपने राज्य में पहुँच कर सिद्धराज राणक देवी से अपनी इच्छा पूर्ति करने की चेष्टा करने लगा—अनेक प्रकार के लोभ दिखाये, समझाया बुझाया, प्रेममयी वार्त्ता कर देवी के हृदय को अपनी ओर खींचना चाहा—परन्तु पवित्र मूर्ति, शुद्धात्मा-पतिव्रता क्षत्राणी राणक देवी जो धर्म के सन्मुख अपना जीवन तक तृणवत् समझती थीं, ऐसी घृणित बातों पर भला कब ध्यान देने वाली थीं। सिद्धराज ने विचारा कि पति के जीवित रहते राणक मेरी बात न मानँगी। राहखँगार का बध करा देने से मेरा मनोरथ सफल होगा। और उसने अपनी पापिष्ठ बासनाओं पर महाराज राहखँगार की बलि चढ़ा ही दी। इस दुष्कर्म का समाचार सुनाने सिद्धराज स्वयम् राणक देवी के पास शीघ्रता पूर्वक प्रसन्न मुख से आया। पति के बध का हाल सुनते ही पतिव्रता राणक देवी नागिन की भाँति तड़प कर बोली,—"अरे नीच! पापिष्ट! अधर्मी! दुष्ट! पामर!! हा!! मैं इस समय निःशस्त्र हूँ, नहीं तो अपनी तीक्ष्ण कटार को तेरे अधम शरीर का रक्त पान करा कर अपने प्यारे स्वामी का बदला तो चुका लेती। हा! तुझ नरपिशाच की शव को तो अपने नेत्रों से भूमि पर तड़पता देख लेती। पापी चाण्डाल, अब खड़ा खड़ा क्या देखता है? निर्दयी दूर हो, मेरे सामने से हट जा—दूर हो—नराधम! मेरे स्वामी का मृतक शरीर मुझे दे दे। मैं अपने प्राणपति के समीप शीघ्र ही पहुँचना चाहती हूँ?

कामान्ध सिद्धराज हँसता हुआ बोला,—"हे प्रियतमे! मैंने तेरे कारण तीन बार युद्ध किया, मैंने तेरे कारण अपनी अनन्त सेना की बलि दी, तेरे कारण अनेक कष्ट सहे, अनेक कठिनाइयाँ झेलीं, अब तो अपने इन कठोर वाक्यों का प्रिय संभाषण में परिवर्तन कर मेरी ओर प्रेम की दृष्टि से देख ले—मेरी प्रार्थना स्वीकार करले,—प्यारी! किस बात का तू शोक करती है? तेरे लिए तो परमात्मा ने सब स्थानों पर स्वर्गीय सुख बना रक्खा है।

राणक देवी गर्ज कर बोलीं,—"दुष्ट! मुँह बन्द कर, निर्लज्ज होश में आ, नहीं

तो अपनी क्रोधाग्नि द्वारा अभी भस्म कर तुझे यमपुर पहुँचा दूँगी।

सिद्धराज को क्रोध आ गया। राणक देवी के बड़े पुत्र पर अपनी तलवार उठा कर बोला,—"राणक देवी! तू ने मेरा अपमान किया, मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया, मेरी प्रार्थना को अस्वीकार किया, उसका प्रति फल मैं तुझे देता हूँ। यह ले,—"सिद्धराज के एक ही वार में शिशु का शीश गेंद की भाँति भूमि पर लुढ़कने लगा। देवी स्थिर चित्त से पुत्र का वध देखती रही। सिद्धराज अपनी मनोकामना की पूर्त्ति का फिर उद्योग करने लगा। कभी प्रेम वाक्य कह कह कर और कभी भय दिखा दिखा कर राणक देवी को वश में करने का प्रयत्न करने लगा। राणक देवी अपने प्रबल धर्म पर आरूढ़ थीं, वे दाँत पीस पीस कर रह जाती थीं, अधम सिद्धराज उनके क्रोध और धिक्कार से भी अपने होश में नहीं आता था। उसकी क्रोधाग्नि फिर भड़की। राणक देवी की गोद में से उसने उनके लघु पुत्र को भी खींच लिया और बोला,—"तू बड़ी हठी है। मैं भी देखूँगा, तेरी यह हठ कब तक रहती है। इस शिशु का वध करने में बलात्कार तुझे अपनी रानी बनाऊँगा।" शिशु माता से विछोह होने के कारण रोने लगा। राणक देवी बोली,—"प्रिय पुत्र! रोते क्या हो! तुम वीर पिता के अपनी विदुषी माता के पुत्र हो। तुम्हें रोना शोभा नहीं देता। जाओ बेटा! मेरे धर्म के अर्थ—पिता के मान के अर्थ, अपने बड़े भ्राता के सदृश तुम भी बलि चढ़ जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे पीछे तुम्हारे पिता तथा भ्राता के पास आ रही हूँ। हम सब की जीवन यात्रा आज समाप्त होने को थी, समाप्त हो गई।

हाय! निर्दयी सिद्धराज ने इस सुकुमार शिशु का भी सिर धड़ से उड़ा दिया। उस बालक का शरीर पृथ्वी पर तड़फने लगा—परन्तु धन्य है, उस देवी को, जिसका हृदय तीन बलि हो जाने पर भी द्रवीभूत होकर अपने धर्म से न डिगा। राणक देवी ने घृणित भाव से कहा—"अरे निर्लज्ज पापिष्ठ सिद्धराज! तेरे सब प्रयत्न निष्फल हैं, जीवित रहते यह पवित्र शरीर तेरे हस्तगत कदापि न होगा। अरे दुष्ट, क्यों व्यर्थ में अकर्म करके अपयश का भागी बनता जाता है! अपने ऊपर पाप पर पाप लादता जाता है!!

सिद्धराज कुचेष्टा से राणक देवी की ओर बढ़ा ही था कि देवी तड़प कर दूर हट गयी। सिंहनी के सा गर्जन शब्द सुन कर अधर्मी सिद्धराज का हृदय हिल गया। राणक का प्रबल प्रताप, विकराल नेत्र, मुख की तीव्र कान्ति, अतुलित तेज को देख उसका शरीर थर्रा गया। भयभीत होकर वह जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। राणक देवी बाहर निकल आयीं

और चिता चुनवाने की आज्ञा दी। सब सेवकों से उनकी आज्ञा का तुरन्त पालन किया। उस समय सब को यही भय लगा था कि राणक का तेज न जानें आज किस किस को भस्म करेगा। सिद्धराज से सब लोग घृणा करने लगे थे। उसने चुपचाप लाकर राणक के पति का शव उसे दे दिया और बोला, "हे पवित्र आत्मे! देवांगने! यदि तुम में सतीत्व है, यदि तुम यथार्थ में पतिव्रता हो, तो बिना अग्नि चिता प्रज्वलित करने की कृपा करो।"

राणक देवी ने "जय अम्बे–जय अम्बे" कहते हुए चिता आरोहण किया। स्वामी के सिर को गोद में लेकर पति के चरणों के ध्यान में मग्न हो गई। चिता भक से जल उठी। पतिव्रता राणक देवी की पवित्र आत्मा ब्रह्मज्योति में लीन हो गई।

'धनि धनि भारत की क्षत्राणी—
वीर कन्यका वीर प्रसविनी, वीर वधू जग जानी।
सती शिरोमणि धर्म धुरन्धर बुध बल धीरज खानी॥
इनके यश की तिहूं लोक में अमल ध्वजा फहरानी॥
धनि धनि भारत की क्षत्राणी॥

—धर्म पत्नी पं० रामगोपाल मिश्र

बुढ़ापा और उसकी आलोचना

बुढ़ापा

"अरे बुढ़ापा तोहरे मारे
अब तो हम कन्याय गयन।
करत धरत कुछु बनतै नाहीं
कहा जान औ कैस करन॥
दाढ़ी नाक याक माँ मिलिगै
बिन दाँतन मुँह अस पुपलान।
दढ़िही पै बहि बहि आवत है
कबो तमाखू जो फाँकन॥
बार पाकि गे रीगै झुकि ग
मूड़ौ सासुर हालन लाग।
हाँथ पाँय कुछु रहे न आपनि
केहि के आगे दुख रवावन॥" *

आलोचना

धन्य बुढ़ापा तेरी महिमा
तुझको हम दुतकारें क्यों?
"डाढ़ी नाक याक माँ मिलगै"
ऐक्य बुरा यह माने क्यों?
हुआ बुरा क्या इसमें जो है
"बिन दातन मुँह अस पुपलान?"
देख विचित्र चित्र इस मुख का
शिशु-गण पाते हर्ष महान॥
सभा नहीं वह मानी जाती
जिसमें वृद्ध न आते हैं।
पुपले मुँह की क्रिया मोदमय
जन ये पान चबाते हैं॥
इस प्रकार पर-मन-रञ्जन क्या
जगती का उपकार नहीं?
बिना बुढ़ापे भी कर सक्ते
ऐसा चित्त-विनोद कहीं?
"दाढ़ी ही पर बहि बहि आवत है
कबौ तमाखू जो खावैं।
क्या ये कोई बड़े दोष ह?
ये शिशु में भी दिखलावैं।

*यह पद्य पं० प्रतापनारायण मिश्र जी का रचा हुआ है।

"बार पाकि गै रीगै झुकि गै"
इस में हुई कौन सी हानि ?
श्वेत पवित्र रङ्ग अति उत्तम
काले से जग करता ग्लानि ॥
चलें अकड़ कर जो वे 'गुण्डे',
"अभिमानी" हैं कहलाते ।
झुकते वे ही बिरवे जग में
जो फलादि से लद जाते ॥
होती विनय पात्रता सूचक;
झुक कर बूढ़े दर्शाते ।
कमर नहीं टेढ़ी यह अनुभव
भारी जिस से झुक जाते ॥
हुआ अनर्थ कौन सा इसमें
"मूड़ौ सासुर हालन लाग ?"
हिल हिल कर वह हमसे कहता
"हाँ हाँ, ठीक विषय सुख त्याग ।"
ऊपर, नीचे—दायें, बायें,
कैसा भी सिर हिलता हो ।
चाल मरहठी, हिन्दी जानो,
उभय रीति हैं एक, न दो ॥
"हाथ पाँव कुछु रहे न आपनि"
इनका नहीं अधिक अब काम ।
आय बुढ़ापा डंका पीटे
तुम क्यों नहीं लेव विश्राम ॥
"केहिके आगे दुख रवावन" की
बूढ़े को क्यों सूझी बात ?
युवा अवस्था में भी तो नर
सहता बहुत दुःख आघात ॥
संयम से जो युवा रहे हैं
धन संचय है जिनके पास ।
ब्रह्मचर्य्ययुत जीवन रख कर
त्यागे अनुचित भोग-बिलास ॥
स्वास्थ्य जिन्होंने रक्षित रक्खा
मियमित रख आहार-विहार ।
काहे को वे दुखड़ा रोवें
डर है कौन "बुढ़ापा क्यार ॥"
"साठा सो पाठा" जग कहता
इसमें नहीं झूठ का लेश ।
अस्सी बरस के बूढ़े स्याने
करते हैं नित कार्य्य विशेष ॥
दिन भर करते कार्य्य, न थकते
चाहे युवा पुरुष थक जायँ ।
चलें फिरें बाँस से सीधे
समय समय पर चना चबायँ ॥
तीन-तीन घंटे तक ठाढ़े
भाषण करते गर्भित सार ।
रण में जाकर वृद्ध बाँकुरे
करते शत्रु-सैन्य संहार ॥
ब्रह्मचर्य्य संयम-युत जीवन
जिनने सदा बिताया है ।
वाक्य "शतायुर्वै पुरुषः" को
कर चरितार्थ दिखाया है ॥
वृद्ध सयाने पूजे जाते
श्वेत केश का होता मान ।
कामादिक रिपु नहीं सताते
लगता धर्म्म-कर्म्म में ध्यान ॥
दुख सुख सदा एकसम होते
बालक युवा वृद्ध को जान ।
सदा पाप से डर कर चलते
पाते वे सुख-सम्पति मान ॥
धर्म्म, अर्थ औ काम, मोक्ष ये
चार मनुज के हैं पुरुषार्थ ।
जो पुरुषार्थी रहा आदि से
वृद्धापा में वही कृतार्थ ॥
(हितकारिणी से)

सुकुमारी

(गतांक की पूर्ति)

सोलहवां परिच्छेद

सुख

समय बड़ा बलवान है। इसे बदलते ज़रा भी देर नहीँ लगती। जिन के दरवाजे कल हम बड़े बड़े दिग्गजोँ को झूमते देखते थे, उन के द्वारे आज हम देखते हैँ, कि गदहा भी नहीँ है। जो मनुष्य कल भूक के मारे छटपटाता था, उसे आज रत्न सिंहासन पर बैठा हुआ देखते हैँ। समय की गति का रोकने वाला आज तक इस भूमडंल पर कोई पैदा नहीँ हुआ। बड़े बड़े विज्ञान वेत्ता बड़े बड़े विद्वान इस की गति रोकने मेँ समर्थ नहीँ हो सके।

कुछ दिनोँ पहिले हम ने बाबू अविनाश चन्द्र को भूख से व्याकुल देखा था, आज देखते हैँ, कि उन के दसोँ दास दासियाँ हैँ। पहिले उनके रहने का मकान मामूली था, किन्तु इन दिनोँ हम उन्हेँ एक सुन्दर बँगले मेँ देखते हैँ। साहेब का काम इन्होँने खूब मन लगा कर किया। इनकी तरक्की होती गयी। आज कल इनको अब ढाई सौ रूपये माहवारी मिलते हैँ।

अविनाश सदैव तीसरे दिन अपनी राजी खुशी का पत्र मोहन को भेज देते थे। मोहन भी पत्रोँ का जवाब दे देते थे। लेकिन आज दो महिने से मोहन ने चिट्ठी नहीँ भेजी। न मालूम क्योँ?

आज इतवार है। इस समय दोपहर के एक बजे होँगे। अविनाश एक पलंग पर जिस मेँ झकाझक सफेद शय्या बिछी है, सो रहे हैँ। मोहिनी दूसरे कमरे मेँ बैठी हुई कन्या-कौमुदी नाम की पुस्तक पढ़ रही है और सुकुमारी अविनाश के पास कुर्सी पर बैठी है। कुछ देर मेँ अविनाश की नीँद उचट गयी। सुकुमारी से पानी माँगा। हाथ मुँह धो कर फिर बोले, कहो जी! क्या सोच रही हो।

सुकुमारी—कुछ तो नहीँ।

अविनाश—कुछ तो जरूर।

"मैँ यही सोचती हूँ, कि मोहिनी अब बड़ी हो गयी।"

"यह तो मैँ बहुत दिनोँ से सोचता हूँ।"

"कोई लड़का मोहिनी के लायक मिला?"

मिला तो नहीँ, मगर मिलने की उम्मेद है।

"कब तक?"

"जल्दी ही। तुम श्यामचन्द्र को जानती हो, जो एल-एल० बी० मेँ पढ़ता है। सुन्दर भी है। अभी जो उस दिन मिलने आया था।"

"हाँ हाँ! याद आयी। किस का लड़का है।"

"उस का बाप डिप्टी कलटर है। और बनारस में मकान है।"

"क्यों नहीं, डिप्टी का लड़का और ऊपर से सुन्दर, आखिर तुम उसको जीजा कहोगे न?"

अविनाश हँस कर बोले, "क्या इस में भी कुछ शक है?"



सत्रहवां परिच्छेद

मोहन की चिट्ठी।

आज बहुत दिनों बाद मोहन की चिट्ठी अविनाश के पास आयी है। उस में लिखा है—

"बेटा अविनाश! खुश रहो।"

आज हम बहुत दिनों बाद तुम्हें पत्र लिखते हैं। क्या किया जाय। हमारे ऊपर ऐसी ही आपत्ति थी, कि अब तक हम तुम्हें पत्र न लिख सके। ईश्वर के यहाँ देर है, किन्तु अंधेर नहीं। तुम्हारी ताई ने तुम्हारे साथ अन्याय किया। ईश्वर उसे उस का प्रायश्चित दे रहा है। लकवा के मारे वह उठने बैठने नहीं पाती। शायद ही बचे। मुझे बहुत कम आशा है। उसका मर जाना ही अच्छा। तुम्हारे ऐसे होनहार लड़के को जिसने दुश्मन से भी ज्यादा कष्ट दिया है, उस का मर जाना ही अच्छा। संसार से उसका चला जाना बहुत ही अच्छा। आज पन्द्रह दिन हुए, चोरी भी हो गयी। रुपया और ज़ेवरों का सन्दूक चोर उठा ले गये। बड़ी कोशिश की गयी। लेकिन सब वृथा हुई। सब कुछ गया यह भी चली जाय, तो हम निश्चिन्त हो जाय। एक दफ़े तुम्हे देखने की इच्छा है। इसीसे यह पत्र तुम्हें लिखते हैं। एक दफ़े तुम आकर मिल जाओ। फिर लौट जाना, और हम को बिलकुल भूल जाना। यही हमारा कहना है।

आशीर्वादक—"मोहन चन्द्र"

अविनाश ने ठंढी साँस ली। सुकुमारी को वह पत्र पढ़ने को दिया। सुकुमारी ने पढ़ कर कहा, तुम आज ही चले जाओ, और दोनों जने को लिवा लाओ। लकवा असाध्य रोग नहीं, घबड़ाने की बात नहीं है।

* * *

आज अविनाश अपनी जन्मभूमि आये हैं। उस विशाल भवन में अब वह रौनक नहीं है। वह सुन्दरता नहीं है। वह सफ़ाई नहीं है, जो पहिले थी। अन्दर गये। मोहन देखते ही अविनाश से चिपट कर रोने लगे। अविनाश भी रोने लगे। अविनाश ने मानिनी के पैर छुए। मानिनी बोल नहीं सकी, पर उसकी आखों से आसुओं की धारा बहने लगी। रोती रोती वह बोली,

"अविनाश, तुम यहाँ क्यों आये। मेरा मर जाना ही अच्छा है ।"

अविनाश—ताईजी ! तुम क्या कहती हो। तुम बहुत जल्द अच्छी हो जाओगी। कल तुम्हें हम प्रयाग लिवा चलेंगे। हवा बदल जायगी, तो तुम्हारी तबियत अच्छी हो जायगी।

मानिनी—मुझे अब जीने की इच्छा नहीं है। तुम्हें देख ही लिया। बहू और मोहिनी को भी देख लेती। बस, साध मिट जाती। कुछ देर ठहर कर फिर बोली, लेकिन मैं अपना जला मुँह उस देवी को कैसी दिखाऊँगी, जिसे मैं ने कभी प्यार से बात भी नहीं कही।" अविनाश बोले, "नहीं ताई जी ! ऐसी बात न कहो। तुम ने हम लोगों को कुछ दुःख नहीं दिया। उस समय हमारा भाग्य ही अच्छा न था।"

अविनाश ने वह रात वहीं वितायी। दूसरे ही दिन मानिनी और मोहन को लेकर वे इलाहाबाद चले आये।

अविनाश ने एक अच्छे डाक्टर को बुलवा कर मानिनी का इलाज करवाना आरम्भ किया। सुकुमारी और मोहिनी जी जान से उसकी सेवा करने लगीं। जो सेवा किसी लालच से की जाती है, उसका प्रति फल जल्दी नहीं मिलता। लेकिन जो प्रम और श्रद्धा से की जाती है, वह बड़ी जल्दी अपना चमत्कार दिखाती है। यही बात है, कि सुकुमारी और मोहिनी की प्रम मय सेवा से मानिनी बहुत जल्द अच्छी हो गयी। उसका शरीर जो दुर्बल हो गया था, भर गया। मोहन भी प्रसन्नता से रहने लगे।

मानिनी अब पहिले की मानिनी नहीं है। अब उसका स्वभाव बदल गया है। उसने समझ लिया, कि सुकुमारी देवी है। मैं पूरी पिशाचिन हूँ। मैं ने उसको बड़े दुःख दिये थे, लेकिन उन दुःखों का कुछ भी ख्याल न करके सुकुमारी ने तन मन से मेरी सेवा की है। यदि वह न बुलाती तो मेरा बचना मुश्किल ही नहीं बल्कि असंभव था। पछतावे से मानिनी का कलेजा उस समय जल रहा था।

एक दिन मानिनी ने सुकुमारी से कहा, "बहू ! मैं ने तुम्हें बहुत दुःख दिये हैं। क्या तुम मुझे क्षमा कर दोगी ?"

सुकुमारी बोली, "माँ ! तुम क्या कहती हो, मैं तुम्हारी बहू हूँ। तुम्हारा मेरे ऊपर हर तरह का अधिकार है। तुम चाहे जो करो। तुम ने मुझे कष्ट ही क्या दिया। तुम्हें मेरी कसम, जो अब ऐसी बात कहो।" मानिनी ने फिर कुछ नहीं कहा, सुकुमारी को गले से लगा कर बोली, "मेरी बहू, तू मेरी बेटी है, और मैं तेरी माँ हूँ।"

पीछे मोहिनी खड़ी थी, यह बात सुन कर बोली, "ताई जी ! भाबी तो तुम्हारी

बेटी बन गई, और मैं! मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ।" इसके जवाब में मानिनी ने मोहिनी को गोद में उठा कर बड़े प्यार से उसका मुँह चूम लिया!

—*◯*—

अठारहवां परिच्छेद

मोहिनी का विवाह

आज मोहिनी का विवाह है। जिधर देखो, उधर आनन्द बरस रहा है। घर के अन्दर स्त्रियाँ गाना गा रही हैं। सितार और हारमोनियम की आवाज के साथ गाने वाली कोमल बालाओं की आवाज़ हवा में तैर रही है। मोहिनी को उसकी सखियों ने वधू के रूप में परिवर्तित कर के सुन्दर सुन्दर आभूषण और वस्त्र पहिनाये हैं।

बाहर बैठक में अविनाश सब मनुष्यों को आदर के साथ बैठाल रहे हैं। किसी को कुछ तकलीफ़ न हो, इस बात का उन्हें पूरा ध्यान है। मोहिनी के पति का नाम श्यामचन्द्र है। श्यामचन्द्र ने अभी एल-एल० बी० पास किया है। लड़का होनहार है। सुन्दरता उसके चेहरे से बरसती है। चतुरता और सुशीलता उसमें कूट कूट कर भरी है। यही सुन्दर युवक मोहिनी का आराध्य देव होगा।

विवा के सब कार्य्य शान्ति पूर्वक हो गये। आज मोहिनी की विदा है। प्रातःकाल से ही सुकुमारी और मानिनी प्रबन्ध करने में व्यस्त हैं। बिदा का समय आ गया। मोहिनी की आँखों में आँसू देख पड़ने लगे। उसकी सखी बोलीं,

पहली—"मोहिनी! रोती काहे को हो?"

दूसरी—"कुछ नहीं। बिदा होने की रस्म पूरी करती हैं।"

तीसरी—"क्या कहने हैं। ठीक तो है। मैं तो यह रस्म बहुत दिन हुए, पूरी कर चुकी हूँ।"

चौथी—"इन्होंने तो अच्छा फैल मचा रक्खा है।"

पाँचवीं—"फैल नहीं मचा रक्खा, श्याम जी का ध्यान करती हैं।"

मोहिनी सब की बातें सुनती जाती थी, रोती जाती थी, और बीच बीच में सब की तरफ़ देखती जाती थी। आखिरी बात सुन कर उसे भी हँसी आ गयी! और कुछ हँसी का और कुछ रोने भाव दिखाती हुई बोली, "भाई..." पहिली सखी बोल उठी, वाह, आखिर खुल पड़ीं। बिदा के समय श्याम और मोहिनी पटले पर खड़े हुए। मानिनी ने आकर श्याम के उन्नत ललाट पर कुमकुमे का टीका लगाया। शेष क्रिया पूरी करने पर मानिनी चलने लगी। इतने में युवतियों के झुंड में से किसी ने कहा, "श्यामचन्द्र! जाने न पावें। आँचल पकड़ लो। और कहो,

कि सास होने का हक़ देती जाओ।" यह सुन कर श्याम ने फौरन मानिनी का आँचल पकड़ लिया और बोले, "वाह, तुमने तो हमको अच्छा धोखा दिया था।"

मानिनी—"अच्छा बताओ! क्या लोगे?"

श्याम—जो तुम्हारे जी में आवे, दे दो।"

मा०—आखिर कुछ कहो तो सही।"

श्याम—"नहीं मैं कुछ न कहूँगा।"

ज्यादा वाद विवाद न करके मानिनी ने सौ सौ रुपये के चार नोट पकड़ा दिये। फिर बोली, 'खुश रहो?" श्याम ने कहा, "गले का हार भी दे दो।" मानिनी ने बड़ी प्रसन्नता से अपने गले के सोने के हार को श्याम के गले में पहिरा दिया और फिर बोली, "और भी कुछ?" श्याम ने कहा, 'नहीं बस! जाओ, सस्ते में छूट गयीं।" एक युवती बोली, "वाह हज़ार रुपये तो ले लिये। अभी सस्ते ही में छुटी हैं।"

अब बिदा का समय आ गया। मोहिनी पहिले मोहन से मिली। फिर मानिनी से मिली। इसके बाद सुकुमारी के गले लग कर खूब रोयी और रोते रोते बिदा हुई। बरात स्टेशन को चली। स्टेशन पहुँच कर सब और और गाड़ियों पर बैठ गये। और श्याम व मोहिनी एक गाड़ी में बैठे। गाड़ी छुटने तक मोहिनी रो रो कर अविनाश के कपड़े भिगोती रही। कुछ देर बाद अविनाश ने श्याम से कहा, "भाई। मेरी बहिन को अच्छी तरह से रखना। ऐसा न हो, कि इसे कुछ दुख हो।" श्यामचन्द्र बोले, आप चिन्ता न करें, मैं आप की आज्ञा का सदैव पालन करता रहूँगा।

रेल ने सीटी दे दी। अविनाश ने अपनी पाकेट से दो सावरेन निकाल कर मोहिनी को दे दिये और बोले, "मोहिनी! सब को प्रसन्न करने की कोशिश करना।" गाड़ी चलने लगी। अविनाश उससे उतर आये और आँसू पोंछते हुए अपने बँगले को चले गये।

—o◯o—

उन्नीसवां परिच्छेद

सखियों का वार्तालाप

मोहिनी को ससुराल आये आज दस दिन हो गये। दो चार दिन तो वह शरम के मारे किसी से न बोली, पर आखिर शरम कहाँ तक करती। सब से मिल जुल कर रहने लगी। श्यामचन्द्र का खानदान बड़ा भारी था। मोहिनी की हमजोली की बहुत सी लड़कियाँ थीं और सभी मोहनी को चाहती थीं। मोहिनी ने भी सब को अपने सदव्यवहार से अपने वश कर रक्खा था। आज सब सखियों ने मोहिनी को अच्छे अच्छे वस्त्र पहिनाये हैं, अच्छे अच्छे आभूषण पहिनाये हैं।

सिर बाँध दिया है चोटी में एक फूल खोंस दिया है। एक पान लगा कर खिलाया गया। जब मुँह अच्छी तरह लाल हो गया, तब एक सखी ने कहा, "देखो सखी! क्या लक्ष्मी इनसे अधिक सुन्दर होंगी"?

दूसरी बोली,—"जाओ जी! अपने चाहने वाले को प्रसन्न करो।"

तीसरी—"ज़रा श्याम से कह दो, आपकी उपासिका मोहिनी देवी आपके ध्यान में निमग्न हैं।"

मोहिनी ज़रा चिढ़ गयी। बोली, तुम लोग चुप रहोगी, कि मैं उठ कर चल दूँ?"

दूसरी—"कहाँ, श्यामचन्द्र के पास?"

तीसरी—"छोड़ो जी। मज़ाक भी कितनी करोगी? किसी को पसन्द होती है, किसी को नहीं।"

चौथी—"अजी इनको, और यह मज़ाक ना पसंद। भला कभी ऐसा हो सकता है?"।"

मोहिनी बोली, "लो! मैं चली ही जाती हूँ।" यह कह कर जाने लगी। एक सखी ने हाथ पकड़ कर बैठाला और बोली, नहीं जी! जाती तो हम लोग हैं, तुम बैठो। नहीं तो श्याम जी आफ़त कर देंगे। यह कर कर सब सखियाँ वहाँ से उठ गयीं। श्याम जी अपने कमरे से यह सब बातें सुन रहे थे। जब सब उठ गयीं। तब वह स्वयम् मोहिनी के पास आये, और मोहिनी का हाथ पकड़ा। हाथ पकड़ते ही मोहिनी सिकुड़ कर इतनी सी हो गयी। श्याम उसे उठा कर अपने कमरे में ले गये और कुर्सी पर बैठा दिया। इस दृश्य को हम यहीं समाप्त करते हैं, क्योंकि अंतःपुर की बातों के वर्णन करने का हमें अधिकार नहीं है।

—*—*—

बीसवां परिच्छेद

दो ही महीने बाद मानिनी और सुकुमारी ने अविनाश से ज़िद्द किया, कि अब जाकर मोहिनी को ले आओ। अविनाश भी क्या करते। कहने सुनने पर राज़ी हो गये और मोहिनी को लाने के लिए वे श्यामचन्द्र के यहाँ चले गये।

वहाँ पहुँच कर उन्होंने बिदा के लिए श्याम से कहा। श्याम ने भी प्रसन्नता से बिदा की तय्यारी कर दी।

आज मोहिनी नैहर जायगी। उसकी सास ने कहा, "बहू! देखो, यहाँ के लोगों को भूल न जाना और जल्दी आना।" मोहिनी बोली, अम्मा! जब तुम बुला भेजोगी, तब मैं जरूर चली आऊँगी।" यह कह कर मोहिनी ने अपनी सास को प्रणाम किया। सखियों से मिल मिला कर वह बाहर गाड़ी में बैठने के लिए चली। चलती बेर सास ने मोहिनी को बहुत आशीर्वाद दिया। अविनाश बाहर खड़े थे। उन्होंने मोहिनी

को गाड़ी में बैठाला। और श्यामचन्द्र से हाथ मिला कर वे भी गाड़ी में बैठ गये। गाड़ी चलने लगी।

* * *

आज हम फिर सुकुमारी और मोहिनी को साथ बैठे देखते हैं। सुकुमारी मोहिनी से बहुत सी बातें पूँछ रही है। बड़ी देर के बाद सुकुमारी ने पूँछा, "क्यों मोहिनी! मेल मिलाप कैसा हुआ था?" मोहिनी हँसती हुई बोली, "तुम्हारी तरह। तुम अपनी बात याद कर लो। कुछ बहुत फर्क नहीं है।" यह सुन कर सुकमारी हँसने लगी।

पाठिकाओ! अब मैं इस कथा को यहीं समाप्त करती हूँ। यदि इस आख्यायिका के पढ़ने से आप लोगों को कुछ भी शिक्षा मिलेगी, थोड़ा भी लाभ होगा तो मैं अपने परिश्रम को सुफल समझूँगी और शीघ्र ही इससे बहुत बड़ी और इससे कहीं अच्छी आख्यायिका आप लोगों की भेंट करूगी। ॥ समाप्त ॥

—बावली बहू

बाल-सम्बन्धी कुछ बाते



भी की यह इच्छा होती है कि मेरे सुपुत्र हो, क्यों कि वह अपने सुचरित्र से माता पिता का मुख उज्वल करता है, उनकी सेवा कर उन्हे बुढ़ापे में सुख पहुँचाता है, यहाँ तक कि मृत्यु के पश्चात् भी उनका नाम जीवित रखता है। जल दान और श्राद्ध का अधिकार उसी को प्राप्त है। हमारी धर्म-पुस्तकें तो यहाँ तक कहती हैं, कि पुत्र के लिये ही विवाह किया जाता है (पुत्राय क्रियते विवाहः) जब सन्तान ऐसी अमूल्य वस्तु है, तो उसकी उन्नति के लिए जो कुछ न किया जाय, वह थोड़ा है। सभी चाहते हैं कि मेरे बच्चे हृष्ट पुष्ट, साहसी, सुशिक्षित और सुचरित्र होकर समाज के उच्च पद को सुशोभित करें। माता पिता की ऐसी अभिलाषा नितान्त पुत्र के प्रति स्नेह ही पर निर्भर नहीं, इसमें अपना भी हित अनहित है। यदि लड़का सुशील हुआ तो ठीक है, नहीं तो कभी कभी उनको भी बालक के दुश्चरित्रों से लज्जा और हानि उठानी पड़ती है। जिस प्राणी का जो आदर्श होता है, उसी के समान वह अपनी सन्तान होने की चेष्टा करता है। प्रत्येक सिद्धि के कुछ साधन हुआ करते हैं। कुछ मनुष्य तो साधनों का उपयोग करके उनसे लाभ उठाते हैं और कुछ हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हुए ही अभीष्ट प्राप्त करना चाहते हैं। बस वह मनमोदक चखते ही रह जाते हैं। माता पिता को उसी समय बालक से अच्छी बातों की आशा करनी चाहिये, जब कि उन्होंने स्वयं अपने कर्तव्य का पालन किया हो, अर्थात् उसका उचित पालन पोषण कर, उसे अच्छी शिक्षा प्रदान की हो।

पुत्र उत्पन्न हुआ। हर्षनाद होने लगा बधाइयोँ का ढेर लगा। चारोँ ओर धूम मच गई। ज्योँ ज्योँ बच्चा बढ़ता गया माता पिता की भी आशाएँ उच्च होती गईँ, परन्तु यह अविद्यारूपी अन्धकार के कारण बहुधा अपूर्ण ही रह जातीँ हैँ। बहुधा देखा गया है कि बच्चा जब किसी कारण रोता है, उसे लाड़ के कारण तुरन्त दूध पिला दिया जाता है, मानोँ वह भूख से ही पीडित है। दुग्ध ही के लिये रोता है। विना नियमित समय के बार बार विना भूख दूध पिलाने से लड़का लद्धड़ और रोगी हो जाता है, बालक के दुग्ध का समय नियमिय होना चाहिए, ऐसा करने से उसका स्वास्थ्य बढ़ता है।

बहुधा जब बालक लगभग साल भर का हो जाता है, उसे सभी प्रकार का भोजन दिया जाने लगता है, यहाँ तक कि मिर्चा और खटाई से भी बचाव नहीँ रहता। जो बड़े मनुष्य के लिए हानिकारक हैँ—भला फिर सोचिए कि इनका बालक के कोमल हृदय पर क्या असर पड़ेगा। उसे बहुत तीखे कड़वे और विषैले पदार्थ कभी न देना चाहिये। अधिकतर तो दुग्ध सेवन ही अच्छा है इसके अभाव होने पर सादा भोजन यदि गरिष्ट न हो तो उत्तम और लाभदायक है।

बहुधा लोग लड़के को मारे लाड़ के गोद से ही नहीँ उतारते; फल यह होता है कि उसके हाथ पैर पतले और दुर्बल हो जाते हैँ। फूर्ती तो उसके शरीर मेँ आती ही नहीँ। मेरी सम्मति मेँ तो स्वतन्त्रता पूर्वक उसे पृथ्वी पर खिलौनोँ के साथ खेलते रहने देना चाहिए। मिट्टी उन तत्वोँ मेँ से एक है जिससे शरीर बना है। यह देह को पालती है, परन्तु ध्यान रहे कि वह कहीँ उसे खाने न लगे, इससे शरीर मेँ रोग उत्पन्न हो जाता है। खिलौनोँ को बालक देखता, उठाता, फेँकता और तोड़ता है, इससे उसकी शक्ति और ज्ञान बढ़ता है।

आजकल बालकोँ को कड़ा आदि अनेक गहनोँ से सुसज्जित करने की बुरी प्रथा चल गई है। इससे उसके हाथ पैर फसेँ रहने के कारण अच्छी तरह बढ़ने नहीँ पाते इस लिए छोटे और दुर्बल पड़ जाते हैँ। कभी कभी यह भी सुना जाता है कि दुष्ट लोग गहनोँ के लालच से बच्चे को उठाले जाते हैँ, और माता पिता को सदा के लिए प्रिय सन्तान से हाथ धोना पड़ता है। जिस प्रथा से ऐसी घोर हानियाँ होँ क्या वह त्यागने योग्य नहीँ है?

बहुधा माताएँ बालकोँ को "हउआ" कहकर डराया करतीँ हैँ। इससे उसका हृदय छोटा पड़ जाता है और उसमेँ भय का प्रवेश हो जाता है जो जीते जी कठिनता से दूर होता है। वह छोटी सी वस्तुओँ से भी डरने लगता है। कुत्ता, बिल्ली और गऊ इत्यादि को देखकर तो वह कोसोँ

भागता है। बड़े होने पर भी उसके हृदय में डर समाया रहता है, यहाँ तक कि रात्रि के समय बाहर जाने की तो दूर रही, बिना किसी को साथ लिए वह पेशाब भी नहीं कर सकता। सारांश यह, कि डरपोक हो जाता है और साहस रूपी अपूर्व मानवी गुण से हाथ धो बैठता है। शेक्सपियर ने ठीक कहा है कि "डरपोक मृत्यु के पहिले कई बार मर चुकते हैं, परन्तु साहसी केवल एक ही बार काल का स्वाद चखते हैं।"

"Cowards die many times before their deaths. The valiant never taste of death but once."

यदि माता पिता चाहें तो बालक बचपन ही से निडर साहसी और उत्साही हो सकता है और ऐसा पश्चिमीय देशों में होता ही है। वहाँ के लोग निर्भय होते हैं और कठिन से कठिन भयंकर कार्य के सिद्ध करने से भी मुँह नहीं मोड़ते। यही आधुनिक आरत भारत किसी समय उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ था। यहाँ बालक सिंह से भी न डरते थे। शकुन्तला का पुत्र भरत इस बात का प्रमाण है (कालिदास रचित शकुन्तला नाटक देखिये)

बालक के सामने गाली बकना या और कोई बुरी बात कहना या करना न चाहिये। वह जो दूसरों को करते देखता है उसका स्वयं अनुकरण करने लगता है और इसी तरह धीरे धीरे उसका स्वभाव कठोर, क्रोधी और ज़िद्दी हो जाता है।

बालकों के साथ मारपीट का व्यवहार माता पिता को नहीं करना चाहिये ऐसा करने से बच्चों का प्रेम उन पर कम हो जाता है, और धीरे धीरे वह बेहया हो जाते हैं। फिर कठिन दण्ड देने पर भी वह अपनी बुरी टेवों को नहीं छोड़ते। उनको प्रीति के बचनों ही से भला बुरा समझाना अच्छा है। प्रेम के बन्धन का प्रभाव दण्ड से अधिक उत्तम पड़ता है।

हमारे देश में रात्रि के समय बालकों को कथा सुनाने की प्रथा किसी समय अच्छी थी। अब तो उसकी केवल लकीर पीटी जाती है। स्त्रियों को उचित है कि जब बालक बात समझने लगें तो उन्हें श्री रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता, भीष्म-पितामह इत्यादि हमारे श्रेष्ठ पूर्वजो की कथा सुनाया करें और अन्त में पूछा करें कि तुमने उनसे क्या उपदेश ग्रहण किया। इससे उनको आज्ञापालन, सत्यभाषण और साहस की शिक्षा मिलती है। माताओं से मेरा सविनय निवेदन है कि वह उन्हें "एक हते राजा खात हते खाजा इत्यादि" की कहानी सुनाकर व्यर्थ समय न खोवें।

जब बालक छः या सात वर्ष का होता है तो माता पिता के सामने उसकी शिक्षा की कठिन समस्या उपस्थित होती है। बहुधा लोग लड़के को पाटी बुध्या कर

स्कूल में बैठा देना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। वह यह भी नहीं देखते कि बालक क्या लिखता पढ़ता है। बस दस बजे स्कूल जाकर चार बजे घर लौट आना ही उनके लिये सम्पूर्ण पढ़ाई है। कभी कभी तो यहाँ तक देखा गया है कि पिताजी यह भी नहीं जानते कि बालक किस क्लास में है। धन्य है उनकी चतुरता। सम्भव है वह अपने को इतना काम का-जी समझते हो कि बालक से उसके अध्ययन सम्बन्धी बातों को पूँछने के लिए उन्हें समय नहीं, सदुपदेश देना और पूर्ण निरीक्षण करना तो दूर रहा। इसी सम्बंध में उन गुरुओं को भी धन्यवाद दिए विना नहीं रहा जाता जो कि लड़कों को किताब का केवल कीड़ा बनाकर और प्रश्नोत्तर रटाकर परीक्षा पास कराने के अतिरिक्त सभी वास्तविक उत्तम शिक्षा से उनको वंचित रखते हैं। कसरत, ब्रह्मचर्य के ऊपर कभी कभी बालकों के ध्यान को प्रेरित करना तो वह शिक्षा के बिलकुल बाहर समझते हैं। अब आप ही बतलाइये कि क्या वह अपना सच्चा कर्तव्य पालन करते हैं?

आजकल लड़के अधिकतर १० से १६ वर्ष के भीतर बिगड़ते हैं। इसी अवस्था में स्कूल में पढ़ने जाते हैं। वे स्वतन्त्रता पूर्वक बुरे बालकों से मिलते हैं बुरी बाते होती हैं, धीरे धीरे उन्हें उनका चसका पड़ जाता है। पिता को खबर ही नहीं कि घर बाहर लड़का क्या करता हैं या यों कहिये कि समय की कराल गति को देखते हुए भी उचित ध्यान नहीं देते। लड़का जिन बातों को सुनकर पहिले प्रसन्न हुआ करता था, अब उनको स्वयं करने की चेष्टा करता है और बिना किये हुए नहीं मानता। पिता की निन्दनीय असावधानी रूपी लता विषैले पुष्प खिलाने लगती है। बालक के दुष्ट चरित्रों को सुनकर वह दाँत में अँगुली दबाते हैं पाश्चात्ताप करते हैं पर अब पछताये से क्या? ऐसी अवस्था में तो स्वयं माता पिता को बालक का पूर्ण निरीक्षण करना चाहिये। कभी कभी उसको सिगरट और मादक पदार्थों की हानि और व्यायाम, ब्रह्मचर्य पठन पाठन के लाभों पर उपदेश देकर ऊँचा नीचा सुझा देना चाहिने। शिक्षा में लज्जा करना बालक को जान बूझ कर कराल विषैले सर्प का ग्रास बनाना है।

बालकका प्रथम गुरु माता है और अ, आ, इ, ई, की शिक्षा उसी से प्रारम्भ होनी चाहिये। अब यहाँ स्त्रीशिक्षा का प्रश्न उठता है जो कितने महत्व का है, मैं समझता हूँ, सभी जानते होंगे। जहाँ तक हो बालक की शिक्षा घर ही पर गुरु द्वारा पिता के निरीक्षण में होनी चाहिये, जब उसका स्कूल जाना अनिवार्य हो जाय, तब तो पिता को पूर्ण निरीक्षण रखने की आवश्यकता है। बालक को किसी खेल

या कसरत में अवश्य लगाना चाहिये ताकि उसकी शारीरिक दशा भी ठीक रहे। जहाँ तक हो सके सादा भोजन देना उचित है। मिर्च खटाई और मसाला इत्यादि विद्यार्थी के लिये बहुत हानिकारक हैं। विद्यार्थी अवस्था में विवाह करना तो पुत्र और वधू दोनों की उसी भाँति ,जड़ काटना है जैसे कि कुश की जड़ काट कर उसमें मट्ठा डाल देना। (कहा जाता है कि कुश की जड़ में मट्ठा डाल देने से वह समूल नाश हो जाता है।)

यदि बालक ने किसी तरह विघ्नों को काटते छाँटते हुए प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त भी की तो उच्च शिक्षा तो बहुतेरे दरिद्रता के कारण प्राप्त ही नहीं कर सकते। बचे खुचे जो धनी के लड़के हैं, उनमें से भी कुछ अपूर्व विद्या रूपी रत्न से वञ्चित रहते हैं क्योंकि उनके माता पिता अत्यन्त लोभान्ध हैं, धन होते हुए भी वह दरिद्रता प्रकट करते हैं। कहते हैं कि हम निर्धन है, बालक को पढ़ाने की शक्ति नहीं। उनको मधुमक्षिका की तरह द्रव्य एकत्र करना ही आता है। मैं उनसे पूँछना चाहता हूँ कि यदि वह बालक को शिक्षा ही न देंगे, तो उसके साथ और क्या सलूक करेंगे। ठीक कहा गया है—

"माता शत्रु: पिता वैरी येन बालो न पाठिता।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

अर्थात् —वह माता पिता बालक को शत्रु के समान हैं जिन्होंने उसे शिक्षा नहीं दी, वह सभा में शोभा को नहीं पाता जैसे हंसों में बगुला। चाहते तो वह बालक को माननीय गोखले, गान्धी और मालवीयजी की तरह बनाना और साथ ही साथ विद्या के महत्व का भी बखान करते हैं, परन्तु शुभ कार्य के लिये कौड़ी खरचते प्राण निकालते हैं। थू है उनके धन पर। यदि लड़के को सुशिक्षा न मिली और वह मूर्ख रह कर कुचरित्र हो गया, तो क्या वह रुपये को उड़ा कर मुँह में कारिख न लगायेगा? फिर क्या सुशिक्षित मनुष्य उतना धन पैदा नहीं कर सकता जितना कि उसके विद्याध्ययन में लगा है? अवश्य, वल्कि उससे कहीं अधिक।

कुछ लोग अपने बालकों को बाहर अध्ययन हेतु नहीं भेजते, वह यह कहते हैं कि वह अकेला कैसे रहेगा, वह तो घर के बाहर भी नहीं निकलता है, न जाने भोजन का क्या प्रबन्ध होगा, वह वहाँ दुबला हो जावेगा, फिर हम उसके विना अपने दिन कैसे काटेंगे। धिक्कार है ऐसे मनुष्यों को जो अपने सुख के लिये बालक के शरीर को मोटा और मस्तिष्क को दुर्बल करने के लिये उसे कूपमण्डक बनाना चाहते हैं। वह जड़ काट कर और पत्तों को सींच कर स्वादिष्ट फल चखना चाहते हैं, जो नितान्त असम्भव है। उनका असीम मोहान्ध होना उन्हें और बालक दोनों को जन्म पर्य्यन्त रुलाता है।

मेरी सम्मति में निम्न लिखित श्लोक के अनुसार बर्ताव करना चाहिये ।

"लालयेत पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताड़येत ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।"

अर्थात् पाँच वर्ष तक बालक का लाड़ प्यार करे, फिर दश वर्ष ताड़ना में रक्खें और सोलहवें वर्ष उससे मित्र के समान वर्त्ताव करे।

—गुरुनारायण

प्रेम-परीक्षा

(गतांक से आगे)

तीसरा प्रकरण

इस मन की दशा निराली है। इसकी रचना आश्चर्य्य जनक है। बड़े बड़े ऋषि मुनि इसकी चालों में आ गए, बड़े बड़े सज्जनों के मत इसने उलटे सीधे कर दिये। बहुत से राक्षसों को इसने देवताओं की पदवी पर पहुँचा दिया, बहुत से महात्माओं को इसने नीच आसन पर गिरा दिया। बड़े बड़े बुद्धिमानों ने इस के जाल को तोड़ने का यत्न किया, बड़े बड़े सज्जनों ने इसकी लीला की तह को पाने में जीवन गला दिया, किन्तु परिणाम क्या हुआ? उत्तम जीवन व्यतीत हो गये, अथक आत्माएँ थक कर बैठ गईं किन्तु इसका किसी को पता न चला, जब यह दशा थी श्रीमानों की, तो मुझ रंक की कौन गिनती थी।

आपने मेरे मन का वाद विवाद सुना, आप ही बताइए, कि ऐसे तर्कशास्त्री से मैं किस प्रकार जीतता मेरे सारे इरादे टूट गये, मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया, दफ़तर की अपमान-जनक बातें फिर राक्षसी रूप में मेरे शिर पर आकर नाचने लगीं। देवियो! जब मैं सोचता था कि मेरी अशान्ति के क्या कारण थे तो देखने में मेरी नौकरी ही उसका कारण प्रतीत होती थी। उसी के हेतु न मैं अपने मान और गौरव की रक्षा कर सकता था, न मैं अपनी जीवन-मयी कमला के मन की निकाल सकता था, न मैं अपने श्याम को भले प्रकार पढ़ा लिखा सकता था। किन्तु जब मैं अपनी नौकरी करने का कारण ढूँढ़ता था तो मैं एक गहरे विचार में पड़ जाता था। यह नौकरी मैं ने इस वास्ते की थी कि मैं और किसी योग्य नहीं था। मेरी शिक्षा इतनी थोड़ी और इस ढंग की थी कि मैं सिवाय क्लार्क के और कुछ हो ही नहीं सकता था। बचपन में बहुधा बीमार रहा फिर विवाह हो गया, पढ़ने लिखने की रही सही आशा भी लोप हो गई। जब थोड़ी सी उलटी सीधी अंग्रेजी आ गई तो पिता जी ने नहर के दफ़तर में नौकर करा दिया। जिस समय मैं अपनी अशान्ति के कारण को ढूँढ़ा करता था तो मेरा विवाह ही उसका कारण निकलता था और इसके वास्ते मैं अपने

माता पिता को दूषित ठैराया करता था किन्तु इसी सम्बन्ध में मुझे अपने लड़कपन की एक घटना याद आ गई, वह भी सुन लीजिए।

मेरी आयु केवल १४ वर्ष की थी, जब मेरा विवाह हो गया था। जब सोलहवें वर्ष में था—उस समय तक मेरा द्विरागमन नहीं हुआ था—तो मैं बड़ा बीमार हो गया। मेरे माता पिता सब ही इलाज करके थक गए, अन्त में जब मेरे बचने की कोई आशा न रही तो मेरे पिता ने श्वसुर जी को चिट्ठी लिखी और वह घर के सब आदमियों को लेकर मुझे देखने को आये। मैं बेसुध पड़ा रहता था। कभी किसी समय एक दो घन्टे के वास्ते चेत हो जाता था किन्तु तदनन्तर फिर मैं आँख बन्द कर लेता था। मेरे आस पास जो बातें होती थीं वह मुझे स्वप्न समान जान पड़ती थीं।

एक दिन कई एक स्त्रियाँ मेरी माता के साथ मेरे पास आईं और मेरे पलँग की पट्टी पर सिर रख कर रोने लगीं। मेरा मन बड़ा घबराया किन्तु मैं बोल नहीं सका। खैर वह भी समय किसी न किसी तरह से कट गया। लगभग आधी रात के समय मुझे होश आया। मेरे कानों में किसी के दर्द भरे सुबकने का शब्द पड़ा। मैं ने आँख खोली, कड़वे तेल का दीपक सामने के आले में टिमटिमा रहा था और उसकी धुँधली ज्योति में आस पास की वस्तुओं की परछाँई बड़ी और डरावनी दीखती थी। बड़ी घड़ी का टन टन का शब्द रात के शान्तिमय समय में गूँज गूँज कर एक बड़ी गहरी ध्वनि उत्पन्न करने लगा। आस पास के कमरों से स्वजनों के सोने का गम्भीर स्वर सुनाई पड़ता था—और बार जब मैं जागता था तो मेरी माता मेरे पास बैठी हुई मिला करती थीं—ज्यों ही मेरी आँख खुलती तो वह तुरन्त यों बोल उठा करती थीं "बेटा, मेरे लाल! मेरे आँखों के तारे! कहो तो अब कैसा जी है?" किन्तु उस दिन यह शब्द, जब मेरी आँख खुली तो, मेरे कान में नहीं पड़े किन्तु उनके स्थान में एक कोमल, करुणामय पीड़ित-हृदय का शब्द सुनाई दिया। देवियो! मैं कभी उस शब्द को नहीं भूल सकता। वह सदैव मेरे कानों में गूँजा करता है। आज दस वर्ष हो गये, किन्तु जब कभी मुझे वह घटना याद आती है तो मेरा मन पसीज जाता है और दो चार मोती उस प्रेम-स्मृति के चरणों में गिर ही पड़ते हैं। मैं ने करवट ली तो क्या देखता हूँ कि एक लड़की मेरे पैरों पर सिर रक्खे हिचकियाँ ले ले कर रो रही है। मैं उसे नहीं पहिचान सका, मैं ने अपनी तमाम शक्ति को एकत्र किया और पूछा कि तुम कौन हो और क्यों रोती हो। उसने एक बार सिर उठाया और बड़ी बड़ी प्रेममयी आँखों से, जिनमें जल किनारों तक भरा था,

एक बार मेरी तरफ देखा और फिर सिर मेरे पैरों पर रख कर रोने लगी। हा देव! उस एक दृष्टि में क्या क्या भरा था! उस समय मुझे इतनी बुद्धि नहीं थी कि मैं उसे समझ सकूँ किन्तु अब मैं उसका अनुभव कर सकता हूँ। उसमें अथाह भोलापन था, उसमें असीम करुणा थी, उसमे अनन्त प्रेम था, उसमें अचल सङ्कल्प था, उसमें धर्म था, उसमें शील था, उसमें प्रार्थना थी, उसमें भय था, उसमें पीड़ा थी, उसमें लज्जा थी, उसमें, अशान्ति थी, उसमें निराशा थी—उसके चेहरे को देख कर मैं ने पहिचाना कि यह वही थी, जिसके साथ मैं ने ध्रुव को देखा था, जिसके साथ मैं ने पत्थर की शिला पर पैर रक्खा था, जिसको वचन दिए थे, जिसको रोते रोते उसके माता पिता ने मेरे साथ कर दिया था, जिसको छिप छिपा कर भावी ने मुझे दिखा दिया था। यह बातें एक एक करके मेरे मन में आईं। मैं इसका आशय बहुत नहीं समझा किन्तु मेरा मन भर आया, भरी हुई आवाज से मैं ने अपने आपको सँभाल कर कहा, "कमला, —इधर मेरे सिरहाने आओ।"

कुछ सकुचाती हुई कमला उठी और मेरे तकिये के पास आकर खड़ी हो गई। हा! वह चेहरे के गुलाब कहाँ थे, मेरे जीते जी ही उनको कोई चुरा ले गया था; आँखें लाल, बाल बिखरे हुए। हे राम! जिसका मुझे ध्यान भी नहीं आता था, उसने मेरे वास्ते क्या दशा बनाई थी। मैं ने कमला को अपने पास बिठा लिया और फिर बोला, "तुम क्यों रोती हो?"

कमला—"सब यही कहते हैं कि तुम अच्छी नहीं होगे।"

मैं—"तो तुम क्यों दुःखी होती हो?"

मेरे इस प्रश्न को सुन कर कमला कि आँखें फिर डब डबा आईं। वह बोली, "तुम मेरे स्वामी हो, मेरे माता पिता ने मुझे तुम्हें ही सौंप दिया है, मैं तुम बिन किस प्रकार रह सकती हूँ।" मेरी आँख खुली, कमला जिसकी आयु केवल १२ वर्ष की थी मुझे मेरा धर्म बता रही थी। इस समय मैं इसके रोने का कारण समझा और उसके कहने से मुझे ज्ञात हुआ कि उसका और मेरा कितना गहरा सम्बन्ध था। मैं ने उसके छोटे छोटे हाथ अपने हाथों में ले लिए और बोला, "नहीं तुम मत रोओ, मैं अच्छा हो जाऊँगा।"

मेरे कहने से उसे शान्ति हुई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसे मेरे कहने का विश्वास हो गया। सारा घर कहता है कि मैं अच्छा नहीं हूँगा, मैं कहता हूँ कि मैं अच्छा हो जाऊँगा और कमला मेरा विश्वास कर लेती है। कई रातों की जगी हुई कमला चारपाई की पट्टी से सिर लगा कर सो गयी।

देवियो! तनिक विचारो, प्राचीन भारत वर्ष में, जापान और अमेरिका में

और अन्य पश्चिमी सभ्य देशों में बारह वर्ष की लड़कियाँ अपनी माताओं की गोद में खेलती हैं, पाठशालाओं में जा कर अपना पाठ याद करती हैं, अपनी सहेलियों के साथ, जलकी मछलियों के समान स्वतन्त्र किलोल करती हैं और सायंकाल को दिये जलने के समय सोकर सूर्योदय के समय उठती हैं, पर हमारे देश में गृहस्थ के बन्धन में फँस कर अपने कोमल हृदयों को पत्थर के नीचे दबा देती हैं, अपने रोगी पतियों के पास बैठ कर रात रात भर रोती हैं और जब वह अनजान करुणा हीन, अज्ञान लड़के परमात्मा के प्यारे हो जाते हैं, तो जीवन पर्य्यंत सैकड़ों कठिनाइयों में लाखों दुःखों में रो धो कर अपने जीवन को काटा करती हैं। अन्य देशों में लड़के और लड़कियों के दिलों की कलियाँ खिलती हैं, फूल महकते हैं और फलों में परिणित हो जाती हैं। हमारे अभागे देश में कलियाँ कलियाँ ही रह जाती हैं, उनको खिलने का अवसर ही नहीं मिलता—सामाजिक अन्याय रूपी झोंका आता है और वह कलियाँ जिनके हृदय में लाखों अरमान भरे हैं, टूट कर गिर पड़ती है और मिट्टी में मिल जाती हैं।

पाठिकाओ! मैं ने आज तक बहुत से निबन्ध गृहस्थ आश्रम पर बड़े बड़े लेखकों के पढ़े, उत्तम उत्तम सुवल वक्तृताएँ सुनीं, सब एक ही राग अलापते हैं "गृहस्थ आश्रम सब से उत्तम है" किन्तु मेरे प्रश्न का कि "किसके लिए, मुझे अब तक उत्तर न मिला। मैं वेद शास्त्रों का ज्ञाता नहीं, संस्कृत भाषा के निर्मल श्रोत से अभाग्य वश कभी मेरा जीवन संस्कृत नहीं हुआ, हिन्दी भी इतनी ही जानता हूँ की साधारण चिट्ठी पत्री का काम चल जावे किन्तु इतना मैं अवश्य समझता हूँ कि जितनी संस्थाएँ, मानसिक रचनाएँ कला कौशल आदि इस संसार में हैं, उनका एक मात्र यह ही अभिप्राय है कि वह मानसिक सुख की वृद्धि करें। विदेशी यात्रा उनही के वास्ते अच्छी है जो स्वतंत्रता पूर्वक अन्य देशों में बिचरते हैं अन्यथा वह देश निकाला है। लोहे की मोटी मोटी बेड़ियाँ उनही के हाथों में शोभा देती हैं जो पराधीनता की बेड़ियों को, काटने वाले हैं, अन्यथा वे घोर परतंत्रता का चिन्ह हैं, अग्नि का मल नाशक ताप स्वर्ण को ही कुन्दन बना सकता है, चन्दन को जलाकर राख देता है। गृहस्थ अच्छा है, उन ही के वास्ते, जो उसकी ऊँचनीच को देख कर उसके बोझ के परिमाण को तोल कर उसको अपने शिर पर लेते हैं किन्तु जिनके ऊपर दूसर इस बोझ को लाद देते हैं, उनके दुर्बल कंधे दब कर टूटने लगते हैं और उनको अपने जीवन यात्रा को समाप्त करना कठिन हो जाता है।

अरे! मैं तो इस भूल भुलैयाँ में फँस

गया, मुझे तो अभी अपनी राम कहानी सुनानी बहुत सी रह गई है।

चौथा प्रकरण

आपने मेरे मन की विचित्र दशा का उदाहरण देखा। मैं ने इस नौकरी को छोड़ने का विचार किया था किन्तु इस ने मेरी सारी चिन्ताओं पर पानी फेर दिया, मेरे कागज़ के घर को फूक मार कर उड़ा दिया। मैं ने जो एक रास्ता निकाला था, उसके सामने बाढ़ लगादी। अब मैं क्या करता मैं ने रात भर मानसिक संसार में भ्रमण किया और जिस समय बाल सूर्य्य की कोमल किरणें मेरे ऊपर पड़ीं तो मुझे प्रतीत हुआ कि मेरा रात भरका मारे मारे फिरना व्यर्थ और निष्फल हुआ। मैं उसी स्थान पर था जहाँ से कि मैं चला था।

छः बजे, सात बजे, आठ बज गये और मैं अभी उसी उधेड़ बुन में लगा हुआ था कि अब क्या करना है। मैं नौ बजे खाना खा कर साढ़े नौ बजे दफ़्तर चला जाता था। आज मुझे उठने में देरी हुई तो कमला रसोई से उठ कर यह कहती हुई आई "क्यों जी, क्या रात से रात मिला दोगे? नहाने धोने का समय तो आगया।" किन्तु जिस समय उसने मेरे चेहरे को देखा तो कुछ सहम सी गई। वह कुछ देर तो मुझे देखती रही और फ़िर बोली, "आज जी कैसा है? आखें लाल हो रही हैं, चेहरा उतर रहा है, ऐसा प्रतीत होता है कि आज रात की नींद ठीक नहीं आई।"

मैं ने अपने मन को भाव को छिपाना चाहा और एक बनावटी हंसी का परदा अपने मुरझाए हुए मुंह पर डालना चाहा। मैं ने कमला को पास बिठा लिया और कहा, "नहीं, मैं अच्छा हूं, रात नींद ज़रा कम आई। तुम कहो आज खाना वाना नहीं बनाओगी?" परन्तु मेरी इस हँसी और इन बातों से कमला का सन्देह दूर नहीं हुआ। सच है! सच्चा प्रेम वह सत्य है जिसके सामने कोई असत्य नहीं ठहर सकता। प्रेम मनुष्य को वह दृष्टि प्रदान कर देता है, जो मानुषिक शरीर की ठोस दीवार को चीर कर उसके मन का भावजान लेता है। प्रेम वह शक्ति है जो हृदय की तहों में दबी हुई पीड़ा के परिमाण का अनुमान लगा लेती है। प्रेम वह बल है जो दो मनुष्यों के बीच में से नदी नालों और पहाड़ों को हटा कर उनको एक स्थान पर ले आता है। प्रेम वह तेज है जिसकी किरणों के सामने असत्य की घटा राई काई हो जाती। प्रेम शव कीका बना कर बड़ी बड़ी नदियों को पार कर सकता। काले की कमंद बनाकर ऊँचे ऊँचे महलों पर चढ़ सकता है। दुर्योधन को मेवा छुड़ाकर विदुर महाराज का साग खिला सकता है, सुदामा के कच्चे चावलों में अमृत का स्वाद उत्पन्न कर सकता

है तुलसी को श्री रामचन्द्र और सूर को श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में ला सकता है और अन्त में माया का जाल काट कर आत्मा को परमात्मा से मिला सकता है। भला फिर कहाँ सम्भव था कि मेरी हँसी और बनावटी बातें इस महान् शक्ति का सामना सफलता पूर्वक कर सकतीं। कमला बोली तो कुछ नहीं, किन्तु उसके मन के अविश्वास की झलक उसकी आखों में पड़ रही थी। उसके हृदय पर चोट सी लगी और उसने अपने उमड़ते हुए भावों को मुँह फेर कर छिपाने का प्रयत्न किया। मैं ने प्यार से कहा, "मेरी जीवन सखी, तुम क्यों अशान्त होती हो? उसी नौकरी के विषय में सोच रहा था, उसी कारण रात नींद भली प्रकार नहीं आई।"

कमला का सन्देह दूर हुआ। हृदय के श्रोत से नेत्रों द्वारा दो प्रेम के मोती निकल आये और कोमल होंठ गुलाब की पखड़ियों के समान खिल उठे।

कमला—तो फिर मुझ से क्यों छिपाते थे?

मैं—तुम्हें तो हर समय झगड़ा करने की आदत हो गई है। भला यह भी कोई छिपाने की बात थी जो छिपाता।

कमला—हाँ जी, ठीक है, ख़ैर; अब तो उठो। साढ़े आठ बजा दिये, आज दफ़्तर ठीक समय पर किस तरह पहुँचोगे? फिर साहब से झगड़ा होगा। लड़ाई तो मोल लेते हो आप, और दोष देते हो मुझे।

मैं—साहब से मैं तुम्हारा नाम ले दूँगा कि कमला ने नहीं आने दिया था।

कमला—वह मूर्ख इस बात को क्या समझेगा। यदि इन विदेशियों में मन की बात समझने की शक्ति होती तो भारतवर्ष के आदमी इन्हें देवताओं के समान पूजते।

मैं ने जल्दी जल्दी स्नान किया और खाना खाकर दफ़तर पहुँचा। दफ़तर में सब क्लार्क लोगों को एक रजिस्टर में पहुँचने और वापिस आने का समय लिखना होता था। वह रजिस्टर हेड क्लार्क साहब की मेज पर रक्खा रहता था और उनके सामने ही उसमें लिखने की आज्ञा थी। परन्तु मियाँ महताबदीन सदैव १०॥ बजे या ११ बजे आते थे और रजिस्टर में १० ही लिखा करते थे। मैं ने दफ़तर की घड़ी को देखा तो उसमें दस बजकर दस मिनट गये थे। मैं ने निसकोच जाकर रजिस्टर में "१०-१० प्रातः काल" लिख दिया। हेडक्लार्क साहब बड़े ध्यान से देखते रहे कि मैं क्या लिखता हूँ।

इस स्थान पर मैं आपको इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि हेड क्लार्क साहब मुझ से अप्रसन्न रहते थे। उनके अप्रसन्न रहने के कई कारण थे।

एक तो यह था कि मैं हिन्दू था और वह सदैव इस बात के उद्योग में लगे रहते

थे कि उनके दफ़्तर में कोई हिन्दू क्लार्क न रहे। और बहुत दरजे तक उनको अपने इस उद्योग में सफलता भी हुई थी क्योंकि मैं ही एक हिन्दू क्लार्क दफ़्तर में शेष रह गया था।

दूसरे यह की हेडक्लार्क का एक सम्बन्धी था जो उसी दफ़्तर में क्लार्क था। पूर्व वर्ष वह और मैं दोनों २५) के ग्रेड में थे। मियाँ महताबदीन यह चाहते थे कि वह ३०) वाले ग्रेड में चला जावे और मैं वैसा ही रह जाऊँ किन्तु साहब बहादुर नये नये विलायत से आये थे, न्याय का सूर्य्य जो प्रत्येक सच्चे अंग्रेज के हृदय में प्रकाशमान होता है भारत वर्ष के भोग, विलास और मिथ्या-प्रशंसा के मेघ मंडल में अभी अस्त नहीं हुआ था, सत्य की ज्योति जो प्रत्येक धर्मावलम्बी मनुष्य के हृदय में इंगलैंड जैसे स्वतंत्र देश में उत्पन्न हो जाती है हमारे देश की निरङ्कुशता और चापलूसों की खुशामद से मलिन नहीं पड़ गई थी। उन्होंने मेरे काम को देखा और मेरे काम से प्रसन्न हो कर ३०) ग्रेड में उन्नतकर दिया। मियाँ साहब के हृदय पर साँप लोट गया। मैं उनकी आखों में काँटे की समान खटकने लगा और उन्होंने मेरी ओर से साहब के कान भरने आरम्भ कर दिये।

तीसरा कारण यह था कि मैं उनकी खुशामद नहीं करता था। बहुधा सलाम तक की भी नौबत नहीं आती थी। मैं आज का काम कभी कल पर भी नहीं छोड़ता था। प्रत्येक दिवस का कार्य्य उसी दिन समाप्त करके उठता था। मैं सदैव दस बजे के पूर्व जाता और चार बजे के पश्चात आता था। मैं ऊपर आप से कह आया हूँ कि मुझे आज १० मिनट की देरी हो गई थी। मियाँ साहब बिल्ली के समान देखते रहे कि मैं क्या लिखता हूँ। वह इस बात का अवसर ढूँढ रहे थे कि मैं "१०प्रातः" लिखदूँ और वह मुझ पर टूट पड़ें पर जब मैं ने ठीक ही समय लिख दिया तो उन्होंने दूसरी करवट बदली, और मुझ पर बिगड़ कर बोले, "बाबू राम किशोर तुम ने नौकरी को मज़ाक समझ रक्खा है। दफ़्तर अपना घर है कि जब चाहे आये और जब चाहे चले गये।"

मैं—हेडक्लार्क साहब, इस महीने में मेरा यह पहिला ही अवसर है कि मुझे देरी हुई है और तिस पर भी आप देख सकते हैं कि अभी कोई दूसरा क्लार्क नहीं आया है।

हेडक्लार्क - मुझे बखूबी मालूम है कि तुम बातें मिलाने में खूब मश्शाक हो मगर काम में इस तरह की लापरवाई को मैं नज़र अंदाज़ नहीं कर सकता। इस बारे में मैं साहब से कहूँगा।

मैं—जैसी आपकी इच्छा हो आप वैसा करें। मुझे आज पहिली बार देरी हुई है और एक मास में दो बार हो जाने की आज्ञा भी है।

हेडक्लार्क—तुम वकालत करते तो अच्छा होता।

मैं ने कुछ उत्तर नहीं दिया किन्तु इस से उनको तृप्ति नहीं हुई और छोटी छोटी आखों को टिम टिमा कर बोले "आपको मालूम है कि हेडक्लार्क से बातें कर रहे हैं अगर आप इस तरह की गुस्ताखी से पेश आवेंगे तो आपके वास्ते अच्छा नहीं होगा। कल जो वह नकशा बनने के वास्ते आया था वह तईयार हो गया या नहीं।"

मैं—वह मेरे पास नहीं है।

हेडक्लार्क—तो किस के पास है।

मैं—मुझे मालूम नहीं।

हेडक्लार्क साहब चुप हो गए। मैं अपनी कुरसी पर आकर बैठ गया। मेरे मन में एक घोर परिवर्तन होने लगा। इतने एकचित्त होकर काम करने का यह परिणाम! मैं ही सब से पहिले आता, सब से पीछे जाता, सब से अधिक काम करता, और मुझ पर यह अन्याय! और अन्याय का कारण यही कि मैं खुशामदी नहीं था, डालियाँ नहीं देता था और सब के ऊपर यह कि मैं हिन्दू था। हिन्दू होना मेरा सब से बड़ा पाप था। एक अन्य धर्म्मावलम्बी राज्य में भी मुसलमानों का हिन्दुओं पर अन्याय!!!

* * *

खलबली मची कि साहब आ गये। हेडक्लार्क भागे। चपरासियों ने दौड़ लगाई सब क्लार्क लोग जो अब तक हँसी दिल्लगी में समय बिता रहे थे ध्यान पूर्वक काम में लग गये। साहब अपने कमरे में चले गये। घंटी बजी और हेडक्लार्क पगड़ी सिँभालते हुए दबे दबे पाओं साहब के कमरे में दाखिल हुए। जिस स्थान पर मैं बैठा था उसके और साहब के कमरे के बीच में केवल एक लकड़ी की दीवार थी इस कारण मुझे वहाँ की सब बातें सुनाई दे जाती थीं। हेडक्लार्क ने दरवाज़े से घुसते ही बड़े झुक कर सलाम की। पगड़ी तो, जान बूझ कर ढीली बाँध ही रक्खी थी सर झुकाते ही उतर पड़ी और गोरे साहब के काले जूते का मुख चुम्बन करने लगी। (यह बातें उसी दिन सायंकाल को मुझे साहब के बुड्ढे चपरासी राम दीन ने सुनाई थीं)।

साहब—सलाम, हेडक्लार्क बैठो।

हेडक्लार्क—दूसरी सलाम करके बैठ गये।

साहब वेल! हम तुम्हारी डाली से बड़ा खुस हुआ, हमारा बच्चों ने इसको बड़ी खुसी से खाया और क्लार्क लोगों ने भी डाली भेजा था हम उनसे भी बड़ा खुस हुआ।

हेडक्लार्क—हजूर का इकबाल है। हम लोग तो आपके खादिम हैं। हजूर आपकी ही बन्दे परवरी से हमारे बच्चे पल रहे हैं। हजूर की बदौलत एक हिन्दू और पाँच मुसलमान क्लार्कों की गुजर

होती है। साहब ने अपनी नोट बुक निकाली और देखकर कहा, "मगर हमारे यहाँ किसी हिन्दू क्लार्क की डाली नहीं पहुँची।"

हेडक्लार्क—"हजूर मैं यह कभी नहीं चाहता कि आपसे अपने दफ़्तर वालो की कुछ बुराई करूँ मगर बात यह है कि यह निहायत चालाक आदमी है, काम भी ऐसा ही करता है। कल एक नकशा बनाने को दिया गया, वह दूसरे क्लार्क की मेज़ पर डाल दिया। जब पूछा तो कहता है कि मुझे नहीं दिया था। आज दस मिनट देर से आया है" यह कहा और हाज़िरी का रजिस्टर साहब के सामने रख दिया।

साहब—यह आदमी ठीक नहीं मालूम होता।

हेडक्लार्क—बन्देपरवर (आवाज को धीमी करके) मैंने कल बड़े मौतबर आदमी से सुना है कि देहली के मुकदमे के मुजरिमों में इसके दो रिश्तेदार हैं और यह उनसे खतोकितावत भी करता है।

साहब ने "बाबू तुम ठीक कहता है" यह कहा और एक काग़ज़ निकाल, एक चिट्ठी लिखी और चपरासी को देकर कहा, "इसको सी० आई० डी० साहब के पास ले जाओ। क्लार्क लोगों की बातों से मुझे पता चला कि उसमें यह लिखा था "डियर जोन्स, मैं चाहता हूँ की आप राम किशोर मेरे दफ़्तर के क्लार्क पर निगाह रक्खे।"

इस प्रकार हेडक्लार्क साहब ने मुझ पर ज़हर उगला।

(क्रमशः)

—उमरावसिंह गुप्त

पन्ना दाई की स्वामि-भक्ति

'खींची' राजपूत कुल की थी,
इक स्त्री, पन्ना था नाम।
उदय सिंह की दाई होकर थी,
करती उनका सब काम॥ १॥

बना हुआ उस थल का राजा,
था अकृतज्ञ एक 'बनवीर'।
उठने लगी हृदय में उसके,
निशिदिन चिन्ता की अति पीर॥२॥

'उदयसिंह के बालिग़ होते,
आधिपत्य छिन जावेगा।
पीट पीट सिर पछताऊँगा,
हाथ नहीं कुछ आवेगा'॥ ३॥

इस कुत्सित विचार में बँध कर,
कुछ कुमार्ग मन में ठाना।
किन्तु प्रगट विग्रह करने में,
कुशल नहीं अपना जाना॥ ४॥

अतः एक दिन रात्रि समय में
निज घर से प्रस्थान किया।
सोते थे विक्रमाजीत सिंह,
उनका काम तमाम किया॥ ५॥

शोकयुक्त यह समाचार सुन,
पन्ना अति ही अकुलानी।

एक निमेष मात्र ही में निज,
नृप सुत की समझी हानी ॥६॥
राना को संहार, कुँवर को,
कभी न जीता छोड़ेगा।
आगा पीछा निज कर्मों का,
कभी नहीं वह सोचेगा' ॥ ७ ॥

सोते हुए कुँवर को उसने,
तब झट बाहर भिजवाया।
तथा प्राण से प्यारे सुत को,
उसी जगह पर सुलवाया ॥८॥

हुआ अचानक वज्रपात हा!
क्रूर हृदय आही पहुँचा।
ले नङ्गी तलवार हाथ में,
पन्ना ढिग जाही पहुँचा ॥ ६ ॥

बहुत ज़ोर से डाट डपट कर,
उस कृतघ्न ने जब पूँछा—
उदयसिंह है कहाँ? किन्तु हा!
उत्तर था बिल्कुल छूँछा ॥१०॥

भय से कण्ठ सूख जाने से,
दासी कुछ नहि बता सकी।
रख कर शिला हृदय अपने पर,
सिर्फ तर्जनी उठा सकी ॥११॥

दुष्ट हृदय बनबीर नृपति ने,
हा! तलवार चला ही दी।
धड़ से सिर होगया बिभाजित,
केवल चीख सुनायी दी ॥१२॥

निरपराध बालक का जीवन,
इस प्रकार से लुप्त हुआ।
सुला चिर स्वामी शय्या पर,
दुष्ट नराधिप तुष्ट हुआ ॥१३॥

स्वामिभक्त पन्ना ने इस विधि,
निज सुत को बलिदान दिया।
किन्तु धर्म में दृढ़ होने से,
निज स्वामी का त्राण किया ॥१४॥

—मातादीन शुक्ल

जुझार तेजा



इस शीर्षक से एक विचित्र लेख काशी की "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के मार्च और अप्रेल १६१४ के संयुक्त अङ्क में प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक हैं हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री पं लज्जाराम मेहता। लेख साहित्य की दृष्टि से बहुत ही उत्तम और मनोरञ्जक है। सुनते हैं अलग पुस्तकाकार भी छप गया है, अस्तु।

इसकी कथा का सार यह है कि तेजा राजपूताने का एक खेतिहर जाट था। वह स्वभाव से ही अपनी बात का बड़ा धनी और प्रतिज्ञा पालन मे दृढ़ था। उसकी जीवनी दुःखान्त है, परन्तु है बड़ी मनोरंजक। कहते हैं कि उसका विवाह ऐसी उम्र में हुआ था, कि उसको यह भी मालूम न था कि विवाहित है या नहीं। जब वह जवान हुआ तो एक दिन

अकस्मात एक स्त्री से उसको अपने विवाह और सुसराल आदि का पता मिला। उसने तुरन्त घर में आकर अपनी माता से स्त्री को बिदा करालाने के लिये आज्ञा माँगी, परन्तु सुसराल का रास्ता बड़ा ही दुर्गम और जान जोखिम का था, इसलिए उसकी माता ने उसको वहाँ जाने से आग्रह के साथ मना किया। पर वह न माना। तब टालने के लिए कहा, "अच्छा पहिले अपनी बहिन को, जो बहुत दिनों से सुसराल से नहीं आई, लिवा लाओ।" तेजा बहिन के यहाँ गया और उसको विदा करालाया। अब फिर सुसराल जाने की धुन उस पर सवार हुई। इस बार भी घर के सब लोगों ने उसको बहुत मना किया। भौजाई ने अपनी बहिन व्याह देने का वादा किया, परन्तु उस ने एक न सुनी और तीर की तरह घर से निकल भागा। रास्ते में जंगल में एक जगह आग लग रही थी। उसमें एक साँप जलने को था कि तेजा ने दया भाव से प्रेरित होकर उसे बचा लिया। साँप ने उपकार मानने के बदले तेजा पर यह दोष लगाया कि यदि तू मुझे मर जाने देता, तो इस सर्प योनि से मुक्ति मिल जाती, दूसरे मेरी नागिन जलगई, तो तूने मुझे क्यों बचाया? अतः मैं तुझे डसूँगा। तेजा ने कहा, "अच्छा मैं तैयार हूँ, लेकिन मुझे एक बार अपनी स्त्री से मिल आने दे।" खैर सर्प ने उसकी बात का विश्वास करके उस समय जाने दिया। वह सुसराल गया और स्त्री को लेकर अपना वचन पूरा करने के लिए उस सर्प के पास आया और उसने उस को डस लिया। स्त्री पति के शरीर के साथ जल कर सती होगई।

इस लेख या कहानी का पूरा आनन्द तो उसके पढ़ने ही से आ सकता है। हम यहाँ गृहलक्ष्मी की पाठिकाओं के लिए कुछ उस ऐसे अवतरण उद्धृत करना चाहते हैं जिन में हमारी समझ में सुयोग्य लेखक ने प्रसङ्गानुसार स्त्रियों के नैसर्गिक भावों का अच्छा चित्र खींचा है।

यद्यपि स्त्रियाँ विवाह के पीछे पति के घर की स्वामिनी होती हैं, परन्तु उन्हें नैहर का बड़ा भरोसा रहता है। यदि वहाँ कोई होते हुए उनकी सुध न ले तो उन्हें बड़ा दुःख होता है, उनके हृदय को चोट लगती है। तेजा की बहिन विवाह होने पर जब से सुसराल गयी थी कोई उसको नैहर से बिदा कराने नहीं गया था। ननँद के मुँह से भाई के आने की ख़बर सुनकर पहिले उसको विश्वास न आया। वह बोली,

"मुझे पीहर (नैहर) से आये हुए बारह वर्ष होगये। अभी तक जब किसी ने मेरी सुध नहीं ली, तो कौन आने लगा घर से निपूता ढोर (बैल) भी खो जाने

पर उसकी तलाश की जाती है। इसलिए नाहक दिल्लगी करके मुझे क्यों कुढ़ाती हो? उनके लेखे तो मैं मर गई।"

"नहीं नहीं भाभी कुढ़ो मत, उदास मत हो, मैं अपनी चूड़ियों की सौगंद खाकर कहती हूँ कि तुम्हारा भाई आया है और पनघट की बावली पर ठहरा हुआ है।"

अस्तु जब राजा (तेजा की बहिन का नाम है) को ननँद के सौगन्द खाने पर भाई के आने का विश्वास हुआ, तब तो वह फूली अंग न समा सकी। विधि पूर्वक भाई का स्वागत किया। पर इस भाव से प्रेरित होकर जिसका हमने ऊपर इशारा किया है, इस प्रकार उलाहना देने से भी न चूकीः—

"ओ हो! तू इतने वर्षों में आया कि मैं तेरी सूरत भी अच्छी तरह न पहचान सकी। मैं तो भैया पीहर का रास्ता तक भूल गई।" ये शब्द कितने स्वाभाविक हैं, इसका अनुमान कुछ स्त्रियाँ ही अच्छी तरह कर सकती हैं।

अच्छा अब इस चित्र के दूसरी ओर देखिये। विवाहिता युवा कन्या के माता पिता का घर चाहे कैसा ही धन धान्य पूर्ण क्यों न हो, परन्तु उसे सच्चा सुख कहाँ? हम ऊपर बता चुके हैं कि तेजा की स्त्री का बचपने में पाणि ग्रहण मात्र हुआ था। अभी तक उसने पति का मुँह न देखा था और न आगे के मिलने के कोई पक्की आशा थी। तेजा ससुराल पहुँच कर एक मंदिर में ठहरा। उसकी सलहज पानी भरने गयी थी। देख कर उसका पता पूँछा। जब मालूम हुआ कि नन्दोई है तो बोलीः—

"कुंवर साहब! हैं। आप पधारे हैं। भले पधारे। आज किधर भूल पड़े। मेरी ननँद तो आपकी राह देखती देखती थक गई।"

घर जाकर ननँद से कहाः—

"लाओ हमारी मिठाई। बोलो आज इनाम दोगी? मैं अभी ऐसी खबर सुनाती हूँ जिससे तुम्हारी हृदय की कली कली खिल उठे।"

"हैं हैं! क्या ख़बर? कहो तो सही? ऐसी कौनसी ख़बर है, जिसके लिए तुम मिठाई माँगती हो। मिठाई तो तुम हो। भगवान ने तुम्हें सुख दिया है। मुझ अभागिनी से मिठाई क्या और इनाम क्या जिसे ज़िन्दगी भर तुम्हारे टुकड़ों पर गुज़ारा करना है, उससे मिठाई? भाभी, यो हो काटों में न घसीटो।"

"नहीं सच कहती हूँ। हँसी नहीं करती। आज ज़रूर मिठाई लूँगी। प्यारे पाहुने का तुम्हारे ही प्यारे का पैग़ाम लेकर आयी हूँ। जिसके लिए तुम बरसों से आस लगाये बैठी थीं, वह आ पहुँचा और तुम्हें लेने के लिए।"

अस्तु तेजा ससुराल से अपनी स्त्री को साथ नहीं ले ना चाहता, क्योंकि साँप को बचन देने से वह जानता था कि मैं एक प्रकार से मर चुका हूँ। परन्तु उसकी स्त्री ने यह जानते हुए और अपनी माता के मना करने पर भी इस अवसर पर अपूर्व पातिव्रत धर्म का भाव दिखलाया। वह आग्रह पूर्वक तेजा के साथ हो गयी और जब दोनों उस नाग देवता के पास जा पहुँचे, जिससे तेजा ने प्रतिज्ञा की थी कि ससुराल से लौटने पर मुझे डस लेना। तब स्त्री पहले "हाथ जोड़ कर, धरती पर माथा टेक कर, और आँचल पसार कर रोती हुई उस सर्प से बोली—

"राजाओं के राजा! हे बासुकी राजा! मुझ ग़रीब पर दया करके मेरे पति को छोड़ दो। चौबीस वर्ष में एक दिन के एक पल के लिए भी मैंने सुख नहीं भोगा, एक के बदले दो दो की हत्या क्यों लेते हो?"

इस हृदय वेधक दिल हिला देने वाली प्रार्थना पर भी नाग राजा तनिक भी न पसीजे। उधर तेजा भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए अपने को डसाने के लिए तैय्यार हो गया, तो साँप ने कहा, "तेरा तो सारा शरीर लोहू लोहान और घायल है (ससुराल में कुछ लोगों के साथ तेजा को युद्ध करना पड़ा था) मैं तुझे कहाँ काटूं?"

इस पर स्त्री बोली:—

"अच्छा इन (पति) के बदन में जगह नहीं है, तो राजा बासुकी मुझे डस लो। मेरा शरीर ख़ाली है। जैसे ये वैसे मैं। जिस दिन हमारा हथलेवा हुआ। जिस दिन से हमने इनके साथ भाँवरी फिरीं, उस दिन से एक प्राण दो तन हुए। और एक हों चाहे अलग अलग। तुम्हें एक की हत्या करने से ग़रज़। बस इनको छोड़ कर मुझे काटो। इनके सामने मर जाने में मेरा भला है। यह जीते रह कर सुख पावें, तो मैं खुशी से मरूँ।"

कैसे सच्चे पति-प्रेम का दृश्य है। इसके आगे क्या हुआ? सो ऊपर बताया जा चुका है। अतः फिर दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

—शालिग्राम

कुछ इधर भी ध्यान दो

हे दीन-दुख-भञ्जन दयामय
कुछ इधर भी ध्यान दो।
सद्बुद्धि विद्या शील शुचिता
का हमें हरि दान दो॥

हैं आपकी कन्यायें अबला
माँगतीं भिक्षा हरी।
हो निर्बलों के प्रभु सहायक
देर अब कैसे करी॥

जगदीश हमको एकता का
पाठ आप पढ़ाइये।
है दुर्गुणों का सिर चढ़ा
जो भूत दूर भगाइये॥
आलस्य का हो नाश स्वामी
हित अहित का ज्ञान हो ।
सर्वत्र सत्ता का तुम्हारी
विश्व व्यापक मान हो ॥१॥

रक्षक ही बैरी हो गये
बन्धन में बँधवाया हमें ।
कुल धर्म बतला कर यही
पर्दे में बिठलाया हमें ॥
हे ईश बन्धन खोलिये
इस कठिन कारागार के ।
हम भी भला देखें हरी
कुछ दृश्य इस संसार के ॥
गोविन्द गोबरधन-धरन
इतनी विनय तो मान लो ।
सुख शान्ति का रवि हो उदय
दुख रात्रि का अवसान हो ॥ २ ॥

यदि जन्म होवे पुत्र का
तब घर में उत्सव हो बड़ा ।
दुर्भाग्य से जो हो सुता
तो घोर दुख सहना पड़ा ॥
जन्म के ही दिन से चिन्ता
ब्याह की आगे खड़ी ।
जिसके कुफल से भोगतीं
कन्याएँ हैं विपता कड़ी ॥
यह घोर संकट है हमें
सर्वेश इसका नाश हो ।
सम दृष्टि कन्या पुत्र पर हो
सत्य प्रेम प्रकाश हो ॥ ३ ॥

पाकर सुशिक्षा हम बनें
लक्ष्मी सरिस गृह कामिनी ।
अपमान बदले मान से
किन्तु न हों हम मानिनी ॥
सर्वज्ञ हो, तुम से अधिक
कहना हमारी भूल है ।
तुम से छिपा कुछ है नहीं
जैसी हृदय में शूल है ॥
जा जो हमें हैं वेदना
सर्वेश सारी टाल दो ।
हैं निर्बला कन्याएँ हम
अब गोद में बैठाल लो ॥ ४ ॥

सब श्रेष्ठ मानें आत्म-गौरव
प्रकट आत्मभिमान हो ।
होवे परस्पर प्रेम बन्धन,
विश्व का कल्यान हो ॥
हाँ, पुत्र के ही तुल्य
भारत मे सुता का मान हो ।
हरि मूर्ख अबला नाम
छूटे और शिक्षा दान हो ॥
हे दीन दुख भञ्जन दया मय
कुछ इधर भी ध्यान दो ।
सद्बुद्धि विद्या शील शुचिता का
हमें हरि दान दो ॥ ५ ॥

—कुमारी लीलावती

महायुद्ध की डायरी

१९१४

२३ जून—आस्ट्रिया-हँगरी के युवराज और युवराज्ञी का सेराजेवो में खून।

२३ जुलाई—आस्ट्रिया का सर्विया को अन्तिम खरीता।

२८ जुलाई—आस्ट्रिया ने सर्विया के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी।

१ अगस्त—जर्मनी की रूस के विरुद्ध घोषणा। लक्सेम्बर्ग पर जर्मनी की चढ़ाई।

२ अगस्त—इटली ने तटस्थ वृति धारण की। जर्मनों की फ्रान्स पर चढ़ाई।

३ अगस्त—जर्मनी की फ्रान्स के विरुद्ध घोषणा, जर्मनी की बेल्जियम पर चढ़ाई।

४ अगस्त—इंग्लैण्ड की जर्मनी के विरुद्ध घोषणा।

५ अगस्त—लीज़ पर तोपों की मार।

६ अगस्त—ब्रिटिश का 'आँफयन' जहाज़ सुरङ्ग से डूबा।

७ अगस्त—जर्मनी ने लीज़ ले लिया। फ्रेञ्च अल्सेस में घुसे।

१०—अगस्त फ्रांसकी आस्ट्रिया के विरुद्ध घोषणा।

१२ अगस्त—इङ्गलैंड की आस्ट्रिया के विरुद्ध घोषणा।

१५ अगस्त—जापान ने जर्मनी को अन्तिम खरीता भेजा।

१७ अगस्त—इंग्लैंड की १॥ लाख सेना फ्रांस में।

१८ अगस्त—जर्मनों ने ब्रुसेल्स ले लिया।

२३ अगस्त—जापानकी जर्मनी के विरुद्ध घोषणा। जर्मन नामूर में घुसे।

२५ अगस्त—लीज जर्मनों के हाथ। सर्विया से आस्ट्रियन खदेड़ दिये गये।

२८ अगस्त—जर्मनी ने लुवेन जलाया। अंग्रेजों ने जर्मनी के तीन क्रूजर और दो डिस्ट्रायर डुबाये।

३ सितम्बर—फ्रान्स की राजधानी पैरिस से बोर्डो को गई। रूस ने लेम्बर्ग ले लिया और ४०,००० आस्ट्रियन कैद किये।

६ सितम्बर—जर्मन मार्न नदी से पीछे हटे।

७ सितम्बर—इंग्लैंएड का जहाज 'पाथ-फाइण्डर' सुरंगसे डूबा।

८ सितम्बर—इंग्लैंड का 'ओशियानिक' जहाज़ बेकाम हुआ।

१५ सितम्बर—जर्मन क्रूजर 'हेला' डूबा। बाज़निया में सर्वियनों से आस्ट्रियनों का पराजय।

१६ सितम्बर—बंगाल की खाड़ी में एमडेन क्रूजर ने ६ व्यापारी जहाज़ डुबाये।

२० सितम्बर—जर्मन क्रूजर 'कोनिक्स-बर्ग' ने ब्रिटिश क्रूजर 'पेगसस' को हानि पहुँचाई।

२१ सितम्बर—मद्रास पर एमडेन की गोलाबारी।

२२ सितम्बर—जर्मन सबमेरीनों ने, 'अबूकीर' 'कवीसी' और 'होग' ये तीन जहाज़ डुबाये।

२७ सितम्बर—एमडेन ने और चार जहाज़ डुबाये।

१ अक्तूबर—हिन्दुस्थानी सेना फ्रांस मेँ उतरी।

५ अक्तूबर—जापान ने मार्शल टापू ले लिया।

८ अक्तूबर—जर्मन ने एएटवर्प शहर मेँ आग लगा दी। रूस ने प्रेजमिजल पर गोलाबारी की।

६ अक्तूबर—जर्मनोँ ने एएटवर्प ले लिया।

१० अक्तूबर—रूमानियाँ के राजा मर गये।

१३ अक्तूबर—जर्मनोँ ने घेएट ले लिया।

१७ अक्तूबर—ब्रिटिश 'अनडाउटेड जहाज़ ने जर्मनी के चार 'डिस्ट्रायर' नष्ट किये।

२१ अक्तूबर—एमडेन ने ५ स्टीमरेँ फिर डुबाँई और २ गिरफ्तार कीँ।

२३ अक्तूबर—डंकर्क की लड़ाई। जर्मन क्रूजर 'कालसहयू' ने १३ स्टीमरेँ डुबाँई।

२६ अक्तूबर—द० अफ्रिका मेँ जेनरल मारिट्ज़ का पराभव। फ्रान्स की रण-भूमि मेँ हिन्दुस्थानी सेना।

२७ अक्तूबर—संगीन लेकर गोरखे और सिख बड़ी बीरता से लड़े और अपना पक्ष सम्हाला।

२६ अक्तूबर—टर्की के जहाजोँ की रशिया के ओडेसा बन्दर पर गोलेबारी

३० अक्तूबर—एमडेन ने पिनांग के पास रशियन क्रूजर और फ्रेंच डिस्ट्रायर डुबाया।

३१ अक्तूबर—सिंगताऊ पर जापान का आक्रमण।

१ नवेम्बर—वलपेराजो के पास ब्रिटिश और जर्मन क्रूजरोँ की लड़ाई। उसमेँ ब्रिटिश के दो क्रूजर 'गुडहोप' और 'मैमथ' डूबे।

५ नवेम्बर—काकेशिया की रूसी सेना टर्की की सरहद मेँ घुसी। काले समुद्र मेँ टर्की ने रूस का लड़ाका जहाज़ 'सिनाप' डबाया।

६ नवेम्बर—सिंगताऊ की जर्मन सेना जापान की शरण मेँ आई।

६ नवेम्बर—काकस टापू के पास सिडने क्रूजर ने एमडन को डुबाया और 'चेथम' जहाज़ ने जर्मनी के कानिग्ज-वर्ग क्रूजर को अफ्रिका की सफज नदी के मुहाने पर घेरा। टर्की का 'फाओ' बन्दर अँग्रेजोँ ने ले लिया।

१४ नवेम्बर—अर्ल राबर्ट्स की मृत्यु।

२३ नवेम्बर—स्वेज नहर से ३० मील पर टर्की की फौज के साथ बीकानेर के ऊँट के रिसाले का सामना।

२५ नवेम्बर—लोड्ज में रूस की जीत।

२६ नवेम्बर—बुलवर्क जहाज़ में गोला बारूद रते समय एकाएक धड़ाका होना और जहाज़ का डूबना।

२८ नवेम्बर—'लायल्टी' नाम का अस्पताली जहाज़ बम्बई से रवाना हुआ।

२ दिसम्बर—जे० डिवेट द० अ० में पकड़े गये।

३ दिसम्बर—सम्राट पञ्चम जार्ज रण भूमि में।

५ दिसम्बर—रूस ने लोड्स् छोड़ दिया।

८ दिसम्बर—फाकलैण्ड टापुओं के पास जर्मन और ब्रिटिश क्रूजरों का सामना, जिसमें जर्मनों के चार जहाज़ शार्न, होर्स्ट, नीमनों, लीपजीग और नरेनवर्ग डूबे।

६ दिसम्बर शटेल-अरब के पास ब्रिटिश सेना से तुर्कों का पराभव। कुर्ना के पास ११०० तुर्की सिपाही और ६ तोप गिरफ्तार।

१३ दिसम्बर—'मसौदिया' टर्की का लड़ाका जहाज़ सुरङ्ग लग कर डूब गया।

१४ दिसम्बर—सर्वियनों का बेलग्रेड में पुनः प्रवेश।

१६ दिसम्बर—इङ्गलैण्ड के पूर्व किनारे की ओर जर्मन बेड़े का हमला।

१६ दिसम्बर—शाहजादा हुसैन अपने भतीजे की जगह सुलतान बना।

२१ दिसम्बर—बड़े लाट साहब के पुत्र का देहान्त।

२६ दिसम्बर—जर्मन आकाश-यानों ने डोवर पर बम फेंके।

२७ दिसम्बर—'काकहेवन' पर ब्रिटिश बेड़े की चढ़ाई।

३१ दिसम्बर—एमडेन का कप्तान वान मुलर इङ्गलैंड में नजर बन्द कैद।

१६१५

१ जनवरी—इङ्गलिश चैनेल में फोरमिडेब्ल जहाज डूबा।

१२—जनवरी—काले समुद्र की जहाजी लड़ाई में शत्रु के तीन क्रूजर बेकाम किये गये।

२० जनवरी—जेनरल बोथा की सेना ने जर्मन-साउथ-वेस्ट अफ्रिका का साइकोपमण्ड स्टेशन ले लिया।

२४ जनवरी—उत्तर समुद्र के जल युद्ध में जर्मन क्रूजर ब्लुशर डूबा।

२६—जनवरी—टर्की की सेना की स्वेज नहर के पास पराजय।

१२ फरवरी—ट्रेबिजोण्ड पर रूस की गोलाबारी।

१३ फरवरी—३४ ब्रिटिश वैमानिकों ने बेल्जियम जर्मन सेना पर आक्रमण किया।

२२ फरवरी—जर्मन क्रूजर ने अंग्रेजों की ५ स्टीमरें डुबाईं।

२४ फरवरी—जर्मन सबमेरीनों ने स्टीमरें डुबाना आरम्भ किया।

१ मार्च—रूस का प्राजनित्स में पुनः प्रवेश।

४ मार्च—डार्डेनल्स पर तोपें दगीं और ६ नम्बर के किले की तोपें बन्द हुईं।

५ मार्च—एक छोटी कोयले वाली ब्रिटिश स्टीमर ने एक जर्मन सबमेरीन डुबाई।

११ मार्च—यू० २० सबमेरिन एक डिस्ट्रायर से डूबी। लड़ाऊ जहाज, 'एलिजाबेथ' डार्डेनल्स में घुसा।

१६ मार्च—जर्मन क्रूजर 'ड्रेसडेन' जूएन फर्नाण्डीज टापू के पास डूबा।

२० मार्च—दो ब्रिटिश जहाज, इर्रजिस्टेबल और 'ओरान' तथा फ्रेञ्चों का 'बावेर' क्रूजर डार्डेनल्स में सुरङ्ग से टकरा कर डूबे।

२२ मार्च—रूस ने 'प्रेजमिजल' ले लिया।

२७ मार्च—रशियनों के घेरे के डर से क्राको शहर खाली करने का लोगों को हुक्म दिया गया।

३० मार्च—अमेरिकन जहाज़ 'फेलाबा' जर्मनों ने डुबाया।

४ एप्रिल—क्रूजर 'मेजिदिया' डुबाया गया।

१४ एप्रिल—मेसोपोटामियाँ में अंग्रेजों ने शैवा गाँव के पास तुर्कों को हराया।

१८ एप्रिल—डार्डेनल्स में यू० १५ ब्रिटिश सबमेरीन गायब हुईं।

२४ एप्रिल—धूम्रास्त्र (गैस) के प्रयोग का आरम्भ।

२८—एप्रिल—फ्रेंच क्रूजर 'लियान-गेवांश' नष्ट हुआ।

७ मई—जर्मनी ने अमेरिका का लुसिटनिया जहाज डुबाया।

१३ मई—अंग्रेजों का 'गेलिथाथ' जहाज डूबा।

१६ मई—ब्रिटिश प्रधान-मंडल संयुक्त हुआ।

४ मई—इटाली की समर-घोषणा।

२७ मई—इटाली का ट्रीस्ट पर हमला। अंग्रेजों का 'मैजेस्ट्रिक' जहाज डूबा।

२६ मई—एड्रियाटिक समुद्र म आस्ट्रिया के जहाज बे काम किये गये। इटाली ने ग्रेडो ले लिया।

३१ मई—इटाली के बेड़े ने पोला बन्दर पर गोला बारी की।

५ जून—रूस ने प्रेजमिजल छोड़ दिया।

६ जून—इटली की फौज 'इसोंजो' नदी पार कर गई।

१२ जून—इटली ने मान-फाल्कन ले लिया।

२२ जून—कान्सटेंटिनोपल में सुलह की बात चीत।

२३ जून—जेन० डिवेट को ६ वर्ष की कैद

२४ जून—डंकर्क पर तोपें।

२५ जून—रूसियों ने लेम्बर्ग छोड़ा।

३० जून—ब्रिटिश और जर्मन कैदियों की अदला बदली की गई।

३ जुलाई—ट्रास्ट से आस्ट्रिया का सम्बन्ध तोड़ दिया गया।

४ जुलाई—बाल्टिक समुद्र में ब्रिटिश सबमेरीन ने जर्मन जहाज 'पामर्न' डुबाया।

७ जुलाई—मालबरमेटो पर गोला बारी।

९ जुलाई—जे० बोथा ने जर्मन साउथ-वेस्ट अफ्रिका ले लिया।

१३ जुलाई—जर्मनों ने 'प्राजनित्स' ले लिया।

१८ जुलाई—जर्मनों ने रूस का विण्डाऊ बन्दर ले लिया।

१९ जुलाई—इटली का 'गेरीबाल्डी' क्रूजर डूबा।

२० जुलाई—जर्मनों का वार्सा और इवें-गौरोड घेरना।

२६ जुलाई—जर्मनों ने उत्तर सागर में अमेरिकन स्टीमर 'लीलाना' और ब्रिटिश स्टीमर 'ग्रांजेउड, को डुबाया।

२८ जुलाई—फ्रेञ्चों ने केमरून के अन्तर्गत लोम नगर पर अधिकार कर लिया। कामन्स सभा १४ सितम्बर तक के लिये मुलतवी हुई।

२९ जुलाई—रूसियों ने वार्सा खाली कर दिया।

४ अगस्त—जर्मनी के साथ इङ्गलैण्ड की युद्ध-घोषणा की वष गाँठ!

(हिन्दी-केसरी)

भयंकर अनुताप

(१)



या शंकर एक सुन्दर सुडौल युवा पुरुष हैं, किन्तु चिन्ता की लकीरे सदैव उनके मुखमंडल को म्लान बनाये रखती हैं। वे सदा किसी गंभीर चिन्ता में निमग्न रहते हैं। मित्र मण्डली जब आमोद प्रमोद के लिये निमंत्रित करती है, तब तबीयत अच्छी नहीं बतला कर टाल देते हैं। मंद मुसक्यान ने मानों उनके चेहरे से सदा के लिए विदा लेली है। पुस्तक खोल कर पढ़ने बैठते हैं, किन्तु चित्त चिन्ता सागर में डुब की लगाता है, जब पास की गिरजा वाली घड़ी टन टन बजती है, तो चिहुंक कर कहा करते हैं "ऊँह, इतना समय व्यतीत हो गया। उनका आनन्द रूपी आकाश सदैव चिन्ता रूपी मेघों से आच्छा-

दित रहता है और उनके बदन की आकृति से ऐसा प्रतीत होता है, मानों उस नव यौवन रूपी गुलाब के अधखिले पुष्प में चिन्ता रूपी घुन लग गया है। मित्र सदैव उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु दयाशंकर के हृदय में तो चिन्ता की ज्वाला सदैव धधकती रहती है। उन्हें संसार के सब आनन्द फीके लगते हैं। उमंग और उत्साह की लहरें अब उनके हृदय समुद्र में कभी नहीं उठतीं। उनका जीवन उन्हें भार मालूम होता है। न किसी से कुछ कहते हैं और न पूँछने पर ही अपनी चिन्ता का कारण अपने मित्रों से बतलाते हैं। दया शंकर बी० ए० के विद्यार्थी हैं। इस वर्ष परीक्षा दी थी, परिश्रम भी यथा शक्ति कर रात को दिन और दिन को रात कर दिया था, प्रश्नों को हल अच्छी तरह किया था, उत्तीर्ण होने की आशा भी थी, किन्तु परीक्षा के फल प्रकाशित होने पर 'लीडर" में अपना नाम न देख उन्हें वज्रपात सदृश दुःख हुआ। जब सहपाठी गण सफली-भूत हो जाते हैं और परिश्रम करने पर भी भाग्य वश फेल हो जाते हैं, तो हृदय में ईर्षा होती है और फिर माता पिता भी सूखी सुनाने लगें, तो संसार में अंधकार के अतिरिक्त कुछ दृष्टि नहीं आता। विचारे दया शंकर किसी प्रकार धैर्य धर चित्त को शांत कर अब की फस्ट डिविजन में पास होने का दृढ़ प्रण कर घर से बिदा हो प्रयाग में चले आये हैं। गत वर्ष विद्यालय के पास ही दो तीन मित्रों के साथ होने से किराये का मकान लेकर रहते थे, किन्तु अब अकेले रह जाने से होस्टल में रहना ठीक समझ कर होस्टल ही में टिके हैं। होस्टल जीवन इतना आनन्द दाई होने पर भी उन्हें किसी प्रकार सुखी नहीं बना सका। वे चिन्ता की ज्वाला में सदैव भुनते ही दृष्टि गोचर होते हैं। उनका चेहरा पीला पड़ गया है, सुन्दर गोल आरसी से कपोलों की लाली चली गई है और और कमल नेत्र बैठ गये हैं। कुछ वर्ष पहले दयाशंकर हृष्ट पुष्ट थे, किन्तु अब उनकी यह दशा देख देख उनके जान पहिचान के मनुष्यों के हृदय में दुःख और दया का सञ्चार हो जाता है। वे उनसे बहुतेरा पूछते हैं, किन्तु लज्जा शील चिन्ता ग्रस्त अधोमुख किये हुए दया शंकर के मुख से एक भी शब्द नहीं निकलता है। नेत्र उमड़ आते हैं, हृदय धक धक करने लगता है और अश्रुधारा बह चलती है। इससे मालूम होता है कि उनके हृदय में दुःख की मात्रा कितनी अधिक है। रात्रि में नींद नहीं आती, दिल में चैन नहीं पड़ती सर्व शक्तिमान् घट घट की जानने वाले भगवान् ही जानें, उनके दुःख का कारण क्या है। पाठक गण! जितना हम अब तक समझ सके हैं, उससे तो यही मालूम होता है कि

बी. ए. मैँ फेल हो जाना ही उनके :दुख का कारण है।

(२)

आक्सफोर्ड केम्ब्रिज छात्रालय के एक कमरे मैँ हाथ मैँ पुस्तक लिये हुए दया शंकर कुर्सी पर बैठे हुए हैँ। उनका चित्त पुस्तक मैँ नहीँ लग रहा है किन्तु मस्तिष्क मैँ एक के बाद दूसरा विचार आ रहा है, लैम्प की रोशनी से सारा कमरा प्रकाशित हो रहा, घड़ी ने अभी दस बजाये हैँ, नौकर दूध लिये बड़ी देर से खड़ा हुआ है। दया शंकर ने नौकर को दूध रखने के लिए कह उसे बिदा कर दिया और फिर अपने ध्यान मैँ मग्न हो गये। घर से आये एक मास व्यतीत हो गये है। आते समय ४०) रुपये साथ लाये थे, वे सब खर्च हो गये हैँ, फीस देना है, बोर्डिङ्ग हाऊस का किराया देना है, पिता जी को दो तीन पत्र लिख चुके हैँ, किन्तु सहायता की कुछ आशा नहीँ है। आज उनकी धर्म पत्नी का एक पत्र आया है, उसे पढ़ कर और भी उत्तेजित और दुःखी हो गये हैँ। बार बार उसे पढ़ते हैँ और उनके नेत्रोँ से आँसुओँ की झड़ी लग जाती। पत्र मैँ लिखा है।

'प्राणनाथ,

दासी से अब यह असीम यंत्रणा नहीँ सही जाती। संसार मैँ आप के चरण कमलोँ के अतिरिक्त मुझे कहीँ शरण नहीँ है। शीघ्र आकर सुध लीजिये, नहीँ तो मैँ आपके पवित्र चरणोँ का स्मरण कर वहाँ चली जाऊँगी, जहाँ से लौट कर आज तक कोई नहीँ आया है।

आपकी चरण सेविका

सुशीला।

दयाशंकर बार बार पत्र को पढ़ते हैँ, किन्तु चित्त भ्रम मैँ होने से कुछ कर्तव्य स्थिर नहीँ कर सकते हैँ। कभी मन मैँ आता है कि पढ़ना छोड़ कर किसी आफिस मैँ क्लर्क हो जाँय, अथवा पाठशाला मैँ अध्यापक हो जाँय, क्योँकि बिना रुपया पढ़ना नहीँ हो सकता। प्राइवेट ट्युशन के लिये भी बहुत यत्न किया, किन्तु अभाग्य वश बिचारे को कहीँ नहीँ मिला। रात्रि भर करवट बदलते ही बीत गई, किन्तु दयाशंकर को कुछ भी नहीँ सूझा। अन्त मैँ पत्र के आशय से विह्वल हो दयाशंकर ने घर जाना निश्चय किया। दयाशंकर अपने एक मित्र से रुपया उधार ले मोदी का ऋण चुका प्रातःकाल की रेलगाड़ी पर सवार होकर मथुरा चले गये।

(३)

दयाशंकर के पिता एक प्रतिष्ठित सज्जन और डिप्टी कलेक्टर हैँ और उन्होँने दया शंकर की माता के देहांत होने पर एक रूपवती सुन्दर नव यौवना कन्या से पाँच छः वर्ष हुए विवाह कर लिया है। चार वर्ष हुए, दया शंकर का भी

विवाह एक कुलीन गुणवती बालिका के साथ हो गया है और ईश्वर की दया से एक लड़का और एक लड़का भी है। दया शंकर की सौतेली माँ के पुत्र मिठाई दूध और सुन्दर सुंदर खिलौने और नवीन नवीन कपड़े पाते हैं किन्तु दया शंकर के बच्चों को भोजन भी ठीक समय पर नहीं मिलता, दासी उनका अनादर करती है और जब बिचारी माता खिलाती है, तो दादी बीसों सुनाती है। दयाशंकर की माता के लिए सुन्दर रेशमी साड़ियाँ, तैल इत्र, आदि आते हैं, किन्तु सुशीला के लिये फटी साड़ी का भी ठिकाना नहीं। यदि कार्य्य में कुछ चूक भी नहीं होती, तो भी सासु जी गालियों की बौछार का नित्यनेम नहीं छोड़तीं। सुशीला धनी की माता पिता की इकलौती पुत्री है, जो काम उसने आज तक नहीं किये थे, वेही अब करने पड़ते हैं। विचारी का स्वास्थ्य बिलकुल खराब हो गया है। रोते रोते कमल से नेत्र केवल गड्ढे से दिखलाई पड़ते हैं। आज तक वह सब यातना विचारी चुपचाप सहती थी, किन्तु अब उसका जी ऊब गया। अब जब प्रति दिन की झिड़कियाँ असह्य हो उठीं, तब घबड़ा कर उसने अपने जीवन सर्वस्व हृदय मंदिर के अधिष्ठाता पति देवता को वह पत्र लिखा था। कोई भी दिन नहीं खाली जाता, जब कि सुशीला के नेत्रों से आँसू नहीं बहते हों! सासु जी सदैव अपने पति से बहू की शिकायत करती हैं। कहती हैं, देखो, लड़का अब की बहू की बातों में रह कर ही बी. ए. में फेल हो गया। वह लड़के से मेरी सदैव शिकायत करती है, पडोसियों में मुझे बदनाम करती है और न मालूम अपने पति को सदैव क्या लिखती है। घर का काम काज कुछ नहीं करती, हर समय बच्चे को लेकर बैठी रहती है, मानो मैं उसके सामने काम करने के लिए दासी हूँ। विचारी बहू हर समय काम में लगी रहती है, अच्छी तरह काम करती है, तो भी यही हाल। उसकी नन्द यशोदा सदैव अपनी माँ से भौजाई की शिकायत करती है और बीसों बातें सुनाती है। सुशीला के के लिए अब घर में क्या, संसार में रहना असह्य हो उठा और आत्महत्या करनी चाही, किन्तु अपने तुतलाते हुए रमेश को देख कर उसका धैर्य छूट गया और वह घृणित विचार उसने तज दिया।

(४)

बिचारे दया शंकर घर पहुँचे। बहुत से मनुष्यों के लिए तो घर स्वर्ग से भी बढ़ कर आनन्द दाई होता है, किन्तु दया शंकर के लिए वही घर नरक से भी बढ़ कर घोर यातना देने वाला है। पिता कुछ बोलते नहीं, माता, जब भोजन करने जाते हैं तब, बहू की शिकायत कर कान भरती हैं। कमाई करने की उत्तेजना करती हैं और सूखी सूखी बातें सुनाती है। पिता जी कभी प्यार से बेटा कह पुकारते ही नहीं। रात्रि में स्त्री की राम

कहानी सुन कर विचारा जी मसोस कर रह जाता है और सब ओर से अंधकार ही अंधकार दृष्टि गोचर होता है। नौकरी के लिए बहुत तलाश की किन्तु कोई अच्छी नौकरी मिली नहीं। डिप्टी-कलेक्टर के लड़के होने से छोटी नौकरी करने में शरमाते थे। अतः प्रति दिन की की यंत्रणा सहते सहते दया शंकर के हृदय के टुकड़े टुकड़े हो गये। संसार उन्हें असार और दुःखमय प्रतीत होने लगा। सब बन्धनों से छूटने के लिए उन्होंने आत्महत्या करना स्थिर किया।

आज सायंकाल का समय है। दया शंकर अपने रमेश और इन्दिरा को गोदी में ले खूब प्यार कर रहे हैं। बार बार चूम रहे हैं। ऊँची कटोरे सी आखें जल से किनारे तक भरी हैं। बच्चों को अच्छी तरह प्यार करके वह स्त्री की तरफ बढ़े। उसको भी हृदय से लगा कर अच्छी तरह प्यार किया। फिर दोनों की चार आखें हुई। दया शंकर ने अपना विषाद भरा मुँह फेर लिया और यह कह कर चले गये, कि मैं हवा खाने जाता हूँ। सुशीला दया शंकर के चित्त का मर्म समझ कर काँप उठी। मानों उसके दिल में कोई कहने लगा, "सुशीला! जल्दी तुम कुछ प्रबन्ध करो, नहीं तो दया शंकर इस रोज रोज के झंझटों से छूटने के लिए भागीरथी जी में शरण पाने के लिए जा रहे हैं। सुशीला के प्राण हा हा कर उठे। उस समय उसकी सांसारिक शरम न जानें, कहाँ चली गई। किसी की परवाह उसने न की। सास ससुर बकेंगे, बका करें। रोज ही तो उस वाक्य वाण वर्षा करते हैं। इन वाक्य वाणों के चोट की औषधि केवल एक ही व्यक्ति है, जो आज संसार छोड़ने के इरादे से घर से निकला है। उसके न रहने पर तो यह विपदा और भी बढ़ जायगी। तब फिर बेचारी सुशीला किस के शरण जायगी! इन्दिरा रमेश किस का मुँह देखेंगे? कैसे करेंगे, क्या खायगें, सो सुशीला की यह धृष्टता हर तरह क्षम्य है, होनी भी चाहिए। पाठिकाएँ अवश्य इस से सहमत्त होंगी, हमारा यह पक्का विश्वास है। सुशीला ने शीघ्र ही चट पट दया शंकर के कपड़ों का दूसरा जोड़ा पहिन कर, सिर में टोपी की जगह साफा बाँध, हाथ में बेत ले कर उसे इधर उधर घुमाती हुई, रमेश, और इन्दिरा की दृष्टि से छिप कर दयाशंकर के पीछे लगी।

विश्राम घाट पर आरती का समय है बहुत भीड़ हो रही है। देश देश के यात्री श्रावण मास होने से रास देखने इकट्ठे हुए हैं। दयाशंकर भी मन्दिर में जा दर्शन कर कालिन्दी में अपनी सब चिन्ताओं को डुबाने के लिए घाट पर इधर उधर टहलने लगे।

एक कमसिन नव युवक साफा बाँधे, छाया की तरह दया शंकर के पीछे

पीछे फिर रहा है। दया शंकर को यह बिलकुल नहीँ मालूम । वह अपनी ही धुन मेँ मस्त हैँ। धीरे धीरे सब भीड़ छट गई, यात्रीगण अपने निवास स्थान को चले गये । पण्डे लोग निद्रादेवी की गोद मेँ शयन करने घर चले गये। पक्षीगण सब अपने घोँसलोँ मेँ सुख पूवक सो रहे थे; जनरव बिलकुल शांत था, रात्रि की निस्तब्धता मेँ केवल कालिन्दी के कल कल शब्द के सिवाय कुछ भी करण गोचर नहीँ होता था। तब दया शंकर अपने दुःखोँ से मुक्त होने के लिए अपनी स्त्री और बच्चोँ को निसाहय छोड़ यमुनाजी की गोद मेँ शरण पानेँ की इच्छा से कूदने की चेष्टा करने लगे । पैर आगे बढ़ाया। और चाहते थे, कूद पड़ेँ। इस समय पीछे से उसी साफेबाज़ पुरुष वेष धारी सुशीला ने दयाशंकर की कमर पकड़ली । दयाशंकर चौँक पड़े । फिर कर उन्होँने एक कमज़ोर चेहरे को देखा । फिर बोले, "भाई, तुम कौन हो? तुम ने रोक कर बड़ी गलती की। प्रियवर मित्र! मेरे दुःखोँका पारावार नहीँ है। मेरे आँसुओँ को धोने वाला, इस गोबिन्द की प्यारी जमुना के सिवा और कोई नहीँ। तुम जाओ। अपना काम करो। और मुझे दुःखोँ से छूटने दो। पुरुषवेष धारी सुशीला बोली, "मित्र! हमेँ किसी तरह तुम्हारी बातोँ का पता लग चुका है। हम जानते हैँ, कि तुम्हेँ बड़ा कष्ट है । किन्तु तो भी हम यह पूँछने की धृष्ठता करते हैँ, कि तुम तो जमुना की शरण मेँ सुखी हो जाओगे, और तुम्हारे अबोध सुकुमार बालक रमेश और इन्दिरा क्या करेँगे। तुम्हारी पतिप्राणा पत्नी की क्या दशा होगी । भला सच बताओ, क्या तुम्हारी इस मानसिक निर्बलता से वह ज्यादा सुखी होँगी, क्या तुम्हारे चले जाने से उनके कष्ट कम हो जायँगे। मित्र! सच बोलो, क्या, तुम अबला पर यह अन्याय की कुठार नहीँ चला रहे हो? सच कहो, उसकी शेष जिन्दगी के दिन कैसे पूरे होँगे।" दया शंकर की मति बदल गयी। इतनी ही देर मेँ उन्होँने अपना विचार बदल दिया। वह बोले, "मित्र! तुम्हारी इस कृपा को धन्यवाद! आज तुम्हारी कृपा ने केवल मुझे ही नहीँ, मेरे साथ और भी तीन प्राणियोँ को जीवन दान दिया है। मैँ आज से तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा। मैँ अभी जाकर अपनी स्त्री से अपने इस गुरुतर अपराध की क्षमा माँगूगा।" पुरुष रूप-धारिणी सुशीला बोली, "और यह तुम्हारे कैसे क्षुद्र विचार हैँ, कि छोटी नौकरी न करोगे। डिप्टीकलेक्टर के लड़के होने पर भी यदि तुम गुज़र लायक नौकरी कर लोगे, तो तुम्हेँ कोई तुम्हारी हालत देख कर बुरा न कहेगा। इसमेँ शरम किस बात की? क्या मनुष्य न जानेँगे, कि डिप्टीकलेक्टर साहेब अपनी सन्तान के साथ इस तरह पेश आते हैँ। जाओ! यह विचार छोड़ो,..

और नौकरी करके अपने बच्चों को सुखी बनाओ। फिर कभी ऐसा करने की कोशिश न करना। आत्महत्या कर के, तुम आत्महत्या का पाप तो सिर पर लेते ही, किन्तु अपनी स्त्री का जो तुम्हारा हर तरह का विश्वास करती है उसके साथ विश्वास घात का भयंकर पाप भी तुम्हारे सिर पर लद जाता। जाओ, अपनी स्त्री के दुखित हृदय पर अमृत-वर्षा कर उसे सुखी करो।

सुशीला चली गयी। दया शंकर घर आये। सुशीला ने अपने वस्त्र पहिन लिए थे। बोली, "आज बहुत देर लगायी। क्या बात थी? दया शंकर ने कहा, नहीं। कल से म नौकरी के लिए प्रबन्ध करूँगा। चाहे, छोटी हो, या बड़ी।" सुशीला ने अपना सम्मति सूचक इशारा कर दिया।

* * * *

दयाशंकर के कोशिश करने पर उन्हें ५०) रुपया माहवार की नायब तहसदारी मिल गयी। तभी उनके पिता ने अलग कर दिया। लेकिन दया शंकर ५०) ही में अब सुखी थे। सुशीला उसी में से १५—२० रुपये माहवार बचा लेती थी। दो तीन वर्ष के बाद बहुत अच्छा काम करने के कारण वह तहसील दार हो गये है। और उनकी तनखाह अब १५०) रुपये माहवार हो गयी है। उनके दिन अब सुशीला, रमेश और इन्दिरा के साथ बड़े सुख से बीतते हैं।

इतने दिनों बाद दयाशंकर ने सुशीला से आत्महत्या के चेष्टा वाली बा। कही। सुशीला बोली,—"क्यों जी, तुम्हें उस समय क्या हो गया था?"

दयाशंकर ने कहा, "भयानक अनुताप।"

दयाशंकर आज तक अपने उद्धार कर्ता को नहीं जानते हैं।

—श्यामसुन्दर लाल

———

लघु-जीवधारियों का अपत्यस्नेह

स्वाभाविक अपत्यस्नेह जो प्रत्येक जीवधारी को ईश्वर की ओर से मिला है वह सब मनुष्य मात्र के ही हिस्से में नहीं आया। यदि हम सृष्टि-क्रम की ओर ज़रा गहरी दृष्टि डाल कर देखें और अधिक दूर न जाकर पहिले अपने पास की ही वस्तुओं के आन्तरिक रहस्य की पूरी विवेचना करें तो हमें ऐसी ऐसी कौतूहल पूर्ण और आश्चर्यजनक शक्तियाँ, क्रियायें अथवा नैसर्गिक-चमत्कारोत्पादक पदार्थों का पता लगेगा, जो हमारे अति निकट होने पर भी हमारी निगाह से अब तक छिपे हुए हैं।

अपने पास की वस्तुओं के अधिक निकटवर्ती, होने के कारण हमें प्रायः

उनका बहुत कम ज्ञान होता है, जिस पर भी हम लोग स्वभावतः कुछ ऐसे हतोत्साह और उदासीन हो गये हैं कि स्वतंत्र और प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने की अपेक्षा केवल पुस्तकों में लिखे विचारों व निर्देशों के दास होते जाते हैं। ऐसे लिखने से हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि पुस्तकों की शिक्षा दूषित या निकम्मी ही होती है, किन्तु हम बड़े साहस के साथ कह सकते हैं कि अकेली पुस्तकों की शिक्षा, जब तक प्राकृतिक अनुभव से परिपुष्ट न की जाय, नैसर्गिक नहीं कही जा सकती। यही कारण है कि आज कल सभी सभ्य देशों में किन्डरगार्टन आदि रीतियों से शिक्षा देने की प्रथा सार्वभौमसी हो गई है व होती है। निस्सन्देह वैज्ञानिक शिक्षा दिये जाने की यह प्रथम सीढ़ी है पर शिक्षा की रीति पर हम इस निबन्ध में विचार न करके अपने पाठकों के मनोरञ्जन के लिए यह बतलाने की चेष्टा करेंगे कि केवल मनुष्य ही नहीं किन्तु क्षुद्र से क्षुद्र जीव भी अपनी सन्तान से अगाध स्वाभाविक प्रेम रखते हैं।

हम इस छोटे से लेख में विकास के सिद्धांतों पर कुछ भी कहने के लिए तैय्यार नहीं हैं, परन्तु अपने विषय की यथावत आलोचना करने के लिए हमें यह अवश्य ही लिखना पड़ता है कि जब पृथ्वी सूर्यदेव से अलग हो कर घूमते घूमते तथा अपने उबलते हुए अग्नि-सागर में से समय समय पर आग के गोले फेंकते फेंकते, ठंढी होने लगीं, तो इसके ऊपरी पर्त के ठंढे होते ही क्रमशः उसकी नीचे वाली चट्टानें भी ठंढी होने लगीं, मेघ वर्षा करने लगे, वायु चलने लगी समुद्र की लहरें आ कर थल से टकराने लगीं, उसी समय अयोनिसृष्टि की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् स्थल पर वनस्पतियों की उत्पत्ति और जल में शंख घोंघे आदि जल-जन्तु पैदा होने लगे। इन्हीं के पीछे मछलियों का विकास हुआ। अवश्य ही यह निर्दिष्ट करना टेढ़ी खीर है कि सृष्टि पहिले थल पर हुई अथवा जल में क्यों कि प्रत्येक जीव के लिये जल और ताप दोनों ही समान रूप से प्राणाधार हैं। दोनों की समान मात्रा होने से जीवन स्थिर रह सकता है पर तो भी अनुधावन से यह अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय हमारी पृथ्वी ज्वलन्त अग्नि का गोलक हो रही थी उसके पीछे ठंढी होने के कारण जल और थल का विभाग हुआ तो सब से पहिले जल में ही सृष्टि होनी प्रारम्भ हुई होगी। पर फिर हमें यह कहने का साहस नहीं होता कि सृष्टि के आदि में पहिले जीव जन्तु पैदा हुए या पहले वनस्पतियों का विकास हुआ। [The Story of creation Edward Clodd p. 153]

इन्हीं (amphilious) जल और थल दोनों में रहने वाले जीव और मछ-

लियों में अपत्यस्नेह का ऐसा अपूर्व उदाहरण मिलता है कि जिसके सदृश अन्य स्तनपायी जीवों तक में मिलना कठिन है। मेंढक Toads अण्डों को अपने मुँह में रख लेता है और उसके हलक़ या गलसुये में ही उसके बच्चे बड़े आराम और शीघ्रता से बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार के जीवों का प्रत्यक्ष उदाहरण Rhinaderma Darwini है। बहुत मेंढक इस प्रकार के होते हैं कि उनकी मादा की पीठ में शहद के छत्ते की तरह छेद होते हैं। इन्हीं छिद्रों में अण्डे रख देने के पश्चात् यह क्रमशः बन्द होने लगते हैं, और अन्त में अण्डे परिपक्व हो जाने से बच्चे निकल आते हैं, तब यह छिद्र फिर खुल जाते हैं। इस प्रकार के मेंढकों में पीपाही सर्वश्रेष्ट कहा जा सकता है। कुछ मेंढक इस प्रकार के भी हैं जिनमें पिता ही दाई का काम करता है। यह छोटे छोटे अन्डों को अपने पिछले पैरों में उलझा कर प्रायः एक पखवारे तक (जब तक कि बच्चे पैदा नहीं हो जाते हैं) जीवित ही गड़ा रहता है। इन में Altles obstetricans की गणना सब से पहिले की जानी चाहिये।

शिशु-रक्षण और पालन के विषय में तो मछिलियों की बुद्धि इनसे भी कहीं विलक्षण होती है। यूरोप देश की प्रसिद्ध मछलियों में से स्टिकलबैक Stickleback नामक मत्स्य को छोड़ कर (जिनका नर प्रायः घोसला बनाने व पैत्रिक स्नेह के लिए प्रसिद्ध है) बहुधा सभी मछलियाँ इस विषय में उदासीन पाई गयी हैं। परक्रांत-वलय (Tropics) तथा इसके नीचे वाले देशों की मछलियाँ अपनी विलक्षण प्रकृति के लिए प्रसिद्ध हैं।

Paratilapia पैराटिलेपिया नामक मत्स्य जिनके मुख द्वारा संतानोत्पत्ति होती है इसी प्रकार की विलक्षण मछलियों में से हैं। जब तक इनके बच्चे यथेष्ट सयाने नहीं होते यह उन्हें अपने मुख में ही रक्खे रहते हैं। छोटे छोटे बच्चों की रक्षा के लिए अपनी माता के मुख में दौड़ कर घुस जाना बड़ा ही अपूर्व दृश्य होता है। पिता का मुरग़े की भाँति अपने कोबड़े प्रेम और आकुलता से इधर उधर लिए फिरना भी बड़ा ही मनोहर और चित्ताकर्षक तमाशा है।

वियायती शफरी (Carps) भी इस प्रकार के जीव हैं। इनमें मादा अपने पति से बड़ी होती है और अपने लड़कों को अपने शरीर में पाल पोष कर बाहर निकालती है। यदि यह बच्चे इस अवस्था में न निकलें तो माता पिता शीघ्र ही उन्हें भक्षण कर लेते हैं। पर इस प्रकार की समस्त मछलियों में मैक्रोपाडस Macrop ds तथा दीर्घपाद मत्स्य ही विशेष उल्लेख योग्य है। इनकी अनुपम

बुद्धि के उदाहरण इनके बनाये हुए फेन आवास (Foam-ne ts) हैं। जिस चातुर्य से यह घर बनाये जाते हैं वह अवश्य ही सराहनीय है। इन्हें देख कर इस मत्स्य के कार्य-कौशल और बुद्धि-मत्ता का पता लगता है। पति पत्नी का प्रेमोत्पादक मनोहर नृत्य देख कर इन जीवों के प्रगाढ़ प्रेम का थोड़ा सा अनुमान हो सकता है। यह नृत्य देख कर बहुत से अनुभवी वैज्ञानिकों ने यहाँ तक कहा है कि "यदि सृष्टि का सर्व्वोत्कृष्ट जीव मनुष्य अपनी प्रिया की प्रसन्नता के लिए, तथा आमोद प्रमोद के वास्ते नृत्य कला को इतना प्रिय समझता है तो वह अपनी उच्च पदवी के योग्य नहीं कहा जा सकता क्यों कि इतना तो छोटे छोटे जीव भी नित्य प्रति किया करते हैं।" इनमें पिता मत्स्य का आत्मत्याग भी अनुकरणीय है। जब पिता घोंसला बनाने में निमग्न होता है तो माता उससे छिप कर अन्डों को चुरा कर खा जाने की ताक में लगी रहती है। पर उसकी यह दुराभिलाषा ज्ञात होते ही पिता मत्स्य उसे काट काट कर उसकी खूब ख़बर लेता है।

हमारे इस चित्र में लड़ाकू मत्स्य बड़ी वीरता व धीरता से अपने फेन गृह की रक्षा कर रहा है। जिस समय बच्चे अन्डों में से निकलते हैं, यह मत्स्य बहुत भयानक हो जाता है। यदि उस समय कोई और अन्य मत्स्य घोंसलेके पास से भी निकले तो यह उसे बिना संहार किये नहीं छोड़ता। इस समय तो यदि किसी मनुष्य का भी हाथ या पैर पानी में हो तो यह मत्स्य उस पर बड़ी निर्दयता से टूट पड़ता है।

विकास सिद्धान्त के अनुसार मत्स्यों के अनन्तर सर्पों या रेंगने वाले जीवों (Repitiles) का नम्बर है। इन जीवों में बहुधा अपत्यस्नेह कम ही देखा गया है क्यों कि इनके बच्चे पैदा भी नहीं हो पाते कि यह स्वयंम ही अपने अन्डों को भक्षण करने लग जाते हैं। यद्यपि यह प्रकृति सभी रेंगने वाले जीवों की नहीं है, तो भी उनमें मत्स्यों के से चरित्र वाले विरले ही मिलते हैं।

पक्षियों में इस प्रेम की न्यूनाधिक्य के कड़े बड़े विचित्र और जाज्वल्यमान प्रमाण मौजूद हैं। एक ओर तो मोहान्ध चील गरुड़ आदि को देखिये जो अपने बच्चों पर प्राण तक न्योछावर करने को तैयार रहते हैं, और दूसरी ओर कबूतर मुर्ग़ आदि को देखिये। जहाँ एक ओर पिता की ओर से अगाध प्रेम का परिचय मिलता है वहाँ दूसरी ओर रङ्ग बिरंगे सुन्दर परों से भूषित पिता सिवा संयोग के समय के प्रेम सूचक मृदु मनोहर राग और अनुराग पूर्ण नृत्य के कुछ नहीं जानता और माता को ही अपने बालकों के पालन और पोषण का सारा काम सम्भालना पड़ता है।

इनके पश्चात् खुर वाले जीवों की गणना है। क्योंकि इन जीवों में एक-स्त्री-व्रत-गुण बहुत कम पाया जाता है और प्रायः पति-पत्नी सम्बन्ध एक प्रकार की संभोग-पीड़ा ही है, इस लिए इनमें माता अपने बालक पर बड़ा स्नेह प्रगट करती है, पर पिता में यह स्नेह लेश मात्र भी नहीं होता। इस प्रकार के जीवों का उदाहरण गधे, घोड़े, गाय आदि में मिलता है।

अब स्तनपायी जीवों की ओर ध्यान दीजिये। इनकी तो धज ही निराली है। बन्दरों में बहु-पत्नी-व्रत प्रथा के प्रभाव से बानरी अपने बच्चे पर जैसा प्रेम दिखाती है वह प्रसिद्ध है ही, पर बनमानुषों में इसके प्रतिकूल उदाहरण देखने को मिलते हैं। इनमें पिता को अपने सन्तान के प्रति प्रगाढ़ प्रेम होता है। वह कदापि उसे संकट में नहीं देख सकता। अब रहा मनुष्य इसके विषय में यहाँ पर कुछ कहना व्यर्थ मालूम होता है।

हमारे विचार में हमारे सुधी-पाठकों को हमारे उपरोक्त कथन के सत्यासत्य निर्णय करने में अब कुछ सुविधा होगी।

यदि हम यह मानलें कि स्पर्द्धा होने पर प्रायः दोनों ही पक्ष एक दूसरे से बढ़ जाने का उद्योग किया करते हैं (और यह सत्य भी है) तो मनुष्य मात्र को अवश्य ही इन महा क्षुद्र जीवों से अपनी उच्च स्थित के अनुकूल अपना जीवन बनाने का उद्योग करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि क्या सब जीव धारियों से अपने को श्रेष्ट मानने वाले मनुष्य के लिये यह लज्जा का विषय न होगा कि वह पैत्रिक-स्नेह सोपान में सब से नीचे पाद पर रहे। क्या वैज्ञानिक शिक्षा यहाँ किसी प्रकार धार्मिक शिक्षा से कम उपदेश पूर्ण है?

(विज्ञान से उद्धृत) —शालिग्राम वर्मा.

पहेलियां

१—छोटी नारि पुरुष है भारी।
नित उठि जात नारि है मारी॥
मारि मारि पूरुष बहियावे।
फिरि फिरि नारि दौरि घर आवै॥

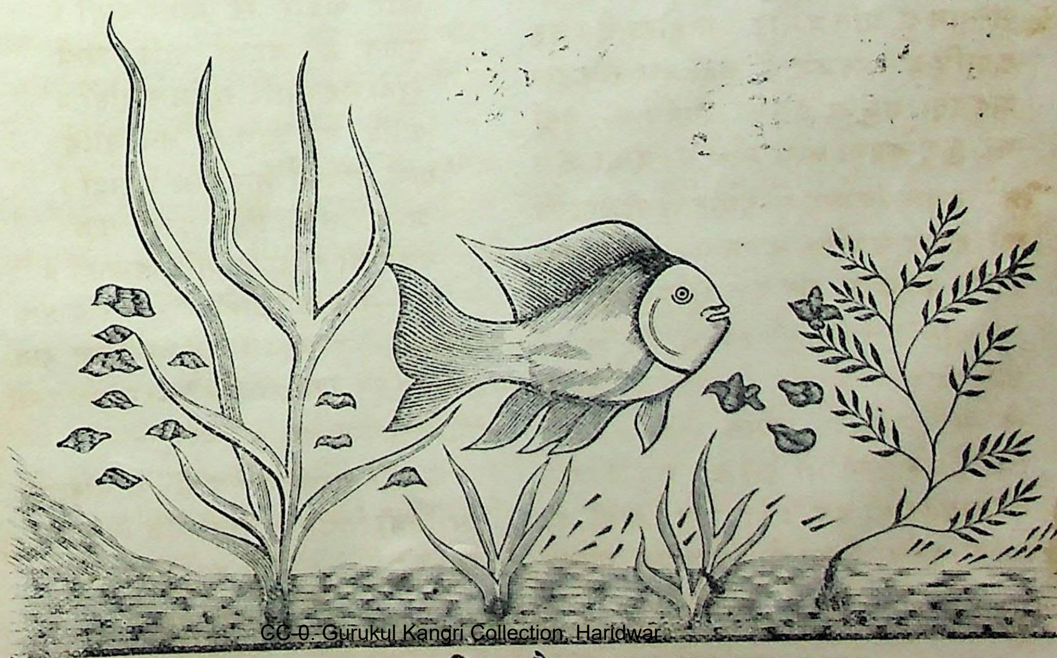
२—एक है वस्तु पै अक्षर तीन हैं
चार अकार से बाहर नाहीं।
पूजत हैं बहुधा तेहि आर्य
सुनो नर नारि सुप्रेम सदाहीं॥
आदि तजे खग के तन माहिं
बसै जेहिसों नभ पन्थ उड़ाहीं।
मध्य तजै फिर अन्त तजै
तब रोगी शरीरहि माहिं लखाहीं॥

नोट—जिन ग्राहिकाओं का उत्तर ठीक ठीक सब से प्रथम आवेगा उन्हें हम अपनी एक हस्त लिखित पुस्तक प्रेमोपहार में भेजेंगे। या एक डब्बी "सञ्जीवनी वटी" मुफ्त भेंट करेंगे—

—बी० चरण 'ललन' पं० श्रीवास्तव्य
सावित्री विद्यालय रानी गंज (बंगाल)
(ई० आई० आर०)

अ

पीप मेंढक। अ—यही छिद्र हैं जिनमें अंडों का पालन होता है।

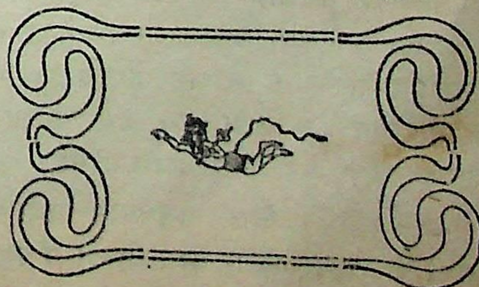




श्री कृष्णाष्टमी

धन्य है दिन आज का
शुभ-कृष्ण-भादव-अष्टमी ।
आज ही मा देवकी तो,
कृष्ण बालक थी जनी ॥
रोहिणी नक्षत्र रजनी मध्य
अति अभिराम मैं।
आज ही ब्रजचन्द्र प्रगटे
श्री यशोदा-धाम मैं
नाश करने को उन्हैं,
जो दुखद आठो याम थे।
आज ही भारत महीं मैं
आ पधारे श्याम थे ॥
उमड़ आये घन चहूँ दिश
श्यामता थी छागई ।
मानो प्रकृति देवी स्वयं
स्वागत मनाने आगई ॥
अवतार लेकर कृष्ण ने
उद्धार भारत का किया ।
न्याय-रक्षा-हेतु जो
भारत महा रचवा दिया ॥
न्याय-कर्त्ता ईश है वह
पक्षपाती न्याय का ।
अन्यायियों को मारता
द्रोही सदा अन्याय का ॥
महाभारत-युद्ध मैं
दिखला दिया है कृष्ण ने ।
"डिगना न चहिए सत्य से"
सर्वस्व बिगड़े या बने ॥
उपदेश जो श्री कृष्ण का
यह सर्वथा ही ग्राह्य है ।
भारत प्रजाओं के लिए
सब भाव से निर्वाह्य है ॥
उपदेश जो श्री कृष्ण ने हैं
ग्रन्थ 'गीता' मैं दिए ।
हैं पाठ्य वे बालक-युवा-
वृद्धादि सब ही के लिए ॥
श्री कृष्ण यश है छा रहा
सर्वत्र भारत वर्ष मैं ।
'कृष्णाष्टमी' 'जन्माष्टमी'
हैं कह रहे सब हर्ष मैं ॥

—अमरनाथ पाण्डेय



समालोचना

विज्ञान—[प्रयाग की विज्ञान परिषद् का मुखपत्र, डबलक्राउन अठपेजी, साइज़ पृष्ठ संख्या ४८, वार्षिक मूल्य ३) रु०, मैनेजर, विज्ञान-कार्य्यालय प्रयाग से प्राप्य]

कुछ उत्साही, विद्या-व्यसनी तथा देश हितैषी सज्जनोँ के उद्योग से यहाँ प्रयाग मेँ विज्ञान-परिषद् नाम की एक संस्था कायम् हुई है। देशी भाषाओँ के द्वारा विज्ञान का सर्वसाधारण मेँ प्रचार करना ही इस परिषद् का एक मात्र उद्देश्य है। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए मुख्य तीन उपाय काम मेँ लाये गये हैँ।

प्रथम विज्ञान-विषयक पुस्तकोँ को प्रकाशित करना और उनके द्वारा विज्ञान का प्रचार करना, दूसरे मनोरञ्जक व्याख्यानोँ द्वारा जनता मेँ विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान उत्पन्न करना और तीसरे विज्ञान सम्बन्धी मासिक पत्र प्रकाशित करके देश मेँ विज्ञान की चरचा फैलाना। पहले दो उपायोँ का तो यह परिषत् आरम्भ ही से अवलम्बन कर रही थी पर अब पाँच महीने से "विज्ञान" नामक हिन्दी भाषा का मासिक पत्र निकाल कर इसने अपनी उद्देश्य-सिद्धि के तीसरे उपाय का भी अवलम्बन कर लिया है। हमेँ आशा है इस से देश को अच्छा लाभ होगा।

"विज्ञान" जैसे उपयोगी पत्र की बड़ी ही आवश्यकता थी। हिन्दी मेँ क्या, जहाँ तक हम जानते हैँ भारत वर्ष की और किसी भाषा मेँ भी इस ढँग का कोई पत्र अभी तक नहीँ निकलता है। इस लिए विद्या-प्रेमियोँ को उचित है कि इस पत्र के ग्राहक बन और अपने मित्रोँ को भी इसका ग्राहक बनावेँ जिससे विज्ञान दिन दिन उन्नति करता हुआ सब को विज्ञानवान् बना देवे।

अब तक विज्ञान की पाँच संख्याएँ निकल चुकी हैँ। सब एक एक से अच्छी हैँ। भाषा तथा विज्ञान सम्बन्धी विषयोँ के समझाने की शैली बहुत अच्छी है। जहाँ जहाँ विषयोँ के समझाने मेँ चित्र की आवश्यकता पड़ी वहाँ वहाँ चित्र भी प्रचुरता से दिये गये हैँ। यह पत्र होनहार है। इसके सम्पादक भी हिन्दी के पुराने नामी लेखकोँ मेँ से हैँ। लेखक भी सब सुयोग्य हैँ। इस लिए इस पत्र की विशेष प्रशंसा करना वृथा है। हमारी आन्तरिक इच्छा यही है कि यह पत्र दिन दिन उन्नति करता हुआ भारतवर्ष मेँ विज्ञान का प्रचार करे।

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।

पं० वर्ष]
आश्विन, सम्वत् १९७२
[सप्तम दशांक



वार्षिक मूल्य २॥]
सम्पादक—
[प्रति संख्या ≈)॥

पण्डित सुदर्शनाचार्य [illegible] श्रीमती गोपालदेवी ।

विषय-सूची — पृष्ठ

गृहलक्ष्मी के नियम ।

[१] गृहलक्ष्मी प्रति मास के आरम्भ में प्रकाशित होती है। [२] डाक-व्यय सहित इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) मात्र है। [३] नमूने की कापी मँगाने वालों को चाहिए कि ≈)॥ का टिकट भेज कर हम से नमूना मँगा लें। यदि वे ग्राहक हो जायँगे तो उन्हें शेष अङ्कों के लिए केवल १।=) देना पड़ेगा। [४] ग्राहकों को चाहिए अपना पता पूरा और साफ लिखें जिससे उनके पास पत्रिका पहुंचने में गड़ बड़ी न पड़े। [५] वर्त्तमान समय की राजनीति तथा धार्मिक झगड़ों से सम्बन्ध रखने वाले लेख इस पत्रिका में नहीं छापे जाते। [६] विज्ञापन की छपाई एक बार के लिए प्रति पंक्ति ।≈), आधे पृष्ठ के ५॥) और पूरे पृष्ठ के १०) हैं। अधिक दिनों के लिए विज्ञापन छपाना हो तो पत्र व्यवहार करके तै कर लेना चाहिए। [७] बैरङ्गपत्र नहीं लिए जायँगे। जवाबी कार्ड या आध आने का टिकट आये बिना किसी के पत्र का उत्तर नहीं दिया जायगा। [८] लेख, परिवर्त्तन के पत्र, समालोचना के लिए पुस्तकें आदि, रुपया तथा और सब तरह के गृहलक्ष्मी सम्बन्धी पत्र इस पते पर भेजने चाहिए—

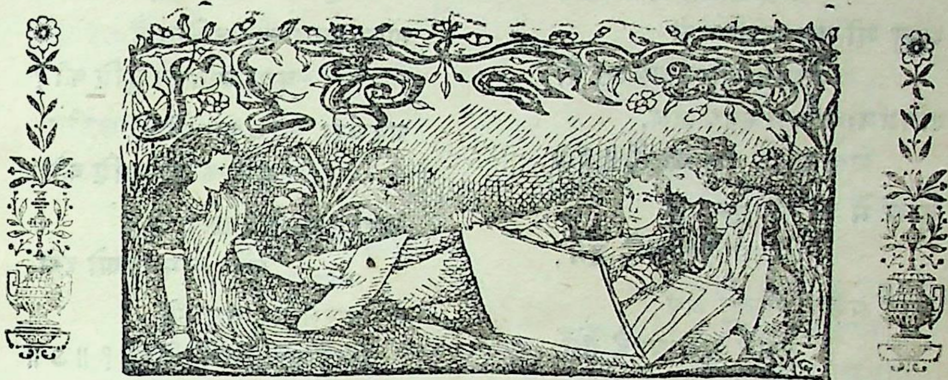
श्रीमती गोपालदेवी
'गृहलक्ष्मी'-कार्यालय, इलाहाबाद



श्रीमती विन्दुवासिनी देवी

(देखो पृष्ठ ३७५)

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग ।



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः

"सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, आश्विन, संवत् १९७२ [सप्तम दर्शन

विजयदशमी

जानकी जीवन ! विजय-
दशमी तुम्हारी आज है,
दीख पड़ता देश में कुछ
दूसरा ही साज है ।
राघवेन्द्र ! हमें तुम्हारा
आज भी कुछ ज्ञान है,
क्या तुम्हें भी अब कभी
आता हमारा ध्यान है ? ॥ १ ॥

वह शुभस्मृति आज भी
मन को बनाती है हरा,
देव ! तुम को आज भी
भूली नहीं है यह धरा ।
स्वच्छ जल रखती तथा
उत्पन्न करता अन्न है,
दीन भी कुछ भेंट लेकर
दीखती सम्पन्न है ॥ २ ॥

व्योम को भी याद है प्रभुवर,
तुम्हारी वह प्रभा,

कीर्ति करने बैठती है
चन्द्र-तारों की सभा।
भानु भी नव-दीप्ति से
करता प्रताप प्रकाश है,
जगमगा उठता स्वयं जल,
थल तथा आकाश है ॥ ३ ॥

दुःख में ही हो, तुम्हारा
ध्यान आया है हमें,
जान पड़ता किन्तु अब
तुमने भुलाया है हमें,
सदय होकर भी सदा तुमने
विभो ! यह क्या किया-
कठिन बन कर निज जनों को
इस प्रकार भुला दिया ! ॥ ४ ॥

है हमारी क्या दशा,
सुध भी न ली तुमने हरे !
और देखा तक नहीं-
जन जी रहे हैं या मरे।
बन सकी हम से न कुछ भी
किन्तु तुमसे क्या बनी ?
वचन देकर ही रहे,
हो बात के ऐसे धनी ! ॥ ५ ॥

आप आने को कहा था
किन्तु तुम आये कहाँ ?
प्रश्न है जीवन-मरण का
हो चुका प्रकटित यहाँ।
क्या तुम्हारे आगमन का
समय अब भी दूर है ?
हाय ! तब तो देश का
दुर्भाग्य ही भरपूर है ॥ ६ ॥

आग लगने पर उचित है
क्या प्रतिज्ञा वृष्टि की ?
यह धरा अधिकारणी है
पूर्ण करुणा दृष्टि की।
नाथ ! इसकी ओर देखो
और तुम रक्खो इसे,
देर करने पर बताओ,
फिर बचाओगे किसे ? ॥ ७ ॥

बस तुम्हारे ही भरोसे
आज भी यह जी रही,
पाप पीड़ित ताप से
चुपचाप आँसू पी रही।
ज्ञान गौरव, मान, धन,
गुण, शील सब कुछ खोगया,
अन्त होना शेष है बस
और सब कुछ हो गया ॥ ८ ॥

यह दशा है इस तुम्हारी
कर्म्मलीलाभूमि की,
हाय ! कैसी गति हुई
इस धर्म्मशीला भूमि की !
जा घिरी सौभाग्य-सीता-
दैन्य-सागर-पार है,
राग-रावण-वध विना
सम्भव कहाँ उद्धार है ? ॥ ९ ॥

शक्ति दो भगवन् हमें
कर्तव्य का पालन करें,

मनुज होकर हम न परवश
पशु-समान जियें मरें ।
विदित विजयस्मृति तुम्हारी
यह महामंगलमयी,
जटिल जीवन-युद्धमें
करदे हमें सत्वर जयी ॥ १० ॥

—मैथलीशरण गुप्त
(प्रताप)

शक्तिपूजा और विजयदशमी

छप्पय-छन्द

(१)

पितृपक्ष के सभी दिवस
अब बीत चुके हैं ।
देवपक्ष के पर्व खुले,
जो रहे रुके हैं ॥
सुपथपंक जलकलुष
दूर हो रहे सभी हैं ।
वीरों के उर विजयवीज
बो रहे सभी हैं ॥
अब यही शक्ति सेवन समय
"सुमति" बधाई फेर दो ।
सब जागि जगाओ भारती*
विजय बाँसुरी टेर दो ॥

(२)

अरु जो भुजबल नहीं,
वीरता नहीं बढ़ाये ।
ब्रह्मचर्य्य नहिं पुष्ट किये,
मन मौज मढ़ाये ॥
तब कैसे तुम रामचन्द्र के
भक्त कहाते ।
तब कैसे तुम
शक्तिचरण-अनुरक्त कहाते ॥
अब सुनो भारती* भाइयो !
पुरुष-नामधारी "सुमति" ।
श्रीराम-शक्ति-सेवक बनो
तजि कादरता कुटिल मति ॥

(३)

श्रीदुर्गा भगवती
शक्ति आराधन कीजै ।
सबै भाँति ही बल पौरुष
विद्या यश लीजै ॥
भारत वीरो विजयकरी-
विजया-रस पीजै ।
खलदल होवैं दलित,
शत्रु की सम्पति छीजै ॥
अब दीजै ध्यान जरा इधर,
आलस दूर भगाइये ।
सब-शक्ति-दायिनी शक्ति को
"सुमति" सुजान जगाइये ॥

(४)

गये कहाँ वह योग याग
जप तप आराधन ।

---

* भारती = भगवती सरस्वती और भारतवासी ।

गये कहाँ वह शक्तिलाभ के
समुचित साधन ॥
अहो हुई क्या शस्यभरी
वसुधा सुखदायिनि ।
अहो हुई क्या धनसमृद्धि
विद्या मनभायिनि ॥
निष्कपटभाव वह क्या हुआ,
सबल-हीनबल-वृन्द में ।
यह सारग्राहिता क्या हुई
भारत-सुमति-मलिन्द में ॥

(५)

जो जो अवनति आँखों से
तुम देखि रहे हो ।
जो जो अपनी कमी
यहाँ अवरेख रहे हो ॥
जो जो दुःसह दुःख
तुम्हें अनुभव होते हैं ।
जो जो दुःसह यहाँ
"सुमति" आहव होते हैं ॥
सो सभी तुम्हारा दोष है,
कर लो शक्ति-उपासना ।
"जै दुर्गे" बोलो खोल दिल,
पूजै मन की बासना ॥

(६)

महिषमर्दिनी चण्डमुण्ड की
खण्डन-कारिणि ।
रक्तबीज की मथनि
सुमति मति मण्डनकारिणि ॥
कैटभ-शुम्भ-निशुम्भ-सँहारिणि
शिव की जाया ।
विन्ध्यवासिनी आदि भवानी
हर की माया ॥
हे मातु शक्ति ! सुनिये विनय,
विजय-शक्ति अब दीजिये ।
रिपुजर्मन का मन मलिन कर
विमल बड़ाई लीजिये ॥

(७)

सुखद सुहावन शरद-समय
सोहत सब भाँती ।
सुभग चन्द्र-चन्द्रिका-
चमक-युत राजत राती ॥
कास कुमुद कलहंसमाल की
सुललित शोभा ।
हरित भरित नव लता
तरुन तरुगन वन लोभा ॥
श्रीराम-शमी- अपराजिता-
पूजन-योग यही समय ।
बोलो श्रीराजाराम की,
देवि शक्ति की जयति जय ॥

(८)

क्वार अँजोरी तिथि दशमी
जो विजयविधायिनि ।
शरद शारदी "सुमति"
शक्ति की अति मनभायिनि ॥
याही तिथि रघुबीर
बारिनिधिपहँ आये थे ।

शंकरशक्ति अगाधि शक्ति
अतुलित पाये थे॥
सो जीति लंकपति रावणहिं
विजय बड़ाई थे लहे।
अब शक्ति सेवते क्यों नहीं
मूरख जन जड़ता गहे॥

(९)

देवि दश-हरा यह
अवश्य दुर्दशा हरेगी।
शक्ति अवसि यह गई
शक्ति हंसि फेरि भरैगी॥
अविचल आराधना अगर
इसकी की जावै।
सुमति भारतीपूत अवसि
जय-कीरति पावै॥
श्रीदुर्गा दुर्गतिहारिणी
शरणसुखद जगदम्ब है।
निज आरत भारत जनन की,
आदिशक्ति अवलम्ब है॥

(१०)

जग में जितने देव दनुज
मानुष तनुधारी।
जग में जितने पशुपक्षी
जल-थल-वनचारी॥
जमीदार धनसेठ राव
राजा हैं जितने।
शिक्षक, हाकिम हुकुम,
बाप आजा हैं जितने॥
कुछ कर सकते कोई नहीं,
बिना शक्ति के एक छुन।
है शक्ति सकलभवभयहरन
सुमति स्वजन अशरण-शरण॥

(११)

श्रीब्रह्मा की सरस्वती,
हर की कमला है।
शंकर की त्यों उमा,,
अर्ध-अंगिनि अमला हैं॥
सियाराम की,
कृष्णचन्द्र की राधा रानी।
शालग्राम की तुलसि,
इन्द्र की त्यों इन्द्रानी॥
है शक्ति सभी के साथ इक
लगी हुई सहकारिणी।
बिन उसके कुछ होता नहीं,
वह समतिज गतारिणी॥

(१२)

देवि शक्ति ही देवन में
दिव्यता दिखाती।
देवि शक्ति ही सकल-
कर्म-कारण कहलाती॥
देवि शक्ति ही नर नारिन
शोभा सरसावै।
देवि शक्ति ही सब-सुख-
दायिनि हिय हरसावै॥
सब ठौर सभी में शक्ति ही
प्रकृतिमयी छबि छाजती।

सब ही विभूतिमय वस्तु में
सुमति शक्ति ही भ्राजती ॥

(१३)

जगत पिता जगदीश
दयामय जगत्राता हैं।
श्री हरमाया आदि शक्ति
यों जगमाता हैं ॥
पिता पुत्र की टेर
देर करके सुनता है।
माता सुनती तुरत
न गुनती अवगुनता है ॥
सब भारत पूत सपूत
हे "सुमति" शक्ति सेवक सुजन।
तन मन से धन से सब घड़ी
रहो शक्ति ही के शरण ॥

(१४)

शूल गदा असि चक्र
चाप शर निज कर धारे।
सिंह-वाहिनी देवि
शक्ति दुष्टन संहारे ॥
बिकट-बाहु-बल-ललित-
लोल-लोचन-बिकराली।
खड्ग-खेट-* करबीर
कन्यका-गन सों लाली ॥
यह जता रही तुम को सदा—
अबला भी बल जो करै।
तो शत्रु सिंह को सर करै,
जो जो चाहै सो करै ॥

* खेट = ढाल

(१५)

बल करने का समय
भले ही आन पड़ा है।
प्रबल भारती-जबर-जर्मनी-
जंग जुड़ा है ॥
देवि शक्ति के भक्त सबै
अब शक्ति मनाओ।
शमी-देवि श्रीराम मूर्ति
पै भक्ति जनाओ ॥
जै जै हो पञ्चम जार्ज की—
यों हरि से अस्तुति करो।
निज पौरुष भर पौरुष करो
बृटिश बदन पर द्युति भरो ॥

—शिवप्रसाद पाण्डेय (सुमति)
(पाटलिपुत्र)

पति-प्राणा का भाव

[ग़ज़ल]

यहाँ तुम हो, वहाँ तुम हो,
बताऊँ क्या कहाँ तुम हो ?
तुम्हीं तुम बस रहे दिल में,
जहाँ देखूँ तहाँ तुम हो ॥ १ ॥
स्वर्ग भी बिन तुम्हारे कुछ
नरक से कम नहीं मुझको।
हमारे तो लिये सुरपुर
वहीं प्यारे जहाँ तुम हो ॥ २ ॥
कोई कहता है मंदिर में,
कोई मस्जिद बतलाता

ज ढूँढा ईश को नेमैँ
तो बस पाया जहाँ तुम हो ॥ ३॥
रहूँ सेवार्थ छाया सी
तुम्हारे साथ मैँ स्वामिन् !
प्रभो ! इस लोक मैँ उस,
लोक मैँ चाहे जहाँ तुम हो ॥ ४ ॥
—मिश्रीलाल कृष्णलाल माथर

मातृ--वन्दना

(१)

मा ! तेरी माधुरी छटा को,
देख हृदय हरषाता है।
तब शुभ दर्शन से बसुन्धरे !
सारा ताप नशाता है ॥
अचल भक्ति, श्रद्धायुत महिमा,
जो नर तेरी गाता है।
अनुपम, शुद्ध, अखण्ड, अनस्थिर,
यश-श्री वह नर पाता है ॥

(२)

पावस ऋतु मैँ श्याम जलद,
फिरफिर कर जल बरसाता है।
क्षण क्षण पर दामिनि दमकै,
क्या गर्जन दृश्य दिखाता है ॥
नाच मुदित हो मयूर बन मैँ,
प्यारा शब्द सुनाता है।
तेरे गुण-गण गान मात ! कर,
पपिहा शोर मचाता है ॥

(३)

गिरि कन्दर को देख प्रकृति की,
सुछवि अनूप सुहानी है।
सर, सरिता सागर का शीतल,
स्वच्छ स्वाद मय पानी है ॥
शीतल, मन्द, सुगंध, त्रिविधि विध,
बहै वायु सुखदानी है।
स्वर्ग तुही है, भारत जननी !
यह निश्चय कर जानी है ॥

(४)

सुरत्न-गर्भा मात ! विश्व मैँ
सबने तुही बखानी है।
कौन देश तुलना कर सकता ?
मिथ्या सभी कहानी है ॥
खल-दल-उदर विदारन हित माँ !
असिधरिणी भवानी है।
मुक्त कण्ठ से जय बोलैँ
जय महा-माया महारानी है ॥
—प्यारेलाल वृष्णिः
(प्रताप)

धन्य सतो विद्यावती !



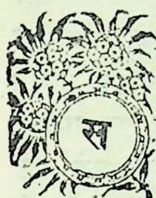
रतधर्म महामण्डल के महोपदेशक पं० गोकुलचन्द्र जी नानकचन्द्र हाईस्कूल के धर्मशिक्षक हैँ। उनकी पु ी श्रीमती विद्यावती देवी जिला बुलन्दशहर के करबा स्याना

में ब्याही थी। उसके पति प्रायः एक वर्ष से रुग्ण थे। संवत् १९७२ श्रावण शुक्ला २ गुरुवार को परलोक प्रस्थान कर गये। उनकी अवस्था लगभग २३ वर्ष थी। इसी अनुसार विद्यावती की अवस्था लगभग २१ वर्ष की थी। विद्यावती ने ३ मास पूर्व से ही पिता जी के उपदेशानुसार गौरीपूजन प्रारम्भ कर दिया था और ३ दिन पूर्व से जब से कि पति की हालत खराब हो गयी थी पतिदेव के अनुगमन का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। लौकिक पर्दा भी त्याग दिया था। सास श्वसुर आदि को माता जी, पिता जी आदि शब्द से सम्बोधन करने लगी थी। जिस समय पतिदेव की मृत्यु हुई, उस समय पतिव्रता निद्रादेवी के अथवा ईश्वरीय माया के आक्रमण से अचेत हो गयी थी। जिस समय घरवालों के रोदन को सुन आँख खुली, तो मुख से यही शब्द निकले कि "पति के साथ ही जाऊँगी।" अन्य साधारण स्त्रियों की भाँति पतिव्रता ने आँसू नहीं गिराये, सौभाग्यचिह्न नहीं उतारे और कहा कि मैं गोदान करूंगी। मुझे गङ्गाजल का आचमन कराओ। यह देखकर घरवाले आश्चर्य में थे। श्वसुर ने कहा, "पुत्रि! यह दान का समय नहीं है इस समय दान कोई लेगा भी नहीं।" पतिव्रता ने हठात् कहा, तब मानसिक सङ्कल्प किया गया। पतिदेव रथी पर रख दिये गये। सती ने कहा, "मुझे भी इसी रथी में बाँध कर ले चलो।" उस समय सब स्त्री पुरुषों ने उस के सवा वर्ष के पुत्र को आगे करके बहुत समझाया, परन्तु उसने न माना और निर्मोह बुद्धि से कह दिया कि "यह तुम्हारा है।" उस समय पतिव्रता के उक्त कथन को प्रलाप मात्र समझ लोग पति को ही उठा ले गये। पतिव्रता ने कहा, "उसी चिता पर जलूँगी। पतिदेव के वाम भाग में रखकर जलाना। मेरे सौभाग्यचिह्न न उतारना। मुझे वहीं लेटने दो जहाँ मेरे पति का प्राणान्त हुआ है। मुझे वही वस्त्र उढ़ाओ जिसको ओढ़ कर पति ने स्वर्गगमन किया है।" यह सब कर देने के बाद पतिव्रता ने कहा, "मेरे पति की लाश को रोक दो।" यह कहते हुए ही पति के मृत्यु के ३ घण्टे बाद पतिव्रता के भी प्राण पक्षी उड़ कर पति के साथ जा मिले और पतिव्रता सती पतिदेव के साथ एक ही चिता पर वाम भाग में आरूढ़ हुई और अग्निदेव ने दम्पती को साथ ही भस्म किया। धन्य देवी! धन्य विद्यावती! तुम धन्य हो! तुम्हारा पतिप्रेम धन्य है!

इस चरित्र को देख कर भी क्या हम अपने धर्म के गौरव को नहीं समझेंगे? क्या संस्कारों का फल अद्भुत नहीं है?

(श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार)

धोखा



सब से पहिले तो मुझे यही बता देना उचित है कि 'धोखा' किसको कहते हैं। 'धोखा हुआ !' कहते तो मैं ने हजारों से सुना, आप भी रात दिन सुना ही करती होंगी, पर सम्भव है, आप में से बहुतों ने इसे न जाना हो। यह तो हो ही नहीं सकता कि कुछ पाठिकाएँ इससे परिचित भी न हों—कारण यह है कि उन्हें किसी न किसी प्रकार का धोखा अवश्य ही हुआ होगा। लीजिए, मैं ने तो अब अपनी मति बदल दी। अब तो मैं यही चाहता हूँ कि किसी ऐसी हो से इसका अर्थ कहलाऊँ कि जो धोखे के जाल का किसी समय शिकार बन चुकी हो। बच तो वह अवश्य ही गई होगी, यदि बची न होती तो आज दिन उसमें अर्थ कथन की सामर्थ कहाँ से आती? वह तो जल भुन कर राख या सड़ गल कर खाक हो गई होती—रहा यह कि वह बची कैसे? सो सिवा बुद्धि विद्या और ईश्वरीय सहायता के और किसे कहें? उसकी सारी राम कहानी कह सुनाते हैं। जरा धैर्य से सुनिये, फिर तो आप खुद ही जान सकेंगी कि वह क्योंकर धोखे के भयंकर चंगुलों में पड़ कर भी साफ बेदाग निकल गई। कहानी तो सच्ची है। उसके सच्च होने में तो आप लेश मात्र भी सन्देह न करें। हाँ! इतना कह देना मैं अपना धर्म समझता हूँ कि चाहे आप 'धोखा' से परिचित हों या न हों, पर कृपया आप इसे ध्यान पूर्वक पढ़िए। ऐसे लेखों को यदि पढ़ें तो उन्हें 'धोखा' के निकट जाने का ही संयोग क्यों पड़े।

कोई १५ वर्ष का जमाना हुआ कि शहर बरेली में एक बड़े भारी महाजन रहते थे। यह राय बरेली न मान लीजिएगा! नहीं तो धोखा यहीं से शुरू हो जायगा। बरेली और रायबरेली में बहुत कुछ अन्तर है। बरेली को केवल भ्रम ही मिटाने के लिए लोग बाँसबरेली भी कहते हैं। बरेली मुरादाबाद के समीप रुहेलखण्ड का मुख्य नगर है। यहाँ की मेज़ कुर्सियाँ इत्यादि बहुत ही उत्तम होती हैं। रायबरेली तो लखनऊ कमिश्नरी में है। जो कुछ सुने या देखे, उसकी भली प्रकार देख रेख कर लेनी ही उचित है। नहीं तो और को कुछ और ही समझने में बहुत बड़ा धोखा हो जाता है। अच्छा तो अब कहानी सुनिए। उस महाजन के एक अति सुन्दर, बुद्धिमान और पढ़ी लिखी कन्या थी। महाजन का नाम इस लिए मैं नहीं बताता हूँ कि इसमें एक भेद है। आप तो शायद यह समझी होंगी कि मुझे याद नहीं, दूसरा बनावटी नाम बताने में भी भय है कि कहीं उसी नाम के कोई और सेठ जी निकल आये तो

फिर तो बिना मामला चलाये काहे को रहेंगे।

विज्ञ पाठिका! आप समझ तो गईं, बात तो तह की यही है। मैं खुद डरता हूँ कि अगर आप से असली नाम ही बता दूँ, तो कन्या की बुद्धि की सराहना तो अलग रही, आप ही उसके माता पिता आदि पर आक्षेप लगा कर बिरादरी से अलग कर देंगी। हाय भारत! आज दिन तेरी ऐसी दशा हो गई है कि कोई यदि गाली दे जावे तो इस भय से नालिश नहीं दायर करते कि लोग जान जायँगे। कोई किसी की इज्जत खराब करने का यत्न करे तो उसको तो पेट ही में डाले रहेंगे। स्त्री बहुत दिनों तक पति के सामने भी घूँघट न खोलेगी, कोई बदमाश पति को मार कर खुद पति बन जाये तो इन्हें जल्दी पता भी न चले। घर में रह कर पर्दा जरूर करें, मेला ठेला, थियेटर जाने में एक पैर आगे ही बढ़े। कोई किसी की बहू बेटी को 'धोखा' के फंदे में फाँस कर उड़ा ले जाय तो घर वाले भी खबर पाते ही मशहूर करेंगे कि वह तो मर गई। छिपने को तो बात छिपी रहती ही नहीं, बदनामी भी दुर्गन्धि की भाँति अवश्य फैलेगी, पर खल को दंड दिलाने की चेष्टा न करेंगे। अरे! भारत! मिटने को तो तू अब तक कभी मिट गया होता, क्यों नहीं मिटा? सो तो यह बात है कि ईश्वर की कृपा तुझ पर विशेष है। तेरे ही रक्षा के निमित्त अँग्रेजी राज्य को संरक्षक बना दिया। अब तो केवल वही मामला अदालत तक पहुँचे, जिसकी दुर्गन्ध पुलिस की नाक तक पहुँच जाय। तेरे यहाँ का क्या कहना है? अत्याचार के काँटों से तो गली कूचे तक पटे पड़े हैं। भेदों का क्या चलाया? स्त्रियाँ भी उलटे पहाड़े पढ़ती हैं। ऊपर से तो सत्य का भभूत रमावेंगी, लोक लाज का इतना डर कि भोजन अपना ही बनाया खाँयगी, पाखण्ड इतना कि लकड़ी धोकर जलावेंगी, धर्म का वह ठसका कि कर्ज लेकर तीर्थ करेंगी, बेवा होने पर ब्याह करने को कोई कहे तो झाड़ू और गालियों से न संतुष्ट होंगी—मगर वही अन्त में ऐसा गुप चुप परिचय बढ़ायेंगी कि खून भी हजम करने का अभ्यास आरम्भ कर देंगी। हाय! यह सब अत्याचार देख कर भला कौन ऐसा होगा, जिसका कलेजा न काँपने लगे? कौन ऐसा हृदय होगा जो पिघल कर शोक में दो बूंद आँसू न बहावे? कौन ऐसा होगा कि इस संतान संहार की खबर पाकर "घोर अनर्थ! घोर अनर्थ!" कह कर न चिल्ला उठे? मगर इस चिल्लाने से क्या लाभ? इसका तो नतीजा भी कुछ नहीं। यदि पूँछा जाय कि ऐसा क्यों हुआ? तो कहते हैं कि "अरे साहब धोखा हो गया! अगर ऐसा जानते होते, तो यह नौबत ही न आती!" फिर तो सिर पीटना ही रह

आता है। पहले तो सूझना नहीं—सूझेगा भी जब! कि अब ये क्या, इनके फरिश्ते भी कुछ न कर सकें। हम हिन्दुस्तानियों की तो ऐसी दशा है कि जैसे कोई जहाज पर सवार हो योंही बेमतलब ही निकल जावे। इनकी शारीरिक दशा ऐसी है कि यदि संयोग से इनके हाथ पर सौ पचास मक्खियाँ एक दम से आ बैठें तो हाथ भी हिलाना कठिन हो जाय, दो चार दिन तक कोई दूसरा ही खाना मुख में खिलायेगा। तब कहीं यदि दवा से काम पड़ गया और हाथ की मालिश अच्छी हुई, तो फिर हाथ कुछ काम करने लगेगा। यह तो दशा! उस पर से हमारे इन कर्मवीरों की यह ठसक कि अपने प्यादों को भी साथ नहीं लेंगे। सोचते यह हैं कि वह रहेगा तो जहाज पर खाने पीने की तकलीफ होगी। वह रहेगा तो जहाज पर भोजन भी न बना सकेंगे। यदि उसके रहते भोजन बना कर खा लिया तो लोग बुरा कहेंगे। प्रिय पाठिका! अब आप ज़रा इन्हें बिदा कीजिए। अब इन्हें ढकोसलों की सीटी दे और आडम्बर का पाल फैला ज़रा समुद्र यात्रा के लिए आगे बढ़ने दीजिए। खैर किसी प्रकार चल तो रहे हैं। लीजिए, अब तो चले। ईश्वर इन्हें अच्छी तरह फिर घर का मुँह दिखावे। वह देखिये, अभी बेचारा बहुत दूर भी नहीं गया है, कि चोरों ने अभी से इनकी जेब भाँप ली, अब तो कुछ गड़बड़ ही दीखती है। लो, एक हलका जहाज़ और खुला। इसमें कुछ लोग बैठे हैं और सब की निगाह उसी हिन्दू हीं की जहाज पर है। जहाज भी उसी दिशा जा रहा है। क्या ये उससे मिलना चाहते हैं? हाँ, ऐसा ही निश्चित होता है। तब तो ये मित्र होंगे, जो कुछ जरूरी खबर पहुँचावेंगे, या समुद्री डाँकू होंगे जो उसे लूटना चाहते हैं। खैर, कुछ काल में तो अपने आप ही पता चल जायगा। लो, अब तो दोनों जहाज बहुत दूर चले गये, केवल मस्तूल ही दीखता है। अभी दोनों जहाज इकट्ठा नहीं हुए, पर करीब है कि पीछे वाला जहाज अगले को पकड़ ले। अब तो दोनों मस्तूल एक ही मालूम होते हैं। अब तो निस्सन्देह ही इसने उसको घर लिया। निगाह से तो पीछा करने वाले डाकू ही मालूम होते थे। दूसरे वह हिन्दू और वह तुर्क! भला इन लोगों में मैत्री ही कैसे हो सकती है? मामला तो संगीन दीखता है। हे ईश्वर बचाइयो। यदि इस हिन्दू का प्राण ही बच जाय, तो भी बहुत है।"

प्रिय पाठिका! ज़रा देर मेरे कहने से आप यहीं और रहें। थोड़ी देर में तो शायद कुछ भेद खुले। ज़रा उधर देखिए! अब तो एक ही मस्तूल दीखता है। अरे! दूसरा क्या हुआ? क्या अब वहाँ दूसरा जहाज़ नहीं है? अब तो दाल में काला ही मालूम होता है। सम्भव है कि डाकू

ही रहे हों। लूट पाट कर भाग खड़े हुए हों। अब तो मस्तूल और अधिक दिखाई दे रहा है। लो जहाज़ तो इधर ही आ रहा है। यह क्या? उसमें तो पाल भी नहीं है। क्या डाकुओं ने पाल तक भी नहीं छोड़ा? अच्छा! क़रीब आने दीजिए। फिर तो कुल पता साफ़ साफ़ चल जायगा। अब तो और निकट आ गया। बस! बस! यह तो उसी हिन्दू ही का जहाज़ है।

अब तो इसे किनारे लग जाने दीजिए। अभी इनसे कुछ मत पूछिए। मुँह तो इनका फूला हुआ है। पीठ पर कुछ जूतों के चिन्ह भी अँकित हैं। मुख में इनके थूका हो! सो भी कुछ आश्चर्य नहीं। इसके नेत्रों में जल भी जारी है। अब इनसे मैं पूछता हूँ कि इन पर क्या बीती? इनसे और लुटेरों से कैसा सौदा पटा? इनकी इज़्ज़त किस भाव बिकी? इन्हों ने बट्टे में क्या क्या पल्ले से दिया? अरे! आश्चर्य कि ये कुछ बताते भी नहीं। 'धोखा! है धोखा!' चिल्लाते हैं। पुलिस में रपट लिखाने को कहता हूँ तो कहते हैं होनहार था। हो गया, अब क्या होता है? अब तो थूकना भी ठीक ही साबित होता है। हाय! आज हिन्दुओं की मति इतनी फिर गई है। हाय! यह तो अपनी बातों से भी तो क़ायल नहीं होते। जब इन्हीं का कथन है कि जो होना था सो हो गया, तो अब उसका छिपाना भी एक मात्र निरी भूल है। अब पुलिस को तो खबर कर दो कि दुष्ट भी किये का फल पावें। छिपाना तो घोर पाप है। दुष्टों को साहस हो जायगा तो सैकड़ों के गले फिर घोटेंगे। यदि तुम्हें लज्जा है तो बुद्धि से काम लो। वह कर्म ही क्यों करो जिसमें इस तरह मरम्मत भी हो और अमूल्य इज़्ज़त मोती के पानी की तरह उतर जाय। इस तरह के धोखा खाने वाले अति कठहुज्जती भी होते हैं। जब बहस करने में सब रास्ते बन्द पाते हैं, तो अंत में कहते हैं।

'होनहार हिरदय बसे, भूल जाय सब सुध।'

इन बुद्धि के कुम्भकरण जी से मैं यह कहता हूँ कि अब आप इन हर्बा नाजायज़ कहावतों को शीघ्र ही किसी नदी में फेंक दीजिये। इस ज़माना में इन्हें इस्तेमाल करने का लैसन्स आप को कोई न देगा। इन्हीं सभों ने बहुतों की इज़्ज़त का ख़ून किया है। लाखों की नाकें कट गईं, करोड़ों की दशा कुत्तों से भी बुरी है। मुझे तो इन कहावतों से घृणा है— इसी कारण मुझे अधिक याद भी नहीं। पर दो एक तो अब आप को बताये ही देता हूँ, नहीं तो सम्भव है कि आप से किसी ऐसे देश शत्रु से मुचैटा पड़ जाय और उस समय वह आपको पराजित कर दे। एक तो मैं ने ऊपर लिख दिया है। उसका पक्का फल तो दृष्टान्त से ही टपक रहा है। दृष्टान्त भी सौ दृष्टान्त का एक ही

दृष्टान्त है। उस से विधवा विवाह आदि सभी सिद्धि होते हैं। उस से यह भी सिद्ध होता है, किस तरह समुद्र यात्रा के विषय में हिन्दू विद्यार्थियों के मार्ग में बाधक होते है। खुद किस प्रकार बाहर जाकर लात जूता खाते और धर्म बचाते हैं? अब इनकी और मसलें सुनिए:—

"औषधिः जान्हवी तोयम् वैद्यो नारायणः हरी"

इसका अर्थ है कि यदि कोई बीमार हो, तो गंगा जलही पिलावो; ईश्वर तो वैद्य मौजूद ही है। दूसरे वैद्य की क्या आवश्यकता? चेचक, हैज़ा, ताऊन में इसका प्रयोग भी धड़ल्ले से होता है। इतना ज़रूर है कि ऐसे भक्तों को मौक़े ही पर कुल बातें सूझती हैं। पहिले ही से क़राबे गंगाजल से भरे नहीं रखते। सभी जगह तो गंगा जी की धारा नहीं, जो तुरत लुटिया डूबे। पर कुछ नहीं। आख़िर मजबूरी के लिए भी तो कोई दूसरा छोटा मोटा नुस्ख़ा होगा। या नहीं? नहीं! अवश्य होगा। एक तो मुझे भी याद पड़ता है।

'गर गन्दुम बद्म न रसद भुस ग़नीमत अस्त'

अर्थ इसका यह है कि अगर मौक़ा पर गेहूँ न मिल सके तो भूसा ही को बहुत मानों। फिर क्या अगर हकीम जी पथ में गेहूँ की रोटी बताते हैं, 'तो काल के समय भूसा से ही ख़र्च में ख़ासी बचत हो सकती है। फिर क्या? गंगाजल नहीं तो कूप जल ही सही। रोगी को जल देने में मुख कभी न मोड़ेंगे। प्रिय पाठिका! जहाँ जहाँ ऐसे मुस्तैद इलाज करने वाले हों, वहाँ रोग भी रह सकता है? नहीं! नहीं! रोग क्या रहेगा? मैं तो कहता हूँ कि रोगी तक की क्या मजाल, जो रह जाय। उसी रोगी के लिए क्यों कहिये? दो चार रोज़ में कुल ग्राम ही बिलकुल साफ़ हो जायगा। फिर तो बीमारी को मजबूरी दर्जा और ग्राम की राह धरनी होगी। अहा! क्या ही उत्तम इलाज है। यदि आज कुतुबुद्दीन बादशाह (जो ख़ुद मनुष्य संख्या घटाने में बड़े कर्मवीर थे) इस अटल इलाज को सुन पाते, तो आज बहुत कुछ इनाम बाँट देते। ख़ूब! यदि सर्कार आबादी बढ़ाने के के लिए डाल डाल चलती है, तो आप पात पात में ताड़ धरते हैं; यदि वह रात दिन सोच बिचार कर शहर की सफ़ाई और तन्दुरस्ती ठीक करती, तो आपकी एक मामूली मसाले की पुड़िया फ़स्ल पर दूर २ तक देहात की आनन फानन सफ़ाई कर देती है; सरकार कुनीन की पुड़िया अब बाँटती है, यह कई पुश्त पहिले प्रचलित कर चुके; सरकार ने कुल बुद्धि और विद्या बल से ताज़ीरातहिन्द बनाई, और सभी दाव पेंच ऐसे रख दिये कि कोई किसी को कुछ भला बुरा न कह सके—इस प्रकार मनुष्य संख्या रात दिन बढ़े। पर इनकी बुद्धि की कौन सराहना कर सकेगा? इन्हों ने तो कुल की काट, एक मस्ला ही गढ़ दिया।"

अरे ! इतने पागल मत हो जाव । ईश्वर को क्यों बीच में घसीटते हो ? सर्व शक्तिमान उसे कौन नहीं मानता ? पर हाँ ! आप की तरह कोई यह नहीं समझता कि वह आप के लिये आकर महानारायण तैल बनावें । यदि आप सत्य कहते हैं कि ईश्वर आकर आपकी नाड़ी पकड़ेगा और रामबाण वटिका भी खिला जावेगा, तो जरा यह बताइए कि 'महाभारत युद्ध' में श्री कृष्ण भगवान ने 'रेडक्रास वर्क' क्यों नहीं जारी किया । उसे यदि यही करना होता तो जड़ी बूटी इस मृतलोक का मुँह न देख पाती । उस ने बुद्धि दे दी है जिससे उचित औषधि खोज लो और उसका सेवन करो । यदि तुम खुद नहीं पहिचानते हो तो किसी अच्छे वैद्य से, जो सुयोग्य और विश्वास पात्र हो, पूछो ! अब जो कुछ वह कहे उसे ईश्वर के समान जान कर करो, और जो कुछ औषध बतावे, उसे गंगाजल के समान पवित्र समझ कर उसका उचित सेवन करो ।

प्रिय पाठिका ! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि आपको भी इन महाशयों से घृणा हो गई । नहीं ! अभी ही से घृणा न कीजिए । अभी तो आपने कुछ नहीं सुना । अभी वह जिसको सुन कर आपके रोंगटे खड़े हो जाँय, मैं ने नहीं सुनाया है । सब से भयंकर और कठोर मसल तो विवाह सम्बन्धी है:—

'अष्टवर्षा भवेद् गौरी'

अर्थ—इसका यह है कि ८ वर्ष तक 'गौरी' ६ वर्ष तक 'रोहिणी' और १० वर्ष तक 'कन्या' इसके बाद वह 'कन्या' ही नहीं रहती । इसके पढ़ने ही से मालूम होता है कि इस कहावत के जन्म-दाता सिर्फ़ पागल ही नहीं थे, बल्कि काने भी थे । आपने 'प्रोनोट' की मियाद की हद तो लिख दो, परन्तु दस्तावेज़ की मियाद ताज़ीरत (जन्म भर, ही रख दी । अच्छा इंसाफ़ है । लिमीटेशन ऐक्ट (क़ानून मियाद) कन्या ही के लिये हो ? बर पचपन साल में भी न खारिज किये जाँय ? बेचारी कन्या को सच मुच 'प्रोनोट' ही बना दिया (८ से १० तक कन्या उसके बाद ख़ारिज !) अब देखना चाहिए कि यह नियम किस समय के लिए रचा गया । पुराने ज़माने के लिए या आज कल्ह के लिए, मान लिया जाय कि यही समझ कर बनाया कि अंधेर जब लौं निभ जाय, तो लौं ही सही । अब देखिए कि बच्चे, जवान और ६० वर्ष वाले बुड्ढे की स्त्री वही 'कन्या' ही होगी । वह यदि बुड्ढे या जवान के साथ विवाह दी गई, तो उतना ही जो सेज और गोद में रहता है । यदि अन्तर रहेगा किसी बच्चे के साथ जोड़ दी गई तो भी दो कच्चे फलों की शादी ही क्या ? फल भी अभी इतने छोटे छोटे हैं कि वृक्ष से तोड़े नहीं जा सकते । सम्भव है कि दोनों या कम से कम एक ही 'गुठली' लाने के

पहिले ही सूख कर गिर जाँय। कहिए! अब ये बेवायें किस की जान और माल को दुआ देंगी? यह कौन कह सकता है कि संसार में ये सत्यवती देवियाँ बनी रहेंगी? मैं कहता हूँ कि ये एक न एक दिन अवश्य ही संसारिक जाल में फँस जाँयगी। फसैंगी। और अवश्य फँसेंगी। और फिर फँसैंगी। इसे बचाना बहुत कठिन है। यह तो प्रकृति देवी का एक मामूली नियम है। स्त्री, जिसकी प्रकृति लता सी होती है, किसी न किसी समीप वर्ती के सहारे पर लिपटेगी। समय पर तरुणाई पाकर गुल (पुष्प) भी अवश्य ही खिलावेगी। पुष्प देख कर फिर कौन ऐसा चतुर नर है जो यह कहे कि पुष्प से फल होना असम्भव है? यह और ही बात है कि कोई यह न समझ सके कि पुष्प से यह फल कैसे हो गया? कोई भी फल उत्पत्ति रोक नहीं सकता। यदि आप बहुत कुछ करेंगे तो इतना हो सकता है कि बतिया तोड़ दी, जिसमें फल कहने की नौबत ही न आवे। मैं तो कहता हूँ कि कोई ऐसा भी नहीं कर सकता। केवल कुल के सुयश चन्द्र में मर्य्यादा नाशी कलंक का टीका बचाने को लोग अन्धे हो कर कभी कभी कर बैठते हैं, परन्तु होता क्या है? सर का मुड़वाना और ओलों का पड़ना साथ ही साथ होगा। नतीजा क्या होता है। यदि आप जानना चाहें तो हिन्दी में इन्डियन पिनलकोड के (दफ़े ३१२—३१६, और ११५) देख डालिए कह कर सर पीटने से कुछ न होगा। अब आपका धर्म यही है कि पुराने लकीर के फ़कीरों की लम्बी चौड़ी लच्छेदार बातों की ओर कान न कीजिए। यह तो हमें पूर्ण आशा है। कि आज कल्ह के पढ़े लिखे नव युवक और खास कर वे जिनके कानों में दफ़ें ३७५ और ३७६ पिनल कोड को पड़ चुके होंगे ८ से १० वर्ष की कन्याओं के पति कभी न बनेंगे। हाँ! अब प्रार्थना आज कल की माताओं से है कि कहीं बचपन ही में अपने लड़कों का दहेज लेकर कहीं बयन कर दें। यह भी याद रहे कि यह बयनामा भी कच्चा ही है—सम्भव है कि नाबालिग़ बड़ा होने पर स्वतंत्रता जायदाद के लिए लड़ बैठे, और बयनामा भी मन्सूख़ हो जावे। सिर्फ़ इतना ही नहीं, जिसके लिए बयनामा लिखा गया है, वह भी चलने फिरने और बोलने वाली है (That, too, is a moveable and talkable property) उसमें भी निज हानि लाभ देखने की बुद्धि मौजूद है। कानून ने भी उसकी गणना सर्व साधारण जायदाद में ही नहीं की है। (The law also does not place it on an equal footing with other common properties an exception proviso being attached to it) वह भी अदालत के सामने न्याय प्रार्थी हो सकती है। अब सोचिये

कि इसमेँ झंझट कितना है। आपने तो उन दो बच्चों को, जिनके बुद्धिनेत्र तक अभी नहीँ खुले हैँ, लेकर जोड़ा लगा दिया; परन्तु यह कौन कह सकता है कि बड़े होने पर भी ये दोनोँ गला जोड़ कर रहेँगे? काटा काटी भी नहीँ करेंगे? ये कुत्ते तो हैँ नहीँ! जो आप पट्टा ज़ंजीर लगा कर बाँध रक्खेँ! ये मनुष्य हैँ! अपना अपना जोड़ा भी सरलता से खोज सकते हैँ। तब आप इसको शादी कहेँगी या घर की बरबादी? क्या घर के घूर होने मेँ सन्देह है? यदि यह अनर्थ है, तो दोषी भी पिता माता ही हैँ। यदि इसी को पाप कहते हैँ, तो भोगी भी वे ही होँगे। आप लड़के को तो माफ़ ही कर देती हैँ, किन्तु आप बेचारी कन्या को क्योँ दोषी ठहरावेँ? आज कल्ह तो 'कन्यायेँ पहाड़ पृथ्वी से भी नहीँ जन्मतीँ। फिर आप क्योँ उसे फूटी आँख देखती हैँ? क्या लड़कोँ मेँ सुरख़ाब का कोई पर है? और लड़कियोँ मेँ नहीँ? वैसे तो शायद किसी लड़के मेँ ऐसा पङ्ख नहीँ दीखता। हाँ! कोई टोपी मेँ लगा लेता हो सो नहीँ कह सकते। तो क्या आप कन्याओँ को भी मजबूर करतीँ हैँ कि ईसाई धर्म का अवलम्बन कर परदार टोपी पहिनेँ! जो फिर बुरा कहने के लिए आपकी ज़बान भी न खुले? हाय! आज दिन इन माताओँ को अपनी की हुई भी बुराई नहीँ सूझती। बुराई तो खुद करना और दोषी बच्चोँ को बताना —यह कितना घोर अनर्थ है? अरी माताओ! १२ वर्ष की उमृ तक तो सरकार भी उन्हेँ अज्ञान बताती है। उनके क़सूर को क़सूर नहीँ समझती। (दफ़ा ८३ पिनल कोड मेँ साफ़ साफ़ लिखा है) फिर आप क्योँ उन्हीँ की गर्दन हर सूरत से दाबती हैँ? दोष तो माता इस मेँ आप ही का है। आप ने अपने ही पुत्र पुत्री के जन्म भर के सुख-मंदिर की नीँव तो कुरीतियोँ के प्रबल धारा के किनारे मूर्खता बालू के ऊपर ही डाल दी। फिर सब सोचा सुख स्वप्न समान न हो तो क्या हो? यदि आप भली होतीँ तो बड़े होने पर आपने ब्याह रच नेत्रोँ को सुखी किया होता। ब्याह के पहिले ही उस आभागिनी कन्या से भी, जिसको आप दासी करके दूसरे को सौंप रही हैँ, इतना अधिकार तो दिया होता कि वह उस सम्बन्ध मेँ कुछ निज मति भी प्रगट करती। हाय! हाय! ऐसा न करके फिर पीछे 'धोखा! धोखा!' बकना कौन बुद्धिमानी है? मैँ अब फिर आप से कहता हूँ कि प्राचीन आडम्बर जाल को शीघ्र तोड़िये! काम वही कीजिये जिसमेँ किसी प्रकार पीछे न पछताना पड़े। पहिले जाँच बूझ क्योँ न करलेँ? पीछे फिर हाथ मलना ही क्योँ रह जाय? इसमेँ कुछ सकोच करना मूर्खता है। वर कन्या को भी निज पिता माता से निसंकोच इस सम्बन्ध मेँ अपनी अपनी रुचि

बता देना चाहिए। यदि ऐसा न किया गया तो सम्भव है कि सधवा रहते हुए भी कन्या को विधवा से भी गिरी दुर्दशा में जीवन काटना होगा। दृष्टान्त की कमी नहीं! एक दो दृष्टान्त तो घर के इर्द गिर्द ही मिल जायँगे। पति जी भी क्या सुख से रहेंगे। इन को भी बहुधा घर से बाहर ही धोबी के कुत्ते की तरह घाट घाट का पानी पीना पड़ेगा। अभी विशेष नहीं बिगड़ा है। यदि आप अब से भी चेत तो बेहतर है।

प्रिय पाठिका! अब एक प्राचीन आश्चर्य्यजनक कारीगरी का एक और नमूना (A singular sample of curios of antiquity) देखिये एक बुद्धि के कुबेर मलूकदास जी की बानी है।

'अजगर करें न चाकरी, पंछी करें न काम।
दास मलूका कहि मरे, सब के दाता राम॥

अब ज़रा इसके अर्थ पर ध्यान दीजिएगा। आप की मंशा है कि हाथ पैर तोड़ और काम से भी मुख मोड़ घर Home-Leopord) बैठ जावो, ईश्वर समय पर शिकार आप ही भेज देगा। आलस्य भगवती के भक्त बहस करते समय सैकड़ों मसलें इसी तरह की पेश करते हैं। इस पर भी इनकी डिग्री नहीं होती, तो ये मुफ़्तख़ोर मन्दिर (Barrister at law of Indolence Inn) के बैरिस्टर अन्त में प्रसिद्ध प्राचीन प्रिवी कौन्सिल की नज़ीर (The long-discussed ruling of the Supreme Hair splitting Privy Council of Revered Legislatures of Idleness, of His Honoured Imperial and Conceited Wish, Nawab Wajid Ali Shah, the well known Carpet knight of Luknow), जो ख़ास नवाब वाजिद अली शाह की सबसे बड़ी बाल की खाल खींचने वाली अदालत में तै हो चुकी है, सबूत में दाखिल करते हैं। उसे भी सुन लीजियेः—

'चश्म ने की मुद्दतों गर्दिश तो पाया एक तिल।
रिज़क़ इन्सॉं को मुक़द्दर के सिवा मिलता नहीं॥'

इसका अर्थ तो अत्यन्त चटपटा है। कहते हैं कि 'आँख ही को देखो! यह रात दिन इधर उधर निगाह के साथ घूमा करती है। इतना करने पर भी इसकी क़िस्मत में जो एक पुतली का तिल मिला है, वही है। अधिक कुछ होता ही नहीं। इसी से मनुष्य को भी समझ लेना चाहिए कि वही मिलेगा, जो भाग्य में है। मूँड़ मारने और उद्यम करने से क्या होगा। आज इसी का यह फल है कि करोड़ों भीख माँगते हैं। यह धन, जिससे करोड़ों अनाथ बालक बालिकाओं और विधवाओं का उदर पोषण होता हट्टे कट्टे हरामख़ोर मार ले जाते हैं। ये आलसी यदि खेत का काम करते, तो नाज की पैदावर कितनी बढ़ जाती। इन्हें भिक्षा देना तो आलस्य को पूजना और मुफ़्तख़ोर को वज़ीफ़ा (पारितोषिक) देना है। माता ही

घर की लक्ष्मी होती है। उन्हीं से यह हमारी प्रार्थना है कि हरामख़ोरों को भिक्षा कभी न दें। इन को दर्वाज़ा से दूर ही रखना चाहिए। इनमें बहुधा चोर, बदमाश, डाकू भी होते हैं। अक्सर धोखा हो गया है। अगर आप इनकी कर्तूत जानना चाहें, तो 'धूल की रस्सी' नामक पुस्तक (ओंकार प्रेस, प्रयाग, से मंगा कर) अवश्य देखें। इसमें सैकड़ों क़िस्से ऐसे मिलगे कि पढ़ कर कान खड़े हो जाँय। क़िस्से सभी तरह के हैं, और हर एक में धोखा से बचने के उपाय भी लिखे गये हैं। इतना जानते बूझते अब भला यह अनर्थ आप काहे को करगी? बात भी वाजिब ही है। ईश्वर ने आख़िर हाथ पैरों ही से चंगा क्यों बनाया है?— केवल परिश्रम करके कमाने ही के लिए! मलूका जी के मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चन्द्र जी ने भी तो हर जगह हाथ पैरों ही से काम लिया है। रावण को भी छू मंतर से नहीं परास्त किया? समुद्र ख़याली पुल से नहीं पार किया? केवल मुँह ही देख कर इन्हें सीता जी भी नहीं सौंपी गईं? फिर क्या मलूका का कहना आप बिना सोचे बूझे मान लेंगी? नहीं! कभी नहीं! अब कदापि न मानेंगी।

अब यह सब तो ठीक हो गया। एक बात और छूटी जाती है। उसे भी कहलें, फिर हम आप को वह क़िस्सा, जिसे सुनने के लिये आप अभी तक उपस्थित हैं, सुनावें। गोस्वामी तुलसीदास जी कह गये हैं और उनके चेले अभी तक निबाहे भी जाते हैं।

'तुलसी बुरा न मानिये जो गंवार कह जाय।
जैसे घर को नरदवो भलो बुरो बह जाय॥

इसका सारांश यह है कि यदि कोई गाली भी दे दे, तो बर्दाश्त कर लो। इस में भी आपको विश्वास कभी न लाना चाहिए। यह कायर का काम है कि मार भी खाय और माफ़ी भी माँगे। जो अपने को बहादुर कहलाना चाहें, वह ऐसा करना मृत्यु से भी बुरा समझें। ज़रा सोचने का बात है कि यदि सभी गँवारों को छोड़ दिया करें, तो वे अन्त में क्या इतने निर्भय न हो जावेंगे कि भले आदमियों को देश बाहर कर दें? गँवार को सुशिक्षा देना, उसे उत्तम पाठ पढ़ाना भी तो काम आप ही का है! आपको तो यह उचित है कि यदि कोई आपको कुदृष्टि से देखे, तो आप उसे पुलिस के हवाले कर दीजिए, कि किसी और की ऐसी कभी हिम्मत ही न हो। इसमें अवश्य वीरता की सच्ची झलक है। ऐसा करने से आप अपनी और बहनों की इज़्ज़त बचाती हैं। दुष्ट को दंड दिलाना भी एक धर्म है। यदि आप बदनामी के भय से सकुचें तो यही आपकी कायरता है। तुलसीदास जी के कथन का ख़याल कुछ न कीजिये, किसी की भी सभी बातें मानने योग्य नहीं होतीं। इन्हों ने एक जगह रामायण म लिखा है—

'शूद्र, गँवार, ढोल, पशु, नारी,
ये सब ताड़न के अधिकारी।'

यदि मानना ही है, तो आप क्या क्या मानियेगा ? यही एक जगह और कहते हैं—

नृपति, नारि, नाहर, यती, नीच जाति, हथियार।
तुलसी इन्हें बचाइए, फिरत न लागे वार॥'

यह तो दुनियाँ है ! कहाँ तक इसके पीछे पड़िएगा ? आप वही करेँ, जिसे आप की बुद्धि उत्तम बतावे, पर इतना अवश्य कीजिये कि न कायर बनिये, न सन्तान को कायरता का पाठ पढ़ाइये ! उन्हेँ वीर बनाइये ! वीरता उनके रुधिर के बूँद बूँद मेँ मिल जाय ! आपका नाम और आपका गौरव भी इसी मेँ है कि वे दुष्ट मर्दन और खल दमन के निमित्त सदा ही उद्यत रहेँ !

प्रिय पाठिका ! धोखा तो इस संसार मेँ कदम कदम, रास्ते रास्ते, गली गली मेँ भरा पड़ा है ! रात दिन लोग किसी न किसी प्रकार के धोखे मेँ फँसते जाते हैँ ! कोई चिल्लाता है 'हाय ! मैँ लुट गया !' कोई रोता पीटता है 'मेरी सारी कमाई छिन गई !' कोई बदनामी के भय से फूल फूल कर रोता, आँसू पोँछता और मन मेँ धीरे धीरे झीँकता जाता है, 'हाय ! मेरी तो अमूल्य इज़्ज़त पर धब्बा लग गया ! संसार को मुख कैसे दिखाऊँ ?' रोने पछताने से तो कुछ होता नहीँ। अब हमारे आपके लिए तो कोई उपाय ही सोचना रह गया कि आगे चलकर फिर इसमेँ न उलझेँ। बहुत काल तक मैँ खुद दिन रात इसी सोच इसी पेँच मेँ पड़ा रहता था, परन्तु कोई ठीक उपाय न सूझता था। अभी मुझे सफलता भी प्राप्त न हुई थी कि एक दिन एक विचित्र दुर्घटना को सुन कर मेरे कान खड़े हो गये। अब तो मैँ उपाय की खोज मेँ और भी तन्मय हो गया। मैँने इस उद्योग को त्याग भी दिया होता, पर मुझे साहस केवल यही सोचने से होता था कि इस संसार मेँ सर्वशक्तिमान ईश्वर ने सभी विषोँ का उतार, काटे का इलाज और बिगड़े को बनाने का उपाय बनाया है फिर क्या यह सम्भव नहीँ कि इसके लिए कोई तदबीर हो ? आख़िर मुझे तदबीर का भी ठीक पता चल गया ! आप भी उस दुर्घटना के सुनने की प्रबल इच्छा रखती हैँ, और उस उपाय को भी बताना अति आवश्यक है, इससे मैँ पहिले उस किस्सा को सुना दूँ। वह किस्सा कोई दूसरा नहीँ है—यही दुर्घटना है।

यह किस्सा बरेली ही का है, जैसा कि मैँ शुरू मेँ लिख भी चुका हूँ। यहाँ तक तो मैँ कही चुका हूँ कि कन्या एक हिन्दू लक्ष्मीपात्र की थी। एक दिन कन्या के पिता और एक मुसलमान शरीफ़-बदमाश से कुछ खटक गई।

शायद आप न समझ सकीं हों कि शरीफ़-बदमाश क्यों? शरीफ़-बदमाश का अर्थ यह है कि उनके घर कुछ रुपया होने के कारण बाहर से ठाट बाट, सज धज और बात चीत में पूरे शरीफ़ लिफाफा पोश, परन्तु भीतर से तो जिस दर्जे के लुच्चे थे, आप अभी किस्सा सुन कर ख़ुद ही कह देंगी। अच्छा अब आगे सुनिए! खटपट होने पर कुछ 'अबे! तबे!' भी हुई। अन्त में गाली गलौज की भी नौबत पहुंची। अधिक वर्णन न बढ़ा कर अब मैं वही कहे देता हूँ कि वह लुच्चा अन्त में क्या कह उठा। वह बोला कि "अगर मैं अपनी सच्ची मुसलमानी माता से पैदा हूँगा, तो थोड़े ही दिन में मज़ा चखाऊँगा।"

प्रिय पाठिका! उस बदमाश ने एक विचित्र जाल रचा। उसने पता लगा लिया कि साहूकार की कन्या किस घर व्याही है। उस कन्या का व्याह शहर ही में हुआ था। मुसलमान ने द्रव्य का लालच देकर साहूकार की बुढ़िया कहारी को, जिसने कन्या को गोद भी खिलाया था, फोड़ लिया। उसे काम ठीक ठीक सिद्ध हो जाने पर १००) भी देने को कहा। कहारी को तो मिलाया पर वह बुद्धिमती हिन्दू कन्या ठहरी! उस पर तो कुछ वश चलना असम्भव ही था। यह विचार मुसलमान ने धोखा में फाँसना ही निश्चित किया। उसे बिना मनोरथ सिद्धि किये चैन कहाँ? रात दिन घात ढूढ़ा करता था। कन्या भी अधिकतर पिता ही के घर रहा करती थी। साहूकार के एक यही कन्या थी, उसे निगाह से ओट न करते थे। इसीसे इन्होंने मामूली ही खाने पीने का सुख देख कर शहर ही में व्याह दिया था। कुछ दिन बाद साहूकार के मुहल्ले में हैज़ा फैल गया। बहुत लोग मरने लगे। यह सोचकर साहूकार ने अपनी प्राण से भी अधिक प्रिय कन्या को उसकी ससुराल भेज दिया। संयोग से उसकी माता भी बीमार हो गयी। वह लुच्चा बदमाश भी ऐसे ही मौक़े की घात में था। उसने कहारी को बुलाया और उसके साथ पालकी और कहार कर दिये कि कन्या को धोखा देकर ससुराल से बुला ला। कहारों को तो मदिरा सुधा से भी अधिक प्रिय है! उस मुसलमान ने उन्हें डाट कर पिला दिया कि उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाय।

कहारी पालकी और कहार लिये ससुराल पहुँची। वहाँ जाकर उसने जाल फैलाया कि कन्या की माता बहुत बीमार है, बचने की आशा नहीं! बीमारी के कारण कन्या के पिता नहीं बुलाते कि कहीं कन्या भी न बीमार पड़ जाय! परन्तु इनकी माता इन्हें देखने को रात भर बिलक बिलक कर रोती रहीं। आज सुबह ही उन्होंने हमें इस तरह

भेजा है कि "एक घन्टे के लिये मेरी नन्हीँ को बुला लाओ, मैँ उसे देख लूँ और अपना निज का धन उसके सुपुर्द कर दूँ। फिर तुम तुरत ही इसी डोली पर उसे भेज आना। वह घर सुख से रहे ! मैँ भी तो यही चाहती हूँ। मगर जिंदगी का क्या ठिकाना ? मैँ मर जाऊँगी, तो नन्हीँ के लिये मेरी आत्मा कलपेगी ! प्राण भी मुहब्बत मैँ फँसा रहेगा ! मुझे और भी अधिक कष्ट होगा ! जा तू मेरी लाड़ली को जल्द ले आ !" कन्या तो इसे सुनते ही काँप गयी। उसका प्रेम उमड़ने लगा। नेत्रोँ से जल वर्षा आरम्भ हो गयी। वह तो 'मेरी मैया ! मेरी मैया !' कह कर पृथ्वी पर लोटने लगी। ससुराल वालोँ ने कुछ तो धन के लालच और कुछ कन्या के प्रेम से उसे तुरन्त भेजना स्वीकार कर लिया। मज़दूरिन तो कई बार आ जा चुकी थी, उससे पूर्ण विश्वास था, किसी को किसी प्रकार की चिन्ता न हुई।

लड़की को घर वालोँ ने पालकी मैँ बिठा दिया। कहारोँ ने पालकी उठायी, और पूछा कि "कहाँ ले चलना है ?" कहारी ने सब के सामने धूर्तता से उत्तर दिया, "मैँ तो साथ ही चलती हूँ ! पूछने की क्या बात है ?" अब भी किसीको कुछ सन्देह न हुआ। कहारी दो चार गली इधर उधर घुमाती, अन्त मैँ मुसलमान के द्वार पर ले गयी। वह बदमाश तो राह ही देख रहा था। उसने पालकी भीतर ले जाने का इशारा किया। कहार पालकी नियमानुसार भीतर धर कर चले आये। कन्या अपना घर समझ झट से निकल आयी। हाय ! उसने तो अब अपने को एक बदमाश मुसलमान के घर मैँ पाया ! उसके नेत्रोँ के सामने भय से अंधकार का पर्दा पड़ गया। उसे सामने कुछ न सूझता था। आखिर उसने मन मैँ ईश्वर को टेरा ! ज़रा देर मैँ उसने अपने सामने कुछ प्रकाश सा देखा और कुछ बड़े और सुन्दर अक्षरोँ मैँ यह भी अंकित देखा कि वह किस दशा मैँ है और इस धर्म-भक्षी ग्राह से बचने का क्या उपाय है ! अब तो कन्या को ढाढ़स हुई। वह जल्दी से आँगन मैँ गई। वहाँ एक स्त्री और एक कन्या को देख खड़ी हो गई। कहारी बाहर ही से टल गई। कहार भी मज़दूरी ले पालकी उठा कर चले गये।

बदमाश की स्त्री और कन्या ने इस से पलँग पर बैठने को कहा। कन्या ज़मीन पर बैठ गई। बदमाश बोला, "प्यारी ! अब आप इस घर को अपना घर समझेँ। अब आप कुछ नाश्ता कर लेँ, वह पानदान रक्खा है, मज़े से पान बना बना कर खायँ ! यहाँ से अब आप कहीँ जा तो सकतीँ नहीँ ? फिर तो इसे अपना ही घर मानने मैँ भलाई है। मैँ तो नाज़ उठाने के लिए हाज़िर ही हूँ !

मज़े से खुशी खुशी रहिए और आराम कीजिए!" आप खुद सोच सकतीं हैं कि इतना सुन कर उस हिन्दू कन्या में कैसी क्रोध अनल भभक उठी होगी। परन्तु कुछ सोच कर बोली, "आप सत्य कहते हैं। जो जो ईश्वर करावेगा, करूँगी, उसमें मुझे इनकार नहीं, परन्तु आपसे एक प्रार्थना मेरी यही है कि आज एकादशी व्रत है! सो आप किसी हिन्दू से दो कलसे पानी छत पर मंगा दीजिए कि मैं स्नान कर लूं। आज तो मुझे ऐसा कर ही लेने दीजिए! कल्ह से फिर मैं यहाँ यह सब क्या करूँगी?" कन्या के इस बुद्धिमानी के वचन को सुन कर वह बदमाश खुद धोखे में आ गया। उसने किसी हिन्दू से कहा वह अपने घर से कलसा साफ़ करके, जल भर छत पर धर आया। बदमाश ने अपनी कन्या को भी इसके साथ छत पर भेजा। कन्या ने सोचा कि बिना इसे भगाये मेरा काम न बनेगा। उसने मुँह और गले के कुल जेवरात और अपनी नाम खुदी अँगूठी एक रूमाल में बाँध कर बदमाश की कन्या को दिया कि नीचे लेजा कर अपनी माता को सौंप दीजिए, आँगन में एक चौका भी लगवा रखियेगा मैं स्नान करके अभी नीचे आती हूँ। अब तो ज़ेवरात देख कर बदमाश को पूरा यक़ीन हो गया कि ज़रूर रीझ गयी। कन्या ने छत के किवाड़ अपनी ओर से बंद कर लिए। फिर उसने इधर उधर उचक कर देखा तो पास ही एक कुम्हार मिट्टी के बर्तन बना रहा था। कन्या ने छत पर से अपना सोने का कङ्गन कुम्हार के आगे फेंका। कुम्हार ने निगाह ऊपर की ओर की तो कन्या ने रस्सी फेंकने को इशारा किया। कुम्हार ने जल भरने की रस्सी फ़ौरन ऊपर फेंक दी। कन्या ने रस्सी का एक सिरा छत की एक लकड़ी की कड़ी में बाँधा, और दूसरा सिरा बाहर की ओर लटका दिया। छत पर कोयला पड़ा था। उतरने के पहिले ही कन्या ने कोयला से छत की दीवार पर अपना कुछ हाल लिख दिया और यह भी लिख दिया कि कौन कौन जेवर उसने रूमाल में बाँध कर नीचे भेजे हैं। कन्या रस्सी के सहारे चटपट नीचे उतर आयी। नीचे पहुँच कर कन्या ने कुम्हार से कहा, "मुझे झट से एक कोठरी में छिपा कर बाहर से ताला लगा दे! और दौड़ कर मेरे पिता से कह, कि पुलिस लेकर फ़ौरन आ पहुँचे! जब तक यह बदमाश बँध न जायगा, मैं घर न चलूँगी!" कुम्हार उसे बन्द करके इसके बाप के पास गया। बाप ने कोतवाली में ख़बर दी। कोतवाल ने साहब सुपरिन्टेंडेंट को टेलीफ़ोन कर दिया। कन्या के पिता पुलिस को लिए दौड़ते धपते बात की बात में आ पहुँचे। बदमाश के घर पर

पुलिस टूट पड़ी। साहब बहादुर भी तमंचा लिये घोड़ा उड़ाये पहुँच गये। बदमाश के हाथ पैरों में पुलिस ने उचित आभूषण पहिना दिये। मुहल्ला के सभी बड़े आदमी बुलाये गये। कन्या भी सामने आयी। उसने कुल हाल कह सुनाया। लोगों ने उस रस्सी को भी देखा। रस्सी के सहारे कुछ लोग ऊपर गये वहाँ भरे कलसे भी रक्खे थे। कोयले का लिखा भी लोगों ने पढ़ा। जेवर भी बरामद हो गया। बदमाश की स्त्री और कन्या भी दोषी समझीं गयीं। इतने ही में वह शैतान की खाला कहारी भी कहारों सहित पकड़ कर लायी गयी। कन्या ने अपनी चालाकी से सबूत की कमी तो रख ही नहीं छोड़ी थी, बेचारे कहारों की तो रिहाई हो गयी। कुम्हार को बहुत कुछ इनाम मिला और वह सर्कारी गवाह भी बनाया गया। बाकी की गति तो आप खुद सोच सकतीं हैं कि क्या हुई। यों तो किये का फल मिलता है! पर देखिए कि कन्या ने किस प्रकार यों फँस कर भी अपना दामन अछूता ही रक्खा! जो इसको सुनेगा बिना कन्या की सराहना किये नहीं रह सकता। सच है! यदि कोई अपने धर्म पर दृढ़ रहे तो ईश्वर अवश्य ही मदद करते हैं।

इस दुर्घटना को सुन कर मुझे उस उपाय का भी पता लगा। उपाय यह है कि विद्या ही बुरे समय पर सत्य राह पर चलाती और अति उत्तम उपाय सुझाती है। यदि कन्या पढ़ी लिखी न होती तो सिवा रोने चिल्लाने और इज्जत गँवाने के और उसे क्या सूझता? ग़लती इस कन्या ने एक ही की थी। यदि वह चूक इससे न हो गयी होती तो इस धोखे में न फँसती। बड़े घर की स्त्री को यह चाहिये कि बिला घर के एक मर्द के रास्ता कभी न चले। यदि कोई ससुराल से भी पति या ससुर साथ होते तो क्या यों धोखा खाती? उपाय धोखा से बचने का यही है कि उत्तम उत्तम पुस्तकों को पढ़े, जिससे बुद्धि बढ़े। यह भी जानना कि कौन पुस्तक लाभकारी है आसान नहीं! पुस्तक के नाम, रूप, रंग, और छपाई से ही उत्तम बताना अज्ञानता है। उत्तम पुस्तकें बहुत कम हैं और देखने में और पुस्तकों से महँगी भी मिलती हैं। जो चतुर हैं, वे उन्हें अमूल्य रत्न मानते हैं।

आज कल्ह छापाखानों के बढ़ जाने से बाजार पुस्तकों से पट गयी है। परन्तु इनमें से बहुत देख रेख करने पर सैकड़े पीछे दो एक ही उत्तम होंगी। खराब पुस्तकों के पढ़ने से वह बुरा असर होता है, जो ख़राब संगत से भी होना कठिन है। कन्याओं के हाथों में बुरी पुस्तक कभी न पड़ने पावे, नहीं तो अवश्य ही एक दिन 'धोखा! धोखा!' कह कर सिर पीटना होगा।

आज कल्ह लोग कन्याओँ को सभी तरह की पुस्तकोँ के पढ़ने का अधिकार दे देते हैँ। फल यह होता है कि वे रुचि अनुसार वही ऐयारी का पाठ पढ़ाने वाली, प्रेम का श्रोत बहाने वाली चुन चुन कर पढ़ती हैँ। यदि यह आदत दो चार साल जड़ पकड़ गई तो फिर गुल खिलते क्या देर? आप उसकी माता हैँ, और रात दिन देख भाल भी सकती ह कि वह क्या लिखती पढ़ती हैँ! अब यह आप ही का धर्म है कि इसका पूरा पूरा ख़याल रक्खेँ। स्त्रियोँ का हृदय उसमेँ विशेष करके कन्याओँ का मोम से भी नर्म होता है। लेखक अपनी पुस्तक द्वारा उस कोमल हृदय पर भाव की लेखनी से लिखता है। कोमल हृदय होने से चिह्न भी अमिट हो जाता है। अब तो यह बताना कि उनके लिए उत्तम पुस्तक कौन होगी, व्यर्थ ही है। आप खुद समझ सकतीँ हैँ कि केवल शिक्षा-प्रद पुस्तक उनके पढ़ने योग्य हो सकती हैँ। जिस पुस्तक मेँ प्रेम की छीँटेँ भी होँ, उसे तो तुरन्त ही अग्निदेवी के गोद मेँ देकर घर विमल करेँ। यदि किसीने इस विषय में ज़रा बेपर्वाही की, तो अल्प काल मेँ चुपके चुपके पढ़ वह कन्या दृढ़ प्रेम-पन्थ बटोहिनी बन कर कलंक के टीका से अपना मस्तक विभूषित करके घर से बाहर निकल खड़ी होगी! इसका पूरा ख़याल रहे। बहुत देर हो गई, अब मैँ चलता हूँ! प्रार्थना फिर किये जाता हूँ कि काम वही कीजियेगा जिसमेँ पीछे न पछताना पड़े। मुझे अब जाने दीजिये! मैँ तो बराबर मिला ही करूँगा।

—पी. यन. द्विवेदी

माताओं का कर्तव्य

माताएँ घर की छालदीवारी मेँ कैद रहती हैँ, न किसी से मिल सकती हैँ और न किसी से बात चीत कर सकती हैँ। गुण या ढंग मनुष्य, मनुष्य से सीखता है। पुरुष तो पढ़ लिख कर चतुर और गुणी हो जाते हैँ और जो पढ़े लिखे नहीँ हैँ वे भी हर प्रकार के मनुष्योँ से मिलते हैँ और दस प्रकार की बातेँ सुनते हैँ। इस परदे से तो माताओँ और बहिनोँ को छुटकारे की आशा नहीँ है। यद्यपि परदे का चलन हमारे देश मेँ अत्यन्त ही अच्छा है, तथापि उनके लिए कोई और उपाय सोचना चाहिए। फिर सिवाय पढ़ाने लिखाने के और क्या उपाय हो सकता है जिससे उनकी बुद्धि को प्रकाश होवे। सच पूछिये तो पुरुषोँ से स्त्रियोँ को पढ़ने लिखने की अधिक आवश्यकता है। पुरुष तो बाहर के चलने फिरने वाले लोगोँ से मिल जुल कर बहुत सी बातेँ सीख सकते हैँ किन्तु स्त्रियाँ घर मेँ बैठे क्या करेँगी, क्या सोने की पेटारी से

बुद्धि की पुड़िया निकालेंगी या अनाज की कोठरी से ढंग की बातें सीख जावेंगी। मेरी सम्मति में तो उनको विद्या पढ़ाना चाहिये कि जिससे परदे में बैठी हुई भी तमाम संसार की बातें जानने के योग्य हो जावें। बहुत सी हमारी माताओं और बहिनों की नहीं, बहुत से हमारे पढ़े लिखे हुए भाइयों की भी मति स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध है और कहा करते हैं कि स्त्रियों को पढ़ाने से क्या लाभ है, क्या इनको दफ़्तर में नौकरी करने जाना है। कितने शोक की बात है। क्या पढ़ने लिखने से दफ़्तर ही का काम हो सकता है, उनके लिए गृहस्थी ही का कार्य किस दफ़्तर से कम है, और फिर क्या हम उनको दफ़्तर में नौकर करा के उनकी ही कमाई से उदर भरना चाहते हैं, तब हमको लज्जा न आवेगी। स्त्रियों को विद्या पढ़ा कर दफ़्तर भेजने से मेरा आशय नहीं है किन्तु स्त्रियों को अपनी संतान के हेतु पढ़ना अति आवश्यक है। लड़कियाँ तो ब्याह तक और लड़के भी दस वर्ष की अवस्था तक घर ही पर रहते हैं, और माताओं का स्वभाव उनमें असर करता है और संतानों की अगली वयस माताओं के ही आधीन है। यदि माता चाहे, तो अपनी संतान के हृदय में वह इरादे और ऊँचे ख्याल भरदे कि वह बड़ा होकर यश प्राप्त करे और जन्म भर सुख से रहे, और यदि चाहे, तो उसका स्वभाव ऐसा बिगाड़ दे कि ज्यों ज्यों बड़ा हो, खराबी के लक्षण सीखता जावे। विद्वानों यह कथन है कि जैसी माताएँ होती हैं, वैसी ही सन्तान भी बन जाती है। पिता चाहे कितनी ही चेष्टा करे, बालक में वैसा प्रभाव नहीं डाल सकता, जैसा कि माता की प्रेम भरी दृष्टि का असर इस पर पड़ता है। माता के हाथ में जीवन की कुंजी है। माता ही से उसमें सत्स्वभाव, भलाई और सच्चाई के भाव प्रगट होते हैं, वही हमें पशु से मनुष्य बनाती है। पिता का कार्य संतान के जीवन की नींव डाल कर समाप्त हो जाता है, किन्तु उत्पत्ति से पहिले पिता का संतान पर कोई असर नहीं पड़ सकता। जब बच्चा गर्भ में होता है, तो माता की संपूर्ण चेष्टाओं, भावों और विचारों का प्रभाव प्रतिक्षण इस पर पड़ता रहता है। एक ग्रंथकार लिखते हैं कि यदि उत्पत्ति से पहिले के अच्छे प्रभाव न हों तो स्कूलों और कालिजों की सारी शिक्षा, समाजों और सभाओं और गुरुओं के समस्त उपदेश बच्चों के जीवन को नहीं सुधार सकते। इस लिए स्कूलों और कालिजों और संपूर्ण सुधारों की अपेक्षा माता का प्रभाव प्रबल है। यह प्रभाव केवल आचार, व्यवहार और विचार ही पर नहीं होता, किन्तु शारीरिक अंगों पर भी होता है। अकबर की मा के विषय में कहा जाता है कि अकबर जब गर्भ में था, एक दिन जब हुमायूं बादशाह महल में गये, तो

क्या देखते हैँ कि रानी सुर्मा और सलाई से अपने पाओँ के तलवोँ पर कुछ चित्र-कारी कर रही है। बादशाह ने पूँछा कि इसका क्या प्रयोजन है. तो रानी ने उत्तर दिया कि मैँ चाहती हूँ कि ऐसे चिन्ह मेरे बच्चे के तलवोँ पर होँ। कहते हैँ, कि अकबर के पैदा होने पर उसके पाँव पर वह चिन्ह मिले थे। यह स्वभाव केवल मनुष्योँ ही में नहीँ होता किन्तु पशुओँ पर भी विना ज्ञान और विना किसी प्रयत्न के वैसा ही होता है। एक समय एक गड़रिया अपने मालिक की भेड़ँ चराया करता था, उसका मालिक ने उससे अत्यन्त ही प्रसन्न होकर कहा कि अबके वर्ष जितने चितकबरे बच्चे होँगे, वह सब उसको दे दिये जावेँगे। वह गड़रिया बड़ा ही चतुर था, उसने जहाँ पर भेड़ँ बन्द की जाती थीँ, कई रंग की झंडियाँ गाड़ दीँ। जब भेड़ोँ ने बच्चे दिये तो उनमें से प्रायः सब के सब चित्-कबरे थे।

यदि बेसमझ पशुओँ पर विना किसी प्रयत्न के ऐसा असर होता है, तो मनुष्योँ का क्या ही कहना है। माता के आधीन है कि चाहे वह बच्चोँ को सुन्दर बलवान और बुद्धिमान बनादे और चाहे कुरूप, दुर्बल, पागल और धूर्त बनादे।

—जालिपा देवी।

मानव विकास*

मनुष्य प्राणी की जन्मकहानी

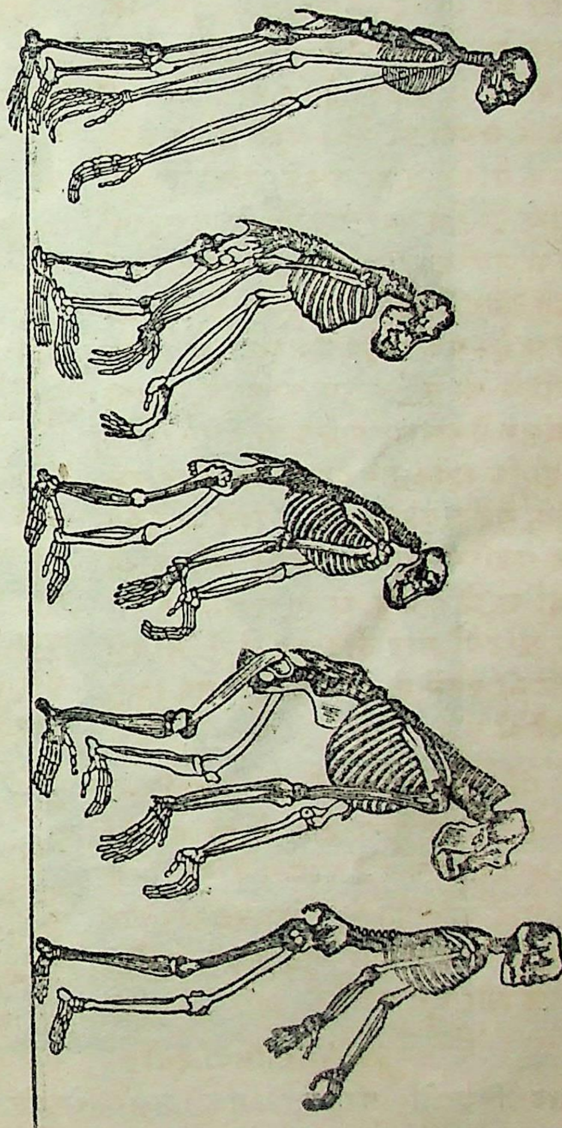


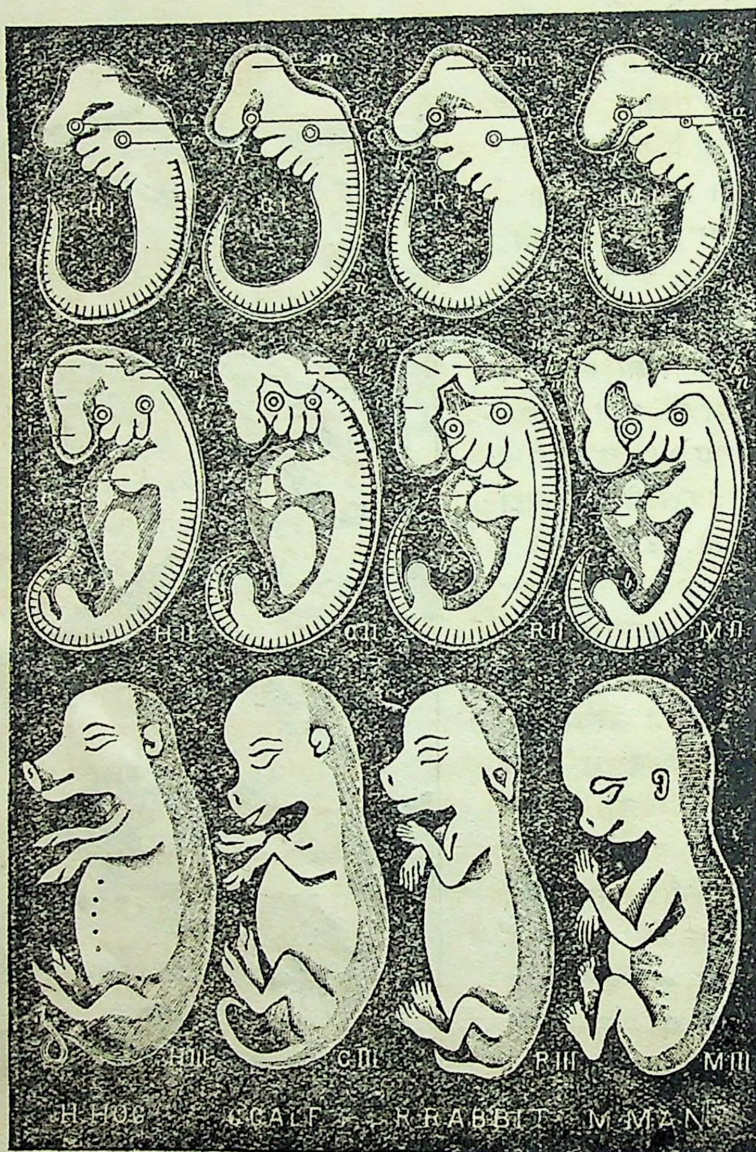
इस संसार में प्रतिदिन हम कितनी ही तरह के प्राणी देखते हैँ। छोटे जीव से लेकर बड़े से बड़े प्राणी मनुष्य तक देखा जाय तो भिन्न भिन्न रंग आकार और जाति के प्राणी हमारी नज़र से गुज़रते हैँ। अब इन जीवोँ की पैदाइश कैसे हुई, यह एक बड़े महत्व का प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है। इस प्रश्न की ओर बहुत पुराने समयों में ही बड़े बड़े विद्वानोँ और दार्शनिकोँ का ध्यान गया था और जिस समय में जैसा कुछ ज्ञान का विस्तार था, उसी के अनुसार उस समय के विद्वानोँ ने इस प्रश्न की मीमांसा भी की थी। सुतराम् इस प्रश्न का उत्तर हमारी धर्म पुस्तकोँ में भी कहीँ कहीँ संकेत से और कहीँ स्पष्ट रूप से पाया जाता है। पुरुष सूक्त की कुछ ऋचाओँ में हमें पशु, पक्षी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र आदि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई प्रकार के विचार मिलते हैँ। ऐसा भी कई लोगोँ का विचार है कि ईश्वर ने प्रत्येक जाति के जीव का एक एक जोड़ा सृष्टि के आदि में सिरजा और उन्हीँ

*[Evolution विकास]

जोड़ों से आगे को सृष्टि चली। वास्तविक बात क्या है, इस प्रश्न की मीमांसा की ओर आजकल के समुन्नत काल में साधारण पढ़े लिखे लोगों का भी ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक है और इस दशा में वे इस प्रश्न की मीमांसा करने लगें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं कही जा सकती। इस लेख में हमारा यही उद्देश्य भी है कि मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में आजकल के वैज्ञानिकों का जो मत हो, उसकी मोटी मोटी बातें बतलायी जाँय किन्तु दार्शनिक और प्रामाणिक शब्दों के गहन झगड़े में न पड़ कर साधारण पाठकों की समझ में आने योग्य सुगम शैली में यथा शक्ति सरल शब्दों में ही हम इस विषय की चर्चा करेंगे। इस विषय पर विद्वानों के मत दिनों दिन प्रबल व दृढ़ होते जाते हैं अतः हम यह आवश्यक समझते हैं कि हम में से भी कोई व्यक्ति इस विषय से बेख़बर न रहे।

हमारे इस लेख का विषय, "मनुष्य प्राणी की जन्म कहानी" "विकास वाद" का ही अंग है; और विकास वाद का आज कल योरोप में बड़ा ज़ोर है। यहां तक





कि सब विद्याओँ का यह एक मूल मंत्र बन रहा है और ज्ञान और विज्ञान की जितनी शाखाएँ और उपशाखाएँ हैँ, उनमेँ से प्रत्येक पर इसका अधिकार जमता जाता है। विकास वाद की कल्पना उन कल्पनाओँ मेँ से एक है जिनका अंग्रेजी

भाषा के प्रचार के साथ साथ भारतवर्ष में प्रचार हुआ। अन्य कल्पनाओं के सम्बन्ध में हमें यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु इस कल्पना के बारे में हम इतना अवश्य लिखना चाहते हैं कि बहुत से अच्छे पढ़े लिखों में भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ भ्रम फैला हुआ है। "डार्विन ने मनुष्य की उत्पत्ति बंदर से सिद्ध की है" इतने में ही इन लोगों का इस विषय का सारा ज्ञान समाप्त हो जाता है। "जीवन संग्राम" "प्राकृतिक चुनाव" "परिस्थिति-परिणाम" इत्यादि इस विषय के सूत्रबद्ध शब्द समूह कभी कभी विद्वानों के निबन्धों व ग्रन्थों में प्रयुक्त पाये जाते हैं परन्तु जिस रीति से और जिस प्रकरण में इन शब्दों को यह विद्वान व्यवहार करते हैं, उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन्होंने इन पारिभाषिक शब्दों का यथावत् ठीक ठीक अर्थ नहीं समझा। एक यह भी कारण है जिससे हम इस लेखमाला के लिखने में प्रवृत्त हुए हैं।

जीवन तथा जीवों के सम्बन्ध में विचार करते हुए पहला प्रश्न यह उपस्थित होता है कि संसार में जीवन का आरम्भ कैसे हुआ। प्रश्न निस्सन्देह बड़े महत्व का है परन्तु इस लेखमाला के भीतर विना विशयान्तर व विस्तार के इस बात की चर्चा नहीं हो सकती। जीवन सम्बन्धिनी चर्चा करने के लिए एक स्वतन्त्र ही निबन्ध होना चाहिए। अतः जीवन का आरम्भ अर्थात् उसकी उत्पत्ति, चाहे वह किसी भी रीति से क्यों न हुई हो, मान कर ही हमें इस विषय में आगे पैर उठाना पड़ेगा। आदिम प्राणियों को छोड़ कर अन्य प्राणियों के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का यह मत है कि बड़े या उच्च श्रेणी के प्राणियों की उत्पत्ति उनसे निम्न श्रेणी के उन प्राणियों से हुई है जो उनके पहले से विद्यमान थे। उदाहरणार्थ, दूध पिलाने वाले प्राणी, पक्षी, रेंगने वाले प्राणी यथा सर्प, मेंढक और मछली इन सब के पूर्वज एक ही थे। इन पांच प्रकार के प्राणियों में और इनकी शाखाओं और उपशाखाओं में जो भेद दिखायी देते हैं, वे सब भिन्न भिन्न परिस्थिति, भिन्न भिन्न प्रकार के रहन सहन तथा अन्य अनेकों कारणों के प्रतिफल हैं। वैज्ञानिकों के मत में यह सिद्धान्त मनुष्य प्राणी पर भी प्रघटित होता है; अर्थात् मनुष्य के पूर्वज मनुष्य के साथ बहुत कुछ समानता रखने वाले एक प्रकार के बंदर थे और उनमें और मनुष्य में जो भेद दिखाई देते हैं, वे उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न हुए हैं। मनुष्य के सम्बन्ध में यह उपर्युक्त उपपत्ति कहाँ तक ठीक और युक्त संगत है यह देखने के लिए पहले हमें मनुष्य और उसके आधारभूत प्राणियों के शरीर की बनावट पर विचार करना पड़ेगा। अन्य प्राणियों के शरीर

की रचना को मनुष्य से मिलाते हैं तो मनुष्य की शरीर-रचना में विशेषताएँ नहीं मिलतीं, प्रत्युत उनके साथ इनका बहुत कुछ साम्य पाया जाता है। बंदर और चतुष्पाद प्राणियों के साथ तो यह साम्य और भी अधिक अंशों में देखा जाता है। सब प्राणियों के अस्थिपंजर एक ही नमूने के होते हैं। मनुष्य और अन्य रीढ़ की हड्डी वाले प्राणियों की शरीर-रचना के तत्व पूरे पूरे एक से हैं। एक में जिस स्थान पर जैसी हड्डी है दूसरे में भी बिलकुल उसी तरह की हड्डी उसी स्थान पर मौजूद है। स्नायु, शिराएँ मज्जातंतु आदिकों का भी यही हाल है। ऐसे ही दोनों के मस्तिष्क की रचना के नियम भी एक ही प्रकार के मिलते हैं। हाथ पैर तथा अन्य इन्द्रियों में इतना साम्य है कि अनपढ़ आदमी से भी छिप नहीं सकता।

मनुष्य प्राणी का आरम्भ अन्य प्राणियों की भाँति $\frac{१}{१२५}$ इंच व्यास वाले अंडे से होता है और गर्भस्थ अवस्था में जैसे उनके परिवर्तन दिनों दिन होते जाते हैं, ठीक वैसे ही परिवर्तन मनुष्य की भी गर्भस्थ अवस्था में होते जाते हैं। दोनों के पहले पाँच छः महीनों तक के गर्भों को देख कर एक को दूसरे से पहिचानना असम्भव हो सकता है। प्रसव काल अति समीप आने पर ही मानव गर्भ में विशेषताओं के चिन्ह प्रादुर्भूत और प्रत्यक्ष होने लगते हैं। गाय, सुअर, खरगोश और मनुष्य की गर्भस्थ अवस्था के भिन्न भिन्न समय की शरीर-रचना का जो चित्र दिया जाता है उससे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

इन सब प्राणियों में एक आश्चर्यजनक बात यह दीखती है कि कई संघातिक रोगों का प्रसार एक जाति के प्राणियों से दूसरी जाति के प्राणियों में होता है। इस घटना से यह स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि इनके शरीर के अंदर के रक्त मांसादि जो भी पदार्थ हैं उनका उद्गम स्थल एक ही है। गौओं के स्तनों पर के फोड़ों में से चेप अर्थात् पतला चिकना पदार्थ लेकर मनुष्य को टीका लगाया जाता है, यह बात प्रत्येक मनुष्य के अनुभव की है। इससे हम कह सकते हैं कि न केवल इन प्राणियों के रक्त मांस आदि का उद्गम एक ही स्थान से है परन्तु इन रक्त मांस आदि के गुण और स्वभाव भी एक से ही हैं। सांघातिक रोगों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के रोगों से दूसरे प्राणी भी मनुष्य के सदृश ही पीड़ित होते हैं और जिन जिन प्रकार की दवाइयों से मनुष्य आराम होता है उन्हीं से इन अन्य प्राणियों को भी लाभ होता है। जिन दवाइयों से मनुष्य के घाव आरोग्य होते हैं उन्हीं से अन्य प्राणियों के भी घाव चंगे होते हैं। इतना ही नहीं

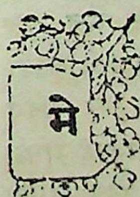
परन्तु कभी कभी मनुष्य के शरीर की यदि कोई हड्डी टूट जाय तो उसके स्थान पर अन्य प्राणी की उसी स्थान की हड्डी निकाल कर लगाई जा सकती है।

दूध पिलाने वाले सब जंतुओं की जनन-क्रिया भी बिलकुल एक सी ही है। मानवी बालक पैदा होते ही जिस प्रकार सर्वथा पराधीन होता है, वैसे ही कई जाति के बंदरों की अवस्था है। पैदा होने के पश्चात् जिस प्रकार मानवी बालक की पूर्ण वृद्धि के लिए कई वर्ष लगते हैं, उसी प्रकार कई बंदरों की पूर्ण वृद्धि के लिए दस पंद्रह वर्ष आवश्यक होते हैं और दांत निकलने के समय बच्चों को ज्वर आदि की जैसी पीड़ा मनुष्य को होती है वैसी ही कई जाति के बंदरों के बच्चों को भी होती है। पुरुष और स्त्री में रूप, आकार, बल, केश युक्तता आदि की दृष्टि से जिस प्रकार मनुष्य जाति में भेद है, वैसे ही भेद अन्य प्राणियों में भी हैं। संक्षेप से हम यह कह सकते हैं कि शरीर, उसके अवयवों व इन अवयवों के कार्य इत्यादि पर यदि विचार किया जाय तो मनुष्य और अन्य चतुष्पाद प्राणियों में बहुत समानता है और यह समानता मनुष्य और बंदरों में तो और भी कहीं अधिक पायी जाती है।

प्रत्येक प्रकार के प्राणी के शरीर में कुछ ऐसे अवयव विद्यमान रहते हैं जिनसे उसको कुछ भी लाभ नहीं होता। उदाहरणार्थ, दूध पिलाने वाले जंतुओं में जितने नर हैं, उन सब के स्तन हैं परन्तु वे बिलकुल व्यर्थ हैं; मनुष्य जाति में पुरुषों के स्तन भी इसी प्रकार निरर्थक ही होते हैं। हाँ, कभी कभी लाखों वा करोड़ों में से एक आध कोई ऐसा भी पुरुष मिलता है जिसके स्तन पूरे पूरे बढ़ कर दूध देते हैं, परन्तु यह बात ही दूसरी हुई। ग्रीस देश की फौज में एक २० वर्ष का ऐसा जवान सिपाही १९०१ में भरती हुआ था जिसके स्तन पूरे तौर से बढ़े हुए थे और उनमें से यथेष्ट परिमाण में दूध भी निकलता था। प्रो० हेकल महाशय को १८८१ ई० में लंका में एक ऐसा सिंघाली आदमी मिला जिसके स्तन बहुत बड़े थे और वह किसी धनपात्र के घर में बच्चों को दूध पिलाने वाली धात्री का काम किया करता था।

'विज्ञान'

स्त्री-शिक्षा का फल



रा नाम है गिरिजापति, कानपुर कालेज में मैं पढ़ता हूँ। इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा में बैठूंगा। मेरा विवाह पार साल ही हो गया। विवाह होने के पहले आजकल की लहर के माफिक मैं भी

यह सोचा करता था कि मैं एक पढ़ी लिखी कन्या से सम्बन्ध करूँगा, परन्तु हुआ कुछ और ही। मेरी चिरसाथिनी एक अनजान तथा अपढ़ बालिका निकली। खैर, कुछ हर्ज नहीं। मैं यदि स्वयं पढ़ा लिखा हूँ तो मेरा कर्तव्य है कि मैं स्वयं उसे यदि मिल्टन (एक अँगरेज़ी महाकवि) नहीं तो कम से कम तुलसी और सूर की कविता की प्रशंशा करने योग्य तो बना ही लूँ। अच्छा अब आज से मुझे दो काम करने होंगे, एक तो बी० ए० की परीक्षा के लिए तैय्यार होना, दूसरा अपनी चिरसाथिनी को एक भोली तथा अनजान बालिका से एक चैतन्य तथा शुशिक्षिता देवी में परिणित करना।

* * *

अब मेरे विवाह को हुए कोई दो वर्ष हो गए, मैं स्वयं बी० ए० पास हो गया हूँ और मेरी श्रीमती भी अब हिन्दी भली भाँति पढ़ लिख लेती हैं तथा अँगरेज़ी का भी कुछ कुछ ज्ञान रखती हैं। परन्तु हा! मुझे न मालूम था कि इसका फल यह होगा। नहीं तो शायद अभी इतनी जल्दी न करता। बात यह है कि जब से उसने कुछ पढ़ लिख लिया है तभी से वह माता राम की दृष्टि में बंगाले की टोने वाली मालूम होती है। सबूत में आपके सामने एक दिन का हाल लिखता हूँ, आशा है कि आपको उससे स्त्री-शिक्षा के फल का पता लग जायगा।

* * *

विमला भोजन तैयार कर रही है। दाल पक रही थी, इस लिए बाहर निकल कर उसने एक अंगरेज़ी किताब हाथ में ले ली। किताब खोली ही थी कि इतने में मातराम कोठे से आ गईं, बस अब क्या था। हैं! क्या खाना बनाने ही के बीच में यह अँगरेज़ी किताब पढ़ रही है। यह ला, यह तो एक नई रीति चला रही है। बस इस प्रकार आते ही आप प्रश्नोत्तर करके लगीं फटकारने। अब कृपया, उस समय के वार्तालाप को सुन लीजिए।

* * *

माताराम—कै री! रोटी बनाय चुकी कि नाहीं?

सावित्री—नहीं, अभी दाल कर रही हूँ।

मा०—हाँ, औ बीचै मा पोथा लैके बैठि गय है।

सा०—नहीं अम्मा जी, समय फ़िजूल जा रहा था इसलिए मैं इसे ही देखने लगी।

मा०—हाँ, अब तो बिना फारसी के मुँह से बातें नहीं निकरत। आगि लगाव

द्दे ऐसी पोथी माँ। लैके बैठ गईँ, जानौ घर माँ कुछ कामै नहीँ ना।

सा०—जैसी आज्ञा, (इतना कह कर पुस्तक रख देती है)

मा०—आवै देउ अबहिन लाला का, जो अबहिन न तुम्हार किताब उताब उठाय के फेकवाय देईं। अँगरेजी पढ़ाय पढ़ाय कै क्रिस्तानिन बनाय दीन्हिस है। और यह तो बताव, नन्हे का दूध पियाये कि नाहीँ ?

सा०—अभी नहीँ पिलाया। बुलाया था सो उसने पिया ही नहीँ। बिना भूख के मैँने भी जबरदस्ती पिलाना उचित न समझा।

मा०—औका, अबै पीबै नहीँ भा, कहती हैँ कि ओहिका भूँखै नहीँ लाग। यह नहीँ कहतीँ कि हमका अबै टोना करैँ ते छुट्टी ही नहीँ मिली। न जानै लाला का का होइगा है, जो ऐस करत है, यह नहीँ समझत कि इनका पढ़ाये लिखाये से सिवाय क्रिस्तानिन बने के और कौन फायदा होई। अरे दीदी, भला देखौ तो, का हम पंचै कबहूँ बिटियै नहीँ रहेन। अपने घर माँ खेलत कूदत रहिन और जब ससुरे आइन तब घर का काम धन्धा कीन, खावा पिया सोय रहिन। या नहीँ कि जब नहीँ तब बेटौनन की नाई पोथी लैके पढ़ै लागेन। भला कतौं मेहरियौ पढ़ती हैँ। राम राम, या तो असगुन आय। भला जो हम पंचै यह तरह करित तो काहे का पार लागत।

—कमला

विद्वानों की दृष्टि में स्त्री

१—मेरे सूक्ष्म विचारोँ की जड़ मेरी माँ की प्रेम पूर्ण लोरियाँ हैँ—जोन्सन।

२—मनुष्य को दूरदर्शिता माता से और वीरता पिता से पैतृक धन मेँ मिलती हैँ। —शोपनहार।

३—स्त्री घर का धन और घर की शोभा है, इस लिए उसकी रक्षा सदा करनी चाहिए। महाभाग्यवती पुण्य करने वाली स्त्री पूजनीया है।

—वेदव्यास महाभारत।

४—मैँ जो कुछ हूँ अथवा हो सकता हूँ, यह सब कुछ देव-सदृश-प्रकृति वाली माता की बदौलत है।—इब्राहिम लिंकन।

५—मैँने फारसी की शिक्षा (प्रारम्भिक) अपनी माता से प्राप्त की और छोटी अवस्था मैँ मुझे मेरी माँ ने और और भी अनेक लाभप्रद नैतिक शिक्षाएँ दीँ, जो मुझे ज्योँ की त्योँ याद हैँ।

—सर सैयद अहमद।

६—हर देश, जाति और धर्म मैँ मनुष्य वैसा ही बनता है जैसा उसकी माँ उसको बनाती है।—सर एडमंड बर्की

७—मेरी माता ने मेरे ऊपर दृष्टि रक्खी और मुझे मेरे सहचरों के बुरे प्रभाव से बचाया। —श्रीदादा भाई नौरोजी।

८—एक अच्छी माता सौ उस्तादों से अच्छी है। —जार्ज हर्बर्ट।

९—जिस गृह में स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से सन्तुष्ट रहता है, उसमें निश्चय ही नित्य कल्याण होता है—मनु।

१०—किसी बच्चे के चरित्र की भावी उम्दगी वा अबतरी नितान्त उसकी माता पर निर्भर है। —नेपोलियन बोनापार्ट।

११—निस्सन्देह एक अच्छी माता सहस्रों गुरुओं से अच्छी है।

—सर सैयद अहमद।

१२—स्त्री पुरुष साथ ही ईश्वर प्रार्थना करते हैं, हर्ष, शोक, आनन्द और दुःख में परस्पर सहायता करते हैं। एक दूसरे से कोई कार्य छिपा नहीं रखते और न एक दूसरे के लिए भार स्वरूप होते हैं। यह देख परमेश्वर प्रसन्न होता है और बरकत देता है। जहाँ स्त्री पुरुष प्रेम से रहते हैं, वहाँ कोई बुराई नहीं होने पाती। —सरजोन लेक।

१३—फ्रांस का वैभव उसकी माताओं पर निर्भर है। —नेपोलियन।

१४—भली भाँति स्मरण रखिए कि कोई जाति अपनी माताओं से अधिक नहीं बढ़ सकती। इससे भी अधिक उक्ति सुनिए, संसार की जीतों की लूट का माल माता के वक्तव्य का मोती होता है, क्योंकि जो हाथ हिँडोला डुलाता है, वही हाथ पृथ्वी भर हिला डालने वाला होता है।

—मिस सोहराब जी।

१५—चाहे मैं कैसी ही दरिद्रावस्था में हूँ, परन्तु यदि कोई मुझे संसार की सारी संपत्ति भी दे देवे तो भी मैं अपनी स्त्री से न बदलूँगा। संसार में सब से अधिक भाग्यवान वह है, जिसकी स्त्री प्रतिष्ठापन्न हो और जिसके साथ वह सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करता हो—ल्यूथर।

मालूम होता है जर्मनी में धन से स्त्री बदलने की चाल है वा रही होगी। ल्यूथर का इस विषय में ऐसा विचार ही इसका प्रमाण है। वारिन हेस्टिंग्ज़ प्रथम वायसराय और एक जर्मन का ऐसा सौदा भारत के इतिहास में भी देखने को मिलता है।

१६—मैंने अपनी तमाम मुस्तैदी (कार्य तत्परता) और धैर्य अपनी माता की गोद में सीखा है। —नेपोलियन।

१७—देश की उन्नति इंगलैंड की माताओं के हाथ है। यदि प्रत्येक कुटुम्ब में योग्य माताएँ हों, तो देश निस्सन्देह उन्नति कर सकता है। स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह स्त्रियों को अच्छी माताएँ बनावे। —ग्लेडस्टोन।

१८—जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।—मनु।

१९—पुरुष की उन्नति और अवनति स्त्री पर ही निर्भर है। यदि वह सुशिक्षिता है, तो पति की उन्नति का कारण और यदि मूर्खा है, तो अवनति का कारण होगी। —लार्डविर्ले।

२०—यद्यपि मेरी माता को परलोक गमन किये लगभग ३० वर्ष व्यतीत हो चुके तो भी वह मेरे विचारोँ मेँ और मेरे शब्दोँ मेँ मौजूद है। —मिचलेट।

२१—स्त्रियोँ मेँ एक ऐसा अद्भुत जादू है कि वह चाहे जैसे असभ्य मनुष्य को सधा कर आकर्षित कर लेती है।

—काली।

२२—बालक अपना प्रारम्भिक पाठ माताओँ से पढ़ते हैँ। जो विचार बाल्य-काल मेँ जड़ पकड़ जाते हैँ, वह जीवन पर्य्यन्त मनुष्य की प्रकृति, दिल और मस्तिष्क पर सदैव जमे रहते हैँ और पीछे की शिक्षा उन्हेँ हटा नहीँ सकती।

—अमीर अब्दुर्रहमान खां।

२३—मैँ अपनी तमाम उन्नतियोँ और विजयोँ मेँ अपनी माता और उसके सुसंस्कृत सिद्धान्तोँ का अहसानमन्द हूँ।

—नेपोलियन।

२४—स्त्री, यह शान्ति की देवी है। इन्हेँ उच्च पद से नीचे ढकेलना नितान्त असभ्योचित कार्य है। —फोडीयस।

२५—माता ही अपने बच्चे की पहली संरक्षक और शिक्षक होती है और वही उसको सर्व प्रथम शिक्षा देती है। तत्पश्चात् बच्चे की शिक्षा का कार्य दूसरोँ के सुपुर्द किया जाता है। —निची।

२६—मैँने अपनी पूर्ण चित्रकारी माता से सीखी है और जब मैँ कोई चित्र विशेष सुन्दर बनाना चाहता हूँ, तो उसके लिए भी अपनी माता का ध्यान स्मरण कर लिया करता हूं। —रिनाल्ड्ज़।

२७—स्त्रियोँ का जो हम आदर करते हैँ, वह केवल उनके सौंदर्य्य के लिए ही नहीँ, वरन् उनसे उत्पन्न होने वाले गुणोँ के लिए है और इसी से ही हम उनका गौरव करते हैँ। —ओडिसन।

२८—पुरुष की भाँति स्त्री को भी सुख की आवश्यकता है। —कोल्टन।

२९—सद्गुणी स्त्री संसार मेँ सर्वाधिक रमणीय वस्तु है। —फोडीयस।

३०—वह विशुद्ध प्रेम, जो मुझे स्वदेश-प्रति है और जिसने मुझे अपने अभागे स्वदेश बन्धुओँ का हमदर्द बनाया है, उसका प्रारम्भ उस समय हुआ, जब मैँ अपनी माता को दीनोँ और दीनोँ के प्रति सहानुभूति और संकटापन्न लोगोँ पर दया करता हुआ देखता था। मैँ असत्योपासक नहीँ हूँ, लेकिन मैँ स्वीकार करता हूँ कि कड़ी से कड़ी मुसीबत के समय, जब कि समुद्र मेरे जलयान का पेंदा बैठाने पर तुला हुआ था और उसे कागज़ की नौकावत् उछालता था, अथवा

वायु की सनसनाहट की भाँति जब बन्दूक की गोलियाँ सनसनाती हुई मेरे कान के पास होकर निकल जाती थीं और ओलों की भाँति जब मेरे सिर पर गोला वर्षण हो रहा था, उस समय मैं अपनी माता को अपने बेटे के लिए माथा रगड़ते और दुआएँ माँगते देखता था। मेरा वह साहस और दिलेरी जिसे देख लोग आश्चर्यान्वित होते हैं, इस दृढ़ सिद्धान्त के कारण कि मेरे ऊपर कोई संकट नहीं पड़ सकता। जब तक ऐसी पवित्र और देव-प्रकृति देवी मेरे लिए प्रार्थना करती है। —गेरी वाल्डी।

३१—जिस प्रकार दर्पण में देखने वाले का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, उसी प्रकार पति सुख दुःखादि मनोविकारों का प्रतिबिम्ब पत्नी के मुख पर दिखाई देता है। —ईर्यासभ्स।

३२—स्वल्पायु बच्चे को पवित्रता, सत्य और विवेक सीखने के लिए माँ की गोद से उत्तम कोई स्थान नहीं। सभी प्रारम्भिक और उत्तम आशाएँ, आकांक्षाएँ माता से प्राप्त करनी चाहिए, जैसा कि पिछली जिन्दगी (जीवन) में पवित्र और उत्तम विचार स्त्री द्वारा प्राप्त होते हैं। —वाहम।

३३—जो अपने पति और बालकों को सदा आनन्द में रखती है, उसके आगे सारे संसार की महारानी का वैभव भी तुच्छ है। —गोल्ड स्मिथ।

३४—स्त्री मनुष्य को सभ्यता सिखाने वाली गुरुवाइन है। —फोडीयस।

३५—पातिव्रत ही स्त्रियों का सद्गुण है। —अद्दिसन।

३६—अगर हम कभी कोई अपराध भी कर जाते हैं तो माँ को इस पर क्रोध से अधिक दुःख और खेद होता है, पर वह हमको इस कार्य पर रुष्ट हो, जुदा नहीं कर देती और न कभी इस बात को भुलाती है कि हम उसके बच्चे हैं। —वाशिंगटन।

३७—माता के स्वभाव का परिणाम उसके बालक पर होता है। —कार्टर।

३८—हे स्त्री, तू हम पुरुषों के सदृश ही मानव जाति की होकर कई कठिन प्रसंगों में मार्ग दर्शक होकर यह सिद्धिकर देवी है। तेरे में ईश्वरी अंश है। —बुलवर।

३९—मैं प्रत्येक समय और विशेष कर जब कि दूसरों की भलाई सिद्धान्तों के लिए प्रयत्नरत होता हूँ तो उन नियमों को पूर्णतः अनुभव करता हूं जो मेरी माँ ने प्रारम्भ में मेरे हृदय और मस्तिष्क पर बिठला दिये थे। —फाइल बक्स्टन।

४०—स्त्रियों के हृदयों में सदा अखंड प्रेम धारा बह करती है, जिसका सूखना कभी सम्भव नहीं। —बुलवर लिटन।

४१—स्त्री-प्रेम मनुष्य जीवन के लिए अमृत है। उसके बिना उसे (मनुष्य को)

सुख शब्द तक की स्मृति नहीं होती।

—कार्लटन।

४२—गृह मनुष्यत्व और सभ्यता का बड़ा विद्यालय है। जहाँ माता-पिता, और विशेष कर माता उस्ताद है। घर ही में महत्वपूर्ण और बड़े बड़े पाठ सीखे जाते हैं और वह शिक्षा जो यहाँ पर दी जाती है कदाचित् ही कभी पूर्णरूपेण असफलता को प्राप्त हुई हो। अतः हमको अच्छी और वफादार माताएँ जाति से चाहिए (माता बनने को) जो अपना पूर्ण समय कठिन कार्यों के करने में व्यतीत करने की योग्यता रखती हों और साथ ही हमें ऐसी माताओं की आवश्यकता है जिनके हृदय और मस्तिष्क पूर्णतयः विशुद्ध हों। —फ्रेडरिक हेस्टन।

—निरञ्जनलाल शर्मा।

बगल में लड़का शहर में ढिंढोरा



क छोटे रूमाल की सुन्दर कहानी सुनिये। हाल में गवर्नर साहब की कौंसिल में बंगाल सरकार के मंत्री मि० बीटसन बेल ने यह गवर्नर साहब के सामने कौंसिल के मेम्बर साहबों को सुनायी थी। यदि वैसे, स्थान में और एक मंत्री के मुँह से न सुनी गयी होती, तो आज बहुत लोग इसका विश्वास ही न करते।

यह सुन्दर सौर सच्ची कहानी बंगाल के श्रीमान् कारमाइकल के साथ सम्बन्ध रखती है। रूमाल एक खास तरह का रंगीन रेशमी है। श्रीमान् गवर्नर साहब की आज्ञा लेकर मि० बीटसन बेल ने उसे कौंसिल के मेम्बरों को दिखाया और कहा, कि इस नमूने के रूमाल श्रीमान् के घराने में कई पुश्तों से बर्ते जाते हैं। श्रीमान् के पिता, पितामह आदि सब ठीक ऐसे ही रूमाल अपने पास रखते थे। श्रीमान् के देश स्काटलेण्ड की राजधानी एडिनबरा की एक खास दुकान पर ऐसे रूमाल मिलते हैं। वहीं से सदा खरीदे जाते थे। रूमाल हिन्दुस्तान के बने मालूम होते थे। जब लार्ड साहब मद्रास के गवर्नर होकर भारत को आने लगे तो आपने उस दुकान वालों से कहा कि अब की बार हम तुम्हारी दुकान से रूमाल नहीं लेंगे, क्योंकि हम स्वयम् हिन्दुस्थान जा रहे हैं। वहीं से खरीद लेंगे। इतनी सहज और साधारण बात का आपने कुछ ख्याल न किया, पर जब भारत पहुँचे और वह रूमाल ढूँढ़ने लगे, तो जैसी लीला देखने में आयी, इससे श्रीमान् भी अवश्य चकित रह गये होंगे।

आपने सब से प्रथम मद्रास में वह रूमाल वहाँ के व्यापारियों को दिखाया

और वैसे ही रूमाल की इच्छा प्रगट की। व्यापारियों ने खूब गौर से रूमाल को देख भाल कर और बड़े सोच विचार के बाद कहा, ये रूमाल बंगाल के बने मालूम होते हैं, शायद वहीं मिल सकेंगे। कुछ दिन बाद जब लार्ड महोदय बंगाल के गवर्नर नियुक्त हुए और कलकत्ते पधारे, तो वहाँ भी आपने वह रूमाल व्यापारियों और रेशमी वस्त्र बनाने वालों को दिखाया। उन सब ने भी बड़े गौर से देख भालकर गर्दन हिलायी और बोले कि हम ठीक नहीं कह सकते कि यह रूमाल कहाँ का बना है, परन्तु सम्भव है, कि बम्बई की तरफ का हो—

इस राय के अनुसार रूमाल बम्बई भेजा गया। वहाँ के व्यापारी भी इस कठिन समस्या को हल न कर सके, कि उस रूमाल की उत्पत्ति कहाँ से हुई, परन्तु बहुत लोगों ने अटकल से कहा कि हो न हो, यह बर्मा का बना है। लार्ड साहब ने यह सुन कर उस रूमाल को बर्मा भी भेजा। बर्मा वाले बोले, यह हमारे यहाँ का बना नहीं है। सम्भवतः जापानी है। लार्ड महोदय ने तब वह रूमाल भारत सरकार के शिल्प और व्यापार विभाग में भेजा और जानना चाहा, कि क्या यह रूमाल जापान का है? यदि नहीं, तो असल में यह किस देश का बना है?

इतनी कहानी सुन कर बहुत से पाठक कह उठेंगे, कि बस, तब तो अवश्य रूमाल के उत्पतिस्थानका पता लग गया होगा, क्योंकि भारत सरकार का शिल्प और व्यापार का विभाग ठहरा उसे न मालूम होगा तो किसे मालूम होगा? पर जरा ठहरिये जल्दी न कीजिये; उक्त विभाग के बुद्धिमानों को तनिक विचार कर लेने दीजिये। विचार भी कोई दो चार दिन या दो चार सप्ताह ही नहीं, बल्कि कई महीने तक जारी रहा। इसके बाद उक्त विभाग ने यह बहुमूल्य राय प्रगट की, कि हमारी समझ में यह रूमाल भारत का बना नहीं है बल्कि दक्षिण फ्रांस देश का मालूम होता है। ऐसा उत्तर सुन कर दूसरा कोई होता तो यह सोच कर हताश हो बैठता, कि इतने बड़े दक्षिण फ्रांस में कहाँ कोई ऐसे रूमाल बनने का स्थान ढूंढे। परन्तु लार्ड महोदय थे धुन के पक्के। उन्होंने उक्त विभाग की बात सुन कर वह काम किया जो स्वाभाविक है अर्थात् अपने देश की उसी पुरानी दुकान को लिखा, जहाँ से सदा वैसे रूमाल खरीदे जाते थे। आपने वहीं आधे दर्जन रूमालों का आर्डर भेजा और यह भी लिखा कि यदि कोई हरज न हो तो आप यह भी बता दें, कि ये रूमाल आप कहाँ से मँगाया करते हैं और यह कहाँ के बने हैं। इस आर्डर की तामील करके सुदूरवर्त्ती स्काटलेण्ड की राजधानी एडिनबरा के उन दुकान वालों ने रूमाल भेज दिये और उनके बनाने

और मिलने के स्थान का पता भी लिख भेजा, जिसे मालूम करते ही श्रीमान् सन्नाटे में आगये हों, तो आश्चर्य्य नहीं।

वह पता किस जगह का था? क्या उत्तरीय या दक्षिणीय ध्रुवप्रान्त के किसी स्थान में वैसे रूमाल के पैदा होने की बात लिखी थी? या क्या सात समुद्र पार दक्षिण अमरिका के किसी सुदूरवर्त्ती गाँव के दिहाती बजाज का पता लिखा था? नहीं नहीं; इतनी दूर क्यों, कहीं भी जाने की कुछ जरूरत नहीं थी, क्योंकि रूमाल कलकत्ते की बगल ही में बनते हैं। उन दुकानवालों ने लिखा कि यह बंगाल के मुर्शिदाबाद नगर में बनता है, वहीं से हम मँगाया करते हैं! सारांश यह कि "बगल में लड़का शहर में ढिंढोरा" वाली कहावत सिद्ध हुई। कलकत्ते से सटा हुआ मुर्शिदाबाद, वहाँ का रूमाल ऐसा अपरिचित निकला कि बर्मा और जापान तक उसकी खोज होने लगी और हमारे शिल्प और व्यापार विभाग के लालबुझक्कड़ तो और भी दूर की चौकड़ी लगाते सीधे दक्षिण फ्रांस में पहुँच गये।

इस घटना में तीन बातें ध्यान देने की हैं। सब से पहली तो यह है श्रीमान् गवर्नर साहब की पक्की धुन। जिस बात को जानने के पीछे पड़ गये उस में लगे ही रहे और उसे जान कर ही छोड़ा। अपने ऐसेही गुणों की बदौलत युरोपियन जातियाँ सारे संसार पर प्रभुत्व जमाये हुई हैं। दूसरी बात भारतवासियों के बड़े सन्तोष की है और उन लोगों की हिम्मत बढ़ाने वाली है जो देश के शिल्प की उन्नति करने के उद्योग में लगे हुए हैं। सन्तोष इससे होता है कि प्राचीन कालीन ढाके की मलमल की तरह इस बोसवीं सदी में भी भारत के किसी प्रकार के वस्त्र की कदर युरोप में होती है। इस से आगे लिए देशी शिल्प के उद्धार की बहुत कुछ आशा होती है। अब रही तीसरी बात, क्या हमारे बिना कहे ही सरकार का शिल्प और व्यापार विभाग उसे समझ नहीं सकेगा? आशा है समझ लेगा यदि न समझा तो एडिनवरा नगर के उन रूमाल वेचने वालों से शिक्षा ग्रहण करे और विचारे कि किस तरह वे देश देशान्तरों में खोज लगा कर अपने काम के माल की खबर रखते हैं।*

भारत महिलाओं में कुविचार

(१)

"क्या तुम भूत प्रेत को कुछ नहीं समझते?"

"मैं तो कुछ भी नहीं समझता।"

"तो यह बताओ कि पाँच छः महीने तक के गर्भ कैसे लोप हो जाते हैं?"

---

* यह लेख पहले श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार में निकला था और फिर चाँद में। हमने चाँद से उद्धृत किया है।

"यह स्त्रियोँ का गर्भाशय सम्बन्धी रोग है।"

"क्या यह रोग पहिले नहीँ थे, अब ही उत्पन्न हुए हैँ ?"

"रोग का कोई समय नियत नहीँ है, पहिले स्त्रियोँ की अपेक्षा अब की स्त्रियोँ की रहन सहन मेँ बहुत भेद हो गया है।"

"आप कृपया बतलाइए कि वह भेद क्या हो गया है ?"

"भेद यही है कि आधुनिक समय की स्त्रियोँ को बच्चे जनने की बुद्धि ही नहीँ है। उनको यही मालूम नहीँ है कि गर्भवती स्त्रियोँ को कैसे रहना चाहिए, क्या खाद्य पदार्थ गर्भ के दिनोँ मेँ सेवन करना चाहिए इत्यादि बहुत सी बातेँ हैँ, जिनसे वह सर्वथा अनभिज्ञ है।"

"यह सब बातेँ व्यर्थ हैँ, शान्ती को क्या हो गया, जो बिचारी चार दिन तक पीड़ा से टेढ़ी हो हो गयी ?"

"उसमेँ भी यही दोष होना सम्भव है-"

यह ऊपर की बातेँ एक मकान के आँगन मेँ हो रहीँ थी। प्रश्नकर्त्ता एक स्त्री थी, जिसकी आयु लगभग पैँतीस वर्ष के होगी। उत्तरदाता एक नवयुवक था जो कि किसी कालिज का विद्यार्थी था। आयु लगभग चौबीस वर्ष के होगी। इसका नाम वीरेन्द्रनाथ था, परन्तु लाड़ से घर के स्त्री पुरुष वीरेन्द्र कह कर पुकारते थे। वीरेन्द्र प्रश्न करनेवाली का जामाता है। आज अपनी ससुराल मेँ बहुत दिवस के पश्चात् आया है। उसके चारोँ ओर और भी घर की स्त्रियाँ बैठी हुई हैँ, जिनमेँ से बहुत सी हँसी ठठोली भी करती जाती हैँ। शान्ती प्रश्नकर्त्ता स्त्री की पुत्री है, जिसका विवाह इसी वीरेन्द्र नामक नवयुवक से हुआ है।

(२)

संध्या का समय निकट आया। सूर्यदेव अपनी रक्तवर्ण किरणेँ समेट अस्ताचल को जा रहे हैँ। जामाता के लिए भी खाने की तय्यारियाँ होने लगी। वह भी स्त्रियोँ से छुट्टी पाकर नगर की रमणीक शोभा को देखने चल दिया। इतने मेँ एक अचानक दुर्घटना आ उपस्थित हुई। उसी गृह मेँ उपस्थित एक नववयस्क स्त्री के मस्तक तथा उदर मेँ पीड़ा होने लगी। सब गृह मेँ खलबली पड़ गई। सब चिकित्सा के लिए अपनी अपनी सम्मति प्रगट करने लगीँ। किसी ने कहा कि सय्यद की कबर पर चादर चढ़ाना चाहिए; किसी ने कहा कि बद्री स्याना बड़ा गुणी है, एक वृद्धा ने कहा कि यहाँ से चार कोस पर एक ग्राम लाटई नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ पर एक बाबा जी रहते हैँ, उन्होँने सैकड़ोँ स्त्रियोँ को अच्छा कर दिया है, यही नहीँ, वरन् वह स्त्रियाँ जिनके सन्तानोत्पत्ति की आशा ही नहीँ थी, उनके आज बाबाजी के गंडे ही की बदौलत चार चार लाल खेल रहे हैँ। अधिक

विलम्ब का समय न था, चिकित्सा आरम्भ हुई। सय्यद की कबर पर स्नान करके दादी चादर लेकर चलीं और चलते समय भग्गू नाई को बद्री स्याने को बुलाने के लिए भी भेजती गईं। सय्यद के स्थान पर पहुँच कर दादी ने एक चादर और सवा रुपया उनकी भेंट किया और हाथ जोड़ उनकी आराधना कर गृह को लौटीं। बद्री स्याना भी घर के द्वार पर मुँह फैलाये दादी की बाट जोह रहा था। दादी के आगमन के साथ उसने भी गृह में प्रवेश किया। वहाँ पहुँच कर उसने भी अपना फन्दा फैलाया। कुछ समय तक चुपचाप बैठने के उपरान्त सिर हिलाना तथा कूदना आरम्भ किया। लगभग आधा घंटे तक ऐसा करने के पश्चात् उसने कहा कि तुम्हारे घर में ब्रह्मराक्षस का कोप है, सो तुम यदि ग्यारह रुपये तथा एक लोटा दूध और एक पान का बीड़ा दो, तो मैं उनकी भेंट करूँ। ऐसा करने ही से वह शान्त होंगे नहीं तो उनका कोप बड़ा ही प्रचंड होगा। दादी यह कहाँ सहन कर सकती थीं, तुरन्त उसकी कही हुई सामग्री तथा ग्यारह रुपये सन्दुकची से निकाल समर्पण किये। बद्री मन ही मन प्रसन्न हो जय जय करता अपने गृह चला गया। इतने समय में रोग ग्रसित उस स्त्री को कुछ चूर्ण इत्यादि भी दिया गया और पीड़ा भी कुछ कम होने लगी।

(३)

लगभग दो घंटे तक हाट बाट तथा रम्य उपवनों को देख कर दीपक जलने के समय जामाता बाबू पुनः अपने श्वसुर के गृह लौट कर आये। यहाँ आकर आपने गृह की सब नारियों को सोच तथा चिन्ता में चुपचाप बैठे हुए देखा। बीरेन्द्र के चित्त में भी सन्देह हुआ कि अभी दो घंटे पहिले अपने घूमने के लिए जाने के समय तो मैंने सब को प्रसन्न चित्त छोड़ा था; इतने ही समय यह दुर्घटना क्या आ उपस्थित हुई, जो इस भाँति एक दम सन्नाटा छाया हुआ है। वीरेन्द्र भी गृह नारियों की यह दशा देख चित्त में शंकित हो बैठक में घुस गया। वहाँ कपड़े इत्यादि उतार कर वह उसी स्थान पर पड़ी हुई एक चारपाई पर जा बैठा जहाँ कि चिन्ता ग्रसित स्त्रियों का समुदाय बैठा हुआ था। भग्गू नाई पंखा हिलाने लगा। दादी ने अपनी नातिन गोमती से धीरे से कहा कि इनको भोजन परस कर ला दो, यह घूम कर आये हैं, भूखे होंगे और भोजन का समय भी हो गया है। गोमती अपने बहनोई के लिए भोजन लायी। बीरेन्द्र एक चौकी पर बैठ कर भोजन करने लगा। इतने में सामने की कोठरी से हृदय विदारक तथा करुणोत्पादक कराहने का शब्द सुनायी पड़ा, जिसको सुन बीरेन्द्र चकित रह गया। वह शब्द इस भाँति था, "अरी मइया... मरी।" अब बीरेन्द्र से न रहा गया। उसने

भोजन करना बन्द कर दिया और पूँछने लगा।

वीरेन्द्र—गोमती ! यह कराहने का शब्द किसका है ?

गोमती—आज छोटी चाची के पेट मैं पीड़ा उठी है।

वी०—मैं तो अभी बातैं करते छोड़ गया था।

गो०—जब से तुम गये हो, तबही से होने लगी।

वी०—कुछ दवा का भी प्रबन्ध किया गया ?

गो०—दादी कुछ कर तो रही हैं।

वी०—दादी तुम्हारी कहाँ हैं ?

गो०—वहीं चाची के पास बैठी हैं।

वी०—क्या तुम उनको मेरे पास बुला सकती हो ?

गो०—क्यों नहीं, अभी बुला कर लाती हूँ।

वीरेन्द्र थोड़ा बहुत भोजन कर हाथ मुँह धो फिर उसी चारपाई पर बैठा। निकट बैठी हुई गोमती की माँ ने उसको एक पान लगा कर दिया। इतने मैं गोमती दादी को बुला कर लाई। दादी को देख कर वीरेन्द्र ने कहाः

वीरेन्द्र—दादी ! क्या तुम्हारी बहू के पेट मैं पीड़ा है ?

दादी—हाँ बेटा ! जब से तू गया है, वह पीड़ा के मारे टेढ़ी तक हो हो जाती है।

वी०—इसका कुछ कारण भी मालूम पड़ा ?

दा०—कारण क्या कहूँ, तीन महीने का गर्भ था। तनिक माधो के घर चली गयी, कहने से माना नहीं। सो लौट कर आते ही यह हो गया।

वी०—दादी ! क्या माधो के घर जाने मैं ही यह पाप खड़ा हो गया ?

दा०—वहाँ तो भूत प्रेतों का अड्डा ही है और मैं मने ही क्यों करती थी ?

वी०—तो कुछ उपाय भी किया ?

दा०—जो जो उपाय सबने बताये, सब कर छोड़े, परन्तु कुछ पीड़ा अभी कम नहीं है। तनिक देर को कम हुई थी अब फिर बढ़ गयी है।

वी०—दादी ! तुम ने क्या उपाय कर छोड़े हैं ?

दा०—सय्यद पर चादर चढ़ायी। बद्री को दिखाया, वह भी ग्यारह रुपये लेकर चला गया है। अब एक गाँव लाटई नाम का यहाँ से चार कोस पर है, वहाँ एक बाबा जी हैं। सुना है कि वे बहुत पहुँचे हुए हैं। उनको बुलाने के लिए भग्गू के लड़के को भेजा है। कह तो दिया है कि जैसे बने, तैसे साथ ही ले आवे।

वी०—किसी डाक्टर या वैद्य को भी दिखाया ?

दा०—बस ! इन करमुहों का हमारे घर मैं जिक्र मत करो। जो जीने की आशा भी होगी, तो यह मार डालैंगे।

दादी की बातें सुन कर वीरेन्द्र के शरीर में मानों आग सी लग गयी। वह मन ही मन कहने लगा "हा! भारत महिलाओं में कुविचार की कुछ सीमा भी है! हा दैव! भारतनारियों के सुधार का तुम्हें कुछ भी ध्यान नहीं है; हा विधाता! क्या तुमने भारतनारियों के अधोपतन का ही बीड़ा उठा लिया है; क्या प्रभो! अज्ञानता को और कहीं स्थान नहीं है, जो सम्पूर्णतः इसको इन्हींके मस्तिष्क में स्थान दे दिया।" इस प्रकार वीरेन्द्र मन ही मन पश्चाताप करता हुआ गृह के बाहर गया और वहाँ बैठक के सामने बिछी हुई एक चारपाई पर जाकर लेट गया।

(४)

वीरेन्द्र यद्यपि चारपाई पर लेटा हुआ था। धीमी धीमी शीतल वायु भी चल रही थी, परन्तु इतने पर भी उसको चैन नहीं था। इसका मुख्य कारण यह था कि गृह के भीतर से कराहने का जो करुणोत्पादक "हा मइया" "हा मइया" का शब्द आता था, वह सीधा उसके कान में पहुँच रहा था, इसी कारण उस का हृदय चकनाचूर हो रहा था। उस क्रोध और दुःख में इधर उधर करवटें बदल रहा था। इतने में ठीक नौ बजे रात्रि के भग्गू का लड़का लाटई ग्राम निवासी बाबा जी को लेकर आया। बाबा जी के शरीर का रंग इतना काला था कि जिसकी उपमा या तो अरण्य काग या फिर जूते की काली वार्निश से ही दी जा सकती है। शरीर के आप इतने स्थूल थे कि तोंद को लेकर चलना भी अत्यन्त कठिन प्रतीत होता था। अपने हाथ में एक लोहे का चिमटा लिए केवल एक फटी लँगोटी लगाये ठीक यम किङ्कर के सदृश द्वार पर सीताराम करते हुए आ डटे। दादी बाबा जी का आगमन सुन कर तुरन्त बाहर आयी और उस ही क्षण उनको घर के भीतर ले गयीं। बाबा जी वहाँ पहुँच कर एक आसन पर बैठ गये और अपना जाल फैलाना आरम्भ कर दिया। वह मन ही मन कुछ जपने लगे। लगभग आध घंटे तक आप चुपचाप जाप करते रहे। जाप समाप्त होने पर बाबा जी ने एक गंडा बना कर दादी को दिया और कहा कि इसको बहू की गर्दन में बाँध दो। राम रक्षा करेंगे। इतना कह कर अपनी भेंट ले बाबा जी चिमटा खटकाते हुए अपने स्थान को गये। दादी ने उसी क्षण बाबा जी का दिया गंडा अपनी बधू की गर्दन में बाँध दिया। यद्यपि इतनी चिकित्सा हो चुकी थीं, परन्तु रोगी का कष्ट तनिक भी किसी भाँति न लखा और कराहने का शब्द यथावत् वीरेन्द्र के कोमल हृदय को बेध रहा था। बाबा जी के चले जाने पर वीरेन्द्र को भी निद्रा आ गयी और वह खर्राटें मार कर सोने लगा।

(५)

वीरेन्द्र को सोये अभी एक घंटा भी नहीं हुआ था कि एकाएक बड़े उच्च स्वर से क्रन्दन का शब्द सुनायी पड़ा। वीरेन्द्र एक दम चौंक पड़ा और तुरन्त उठ कर भीतर गया। उसने जाकर देखा कि रोगी की अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। उसको अपने शरीर का भी होश नहीं है। सामने मांस और रुधिर का ढेर लगा है। दादी बड़े उच्च स्वर से चिल्ला कर यों कह रही है "बेटी बुढ़िया अब कैसे जीवन पार करेगी? मेरे बुढ़ापे की तो तू ही सहारा थी। ऐ बेटी! अब मुझे चुल्लू भर पानी कौन देगा? उधर गोमती की माँ भी बड़े उच्च स्वर से रोकर कह रही थी कि बेटी! अपनी माँ के लिए भी कुछ कहती है। क्या देवर को बुलाने को तार भेजूँ।" माता का नाम सुनते ही रोगी की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली, क्योंकि यह निर्विवाद माननीय है कि मातृप्रेम से बढ़ कर संसार में किसीका भी प्रेम नहीं है और इस महान् कष्ट की अवस्था में भी रोगी के मुख से "मइया" शब्द निकल रहा था। देवर का नाम अर्थात् अपने पति का नाम सुनते ही उसको कुछ चेत हुआ और उसने अपना मुख अंचल से ढक लिया, जो कि कुछ ही समय में आँसुओं की धार से सर्वथा भीग गया। वीरेन्द्र से अब न रहा गया। उसने सब स्त्रियों को हटा कर कहा कि यहाँ से हट कर बैठो और बाहर जा अपने एक पड़ोसी मित्र की बाइसकिल लेकर शफाखाने गया और शीघ्र ही एक लेडी डाक्टर तथा एक बंगाली डाक्टर को साथ लेकर वापिस आया। दादी यद्यपि अब भी वीरेन्द्र के इस कार्य से असन्तुष्ट थी, परन्तु उसने इसकी कुछ परवाह न की। डाक्टर ने रोगी को देखा और कहा कि रोगी बहुत विलम्ब से दिखाया गया। ईश्वर ही मालिक है। शीघ्र ही डाक्टर ने एक दवा शीशी से निकाल कर मस्तक पर लगाई, जिसके लगाते ही रोगी को तत्क्षण चेत हुआ। चेत होने पर रोगी को एक दूसरी चारपाई पर लिटाया और सब मैला कमरे से हटवाया। लेडी डाक्टर रात्रि भर रोगी के पास रहीं और समय समय पर औषधि देती रहीं। ईश्वर की कृपा से रोगी का कष्ट कम होने लगा। इसके उपरान्त प्रातःकाल लेडी डाक्टर चली गईं और उस दिन से प्रति दिन एक बार आने लगीं। इस प्रकार लगभग पन्द्रह दिन में रोगी को पूर्णतः आराम हो गया।

भारत भगिनियो! कब तक ऐसे दुष्टों के फंदों में पड़ कर हानियाँ उठाने का विचार है। प्रति वर्ष सर्वत्र ऐसे ही उदाहरण देखने में आते हैं, परन्तु फिर भी अज्ञानता तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ती। स्मरण रहे कि रोग की चिकित्सा केवल औषधि ही से हो सकती है। भूत प्रेत

बतलाने वाले ठगों के फन्दे में पड़ कर जीवन पर कुठार चलाना केवल अपने पाँव पर अपने हाथ से कुल्हाड़ी मारना है।

—चतुर्भुजसहाय चतुर्वेदी

एक कन्या का संतोष



प्रिय बहिनो वा माताओ! आज मैं आप सब को एक कन्या का जीवन चरित्र सुनाती हूँ। यह उपदेशप्रद चरित्र बाबू रामगोपाल जी की नेक कन्या सुशीला देवी का है। बाबू जी के केवल एक पुत्र व पुत्री है। पुत्र का नाम कृष्ण-कुमार है। बाबू रामगोपाल जी स्वभाव के बड़े सरल और सज्जन पुरुष हैं। सुशीला की माता का नाम गुणवती है। सुशीला का प्रेम अधिकतर अपने छोटे भइया कृष्ण पर है। रामगोपाल को गोरखपुर में प्लेग होने के कारण एक गाँव में जाकर बसना पड़ा। परमात्मा की लीला का पार किसी ने नहीं पाया। आज जो एक धनी पुरुष की कन्या है, कल्ह उसकी क्या दशा होगी, आज जो सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित है, कल्ह उसके पास कुछ भी न रहेगा, आज जो सुशीला दिन में तीन बार भोजन करती है, कल्ह उसको एक बार भी भोजन मिलना दुर्लभ हो जायगा—यह कौन जानता है।

* * *

हे परमात्मा! तुम्हारी लीला अपरम्पार है। प्यारी बहिनो! भगवान के इस नियम के अनुसार सुशीला देवी जो एक धनी मनुष्य की कन्या हैं, वही आज एक बन में बैठी भइया कृष्ण को खिला रही हैं। जो भइया किसी वस्तु के लिए हठ करता है, तो सुशीला बहुतेरी बातें कह कह कर अपने कृष्ण को बहलाती है। सुशीला बोली, "सुनो भइया! अच्छे लड़के तुम्हारी भाँति हठ नहीं करते, इधर देखो, मैं तुम्हें एक कहानी सुनाती हूँ। एक दीन बालक अपने पड़ोस से रोटी माँग कर अपने दरवाजे पर बैठ कर खाने लगा, इतने में एक कौवा उस बालक की रोटी छीन कर उड़ गया। बालक भूखा तो था, परन्तु रोया तनिक भी नहीं, कारण कि वह बुद्धिमान था।" कृष्ण पश्चात्ताप कर बोला, "जीजी! वह लड़का अवश्य मेरी भाँति रोया होगा।" सुशीला बोली, "क्या वह तुम्हारी भाँति मूर्ख था, जो रोता। कृष्णने कहा, "जीजी, तो क्या मैं मूर्ख हूँ?" सुशीला ने कहा "मूर्ख नहीं हो, तो क्या बुद्धिमान हो।" कृष्ण बचपन ही की हँसी हँसता हुआ, बोला, "जीजी, नहीं नहीं, मैं तो मूर्ख नहीं हूँ, मैं बड़ा बुद्धिमान हूँ।"

पाठिकाओ! अब आपको स्वयम् ही ज्ञात हो गया होगा कि कृष्ण क्यों रो रहा है। सुशीला बहला तो लेती है किन्तु वह अपने सुकुमार भइया की व्याकुलता देख नहीं सकती है। परन्तु करती क्या? कृष्ण

बोला, "जी जी ! मुझे जब भूख लगती है, तब मैं तुम से भोजन माँगता हूँ।" कृष्ण ने लजाते हुए यह कह कर उठने की चेष्टा की। सुशीला भाई की ओर देख कर स्वयम् भी खड़ी हो गई और कृष्ण को खिलाने लगी।

प्यारी भगनियो ! जिस पेट के लिए बालक रो रो कर माता पिता के हृदय को हिला देता है और बिना उदर भरे चुप होना जानता ही नहीं, उसी पेट के कारण बिचारा दीन कृष्णकुमार आज बहिन का मुख निरख रहा है। सुशीला जानती सब कुछ है, किन्तु करती ही क्या? इस दारुण कष्ट से छुटकारा पाने के लिए उस के पास सिवा दो रोटियों के और था ही क्या, किन्तु सुशीला चाहती है, कि भइया तनिक बिलम्ब और संतोष करे, तो रोटी दूँ, नहीं मालूम अब कब भगवान रोटियों के दरशन दें। इसी प्रकार विचारती विचारती एक पेड़ के नीचे भाई सहित जा बैठी और थोड़े से फूल बीन कर कृष्ण के सन्मुख रख दिये। कृष्ण प्रसूनों से खलने लगा। खेलते खेलते दुर्भाग्य वश पीली बर्र ने कृष्ण को काट लिया और वह रोदन करने लगा। सुशीला अचानक भाई को रोते देख विकल हो गई और शीघ्र ही उसने भाई को गोद में ले लिया। सुशीला बोली, "भइया ! क्यों रोते हो?" कृष्ण ने कुछ उत्तर न दिया। केवल अपना सूजा पैर बहिन के संमुख कर दिया। सूजा देख कर वह कन्या और भी व्याकुल हो गई और कहने लगी, "हे ईश्वर किस पातक के कारण तुमने यह आपत्ति में आपत्ति डाल दी है।" सुशीला कृष्ण को चुप करा कर बोली, "सुनो भइया ! रोओ मत। चलो, तुम्हें झोपड़ी की ओर ले चलें।" सुशीला भूखी तो थी ही, भूख के कारण झोपड़ी तक भी न पहुँच पाई, मार्ग में ही भूख के मारे व्याकुल हो कर गिर पड़ी। प्यारी बहिनो ! आपको अभी यह न ज्ञात हुआ होगा कि सुशीला कितने दिन की भूखी थी। सुनो, देश बहिनो ! सुशीला को दो दिन से अन्न नहीं मिला था और जो दो रोटियाँ मिली भी थीं, वे अपने भइया को रक्खे थी। वह यह विचारती थी, कि यदि ये रोटियाँ मैं खालूँगी, तो मेरा प्यारा सुकुमार भइया क्या खायगा। प्यारी भगनियो ! सुशीला मूर्छा के विगत होते ही अपनी झोपड़ी की ओर चल दी। जब झोपड़ी के समीप पहुँची, तो देखती क्या है कि माता पिता वार्तालाप कर रहे हैं। उसने सोचा, यदि मैं जाऊँगी, तो भइया के रोने के कारण माता पिता की बात चीत में विघ्न पड़ जायगा, यह विचार कर सुशीला झोपड़ी के बाहर ही रुक गई। तो क्या सुनती है कि पिता माता जी से कह रहे हैं—

पिता—प्रिये ! आज एक अतिथि द्वार पर आया है। बताओ, मैं उसको क्या भोजन दूँ ? मेरे गृह में तो एक

रोटी का भी ठिकाना नहीं दीख पड़ता। हाय! ये अतिथि क्या आज मेरे द्वार से बिना भोजन किये ही चला जायगा?

माता—हे नाथ! मेरे पास तो और कुछ नहीं है, केवल पुत्री सुशीला के दो पैसे तो अवश्य हैं, वही ले जाइए। चबेना लाकर जल पान करा दीजिए।

पिता—हाय! एक दिवस वह था, जब यही अतिथि गोरखपुर में गया था, तो मैं ने इस के लिए भाँति भाँति के पदार्थ बनवाये थे और मैं ने व अतिथि ने साथ ही साथ प्रसन्नता पूर्वक भोजन किया था और एक दिन ये हैं कि मैं एक समय का भोजन देने योग्य भी न रहा। इतना कह कर रामगोपाल दुख करने लगे। स्वामी के दुःखित होने का तात्पर्य गुणवती ने समझ लिया। वह बोली. "स्वामी! आप सोच क्यों कर रहे हैं। क्या किसी के दिन सदैव एक ही भाँति बने रहते हैं, क्या ये कष्ट अकेले आपही को सहन करना पड़ा है? यह दुःख तो बड़े बड़े राजा महाराजाओं ने भी सहन किया है।"

पाठिकाओ! अब आप स्वयम् ही समझ गयी होंगी कि माता पिता का यह वार्तालाप सुन कर सुशीला की क्या दशा हुई होगी। सुशीला कसीदा काढ़ना आदि जानती थी। सुशीला जब झोपड़ी के अन्दर गई, तो माता ने सब वृत्तान्त पुत्री से कह दिया। सुशीला बोली, "माता जी! मैं ने जो आपके पास दो पैसे रक्खे थे, यदि खर्च न हो गये हो, तो दे दीजिए।" माता ने कहा, "वह पैसे तो मैं ने अतिथि के हेतु रक्खे हैं।"

सुशीला ने कहा, "मैं भी अतिथि के लिए ही चाहती हूँ।"

सुशीला पैसे लेकर गई और उन्हीं पैसों से सूत की लच्छियाँ मोल ले आई और उसी सूत से सुन्दर सी एक नकटाई बना कर समीप के जिमीदारों के यहाँ बेचने के हेतु गई और नकटाई का मूल्य चार आना कहा। जिमीदारिन ने तनिक मूल्य न घटाया, दीन जान कर पूर्ण चार आने दे दिये। पैसे लेकर सुशीला सीधी घर चली आई और उन्हीं पैसों से रसोई की सामग्री मंगा कर भोजन बनाया और स्वयम् ही परोस कर अतिथि के लिए द्वार पर ले आई।

अतिथि ने पूँछा, "बेटी! तुम किसकी पुत्री हो?"

सुशीला बोली, "मैं बाबू रामगोपाल जी की कन्या हूँ।" अतिथि सुशीला के नम्र बचनों और सतकार से बहुत प्रसन्न हुआ। सुशीला बड़ी नम्रता से बोली, "महाराज! आज आप को हमारी दरिद्रता वश ऐसा भोजन करना पड़ा।" अतिथि ने कहा, "बेटी! भोजन अति उत्तम बना है। ऐसा भोजन तो मैं ने कदाचित्

ही किया हो। तुम्हारी श्रद्धा व प्रेम से किया हुआ भोजन मैं ने भी प्रेम से ग्रहण किया।" अतिथि को विदा कर सुशीला झोपड़ी के भीतर चली आई।

पाठिकाओ! अभी आप ने बाबू जी की दरिद्रता का कारण न समझा होगा। उनकी दरिद्रता का कारण केवल यही था कि गोरखपुर से गाँव आने के कुछ ही दिवस पश्चात् अभाग्य वश रामगोपाल जी के ग्रह में अचानक डाँकुओं ने आक्रमण किया और बाबू जी के गृह में कुछ भी शेष न रक्खा, सब कुछ उठा ले गये। बस पाठिकाओ! तभी से रामगोपाल को दरिद्रता ने आ घेरा। नहीं तो पहिले ये बड़े धनी पुरुष थे। हे पाठक पाठिकाओ! लेख बड़ा हो जाने के कारण इतना ही लिख कर समाप्त करती हूँ और आशा करती हूँ कि हमारी अन्य बहिनें भी ऐसा समय आने पर १० वर्ष की आयु वाली कन्या सुशीला देवी का अनुकरण अवश्य करेंगी।

—पुत्री पं० शिवप्रसाद मिश्र

———

गज़ल

बहिन विद्या ? अविद्या ने
यह भारत देश घेरा है।
सुमति ने कूच कीन्हा है
कुमति का अब बसेरा है॥
देश उन्नति का गाते गीत हैं
घर घर में नर नारी।
असल में अवनती ने याँ
जमाया आय डेरा है॥
पठन के नर विरोधी हैं
न निज अबला प्रबोधी हैं।
पुत्रियाँ जो अशोधी हैं
न दुख उनका निबेरा है॥
कथन को वेद श्रुति जानें
सभा में वाद नित ठानें।
कहो सत सो नहीं मानें
किया मन दंभचेरा है॥
न पुत्री जन पढ़ाते हैं
योग्य नर नहिं मिलाते हैं।
ख़राबी यह बढ़ाते हैं
इसीसे द्वेष-फेरा है॥
सभी मिल एक मत होवें
बुराई दाग़ सब धोवें।
कपट की नीम झट खोवें
न समझें मेरा तेरा है॥
धरें पग धर्म्म-पथ में सब
दशा भारत की सुधरे तब।
राज है न्यायकारी अब
उठो अब भी सबेरा है॥
यों विद्यावति की विनती है
दिनों की हो न गिनती है।
भलाई जों लों बनती है
करो उद्देश्य मेरा है॥

—विद्यावती देवी

———

श्रीमती विन्दुवासिनी देवी

जिस देवी का चित्र आप देख रहे हैं, इन्होंने लाहौर में कानकुब्ज ब्राह्मण पं० काली प्रसाद जी के यहाँ ३० अक्टूर सन् १८८६ ईसवी में जन्म लिया था। आपका नाम है, श्रीमती विन्दुवासिनी देवी। आप कई भाषाएँ जानती थीं। हिन्दी उर्दू में आप को अच्छी योग्यता थी। संस्कृत और बँगला भी अच्छी तरह जानती थीं। अँग्रेजी में भी थोड़ा बहुत ज्ञान था। आपने "गृहस्थ धर्म दर्पण" और "भजन मंजरी" नामक दो एक पुस्तकें बनायी थीं। आप व्याख्यान दाता थी, कवि थीं। २७ वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रह कर देश सेवा की थी। फ़ोटो उतारना भी अच्छा जानती थीं, हारमोनियम बजाना जानती थीं, और उस के साथ बड़ी सुन्दरता के साथ गाना गा लेती थीं। मशीन में कपड़े सीना, फूल काढ़ना, जाली बनाना आदि सब तरह की दस्तकारी में अच्छी योग्यता रखती थीं।

कुमारी जी को बाल्यावस्था में बाबू दुर्गाचरण मुकरजी ने पढ़ाया लिखाया, फिर उन्होंने मिस बोस से विक्टोरिया स्कूल में शिक्षा दिलायी।

१९०७ में कुमारी जी ने देहली के "इन्द्रप्रस्थ-हिन्दू गर्ल्स स्कूल" में मुख्य अध्यापिका का चार्ज लिया। वहाँ की लेडी सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस गुमानियर के अधीन इन्होंने जून सन् १९१३ तक बड़ी योग्यता से काम किया। इनके समय म स्कूल ने अच्छी तरक्की की। वह लोअर प्रायमरी से मिडिल स्कूल हो गया। उस साल मिडिल की परीक्षा में इनके स्कूल की जितनी लड़कियाँ थीं, सब की सब पास हो गयीं।

विन्दुवासिनी जी ने देहली ही में एक सभा, "स्त्री शिक्षा-प्रचारिणी सभा" नामक खोली, जो अब तक बड़ी उत्तमता से अपना काम चला रही हैं। इसी की एक शाखा सभा उन्होंने लाहौर में भी खोली वह भी अभी तक चली जाती है।

देहली दरबार की यादगार में आप ने एक "मेरी भवन" खोला। और उसके फन्ड में १९०० रु० जमा करवा दिये।

इनका विवाह ७ जुलाई १९१३ को श्रीयुत पं० हजारी फतेह सिंह तेवारी जी के साथ विना ठहरौनी के हुआ।

शोक है, कि गत २ दिसम्बर सन् १९१४ को मिसेज़ पाल के इलाज में ज़नाने अस्पताल में आप की मृत्यु हो हो गयी। ईश्वर इनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

—श्रीमती का एक परिचित

कुछ परीक्षित औषधियाँ

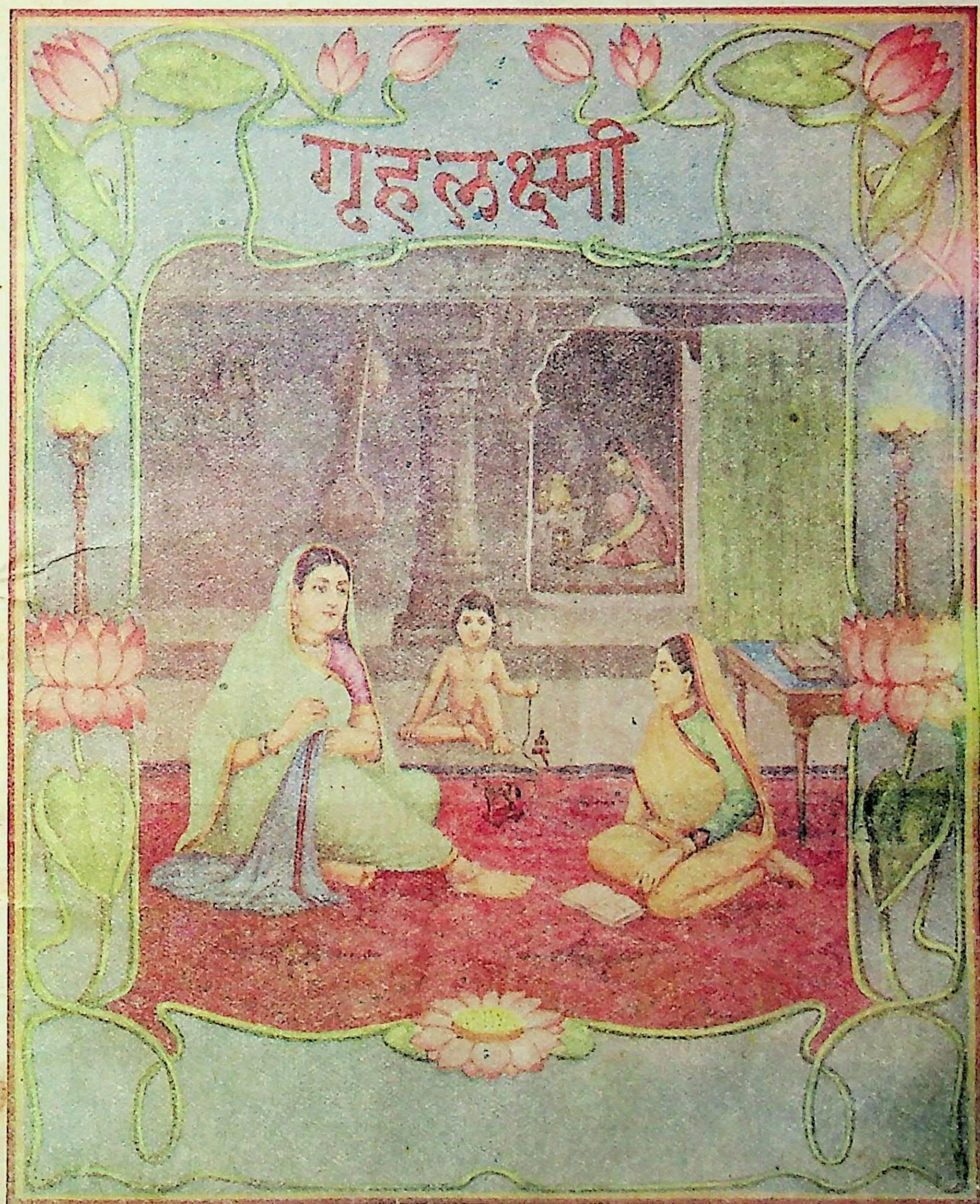
यकृत और प्लीहा की वृद्धि में अरण्ड खर्बूजा या पोपैया—अरण्ड खर्बूजे को पोपैया और बहुत लोग भूल से पपीता भी कहते हैँ। अंग्रेज़ी मैँ इसको पेपा कहते हैँ। इसका वृक्ष भी एक प्रकार का अरण्ड ही है। इसका पका फल बहुत मीठा होता है और वही औषधि के काम मैँ लिया जाता है यह अत्यन्त पाचक होता है। भोजन के बाद एकाध पका फल खाने से भोजन शीघ्र पच जाता है। भूख खूब लगती है और दस्त खुलासा आता है। इसमैँ मांस को गलाने की शक्ति है इस कारण यह प्लीहा और यकृत् के शोथ को शीघ्र ही दूर करता है। परन्तु पित्त की अधिकता और यकृत् मैँ अधिक गर्मी होने पर इसका सेवन लाभकारक नहीँ किन्तु हानिकारक है।

अजवायन का सत्त्व—अजवायन के सत्त्व को अंग्रेज़ी मेँ 'थिमाल' कहते हैँ। इसमैँ एक प्रकार ही उत्तम और तीव्र गंध होती है इस कारण इसको जंतुनिर्मूलक और दुर्गंधनाशक औषधियोँ मेँ गणना की जाती है। एक भाग थिमाल मैँ एक सहस्र भाग पानी मिला लेने से इसमैँ विष नाशक (ऐण्टी सेपटिक) शक्ति पैदा हो जाती है। दुर्गंध, सड़न आदि दूर करने के लिये और घर की हवा को शुद्ध करने के लिये घर मैँ या अन्य स्थानोँ मैँ इसको डालना चाहिए। क्षय रोग मैँ यह एक उत्तम औषधि समझी जाती है। क्षय रोग मैँ इसको कुछ दिनोँ तक नियम पूर्वक सेवन करने से क्षय रोगी के ज्वर और दस्तोँ मैँ बहुत कमी हो जाती है। हैजे मैँ इसको ७ ग्रेन तक देने से और मधुमेह रोग मैँ इसको आधी ग्रेन से १॥ ग्रेन तक देने से अच्छा फल होता है। इसमैँ जंतुनाशक गुण विशेष होने के कारण यह कारबोलिक एसिड की समान पानी मैँ मिला कर जख्म-घाव आदि के धोने मैँ अथवा मलम मिलाकर घाव पर लगाने के काम मैँ आता है। गजकर्ण, आदि त्वचा के रोगोँ मैँ थिमाल को सादे मलम मैँ या वैसलीन मैँ मिला कर लगाने से विशेष लाभ होता है। मच्छरोँ के त्रास से बचने के लिये १ भाग थिमाल को १० भाग वैसलीन मैँ मिला कर शरीर पर मालिश करना चाहिए। थिमाल को पानी मैँ घोल कर बिच्छू, ततैया आदि जंतुओँ के काटेस्थान पर लगाने से अधिक लाभ होता है। इसको गरम जल मैँ घोल कर उसकी भाफ लेने से अन्ननाली और श्वासनाली की दाह दूर होती है। डाढ़ की भयंकर पीड़ा मैँ भी इसकी भाफ लेने से विशेष उपकार होता है।

(वैद्य)

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।

Registered No. A. 511
[illegible] वर्ष] कार्तिक, मार्गशीर्ष, सम्वत् १९७२ [अष्टम, नवम दर्शन



वार्षिक मूल्य २।)] सम्पादक— [प्रति संख्या =)॥
पण्डित [illegible] श्रीमती गोपालदेवी ।

विषय-सूची पृष्ठ

प्रो० मलिकपेटकर की

बवासीर, प्रसूत और क्षय (दिक) की

अवश्य लाभ पहुंचानेवाली औषधियां

ऊपर कहे हुए रोगों को लोग असाध्य समझते हैं परन्तु हम दावे के साथ कहते हैं कि इन रोगों पर जो औषधियां प्रो० मलिकपेटकर ने ईजाद की हैं वे अवश्य लाभ पहुंचाती हैं और इनके सेवन करने में न तो किसी प्रकार की कठिनाई पड़ती है और न किसी को धार्मिक दृष्टि से ही आपत्ति हो सकती है, क्योंकि यह दवाएं केवल जंगल की जड़ी बूटियों से तयार की गयी हैं। जिन लोगों को विश्वास न हो उनसे हमारी यही प्रार्थना है कि वे ऊपर कहे हुए रोगों से पीड़ित रोगियों को हमारे पास लावें हम उनका इलाज मुफ़्त में बिना कुछ लिए हुए ही करेंगे। लाभ होने पर उनसे उचित पुरस्कार लिया जावेगा। रोगियों को या उनके संरक्षकों को निम्न लिखित दो पतों में से किसी भी पते से पत्र व्यवहार करना चाहिये।

(१) पं० प्रभाकरराव शंकरराव,
कचाबाड़ा, दारागंज—प्रयाग।

(२) मैनेजर,
गृहलक्ष्मी, प्रयाग।

नई पुस्तक — भ्रातृ-द्वितीया — नई पुस्तक

भैय्या दोयज (भ्रातृ द्वितीया) पर बहिनों को उपहार में देने योग्य स्त्री-शिक्षा की एक अपूर्व पुस्तक। आरम्भ में एक बहुत ही मनोहर रङ्गीन चित्र है जिसमें बहिन अपने भाई को भ्रातृ-द्वितीया के उपलक्ष्य में भोजन करा रही है और टीका काढ़ रही है। इसके लेखक हैं श्रीयुत गोपालनारायण सेन सिंह बी० ए०। इसमें निम्न लिखित विषयों पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया गया है। विषय ये हैं—

देवियों से प्रार्थना, बाल विवाह और शिक्षा, परदे की प्रथा, रोगी-सेवा, नौकरों से वर्ताव, रहन-सहन, गृह-शोभा, विधवाओं की दशा, पठन-पाठन, कन्याओं का स्वास्थ्य, भारत में स्त्री-संख्या का ह्रास।

पुस्तक का सर्वसाधारण से मूल्य ।=) किन्तु गृहलक्ष्मी के ग्राहकों को यह पुस्तक ।) आने में दी जायगी। जल्दी मँगाइये क्योंकि पुस्तक थोड़ा ही छपी है।

मैनेजर, गृहलक्ष्मी-कार्य्यालय, प्रयाग।

व्यास की शोधी हुई हरैं

हमारी बनाई हुई हरैं अपने नाम का पूरा असर रखती है। यह ज़ायके और फायदे में अपना सानी नहीं रखती।

एक महात्मा ने जो कि वैद्यक शास्त्र के पूर्ण पंडित थे तमाम वैद्यक शास्त्र और अपनी जिन्दगी में दवाइयों के तजरबे से पेट के लिये अत्यन्त हितकारी समझ कर इन हरों को ईजाद किया है। इनके खाने से सब तरह के पेट के रोग जैसे पेट फूलना, खट्टी डकार का आना, वायु रुकना, जी मचलाना, अरुचि, पेट का दर्द, पतला दस्त आना, मन्दाग्नि, वायुगोला, कब्ज, अन्न का न पचना, यह सब रोग दूर होते हैं और हाजमे की ताकत बढ़ती है। विशेष गुण यह है कि यह खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट हैं जिससे मनुष्य मात्र बड़े प्रेम के साथ इन्हें सेवन कर सकते हैं।

हर गृहस्थ को उचित है कि ऐसी अनमोल चीज की एक डिब्बी को हमेशा जरूरत के वक्त के लिये अपने पास तैयार रक्खै। मूल्य प्रति डिब्बी ।) जिसमें १०० हरैं रहती हैं। आठ डिब्बी एक साथ लेने वाले को एक डिब्बी ज्यादा मिलेगी।

☞ दूसरी दवाओं के लिए स्वास्थ्य-संजीवनी पत्रिका हमारे यहाँ से मँगा कर देखिये।

पता—राजवैद्य पंडित रमाकान्त व्यास, कटरा, इलाहाबाद।



बास बहार आइल।

यह तैल बड़े परिश्रम से तय्यार किया गया है। इस तैल से दिमाग़ की कुल बीमारियां दूर होती हैं। आंखों की रोशनी बढ़ती है। बाल काले काले घूँघर वाले रेशम के समान सुन्दर बन जाते हैं। यह तैल खालिस तिल के तैल और वन औषधियों से तय्यार किया गया है। ज्यादा प्रशंसा करना व्यर्थ है। एक बार मँगा कर आजमाइये तो अपने आप मालूम हो जायगा। मूल्य एक शीशी ॥।=) ३ शीशी २।) ६ शीशी ४) १२ शीशी एक साथ मँगाने से ७॥) रु० में ही भेजी जाती हैं।

मँगाने का पता—

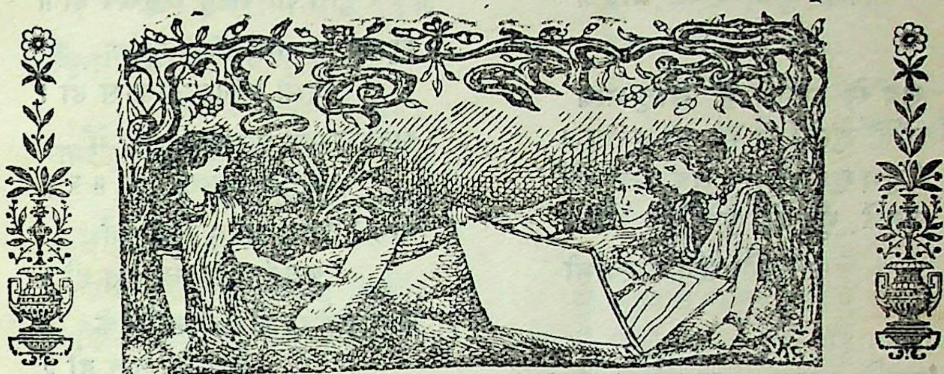
बृजविहारीलाल शर्म्मा,

कर्नैलगंज-इलाहाबाद।



श्रीमती माता जी तपस्विनी

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग ।



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः

"सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, कार्त्तिक, संवत् १९७२ [अष्टम दर्शन

"गृहलक्ष्मी"

(१)

करतीं जो स्वामी का सुमान
रक्खें स्वप्रेम उन में महान।
"दुख का हो उन्हें न कभी स्वप्न"
यह इच्छा रखतीं नारि-रत्न॥

(२)

सब ही से मीठे वचन बोल
देती ज्यों मधु में सुधा घोल।
सब के सु-प्रेम का महा लाभ
करवा देता उनका स्वभाव॥

(३)

गुरुजन की सेवा कर सप्रेम
है—कथन मानना सदा नेम।
अच्छी महिलाओं की महान
रहती है सन्तत यही बान॥

(४)

दिन रात गृहस्थी के सुकाम
कर छुट्टी पातीं जब सुवाम।

तब सुन्दर पुस्तक का सुपाठ
करती हैँ सुख से बैठ खाट ॥

(५)

सब से रखती हैँ भ्रातृ-भाव
नहिँ भृत्योँ से भी हो दुराव ।
"शुभ गृहलक्ष्मी" सब उन्हेँ कहैँ
उनके गृह से दुख दूर रहैँ ॥

—गोवर्द्धन गोस्वामी

नारी प्रातः प्रार्थनाष्टक

सो०—कोमल कर की छाँह,
सर्व रात्रि शिर पर रही ।
कैसेक प्रभुहिँ सराहुँ,
प्रेम अमित कहि ना सकहुँ ॥१॥

दो० मन वाणी के शुद्ध हित,
तदपि करहुँ गुन गान ।
हरि समर्थ सब भूलि को,
छमि हैँ अपनी जान ॥ २ ॥

छन्द—जय विश्वम्भर जगत स्वामी
जयति जय पूरण हरे ।
कोटि सूर्य्य प्रकाश सम तव
रूप वर्णन श्रुति करे ॥
ब्रह्म, शिव, सनकादि, नारद,
शेष, शारद, ध्यावते ।
अगम मायातीत महिमा
अन्त कबहुँ न पावते ॥ १ ॥
प्रति हृदय की बात जानहु
सुख-निधान स्वरूप हो ।
जो कुछ विचारहुँ जो कहहुँ
पुनि जो करहुँ अनुरूप हो ॥
सृजत, पालत, प्रीति पूर्वक
प्रभो ! नित्य-प्रकास हो ।
सदा तुम्हरे कमल चरणोँ मेँ
अटल विश्वास हो ॥ २ ॥
नाथ ! नाहिँ अदेय तुम कहँ
कबहुँ कुछ सब देत हौ ।
नाम लेतेही सकल जन्मोँ के
अघ हर लेत हौ ॥
देत हौ निज धाम अति
अभिराम छन सुमिरन किये ।
तनिक दृढ़ ह्वै जपहि जन
विश्वास करि तौ रस पिये ॥३॥
निरखिये अब तौ दयालो !
विलँब भा हम को खड़े ।
हाथ जोड़े शिर नवाये
नयन ते जल ढर रहे ॥
देवियाँ इक दिन हतीँ
जो गिरीँ वे इकबारगी ।
सती, सीता, गान्धारी,
कहाँ ? गौरी, गार्गी ॥ ४ ॥
कीर्ति जिन कीने कि भारत को
जगामग कर दिया ।
उसी पावन भूमि मेँ प्रभु !
देह ये धारण किया ॥
नाथ ! इसकी लाज रखना
रावरे ही हाथ है ।

प्रभो ! तुम्हरे कमल पद महँ
नमित हमरो माथ है ॥ ५ ॥

विभो ! करुणा करो अथवा
धसैं धरा समायँ हम ।
नाम तुम्हरे महँ कलुषता
कबहुँ नाहिँ लगायँ हम ॥
जियँ जीवन वह जियँ
जेहि पती सह तुम महँ मिलैं ।
निशि दिवस तन, मन, बचन
निश्छल भाव सोँ लागी रहैं ॥६॥

राग, रोष, कुसंस्कार,
कुबुद्धि, सकल नसाइये ।
झूठ, निन्दा, छल, कपट सोँ
हमहिँ नित्य बचाइये ॥
सत्य, दान, ऽरु प्रेम युत
हिरदै बलिष्ठ बनाइये ।
क्या चरित निर्मल, सुमारग पथ,
हमहिँ दरसाइये ॥ ७ ॥

सदा शंकर सरिस फलप्रद
नित्य सुखपति को लखैं ।
मन मधुप हमरे सदा
अरविन्द पतिपद रस चखैं ॥
सर्वदा सब मँ समुझि तोहिँ
पाप कबहूँ ना करैं ।
अन्त की बेला तुम्हैं हम
देखती सुख से मरैं ॥ ८ ॥

सो०—अभिमत फल दातार,
दयासिन्धु पूरण धनी ।
हमरे तुमहीं सार,
सुख-निधान त्रिभुवनमनी ॥३॥
—रामकिशोरी देवी

वीरबाला

(लड़कियोँ का खेल)

१२ कन्याओं को एक पांति में रखिए। आगे चल कर उनकी चार चार की तीन पांतियां आगे पीछे हो जायंगी। एक सरदार अलग से बोलेगी। पोशाक—वीरबाला की सी—लंग लगा कर धोती—कमर कसे—वेणी लटकती—हाथ में धनुष बाण—पीठ पर ढाल, कमर में तलवार—कपड़े सब पीले रंग के।

(१)

[१२ हों एक पांति में खड़ी-समस्वर से]

सावधान ! सावधान !!
कर मैं लेकर तीर कमान
भारत जननी आगे आतीं
ध्यान धरो भारत सन्तान !
करो हमारी पूजा लोग
चूको न अब यह संयोग
हम सब का आदर करने से
जग मैं पाओ सुख सामान ॥

(२)

[सरदार कन्या का भाषण,
कुछ अलग खड़ी होकर]

एक दो और तीन चार
बढ़ती आओ अबकी बार

पाँति पाँति से खड़ी रहो सब
साबधान से धरो कृपाण।
सीधी खड़ी रहो सब कोय
पग से पग भी मिलता होय
हाथ दाहिने धरो धनुष को
बाँये कस के लीजो बाण॥

(३)

पाँव दाहिना चलो उठाय
आगे बढ़ना पाँव मिलाय
पाँति किसीकी टूट न आवे
हिले नहीँ कर तीर कमान।
बढ़ती जाओ, बढ़ती जाओ
हल्ट, हुकमदर, झट ठहराओ
बायेँ को मुड़ जाओ स्यानी
पाँति न टूटे रखना ध्यान॥

(सावधानी से मुंह मोड़ कर पांति बदलेंगी)

(४)

फिर आगे को बढ़ती जाओ
बढ़ती जाओ, बढ़ती जाओ,
हल्ट हुकमदर, पग ठहराओ,
पहली पाँती घुटने टेको
हाथ धरो सब तीर कमान।
मारो तीर अति गम्भीर
फिर भी मारो तीखे तीर
छिद जावे जर्मन की छाती
हाथ धरो फिर पैने बाण॥

(५)

होय खड़ी फिर रहो तयार
बायेँ घूमो अब की बार
एक पाँति मेँ फिर सब कोई
हो जाओ झट, यही निदान।

(पांति तोड़ने में गड़बड़ न हो। एक एक पांति एक साथ हटे)

गाओ गीत करके प्रीत
दूर करो सब मन से भीत
भारत माता की जय बोलो
रूल ब्रिटेना छेडो तान॥

सब लड़कियां—भारत माता की जय!
भारत माता की जय!!

(६)

[सब लड़कियां—एक लैन में खड़ी होकर समस्वर से—]

सीता कुन्ती औ कौशल्या
रहीँ पुरानी भारत कन्या
सब ने जाये वीर पूत थे
सब ने राखा भारत मान।
धर्म वीर कर्मोँ के वीर
विमल चरित औ विपुल शरीर
भारत कन्या ने उपजाये
इसका तुम सब रखना ध्यान॥

(७)

हम सब भी भारत की कन्या
क्योँ ना जग मेँ होवेँ धन्या
वीर सुता वीरोँ की पत्नी
वीर जननि होँ ये अरमान।
दीजे हम को शिक्षा दान
हरो हमारा सब अज्ञान

भारत की कन्या कहलावेँ
रक्खें हम भी भारत मान ॥ *

—गिरिजाकुमार घोषः

भारत माता का ध्यान

गिरिवर जिसके मुकुट रूप मेँ
सिर पर सोभा धारे।
वारिराज जिसके चरनोँ को
सुख से सदा पखारे॥
विन्ध्याचल कटिभूषण जिसका,
गंग कंठ की माला।
षड्ऋतु जिसकी पूजा कारण
फूल चुनेँ भर डाला॥
मलय चमर लेकर के कर मेँ
जिन पर सदा डुलावे।
कमल सरीखी लंका
जिसके चरनोँ सोभा पावे॥
कोटि कोटि सन्तति ले गोदी
प्रेम पयोधि पियावे।
भूख अन्न, प्यासे को पानी,
आठोँ पहर दिलावे॥
रूपरासि गुनखानि धरातल
जिसके सम नहिँ और।
वही हमारी भारत माता,
सीस नवूँ कर जोर॥

—गिरिजाकुमार घोषः

द्यूत

दीप मालिका निकट,
मोँहि अति चिन्ता भारी।
खेलि हैँ स्वामी द्यूत,
करैँ व्यय बिना विचारी॥ १॥
सब विधि पिय से कहा,
नहीँ मानैँ समुझाई।
विधि ने क्या रचि दई,
कर्म मेँ करन पिसाई ?॥ २॥
हे ! अलि जाओ त्वरित
कह्यौ पिय सोँ बहु भाँती।
अर्द्धाङ्गिनी कलेश बड़ो,
गृह सम्पति जातो॥ ३॥
जब निर्धन ह्वै जाव,
दशा फिर हुइहै कैसी।
वेगि करहु परित्याग,
ग्रहण कर शिक्षा ऐसी॥ ४॥
चोरी अरु व्यभिचार
सर्व दुष्कर्म यही जड़।

* कवीश्वरों की दृष्टि में इस खेल में छन्द सम्बन्धी अनेक त्रुटियां परिलक्षित होंगी, परन्तु उन महाशयों से कृताञ्जलि निवेदन है कि यह खेल है, कविता या कपिता का आदर्श इसको न मानना चाहिए। अन्तःपुर में बृहन्नला का धर्म पालन करते हुए लेखक को केवल कन्याओं के चित्त विनोदन मात्र का उद्देश्य रहा है अतः पण्डितगण दोषों को क्षमा करें। —लेखक

प्रमदा तक दे देहिं,
कौन ने लब्धि लही पड़ ॥ ५ ॥

राजा नल का उदाहरण
अब पहिले लीन्हा ।
भूमि नारि सुत छाँड़ि
गमन उन कानन कीन्हा ॥ ६ ॥

इनके अरु अतिरिक्त
युधिष्ठिर कथा सुनाऊँ ।
मान जाव मम बचन
तात मैं खुशी मनाऊँ ॥ ७ ॥

द्रुपद सुता सी नारि
और निज सब सुख त्यागे ।
राज पाट को छोड़ि
शीघ्र बनको वे भागे ॥ ८ ॥

याते इसको त्याग
गृहस्थी कार्य करो अब ।
करि वानिज व्योपार
लब्धि या द्रव्य धरो अब ॥९॥

करो द्रव्य को दान
जागत मैं यश को लीजै ।
मन मैं खाकर शपथ
त्याग सब अवगुण दीजै ॥१०॥

—नारायणप्रसाद दास

महाराष्ट्र की दीवाली

नरक चतुर्दशी



रक चतुर्दशी अर्थात् छोटी दीवाली को प्रत्येक युवा, वृद्ध, स्त्री पुरुष व लड़के लड़कियाँ सबेरे ४ बजे उठती हैं और तरह तरह के दीपक, मोम-बत्तियाँ तथा काग़ज़ की की कन्दीलैं जलाती हैं। गुलाबी जाड़े में प्रातःकाल यह दीपमाला बड़ा आनन्द देती है। तत्पश्चात नौकर घर के सब पुरुषों के शरीर पर तेल फुलेल मलःकर आरती करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति से चार चार आने इनाम लेते हैं। आरती के पश्चात् स्त्रियाँ 'गरम जल से स्नान करती हैं और ७ बजे के लगभग घर के सब लोग जलपान करते हैं। इसमें अन्य भोजनों के अतरिक्त शूरा अर्थात् एक प्रकार का हलवा अवश्य होता है। दोपहर के १२ बजे भोजन का समय आता है, जिसमें सब से बढ़िया भोजन मोदक होता है। भोजन से निबट कर लोग शतरंज, ताश और प्रायः चौपड़ खेलते ह, जिसमें स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ खेलती हैं। संध्या को ७ बजे सवेरे की तरह फिर दीपमाला की जाती है और स्त्रियाँ आँगन में रोली से नाना प्रकार के चौक पूरती हैं। छोटे लड़के लड़कियाँ लकड़ी या मिट्टी के घरौंधे बनाते हैं और उनके

चारों ओर छोटे छोटे दीपक जलाते हैं। पटाखे इत्यादि छोड़ते हैं। फिर रात को ६ बजे भोजन करते हैं। उस समय तथा सवेरे भोजन के समय अगर की बत्तियाँ जलती हैं, जिससे सारा घर महक जाता है। इस प्रकार चतुर्दशी का सारा दिन रात आनन्द में व्यतीत किया जाता है।

लक्ष्मी-पूजा का दिन

दीवाली का दिन महाराष्ट्र में स्त्रियों का दिन है। वे ख़ूब तड़के उठती हैं, ख़ूब मल मल कर स्नान करती हैं और नये नये कपड़े तथा गहने पहिनती हैं। उस दिन किसी अतिथि मेहमान को निमंत्रण (न्योता) नहीं दिया जाता और न कोई अपने घर से दूसरों के घर जाना पसंद करता है। सवेरे ८ बजे नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यञ्जन भोजन करते हैं और दोपहर को छोटी दीवाली की तरह फिर सब मिल कर खाते पीते हैं। इसके अनन्तर तरह तरह के गपशप और और मनोरञ्जक खेलों में दिन व्यतीत करते हैं। शाम को लड़के लड़कियाँ खिलौने और आतशबाज़ी ख़रीदते हैं और दीप माला की जाती है। इस रात को सब से बड़ी रस्म लक्ष्मी-पूजा की है। प्रत्येक घर और दूकान में जो कुछ अनस्थायी सम्पत्ति होती है, उसकी पूजा की जाती है, चाहे यह नक़द रोकड़ हो, चाहे ज़ेवर इत्यादि के रूप में और फिर ब्राह्मणों को दक्षिणा दी जाती है। रात के भोजन के पश्चात् लोग विश्राम करते हैं।

पड़वा का दिन

पड़वा के दिन भी आनन्द मनाया जाता है, उस दिन का विशेष भोजन "पूर्णपूली" है। आगे चार पाँच दिनों तक दोनों समय दीपक जलाये जाते हैं और सम्बन्धियों तथा इष्ट मित्रों को दोनों समय भोजन के लिए निमन्त्रित किया जाता है।

भैय्या दूज

दूज के दिन बहिनें अपने घर भाइयों को निमन्त्रित करती हैं, उनके उबटन लगाती हैं, उनको स्नान कराती हैं, जो उनको विशेष कर प्रिय हों। यदि बहिन किसी दूसरे नगर में हो, तो भाई उसके लिए कुछ नक़द रुपया या कोई चीज़ भेजते हैं, जिसको "अवाँसी" कहते हैं। प्रायः भाई अपनी बहिनो को दीवाली पर बुला लेते हैं और वे दूज तक वहीं रहती हैं। उस दिन भोजन के साथ जलेबी का होना बहुत ही आवश्यक है। दोपहर के बाद भाई बहिन बैठ कर चौपड़ खेलते हैं और शाम को फिर वैसे ही दीपक जलाये जाते हैं। उस समय बहिनें अपने भाइयों की आरती करती हैं और भाई बहिनों को यथा शक्ति कुछ भेंट करते हैं। जिसके बहिन नहीं होती, वह पड़ोस की किसी कन्या को बुला कर आरती कराता है और उसे नेग देता है।*

—शालिग्राम

* श्रीमती मनोरमाबाई जी ने हिन्दुस्तान लाहौर में एक लेख लिखा था। यह उसी का अनुवाद है।

आज़माई हुई दवाइयां

बालामृत बटी—अतीस, नागरमोथा, ककड़ासिंगी, सोंठ वंशलोचन, अनार की मुखबन्द कली, धनिया, बेलकीगरी, सुगन्ध बाला ये सब एक एक तोला, जावित्री तीन माशे, जायफल आधा तोला, केशर ३ माशे, छोटी इलायची के बीज ३ माशे, पीपली आधा तोला, रूमीमस्तगी आधा तोला, जहरमोहरा खताई आधा तोला, खस आधा तोला, कपूर तीन माशा, मुलहठी आधा तोला, इन्द्रजव आधा तोला, और कुरैया की छाल आधा तोला लेकर सब दवाइयों को कूट छान कर गुलाब जल अथवा सादे जल में पीसे और दो दो रत्ती की गोली बना कर रखले। जो बालक केवल माता का दूध पीता हो उसे मा के दूध के साथ दिन में तीन बार देवे। जो अन्न खाता हो उसे जल के साथ देवे। इसके सेवन करने से बालकों के समस्त रोग, अर्थात् खाँसी, ज्वर, श्वास, अतिसार, तालूका बैठ जाना, पेटफूलना, हरा पीला तथा फटा मल उतरना आदि विकार नष्ट होते ह। अच्छी हालत में देते रहने से दाँत निकलने के समय पीड़ा नहीं होती।

बालकों के सूखा की दवा—सहिङ्गु महिषी विष्ठा स्वार्द्रकं तुलसी रसः। ममर्खी हनने प्रोक्तः सशःल्यो रामशाम्यकः॥ अर्थात् भूनी हुई हींग, भैंस के गोबर का रस अदरख और तुलसी की पत्ती का रस बराबर बराबर मिला कर पिलाने से बालकों का ममर्खी अर्थात् मिठवा सूखा रोग अच्छा होता है।

(सुधानिधि)

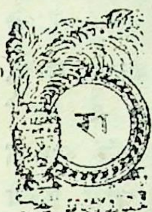
मोटी स्त्रियों का आदर

अधिक स्थूल शरीर वाली स्त्रियों को हमारे देश में तथा विलायत इत्यादि देशों में कोई सुन्दर नहीं समझते। जिस प्रकार हमारे यहाँ के कवियों ने पतली कटिवाली स्त्री को सुन्दर कहा है, उसी प्रकार पाश्चात्य देशों में भी स्त्रियों की सुन्दरता का वह एक लक्षण कहा जाता है; किन्तु मूर लोगों में उससे विरुद्ध विचार है। उन लोगों में स्थूल शरीर वाली स्त्रियाँ अधिक सुन्दर समझी जाती हैं और पतली कमर वाली स्त्री के प्रति सब दया की दृष्टि से देखते हैं। स्त्री का शरीर जितना अधिक स्थूल रहता है, उतना ही उसका अधिक आदर होता है। शरीर की अत्यन्त स्थूलता से जो स्त्रियाँ चल नहीं सकतीं, वे स्त्रियाँ वहाँ पर सर्वोत्तम सुन्दर समझी जाती हैं। पाँच मन से साढ़े सात मन वजन वाली स्त्री वहाँ पर सुलतान की पटरानी होने योग्य कही जाती है। बड़े पीपे के जैसा पेट वहाँ पर अधिक सुन्दर समझा जाता है।

(वैद्य कल्पतरु)

सर्दार बाई

(१)



नीपुर नगर के बाहर आज बड़ा कोलाहल हो रहा है—अनेक मनुष्य सज धज कर हास्य विनोद करते हुए इधर से उधर और उधर से इधर घूम रहे हैं। मैदान जन समूह से खचाखच भर गया है, प्रत्येक स्थान पर राग रङ्ग, खेल तमाशे इत्यादि की धूम मच रही है। नगर के भीतर कोई बिरला ही पुरुष दिखायी पड़ेगा। सभी मनुष्य इस उत्सव में जाकर सम्मिलित हुए हैं। सूबेदार रहमत खाँ अभी आखेट से नहीं लौटे, इस कारण सब मनुष्य उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सन्ध्या होने में अभी विलम्ब है। नगर के बाहर राज महल सन्मुख पुष्पोद्यान में एक परम सुन्दरी बाला सखी सहेलियों के साथ भ्रमण कर रही है। सूबेदार रहमत खाँ इसी समय आखेट से लौटे और राजपथ की ओर उन्होंने अपने घोड़े की बाग मोड़ दी, घोड़ा थोड़ी ही देर में उद्यान के समीप पहुँच गया। रहमत खाँ की दृष्टि एकाएक इस शोभागार लावण्यमयी रमणी पर जा पड़ी। तुरन्त घोड़ा रोक कर सुन्दरता पर मुग्ध हो वह उसकी ओर एक टक देखने लगा। बाला सखियों के साथ अठखेलियाँ करती उनके समीप आ निकली। एक पर पुरुष को अपनी ओर इस भाँति घूरते देख कर वह लज्जा से झट शीघ्रता पूर्वक महल में चली गयी। रहमत खाँ उसी ओर देखता रह गया। उसकी आखों के सामने उसकी पवित्र मूर्ति नाचने लगी। कुछ काल में सावधान होने पर उसने घोड़े को एँड़ लगायी और अपने डेरे के पास आ पहुँचा। स्वागत के हेतु अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। बधाइयों की धूम मच गयी। चारों ओर चहल पहल मच गयी, आनन्द के गीत होने लगे, पर रहमत खाँ को कुछ नहीं सूझता था। वे अपने ही रङ्ग में रँगे हुए थे। नाच रङ्ग ज्यों त्यों कर के समाप्त हो गया। सब मनुष्य अपने अपने गृहों को लौटने लगे। रहमत खाँ डेरे में आ कर पलंग पर करवटें बदलने और सर्दार-बाई के पाने की युक्ति बिचारने लगा।

आह ! रहमत खाँ ! तुम यह क्या कर रहे हो ! अपने पैर में आप कुल्हाड़ी क्यों मारते हो ! जिस राजपूत बाला के पाने को तुम इतने व्याकुल हो रहे हो, वह क्या कभी भी तुम्हारे हाथ आ सकती है ? नहीं ! कभी नहीं ! तुम तो क्या चीज़ हो, यदि तुम्हारा स्वामी दिल्लीपति भी इस राजपूत बाला के पाने का उद्योग करेगा, तो कभी सफल मनोरथ न होने पायेगा। राजा खेमराज बीर राजपूत हैं। वे अपनी राजकन्या सर्दार बाई को प्राण रहते कभी

यवनों के हस्तगत न होने देंगे और न राजपूत बाला ही जीवित रहते कभी अपने को तुम्हारे समर्पित होने देगी। तुम दिल्लीश्वर का कर लेने आये हो, उसे ले कर स्वदेश को लौट जाओ। इस भ्रम में मत पड़ो। कामी मन के वशीभूत मत हो। तनिक होश में आओ। स्वाभिमानी राजपूत सिंह को मत छेड़ो। देखो! इसी में तुम्हारा कल्याण है। नहीं तो फिर तुम्हें प्राण बचाना दुर्लभ हो जावेगा—

दुष्ट रहमत खाँ ने राजा खेमराज के पुत्र मूलराज के साथ द्यूत खेलने का निश्चय किया। उसे इसके अतरिक्त सर्दारबाई के मिलने की और दूसरी सरल राह नहीं सूझ पड़ी। मूलराज ने द्यूत खेलना स्वीकार कर लिया। द्यूत में रहमत खाँ बराबर जीतता गया। अन्त में रहमत खाँ ने कहा,—"मूलराज! यदि इस बार तुम्हारी जीत हो, तो मैं तुम्हें उत्तर देशीय राज्य दे दूँगा और यदि मेरी जीत हो, तो तुम मुझे अपनी बहिन सर्दार बाई दे देना।"

मूलराज नशे में चकना चूर था। उसे मदिरा के नशे में अपने तन बदन की सुध नहीं थी। रहमत खाँ ने प्रथम ही से मद्य द्वारा उसे बेसुध कर डाला था। मूलराज ने रहमत खाँ का बचन स्वीकार कर लिया। पर हा! इस बाज़ी में भी मूलराज ही की हार हुई। रहमत खाँ आनन्द से उछल पड़ा, मूलराज उदास चित्त, खिन्न मन, नशे में झूमता झामता वहाँ से उठ कर महलों में चला गया।

प्रातःकाल होते ही रहमत खाँ ने सर्दार बाई को बुलवा भेजा। हाथी, घोड़े, सवार, बाजे आदि राजमहल के नीचे आन पहुँचे। राजा खेमराज की समझ में पहिले कुछ न आया। पूँछ पाँछ करने पर उनको समस्त वृत्तान्त सभा में ज्ञात हुआ। बीरवर का शरीर क्रोध से कम्पायमान हो गया। नेत्र रक्त वर्ण हो गये। आवेश से खड़े होकर उन्होंने कड़क कर सूर सामन्तों से कहा,—"बहादुरो! हाय! मेरे सच्चे स्वामिभक्त वीरो! हाय! लोभी मूलराज ने आज कैसा अधर्म कर डाला है। हा! उसने राजपूतपन को मिट्टी में मिला दिया है। धिक्कार है, सहस्र बार धिक्कार है उसके जीवन पर! क्या दुष्ट मूलराज के कहने से सर्दार बाई यवनों की हो जायगी? क्या तुम सब के सब इस समय सर्दार बाई की रक्षा करने में तत्पर न होगे? क्या तुम इस समय अपने बाहु बल का परिचय दे कर दुष्ट यवन सैन्य के दाँत खट्टे न कर दोगे? देखो! बहादुरो! कुल में कलङ्क न लगने पाये, सर्दारबाई तुम समान बीर योद्धाओं के रहते हुए यवनों के हाथ न पड़ने पावे।" तब सर्दारों ने तलवार खींच कर कहा,—"नहीं! नहीं! कभी नहीं! महाराज! हमारे शरीर में प्राण रहते कदापि

ऐसा नहीं हो सकता।" सारा सभामंडप सिंह नाद से गूंज उठा।

रहमत खाँ को दूत द्वारा सभा का यह समाचार मिला, वह अपनी सेना सहित युद्ध निमित्त महल की ओर बढ़ा। राजपूत सेना भी आकर भिड़ गयी। घमासान युद्ध होने लगा। युद्ध में मूलराज की पत्नी रानी रूपादेवी ने अपने असाधरण साहस धैर्य और बल का परिचय दिया। अपने कुल और धर्म की रक्षा के हेतु वीर बाला ने बिकराल काली की भाँति निरन्तर दुष्ट यवनों का संहार किया। अन्त में अपने को शत्रु के हाथ में जाती देख विदुषी ने आत्म घात कर स्वर्ग धाम को प्रस्थान किया। धन्य! रानी रूपादेवी धन्य!! तुम्हारा नाम आज भी स्वर्णाक्षरों में इतिहास के पृष्ठों पर लिखा है! तुम्हारी कीर्त्ति आर्य्य बालाओं के हृदयों में रक्त के बून्दों से मोटे मोटे अक्षरों में लिखी है, और तुम्हारे सतीत्व का बखान करके भारत महिलाएँ आज भी अपने मुख को पवित्र करती हैं।

राजा खेमराज की सेना ने बड़ी वीरता से युद्ध किया, पर मूलराज को लोभ दे कर अपनी ओर मिला लेने से रहमत खाँ को युद्ध में बड़ी सहायता मिली। उसे मूलराज के द्वारा दुर्ग के सब गुप्त स्थानों का भी पता लग गया। खेमराज की समस्त सेना का विनाश हो गया। सर्दार बाई और उनकी माता तथा खेमराज बन्दी हो कर उसके डेरे में लाये गये।

रहमत खाँ इन सबों को लेकर पाटन स्थान को लौट आया। कुछ दिनों तक उसे सर्दारबाई के सन्मुख जाने का साहस न हुआ। वह जानता था कि सर्दारबाई से अपनी कामना पूर्ति होना कुछ सरल बात नहीं है। कभी कभी सन्देसा उनके पास भेजा करता था। एक दिन उसने अपने आने का समाचार सर्दारबाई से कहला भेजा। सर्दारबाई इस बात के लिए तय्यार थीं। रहमत खाँ ने सर्दार-बाई के डेरे में पहुँच कर ज्यों ही आगे बढ़ कर उन्हें स्पर्श करना चाहा वे दूर हट गई और बोली—"खाँ साहेब! मेरे पतिज्ञाबद्ध दिनों में केवल आज का दिन शेष है। मैं आप से केवल आज के दिन और ठहर जाने का अनुरोध करती हूं?" रहमत खाँ को सर्दार बाई से ऐसे मीठे शब्द सुनने की स्वप्न में भी आशा न थी। उसने एक दिन की मुहलत और दे दी। वह नशे में पहिले ही से चूर था। ऊपर से सर्दारबाई के और मद्य पिला देने के कारण बेसुध होकर वहीं शय्या पर गिर पड़ा और अचेत हो गया। सर्दार बाई के मन चीते कारज हुए। पहरे वाले हट गये थे। यह अवसर उपयुक्त जान वे छिप कर डेरे से निकल भागीं और गहन बनों को पार करती हुई बहुत दूर एक वृद्ध योगेश्वर के आश्रम में पहुँच गईं। रहमत खाँ ने पीछे बहुत खोज किया पर सर्दार बाई का उसे कुछ पता न मिला।

सर्दारबाई इस आश्रम में एक योगिनी के भेष में रहा करती थीं। एक दिन चन्द्रावती के राजकुमार वैरीसिंह आखेट खेलते इस ओर आ निकले और योगिनी को देख उन्हें सन्देह हुआ। पूँछ पाँछ के अनन्तर सर्दारबाई ने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। राजकुमार ने प्रण किया कि "यदि मैं तीन अठवारे में रहमत खाँ को इसका यथोचित बदला न दे दूँ, तो शस्त्र बाँधना त्याग दूँगा।" सर्दार बाई का हृदय हर्ष और आशा से भर उठा। राजकुमार ने सर्दारबाई को और सर्दारबाई ने राजकुमार को अपना मन अर्पण कर दिया। दोनों में अपूर्व प्रेम प्रवाह बह निकला। राजकुमार सर्दारबाई को अरासुरी देवी के मन्दिर में आने का आदेश देकर वहाँ से विदा हुए।

सर्दारबाई आश्रम से मन्दिर को चल खड़ी हुईं, परन्तु राह में दुर्भाग्य वश तीन यवनों के हाथ में पड़ गई। "सर्दारबाई को रहमत खाँ की भेंट करके पुरस्कार का भागी कौन होगा?" इस विषय पर लड़ कर दो यवन तो मारे गये और तीसरा सिंह का ग्रास बना। सर्दारबाई एक दृढ़ छिद्रदार सन्दूक में बन्द की गई थीं। अतः जंगली मनुष्यों द्वारा भाग्य वश वे उसी मन्दिर के पुजारी को सौंपी गयीं, जहाँ उन्हें राजकुमार से मिलने को जाना था। राजकुमार यथा समय वहाँ आन पहुँचे और सर्दारबाई ने पुजेरी को पुरस्कार देकर बीर वेश से सुसज्जित हो दुष्ट रहमत खाँ के बध निमित्त और माता पिता के उद्धार हेतु राजकुमार के साथ सेना सहित पाटन की ओर प्रस्थान किया।

(२)

रहमत खाँ ने राजा खेमराज को आज सपत्नी फाँसी की आज्ञा दी है, कारण यह है कि बीर राजपूत राजा खेमराज ने मुसलमानी धर्म ग्रहण करना अस्वीकार किया है। वे फाँसी के स्थान पर लाये गये और शीघ्र ही उनका जीवन प्रदीप बुझने को था, इतने में एक ओर से कुछ धूल सी उड़ती दिखाई दी। रहमत खाँ अभी कुछ निश्चय भी न कर पाया था कि सर्दारबाई ने आकर उसको घेर लिया। कामान्धी रहमत खाँ के एक राजपूत कन्या को कुदृष्टि से देखने और उसके माता पिता को बन्दी करके ऐसी दशा करने का प्रतिफल देने के हेतु विदुषी सर्दारबाई ने अपनी तलवार उठायी और एक ही बार में उस अधम का सिर धड़ से जुदा कर दिया। इधर राजकुमार बैरीसिंह ने पापी रहमत खाँ की समस्त सेना का विध्वंस कर डाला। पाटन पर सर्दार बाई की विजय पताका 'फर फर' फहराने लगी।

सर्दारबाई के माता पिता ने कन्या सर्दारबाई का विवाह सम्बन्ध राजकुमार के साथ कर दिया और सर्दारबाई माता

पिता को पाटन में सुरक्षित करके राज्य कार्य्य का भार सौंप युगल दम्पति चन्द्रावती में आकर आनन्द पूर्वक रहने लगे। यहाँ चन्द्रावती का राज्याभिषेक भी बैरीसिंह को हो गया।

महारानी सर्दारबाई को स्वामी के साथ अकण्टक राज्य सुख भोग करने के लिए विधाता की आज्ञा नहीं थी। पूर्व वर्णित परीक्षा में उत्तीर्ण होने ही से उनकी आपत्ति की इति श्री नहीं हुई। उन्हें अपने जीवन में एक ऐसी ही घटना का और भी सामना करना था और उसी से उनके पवित्र निर्मल चरित्र और सतीत्व की ज्योति द्विगुण रूप से दमक कर भारतवर्ष में उनके यश को प्रकाशित करती है।

दिल्लीपति ने रहमत खाँ की मृत्यु का समाचार पाकर एक बड़ी सेना सहित सर्दार खुसरो खाँ को सर्दारबाई से युद्ध के निमित्त भेजा। चन्द्रावती के समीप खुसरो खाँ ने डेरा डाल कर बैरीसिंह से कर माँगा। बैरीसिंह के कर देना अस्वीकार करने पर खुसरो खाँ युद्ध की तय्यारी कर युद्ध क्षेत्र में आन पहुँचा। वह इस कारण आया ही था। कर का केवल एक बहाना था, परन्तु महाराजा बैरीसिंह के घोर युद्ध के सम्मुख तथा बीर राजपूतों के बाहु बल के कारण यवन सेना पराजित हुई। खुसरो खाँ समझ गया कि कपट के अतिरिक्त और किसी प्रकार विजय लाभ न होगा। इस कारण इधर तो उसने बैरीसिंह को सन्धि का सम्वाद भेजा और उधर सहायता के निमित्त और अधिक सेना को बुलवा भेजा। सेना के एकत्रित होने पर रात्रि को अचानक कपटी खुसरो खाँ ने चन्द्रवती को घेर लिया। यद्यपि राजपूत वीरों ने बड़ी वीरता और साहस के साथ युद्ध किया। परन्तु हाय! इस बार दुर्भाग्य वश महाराज बैरीसिंह युद्ध में मारे गये। जिससे समस्त सेना हतोत्साह होने लगी। ईश्वर की लीला अपरम्पार है। दुष्ट कायर मानसिंह भी भ्रांता की मृत्यु होते ही समर से भाग निकला और सर्दारबाई को अपनाने की चेष्टा में लगा। किन्तु सर्दारबाई को सतीत्व से डिगा देने की किस में सामर्थ्य थी। कदाचित मानसिंह ही के कपट व्यवहार से बैरीसिंह मारे गये हों, यह भी असम्भव नहीं है!

बैरीसिंह की मृत्यु का हृदय बेधक समाचार सुन कर सर्दार बाई के सिर से पैर तक बिजली दौड़ गयी। वीर बाला अपने आठ मासीय पुत्र को सास को सौंप तुरन्त वीर वेश से सुसज्जित अश्व पर आरूढ़ हो तीर की भाँति किले के द्वार पर आन पहुँची। सेना में फिर से नवीन उत्साह उत्पन्न हुआ। कोई और उपाय न देख अन्नाभाव के कारण सर्दार बाई दुर्ग का द्वार खोल शत्रु से सन्मुख

युद्ध करने लगीं। अहा ! धन्य !! वीरांगना सर्दार बाई धन्य !!! उनके अतुलित तेज और बल के सन्मुख ठहरने की किसमें शक्ति थी ! इस समय उनका सामना करने का किसमें साहस था। उनका रण वेश, दिव्य देवि मूर्ति, प्रचंड क्रोधाग्नि देख खुसरो खाँ के भी प्राण थर्रा गये, उसका हृदय हिल गया। उसकी सेना तितर बितर हो गयी। पर दूसरी सेना आन पहुँची। सर्दारबाई की सेना बहुत थोड़ी रह गयी थी। अन्त में क्रमशः वह भी धराशायी हुई। अकेली राजपूत बाला अनेक यवनों को यमपुर भेज कर अन्त में यवनों के हाथ बन्दी हुई।

खुसरो खाँ के आनन्द का क्या ठिकाना था ? ऐसी वीर अनुपम लावण्यमयी महारानी सर्दारबाई को अपने वशीभूत पा कर वह फूला नहीं समाता था। पर यह कब तक ! सर्दारबाई से अपनी कुचेष्टा का उसे भी वही प्रतिफल मिलना था जो अधम रहमत खाँ को मिला था। इस बार पति-परायणा सती सर्दारबाई को अपने स्वामी का बदला लेकर शीघ्र ही उनके चरणों में जाकर उपस्थित होना था।

खुसरो खाँ सर्दार बाई के समीप जा अनेक प्रकार से उसकी वीरता की प्रशंसा कर बोला, "सर्दारबाई ! मैं आपकी इस खूबसूरती और हुनर पर कुर्बान गया। बैरीसिंह जंग में मारा गया। अब आप मेरी बेग़म बन कर बहिश्त का मज़ा उठाइए—देखिए ! दिल्ली का बादशाह भी मेरे ही क़ाबू में हो रहा है। पर मैंने अपना तन मन सब आप पर कुर्बान कर दिया है ! मैं आप का बन्दा हूँ। मेरी इस्तदुआ कुबूल हो।"

सर्दार बाई पहिले ही से जली बैठी थीं। यह बाण सम वाक्य सुनते ही वे छेड़ी हुई नागिन की भाँति तड़प कर बोलीं, "खबरदार—नीच ! दुष्ट !! खबरदार—बस अब आगे एक शब्द भी मुँह से न निकालना—मेरे आगे अब आँख उठाने का भी साहस न करना—बस।" सती का समस्त शरीर क्रोधानल से जलने लगा और वे तुरन्त मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

खुसरो खाँ साहस कर कामना पूर्ति की इच्छा से आगे बढ़ा। दुष्ट यवन के हाथ का स्पर्श होते ही सर्दार बाई चौंक उठीं। उन्होंने अपनी गुप्त तीक्ष्ण कटार निकाल कर दुष्ट खुसरो खाँ पर आक्रमण किया। प्रहार के होते ही खुसरो खाँ पृथ्वी पर तड़पने लगा। पतिव्रता, साध्वी, पति परायणा सती महारानी सर्दारबाई वहाँ से निकल आयीं और भूमण्डल में अपनी अक्षय कीर्ति छोड़ इस असार संसार से विदा हो, अक्षय अमर लोक को पतिदेव के श्री चरणों में हँसती हँसती चली गयीं।

धनि धनि भारत की क्षत्राणी ।
वीर कन्यका वीर प्रसवनी
वीर बधू जग जानी ।
सती शिरोमणि धर्म धुरन्धर
बुध बल धीरज खानी ।
इनके यश की तिहूँ लोक मैं
अमल ध्वजा फहरानी ।—
धनि धनि भारत की क्षत्राणी ।

—धर्मपत्नी पं० रामगोपाल मिश्र

सुशीला बहू



फीरोजपुर मैं पं० कैलास नाथ नाम के एक ब्राह्मण वकील रहते थे। उनके चार संतान थीं। तीन पुत्र और एक ली। बड़े पुत्र का नाम रामकृष्ण था, और पुत्री का नाम किशोरी देवी था। रामकृष्ण और गोपालकृष्ण इन दोनों पुत्रों का पाणिग्रहण कुछ बहुत सुशील व नेक स्त्रियों के साथ न हुआ था। बाबू कैलासनाथ की धर्मपत्नी भी अधिक बुद्धिवती न थी, तो किशोरी देवी की तो बात ही क्या है। जब कि बड़ी स्त्रियाँ ही बुद्धिमती न होंगी, तो छोटी बालिकाएँ कहाँ से बुद्धिमती होंगी। बिजनौर के कोठीवाल विद्याप्रकाश की पुत्री पद्मावती के साथ सब से छोटे हरिकृष्ण का विवाह हुआ था। पद्मावती लड़की अति सुशील और सुन्दर थी। पद्मावती की आयु बहुत नहीँ थी। कुल १५ वर्ष की थी परन्तु इतनी ही आयु मैं तरह तरह की विद्या वा सद्गुण उसने सीख लिये थे। पद्मावतीने ससुराल आते ही अपने उत्तमोत्तम गुणों से सब को प्रसन्न कर लिया। बाबू कैलास नाथ का कार्य कुछ भी ठीक न था। नौकर नौकरानियों के ही ऊपर ग्रह कार्य छोड़ रक्खा था। वे लोग भी खूब लूटते खाते थे। पद्मावती गृह कार्य बिगड़ा हुआ देख न सकी और गृह का प्रबन्ध अपने ऊपर लेना चाहा। प्रातः काल होते ही पद्मावती बिछौने से उठ कर सारे घर मैं बुहारी लगा आई व आप ही ने रसोई मैं चौका भी लगा लिया। स्नान ध्यान पूजा पाठ से निश्चिन्त होकर फिर दूध चाय सब के लिये बना ली और सब को बुला कर पिला दी और गर्म पानी चाय व पान लगा हुआ लेकर सासु जी के पास धर आई। आप ही फिर दही बिलोने लगी। तब तक सासु जी जगीं, तो देखती क्या हैं कि सारा काम तैयार है। पद्मावती की सास जी बहुत ही प्रसन्न हुईं। नौकरों से पूँछा कि ये सब कार्य आज किसने कर रक्खे हैं ? इन्हैं देख के मैं बहुत ही प्रसन्न हुई हूँ, सच कहो, बिन्दा ! तुमको इतने सबेरे जागने का स्वभाव किस ने सिखाया है। इतना सुन कर पद्मावती बोली, "माता जी ! ये लोग दिन चढ़े तक सोते रहते हैं और रसोई मैं देर

हो जाती है, इस कारण यह सब काम मने ही आज कर रक्खा है और आगे को भी यही इच्छा है कि मैं ही नित्य कर लिया करूँ।" सासु जी ने कहा, "नहीं नहीं बहू ! अभी तुम्हारा कोमल शरीर इन कामों के करने योग्य नहीं है, परमात्मा की कृपा से नौकर चाकर ही बहुत हैं।" पद्मावती ने तब उत्तर दिया, "माता जी ! मेरी एक विनय ये है, कि नौकर चाकरों का होना बड़े घर की शोभा अवश्य है, परन्तु मैं भी तो आपकी दासी हूँ। बग़ैर अपने बड़ों की सेवा किये स्वर्ग लाभ कैसे उठा सकूँगी, यदि मैं अपने हाथ से घर का कार्य कर लूंगी, तो क्या चिन्ता है। मेरा धर्म तो यही है। फिर पद्मावती ने जिठानियों व नन्द की तरफ देख कर और मुसकरा कर कहा, "हम बहू बेटियों का कोमल गात तो तभी शोभा है पायेगा, जब घर का काम करेंगी, नहीं तो इस गात की शोभा क्या रही। नौकर चाहे जितने ही हों, परन्तु जैसा काम अपने हाथ का होता है वैसा नौकर कभी नहीं कर सकते। मैं तो इसी से प्रसन्न हूँ कि नौकर लोग बाहर का काम किया करें। अपने किये काम में दो फल देखती हूँ, एक अपने हाथों से काम करने से शरीर निरोग्य रहता है, दूसरे अन्न वस्त्र भूषण बरतन की हिफ़ाज़त अच्छी तरह से होती है। जो स्त्रियाँ बिना काम के बैठी रहती हैं उनके शरीर से आलस्य की निवृत्ति नहीं होती है जो सर्व व्याधियों का मूल है।" इतना सुन कर बड़ी जिठानी ने कहा कि मुझको तो जो कुछ कहोगी सो ही करूँगी। दूसरी बोली कि जो कुछ तुम कहोगी, वही मैं भी करूँगी। किशोरी देवी ने कहा, "भाभी अब तुम हम सब में चतुर आई हो, जो कुछ कहा करोगी, वही कर लिया जायगा।" पद्मावती ने उत्तर दिया, "मेरा कहाँ साहस है, जो आप से काम को कहूँगी। आप तो मेरी बड़ी हो। मेरा यह धर्म्म है कि आप सब की आज्ञाकारिणी बन कर रहूँ, जो कुछ आज्ञा आप लोग मुझे दे दिया करेंगी, वही किया करूँगी।"

इतना सुनकर सासुजी बोली, "नहीं, बहू बड़ाई कुछ अवस्था पर नहीं हैं। जो बुद्धि में तेज हो, वही बड़ा है।" पद्मावती ने उत्तर दिया कि माता जी अगर आप की यही इच्छा है, तो बतलाये देती हूँ, क्यों कि जब तक हम सब मिल के एक एक काम अपने ऊपर न उठालेंगी, तब तक घर की शोभा नहीं हो सकती। पद्मावती ने बड़ी जिठानी से कहा कि रसोई के समय आटा दाल घृत मिष्ठान्न निमक मसाला मुरब्बा अचार आदिक और जो सामिग्री काम आती है सो ठीक समय निकाल रक्खा कीजिये, अगर और जो कोई निकालेगा, तो आटा का हाथ अचार में डाल देगा इससे अचार सब बिगड़ जायगा। ईंधन तेल दाना घास

आदि की ताली आप ही के पास रखनी चाहिए और नौकर नौकरानियों को झाड़ पछाड़ कर गेहूं आटा पीसने को दो, तो जादा कम तुम देख लिया करो। फिर दूसरी जेठानी से कहा, कि घर में बरतन गहने कपड़े दरी पलंग संदूक तम्बू कनात आदि जो पदार्थ हैं, इन सब का आज ही से लिख लो। पर इन सब में स जो टूटा फूटा हो, या नया जो कुछ बनवाना हो, तो लाला जी से कह दिया करो। जब घर में महरी बरतन धो जाया करे, तब आप सभाल लिया करें, जो किसी दूसरे के घर में कोई वस्तु आप के यहाँ से माँगा जाय, तो उसका नाम लिख लें और फिर याद करके मंगा लें। इन सब कामों को आप अपने हाथ ले लीजिये। फिर पद्मावती ने विनय कर के कहा कि यदि आप सब की आज्ञा हो, तो मैं यह कार्य अपने हाथ में लू कि जो पदार्थ घर में आवे-जाय, उसका हिसाब किताब मैं ऐसी रीति से लिखूगी, कि दमड़ी तक का गड़ बड़ न होने पावेगा और सौदा सुलफ लाने के समय नौकर जो लूटते खाते हैं, उनको भी मैं ठीक कर लूगी। सासु जी ने कहा, "हाँ, परमात्मा ने तुम ऐसी भाग्यशाली चतुर बहू हमारे घर अब भेजी है। ईश्वर चाहेगा, तो गृह-कार्य सब ठीक हो जावेंगे"। पद्मावती ने कहा, "माता जी बिन्दा कहार से कहा कि आज वह बजार से हिसाब लिखा लाये और कहो कि सौदा सुलुफ जो लाता रहा है, उनके नाम लिखा जावें। जब यह छोटी पूंजी दे दी जावे, तो उस बड़ी के लिये भी उद्यम किया जायगा।"

बिन्दा भली भाँति जान गया कि बहू बड़ी चतुर और हुशियार आई है। हम सब के काम बिगड़ जायगे। पंडितानी जी ने बिन्दा से कहा, "हिसाब किताब लिख लाना।" तब तो वह सौ सौ बहाने करने लगा। कभी कहता कि पंडितानी जी! पहिले जो कुछ बजार का उठाया हैं, सो बिना पूँछ दे दो। मुझ जैसे अभी तक दाम देती आई हो, सदा देती जाओ। क्या अब मैं बदल गया हूँ? वह ही बिन्दा हूं। सात पीढ़ी से इसी घर का नमक खाता रहा हूँ, मगर छलबल कुछ नहीं किया। यदि आपको भ्रम हो, तो साठ के पचास ही दे दो, अब की दफे दस अपने पास से मिला दूगा और आगे के लिए जिससे चाहो, सौदा मँगा लिया करो।

यह सुन कर पद्मावती जान गई कि दाल में कुछ काला है। फिर अपनी सास जी से बोली, "इस से कहिये कि साठ के पचास देने की क्या बात है, जो कुछ उठा हो सो ठीक ठीक पूरा पूरा दे दिया जायगा पर तुम उन लोगों के नाम तो बताओ, जिनके यहाँ उचापत उठती रही है।" बिन्दा बोला, "बहू खफा क्यों होती हो, लो. तुम्हारा ही घर भर जाय, मैं कुछ भी नहीं माँगता।" यों कह कर अपने घर को चला गया, फिर कभी मुख भी नहीं दिखाया।

पद्मावती बोली, "माता जी! देखो, बिन्दा कैसा दुष्ट था। छिन में साठ रुपया उड़ाना चाहता था। यदि बाजार का कुछ ठीक देना होता, तो कभी नौकरी छोड़ घर न भाग जाता।" सास जी बोली, "ये लोग तो सदा ही लूटते रहे हैं तुम ऐसी लक्ष्मी बहू आईं, कि मेरा घर कुबेर के भंडार के समान देख पड़ता है। तुम्हारा ढंग देख कर मुझे निश्चय होता है कि तुम घर का प्रबन्ध भली प्रकार से कर लोगी, सारी आयु सुख में व्यतीत करोगी। मेरा तुम्हें हार्दिक आशिर्वाद यही है कि ईश्वर तुम को सौभाग्य से भरा पूरा रक्खें। सुन बहू! एक समय रामचन्द्र जी के मंदिर में कथा हो रही थी, उस समय सुनने में यह आया कि घर की लक्ष्मी स्त्री ही है। स्त्री वही है, जो घर का प्रबन्ध अच्छी तरह करती हो; स्त्री वही है, जिसके सास ससुर सदैव उससे प्रसन्न रहें; स्त्री वही है, जिसके राज में छोटे बड़े नौकर व घर वाले आनन्द से समय व्यतीत करें; स्त्री वही है, जिसका स्वामी सदा प्रसन्न रहै, कभी एक दूसरे को कटु बचन न कहैं, एक दूसरे का कहना माने। पुरुष कुछ कार्य करे तो स्त्री से पूँछ कर करे, स्त्री छोटा सा छोटा कुछ भी काम करे, तब भी अपने पति की आज्ञा ले ले, तब करे, बगैर पति की आज्ञा के कुछ भी न करे। पुरुष स्त्री के प्रेम को हृदय में धर कर उसे कभी न भुलावे और स्त्री पति को तो मन से यही समझे कि मेरे ईश्वर देवी देवता तीर्थ स्वरूप सब कुछ यही हैं। जिससे पति प्रसन्न हो, उस स्त्री के लिए वैकुण्ठ-धाम यहीं तैयार है। देवलोक की बात ही क्या रही, जो जो बातें मैंने कथा में सुनी थीं, ईश्वर ने प्रत्यक्ष मुझे दिखा दीं। परमात्मा करें, तुम्हारी ऐसी बहू सब को मिले।

प्रिय पाठिकाओ! आओ हम तुम सब बहिनें मिल कर इसी प्रकार अपने घर का सुधार करें। जिस प्रकार हमारी पूर्व बहिनों की प्रशंसा हो रही है, इसी प्रकार इस अपार संसार में हम भी कुछ अपना चिन्ह हमेशा के लिए छोड़ जाँय। यदि मेरा कुछ अपराध हुआ हो, तो पाठक पाठिकाओं से क्षमा की प्रार्थना करती हूँ।

—पुत्री पं० दीनदयाल तिवारी

प्रेम परीक्षा

(षष्ठ अङ्क से आगे)

पाँचवाँ प्रकरण

सायंकाल के पाँच बज गये। जब मैं दफ्तर से चला मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मेरे हृदय पर एक बड़ी भारी शिला रक्खी है। मैं चाहता था कि उसको उठाकर फेंक दूँ किन्तु जितना मैं उसको उठाने का प्रयत्न करता था, वह शिला उतनी ही अधिक मेरे हृदय को दबाती

जाती थी। शहर के रास्ते से मेरा घर एक मील पड़ता था किन्तु मैं आज बाहर के रास्ते से इस कारण से चला कि शायद जंगल की हवा लगने से अशान्ति दूर हो।

यह संसार कैसा कपट और छल से भरा है, इस में कैसे कैसे दुष्ट जन बसते हैं जो सदैव ऐसे ऐसे कामों में तत्पर रहते हैं जिनसे दूसरों को हानि पहुँचे चाहे उन्हें स्वयम् कुछ लाभ हो या न हो। किसी ने सच कहा कि—"करै तो भी डर और न करै तो भी डर।" आज हेड क्लर्क ने कैसी कैसी झूठी झूठी बातें साहब से मिलाईं और अंधेर यह है कि साहब ने इतना भी न किया कि उसकी थोड़ी बहुत जाँच तो कर लेते। मुझे इस बात का शोक नहीं था कि मेरा नाम पुलीस के रजिस्टर में लिखा गया या प्रत्येक क्षण एक डिटेक्टिव मेरे पीछे लगा रहेगा, क्योंकि मेरा अन्तः करण शुद्ध था और इस वास्ते मुझे किसी बात का भय नहीं था किन्तु मुझे अफसोस तो इस बात का था कि बहुधा राज्य कर्मचारियों के द्वारा किस प्रकार सरकार का रुपया व्यर्थ व्यय होता है और कितने निर्दोष आदमियों को कष्ट उठाना पड़ता है।

मैं इसी उधेड़ बुन में चला जा रहा था कि अपने मुहल्ले में पहुँच गया। घर निकट आ जाने के हेतु मेरे पैर और भी वेग से उठने लगे। मेरे मन में यह मनो-कामना उठने लगी कि मैं जल्दी से जा कर अपनी कमला और श्याम को हृदय से लगा लूँ कि मेरी अशान्ति दूर हो, मेरा मन चाहता था कि मैं अपने हृदय को अपनी हृदयेश्वरी के प्रेम में घोलूँ कि वह शान्त हो।

पीछे से बिगुल की आवाज़ और घोड़ों के सरपट दौड़ने का शब्द सुनाई दिया। छावनी में यह कोई अचरुभे की बात नहीं थी, क्योंकि बहुधा पलटनें इधर उधर जाया करती थीं। मैं ने पीछे फिर कर जो देखा तो क्या देखता हूँ कि आग बुझाने का एक बड़ा अंजन जिसमें चार घोड़े जुते हुए थे बड़े वेग से आ रहा है। उसका भीषण रूप देख कर मैं विस्मित हो गया। सामने आँख उठाई तो देखा कि सारा आकाश धुएँ और ज्वाला की लालिमा से बेरंग हो रहा है। यह दृश्य मेरे ही मकान की ओर था। मैं अपने मनकी सारी अवस्था को भूल गया और मनुष्यों के साथ जो पीछे से आ रहे थे दौड़ने लगा।

सूर्यदेव अपनी दिन भर की यात्रा के पश्चात् पश्चिम दिशा में पहुँच गये और अस्त होने का अवसर ढूंडने लगे। उनका रक्त वर्ण चेहरा दिग्मंडल से अपनी अन्तिम लालिमा को मानुषिक दुःख और क्लेश के दृश्यों पर डालने लगा, तरुशि-खाएं लाल हो गईं, मन्दिर और मीनारों की चोटियाँ स्वर्ण वर्ण हो गईं, उड़ते हुए पक्षियों के आकार सुनहरे हो गये, सारी

उर्द्ध-प्रकृति एक ही रँग मैं रंग गई, केवल एक मनुष्य का चेहरा जिस पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, दुःख और कष्ट के चिन्ह अंकित थे, कान्ति विहीन, लालिमा-शून्य और पीतवर्ण रह गया। पाँच मिनट बड़े वेग से चलने के पश्चात मैं लाला देवी सहाय हरवंशलाल के मकान के सामने पहुँच गया। यह मकान मेरे मकान से दो सौ गज़ दूर था। लाला देवीसहाय जो सड़क के इन्जीनियर थे मुझ पर बड़ी कृपा दृष्टि रखते थे और इनकी अर्धांगिनी लक्ष्मीदेवी मेरी कमला से बड़ा स्नेह रखती थीं यहाँ तक कि यदि किसी दिन लक्ष्मीदेवी कमला या प्रेम को न देखती तो बेचैन रहती।

लाला देवीसहाय ने अपने मकान मैं बड़ा रुपया खर्च किया था और मकान वास्तव मैं ऐसा सुन्दर था कि प्रत्येक जन अपने मन में उसकी सराहना किये बिना नहीं रह सकता था। इसी मकान के सन्मुख आज बड़ी भीड़ लगी थी दो तीन बड़े बड़े लाल अंजने चिघाड़ मार मार अपना कर्तव्य पालन कर रहे थे।

कैसा भयानक दृश्य था! वही मकान जो रास्ता चलने वाले की दृष्टी को अपनी ओर आकर्शित कर लेता था आज आग्नेय लटाओं मैं प्रवेश कर रहा था। ज्वाला की लपटें मचल मचल कर उसके चारों ओर भभक रही थीं और अपनी अशान्त, असन्तुष्ट क्षुधा को कारीगरों के बर्षों के काम, चित्रकारों के महीनों के श्रम-फल, शिल्पकारों की निपुणता के परिणाम पर शान्त करने का प्रयत्न कर रहीं थी। दरवाज़ों की बहु मूल्य चिकैं जल कर राख हो गईं, किवाड़ और चौखट कोयले मैं परिणित हो गये। किवाड़ों के शीशे धड़ाम धड़ाम गिरने लगे और मनुष्य हृदय के समान गिर कर चूर चूर हो गये। आग पुस्तकालय मैं भी घुस गई। बहु मूल्य दुष्प्राप्त और अपूर्व पुस्तकें अग्नि के स्वर्ण केशों मैं प्रवेश करने लगी। और उनके पन्ने जिन पर महालेखकों ने मानु-अपने अनुभव परीक्षा आविष्कार और ज्ञान को भाषा के साँचे मैं ढालकर अंकित कर दिया था, हवा की कंघी के साथ पतंग रूप होकर दूर के देखने वालों के वास्ते खेद आश्चर्य और अनुमोद की सामग्री पहुँचाने लगे—आग बुझाने वाले अञ्जन बड़ी मोटी धाराओं से जल अग्नि मुख पर फैंक रहे थे किन्तु जल तेल का काम करता हुआ दिखाई पड़ता था। ज्यों ज्यों पानी पड़ता जाता था अग्नि का चेहरा और भी उज्जल होता जाता था। कारण यह था कि आग बहुत अन्दर घुस गई थी और पानी वहाँ पर नहीं पहुँच रहा था। एक कोलाहल मचा था नौकर और स्वामी इस अग्नि कुन्ड मैं और आस पास के मकानों में साथ साथ मिलकर ऊपर का असबाब नीचे फैंक रहे थे। बड़ी

बड़ी मेज़ और कुर्सियाँ सुन्दर पलँग और तख्त उतारने ही में टूट कर ईंधन हो गये। भारी भारी सन्दूक दुर्बल और पतली रस्सियों के बल पर तिमंज़िलों से नीचे लटका दिए गये। लावण्यमयी कोमलांगी प्रेमलताएँ मैली कुचैली सीढ़ियों पर अपनी और दूसरों के कन्धों से उतार कर मुहल्ले वालों के घरों में जाने लगीं। सच है! बुरा दिन ईश्वर किसीको न दिखावे जो सदैव गाड़ियाँ पालकियों और डोलियों में जाती थीं आज उनको नंगे पाओं सब के सामने निकलना पड़ा, उनके कोमल शरीर एक एक दो दो कपड़ों से ढके थे, उनके भय भीत मुरझाये हुए चेहरे धड़कते हुए हृदय का परिचय दे रहे थे।

पूज्यवर देवियो! मुझे इस समय आप के परदे का ध्यान आया। ईश्वर ने आँखें दी हैं कि मनुष्य समय कुसमय उनका प्रयोग करे अन्यथा इनकी कोई आवश्यकता न थी। यदि इस प्रकार की अग्नि किसी और देश में लगती तो मेरा पक्का विश्वास है कि उस गृह में गृहिणी स्वामी से अधिक काम करती। वह दुःख के समय अपने स्वामी के वास्ते बोझ होने के स्थान पर सहायक होती। उन्हें दूसरे असबाब की तरह चढ़ाना और उतारना न पड़ता। मैं आपकी इस बात को जानता हूं कि इस कुरीति के प्रचलित होने में पुरुषों का हाथ अधिक है और एक प्रकार से पुरुष परदा करते हैं न कि स्त्रियाँ किन्तु फिर भी बेड़ियाँ आपके पैरों में हैं। यह मरा हुआ साँप आपके ही गले में पड़ा हुआ है, मकान की चारों दीवारों के अन्दर आप ही बन्द रहती हैं, बाहर की शुद्ध जल वायु प्रकृति के मन मोहने वाले चितचोर सुन्दर दृश्यों से आप ही की आयु को वञ्चित करती रहती हैं भाँति भाँति के रोग और तरह २ की बीमारियाँ और अनेक प्रकार के विकार आप ही की आयु को न्यून, आप ही के जीवन को हीन बनाते हैं और आप ही के स्वभाविक आनन्द पर कर लगाते हैं। आप मुझे बिभीषण कहें अथवा जाति घातक कहें चाहे पुरुषद्रोही कहें किन्तु मेरा हृदय आप के वास्ते पसीजता है। मैं जानता हूँ कि पुरुष जाति स्वार्थ के वश होकर आपको आपके अधिकारों से वंचित रखना चाहती है। मैं जानता हूँ इसमें हमारी मूर्खता है और हम आगे पीछेको न समझ कर स्वयम् अपनी जड़ पर कुल्हाड़ी चला रहे हैं, इस वास्ते मैं आप से निवेदन करता हूँ कि सावधान! उन बेड़ियों को आप ही काट सक्ती हैं, इस मरे हुए साँप को आप ही निकाल कर फेंक सक्ती हैं। आपके बन्दीगृह की कुञ्जी आपके ही पास है और आप अपने मानसिक और शारीरिक रोगों की स्वयम् ही वैद्य हैं। आप सीता और सावित्री की उपासिका

हैं आप लक्ष्मी और सरस्वती की सहेलियाँ हैं। जो स्वर्ण तप तप कर कुन्दन हो गया हो उसके वास्ते परदे की क्या आवश्यकता है उसके वास्ते घूंघट से क्या लाभ है ?

मैं मकान के दरवाज़े के निकट गया, मकान् वाले पतंग के समान अग्नि के चारों ओर घूम रहे थे। लाला देवीसहाय भी घबराये हुए कभी बाहर कभी अन्दर इसी प्रकार जाने का प्रयत्न कर रहे थे। मैं उनके निकट गया। वह मुझे देखते ही बेतरह लिपट गये और मेरे कन्धे पर सिर रख कर फूट फूट कर रोने लगे।

हा दैव! मुसीबत कैसी बुरी होती है। यह वही पुरुष है जिसने छहों शास्त्रों को कण्ठ कर रक्खा है, जिसने अपने इकलौते बेटे मरजाने पर अपने मुख से आह नहीं निकाली, अपनी आखों से एक आँसू न निकलने दिया आर आज वही मनुष्य बच्चों के समान मेरे कन्धे पर सिर रक्खे रो रहा है। आख़िर आदमी आदमी ही है। मनुष्य अपने ज्ञान और तर्क-बुद्धि के बल से एक आध दुःख धारा का सामना कर सक्ता है किन्तु जब दुःख का समुद्र चारों ओर से उमड़ आता है तो फिर उसका सामना करना असम्भव ही होता है। साधारण सांसारिक मनुष्य के वास्ते नीति शास्त्र केवल शान्ति के समय का खेल है। जिस समय दुःख की परछाईं उसके ऊपर पड़ती है तो यह सब सामान उसका परित्याग कर देते हैं। मेरा मन भी इनके दुःखों को देख कर भर आया। मैंने कहा "बाबू जी आप ऐसे उदास क्यों होते हैं। यह सब आपके हाथ का मैल है। रुपया बड़ी चीज़ नहीं है, आप शान्ति धारण करें। ऐसे समय मैं अशान्त होने से और भी काम बिगड़ जाता है।"

देवीसहाय—भाई मेरा मन उमड़ा आता है। मैं किस प्रकार शान्त होऊँ मकान इत्यादि की मैं कुछ परवाह नहीं करता। यदि मैं स्वयम् अपने हाथ से दिया सलाई लगा देता तो मुझे शोक न होता किन्तु—(इतना कहते कहते रुक गये)

मैं—बाबू जी आप शान्ति स्वरूप हैं। आप शान्त हैं। आप क्या कहते कहते रुक गये ?

देवीसहाय—भाई रामकिशोर, मेरा हृदय फटा जाता है, मकान के चारों ओर आग लगी है कहीं से निकलने का रास्ता नहीं रहा। लक्ष्मी और बच्चे सब अन्दर हैं, वह किस प्रकार बाहर आवें। कोई अन्दर जाने को तैय्यार नहीं होता। मैं स्वयम् जाना चाहता हूँ किन्तु यह लोग मुझे पकड़ लेते हैं और बल पूर्वक रोक लेते हैं "अभी आग बुझी जाती है" "अभी आग बुझी जाती है" सब यही कहते हैं।

इतना कहा और रोने लगे। जो आँखें पुत्र की मृत्यु पर अश्रुहीन रहीं वह स्त्री के दुःख से उमड़ आईं, जो हृदय पुत्र

के शव को अग्नि में प्रवेश करते समय जाहिरा शान्त रहा वह अर्धाङ्गिनी के वियोग का विचार करके चूर चूर हो गया। मेरे वास्ते असम्भव था कि मैं कायरों के समान इस दृश्य को देखता रहता। मैं ने उनसे पूँछ लिया कि वह मकान के किस भाग में होगीं और यह पता लेने के पश्चात मैं आग बुझाने के अंजन के पास गया और उस पर रक्खी हुई एक वरदी उठाली और जल्दी से उसको पहन लिया। उस कोलाहल में किसीको मेरे मन्तव्य का पता नहीं लगा। मैं इनजिनियर साहब के पास पहुंचा और उनके कान में यह बात कही "यदि मैं वापस न आऊँ तो मेरी कमला और प्रेम का ध्यान रखना मैं उन्हें आपके ऊपर छोड़ता हूं" यह कहा और पूर्व इसके कि वह मुझे रोक सकें मैं जलती हुई अग्नि में कूद गया। मेरे कूदने पर एक और कोलाहल मच गया। "कोई आग में गिर गया। बाबू जी, इसको पकड़ लो।" (क्रमशः)

क्या सत्य कहते हो ?



ज्येष्ठ मास के मध्याह्न की आग से सन्तप्त वायु द्वारा व्याकुल होकर ही किसी कवि ने भगवान् भास्कर का नाम "सहस्रांशु" निर्धारित किया होगा; ऐसा प्रतीत होता है। यही मास है, जो वायु की स्वाभाविक शीतलता को अत्युष्णता में परिणत कर देता है, जान्हवी का शीतल नीर स्वभाव विरुद्ध प्रतीत होने लगता है। इसी मास की कृपा कटाक्ष से मनोहर उद्यान, सुन्दर सुमन सम्पादित वाटिकाएँ नीरस और निस्सौरभ हो रही हैं। न कोयल का कर्ण प्रिय कलाप है, न अशोक की शोक हर आवाज़। न कुरङ्गो की विकट दौड़ है और न मयूरों का मनोहर नाच है।

नगर भर में आधी रात के समान सन्नाटा छाया हुआ है। मनुष्य मात्र प्रज्वलित ज्वाला से डरते हुए भीतर छिपे जाते हैं। क्या बाल, क्या वृद्ध, सब भीतर से ही सूर्य्य देव को साष्टांग दण्डवत कर रहे हैं। पृथ्वी, दीवारें किवाड़ बर्तन वस्त्र छाता और जूता सब के सब सूर्य्य प्रकोप से प्रज्वलित हो रहे हैं। कहना नहीं होगा कि प्रायः संसार रोगी हो रहा है, परन्तु जो वास्तव में रोग ग्रस्त हैं, उनकी दशा तो इन दिनों बहुत ही शोचनीय है।

देखिए! विचारी "सावित्री" कई मास से ज्वर से पीड़ित शैय्या पर पड़ी है। आज सावित्री की अवस्था अत्यन्त ही शिथिल है। एक तो असाध्य ज्वर का सन्ताप और ऊपर ज्येष्ठ मास का प्रकोप, बिचारी कोमल तन्वी को अग्नि कुण्ड में डाले हुए है। यद्यपि प्रत्येक प्रकार का समान-सुख विद्युत्वायु प्रचालन, और शीतल जलादि तथा सुगन्धित खस की

खिड़कियाँ सब कुछ हैं, तो भी सावित्री को कुछ रुचि कर प्रतीत नहीं होता है।

पीड़ित अबला स्वामी की गोद में सिर धरे हुए प्रेम से धीरे धीरे बातें कर रही है। सास ससुर आदि समीपस्थ सम्बन्धियों का अभाव पाकर सावित्री अपने प्रियतम से मन की तरंगें चलाने लगी। बहुत सी बात चीत करने के पश्चात् वह बोली,—"स्वामिन्! मेरा रोग असाध्य है। मेरे प्राण पक्षी इस घोंसले का परित्याग करने को हैं। आप की सेवा इतनी ही मेरे भाग्य में थी, सो हो चुकी, मुझे ऐसा प्रतीत होता है।"

मोती बाबू—(रोगिनी के पति) नहीं नहीं! ऐसी निराशा की कोई बात नहीं। अभी मैं डाक्टर से मिल कर आया हूँ। वह कहते हैं कि चार दिन में तुम बिलकुल अच्छी हो जाओगी।

सावित्री—अजी डाक्टर लोग तो ऐसा ही कहा करते हैं। यदि वह ऐसा न कहें, तो कौन उनको छदाम देवे। मैं स्वयम् अनुभव करती हूँ। मेरा शरीर सर्वथा शिथिल होता जाता है। आप कृपा कर, मुझे औषधि पीने का कष्ट न दें। अब तो केवल आपके चरणों की धूल ही अभीष्ट है।

मोती०—(आँसू भर के) नहीं प्रिये! ऐसी ऐसी अनहोनी बातें मत करो, तुम्हारे बिना मेरा जीना नितान्त असम्भव है।

सा०—स्वामिन्! यह संसार मोह माया का जाल है। जितना किसी वस्तु से कोई अधिक विमोहित होता है, उतना ही उस से वियुक्त होने पर दुःखित होता है। कोई किसी के लिए रोदन नहीं करता, केवल सब अपने सुख के लिए ही विलाप करते हैं। जब आपको वियुक्त वस्तु शीघ्र ही प्राप्त हो जावेगी, तो तत्क्षण ही आप दुःख को भूल जावेंगे। बीती बातों को मनुष्य सदैव ही विस्मृत कर देते हैं। ऐसा नित्य संसार में देखा जाता है।

मोती०—प्राणेश्वरी! तुम कैसी अविश्वास की बातें कहती हो। संसार में क्या सब लोग एक से ही होते हैं? क्या तुम मुझे इतना कृतघ्न समझती हो, कि मैं तुम्हारे सर्व-गुणों को भूल जाऊँगा। नहीं, कदापि नहीं। मैं सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करता हूँ—"ईश्वर न करें, यदि अनहोनी घटना हो गई, तो मैं कदापि किसी अन्य को प्रीतिपात्रा नहीं बनाऊँगा।"

सा०—(साँस को थाम कर) "प्राणनाथ! आप सुबोध हैं। मैं आपको शिक्षा नहीं दे सकती, परन्तु इतनी प्रार्थना अवश्य है कि आप आस पास की घटनाओं और भावी दृश्यों का विचार कर तब बात मुख से निकालें। मेरा तो आप

की प्रतिज्ञा के उत्तर में यही निवेदन है कि—"क्या सत्य कहते हो ?"

मोती०—हाँ, सत्य कहता हूँ।

सा०—आपका कथन ध्रुव हो, किन्तु मेरा मन यह जानने के लिए तो फिर प्रार्थी है कि—"क्या आप सत्य कहते हैं ?"

मोती०—ईश्वर करे, मुझ ऐसे दुष्ट को सत्य के पालन करने का अवसर ही न मिले। यदि दुर्दैव से ऐसा कुसमय बलात मेरे सिर पर आन भी पड़ा, तो मैं किस से कहूँगा कि 'हाँ, मैं सत्य कहता हूँ।'

सा०—स्वामिन ! वह समय तो अवश्य ही समीप है। यह मैं निश्चय पूर्वक कह सकती हूँ। तब आप ही मेरे इस प्रश्न को अपने हृदय से पूछिए, स्वामी ! क्या सत्य कहते हो ?

मोती०—कदाचित तुम्हें माता और मौसी की रात वाली बातों से सन्देह भासित हुआ है। वह बातें भले ही करती रही हों, किन्तु मैंने उनकी किसी बात को भी कान लगा कर नहीं सुना, न आगे को सुनूँगा।

सा०—(भरे हुए कंठ से) तभी तो मैं पूँछती हूँ कि "क्या सत्य कहते हो ?"

मोती०—अच्छा इन बातों को जाने दो, ईश्वर तुम्हें जीवन प्रदान करें, यही मेरी परम पिता से प्रार्थना है। मैं अभी डाक्टर साहेब से ताकीद करके औषधि लाता हूँ। लो, बहिन सरस्वती जो आन पहुँची हैं। यह तुम्हारे पास रहेंगी। यह कह कर और अत्यन्त ही दुःखित और घबराये हुए मोती बाबू घर से निकल कर तीव्र गति से डाक्टर के यहाँ पहुँचे। पूँछने पर ज्ञात हुआ कि डाक्टर जी तो मनोरंजनार्थ किसी मित्र और अपनी पुत्री कमला के साथ गंगा घाट को गये हैं। गंगा का तीर, निरमल नीर और वहाँ पर मन्द गति वाले समीर का स्मरण आते ही मोती बाबू पुलकित होगये। विचार उत्पन्न हुआ, चलो, हम भी भ्रमण कर आवें। शायद डाक्टर भी मिल जायँगे, तो औषधि की भी बात चीत करेंगे। ट्रामवे का टिकट खरीद कर वे गंगा घाट पर पहुँचे।

वहाँ अद्भुत शोभा को निहार कर उनके नेत्र तृप्त हो गये। मनोमालिन्य विनाश हुआ। हाथ मुख धोने से चित्त प्रफुल्लित हुआ। घूमते फिरते डाक्टर से भी भेंट हुई, इस से और भी धैर्य्य हुआ। हाल हकीकत पूछने के पश्चात् डाक्टर ने कहा, "कोई चिन्ता की बात नहीं, अब तो शीघ्र ही निरोग होने को हैं।" लो हम औषधि लिखे देते हैं, बाजार से लेते जाना, और खिला देना। प्रातःकाल होते ही ज्वर कम हो जायगा।

मोती०—अच्छा तो मुझे आज्ञा दीजिए, औषधि लेकर जाऊँ।

डा०—अजी आइये, थोड़ा घूम कर गङ्गा का आनन्द लीजिए, औषधि तो

रात्रि को सेवन करानी होगी। बीमारों के साथ बीमार होना यह भी तो बुद्धिमत्ता नहीं। अहा! कैसी शीतल पवन प्रसरित हो रही है। दिन भर तो लू के थपेड़े खाते रहे हैं, अब तो आनन्द लेलें।

मोती०—(थोड़ा घूमने पर) नहीं नहीं डाक्टर साहब! मेरा चित्त घर में ही लगा है। आप आज्ञा दें तो मैं औषधि लेकर जाऊँ।

डा० अच्छा अगर आप जाते हैं, तो मेरी (पुत्री की ओर इशारा करके) लाकम को भी साथ लेते जावें। मैं अभी और घूमूँ गा। यह बालिका थक जावेगी। इसे घर पर पहुँचा दीजिएगा।

'जो आज्ञा' कह कर मोती बाबू कमला को साथ लेकर शीघ्रता से घर की तरफ़ चले।

मित्र—क्यों जी डाक्टर साहब! आपने अपनी युवती पुत्री को एक अज्ञात और युवा पुरुष के साथ कर दिया है, मेरे ख्याल में यह काम ठीक नहीं किया।

डा०—नहीं, अज्ञात तो नहीं, हमारे पड़ोसी हैं और सज्जन हैं। कमला सदैव इनके घर जाया करती है।

मित्र—तो इनका कौन बीमार है?

डा०—इन्हीं की स्त्री बीमार है। बीमार क्या बिचारी एक आध दिन की मेहमान है। हालत तो 'डेंजूस' हो, चुकी है।

मित्र—आपने कमला के लिए अभी तक कोई सुयोग्य वर नियत नहीं किया?

डा०—अभी तक तो नहीं किया, पर शीघ्र ही होने वाला है।

मित्र— (मुसकरा कर) क्या मोती बाबू की स्त्री का देहान्त होने पर......

डा०—नहीं नहीं, हम अन्यत्र ही 'अरेंज़मैन्ट' कर रहे हैं।

मित्र—मैंने कहा कमला, कदाचित् मेरा ही विचार ठीक हो!

कमला अतिरूपवती और सुचतुर लड़की है। मोती बाबू कमला के साथ शीघ्र ही औषधि लेकर अपने घर पहुँचे। कमला ने कहा, "मोती बाबू! मुझे घर पर पहुँचा दो।" परन्तु उन्होंने कहा कि औषधि में बिलम्ब हो चुका है। औषधि देकर फिर तुमको छोड़ आऊँगा।

सावित्री शैय्या पर बिलकुल बेसुध पड़ी थी और कोई भी उसके पास नहीं था। मोती बाबू को यह देख कर कि सावित्री अकेली पड़ी है और घर वाले सब अन्यत्र हैं, बड़ा ही क्षोभ हुआ। परन्तु समय उचित न जान कर चुप चाप उसे सचेत करने का प्रयत्न करने लगे। शीशी को हिलाने से अनायास सावित्री के मुख से यही निकला—"क्या सत्य कहते हो?"

मोती बाबू ने जाना कि सावित्री उन्हीं बातों को स्मरण करते हुए सो

गई है। कमला को फिर भली प्रकार धैर्य देकर सचेत करने लगे। जब सचेत होने पर सावित्री की दृष्टि समीपस्थ दिव्य मूर्ति "कमला" पर पड़ी, अनायास उसके मुख से निकला—"क्या सत्य कहते हो ?" और फिर बेहोश हो गई।

मोती बाबू उसके शीश को थाम कर फिर बड़ी सावधानी से प्रबोध करने लगे और कहने लगे, कि प्रियेजी सावधानी से औषधि पीलो, मुझे डाक्टर की पुत्री कमला को उसके घर पर छोड़ने जाना है, उन्होंने गङ्गा घाट से इसे मेरे साथ किया है।

औषधि पी कर सावित्री मन में कहने लगी, डाक्टर ने कमला को आपके साथ कर दिया है, यह तो सत्य है, परन्तु आप इसे छोड़ने जाते हैं यह—"क्या सत्य कहते हो ?"

कुछ देर बाद फिर मन में कहने लगी, आप चाहे किसी को छोड़ें या न छोड़ें, परन्तु मैं तो आप अब आपको छोड़े ही जाती हूँ।

मोती बाबू ने तुरन्त कमला को घर पहुँचा दिया। चलते समय कमला ने मुसकरा कर कहा, "मोती बाबू कल फिर आप गङ्गा घाट पर मिलेंगे न ?"

मोती बाबू शीघ्र ही लौट कर सावित्री की शैय्या के समीप आन बैठे। सावित्री की अवस्था क्षण क्षण अधिक क्षीण होने लगी काल! रे विकरालते गालों से कौन बच सकता है। जब बड़े बड़े तेजधारी बलवानों को तूने हड़प कर लिया तो बिचारी अबला साध्वी सावित्री की क्या हस्ती है।

* * * * *

"सब दिन होत न एक समान"

साध्वी सावित्री आज इस संसार में नहीं है। मोती बाबू की अवस्था अति चिन्तनीय है। अहर्निश सावित्री की मोहिनी आकृति नेत्रों के सामने दिखाई देती है। प्रिया का कर्णप्रिय मृदु वचन —"क्या सत्य कहते हो ?" चारों ओर से सुनाई देता है।

खाना पीना और काम काज उन्हें कुछ भी नहीं रुचता है केवल प्रिया की स्मृति में समय व्यतीत कर देते हैं। हाँ कभी कभी गंगा घाट पर दिल बहलाने के लिए विचर आते हैं। जहाँ पर प्रायः डाक्टर जगदीशचन्द्र जी और उनकी पुत्री कमला से मेल हो जाया करता है।

उँगली पकड़ते पहुँचा पकड़ने वाली बात हुई। हमें क्या ज्ञात था कि डाक्टर जगदीश कमला रूपी की वेंदी पर मोती बाबू को सुहाग का मोती बना कर लटकाने वाले हैं। फलतः आज बहुत दिनों के परिश्रम करने के पश्चात डाक्टर सफल मनोरथ हुए हैं।

यद्यपि हमारे पाठकों ने कई बेर मोती बाबू को देखा है। परन्तु जिस अवस्था में और जिस स्थान पर आज हम उनको

भेंट कराते हैं वहाँ की शोभा विलक्षण ही है। कहना नहीं होगा मोती बाबू अब पहले के से मोती नहीं रहे। अब तो उनकी आभा कमला के कण्ठ में प्रतिष्ठित होकर अति कमनीय और प्रज्वलित हो उठी है। आज वह कमला के साथ अपनी गङ्गा वाटिका में मनोविहार-कौशल में निपुणता दिखा रहे ह। इसी सुन्दर वाटिका में एक ओर संगमरमर का विशाल चबूतरा भगवती भागीरथी के तीर पर सुसज्जित है। शीतल निरमल नीर इसी चबूतरे को स्पर्श करता हुआ बह रहा है। गङ्गा जल से स्पर्श करता हुआ शीतल मन्द समीर इसी चबूतरे पर स्थित जनों के श्रान्त शरीरों में उत्साह का संचार कर रहा है।

नवागत प्रेमिणी के कर कमल को गहे हंस की गति को मात करते हुए दम्पति उसी स्वर्ग तुल्य दुग्ध सदृश श्वेत चबूतरे पर विराज रहे हैं। असीमानन्द में निमग्न मोती बाबू चन्द्रमुखी कमला की ओर चकोरवत स्नेह भरी आँखों से निहार रहे हैं। मोती बाबू के दोनों कान कमला की मृदु मुसकान से मिश्रित वचनामृतों को पान करने के लिये चातक की नाई उत्कण्ठित हो रहे हैं।

ईश्वर की महिमा विचित्र है। क्षण भर में समय का परिवर्तन करना उसके बायें हाथ का कर्तब है।

पश्चिम की ओर से शीघ्रगामिनी तिमराच्छादिनी घन घोर घटा सिर पर आ डटी। वायु देवता ने साक्षात रूप धारण किया। गङ्गा की सुखोत्पादक तरंगे बिखर बिखर कर भयानक नाद करने लगीं।

विद्युत की आकस्मिक चकाचौंध और मेघ के घोर नाद से विस्मित कमला निस्साहस होकर मोती बाबू के गले लिपट कर निश्चन्त हुई। मोती बाबू एक हाथ कमला की कमर पर और दूसरा शीश पर धर कर बोले, "प्रिये डरो मत, मैं तुम्हारे साथ हूँ। अभी क्षण भर में यह आँधी तूफ़ान दूर होगा, सुरक्षित तुम्हें घर में ले चलूँगा।"

कमला—(भय और स्नेह से) "क्या सत्य कहते हो हो ?"

उफ! यह क्या शब्द थे जिन्होंने मोती बाबू को पाषाणवत् निस्तब्ध कर दिया। मोती सच मुच बेजान का मोती ही हो गये। उनको उस समय चारो ओर से यही सुनाई देने लगा, "क्या सत्य कहते हो ?" आकाश मंडल में मेघ की गर्जना से शब्द होने लगा —"क्या सत्य कहते हो ?" विद्युत की चमक ने आकाश मंडल पर अंकित कर दिया—"क्या सत्य कहते हो ?" गङ्गा का नीर चबूतरे की दिवार के साथ टकरा टकरा कहने लगा—"क्या सत्य कहते हो ?" वायु एक ओर से आता हुआ दूसरी ओर यही कहता चला जाता है कि "क्या सत्य कहते हो?"

हम भी अपने पाठक पाठिकाओं से सानुरोध कहगे कि तुम भी मोनी बाबू से या उन सरीखे औरों से पूँछो और बड़े बल से पूँछो—"क्या सत्य कहते हो ?"

—महाराज मल।

श्री माताजी तपस्विनी
का
संक्षिप्त जीवन चरित्र



संसार मैँ जन्म लेना उसी का सार्थक है, जो अपने देश का कुछ भी सुधार कर सके।

भारतवर्ष मैँ साधु-सुधार के प्रश्न की ओर कितने ही देश हितैषियोँ का ध्यान आकर्षित हुआ है। संयुक्त प्रान्त मैँ स्वर्गीय लाला बैजनाथ जी व डेरा इस्मायल खां के जिमीदार श्रीयुत टहलराम गंगाराम जी ने साधुओँ की उच्च शिक्षा की ओर लोगोँ का लक्ष्य खीँचने की इच्छा से वर्त्तमान समाचार पत्रोँ द्वारा विशेष प्रयत्न किया है। यह सभी मानने को तैयार हैँ कि हिन्दुस्तान मैँ साधुओँ की जैसी विशाल संख्या है, अगर वे शिक्षित हो स्वधर्म साधन मैँ तत्पर हो जायँ परोपकार करने मैँ कटिबद्ध हो जाँय, तो देशोन्नति मैँ बहुत कुछ सुलभता हो जाय। किन्तु हाय! साधुओँ का यह बृहत्समागम मूर्खता के कारण कितनी दुर्दशा मैँ है। कैसे अधम आचार विचारोँ मैँ यह नाम के साधु अपना अमूल्य समय नष्ट कर रहे हैँ सो किसी से छिपी नहीँ है। ऐसे संयोग मैँ अगर कोई व्यक्ति जनहित कार्य मैँ अपना समय व्यतीत करे तो कितनी प्रशंसा की बात है। और फिर उससे अधिक हर्ष का कारण तब क्योँ न हो, यदि कोई स्त्री जाति ऐसे सुन्दर काम के करने मैँ अग्रणी हुई हो।

आज पाठकोँ के सन्मुख ऐसी ही एक सती साध्वी आदर्श रमणी-रत्न का संक्षिप्त जीवन चरित्र उपस्थित कर आशा करते हैँ कि वे इसे आद्योपान्त पढ़ गुण ग्रहण कर कुछ देश सुधारमैँ आगे बढ़ैंगे।

इस सती ने स्त्री शिक्षा जैसे सुमार्ग को सरल करने की इच्छा से कैसा भगीरथ प्रयत्न किया है, इसका पता आगे मिलेगा। बंगाल मैँ यह "माताजी तपस्विनी" के नाम से प्रसिद्ध थीँ। अपने देश मैँ संसार त्यागी लोग साधारणतः अपनी पूर्व स्थिति आदि का वृत्तांत प्रगट करने की इच्छा नहीँ रखते, इसी कारण माताजी का पूर्व वृत्तांत विशेष रूप से नहीँ मिला, जिससे उनकी विस्तृत जीवनी नहीँ लिखी जा सकी। यह वृत्तांत कितने ही भक्तजनोँ के मुख से सुन कर पाठकोँ के सन्मुख उपस्थित किया जाता है।

माता जी का जन्म सन् १८३१ मेँ मैसूर नगर मेँ हुआ था। इनके पिता पंडित अलवत्तम श्रीनिवासचर संस्कृत के उद्भटविद्वान उस समय के मैसूर नरेश महाराज कृष्णराज बड़ियार की राज सभा के सभ्योँ मेँ थे। यह दर्शन शास्त्र के ज्ञाता और उत्तम कवि थे। रामानुजाचार्य्य के विशिष्टाद्वैत मत के अनुयायी थे। संस्कृत भाषा मेँ एक उषापरिणय नामक उत्तम ग्रंथ की रचना भी आपने की है।

माता जी का नाम बाल्यावस्था मेँ अनन्तम्मा था। शैशवावस्था ही से माता जी का ध्यान साधु बनने की ओर लगा रहता था। रात दिन साधु प्रशंसा ही मेँ बिताया करती थीँ। सुनते हैँ साधु बनने की इच्छा दो एक बार पूज्य पिता से भी प्रगट की थी। विद्वान् पिता ने पुत्री को संस्कृत विद्या का ऊँचा ज्ञान संपादन करने की ओर लक्ष्य दिया। कितने ही वर्ष परिश्रम करने के अनन्तर माता जी संस्कृत विद्या मेँ अच्छी शिक्षा पा चुकीँ।

माता जी के पिता अलवत्तम जी के पास कितने ही छात्र विद्याध्यन की इच्छा से प्रतिदिन आते थे। उस समय माता जी पिता के पास बैठी रहतीँ और उनके अमूल्य उपदेश और विविध विषय सम्बन्धी शिक्षण सुन अपना ज्ञान भंडार बढ़ाती थीँ। यद्यपि संगीत कला की शिक्षा इन्हेँ नहीँ मिली तोभी माताजी का कंठ बड़ा मधुर था। यह मधुर स्वर पीछे बड़ा उपयोगी हुआ। माताजी के कंठ से निकला हुआ संगीत श्रवण कर श्रोता-मुग्ध होते थे और उनकी आत्मा संसार के मोह जाल से निकल कर उतने समय तो निस्संदेह उच्चाकांक्षा रख ईश भक्ति पाने की इच्छा से ईश्वरीय ध्यान मेँ निमग्न हो जाती थी।

माता जी का विवाह पं० अनन्त-कृष्णमायर एक विद्वान के साथ हुआ। यह युवक परमपूज्य श्रीनिवास देशिकेन्द्र परकली स्वामी के पित्रज भाई होते थे। माता जी के यथा समय दो पुत्र रत्नोँ का जन्म हुआ, जिनके नाम नरसिंहराघवाचार्य्य और गोपालाचार्य्य था। यह बालक बहुत कम उमर के थे, तभी माता जी के पति अनन्तकृष्णमायर का स्वर्गवास हो गया। विद्वान और प्रेमी पति के असामयिक वियोग से माता जी को जैसा घाव हुआ, उसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैँ, परन्तु प्रियपुत्रोँ के लिए माताजी ने इस विधवापन जैसी आपत्ति को भी धैर्य्य पूर्वक सहन किया। माता जी ने अपने दोनोँ पुत्र प्रौढ़ होने तक स्वर्गवासी स्वामी देशिकेन्द्र जी को सौँप दिये और आप ने दक्षिण भारत की तीर्थ यात्रा को प्रस्थान किया। एक क्षेत्र मेँ कितने ही वैरागियोँ से माता जी का परिचय हुआ, और उन्हीँ के साथ साथ साध्वी भेष मेँ उत्तर हिन्दुस्थान से मथुरा काशी प्रयाग आदि तीर्थोँ की यात्रा की

कुछ दिन नैमिषारण्य में निवास किया। उसी समय सन् १८५७ का बलवा आरम्भ हुआ, उस समय कितने ही उच्च अंगरेज अफ़सरों से माता जी की भेंट हुई। उन्होंने माता जी की अपूर्व प्रतिभा और शक्ति देख कर आश्चर्य्य किया और आजन्म माता जी का विशेष सन्मान किया। उन (अफ़सरों) की स्त्रियाँ भी माताजी से मिलने बहुधा आया करती थीं। नैमिषारण्य में निवास कर गंगा स्नान का लाभ उठा अनन्तर माता जी बंगाल में पधारीं। परलोकवासी महारानी स्वर्णमयी के स्वामी जिस समय कासिमबाजार की जमींदारी के स्वामी हुए, उस समय उनका निमन्त्रण पाकर माताजी वहाँ पहुँची थीं। बर्दमान की महारानी बसंतकुमारी के साथ जब राजा दक्षिणारंजन का विवाह हुआ, तब भी माता जी वहाँ उपस्थित थीं। इन बातों से माताजी की मान मर्यादा तथा राजप्रतिष्ठा का पता मिलता है। हाईकोर्ट के बंगाली जज पं० शंभूनाथ जी और द्वारकानाथ जी मित्र जैसे विद्वान् माताजी पर अगाध भक्ति रखते थे।

बंगाल में रहकर माताजी पशुपतिनाथ जी के दर्शनों की इच्छा से नैपाल गयीं। वहाँ उन्होंने बहुत समय तक निवास किया। नैपाल के स्वतंत्र राजा एवं उनके उच्च अधिकारी वर्ग माताजी के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। नेपाल में माता जी ने एक गंगा देवी का विशाल मन्दिर स्थापन कराया, जो आजकल वहाँ के विख्यात मन्दिरों में से एक समझा जाता है। नैपाल में हजारों रुपये के व्यय से चारों वेद सुवर्णाक्षरों से माता जी ने अंकित कराये थे।

लगभग बाइस वर्ष के अनन्तर माता जी फिर बंग देश में वापस आयीं। हिन्दू धर्म पर माता जी की असीम श्रद्धा थी। परन्तु बंग देश के प्रचलित हिन्दू धर्म पर उन्हें बड़ी अश्रद्धा हो गयी थी। इस देश में धर्म बन्धन की शिथिलता देख उन्हें बड़ा खेद होने लगा।

देश में स्त्री-जाति की शोचनीय अवस्था को देख कर उनका कोमल हृदय जर्जरित हो जाता था और उसके सुधारने की इच्छा से माताजी ने व्यवहारिक उपायों की योजना की। स्त्री-जाति की उन्नति के लिए १८ वर्ष हुए उन्होंने "महाकाली पाठशाला" की स्थापना की। आजकल यह महाकाली पाठशाला स्त्री-शिक्षा की विशाल संस्था समझी जाती है। कलकत्ता, हबड़ा, बहरामपुर, काशी, रावलपिंडी आदि १०–१२ स्थानों में इस पाठशाला की शाखा पाठशालाएँ स्थापित हैं। हजारों बालिकाएँ इन पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त कर अपने भावी जीवन को सुधारने का सुयोग प्राप्त कर रही हैं। यह कितने पुण्य का काम है? धन्य माता तपस्विनी जी! तुम्हें धन्य है!

एक अबला स्त्री के इस उत्तम कृत्य और शक्ति-साधन को देख कौन विस्मित न होगा ? साधारण जन समाज की सहायता ही से आज यह पाठशालाएँ सानन्द चल रही हैं। परन्तु आय व्यय का विचार कर ऐसा ही प्रतीत होता है, मानो माता जी स्वयं विद्यालय के लिए पास से हजारों रुपया दे चुकी हों। परन्तु विद्यालय जैसी महान् संस्था स्थापन के लिए इतना धन माता जी के पास कहाँ से आया ? यह समझ में नहीं आता। इस सम्बन्ध में माताजी कहा करती थीं, "तपस्वियों को सत्कार्य के लिए धन की कमी नहीं हो सकती, परमात्मा सदा देते हैं। निस्स्वार्थ कर्म भर करने को तैयार रहना चाहिए।" माता जी का यह कहना यथार्थ ही सच है, जिसके कितने ही उदाहरण उपस्थित हैं। अबभी भारतवर्ष में दान वीरों की कमी नहीं है, परन्तु उन्हें कोई उत्तेजना देने वाला चाहिए और अपने आदर्श सदाचार सम्पन्न गुणों से उन्हें मुग्ध करना चाहिए।

ऐसी उत्तम पाठशाला के स्थापनार्थ और स्त्री-शिक्षा के प्रचारार्थ विशेष प्रयत्न करने वाली माताजी तपस्विनी के बंगाली मात्र ऋणी रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।

माताजी ने पति के स्वर्गारोहण के अनन्तर कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था। एक बार उन्होंने सारे हिन्दुस्थान की प्रदक्षिणा की। साहस, कर्मोत्साह, परिश्रम, चिन्ता-शीलता और तपश्चर्य्या जैसे सुन्दर गुण सम्पन्न माताजी जैसी स्त्रियाँ तो क्या, पुरुष नामधारी भी विरले ही मिलेंगे। जन-समूह से युक्त मेलों में और हिमालय विन्ध्याचल जैसे निर्जन कन्दराओं में अकेले ही माता जी ने भ्रमण किया।

आजकल की नाजुक मिजाज सुकुमार भारतीय महिलाएँ यह जान कर विस्मित होंगी कि माताजी घोड़े की सवारी में बड़ी कुशल थीं। कितने ही अँग्रेज घुड़सवारों के साथ घुड़दौड़ में आप आगे निकल गयीं और इनाम लिया।

एक ओर यह पुरुषोचित कर्म होने और दूसरी ओर रमणियों के योग्य ललित कला में निपुण वेद वेदाङ्ग और व्याकरणादि में अगाध पांडित्य देख आश्चर्य्यित होना पड़ता है। चित्र विद्या में भी माता जी अपूर्व कौशल रखती थीं। उनकी चित्रावली और उसमें भी पर्वत, बन आदि के दृश्य देख कर दर्शक को मुग्ध होना पड़ता है।

ऐसी आदर्श गुण सम्पन्न परोपकार व्रत मे व्रत्ती सती साध्वी माता तपस्विनी जी ने असार संसार से नाता तोड़ इस नश्वर शरीर को ता० २० अप्रैल १६०५ ई० को विश्वनाथ दरबार काशी में त्याग कर कैलास वास की इच्छा कर प्रस्थान कर दिया।

"कीर्ति यस्य स जीवति" सोच आज भी माता जी का नाद चिरस्मरणीय है और रहेगा। माता जी की मृत्यु होने पर कलकत्ता के प्रसिद्ध एँग्लो इन्डियन दैनिक पत्र ने एक नोट लिखा था जिसका मर्म यों है—

"सारांश यह कि परमपूज्य श्रीमती माता जी तपस्विनी जैसी जिन्दगी बिताती थीं, ऐसी सिवाय भारतवर्ष के अन्यत्र देशों में होनी कठिन थी। जिन लोगों को माता जी के सदाचरण का परिचय न था, उनके लिए माता जी के विशाल कृत्यों की कल्पना करनी कठिन है। माता जी का निवास स्थान हिन्दुस्थान के प्रत्येक प्रान्त के मनुष्यों के लिये तीर्थ स्थान था। जहाँ आकर वे माता जी का दर्शन पा अपने को कृतार्थ मानते थे।

पुराने विचार के हिन्दुओं पर माता जी की असाधारण सत्ता थी। सत्यता का लक्ष्य कर ऐसा निःसंकोच कहा जा सकता है कि इस सत्ता का उपयोग जितना हो सका, माता जी ने पूर्ण रूप से कर दिखाया।"

माता जी जैसी सुयोग्य नारियों का जन्म इस देश में सदा होता रहे, यही परमात्मा से विनय है।

—गौरीशङ्कर शर्मा।

शरदागमन

(१)

हुआ बिमल आकाश
प्रकृति ने छटा पसारी।
पृथ्वी की गन्दगी मिटी
अति ही दुखकारी॥
नील गगन में वारिद
माला नहीं दिखाती।
छिन छिन चपला चमक
नहीं अब है प्रकटाती॥
मेघों का गर्जन घोर वह
अब सुन पड़ता है नहीं।
अविरल वर्षा की झड़ी भी
झर झर करती है नहीं॥

(२)

दादुर गण की टर टर
नहीं सुनाई देती।
झिल्ली की झनकार
कान को कष्ट न देती॥
जुगुनू भी निज चमक
नहीं दिखलाते अब हैं।
कोकिल, पिक शुक, नहीं
जानते क्यों चुप सब हैं?॥
वे मुदित मयूरी मोर भी
जानें किधर चले गये?।
शुभशरद-महीपति से अहो!
क्या ये सभी छले गये?॥

(३)

हुई नीलिमा प्रकट
मनोहर निर्मल नभ में।
त्रिविध वायु बह रही
सुखद सब ओर जगत में॥
मञ्जु मालती और
मल्लिकाएँ हैं फूलीं।
जिन पर अलि-कुल-राशि
गूँजती है मद-भूली॥
निर्मल नदियों के तोय ने
चंचलता को त्याग कर।
करली है अपनी शुभ दशा—
शान्त, सुखद, स्वादिष्टतर॥

(४)

चारों ओर सुखद
हरियाली दरसाती है।
कमलावली सरोवर में
शोभा पाती है॥
खंजरीट अरु हंस आदि
पक्षी हैं आये।
शुभ्र काँस भी आज फूलि
शोभा बगराये॥
इस "शरद आगमन" से अहो!
प्रकृति-बधू मुसका रही।
शुभ पुष्प लता पत्तों सहित,
नव बहार दिखला रही॥

(५)

दिनकर दिन को दिव्य
गगन में मुसकाता है।
नव उत्साह नवीन
तेज का जो दाता है॥
लख उसको बस कमल
सरों में हँस पड़ते हैं।
छपद छबीले तहाँ
तुरत ही धँस पड़ते हैं॥
नव नीरव नभ की निशा में
निशानाथ मुसका रहे!
नित नई कौमुदी से अहो!
कुमुदिनि को बिकसा रहे!!॥

—बिपिनबिहारी मिश्र

प्लेग (ताऊन) और उससे बचने के उपाय



हिले मैं मलेरिया और हैज़े की बीमारियों के विषय में एक एक लेख गृहलक्ष्मी के पाठक और पाठिकाओं के अर्पण कर चुका हूँ। यह देख कर कि दो तीन सप्ताह से ताऊन से मृत्यु संख्या बढ़ने लगी है, मैं इस बार ताऊन और उसके बचने के उपायों पर आज कुछ लिखता हूँ। आशा है, समय पर पाठक पाठिकाएं इससे लाभ उठावेंगी और उसके अनुसार चल कर और दूसरों को चला कर सैकड़ों मनुष्यों को प्लेग से बचा कर प्राणदान के पुण्य भागी होंगी।

उत्पत्ति या विवरण—पहिले जब यह रोग इस देश में फैला था तो लोग उसके विषय में भाँति भाँति के विचार किया करते थे और इसे बिलकुल नया रोग समझते थे। परन्तु इतिहास से इसका पता ईसा की दूसरी शताब्दी तक चलता है। इसका बड़ा दौरा यूरोप में छठी शताब्दी में हुआ था। सन् १६६५ में लंदन का लगभग सत्यानाश सा करके यह रोग यूरोप से प्रायः लोप सा हो गया। भारत में यह रोग पहले पहल बम्बई नगर में सन् १८९६ में हुआ और जब से १३ वर्ष में अर्थात् १८९६ से १९०९ तक ६०००००० से अधिक मृत्युएँ इस भयानक रोग के कारण हुई। बादशाह जहाँगीर के रोज़नामचे से मालूम होता है कि यह रोग उसके समय भी आगरे से शुरू होकर सारे देश में फैल गया था। कमाऊँ में यह रोग बहुत मुद्दत से चला आता है और वहाँ के लोग इसे महामारी कहते हैं और यह भी जानते हैं कि इस से बचने का यही उपाय है कि चूहे मरते ही वह स्थान छोड़ दिया जाय।

कारण—असल में यह रोग चूहों का का रोग है और उनसे फिर मनुष्यों में आजाता है, क्योंकि आपने देखा होगा कि इसमें पहले चूहे मरते हैं। बिना चूहे मरे आदमी को बीमारी नहीं होती। चूहों की खाल में एक प्रकार के पिस्सू होते हैं, जैसे मनुष्यों के जूँ। ये पिस्सू चूहों का रक्त पीकर जिन्दा रहते हैं। जब चूहों में यह रोग फैलता है और दो चार चूहे एक मकान में मर जाते हैं तो बाकी सब चूहे उस घर को छोड़ कर भाग जाते हैं। मरे हुए चूहों की खाल के पिस्सू जो ताऊनी विष से भरे रहते हैं, भोजन न मिलने के कारण शिकार की खोज में निकलते हैं। चूहों के भाग जाने के कारण उन्हें और चूहों पर हमला करना पड़ता है। अतएव यदि कोई मनुष्य उनके सामने आ जाता है, तो रक्त पीने के लिए वह उसे काटते हैं और काटे हुए घाव के ऊपर ताऊन के विष को डाल देते हैं। इस घाव से विष सारे रक्त में फैल जाता है और बढ़ते बढ़ते दस दिन के भीतर अपना पूरा असर करता है और उस मनुष्य को जिसे पिस्सू ने काटा था, प्लेग हो जाता है। यह पिस्सू बहुधा फुट भर की उँचाई तक ही उड़ सकते हैं और इस लिए बहुधा खड़े हुए मनुष्यों की टाँग ही में काट सकते हैं और इसी लिए अधिकतर लोगों की जाँघ की गिल्टियाँ ही बढ़ी हुई देखी जाती हैं। जिन लोगों की गर्दन या काँख में गिल्टयाँ बढ़ती हैं उन्हें समझना चाहिए, शायद लेटे हुए ही पिस्सू ने काटा होगा।

भेद व चिन्ह—प्लेग तीन प्रकार का होता है—

१—ब्यूबोनिक (Bubonic) यानी

गिल्टीदार प्लेग। यह साधारण भेद है जो बहुतायत से देखा जाता है। इसमें तेज बुख़ार के साथ शरीर में कोई न कोई गिल्टी दर्द करती हुई बढ़ जाती है। रोगी का होश उड़ जाता है। चाल डगमगा जाती है और या तो १ सप्ताह के अन्दर मृत्यु हो जाती है या सप्ताह के पश्चात् आराम होना शुरू हो जाता है। इसमें सैकड़े पीछे चालिस से अस्सी तक मृत्युएँ होती हैं।

२—न्यूमोनिक (Neumonic) जिसमें पहिले तो मामूली प्लेग का सा बुख़ार आ जाता है, मगर दूसरे या तीसरे दिन न्यूमोनियाँ के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं अर्थात् छाती में दर्द, अधूरा साँस, रक्त मिश्रित बहुत सा कफ और बेचैनी। इसमें बहुत कम लोग बचते हैं और बहुधा दो तीन दिन में ही मृत्यु हो जाती है।

३—सेप्टीसीमिक (Septiccemic) जिसमें प्लेग का बिष बिलकुल रक्त में फैल जाता है और रोगी बिलकुल बे सुध सा हो जाता है। इसमें २४ घंटे के अन्दर मृत्यु हो जाती है और इस प्रकार का रोगी कभी नहीं बचता।

चिकित्सा

इस रोग की कोई ठीक औषधि निर्णय नहीं हुई परन्तु बहुधा चिन्हों का ही शमन करने का प्रयत्न किया जाता है। यथा तेज़ बुख़ार के लिए ठंढे पानी में कपड़ा भिगो कर बग़लें, जाँघें और मस्तक पोंछना दर्द के लिए गिल्टी को धीमी गर्मी से सेकना इत्यादि। बहुधा लोग एक अंग्रेज़ी औषधि टिंचर आयोडीन (Tincture of Iodine) की बहुत प्रशंसा करते हैं। यह औषधि एक एक बून्द थोड़े पानी में मिला कर दो या तीन घंटे बाद पिलानी चाहिए और इसी को गिल्टी पर लेप करना चाहिए। यह दवा अंग्रेज़ी दवा खाने से शायद चार आने में एक औंस आती है। गिल्टी पर वर्फ़ का ढेला बाँधना भी गुणकारी है, इस चिकित्सा से बहुत लाभ हुआ है। परन्तु चिकित्सा आरम्भ करते समय कोई नहीं कह सकता कि कौन सा रोगी बच सकेगा और कौन सा नहीं।

बचाव के उपाय—प्रत्येक बुद्धिवान मनुष्य मानेगा कि किसी रोग में पड़ कर अच्छे हो जाने से उससे बचा रहना बहुत अच्छा है और प्लेग से बचने के उपायों पर चलने से निश्चय ही उससे बचाव हो सकता है। यदि आपने ऊपर का लेख ध्यान पूर्वक पढ़ा होगा तो आप बचने के उपाय आप ही आप सोच लगे और मेरे नीचे लिखे उपायों से सहमत होंगे।

प्लेग होने से पहले—(१) प्लेग चूहों की बीमारी है, इस लिए पहला उपाय यह होगा कि चूहों से अलग रहे। इसकी

दो तरकीबें हो सकती हैं। पहली तरकीब यह होगी कि चूहे होने ही न पावें। इसके लिए तीन उपाय हो सकते हैं——

(अ) घर में अन्न आदि खाने की वस्तुएं खुली न छोड़नी चाहिए।

(ब) मकान के फ़र्श जहाँ तक हो सके पक्के हों और अनाज रखने की जगह अलग हो। (ये दोनों उपाय कंगालों के लिए कठिन हैं)

(स) गूदड़ या फटी रजाइयों की गठरियाँ जहाँ तक हो सके, जमा न करे या कम से कम ऐसी वस्तुओं को सप्ताह में एक बार चन्द घंटों तक धूप अवश्य दिखा देनी चाहिए। मकान में कूड़ा करकट न जमा करना चाहिए।

(२) दूसरी तरकीब यह हो सकती है कि चूहे मार डाले जाँय। यह या तो विष देकर मारे जाते हैं या चूहेदानी में पकड़ कर। लेकिन इन सब से सहल उपाय यह है कि बिल्ली पाली जाय यह चूहों को न होने देगी। बिल्ली को एक टुकड़ा रोटी का दे दिया जाय, तो वह घर में रहने लगेगी और चूहे भी मार खायेगी (मगर चूहों का मारना भी असम्भव है)।

(३) जहाँ प्लेग हो रहा हो, वहाँ के बाशिन्दों को अपने घर और नगर में न ठहराना चाहिए। अगर किसी कारण से उनका रोकना 'सम्भव' न हो, तो घर में घुसने से पहले उनके कपड़े ८ घंटे तक किसी बाग़ में एक एक करके धूप में सुखाने चाहिए।

प्लेग होने पर——(१) जो चूहा प्लेग से मरे, उसे मिट्टी के तेल में भिगो कर जला दे. परन्तु ऐसे चूहे को हाथ से हर्गिज न उठाये। (२) उस मकान को जहाँ चूहा मरा हो तुरन्त छोड़ दे। मकान १५ दिन से १ महीने तक खाली रखना चाहिए। इस समय में इसमें ख़ूब रोशनी पहुँचाने का इंतज़ाम हो। जिससे पिस्सू जो रोशनी ना पसंद करते है। उस मकान में न रहें। अगर मकान बन्द करके छोड़ दिया जाय तो फिर उसमें जब तक कि उसकी ख़ूब सफ़ाई न हो गई हो, आना बहुत भयंकर है। प्लेग के मकानों की सफ़ाई का सब से अच्छा तरीक़ा तो यह है कि उनकी छत अलग करके सूरज की रोशनी में खुला छोड़ दे। जिन मकानों में चूहे मरे हों, उनमें रात को जाना बहुत ही डरावना है, क्योंकि दिन को तो रोशनी की वजह से पिस्सू छिपे रहते हैं, पर रात को वे बाहर आ जाते हैं।

(३) पाँव में जूता और अगर मुमकिन हो, तो मोटे कपड़े का सँकरी मोहरी वाला पैजामा पहिने रहै, जिससे पिस्सू न काटें और पृथ्वी में न सोकर चारपाइयों में सोना चाहिए।

(४) या प्लेग का टीका लगा ले, तो फिर डर बहुत कम है। जैसा कि बयान

किया जा चुका है। अगर मनुष्य चूहोँ के मरते ही घर छोड़ कर दूर जा बसे, तो उसे ताऊन होने का बहुत कम डर रहता है, परन्तु बहुत से मौकोँ मेँ घर छोड़ कर बाहर रहना आसान बात नहीँ है। सैकड़ोँ रुपये की जायदाद को छोड़ कर बाहर रहना और वहाँ पर हर तरह के आरामोँ का प्रबन्ध करना बहुत मुश्किल है और यही सबब है कि ताऊन का डर होते हुए भी लोग घर नहीँ छोड़ते। फल यह होता है कि बहुधा मनुष्य अपने अमूल्य प्राणोँ को प्लेग मेँ खो देते हैँ। परन्तु अगर मनुष्य को प्लेग से बचने का टीका लगा हो, तो वह बहुत कुछ बेडर हो जाता है और ताऊनी बीमारोँ के साथ बेखटके रह सक्ता है। यह टीका भी उसी तरह से है, जैसे चेचक का टीका होता है। चेचक का टीका बहुधा छोटी उम्र के बच्चों के लगाया जाता है और इसका असर लगभग ७ साल के रहता है, पर ताऊन का टीका हर उम्र के मनुष्य और स्त्री के लगाया जाता है, इसका असर लगभग १ साल के रहता है। इसके लगाने के समय जैसे एक काँटा लगे, वैसी ही जलन होती है और पश्चात् उसके थोड़ी देर के लिए ज्वर हो जाता है। कहावत मशहूर है कि विष विष को मारता है और यह कहना किसी तरह ठीक भी है। जैसे कि एक मनुष्य जो अफीम या संखिया खाने का आदी है, वह अगर अचानक से अपने नशे की चीज़ अधिक खा लेतो उसकी मौत नहीँ हो सकती। लेकिन यदि उतनी ही तादाद उस विष को कोई दूसरा मनुष्य जो उस नशे के खाने का आदी नहीँ, खावे तो अवश्य मर जावेगा। चेचक और प्लेग के टीके का भी हिसाब ऐसा ही है। प्लेग के टीके की औषधि जिसको हम प्लेग का बुझाया हुआ विष भी कह सकते हैँ, लोहू मेँ मिल कर एक ऐसी ताक़त पैदा करती है कि मनुष्य को फिर प्लेग का विष कुछ असर नहीँ करता। इस लिए हर किसी का कर्तव्य है कि वह अपने बचाव के लिए इस टीके को लगवा ले। यहाँ की प्रजा की दशा अज्ञान की वजह से एक बेसमझ बच्चे के समान है, उसे जैसा कुछ किसी ने समझा दिया वैसा ही मान लेती है, इस लिए हर एक ज़मीदार और तालीम शुदा मनुष्य को यह उचित है कि वे आप टीका लगवावेँ और मनुष्योँ को शिक्षा देँ कि वे भी टीका लगवालेँ। इस संसार मेँ अच्छी शिक्षा देने वाले बहुत थोड़े हैँ, पर बहका के लड़ाई देखने वाले बहुतायत से पाये जाते हैँ। जो मनुष्य झूठी ग़प उड़ाकर टीके की बुराई करते हैँ वे उन्हीँ अज्ञान मनुष्योँ मेँ से है जो दूसरे का घर जला कर खुद तापने को तैयार होते हैँ। इस देश मेँ जब टीके का कार्य्य आरम्भ हुआ था तो अधिकता से बदमाशोँ ने यह खबर

उड़ा दी थी कि टीका लगने से मनुष्य मर जाता है, पर जब कई हज़ार मनुष्यों के टीका लगा और सब टीका लगे मनुष्य आरोग्य रहे, तब तो यह ख़बर उड़ाई गई कि टीके से मनुष्य निर्बल हो जाता है। यों तो बहुत से मनुष्य पैदाइशी निर्बल होते हैं, बहुत से जवानी की दशा में ही अपने बुरे कार्य्यों से अपनी ताक़त खो देते हैं और शायद ऐसे ही मनुष्य टीके को अपनी निर्बलता का कारण बतलाते हों, पर खास तौर से यह बात ठीक नहीं है। और मनुष्यों को अब निश्चय भी हो चला है कि यह भी असत्य बात है, लेकिन फिर भी टीका लगाने से डरते हैं और कहते हैं कि मारने जिलाने वाला तो ईश्वर है, हम अपनी बाँह व्यर्थ क्यों फड़वायें। इसमें कोई शक नहीं कि ईश्वर के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता लेकिन मनुष्य का कर्तव्य है कि अगर कोई कष्ट उस पर आवे तो उस की ठीक तद्बीर करे। काश्तकार अगर अपने खेत में बीज डाल के पानी न दे, और ईश्वर की कृपा पर छोड़ दे तो निश्चय उसे पछताना पड़ेगा। मनुष्य को ईश्वर ने बुद्धि और कुछ बल केवल इसी लिए दिया है कि वह हर बात में अपनी मदद आप ही कर लिया करे। जो मनुष्य थोड़ी सी बात के लिए ईश्वर का आसरा देखते हैं, वह उसके दर्बार में नालायकों में शुमार किये जाते हैं और जो मनुष्य किसी बीमारी के हो जाने पर उसका ठीक ठीक इलाज नहीं करते, निश्चय ही ईश्वर के दर्बार न्याय में उनको वैसी ही सज़ा दी जायगी, जैसी कि हमारे सरकारी कचहरियों में एक ख़ुद 'आत्मघात' करने वाले क़सूरवार को दी जाती है। पस यह कहना कि ईश्वर की जो इच्छा होगी तो मर जाँयगे, पर टीका नहीं लगवायेंगे, अपने को ईश्वर के पास दोषी ठहराना है। रहा बाँह फड़वाने का शब्द, सो व्यर्थ डरपोकपन मालूम होता है। एक पतली सी सुई अगर किसी की बाँह फाड़ सकती है, तो तलवार और बर्छी की मनुष्य को आवश्यकता ही न हो।

टीका लगवाने के समय एक काँटा चुभने के समान दर्द तो अवश्य होता है, परन्तु विशेष कष्ट नहीं होता—यदि मनुष्य सुई को न देखे तो टीका लगवाते हुए उसे कुछ पता भी न लगे। मैंने छः छः महीने के बच्चों के टीका लगाया और वह रोये तक नहीं। टीके से जो लाभ हुआ है उसकी रिपोर्ट २६ अगस्त १९०७ के गवर्नमेंट गज़ट में दी गयी थी उसमें बहुत से बड़े बड़े शहरों का हिसाब है। मगर मैं अपना अनुभव आपके सामने रखता हूँ जिससे आपको ठीक ठीक अंदाज़ हो सकेगा। मुझे इस ज़िले में यह काम करते लगभग दो वर्ष हुए हैं और इस समय में लगभग २००० टीके मैंने

लगाये । एक गाँव मऊकलाँ तहसील सरधना में मार्च सन् १९१४ में मैं ने ७२८ टीके लगाये थे। चूँकि वहाँ प्लेग बहुत ज़ोर से फैल रहा था। मैं ने लोगों को विश्वास दिला दिया कि तुम टीके लगवाओ यदि टीका लगने से १० दिन तक कोई बीमार न हुआ तो फिर उस साल बीमार न होगा। उन ७२८ में से ५७ को हफ्ते के अन्दर प्लेग आ और उनमें से ४ को टीका लगने के ही दिन गिल्टी निकल आयी, मर भी गये, बाकी सब बच गये।

इस लिए हर एक मनुष्य का जो ईश्वर के यहाँ अपराधी नहीं होना चाहता है, कर्तव्य है कि वह टीका लगवाले और दूसरों को सलाह दे कि टीका पटवारी या मुखिया से "जनाब सिविल सर्जन साहब बहादुर ज़िला"—के यहाँ इस बात की अर्जी दिलवा दे वह टीके लगाने का इंतिज़ाम कर देंगे या सीधा "डाक्टर गश्ती ज़िला—के यहाँ लिखवा दे वह आकर टीका लगा देंगे। कुछ दिनों से हमारी दयालु सरकार ने हर एक ज़िले में कम से कम एक गश्ती डाक्टर मुकर्रर कर रक्खा है जो गाँवों में घूम कर हर रोग का इलाज करता है और खास कर प्लेग, हैज़ा और दूसरी उड़ती बीमारियों का। यदि पाठक पाठिकाओं ने इस लेख से इस वर्ष कुछ लाभ उठाया या दूसरों को पहुँचाया तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगा।

—शिवदयाल गुप्त

कर्त्तव्य-पालन

जन्म हुआ किस हेतु हमारा—
इस पर जो हम करें विचार,
तो तुरन्त यह समझ जायँगे
'आवश्यक है सदा सुधार।'
सारे दिन सुख से व्यतीत हों,
दुःखित कभी न होवे देह—
जीवन का उद्देश्य नहीं यह
हो सकता है निस्सन्देह ॥ १ ॥

जिस तिस विधि से उदर भरें हम
अपना अपना किसी प्रकार,
अथवा महापरिश्रम करके
द्रव्यो-पार्जन करें अपार,
दुःख में अश्रु प्रवाह बहावें
सुख में करें विपुल सम्भोग —
केवल इसके लिये जगत में
आये नहीं अहो हम लोग ॥ २ ॥

जीवन का उद्देश्य यही है—
पालें हम अपना कर्त्तव्य।
विचलित नहीं स्वपथ से होवें
चाहे कुछ भी हो भवितव्य,
कर्म-यज्ञ में, निर्भय होकर,
हम सब करें आत्म-बलिदान,
उद्यत रहें सदा सहने को
कैसा ही हो क्लेश महान ॥ ३ ॥

जो सुख पाने की अभिलाषा
भूपर होवे तुम्हें अपार,
तो सहने को सदा क्लेश बहु
कस कर कमर रहो तैय्यार।
अगर "तैरना जल में सीखें"
इसके हो औ इच्छुक ख़ूब,
तो न डरो तुम मन में किञ्चत्
"जावेंगे हम इसमें डूब" ॥ ४ ॥

अश्वारोहण अगर सीखने
का होवे अति प्रबल विचार,
गिरने की जो भीति हमें हो
तो न हँसेगा क्या संसार?
यह तो हैं हम भले चाहते
'रिपु को शीघ्र भगा दें मार;'
नहीं चाहते पर हम सहना
तीर, त्रिशूल, तीक्ष्ण तलवार!॥ ५ ॥

विफल-मनोरथ होने पर भी
पाठक! हो औ नहीं निराश।
नहीं हार कर भी होता है
लखो, जुआरी निपट हताश।
साहस रख कर प्रचुर हृदय में
करते जाओ सन्तत यत्न,
निश्चय जानो पाओगे तुम
चारु विजय रूपी वह रत्न ॥ ६ ॥

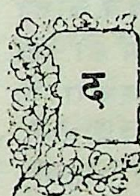
कभी कभी साफल्य-प्राप्ति के
लिये बहुत लग जाता काल।
धीरज छूट हृदय से जाता
जी हो जाता है बेहाल।
ऐसे समय न धीरज त्यागो
सुदृढ़ रहो करके यह याद—

रोम-राज्य संकलित हुआ था
वर्ष अनेकों के ही बाद ॥ ७ ॥

अगणित भी विपदाएँ आवें
करो नहीं उनको परवाह,
किन्तु प्रदर्शित करो कार्य में
इससे भी दूना उत्साह।
ज्यों ज्यों स्वर्ण तपाते हैं हम
अनिल-पुञ्ज में बारम्बार,
त्यों त्यों प्रभा-युक्त होता है,
कान्ति नहीं वह खोता यार ॥ ८ ॥

—मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

अद्भुत-सम्मिलन



द स बारह वर्ष की बालिका का विवाह कर देना गोया अपने सिर से आफ़त सी टाल देना है। भला यह नादान लड़कियाँ इस अवस्था में ससुराल आकर वहाँ वालों को क्या सुख दे सकेंगी। सास, ससुर की क्या सेवा करेंगी, पति को क्या प्रसन्न रक्खेंगी? उधर बाबू जी चटपटे प्रेम के प्यासे हैं, इधर श्रीमती जी को बोलने का भी सहूर नहीं है। बताइए, कैसे पटे? सास चाहती है कि वह कुछ घर का काम सीखे, बहू जी कहती हैं कि मुझे गुड़ियों के खेलने से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती। कहिए, यह अनमेल जोड़ी, यह ऊधो माधो का साथ कैसे ठीक हो?

करुणा भी ऐसी ही लड़कियों में है। ग्यारह वर्ष की अवस्था ही में उसके माता पिता ने उसका विवाह बी० ए० उपाधि धारी कुसुमकुमार नामक युवक के साथ कर अपना सिर हलका कर लिया। उसके ससुराल आने के दो तीन दिन बाद उसकी ननँद ने उसे ऊपर सोने को कहा। करुणा चुपचाप जाकर पलँग पर सो गयी।

रात्रि के बारह बजे कुसुमकुमार सोने के लिए उसी कमरे में पहुचे, जहाँ करुणा सो रही थी। कमरे के किवाड़ खुले न थे, क्योंकि करुणा ने उन्हें पहिले ही बन्द कर लिया था। कुसुम ने किवाड़ खुलवाने के कितने प्रयत्न किये, कितने ही संकेत किये, लेकिन छोटी सी करुणा गहरी निद्रा में सो रही थी, किवाड़ कौन खोलता। हमारा तो ख्याल है, कि यदि करुणा जागती भी होती, तो भी शायद वह किवाड़ न खोलती। कुसुम समझते थे, कि करुणा जाग रही है, किन्तु शरारत के मारे किवाड़ नहीं खोलती। आखिर कार हार कर क्रोध से काँपते हुए कुसुम नीचे चले आये, और वहीं सो गये।

सवेरा हुआ, कुसुम ने समझा कि करुणा को अपने किये पर पश्चात्ताप होगा, वह मुझसे एकांत में क्षमा माँग लेगी, और मैं दे भी दूँगा, लेकिन उधर करुणा को यह भी न मालूम था, कि पति देवता कमरे में आये थे कि नहीं। वह विचारी कुसुम से क्षमा किस अपराध की माँगती। वह पूर्ववत अपने काम में लग गयी।

कुसुम का रात का दबा हुआ क्रोध फिर भभक उठा। वह मन में कहने लगे, कि अब मैं कुछ समय तक करुणा से न बोलकर उसके अपराध की सजा दूँगा। करुणा को इस बात की परवाह ही न थी, कि मुझसे कोई बोले। सास ने जो कुछ बताया, वह काम कर दिया, नित्य कर्म किया, खाया पिया, और जो समय बचा, उस में अपनी गुड़ियों को सुधारा, रात हुई, सो गयी। यह उसका नित का धंधा था। कुसुम मन ही मन जलते थे, कि करुणा का कैसा हृदय है, मुझ से क्यों नहीं बोलती। क्षमा माँगना तो दूर रहा, सामने तक नहीं आती। मैं भी इसे पूरी सजा दूँगा। उधर करुणा अपने मन में सोचती थी, कि बिना अपराध के ही यह मुझ से क्यों नाराज से रहते हैं। मैंने तो कोई अपराध किया ही नहीं। अपराध कैसा, मैं तो बहुत दिन से बोलती भी नहीं। तब फिर यह बिना बादल के बज्र का गिरना कैसा।

दिन पर दिन महीने पर महीने बीतने लगे। वही सिलसिला जारी रहा। करुणा अब कुछ कुछ समझने लगी, कि पति के प्रति मेरा कैसा व्यवहार होना चाहिए। कुसुम के क्रोधित होने का भी कारण अब वह जान गयी है।

अपने अपराध को भी समझ गयी है। लेकिन अब क्षमा कैसे माँगे, यह उसकी समझ में नहीं आता। पहिले करुणा कुसुम से न बोलती थी, अलग ही अलग रहने की कोशिश करती थी, किन्तु अब कुसुम करुणा से नहीं बोलते हैं। करुणा के सामने आते ही वह मुँह फिरा कर चले जाते हैं।

कुछ दिन तो करुणा को पति के मनाने की अधिक परवाह न रही। लेकिन जब उसने लगातार दो एक महीने बराबर कुसुम को एकांत-प्रिय देखा, तब उसे दुख होने लगा। और वह दिन दिन बढ़ने लगा।

कुसुम एक सच्चरित्र युवक थे। उनके आचरण अनुकरणीय थे। चरित्रहीन युवकों की तरह वह इधर उधर नज़रें नहीं दौड़ाते थे, किन्तु यह सब कुछ होने पर भी करुणा के ऊपर उनका क्रोध था, और वह असीम था।

साल के पूरे तीन सौ पैंसठ दिन बीत गये। करुणा इस बीच में बिलकुल दुबली और कमज़ोर हो गयी। वह चाहती थी कि मैं स्वामी के पैर पकड़ कर उनसे क्षमा माँग लूँ, परन्तु कुसुम कुमार की अब वही अवस्था है जो पहिले करुणा की थी। करुणा अब, बिलकुल ही कमज़ोर हो गयी थी।

प्रिया की ऐसी हालत देख कर कुसुम को कुछ दया आने लगी। उन्हों ने समझ लिया कि करुणा के साथ यदि मेरा कुछ दिन और ऐसा ही व्यवहार रहा, तो मैं उस से हाथ धो बैठूँगा। क्यों नाहक स्त्री हत्या का पातक अपने ऊपर लूँ। कुसुम ने निश्चय कर लिया कि अब करुणा के साथ अच्छा व्यवहार कर मैं उसका दुख दूर कर दूँगा।

आज जेठ महीने की पूर्णिमा थी। रात का समय था, और असंख्य तारिकाओं के साथ चन्द्रमा आकाश में मुसकरा रहा था। खुली छत पर बैठी हुई करुणा चद्रमा की तरफ़ देख रही थी। वह सोचने लगी, "हाय; बालपन का ब्याह कैसा बुरा होता है। उस समय मैं कुछ जानती न थी। अपने किसी कर्तव्य का ज्ञान मुझे न था। उस समय के लड़कपन को मैं लड़कपन न समझती थी। मुझे क्या मालूम था, कि इस समय की मेरी यह बेपरवाही मेरा भविष्य ख़राब कर रही है। हाय, यह चाँदनी, यह तारिकावली, यह मनोहर सुन्दर चाँद, इसे देख मैं आनंद में डूब जाती, किन्तु इस समय यह सब मेरे ऊपर आग सी बरसा रहे हैं। लक्ष्मीपते, मेरी रक्षा करो।"

करुणा बिलकुल चुप थी। उसके लम्बे लम्बे बाल सारी पीठ पर बिखरे हुए थे। बड़ी दीनता से वह आकाश की तरफ़ देख रही थी। उसी समय चुपके चुपके कुसुम कुमार वहाँ आ

खड़े हुए। कुसुम नहीँ चाहते थे, कि मैँ पहिले करुणा से बोलूँ और करुणा को मालूम ही न था, कि मेरे पीछे कौन अभिमानी मेरे बोलने की प्रतीक्षा मेँ खड़ा है। कुसुम धीरे धीरे पलँग के पास जाकर उस पर बैठ गये। चौंक कर करुणा ने कुसुम को देखा। वह तुरन्त उठ खड़ी हुई। दोनोँ की दोनोँ आखेँ एक दूसरे के कमनीय चेहरे पर चमकीँ, उस समय दोनोँ के नेत्र अश्रु पूर्ण हो गये। दोनोँ परस्पर मोहित हो गये। करुणा कुसुम के पैरोँ को ओर बड़े प्रेम से देख रही थी। लज्जा से उसकी आँखे ऊपर को न उठती थीँ। उसी समय पास वाली आम की डाल से पपीहा बोल उठा, "पी कहाँ, पी कहाँ।"

करुणा की दृष्टि ऊपर उठी। दोनोँ मुसकरा उठे। दोनोँ के नेत्र हंसने लगे। प्रसन्नता के मारे दोनोँ अपने आप को भूल गये। करुणा तुरन्त कुसुम के पैरोँ पर गिर पड़ी, और कुसुम ने भी उसे हृदय से लगा कर उसका अपराध क्षमा कर दिया।

पढ़ने हारियो, सोचो, और खूब सोचो। निश्चय जानो कि बालविवाह का परिणाम कभी अच्छा नहीँ होता। करुणा की दुख पूर्ण कथा तुम ने सुन ही ली। ऐसे अवसर पर यदि कुसुम कुमार जैसे सच्चरित्र युवक हुए, तब तो कुशल है, नहीँ तो ऐसी कितनी ही करुणाएँ मदन की चारु शीला की भाँति सदैव बिलखती रहेँगी। पाठिकाओ, आगे के लिए तुम प्रण कर लो, कि तुम बाल अथवा बालिका विवाह कदापि न करोगी, और यथा शक्ति उसे रोकने का उद्योग करोगी।*

—बावली बहू

विचित्र भौतिक काण्ड

(कोसी-स्नान, पुनर्जन्म)

प्यारी बहिनो! "विचित्र भौतिक काण्ड" शीर्षक लेख देख कर आप लोग डरेँ नहीँ, वरन् साहस कर आद्योपान्त एक बार पढ़ जाँय। यह एक सच्ची घटना है मैँने इसे रोचक बनाने के लिए विशेष चेष्टा की है, जगह जगह सामाजिक कुरीतियाँ तथा कुप्रथाएँ दिखायी गयीँ है। आशा है कि पाठिकाएँ इस ध्यान पूर्वक पढ़ेँगी। घटना के अद्योपान्त पढ़ जाने से हमारी बहिनोँ को मालूम हो जायगा कि हमारे पूर्वज ऋषि मुनियोँ ने जो भूत-योनि मानी है, उसको मैँ भी सत्य मानती हूँ। चाहे मेरा यह विचार निरा भ्रम मात्र,

* नोट—गृहलक्ष्मी के संबत १९७१ के भाद्रपद के अंक में "चारुशीला" नामक लेख देखो।

—लेखिका

या बालकपन के कुसंस्कार का फल हो, लेकिन मैं अपनी सखी की हालत से यह सिद्ध कर दिखाती हूँ कि मेरा इस विषय पर विश्वास करना अयोग्य नहीं। यदि हमारी कोई बहिन इस बात को सच्ची नहीं मानतीं, तो मेरी प्रार्थना है कि वे गृहलक्ष्मी में एक लेख देकर अपने युक्तिपूर्ण विचारों से यह साबित करें कि यथार्थ में मेरा ऐसा मान लेना युक्ति संगत नहीं। यदि उनके विचारों से मेरी शंका दूर हुई, तो मैं अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगीः—

पौष का महीना है। हिमकणों से गगन मण्डल आच्छादित है। कुहिरा ने तो रात दिवस में बहुत कम अन्तर रखा है। आठ दस बजने पर भी सूर्य्यदेव का दर्शन मिलना दुर्लभ हो गया है। मालूम होता है कि हिमन्त ऋतु ने सूर्य्यदेव को प्रजा हीन बना उन्हें अपनी मुट्ठी में कर लिया हो। सूर्य्य भगवान अपनी प्रखर ज्योति से संसार को प्रकाशित करना चाहते हैं, पर न जाने क्यों, दुष्ट कुहिरा इनके उदित होते ही चट इन्हें परिवेष्टित कर ज्योतिर्विहीन कर देता है। बहिनो! देखो, ईश्वर की लीला कैसी अपूर्व्व है। आज जो परम शक्तिशाली हैं, कल वही समय के फेर से निर्बल और हतवीर्य्य देख पड़ते हैं। आज जो राजा, कल वही रङ्क, जो आज सुखी, कल वही दुखी,— जहाँ आज सुन्दर विशाल अट्टालिकाएँ बनी हैं, कल वहीं भयानक श्मशान नज़र आता है। जिस भवन में आज आनन्द मंगल का समावेश, कल उसी भवन में शोक और संताप का प्रवेश, इत्यादि। ऐसा होना जगदाधार ईश्वर की सृष्टि का नियम ही जान पड़ता है। कहा भी है कि—"चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।"

जिस घटना का उल्लेख मैं आज पाठिकाओं के निकट करती हूँ, वह एक बड़े घर की है। इस की नायका हमारी हृदयाधार, जीवनसखी, आनन्द स्थान और मन को रञ्जन करने वाली परमस्नेह मयी बाल संगिनी हमारी सखी थीं। कल जो पति देव के गुण कीर्तन करती हुई आनन्द विह्वल हो गयी थीं, प्रत्येक शब्द के उच्चारण से कल जिनका मुख कमल के सामान प्रफुल्लित हो उठा था, हा दैव! आज न जाने क्यों वही कान्ति और श्रीहीन होकर घर भर के सब लोगों को शोक संतप्त कर रही हैं। एक ओर इनके स्वामी इनके सिर को गोद में लिये इनके मुख पर अश्रु वर्षा कर रहे हैं, दूसरी ओर शोक विह्वल परिवार में कोई रोती और कोई शिर पीटती हैं। "हाय बेटी, कहाँ गयी?" कहती हुई एक तरफ सास माता जार बेज़ार रोती हैं। "कहाँ गयी लक्ष्मी बहू?" कहती हुई दूसरी तरफ ननँद देवी रोती हैं और "हाय क्या हुआ" कह कर जेठानी जी रोती हैं और अन्य

आयी हुई ग्राम की औरतें कोई दवा की फरमाईश करती हैं, कोई कहती हैं, कि सरदी से बहू को ऐसा हुआ, सेंकने से जान आ जायगी इत्यादि। पाठिकाओ! देखो! कल जिस घर में शान्ति देवी का राज्य था, आज उसी में अशान्ति देवी ने अपना राज्य जमा दिया है। हमारी पाठिकाएँ शायद अब यह जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक होंगी, कि क्या कारण था कि हमारी सखी ने घर भर के लोगों को इस प्रकार बेचैन कर दिया है? मैं उनकी सान्त्वना के लिए सिर्फ यही कहती हूँ कि वे इस को जानने के लिए कुछ देर ठहर जाँय, कुछ देर पश्चात् उन्हें सब विषय ज्ञात हो जावेगा।

प्यारी बहनो! जिस घटना का उल्लेख मैं आप लोगों के निकट करना चाहती हूँ, वह ऐसी है कि सब से पहले लोगों को इस आख्यायिका की नायका के चरित्र दोष ही का ख्याल होने लगता है, इस लिए उचित यही है कि सब से पूर्व मैं अपनी सखी और उनके चरित्र से पाठिकाओं को परिचित कराऊँ। मेरी सखी का नाम "मनोरमा देवी है" उमर में अभी वह षोड़शी हैं। ब्याह हुए पाच वर्ष हुए। हम दोनों का यह प्रेम सम्बन्ध थोड़े दिन का नहीं है, ससुराल आने पर ही प्रेम बन्धन से हम नहीं बँधे वरन् हमारी सखी हमारी बाल संगिनी हैं। एक ही दिन दोनों का जन्म हुआ, साथ ही दोनों लालित पालित हुईं। इनकी गुणवती माता ने एक ही साथ हम दोनों को विद्या शिक्षा सीना पिरोना और गृह सम्बन्धी अन्य शिक्षाएँ दी थीं। बाल्यावस्था ही से हम दोनों में इस प्रकार का प्रेम था कि एक दूसरे से एक पल भी अलग नहीं रह सकती थीं। ईश्वर की दया से हम दोनों की शादी भी एक ही दिन और एक ही जगह हुई है। यहाँ भी खाना पीना उठना बैठना सब एक ही साथ होता है। दोनों का शरीर केवल भिन्न भिन्न है, लेकिन मन और प्राण एक सा है। चरित्र के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। जो लोग इन से एक बार मिले हैं, जो लोग इनको जानते हैं, सभी इनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से करते है। गाँव में प्रायः क्या छोटे क्या बड़े सभी में, घर की स्त्रियों में इनकी प्रशंसा बात बात में हुआ करती है। "गृहलक्ष्मी" के पढ़ने और सुनने वाली बहनो! आप लोग भी हमारी सखी और उनके चरित्र से अपरिचित नहीं। जो बहिनें गत वर्ष की मार्गशीर्ष की गृहलक्ष्मी में "घराऊ घटना" नामक इनका लेख पढ़ चुकी होंगी, वा सुन चुकी होंगी, वे अवश्य जानती होंगी कि इनकी पति भक्ति कैसी है। लाचार बड़े की आज्ञा न मान सकने पर जिस प्रकार उन्होंने खेद प्रकाश किया है और गृहलक्ष्मी की पाठिकाओं से सहानुभूति के लिए प्रार्थना की है, वह सभी

को स्मरण होगा । इनके हृदय का पता इससे अच्छी तरह लग जाता है । पाठिकाओ ! निम्न लिखित घटना से भी आप लोगों को इनके चरित्र विषयक कुछ बातें मालूम हो जाँयगी । बहिनो ! इस विषय में और न लिख कर इतना ही लिखना अलम है कि जिस प्रकार मणि विशेष किसी भी अवस्था में अपनी ज्योति को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार स्त्री रत्न किसी भी अवस्था में क्यों न हो, वह सर्व्वदा अपने सतीत्व रत्न से दैदीप्यमान रहती हैं । समय के फेर से पतिव्रता स्त्रियों के प्रति कितनी ही शंका क्यों न आ उपस्थित हो, लेकिन उसका समाधान होते कुछ भी देर नहीं लगती । पद पद पर स्त्री रत्न का चरित्र शीशे की तरह लोगों के दृष्टिपथ पर झलकने लगता है । यहाँ से मैं अब घटना का उल्लेख करती हूँ:—बड़े दिन की छुट्टी हो चुकी है । कालेज बन्द होने के कारण सखी के प्राणेश्वर छः रोज हुए, कि कलकत्ते से घर आ पहुँचे हैं । आज चतुर्दशी है, कल पूर्णिमा होगी । छोटे से बड़े घर तक सब के घर की स्त्रियाँ कल * "कोसी" स्नान करने जाँयगी, इसी लिए आज सब घर की औरतें अपन अपनी हैसियत के अनुसार अच्छे अच्छे खाद्य पदार्थ अपने साथ ले जाने के लिए बना रही हैं । आज जिस प्रकार वे व्यस्त मालूम होती हैं, यदि उसी तरह वे सब दिन अपने घर के काम धन्धों में व्यस्त रहें, तो उनकी अवस्था कुछ और ही हो जाय । हम लोगों के यहाँ भी पकवान तैयार हो चुका है । सभों ने अपना अपना गहना कपड़ा ठीक कर लिया है । दशहरे में पति देव की आज्ञा मानती हुई हमारी सखी अपने घर के बड़े लोगों की बात नहीं मान सकती थीं, इस लिए आज उनकी उत्कट लालसा है कि यदि स्वामी देव की आज्ञा हो जाय, तो सास-माता तथा अन्य माननीया घर की स्त्रियों की आज्ञा मानती हुई कल मैं भी कोसी स्नान कर आऊँ । "तुम भी अपनी अपनी चीज़ ठीक करो" ऐसा कहती हुई सास-माता यह भी कह चुकी है कि * "शायद तुम्हें

* इस प्रान्त में पौष पूर्णिमा में स्त्रियां "कोसी" स्नान करने जाती हैं । इसी लिए पौषीय पूर्णिमा को ठेठ बोली में कोसी-पूर्णमा कहते हैं । जिस प्रकार माघ की पूर्णिमा में गंगा जी का स्नान हिन्दू रमणी के लिए पुण्य व्रत समझा जाता है, उसी प्रकार पौषीय पूर्णिमा का 'कोसी' स्नान भी है ।

* सास माता की बात से हमारी पाठिकायें यह न समझ जांय, कि सखी के स्वामी देव माता की आज्ञा न तो खुद मानते और न अपनी सहधर्मिणी को मानने का अवसर देते हैं । ऐसा हर्गिज़ नहीं । वे माता के परम भक्ति है । उनकी आज्ञा उपयुक्त विषय में वे कभी नहीं टालते और न हमारी सखी ही कभी उनकी बात टालती हैं । किसी किसी विषय में जिसमें उनकी राय योग्य नहीं होती, उसमें वे सभी को रोकते हैं । जो

फिर भी बबुआ हम लोगों के साथ जाने न दें, तो हमारी बात का पैठ कहाँ रहा।" सास-माता की उपरोक्त बातों से सखी के चित्त में अत्यन्त खेद है कि यदि स्वामी देव ने नहीं कह दिया, तो मैं जाऊँगी ही नहीं। इस लिए इनके हृदय का खेद कम होने के बदले और भी बढ़ जायगा। किस तरह स्वामी देव की आज्ञा मिलेगी, इसके विचारने का भार सखी ने आखिर मेरे ही ऊपर छोड़ दिया। मैं सखी के साथ उनके निकट गयी। सखी तो आज्ञा मिलती है या नहीं, यही जानने के लिए निश्चिन्त भाव से खड़ी रही। लेकिन मैं ने पहले तो उनके पढ़ने लिखने वाली बातें उठायीं और तदनन्तर कोसी स्नान वाली बात छेड़ दी। यह सुनते ही वे हँस पड़े।

(शेष फिर)

उनकी बात समझ कर रुक जाती हैं, वही उनकी माता की आज्ञा नहीं मान सकती हैं। माता पढ़ी लिखी न होने पर भी बुद्धिमती नहीं हैं, ऐसा नहीं है। वे अपने लड़के के उचित विचार को अच्छी तरह समझती हैं लेकिन परम धर्मिष्ठा होने के कारण वे धार्म्मिक विषय में किसी की कुछ नहीं सुनतीं, पतिपरायणा तो ऐसी भी विरली ही होगी। हम लोगों को पातिव्रत शिक्षा इन्हीं से मिलती है। स्वामी सेवा के अतिरिक्त देवी देवताओं की पूजा पाठ होम जाप इसी उद्देश्य से करती हैं कि पति देव के रहते हमारी गति हो। इस विषय में जब कभी सखी के स्वामी देव रोकते हैं तो वे कहती हैं कि बेटा! मैं सब समझती हूं। बहुओं को जो बनाना हो, बना लेना, लेकिन मैं बूढ़ी हुई, मुझे छोड़ दो। धर्म्म की प्रबलता से वे चाहती है कि घर भर के सब लोग उनका अनुकरण करें, और यही कारण है कि सभों को वे इस प्रकार की राय देती।

माता का दूध



मा ता का दूध बच्चों के लिए कितना लाभ दायक है, इसका वर्णन विस्तार के साथ हाल ही में विलायत के डाक्टरी पत्र ने ख़ब किया है। उसने संख्या और गणना के द्वारा यह सिद्ध किया है कि इंगलैंड में साल के भीतर कम से कम १ लाख ऐसे छोटे बच्चे अकाल मृत्यु के ग्रास बने, जिनको अपनी माता का दूध पीने को नहीं मिला था। प्रकृति ने माता की छातियों से इस लिए दूध की धारा बहाई है कि बालक उसे पीकर हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ रहें। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि अब बहुत सी नई रोशनी की स्त्रियाँ अपने बच्चों को दूध पिलाना 'फ़ैशन" के विरुद्ध समझती हैं उनकी यह चाल प्रकृति के नियम से बिल्कुल उलटी है। बहुत से व्यपारियों ने कई प्रकार के बनावटी दूध निकाले हैं, परन्तु अनुभव से यह सिद्ध हुआ

है कि ऐसे दूध का पिलाना बच्चों के स्वास्थ्य पर कभी अच्छा प्रभाव नहीं डालता। याद रहे कि किसी प्रकार का बाहरी दूध चाहे वह बनावटी हो या किसी पशु का माता के दूध की बराबरी कभी नहीं कर सकता।

यह सच है कि कोई कोई स्त्रियाँ स्वास्थ में कुछ त्रुटि होने के कारण अपने इस कर्तव्य को पूरी तरह से पालन नहीं कर सकतीं। जैसे किसी के छाती में दूध भर आने से बड़ी पीड़ा हो उठती है, किसी के बिल्कुल दूध नहीं उतरता इत्यादि। ऐसी हालतों में उनको चाहिए कि किसी अनुभवी वैद्य की चिकित्सा करके इन त्रुटियों को दूर करें, यह नहीं कि बनावटी या पशुओं के दूध के भरोसे उन (त्रुटियों) को ज्यों का त्यों रहने दें।

याद रहे कि बहुत गरम और चर्परा जैसे लालमिर्च और सिरका खटाई गरम मसाला, मदिरा (शराब) अफीम और सब प्रकार के गरिष्ठ (देर से पचने वाले) बासी, रूखे सूखे भोजन आदि से दूध कम हो जाता है। इसके विरुद्ध घी दूध इत्यादि पौष्टिक और सब प्रकार के हलके अनाज जैसे मूंग और (पुराने) चावल इत्यादि और ताजी शाग भाजी, फल तथा मेवा आदि के सेवन से दूध बढ़ता है। ध्यान रहे कि मानसिक अवस्थाएँ भी दूध के बढ़ने घटने पर बड़ा प्रभाव डालती हैं। अति चिन्ता, अति शोक और क्रोध आदि की दशा में दूध का कम हो जाना स्वाभाविक है। इस लिए दूध पिलानेवाली माताओं को सदा प्रसन्न चित्त रहने की आवश्यकता है।

अलबत्ता माता की ज्वर आदि बीमारियों की दशा में बच्चे को दूध पिलाना वर्जित है। ऐसी अवस्था में यदि मिल सके तो किसी अन्य स्वस्थ स्त्री का दूध बच्चे को पिलाना चाहिए और यदि ऐसा प्रबन्ध न हो सके तो लाचारी से बाहरी दूध देना चाहिए। बाहरी दूध सब से उत्तम गऊ का ताज़ा दूध है। पर उसमें थोड़ा जल मिला कर खूब खौला लेना चाहिए और फिर ठंढा करके और थोड़ी मिश्री मिला कर कपड़े से छान कर, कई बार करके थोड़ा थोड़ा पिलाना चाहिए। किन्हीं किन्हीं हालतों में बकरी का दूध भी बच्चों के लिए हितकर होता है। इन सब के न मिलने पर अन्त में बनावटी दूध देना चाहिये।

एक बात इस प्रसंग में और कहनी है। बहुधा देखा जाता है, कि प्रसूता स्त्रियाँ दो तीन दिन तक बच्चों को बाहरी दूध पिलाती हैं। वे अपना दूध पिलाना उनके लिए हानिकारक समझती हैं परन्तु यह उनकी बड़ी भूल है। प्रसूता के दूध में कई गुण हैं। एक तो वह बच्चे

के लिए हल्के जुलाब का काम देता है जिससे उसका पेट साफ़ हो जाता है, दूसरे स्तनों के द्वारा बच्चे के दूध खींचने से प्रसूता के गर्भाशय आदि को अपने असली जगह पर स्थित होने में बड़ी सहायता मिलती है। एक पन्थ दो काज इसी को कहते हैं। इस लिए बच्चे के पैदा होने पर माता को अपना ही दूध पिलाना उचित है।

—शालिग्राम

दूध पर रोशनी का प्रभाव

डाक्टरों ने अनुभव से यह बात सिद्ध की है कि सफ़ेद रङ्ग की बोतलों में रक्खा हुआ दूध जल्दी ख़राब हो जाता है। परन्तु यदि लाल रङ्ग की बोतल या सफ़ेद रङ्ग की बोतल पर लाल रङ्ग का कागज़ या कपड़ा लपेट दिया जाय तो उसमें रक्खा हुआ दूध दस घंटे तक धूप में रखने पर भी ख़राब न होगा।

समालोचना

१—भारतीय शासन पद्धति, [प्रथम भाग पं० अम्बिका प्रसाद जी द्वारा संकलित और श्रीप्रतापनारायण बाजपेयी द्वारा नं० ३० श्रीनाथराय लेन कलकत्ता से प्रकाशित। पृष्ठ संख्या १०० से ऊपर, मूल्य ॥) आठ आना।]

२—भारतीय शासन [लेखक तथा प्रकाशक श्रीभगवानदास माहेश्वरी (केला) शीशमहल, मेरठ, पृष्ठ संख्या ११७० से ऊपर जिल्द बँधी हुई, मूल्य ।≡) 'महेश्वरी कार्य्यालय' अलीगढ़ तथा 'गृहलक्ष्मी कार्य्यालय' प्रयाग से प्राप्य।]

इन दोनों पुस्तकों का विषय हिन्दी साहित्य में नया है। दोनों लगभग साथ ही साथ निकली हैं। इनमें जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, पहले, भारत में अंग्रेज़ी राज्य के प्रादुर्भाव और उसके क्रमशः विकास तथा प्रसाद का दिग्दर्शन कराया गया है फिर प्रत्येक राजकीय विभाग के सङ्गठन, अधिकार तथा कार्य्य प्रणाली आदि का संक्षिप्त वर्णन है।

पहली पुस्तक के टाइप कुछ महीन हैं और उसमें प्रत्येक विभाग का ब्यौरा कुछ अधिक विस्तार के साथ दिया गया है परन्तु पुस्तक अपूर्ण है। सेना विभाग तथा स्थानिक स्वराज्य आदि का वृतान्त इसके दूसरे भाग में लिखा गया है।

दूसरी पुस्तक अपने रूप में सम्पूर्ण है, उसमें ये सारी बातें संक्षिप्ततः आ गई हैं। हमारे देश की शासन-कला किस प्रकार चल रही है इसका जानना प्रत्येक पढ़े लिखे आदमी का धर्म है अतः ये दोनों पुस्तकें संग्रह करने योग्य हैं। इनमें बहुत सी जानने योग्य बातों का समावेश है।

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।

गृहलक्ष्मी का उपहार

गृहलक्ष्मी-ग्रन्थमाला

गृहिणी

ग्रंथ-मालाकी पहिली पुस्तकका नाम 'गृहिणी' है। स्वामी-स्त्री का परस्पर सम्बन्ध गृहधर्म के पालन ही से किस भाँति स्त्री और स्वामी दोनों को मोक्ष पद तक की प्राप्ति हो सकती है, असल में स्त्री किसे कहते हैं, उसके धर्म्म क्या हैं, स्त्रियों को विद्या सीखने की आवश्यकता, स्त्रियों के लिए सच्चे गहने क्या हैं, ससुराल में सास, ननँद और दूसरे लोगों से मेल रखने के सहज उपाय, सतीत्व की बड़ाई, सती नारियों की अनोखी कथाएँ, खोटे पति की बुरी चालों को स्त्री किस तरह सुधार सकती है, पति पर अविश्वास रखने की बुराइयाँ आदि इस पुस्तक में समझायी गयी हैं। जैसे परायी निन्दा, ईर्षा-द्वेष, आमदनी से ज्यादा खर्च करने आदि से बुराई, सास बहू में क्यों झगड़े हो जाते हैं, इत्यादि इत्यादि स्त्रियों की नित्य की रहन-सहन की बातें इस पुस्तक में दिखलायी गयी हैं। ऐसी उपयोगी पुस्तक आज तक हिन्दी में कहीं नहीं छपी है। यह १६० पृष्ठ की है, पट्ठे की सुन्दर जिल्द है। मूल्य बारह आने हैं। गृहलक्ष्मी के ग्राहकों को ।≡) में मिलती है।

छोटी बहू

सुशिक्षिता गृहिणी बिगड़ी हुई गृहस्थी कैसे सुधार सकती है और दुष्टा स्त्री किस प्रकार बने घरों को बिगाड़ा करती हैं, इत्यादि विषय बड़ी मनोहर रीति से दर्शाये गये हैं। मूल्य बारह आना। गृहलक्ष्मी के ग्राहकों से बिना जिल्द बँधी का ।=) और जिल्द बँधी के सात आने।

लक्ष्मी-बहू

यह आपने कहते सुना होगा कि अमुक की स्त्री 'साक्षात् लक्ष्मी' है। इस पुस्तक को पढ़ कर "लक्ष्मी-बहू" कैसी होती है, यह मालूम हो जाता है। बहू बेटियों को अवश्य पढ़ाइये। मूल्य सात आना। गृहलक्ष्मी के ग्राहकों से बिना जिल्द वाली के साढ़े तीन आने और जिल्द बँधी के साढ़े चार आने।

प्रेमलता

प्रेमलता स्त्री-पाठ्य उत्तम उपन्यास है। भाँति भाँति के उपदेश इसमें कूट कूट कर भरे ह। पति-पत्नी के सच्चे प्रेम का इस में अथाह प्रवाह है। करुणा रस का अथाह समुद्र है। परोपकार का आदर्श है। पति प्राणा स्त्रियाँ कैसी होती हैं, एक पत्नीव्रत पुरुष कैसे होते हैं, सच्चे मित्र किन्हें कहना चाहिए, परोपकारी लोग कैसे कैसे परोपकार किया करते हैं, तीर्थ आदि में स्त्रियों को कैसे कैसे धूर्त और दुराचारी मनुष्यों से भेंट हो जाती है, स्त्रियों को ऐसे अवसरों में किस प्रकार चौकस रहना चाहिए, इत्यादि विषयों का इसमें अपूर्व रीति से वर्णन किया गया है। मूल्य ।≈) गृहलक्ष्मी के ग्राहकों को बिना जिल्द की ≡)॥ और जिल्द वाली के ।)॥ आने॥

वनिता-बुद्धि-विलास

इस पुस्तक की लिखनेवाली एक महिला हैं, और साधारण गृहस्थ नहीं, उच्च राजकुल की राजलक्ष्मी हैं। श्रीमती रानी साहिबा दियरा के उच्च और पवित्र विचारों का आदर्श आपकी "भगिनीमिलन" नाम की पुस्तक को पढ़ने वालों ने कुछ कुछ पहिले ही देख लिया है। परन्तु यह नवीन पुस्तक बहुत ही अनूठी और अनुपम है। इसकी अधिक प्रशंसा करने के बदले हम यही कहेंगे कि प्रत्येक कुलबधू को इसकी एक प्रति मँगवा लेनी चाहिए। यह पुस्तक सुन्दर स्वच्छ पुष्ट काग़ज़ पर दो रंगों की स्याही में छापी गयी है और लगभग २०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। सर्व साधारण से मूल्य १) गृहलक्ष्मी के ग्राहकों से ॥≈)।

आदर्श-बहू और भाई बहिन

बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद छोटा सा उपन्यास है। इसमें सास के अत्याचार, बहू की सहनशीलता और सदाचार तथा पुरुषों के प्रेम के झूठे व्यवहार बड़े ढङ्ग से अङ्कित किये गये हैं। मूल्य ।≈) आना। गृहलक्ष्मी के ग्राहकों से ≡)॥ आना।

उत्तररामचरितच्छाया

संस्कृत कवि शिरोमणि भवभूति विरचित उत्तररामचरित नामक नाटक का सरस गद्य पद्य मय भाषानुवाद। मूल्य ॥≈) दस आने। गृहलक्ष्मी के ग्राहकों से बिना जिल्द की पाँच आना और जिल्ददार छः आना।

कन्याकौमुदी

हिन्दी भाषा बोलने और पढ़ने वाली कन्याओं को शारीरिक मानसिक तथा व्यवहारिक ज्ञान की छटा दिखलाने वाली 'कन्याकौमुदी' नाम की यह अपूर्व पुस्तक है। इस पुस्तक के विषय में हम अधिक और कहने की आवश्यकता नहीं समझते। इस की विषयावली की सूची ही से आपको मालूम हो जायगा कि इस अपूर्व पुस्तक में कसे कैसे विषयों की आलोचना की गयी है। कन्याकौमुदी की विषय सूची यों है—

पहिला भाग—शारीरिक विषय–भोर का जागना, नित्यक्रिया, स्नान करना, भोजन करना, जल पीना, वायु की आवश्यकता, वस्त्र पहिनना, जूता पहिनना, मिहनत करना, मादक वस्तुओं का त्याग, शयन करना, ज्वर से बचना, दस्त और मल से बचना, विशूचिका से बचना और चेचक से बचना।

दूसरा भाग—मानसिक विषय–सच बोलना, शील, दया, धर्म, साहस, प्रीति, मन की प्रसन्नता, उत्साह और उमंग, लज्जा, क्रोध, लोभ, अभिमान, द्वेष वा डाह, छल, कपट, धोखा, चिन्ता, भय, भ्रम, और शोक।

तीसरा भाग—व्यवहारिक विषय–माता पिता से बर्ताव, भाई बहिन के साथ बर्ताव, परिवार के अन्य सम्बन्धियों से बर्ताव. ननद भौजाई से बर्ताव, सखी सहेलियों से बर्ताव, अतिथि सत्कार, नौकर चाकरों से बर्ताव, भेट मुलाक़ात की रीति, रसोई बनाना, शिल्पकारी, लड़कियों की ससुराल यात्रा, ससुराल के सम्बन्धियों के साथ बर्ताव, पति से बर्ताव, गृहपरिचर्य्या, भूषण का सेवन, धन और उसकी रक्षा, गर्भ और गर्भवती की रक्षा, बच्चों का प्रतिपालन, बच्चों की शिक्षा, लड़के लड़कियों का व्याह।

☞ हर एक विषय पर अन्त में एक एक चित्ताकर्षक कहानी दृष्टान्त के ढँग पर दी गयी है, जिसमें उपदेशों का प्रभाव पढ़ने वालियों पर बहुत ही अधिक पड़ता है।

यह ३६४ पृष्ठों की पुस्तक ह, इसका मूल्य सब लोगों के सुभीते के लिए केवल १।) रु० रक्खा गया है। परन्तु गृहलक्ष्मी के ग्राहकों को ॥।) बारह आने में ही दी जाती है।

सती-लक्ष्मी

छोटी बहू और लक्ष्मी बहू के ढङ्ग की यह 'सती-लक्ष्मी' भी स्त्रियों के पढ़ने योग्य एक अपूर्व उपन्यास है। इसकी कहानी ऐसी रोचक है कि एक बार पढ़ना आरम्भ

करने से फिर बिना समाप्त किये मन ही नहीँ मानता। साथ ही साथ ऐसे उपदेश मिलते जाते हैँ जिनका जानना हमारे यहाँ की बहू बेटियोँ को बड़ा जरूरी है। इस की प्रशंसा हम स्वयम् न करके आप लोगोँ द्वारा ही सुनना चाहते हैँ। पृष्ठ संख्या २०० के लगभग है। मूल्य सर्वसाधारण से ॥।) बारह आने किन्तु गृहलक्ष्मी के ग्राहकोँ से ।≡) सात आने।

भारतीय-आत्मत्याग

हिन्दी भाषा मेँ यह अपूर्व पुस्तक है। भारत के उन आत्मत्यागी और स्वामि-भक्त स्त्री पुरुषोँ के जीवन चरित्र हैँ, जिनके कारण भारत का मुख इस गिरी दशा मेँ भी उज्ज्वल है। जिन भारत रत्नोँ के जीवन चरित्र इस पुस्तक मेँ हैँ उनकी नामावली इस प्रकार है—देवराज भाटी, संयमराय, धारजहाँ पवाँर, हमीर, चित्तौर का प्रथम साका, हाड़ा वीर कुम्भ, चूड़ा जी, पन्ना धाय, अकबर का चित्तौर आक्रमण, झाला मानसिंह, भामासाह, पृथ्वीराज राठौर की धर्मपत्नी, वीर बालू जी चम्पावत, धौलपुर का युद्ध, चूड़ावत सरदार, राठौरोँ की वीरता, बाजी-प्रभु देश पाँडे, पिता पुत्र का आत्मत्याग, भीमसिंह, बख्तसिंह, कृष्णकुमारी, कर्त्तव्यनिष्ठा, बाला जी पंत। पृष्ठ संख्या १६०। सुन्दर पुट्ठे की जिल्द। मूल्य ॥=) दस आना गृहलक्ष्मी के ग्राहकोँ का केवल ।=) छः आने मेँ दी जाती है।

दमयन्ती चरित्र

नल दमयन्ती की कथा इस पुस्तक मेँ बड़ी मनोरञ्जक रीति पर लिखी गयी है। मूल्य =)॥ ढाई आना। गृहलक्ष्मी के ग्राहको से -)॥ डेढ़ आना।

यूरोप का संक्षिप्त इतिहास

आज कल ऐसा कौन होगा जिसको यूरोप के वर्तमान महायुद्ध के विषय मेँ गूढ़ रहस्योँ के समझने की इच्छा न हो। किन्तु युद्ध के विषय को भली भाँति समझने के लिए युरोप का इतिहास जानना बहुत जरूरी है। इसी उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए यह यूरोप का संक्षिप्त इतिहास लिखा गया है। इसको पढ़ कर यूरोप की प्राचीन और नवीन स्थिति भली भाँति समझ मेँ आजाती है। मूल्य ।≡) सात आने॥ गृहलक्ष्मी के ग्राहकोँ से ।)॥ साढ़े चार आने।

मैनेजर, 'गृहलक्ष्मी'-कार्यालय—इलाहाबाद।



हमारे सम्राट और जर्मन सम्राट का सम्बन्ध

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग।



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः

"सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, मार्गशीर्ष, संवत् १९७२ [नवम दर्शन

बहू की व्यथा

यह इक बधू का सास से
सम्बाद है सुन लीजिए,
सुन कर समाजिक दुर्दशा पर
ध्यान अपना दीजिए ।

हे सासजी ! जब मातृगृह से
मैं बिदा होने लगी,
तब स्नेहमूर्ति सुमात के
मिलमिल गले रोने लगी ।

फिर विलप कर कंपते हुए
स्वर से लगी कहने कि माँ !
इस बालपन में निठुर बन कर
कर रही हो क्यों जुदा ?

तव सरल करुणाकर हृदय
पाषाणमय क्यों हो गया ?
दासी से ऐसा क्या हुआ
जो प्रेम तेरा खो गया ?

जननी वही मैं हूँ तेरी
प्राणों से भी प्यारी लली;

जिसको कहा करती थी
'जीवन-मानसर-मुक्तावली'।

पल भर जिसे दृग दूर
रखना था तुझे कैसा कठिन,
जैसे तड़पती मीन सूखे सर,
विकल हो, वारि बिन।

मेरा मलिन मुख मात जब
तू देख लेती थी ज़रा,
चिन्ता भरी ले गोद में
मुख चूम यों बदती गिरा—

"क्यों, मेरे जीते जी भला
तुझ पर उदासी छा गई?
मैं वार दूँगी प्राण जो
तिल भर भी तू दुख पा गई।

मन म्लान तज, हिय हर्ष कर,
हृद-नन्दनी प्यारी भली,
हँस दे तनिक चन्द्रानने!
खिल जाय चम्पा की कली।"

जब सूर्य निकले प्रात सो
जाती थी मैं कुछ देर तक,
आकरके सिरहाने मेरे
तब तू दिखाती थी झलक।

अति प्रेम पूरित मधुर स्वर से
तू जगाती थी मुझे,
औ विमल सत् उपदेश
हितकर यों सुनाती थी मुझे,—

"उठरी मेरी प्यारी लली
यह समय सोने का नहीं,
ऐसा मनोहर दृश्य फिर भी
आज होने का नहीं।

मुनिवर गये हैं यों बता
जो प्रात जगते हैं सदा,
घटती नहीं उनकी कभी
संसार में सुख सम्पदा।

उठ तो अरी बिट्टो!
मेरी हँसती हुई आमोद से,
कर नितक्रिया, मुँह हाथ धो,
मिलजा हमारी गोद से।

मैं झट कटोरा भर पिला दूँ
दूध ताज़ा प्यार से,
आ जाय तन में तेज जिसकी
शक्ति के संचार से।"

यदि खेल में उलझी रहा
करती थी मैं सुध भूल कर,
तब समय भोजन का निरख
तू ढूँढ़ती आती उधर।

पीछे से मेरे शीश पर रख
हाथ मृदु मुसक्यान कर,
कहती थी, जब मैं हर्ष ध्वनि
करती तुझे पहचान कर;

"मुन्नी भला इस खेल में
मिलता तुझे क्या स्वाद है?
खाने तलक की सुध नहीं
तुझको न उसकी याद है।

नित देर कर खाती है तू
दिन देख कितना आ गया,

लख तो गुलाबी गाल तेरा
किस तरह मुरझा गया।
अब भी तो चल, फिर लौट कर
यह खेल तुरत सम्हाल ले,
रोटी बनी तैयार है
दो ग्रास मुँह में डाल ले।"

जब स्वास्थ्य नियम उलंघ कर
बीमार होती मैं कभी,
तब मात तू भी त्याग देती
अन्न, जल, निद्रा सभी।

फिर रात भर बैठी किया
करती थी मेरी खाट लग,
मुझसे दवा खाने की बिनती
देव आराधन अलग।

जननी! तेरे सौ सौ जतन
संयम कठिन उद्योग से,
बँचते थे मेरे प्राण ज्यौं
त्यौं उस भयंकर रोग से।

तब तू कहा करती पड़ोसिन
पूछती थीं हाल जब,
"बहिनो, दिया है दान फिर
भगवान ने लल्ली का अब।"

त्यौहार आने से प्रथम
चिन्ता मेरी करती थी तू,
सब वस्त्र भूषण साज कर
मेरे लिए धरती थी तू।

फिर पूर्व के दिन भोर ही से
ले मुझे सानन्द चित,

शृंगार कर प्रति अंग का
शोभा बढ़ाती थी अमित।

तब सामने करके खड़ी
चिन्ता-सकल-संत्यक्त हो,
इकटक निरखती थी मुझे
तू मात प्रेमासक्त हो।

कहती थी सब से, "बस मेरा
त्यौहार पूरा हो गया,
संसार का दुख द्वन्द सारा
आज उर से खो गया।"

विद्या पढ़ा कर ज्ञान का
भी दान पूरा दे दिया,
पशुतुल्य जीवन मूर्खता के
दोष से वंचित किया,

सद्गुण सकल जिनसे निरन्तर
नारियों का है भला,—
सीना-पिरोना, चित्रकारी
पाक की सारी कला,

गाना-बजाना, गृह-प्रचर्य्या
बालरक्षा की क्रिया,—
कर प्यार मुझको सहज ही
सब खेल में सिखला दिया,

कितनी सुनाऊँ मैं सुजननी
सुयश की तेरी कथा,
प्रानपन से है किया
निष्काम मम पालन यथा।

फिर वह दयामय, प्रेममय,
कोमल कमल से भी हिया,

जननी बता क्यों कुलिश से भी
आज कर्कश हो गया ?
खलती नहीं अब क्यों उसी
उर में हमारी आपदा ?
जो इक अपरिचित धाम में
करती हो तुम मुझको विदा।
अम्मा! शरण में रख मुझे,
कैसे वहाँ जाऊँगी मैं ?
तू ही बता तुझ सी भला
अम्मा कहाँ पाऊँगी मैं ?

ऐसी दयामय कौन माता
मर्म मन का जान कर,
क्षण क्षण मुझे सन्तोष देगी
प्रीति उर में आन कर ?

दिन-रात पल पल कौन मुँह
जोहेगी मेरी अम्बिका,
दुख, दर्द, चिन्ता, शोक से
होगी मेरी अवलम्बिका ?

मेरा मचलना रूठना भी
मोदप्रद होगा किसे ?
अविनय कुटेव कुवचन तक
मेरा सुखद होगा किसे ?

तुझसी उदार सुशील जननी
कहु कहाँ से आयेगी,
जो भूल, चूक, अनर्थ आदिक
सब क्षमा कर जायेगी ?

वह कौन होगी मात जो
दृग पुतलियों सी सर्वदा,
रक्षा मेरी करती रहेगी
प्रेम-पलकों में छिपा ?

बेटी पराई दूसरे घर कब
भला होगी सुखी,
किसको पड़ी है जो मेरे
दुख दर्द से होगी दुखी ?

तुझ बिन भली अम्मा मेरी
सुख शान्ति सब हर जायगी;
विश्वास कर जननी वहाँ
लल्ली तेरी मर जायगी!

शंकित-हृदय-उद्गार-आरत-
विनय करुणा में पगी,
सुन स्नेह शोक-विकल सुजननी
फूट कर रोने लगी।

उर से लगा कर फिर मुझे
कातरहृदय बोली विकल,
"तेरी दशा यह देख
मेरे प्राण जावेंगे निकल।

हा! क्या करूँ? वत्से! सनातन
विधि-विधान यही रहा,
दुहिता-वियोग-प्रदाह दारुण
सदा जननी ने सहा।

इतना अधीर न हो प्रिये
टुक धीर धर, हिय ज्ञान कर,
भर्ता-भवन भामिनि भलाई
कह गये मुनि मान्यवर।

यह कौन कहता है ?—वहाँ
माता नहीं तू पायेगी,

या उस अपरिचित धाम में
जाकर के तू घबरायेगी।
प्राणेश की माता तेरी
जननी भी है सुन बावली,
पावेगी उसमें तू प्रिये
मेरी सी सब बिरदावली।
सब भांति वह चिन्ता तेरी
करती रहेगी रात दिन।
तिल भर भी उसको भूल कर
मुझसे किसी विधि कम न गिन।"

सुन मात की शीतल, सुखद,
सन्तोष-प्रद बानी विमल,
उत्कृष्ट अति उद्विग्नता
उर से गई मेरी निकल।
बढ़ती हुई मेरी निराशा-
क्रान्ति उर से खो गई,
शोकाग्नि मातृ-वियोग की
भी शान्त कुछ कुछ हो गई।
पर क्या कहूँ मैं सास जी !
अविनय क्षमा कर दीजिये,
इस दीन परवश बालिका की
बात कुछ सुन लीजिये।–
जब से शरण में आपके आई
बहुत दुख पा चुकी,
कितना सहूँ, अम्मा ! सभी
विधि मैं सताई जा चुकी।
गाली गलित, झिड़की अमित
सुनती हूँ मैं मुँह बाँध कर,
नित व्यंग बानी कटु वचन
सहती हूँ मन को साध कर।
हा ! कठिन मुष्टि-प्रहार से
बेहोश हो जाती हूँ मैं,
यदि कुछ सिसिकती पीरवश
कुलटादि पद पाती हूँ मैं।
रवि के निकलने से प्रथम
डर से सदा जगती हूँ मैं,
बिन हाथ मुँह धोये निरन्तर
काम में लगती हूँ मैं।
दो दो पहर तक मैं खड़ी
धन्धा में रहती, एक पल
फुर्सत नहीं मिलती कि
मुँह में डाल लूँ दो बूँद जल।
पर, हा ! कभी भी सास जी !
तुमने न पूछा प्रेम से,
'क्यों नित-क्रिया तू कर नहीं
लेती है पहले नेम से ?'
जाड़ों में आधीरात तक
साड़ी इकहरी अंग पर,
ले शीत जल मलती हूँ जूठे
पात्र आज्ञा शीश धर,
कँपती हुई आँगन में मुझको
देख कर, तुमको कभी
आई है करुणा सच कहो
हे मात-प्रतिनिधि ! सास जी !
उस तप्त ग्रीषम काल की
कड़ी दुपहरी का समय,

छोटी अँधेरी कोठरी पाक-
स्थली जो धूम्रमय,
उसमैं अकेली बैठकर
रोटी बनाती हूँ सदा,
तहँ एक भी रहने नहीं
देती हो तुम परिचारिका।

पल भर मुझे इस यातना से
जब अलग पाती हो तुम,
पंसेरियाँ जौ पीसने को
सामने लाती हो तुम।

क्षण भर मुझे विश्राम करते
देख चिढ़ जाती हो तुम,
जितना मुझे सन्ताप हो
उतना ही सुख पाती हो तुम।

हो तुम बिना अपराध मेरी
ताड़ना करती सदा,
निन्दा किया करती हो, हा !
झूठे कलंक लगा लगा।

बीमार मुझको देख कर
भौंहैं चढ़ा लेती हो तुम,
कहकर "बहाना कर लिया है"
गालियाँ देती हो तुम।

तड़पा करूँ जल के बिना
हो दाह उर अन्तर विकट,
पर देखने तक के लिये
भी तुम नहीं आतीं निकट।

कुछ गुप्त बातैं भी बहुत
लज्जा भरी हैं, सास जी !
कैसे कहूँ समझो स्वयम् जननी,
हैं वे उपहास की।

भोजन, बसन, प्रीतम-मिलन,
सब मैं है अड़चन क्या कहूँ,
विस्तार कर निर्लज्जता की
धार मैं कैसे बहूँ!

क्या ऐसी ही सासौं को जननी,
मा मेरी है मानती ?
या तुम विलक्षण सास हो
जिसको न थी वह जानती ?

अम्मा ! सताओ मत अधिक,
अब ताप से मैं जल गयी,
दिन रात दारुण दुःख से,
देखो मैं कैसी गल गयी!

अब सास का क्या रंग था
सुन, यह विनय उरसालिका,
थी शुम्भ के संग्राम मैं
खप्पर लिये ज्यौं कालिका।

तड़पी तड़ित सा श्याम-
बारिद-बदनवाली दाप से,
कहने लगी, "आई है लड़ने
खत मँगा कर बाप से ?

हट, दूर हो, नटिनी निगोड़ी
सामने मुँह मत दिखा,
देखो ढिठाई तो सही
कथने लगी कैसी कथा।"

अति क्रुद्ध नैनौं को नचा
बोली बजा कर-तालिका,

"आई कराने प्यार मुझसे
शूकरी की बालिका।
जैसी चमारी मा, बहिन,
वैसी चमारी आप है,
वैसा ही दाढीजार भंगी
भ्रष्ट इसका बाप है।"

प्यारे! तमाशा देख लो,
इस युग की कैसी सास हैं,
इनको न समझो सास ये
भारत की सत्यानाश हैं।

हे भगवती! हे चण्डिके!
हे खड्ग-खप्पर-धारिणी!
ऐसी पिशाची सासुओं की
तुम बनो संहारिणी।

तुमसे कदाचित जो बचें
उनको महामारी भखे,
उससे रहें फिर शेष जो
तो तदकी उनको चखे।

तीनों से भी जो बच रहें
उनसे विनय है दास की,
जय जय बधू-तन-रक्त-शोषणि
चपल चण्डी सास की।

जय डाँकिनी! जय साकिनी!
जय भैरवी! जय कालिके!
जय दीन भारत की भयंकर,
जटिल-आपद-जालिके!

कर जोड़ करता हूँ विनय,
बहुओं को समझो बालिका,
हठ पाप पण से मत बनो तुम
जाति कुल की घालिका।

अब है बधू सरकार में भी
कुछ गुज़ारिश दास की,
उनसे भी करना है मुझे
थोड़ी सिफ़ारिश सास की।

हैं कुछ अकेली सास ही
नहिं भूमि भारत की बला,
बहुएँ भी हैं ऐसी बहुत
जो काल ही हैं बरमला।

वे भी सुशीला सास पाकर
कुछ उठा रखती नहीं,
है कौन सा सन्ताप फल जो
सास जी चखती नहीं।

अवसर मिलैगा यदि मुझे
इस पर लिखूँगा फिर कभी,
औ दुष्ट बधुओं के चरित्रों
को सुनाऊँगा सभी।

बहुओ विचारो तो सही
किस नीति पर चलती हो तुम,
रच कर चिता निज पाप की
क्यों आप ही जलती हो तुम।

—बैजनाथ सहाय मुख्तार।

विचित्र भौतिक काण्ड

(कोसीस्नान-पुनर्जन्म)

[गताङ्क से आगे]

उन्होंने कहा, "मैं समझ गया कि आप दोनों का आगमन किस लिए हुआ है। माँ बूढ़ी हैं, बड़ी चाची बूढ़ी हैं, छोटी बिधवा हैं, दो लड़कियाँ इस साल ससुराल जायँगी, इस लिए वे जाना चाहती हैं। भाभी की मन्नत है, इस लिए वह जायँगी। किन्तु आप लोगों को क्या? पढ़ी लिखी होकर भी घर से बाहर जाकर धर्म्म लूटने की लालसा?" मैंने कहा, "नहीं नहीं, इस कारण से हम लोग नहीं जाना चाहतीं।" तब सास माता वाली बात और इससे सखी का मनोदुःख मैंने कह सुनाया। सुनते ही वे जाने देने को राजी हो गये। साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया कि* "उत्तर घाट" जाना होगा। "पुल घाट नहीं।" आदेश पाकर खुशी से हम लोग घर से बाहर निकल आयीं। बाहर आते ही सखी मेरे गले से लिपट कर आनन्द से विह्वल हो गयीं। 'हाँ' कह कर मानो पतिदेव ने उन्हें कोई अपूर्व रत्न दे दिया। सास माता 'उत्तर घाट' जाऊँगी, समझ कर अत्यन्त खुश हुईं। कोसी स्नान का स्नान साथ ही शिव जी का दर्शन, दोनों एक साथ होगा, ऐसा समझ कर उत्तर घाट दूर रहने पर भी वहीं जाने को हम लोग राजी हुईं। हम सभों ने जाने का सब सामान आज ही ठीक कर लिया है, अब जाने ही को बाकी है। रात किसी तरह छटपटाती हुई सभों ने बितायी। सबेरा तो हो गया, लेकिन कुहरा आकाश मण्डल को इस प्रकार घेरे हुए है, और पाला इतनी जोर पड़ रहा है, कि अभी भी ऐसा मालुम होता है कि आधी रात है। सबेरा हो गया, यह बात चिड़ियों की चहचहाहट और घड़ीमें टन टन कर छः बजने की आवाज़ से ही मालूम होता है। छः बजने की आवाज सुनते ही मैं चौंक उठी। झटपट किवाड़

---

*उत्तर घाट हम लोगों के घर से २ कोस पर है, लेकिन पुलघाट एक ही कोस पर है। निकटवर्ती राजधानी की ओर से पुल घाट में मेला लगाया जाता है। दुकानों की भरमार रहती है और लोगों की संख्या भी अधिक रहती है और इसी कारण दो चार अभागी माताओं के लड़के लड़कियां भी प्रति वर्ष खो जाती हैं। "पूत मांगने गयीं, भतार खोकर आयीं" कहावत चरितार्थ हो जाती है। धर्म्मार्जन के लिए लड़के लड़की को खोकर वापस आती हैं। उत्तर घाट में लोगों की संख्या उतनी अधिक नहीं रहती। दुकानों में दो चार पसरहट्टे की दुकान रहती हैं। कोसीजी के किनारे एक मन्दिर महादेव जी का है। भक्त गण स्नान कर जल चढ़ाते हैं।

खोल सिसकती हुई बाहर निकल आयी और सखी के कमरे के निकट जाकर आवाज़ दी। सखी मेरी आवाज़ सुनते ही निकल आयीं। इसके पश्चात् हम दोनों ने और और लोगों को उठाया। घर की बूढ़ी माताएँ जो दूसरे दिन सूर्य्य उदय के पश्चात् भी शीघ्र नहीं उठती थीं, आज कोसी स्नान करने जायँगी, यह ख्याल कर तुरन्त उठ बैठीं। सब उठ गयीं, केवल ननँद देवी जागी रहने पर भी लेटी रहीं। सवेरे की नित्य क्रिया से छुट्टी पा सात बजते बजते हम लोगों ने घरसे कोसी स्नान के लिए प्रस्थान किया। चलते समय हम लोगों ने ननँद देवी को एक खम्भे से सटे हुए नन्हा सा बच्चा गोद में लिए मलिन-बदना बैठी हुई देखा। सखी से न रहा गया, कोसी स्नान से वञ्चित ननँद देवी को शोकित देख वह हँस पड़ीं। कहने लगीं, "शरारत माफ़ करना दीदी जी! ख्याल है कि नहीं, दशहरे में देवी दर्शन कर आने के बाद आप ने किस प्रकार मन-गढ़न्त बातें बना बना मुझको ललचाया था, सो हमारी भी अच्छी बारी आयी है, मैं भी आज उसका बदला चुका ही छोड़ूँगी।" ननँद देवी ने इससे रंज नहीं माना, वरन् यह सुनते ही वह हँस पड़ीं। इससे उनका मानसिक दुःख हलका हो गया। इस प्रकार मज़ाक कर हम लोगों ने घर से प्रस्थान किया। रास्ते में सिवा झुण्डके झुण्ड स्त्रियों के और कोई लिखने लायक दृश्य दृष्टि-गोचर न हुआ। नौ बजे हम लोग उत्तर घाट पहुँच गये। कुछ देर सुस्ताने के बाद स्नान किया और सब जल चढ़ाने के लिए शिव जी के मन्दिर की ओर बढ़े। मन्दिर में बड़ी भीड़ लगी थी। यहाँ का दृश्य देख कर हृदय काँप उठा। उस भीड़ में पुरुषों के बीच स्त्रियों को घुसती हुई देख रोमाञ्च हो उठा। मन्दिर में उन वक धार्मिक पुरुषों की पिशाची वृत्ति देख जी जल उठा। साथ ही उन भोली भाली बहिनों की शोचनीय दशा देख कर हृदय विदीर्ण होने लगा। दिल में हुआ कि लौट जाँय, यही अच्छा है। सखी की भी वही राय हुई, किन्तु सास माता की उत्कट भक्ति ने पीछे पैर हटाने से रोका। इतने में दो पियादों ने जाकर पुजारी जी को हम लोगों के आने की खबर दी। कुछ विशेष मुद्रा प्राप्त होगी, इस ख्याल से पुजारी जी चटपट सदर दरवाजा बन्द कर चोर फाटक (छोटा दरवाजा) होकर हम लोगों को भीतर लिवा ले गये। सखी के स्वामीदेव को छोड़ घर के सब पुरुष हम लोगों के साथ गये थे, इस लिए केवल उन लोगों और पुजारी जी को छोड़ और कोई पुरुष भीतर हम लोगों के साथ नहीं घुसने पाये। हम लोगों ने चटपट जल चढ़ा लिया किन्तु सास माता की पूजा डेढ़ घण्टे में समाप्त हुई। इतनी देर में हम लोग पसीने से तर हो गये। वह

रह कर बाहर से "पुजारी जी, दरवाजा खोलो, खोलो" की आवाज से हम लोगों के कान फटने लगे। पूजा समाप्त होने के पश्चात् हम लोग सकुशल बाहर निकल आये। पुजारी जी का सत्कार ५) रुपये से किया गया, उस पर भी वे नाक भौं चढ़ाने लगे। आखिर २) और दिये गये और तदनन्तर हम लोगों ने अपनी राह ली। मन्दिर से अपनी रावटी तक हम लोग अपने छोटे घर की बहिनों की दुर्दशा पर सोचती आयीं। हाय! घर छोड़ दूर दूर से वे धर्म्मार्जन को आती हैं, लेकिन यहाँ सतीत्व नष्ट होने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता।

खाते पीते हम लोगों को एक बज गया। खा पीकर दोनों सखी लेटी हुई गृहलक्ष्मी की श्रीमती वसंतकुमारी देवी कृत "उनकी हँसी" नामक लेख पढ़ रही थीं कि दोनों को नींद आ गयी। हम दोनों सोई हुई थी कि बाहर से टनटन शब्द सुनायी दिया। यह शब्द बाइसिकिल की घण्टी का था। सखी चौंक पड़ीं। अपनी घड़ी में देखा तो तीन बजा था। उनके चित्त में हुआ कि हो न हो, स्वामी देव पहुँच गये। स्वामी देव की समय-बाध्यता पर वह बड़ी खुश हुईं और मुझको उठाने लगीं कि प्राणेश्वर आ गये। हम भी उठ बैठे। तदनन्तर हम दोनों ने उनके लिए दाई के द्वारा पान भिजवा दिया। इतने में सास माता उठीं और बाहर अपने लड़के को अङ्गरेजी ठाट बाट में देख अत्यन्त प्रसन्न हुईं। इसके अनन्तर सास माता ने उनको खाने के लिए कहा, लेकिन वे खाकर आये थे इसलिए कुछ खाया नहीं। मिश्री खाकर थोड़ा पानी पी लिया। इसके पश्चात् लड़कों को लेकर वे खिलौना खरीदने गये और वापस आते आते साढ़े चार बज गये। वापस आते ही उन्होंने रावटी तोड़ने की आज्ञा दे दी और सब कुछ गाड़ी पर लादते आधा घण्टा हो गया। पाँच बज गये, तब हम लोग उत्तर घाट से रवाना हुए। आधे माइल के लगभग में देवी जी का एक मन्दिर है, वहाँ पहुँचते पहुँचते सन्ध्या का समय आ गया। यहाँ तक कोसी स्नान का विवरण हुआ, अब सखी की भौतिक लीला आरम्भ होती है—

मन्दिर पार कर हम लोग दो फलाँग भी न गयी होंगी कि सूर्य्य देव अस्ताचल चले गये। संध्या देवी ने अपनी शान्ति का राज्य संसार में फैला दिया। पूर्णिमा की शीतल किरणों से संसार आलोकमय दृष्टि गोचर होने लगा। थोड़ी दूर और जाने के पश्चात् हम लोगों को एक छोटी सी नदी पार करनी पड़ी और उसके बाद कुछ दूर तक सघन वाटिका होकर जाना पड़ा। ज्योंही हम लोगों ने बगीचे को तय किया, त्यों ही सखी के कलेजे में कुछ दर्द सा मालूम हुआ। थोड़ी देर के बाद मालूम हुआ कि कय होगी, लेकिन हुई नहीं। रह रह कर कय करनेकी कोशिश करने

पर भी कय नहीँ हुई। सखी का स्वभाव था कि जब कभी कलेजेमेँ दर्द होता, तो वह कय करने लगती थीँ। इसलिए उस कलेजे के दर्द को हम लोगोँ ने मामूली समझा और ठीक हुआ भी ऐसा ही। थोड़ी देर के बाद कलेजे का दर्द बिलकुल जाता रहा किन्तु सिर मेँ घुमनी सी मालूम होने लगी। रात हो गयी थी, इसलिये हमने पहले ही से हवा आने के लिए रथ के एक तरफ का परदा उठा दिया था लेकिन सखी की यह हालत देख कर चारोँ ओर का परदा उठा दिया, जिससे कि हवा का अच्छी तरह प्रवेश हो। इससे सखी की तबियत अच्छी नहीँ हुई। घुमनी घटने की अपेक्षा बढ़ती ही गयी। संध्या का समय था, रास्ते मेँ किसी परिचित व्यक्ति से मिलने की संभावना न थी, इसलिए सब वृद्धाओँ की यह राय हुई कि सखी को रथ से उतार कर कुछ दूर पैदल ही ले चलेँ। अभाग्य वश ऐसा करने पर भी सखी की तबियत ठीक नहीँ हुई, प्रत्युत क्रमशः बुरी ही होती गयी। पैदल वह दो गज भी न जा सकीँ। सभोँ से प्रार्थना करने लगीँ कि मुझको रथ मेँ चढ़ने दीजिए, क्योँकि पैदल चलने से हमारा पाँव आगे बढ़ने की अपेक्षा पीछे की ओर जा रहा है। यह सुन सभोँ ने उनको रथ पर चढ़ा दिया। थोड़ी देर के बाद देखा तो सखी बिलकुल बेहोश हो गयीँ। हम लोग तथा सखी के स्वामी ने उनको होश मेँ लाने की चेष्टा की, किन्तु सब व्यर्थ हुई। कुछ देर बाद सखी ने कहरना भी आरम्भ किया। एक माइल तक यही हालत रही, तदनन्तर एकाएक कहरना भी बन्द हो गया। हम लोगोँ ने समझा कि शायद नीँद पड़ गयी है। भला यह किसे मालूम था कि सखी ने एक हृदय विदारक नाटक खेलने ही के लिए यह प्रथम सीन दिखाया था।

अस्तु, सखी को सोई देख हम लोगोँ को विश्वास हो गया कि अब वह अच्छी हो जायँगी। किन्तु न जाने क्योँ सखी के स्वामी देव को सखी का कहरना बन्द होते ही एक भारी विकलता उत्पन्न हुई। वे प्रति क्षण उसकी हालत पूँछने लगे। कभी तो वे मुझसे पूछते और कभी अपनी भागनेयी जो कि उसी रथ मेँ थीँ, पूँछते कि कैसी है। हम लोग उनके ढाढ़स के लिये अच्छी है, यही कहती आयीँ। पर न जाने क्योँ, उनकी विकलता बढ़ती ही गयी। उनके दिल मेँ इस बात का विश्वास हो गया था, कि हमारी सखी एक अलौकिक लीला खेलेँगी। वास्तव मेँ हुआ भी ऐसा ही। रथ दरवाजे पर लगते ही वे अपनी धर्म पत्नी को देखने तथा कुशल समाचार पूँछने के लिए उत्कट लालसा से रथ के निकट आये। सास माता जिस रथ पर आती थीँ, वह कुछ पीछे था, इसलिए इनको यह अच्छा अवसर हाथ आया।

रथ के निकट आकर वे अपनी प्रियतमा से पूँछने लगे कि, "कैसी तबियत है ?" पति पत्नी का आदर्श प्रेम देख कर हम लोगों के आनन्द की सीमा नहीं रही, किन्तु सखी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, जिससे कि हम लोगों का आनन्द दुख में परिणत हो गया। फिर भी उन्होंने सखी का सिर हिला कर पूछा कि, "कैसी हो ?" इस बार भी उत्तर कुछ न पाकर उनकी हालत पागलों की सी हो गयी। उन्होंने सखी को खींच कर रथ से उतार लिया और नीचे गोदी में बैठा कर होश कराने लगे। मुरदे की तरह उनका सिर जिस ओर झुका दिया जाता था, उसी ओर झुका रहता था। अनन्तर वे नाड़ी और हृदय की परीक्षा करने लगे। नाड़ी पर हाथ रखने से पता लगा, कि वह एकदम बन्द है, हृदय पर हाथ रखने से धड़धड़ाहट की आवाज कुछ भी नहीं मालम हुई। उनका होश जाता रहा। "हाय ! यह क्या हो गया ?" यह कह कर चीतकार शब्द करते हुए धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े और बेहोश हो गये। इतनी देर हम लोग रथ से हक्का बक्का हो सखी और उनके स्वामी की ओर देख रही थीं। जब वे (सखी के स्वामी) जमीन पर बेहोश होकर गिर पड़े, तब हम लोगों से भी न रहा गया। हम लोगों ने भी बड़े जोर से रोना शुरू किया। इसी बीच सासी माता की सवारी पहुची। भीतर हवेल से ननँद देवी भी हम लोगों को रोते सुन घबड़ाती हुई बाहर आयीं। सब के सब सखी की हालत देख जार बेजार रोने लगीं। सखी के स्वामी अभी तक बेहोश थे। उनके मित्र तथा आत्मीयगण उनको होश में लाने की चेष्टा कर रहे थे, बहुत कोशिश करने पर उनकी बेहोशी गयी। "कैसी है"? "क्या सचमुच संसार से बिदा हो गयी ?" ऐसा कहते हुए वे उस भीड़ में घुसे जो कि सखी को घेरे हुए थी। अब सभों की यह राय हुई कि यहीं से स्मशान यात्रा की तैयारी की जाय। इतने में सखी के प्राणेश्वर कहने लगे कि कृपा कर सब कोई इसको मेरे सोने के कमरे में ले चलो। अन्तिम काल में मैं इसका मुख एकान्त में एक बार अच्छी तरह और निहार लूगा। उनका ऐसा आग्रह देख कर हम लोग सखी को हवेली ले जाने लगीं। सखी इतनी भारी हो गयीं कि हवेली तक पहुँचाना हम लोगों के लिए असह्य हो उठा। यह देख कर साहस कर सखी के स्वामी ने स्वयं सिर की ओर उठाया और हम सभों ने पाँव की ओर उठाया और उसके सोनेके कमरेमें ले जाकर पलँग पर सुला दिया। पाठिकाओ ! अब आप लोग समझ गयी होंगी कि क्यों सखी घर भर के लोगों को बेचैन कर सोई थीं। सब के सब रोते ही थे कि इतने में ननँद देवी न जाने क्यों सखी के निकट दौड़ कर आयीं और अँगुली

के बल से उनके पेट को जोर से दाबने लगीं। भाग्य वश उनको धुकधुकी सी मालूम हुई और छाती पर हाथ रखने से धड़कने की भी आवाज कुछ कुछ सुनायी दी। "बबुआ! वह जीती हैं, मरी नहीं" यह कहती हुई वह चिल्ला उठीं। सब को होश हुआ। मुँह देखा गया, तो बिलकुल बन्द था। दरवाजे पर हम लोगों ने दाँत बैठा नहीं देखा था। यहाँ दाँती लगी हुई देख कर हम लोग उसे छोड़ाने की चेष्टा करने लगे, किन्तु ज्योंही एक बार वह छुटती, त्योंही कुछ देर बाद फिर लग जाती थी। मुझे ख्याल है कि पचीसों बार दाँती लगी थी और जब छुड़ाई जाती थी, तो सखी कहने लगती थीं, कि "बाबू जी बचाओ" "अरे तुम लोग क्यों ँ१क करती हो" "मुझको छोड़ दो" "मैं जाती हूँ" इत्यादि। उपरोक्त बड़बडाहट को सुन कर गाँव की बूढ़ी स्त्रियों की (जो कि सखी की हालत देखने के लिए आयी थी) राय हुई कि पलँग से उतार कर नीचे आग से शरीर सैंका जाय, क्योंकि उन सभों की राय में यह सब फसाद सर्दी से हुआ था। सभों ने ऐसा ही किया, लेकिन पलँग से उतार कर नीचे करते ही सखी ने दूसरी लीला आरम्भ की। पहले तो उन्होंने दाँत बैठा दिया। उसके बाद दाँती छूटने पर हाथ पाँव इतना कड़ा कर दिया कि क्या मज़ाल था कि सखी के स्वामी भी (जो कि खूब बलिष्ट हैं) अपने सम्पूर्ण बल से एक हाथ भी उनका हिला सकें। एक दफ़ा के पाँव चलाने से छः सात स्त्रियाँ गिर जाती थीं। इतनी देर तो हम लोग इसी भ्रम और चिन्ता में थे कि शायद बाई का प्रकोप है और इसलिए डाक्टर को बुलाने के लिए आदमी भेजा गया। थोड़ी देर बाद सखी पानी माँगने लगीं। एक दाई जाकर पानी ले आयी। पानी का लोटा सामने आते ही न जाने क्यों चिढ़ कर कहने लगीं "शूद्र का लाया पानी है और यह कहती हुई एक अंगुली के बल से उस लोटे को मारा, जो कि सामने की दो तीन स्त्रियों को लाँघ कर चार गज़ की दूरी पर जा गिरा। सखी का यह अमानुषिक बल देख एक बूढ़ी माता को शक हुआ। उन्होंने सखी के स्वामी के कान के निकट धीरे से कहा कि यह "भौतिक उपद्रव है"। यहीं से सखी की भौतिक लीला शुरू हुई:—

न जाने किस प्रकार सखी को अपने स्वामी तथा उस बूढ़ी माता की बातचीत मालूम हो गयी। क्योंकि इसके बाद ही वह कहने लगीं कि "अब मैं नहीं रहूँगी। तुम लोगों ने समझ क्या लिया है? शीघ्र जाऊँगी, अच्छा ज़रा पानी पिलाओ" अब सभों को विश्वास हो गया कि सचमुच में भौतिक ही उपद्रव है। अब भूत देव को भगाने के लिये उपचार होना शुरू हुआ। "कोई आग में हल्दी रख कर सामने ला रखतीं" कोई मिरचा आग में देकर उसका धुआँ

सखी की नाक के निकट ले जातीं। अब सखी ने बकना शुरू किया। कितनी ही अश्लील बातें बक गयीं, जो कि मुहल्ले भर की किसी औरत से भी हम लोगों ने न सुनी थीं। इस पर दो एक औरतों ने सखी को दो एक गाली दीं। इस पर वह बहुत चिड़-चिड़ा कर बोलीं, "खबरदार, गाली मत देना। मैं जात की ब्रह्मणी हूँ, मेरे बाप ने तुम लोगों का कोई अनिष्ट नहीं किया, और न मैं ही अनिष्ट करने के लिए आयी हूँ। प्यास लगी थी, इसलिए आयी थी, शीघ्र ही चली जाऊँगी।" सखी के स्वामीदेव हक्का बक्का सखी की लीला देख रहे थे। उन्होंने पहिले सुना था कि कुच रित्रा औरतें जवानी में इसी तरह का ढोंग रचती हैं। सखी के इस आचरण से उनके दिल में सखी के प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न हुई। कुचरित्राओं की चाल हमारी पत्नी ने चलना शुरू की है, यह सोच कर रंज से उनकी आखें लाल हो गयीं। वह सोचने लगे, हाय! मैं ने इसको क्या समझ रक्खा था और अन्त में यह क्या निकली। यह विचार कर लज्जा से उन्हों ने अपना सिर नीचा कर लिया। हाय! मैं ने इसके लिए इतना परिश्रम किया। इसके जी जाने से भी क्या मैं इसके साथ सुखी होऊँगा? इसने तो अपना चरित्र परिचय आप ही आज सभों को दे दिया। इसके जीने ही से क्या? इत्यादि सोचकर सभों से वह यह कहने को उद्यत हुए कि इस कुल कलङ्किनी को ऐसी ही अवस्था में छोड़ कर आप लोग घर से बाहर हो जाइए। इस पापिनी को अपने कर्म्म का फल अकेले भोगने दीजिए। मैं बाहर से किवाड बन्द कर देता हूँ। इतना कह कर वे रुक गये, मानों सखी का सच्चा प्रेम जाकर उनसे कहने लगा कि "प्यारे! तुम भूलते हो। तुम जिसको समय के फेर से मन में कुचरित्रा कह रहे हो, वह वैसी बिलकुल नहीं। उसकी पातिव्रत परीक्षा तुमने हजारों बार कर ली है। तुम्हीं को उसने अपना इष्ट देव और आराध्य देव समझा है। तुम्हीं उसके जीवन-सर्वस्व, प्राणनाथ, प्राणेश्वर, जीवन-सुख और पति-देव हो। उसके दिल में दूसरे को स्थान नहीं मिल सकता। दूसरे पुरुष को उसने कभी नजर उठा कर देखा तक नहीं। प्यारे! क्या तुम भूल गये। दशहरे में उसने तुम्हारी आज्ञा कैसी जटिल अवस्था में रक्खी और उससे किस प्रकार स्त्री-जगत को पति आज्ञा पालन की अपूर्व शिक्षा दी है। क्या वह कार्य्य किसी साधारण स्त्री से होना सम्भव है। प्यारे! क्या तुमने हजारों बार उसकी सेवा भक्ति, सच्चरित्रता और दुर्दमनीय प्रेम पर मुग्ध होकर उसकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से नहीं की है? क्या तुम्हें ख्याल नहीं कि विगत रात्रि में वह तुम्हारे निकट तुम्हारी आज्ञा लेने को किस कातर भाव से खड़ी थी? क्या तुम्हें

स्मरण नहीं कि जब से तुम उत्तराघाट पहुँचे थे, तब से तुम्हारी प्रियतमा एक टक तुम्हारी ही ओर देखती थी ? छिः कैसा तुम्हारा ख्याल है ? क्या कुमारि-ओं की यही निशानी है ? नहीं नहीं, तुम भूल कर रहे हो। तुम आखिर ठहरे तो विद्यार्थी। सम्भव है कि विद्यार्थी होने के कारण तुम्हारा लड़कपन नहीं गया हो, जिससे कि तुम व्यर्थ एक सती साध्वी के चरित्र में दोष लगा रहे हो, किन्तु तुम्हारी दासी अल्प वयस्का होने पर भी पातिव्रत धर्म्म की शिक्षा अच्छी तरह पा चुकी है। पति क्या है, और पत्नी का क्या धर्म्म है, इत्यादि विषयक शिक्षा उसके हृदय में कूट कूट कर भरी है। यह दोष जो तुम उसे दे रहे हो, वह उसका बुरा दिन दिलाता है........।" क्योंकि कुछ ही देर के पीछे उन्होंने कहा कि नहीं नहीं, मैं सचमुच भूलता हूँ। प्रियतमा मनोरमा पर कलङ्क लगाना हमारी सरा-सरासर गलती है। उसका कोई दोष नहीं। कुग्रह के चक्र में पड़ जाने से लोगों की बुद्धि मारी जाती है, इसलिए उचित यही होगा कि जिस प्रकार यह स्वस्थ हो, उसकी चेष्टा की जावे। यह विचार वे सखी के निकट जा बैठे। उनको देखते ही सखी बड़े जोर से खिलखिला कर हँसी। जितने आदमी घर मे थे, सभों को रोमाञ्च हो गया। सखी के स्वामी भी बहुत डर गये। अभी तक पश्चिमी शिक्षा ने उनको अटल बना रक्खा था, कि भूत प्रेत कोई चीज नहीं है, किन्तु सखी को विचित्र आकृति से हँसते हुए देख, उनके दिल में भी इसका विश्वास होना शुरू हुआ। थोड़ी देर तक विचारनेके बाद पुनः उनको मालुम हुआ, शायद यह हिस्टी-रिया की बीमारी है। क्योंकि किसी डा-क्टर से सुना था कि कभी हँसना और कभी बकना व चिल्लाना इसी हिस्टीरिया का लक्षण है और इससे भूत से उनका विश्वास हट गया। वे समझ गये कि सखी को भूत नहीं लगा, वरन् एक बीमारी हुई। लेकिन यह भ्रम भी उनका आगे जाता रहा, जिसको पाठिकाएँ आगे पढ़ेंगी कि किस प्रकार सखी के स्वामी देव को भी मानना पड़ा, कि ठीक यह भौतिक उपद्रव था। मुझे विश्वास है कि निम्न लिखित घटना से हमारी पाठि-काएँ भी हमारे मत का समर्थन करेंगी। ख़ैर, आगे सुनिए। वह हास्य हँसने के बाद उनकी हँसी बिलकुल बन्द हो गयी, और तब वह अपने स्वामी देवसे कहने लगी। "क्या तुमने नहीं देखा ? जब रथ का परदा उठा था। उस समय तुम भी तो मौजूद थे। क्या तुमने नहीं देखा, जब कि सघन बगीचेमें रथ का परदा उठा था उस समय मैं गाछ के नीचे रास्ते के बगल खड़ी थी"। इस बात को उन्होंने ठेठ बोली घुनघुनाती हुई-हृदय में डर उत्पन्न

करने वाली आवाज से कहा। इतना कह कर वह चुप हो गयीँ।

इन सब बातोँ को देख और सुन कर गाँव के बूढ़े लोगोँ की यह सलाह हुई कि किसी "ओझा"* को बुलाया जाय। सखी के स्वामी की भी राय इस विषय मे पूँछी गयी। "जिस ओझा के नाम ही से मैँ चिढ़ जाता था, जिसे मैँ अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता आया, मेरे डर से जिसकी अवाई इस गाँव भर मेँ न थी, हाय! आज उसी ओझा को अपनी प्रियतमा के भूत उतारने के उपचार के लिए अपने यहाँ उसे बुलाने जाना होगा" यह सोच कर वे अत्यन्त दुखी हुए, किन्तु किसी प्रकार सखी स्वस्थ होँ, इसी की धुन उनको समायी थी। इस लिए दुखी होते हुए भी ओझा को बुलाने की आज्ञा दे दी।

हम लोगोँ के गाँव से बाहर कुछ दूर पर एक बूढ़ा तेली रहता है। अवस्था उसकी अभी ६५ वर्ष की होगी। लोगोँ के कहने से आज मालूम हुआ कि वह पक्का ओझा है। हम लोगोँ ने न तो कभी उसका नाम सुना था और न हम लोग उसकी ओझाई के विषय मेँ ही कुछ जानते थे क्योँ कि हम लोगोँ के यहाँ कभी उसको बुलाने का अवसर ही नहीँ मिला था। ओझा के यहाँ बुलाने के लिए आदमी भेजा गया है, यह खबर सखी को किसी ने न दी थी, किन्तु जैसे ही घर के बाहर सीढ़ी पर उसने पैर रक्खा, वैसे ही अन्दर से बिना देखे सुने सखी कहने लगीँ कि "मुझको छोड़ो, तुम लोग हम को छोटी जात से छुलाना चाहती हो। हम भागते हैँ! राम राम! मेरी इज़्ज़त ही चली जायगी। हम अब पानी भी न पीवेँगे, तुम लोगोँ ने बहुत दिक किया, लेकिन हम अनिष्ट करने नहीँ आये थे। सिर्फ प्यास लगी थी।" यही कह रहीँ थी कि इतने मेँ ओझा पहुँच गया और ज्योँही वह सखी के सिर का एक केश ले कर कुछ पढ़ने लगा, कि "जात गयी, जात गयी, राम राम, छी छी" कहती हुई सखी की भौतिक लीला बिदा हो गयी। एक ही मिनट मेँ वह पूर्व्ववत हो गयीँ। सखी की भौतिक लीला समाप्त हुई। उसको पूर्व्वावस्था मेँ पाकर घर भर मेँ आनन्द छा गया। पतिदेव को सामने सिर नीचा किये देख सखी पूर्व्ववत कातर भाव से बोलीँ—"ऐ! नाथ! क्योँ मैँ आपको यहाँ सिर नीचे किये दुख

*"ओझा" से पाठिकाएं कोई जात विशेष जैसे ब्राह्मण इत्यादि न समझेँ। ओझा वही कहलाता है जो अपने मन्त्र और पूजा के उपचार से डाइन की करतूत को दूर करता है और लगे हुए भूत को मनुष्य के शरीर से उतारता है। इसलिए प्रत्येक जाति के लोग जो अपने मन्त्र के बल से उपरोक्त काम करते हैं वही 'ओझा' कहे जाते हैं।

पूर्ण देखती हूँ? मैं तो सोयी थी। कोई ज़रूरत थी तो उठा दिया होता। (धीरे से) अरे, हैं (चारों तरफ भीड़ देख कर) इतने लोग क्यों यहाँ इकट्ठा हुए हैं? क्या मेरी तबियत खराब हो गयी थी, जिससे कि आपने इतने लोगों को इकट्ठा किया है? यह सुनते ही उन की आँखों से अश्रु की वर्षा होने लगी। "क्या आशा थी कि इस प्रकार की विनय युक्त बातें मैं अपनी प्रियतमा से सुनूंगा?" ऐसा ख्याल कर उनका हृदय रो उठा। आंसू रोकने पर भी न रुके। सखी की बातों का उत्तर उन्होंने अश्रु प्रवाह के ही द्वारा दिया। "हैं! आप क्यों रोते हैं? प्रार्थना करती हूँ मुझ से कहिए कि क्या बात है, सास माता तो अच्छी हैं न? और परिवार के सब लोग सकुशल तो हैं?" सखी के स्वामी ने धीमे स्वर से उत्तर दिया कि "हाँ सब अच्छे हैं।" सखी बोलीं, तब आप रोते क्यों हैं? स्वामी ने कहा, "नहीं प्यारी, मैं रोता नहीं हूं।"

सखी—"नहीं नहीं, नाथ! आप सच सच बतावें कि आप ऐसे अधीर क्यों हो रहे हैं?"

स्वामी—"सब तुम्हें मालूम हो जायगा भला यह तो कहो कि तुम्हारी तबियत अब कैसी है?"

सखी—"मेरी तबियत? भला मुझको क्या हुआ था, मैं तो अच्छी ही हूं। लेकिन केवल चढ़ाव उतार के कारण, शरीर में दर्द मालूम होता है। किन्तु हाँ, मैं यहाँ कब पहुँची हूँ यह मालूम नहीं?"

स्वामी—"अच्छा बताता हूँ, जरा अपना मुँह देखने दो।"

सखी की मानव लीला अब आरम्भ हुई। बाहर से चिक गिरा कर दुःख के पीछे सुख का आनन्द लूटने के लिए हम लोग इन नायक नायिकों को छोड़ कुछ देर के लिए वहाँ से चली आयीं। थोड़ी देर के बाद जब आपस की बात चीत ख़तम हुई, तब सखी को साथ लिए उसके प्राणेश्वर वहाँ से बाहर हुए। चाँदनी की छटा में इस युगल छबि की छटा देख कर मेरा मन आनन्द से मुग्ध हो गया। सखी के स्वामी तो बाहर चले गये, किन्तु सखी मेरे पास आ मेरे गले से लिपट गयीं। स्नेह की अश्रु वर्षा से दोनों का अञ्चल भीग गया। अनन्तर सखी सभों से जा मिलीं। अपने से वयोवृद्धाओं का चरण स्पर्श किया। सास माता सखी को अपने पाँव पर गिरती देख प्रेमाश्रु बहाती हुई गद्गद स्वर से आशीर्वाद देकर कहने लगीं, "बेटी! तुम्हारा आज पुनर्जन्म हुआ, इसके लिए ईश्वर का मेरा कोटिशः धन्यवाद है। साथ ही आज ही से मैंने प्रतिज्ञा करली है कि फिर न तो कभी मैं ऐसे ऐसे मेले तमाशे में और न धर्म्म-स्थान में जाऊँगी और न तुम लोगों को जाने दूँगी। बबुआ ने बहुत ठीक

किया था, जो तुम्हें दशहरे में देवी-दर्शन को न जाने दिया। ठीक है, हम लोगों को घर ही में रह कर स्वामी देव, इष्टदेव तथा कुल देव इत्यादि की पूजा आराधना करना शोभा देता है।"

इसके थोड़ी देर उपरान्त मैं सखी को एकान्त में बैठा आद्योपान्त सब किस्सा सुना रही थी कि इतने में "लोकेश्वर" जेठी जी का छः वर्ष का लड़का आकर सखी की गोद में उछलने लगा और कहने लगा, "बाप ले बाप। क्या कहूँ ताती जी! तुम आज मल गयी थीं। किछी ने कहा कि तुमको बेहोछी हुई। बछ, क्या था, मैंने बाती ली और बिना जूता खलाऊँ के अंधेले में कमलेछली भैया के घल बकली का दूध दुहने को चला गया। हाँ! हाँ! बकली का बच्चा में में कलने लगा। तो भी मैंने दूध दुही लिया, तब तक तुमको होछ हुआ। भला कहो ताती जी, अगल तुम मल जातीं, तो हमें कल को छबक कौन पलहाता?" छोटे से बच्चे का इस प्रकार अपने प्रति स्नेह देख सखी के नेत्र से प्रेमाश्रु बहने लगे। बच्चे को गले लगा कर वह कहने लगीं, "नहीं बाबा! मैं क्यों मरूँगी? मेरे लल्लू, किस ने तुम से कह दिया, कि मैं मर गयी। अहा! बच्चा को बकरी का दूध दुहने में कितना परिश्रम हुआ होगा।" इसी प्रकार बच्चों का लाड़ प्यार कर रही थीं कि इतने में ननँद जी की बड़ी लड़की ने आकर कहा, "मामी जी! तुम ने तो आज अच्छी लीला रची। तीनों नानी जी, माँ, बड़ी मामी और यह मामी तुमको कन्धे पर चढ़ा कर हवेली ले आयी थीं। अजी! गाँव की बहुत सी औरतों ने तो तुम्हारा पाँव रगड़ा था।" बात को रोक कर जेठी जी की बड़ी लड़की कहने लगी, "चाची जी, गाँव भरके सब लोगों ने आज तुम्हारा मुँह देखा। सौरभ के चचा जी ही ने तो तुम्हारी हालत देख पहिले ओझा बुलाने की राय दी, अलख के बाबू जी ही तो दौड़ कर ओझा बोला लाये थे, बाबू के मामा जी ही ने तो दवा की तरकीब बतायी, बिन्दा के बाबू जी ही तो दौड़ कर डाक्टर को बुला लाये और गाँव के कितने ही लोगों ने तुम्हारी सेवा सुश्रुषा की।"

यह सुन सखी को बड़ा दुःख हुआ और कहने लगीः—"हायरे! यह क्या हुआ। हमने बड़ों को आज कितनी तकलीफ़ दी। बड़ों से कितना काम कराया। जिन्हों ने मुझे कभी देखा तक नहीं था, आज मुझे उन्होंने बेहोशी की हालत में नंगे शिर देख लिया। मेरी ऊटपटाँग बोली सुन ली, खास लोगों ने मेरा पाँव अपने सिर पर उठाया, गाँव की बूढ़ी माताओं ने मेरा पाँव रगड़ा, हे ईश्वर मैं मर क्यों न गयी। मुझे देख देख कर गाँव के लोग क्या कहते होंगे। मैं सुना करती थी, कि भूत पिशाच का आक्रमण

कुचरित्राओं पर हुआ करता है, वह न जाने क्यों, किस पाप के फल से मुझ पर हुआ। सखी! मुझको तुमने जीती क्यों छोड़ दिया?" यह कहती हुई वह बेहोश हो गयीं। सब दौड़ीं। दोनों बालिकाओं पर अत्यन्त क्रुद्ध होने लगी। दोनों का मुँह सूख गया, अनन्तर बहुत चेष्टा करने पर सखी होश में आयीं। लेकिन अब भी स्मरण होने से इन बातों का दुख उनके दिल में हो आता है। तीन चार दिन तक डर और हृदय की कमजोरी से कभी कभी गश आ जाता था, किन्तु तुरन्त छुट जाता था। उसके उपरान्त वह आराम हो गयीं। दुख के परे सुख आने पर दुख भूल जाता है। इसी तरह इस घटना को हुए आज दस महीने हो गये। मेरी सखी अब खूब स्वस्थ हैं, इस लिए मैं सखी की भौतिक-लीला भूल गयी थी। दशहरा आज से दस दिन बाकी है, एकाएक पार साल की बात मुझे याद आयी। हँसते हँसते मैं ने सखी से पूछा कि "इस बार तुम तो देवी दर्शन करने अवश्य आओगी?" उसने कहा, "नहीं बहन! माफ करो, क्या तुम्हें कोसी-स्नान वाली घटना याद नहीं। मैं जान पर खेल अब धर्म्म कमाना नहीं चाहती। मेरा धर्म्म अब सदा 'करो पति पूजा बनो पिय प्यारी' इत्यादि में ही रहेगा।" मैं ने कहा, "वाह सखी, तुमने बहुत ठीक कहा! चाहिए भी ऐसा ही। मैं तुम्हारी इच्छा ही जानने को थी। लो मैं तुम्हारा भौतिक काण्ड अन्य बहिनों को भी सुनाती हूँ, ताकि वे भी तुम्हारी अनुवर्तनी हों।"

बहनो! देखो अपने घर से बाहर जाकर धर्म्मार्जन में कैसे कैसे अनर्थ हो पड़ते हैं। अब आप लोग स्वयम् विचारें कि घर से बाहर जाकर धर्म्म लूटना कुल वधुओं के लिए युक्ति संगत है अथवा नहीं? और बतलाइए आप लोग भूत योनि को मानते हैं या नहीं?

—श्यामा देवी।

पत्नी की वीरता



र अन्धकारमयी रात्रि है। आकाश निस्तब्ध है, सागर-वक्ष निस्तब्ध है। केवल उस घोर निस्तब्धता को चीरता हुआ 'टाइटानिक' जहाज़ अपने इंजिन का शब्द करता हुआ ११ बजे रात्रि को अमेरिका से इङ्गलैन्ड आ रहा है। चारों ओर घोर कुहरा छाया हुआ है। उसके परदे से नक्षत्र बीच बीच में चमक उठते हैं। समुद्र शान्त है। छोटी छोटी लहरें एक दूसरी ओर से आकर परस्पर लड़ जाती हैं, जल कुछ ऊँचा उठ आता है और फिर पतित हो, उस अगाध-अपरिमित-एटलाण्टिक महा सागर के जल में मिल जाता है, मानों 'टाइटानिक' के

यात्रियों को सूचना दे रहा है कि 'तुम्हारी इङ्गलैण्ड पहुँचने की आशा हमारी इन छोटी छोटी लहरों के समान, है, जो उठ कर फिर अगाध जल-राशि में विलुप्त हो जाती हैं।'

* * * * *

एटलाण्टिक-महा सागर की बातों को प्रायः सभी ने सुना। नक्षत्रों ने सुना तो वे मुस्करा दिये—मानों उन्होंने कहा कि 'तू 'टाइटानिक' का कर ही क्या सकता है?' कुहरे ने सुना तो उसने गम्भीर भाव धारण कर लिया, मानों उसने सागर की बात का समर्थन किया। वायु ने सुना तो वह मन्द गति से चलने लगी, मानों 'टाइटानिक' की भावी दुर्दशा पर रो रही हो। अब देखना चाहिए कि जहाज़ ने सुना या नहीं।

यह देखिए, सैकड़ों-स्त्री पुरुष-गण निद्रा-देवी की सुख और शान्तिमयी गोद में विश्राम कर रहे हैं, केवल दो एक कमरों में कुछ नर नारी ताश इत्यादि खेल कर मानों निद्रा-देवी का अपमान कर रहे हैं।

यह देखिए, इस कमरे में ये दो जीव कैसे सुख से सो रहे हैं। हाय! कुछ समय के अनन्तर क्या होगा—यह जगदाधार जगदीश्वर के सिवा और कौन जान सकता है?

सोने वालों में से एक युवक और एक युवती है। दोनों की अवस्था प्रायः २०-२५ वर्ष से अधिक न होगी। युवक का नाम है मिस्टर ड्रमण्ड। यह इङ्गलण्ड के एक सामान्य ज़मीनदार हैं। किसी विशेष कार्य्य से न्यूयार्क गये थे। वहीं दोनों विवाह बन्धन में बँधे और अब इस क्षण भङ्गुर 'टाइटानिक' पर सवार हो कर इङ्गलैण्ड को जा रहे हैं। अहा कैसी प्रगाढ़ निद्रा है, कैसा सुन्दर, सरल मुखमंडल है!! कैसे सुकुमार अङ्ग हैं!!!

* * * * *

इसी प्रकार कुछ देर प्रगाढ़ निद्रा के वशीभूत रहने के बाद अकस्मात् युवती ने चौंक कर आँखें खोलीं, कमरे की ओर देखा और आँखों को फिर बन्द कर लिया, पर नींद न आयी। उसने एक बार फिर आँख खोल कर अपने प्रिय-पति की ओर देखा और उठने की चेष्टा करने लगी। जहाज़ पर चढ़ने में आदी न होने के कारण जो यात्री पहले पहले उस पर चढ़ते हैं, उन्हें सोकर उठते समय बहुत कमज़ोरी मालूम होती है, इसी से युवती जब उठने लगी, तो उसका पैर डगमगाया। तत्काल ही उसने पास की काष्ठ निर्मित-दीवाल थाम ली, पर उस अचानक के झोंके को रोकने में समर्थ न हुई और पास रक्खी हुई टेबिल के बल गिर पड़ी। हाथ में बँधी हुई सोने की 'ब्रेस्लेट-वाच' झन् से बज उठी। मिस्टर ड्रमण्ड की आँख खुल गयी। उन्हों ने जल्दी से उठ कर युवती को उठाया और गिरने का कारण पूँछा पर युवती कुछ न बोली।

इसी शान्त भाव में कई सेकेण्ड बीत गये। अन्त में युवती बोली, "मैंने आज एक बड़ा लोमहर्षण स्वप्न देखा है। मानों हम लोग एक क्षुद्र टूटी नौका पर चढ़ कर किसी दूर देश की यात्रा कर रहे हैं। चारों ओर भयानक निस्तब्धता का साम्राज्य है, कहीं से कुछ शब्द नहीं आता। अचानक भीषण वेग से वायु चलने लगी। पहले सागर-जल केवल कम्पायमान हुआ, तदनन्तर...बड़ी बड़ी...लहरें उठने लगीं और अन्त में एक विशालकाय लहर में पड़ कर हम दोनों..." इतना कह कर युवती कुछ रुक गयी, उसका गला रुँध गया। अश्रु पूरित नेत्रों एवं रोते हुए स्वर से पति की ओर देख कर बोली "......उस अतल जल में अदृश्य हो गये हैं...।" युवक कुछ दुःख और हास्य भरे स्वर में "हूँ" कहके चुप हो रहा।

कुछ समय के बाद युवती सोफ़ा पर लेट गयी। न मालूम कैसे उसे उस समय निद्रा आ गयी। यह देख कर युवक भी अशान्त चित्त से लेट रहा।

* * * * *

"टक्कर"! कितने ही जहाज़ी कर्मचारियों के मुँह से इस शब्द ने निकल कर शान्ति के राज्य में हल चल मचा दी। एक ही क्षण में लोग इधर उधर दौड़ने लगे। युवक भी अशान्त चित्त से शीघ्रता-पूर्वक बाहर आया। बाहर आकर जो कुछ देखा, उसका उसे गुमान भी न था। उसने देखा कि जहाज़ का पेंदा फट गया है और घटना स्थल के पास ही उज्ज्वल-हिम-शिखर जैसी कोई वस्तु पानी में अपना प्रतिबिम्ब लहरों द्वारा कम्पायमान कर रही है और पेंदे के फटे हुए स्थान से २ फीट मोटी जलधारा शत्रुवत् जहाज़ में प्रवेश कर रही है। उस अर्द्ध-रात्रि के समय जहाज़ पर घोर कलरव हो उठा। मिस्टर ड्रमण्ड ने आकाश की ओर देखा तो तब भी घोर कुहरे का साम्राज्य था। शीतल वायु सन् सन् चल रही थी।—"आज क्या होगा?" यह सोच कर उस नव युवक का हृदय काँप उठा।

* * * * *

नौकायें शीघ्रता पूर्वक उतारी जाने लगीं। बेतार का तार बर्की से स्थान स्थान को सहायता के लिए तार दिये जाने लगे और कुछ अदूरदर्शी मनुष्य जल को पम्प कर के निकाल देने की असम्भव बात सोचने लगे। बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने माथा पच्ची की, पर फल कुछ भी न हुआ।

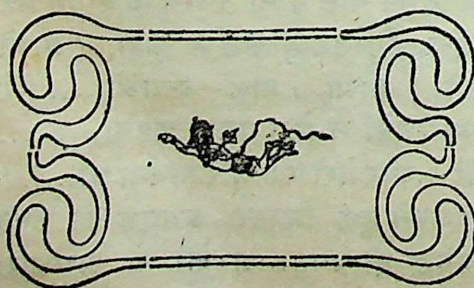
* * * * *

दोनों पति पत्नी उतरने के स्थान पर पहुँचे। मिस्टर ड्रमण्ड ने कहा, "जाओ देवी! जाओ। प्राण बचाओ......मेरे सम्बन्धियों से मेरा प्रणाम कहना........ और...और मेरी एक और प्रार्थना थी......" यह कहते हुए मिस्टर ड्रमण्ड का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। आँखों से अश्रुधारा

प्रबल वेग से प्रवाहित होने लगी। धीर पत्नी ने बात काट कर कहा —"आप क्या कहते हैं? क्या आप को विश्वास है कि मैं आप को छोड़ कर अन्यत्र जाने की इच्छा करूँगी? आओ, हम दोनों मृत्यु-देवी की सुखमयी गोद में सुख से वह निद्रा सोवें, जिस में कभी विघ्न ही न पड़े..........." मिस्टर ड्रमण्ड कहते गये "शोक केवल इतना ही है कि हम दोनों के भाग्य में सुख भोगना न लिखा था...और...ईश्वरेच्छा.........।" इतने में जहाज़ में बैण्ड बज उठा। मनुष्य एक स्वर से ईश्वर का स्मरण एवं मृत्यु का आवाहन करने लगे। देखते देखते टाइटानिक का आधा भाग जल मग्न हो गया और शेष भी बड़ी शीघ्रता से सागर गर्भ में समाने लगा। क्रमशः घुटनों तक पानी भर आया और बड़े शब्द के साथ जहाज़ रही सही आशाओं के साथ विलीन हो गया और ये दोनों प्राणी भी जगत् से चले गये।

धन्य मिसेज़-ड्रमण्ड! धन्य तुम्हारी पतिभक्ति!

—नवलबिहारी मिश्र



लक्ष्मी का वास

एक दिन भगवान विष्णु ने लक्ष्मी जी से पूछा, "हे प्रिये! स्त्री जाति में तुम्हारा वास कहाँ कहाँ है?"

इस पर लक्ष्मी जी ने यह उत्तर दिया:—

(१) "प्रभो! जो स्त्री माता पिता, सास ससुर आदि बड़े लोगों की पूजा करती है, और अपने पति पर प्रेम श्रद्धा रखती है, उस घर में मेरा वास रहता है।

(२) जो स्त्री सुन्दर सुन्दर वस्त्रालंकारों से अपने को सुन्दर न बना, सदाचार से सुशोभित होती है, हाथ को कंकण से न सजा दान से सजाती है, नई नई अभिलाषाओं के वश न होकर आत्मसंयम के वश होती है, सबों के साथ सुजनता का बर्ताव करती है और जो सदा मधुर भाषण करने वाली है, उसके घर मेरा वास रहता है।

(३) जो स्त्री सदा उद्योगी, संतोषी, प्रसन्नमुख, मिताहारी, और मिताचारी, रह कर अपने हृदय को तथा शरीर को पवित्र रखती है। उसके घर मेरा वास रहता है।

(४) जो स्त्री अपनी जाति की उन्नति की, बाल बच्चों की, पति की और अन्य कुटुम्बियों की सँभाल रखती है, बच्चों का प्रीति पूर्वक पालन पोषण करती है,

और उन्हें सुशिक्षा देती है। उसके घर मेरा वास रहता है।

(५) जो स्त्री सूर्योदय के प्रथम बिस्तर को त्याग, देह, केश, दाँत, वस्त्र तथा घर सर्व वस्तुओं को साफ सुथरी रखती है, तथा उन्हें सुव्यवस्थित रखती है और शीघ्रता से घर के सब कामों को मन लगा कर करने लग जाती है, पति को तथा बाल बच्चों को और सबों को आनन्द में रखती है। हे प्रभो! ऐसी जगह मेरा सदा वास रहा करता है।

(गुजराती से अनूदित)

—राय बाबूलाल वर्म्मा

शिशु शिक्षा

स्त्री शिक्षा की बड़ी आवश्यकता इस लिए है कि उनके द्वारा भावी संतान शिक्षा-रूपी भूषण से भूषित की जावे। जो घर पढ़ी लिखी माताओं से सुशोभित है, उसमें यह आवश्यक नहीं है कि छोटे बच्चे को 'अ' 'आ' 'इ' 'ई' सिखाने के लिए किसी स्कूल में भरती कराया जाय। इस काम को तो स्वयं उस बच्चे की माँ ही कर सकती है और यही ठीक भी है। इस प्रारम्भिक शिक्षा के सीखने में बच्चा स्कूल में अगर ६ महीना लगावेगा तो घर पर सुयोग्य माता द्वारा केवल ३ महीने लगेंगे अर्थात् स्कूल की अपेक्षा घर पर आधा समय लगेगा। बात यह है कि छोटे बच्चों का समय-विभाग ऐसा होना चाहिए कि जिसमें खेल और पढ़ाई का क्रम नियत हो जाय अर्थात् पढ़ाई के बाद खेल और खेल के बाद पढ़ाई। इस दशा में समय की अधिक आवश्यकता है और छोटे बच्चे प्रायः हर समय माता ही के पास रहते हैं। इसलिए स्कूल की अपेक्षा जहाँ शिक्षा सम्बन्धी समय केवल ३ या ४ घंटे का होता है, घर पर बच्चों की शिक्षा अधिक हो सकती है। इसके सिवा घर पर एक और सुबिधा है, वह यह कि स्कूल में एक ही पाठक को बहुत से विद्यार्थियों को शिक्षा देनी होती है और घर पर माता को केवल एक अपने ही बच्चे को शिक्षा देनी होती है। इसमें भी स्कूल और घर की पढ़ाई में बहुत अन्तर पड़ेगा। जब यह आवश्यकीय है कि प्रारम्भिक शिक्षा माताओं द्वारा ही होनी चाहिए, तब यह भी आवश्यक है कि वह शिक्षा के अतिरिक्त पाठन-प्रणाली के कुछ ऐसे नियमों को जान लें जिनसे कि वह अपने अभीष्ट कार्य में सुगमता से कृत-कार्य हो सकें।

सब से पहिले बच्चों को मातृ-भाषा के स्वर व्यंजन सिखाने की आवश्यकता होती है। इसी बुनियाद पर फिर विद्या का ऊंचा महल चुना जाता है। प्रारम्भ में स्वर व्यंजन का सिखाना भी बड़ा

कठिन काम है। इनके सिखाने में बहुत समय नष्ट होता है। इसलिए इनके सिखाने के लिए मैं कुछ नियम लिखता हूँ। आशा है कि इन नियमों का पालन करने से माताओं को कुछ सुविधा होगी। नियम यह हैं—

१—इस बात का बड़ा ध्यान रक्खा जाय कि बच्चा पढ़ने को पढ़ना न समझे, बल्कि खेल समझे।

२—चूँकि प्राकृतिक रूप से बच्चे के मुँह से दीर्घ स्वर का उच्चारण शीघ्र होता है और ह्रस्व स्वर का कठिनता से, जैसे कि बच्चा सब से पहिले 'बाबा' 'पापा' इत्यादि शब्दों का उच्चारण करता है, न कि 'अब' 'आम' इत्यादि का। इसलिए अक्षर सिखाने में यह ध्यान रखना चाहिए कि सब से पहिले दीर्घ उच्चारण वाले अक्षर सिखाये जावें, उनके पीछे ह्रस्व उच्चारण वाले सिखाये जावें।

३—जिन बातों से बच्चे को अधिक प्रेम हो, उन्हीं के सहारे से शिक्षा देनी चाहिए।

४—अक्षर उस क्रम से न पढ़ाने चाहिये, जिस क्रम से वर्णमाला के अक्षर लिखे गये हैं। क्रम ऐसा नियत करना चाहिए जिससे कि नवीन अक्षर के सिखाने में पिछले पढ़े हुए अक्षर से सम्बन्ध दिखा सकें। प्रायः देखा गया है कि छोटे बच्चों को 'इ' सिखाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। बात यह है कि बच्चा यह नहीं समझता कि इसमें कितने मोड़ होने चाहिए। अगर समझता भी है तो बड़ी कठिनता से और देर में। इसलिए चाहिए कि पहिले 'इ' सिखाने के बजाय पहिले 'ट' सिखावें, क्योंकि 'ट' सिखा कर फिर इसकी सहायता से 'ड' 'इ' 'ह' इत्यादि अक्षर सुगमता से सिखा सकते हैं। इसी प्रकार 'ग' 'म' 'भ' 'क्ष' इत्यादि अक्षरों में सम्बन्ध बताया जाय। इसी तरह और और अक्षरों में भी सम्बन्ध बताया जाय।

५—स्वाभाविक रूप से छोटे बच्चों को मिठाइयों तथा पकवानों से अधिक प्रेम होता है, इसलिए माताओं को चाहिए कि वह भी मिठाई की शकल तिकोनी चौकोनी बनाने के बजाय उनकी शकल अक्षरों के आकार की बनावें;—जैसे कि दिवाली पर मिठाई के हाथी, घोड़े, ऊँट इत्यादि बहुत से जानवर बनाये जाते हैं, इसी तरह मिठाई के 'अ' 'आ' 'इ' 'ई' इत्यादि के आकार बनाये जाँय और इनसे इस प्रकार पढ़ाया जाय—

१—आओ बच्चा 'अ' का खिलौना तो ले आओ।

२—अपनी पसन्द का खिलौना उठा कर हमें उसका नाम बताओ।

३—इतने में से 'ऊ' निकाल कर खा लो।

इसी तरह इन्हीं के सम्बन्ध में और

बहुत से प्रश्न हो सकते हैं। प्रश्न आवश्यकतानुसार किये जाँय।

६—इसी तरह मिट्टी इत्यादि के उन खिलौनों पर, जिनसे बच्चे को अधिक प्रेम हो अक्षरों के आकार खोद दिये जाँय और पढ़ाने का कार्य उपरोक्त लिखित रीति के अनुसार बच्चों को खेल खिला कर लिया जाय।

७—तसवीरदार ताश जिन पर बड़े आकार के अक्षर बने हों, वह मँगा कर उनसे काम लिया जाय।

८—मिट्टी इत्यादि से जिस समय बालक खेल रहा हो उस समय उससे कहा जाय, कि बच्चा इससे 'अ' तो बनाओ। इसी तरह गेहूँ, कौड़ी, दाल इत्यादि के दानों से अक्षरों के आकार बनवाये जाँय।

—चिरंजी लाल।

यूडोशिया



ईश्वर की महिमा अपरम्पार है। सभी देश और सभी जाति में उसने स्त्री-रत्न उत्पन्न किये हैं। भारत की ललनाओं के आदर्श चरित्र पढ़ के तो लोग लाभ उठाते ही हैं, परन्तु देशान्तरों में भी चरित्र की साधु, सिद्धान्त की पक्की, निज धर्म में अटल और कुचाल से घृणा करने वाली स्त्रियों के चरित्र दुर्लभ नहीं हैं। यूडोशिया नाम एक साध्वी स्त्री का संक्षिप्त इतिहास पाठिकाओं के मनोविनोद और शिक्षा ग्रहणार्थ यहाँ पर लिखा जाता है।

एशिया महाद्वीप के पश्चिम की ओर सीरिया नामक प्रदेश में दमिश्क वा डिमास्कस नाम का एक अत्यन्त प्राचीन नगर है, जो फल फूल की वाटिकाओं, सुन्दर गृहों तथा अट्टालिकाओं और व्यापार आदि के कारण बहुत दिनों से संसार में प्रसिद्ध रहता आया है। यह इतिहास उस समय का है, जब कि उत्तरी भारतवर्ष में वैसवंशावतंस महाराज हर्षवर्द्धन कन्नौज को अपनी राजधानी बना के एकछत्र राज्य करते और प्रजा की शान्ति और सुख को बढ़ा रहे थे। परन्तु पश्चिम में अरब देश में एक नवीन मत उत्पन्न हो चुका था और उसके मानने वाले नवीन चन्द्रकलाङ्कित हरे झण्डे की छाया में अपने धर्म प्रचार के बहाने सर्वत्र लूट और विजय की धूम मचा रहे थे। पैगम्बर मुहम्मद इस असार संसार का परित्याग कर चुके थे। उनके जीवन काल ही में अरब निवासियों में से अनेकों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। मूर्ति पूजा उठ गयी थी। परस्पर का द्वेष जाता रहा था। एक ईश्वर, मुहम्मद पैगम्बर साहिब और कुरान पर विश्वास रखने वाले एक दूसरे को भाई की नाईं समझ एकता के

सूत्र में बँध रहे थे। मुसल्मानों के चित्त में आवेश आया और अपने देश में निर्वाह योग्य धन धान्यादि उन्हें न प्राप्त हुए तो धर्म प्रचार की बात उन्हें सूझी। अतएव धर्म के मुखिया लोगों का सिद्धान्त हुआ कि बाहर के देशों में शस्त्रास्त्र से सज्जित हो के चलना, औरों को अपने मत में लाके भाई बनाना और यदि वे मुसलमान धर्म में न आना चाहें, तो उनको मार डालना और उनका धन भी लूट लेना उचित है। इनके सिद्धान्त में विधर्मियों की धन सम्पत्ति लूटना, मातृ-दुग्धपान की नाईं सर्वथा उचित और आवश्यक था।

परन्तु रुपये की जूती बड़ी प्रबल होती है। विधर्मियों को दृढ़ता पूर्वक कोई धर्म स्वीकार कराना सहज नहीं है और चूहों वा टिड्डियों तक का जब मार डालना आपाततः कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव है, तो मनुष्य जाति पर अपना प्रभाव दिखलाना कैसे सम्भव है। अतएव एक और सिद्धान्त भी निकला कि जो लोग अपना धर्म न छोड़ना चाहें उनसे कर लेकर उनका छुटकारा किया जावे। इस प्रकार नये धर्म प्रचार की वासना से उत्तेजित अरब के मुसल्मान लोग पहिले उत्तर देश की ओर बढ़े। नगर पर नगर और दुर्ग पर दुर्ग विजय करते उन्हें देर न लगी। उन देशों में विशेषतः ईसाइयों और यहूदियों का निवास था। उन लोगों के पास धन बहुत था, पर मुसल्मानों की नाईं वे उत्तेजित नहीं थे। साधारणतः सर्वत्र मुसल्मानों की बन पड़ी, क्योंकि इनके पास उस समय छल, कपट, प्रतिज्ञाभङ्ग, निष्ठुरता आदि की अल्पता नहीं थी।

पैगम्बर साहिब को मरे दो वर्ष भी नहीं बीतने पाये थे कि मुसल्मानों ने दमिश्क नगर का घेरा किया। दमिश्क नगर दृढ़ छारदीवाली से घिरा हुआ था और वहाँ के निवासी ईसाई भी सहज में अपना नगर पराये के अधीन कराने वाले न थे, परन्तु उन विचारों के पास मुसल्मानों की समुद्र सरीखी उमड़ी सेना का सामना करने वाली सेना न थी। अतएव ईसाइयों ने नगर के फाटक बन्द कर लिये और जब तक बाहर से कुछ और सहायता न मिल जावे, शत्रु से लड़ने से विमुख रहे। ईसाइयों के बीच टामस नाम एक अद्भुत शूरवीर योद्धा था। उसने साहस करके कुछ सैन्य समेत रणक्षेत्र में मुसल्मानों का सामना किया, परन्तु अल्प सैनिकों के कारण उसे पीछे ही हटना पड़ा। मुसल्मानों ने नगर का घेरा कर लिया और रात दिन पहरा देने लगे कि कोई बाहर न जाने पावे।

यूडोशिया इसी नगर के निवासी एक सम्भ्रान्त व्यक्ति की कन्या थी। उसका विवाह जोनस नामी एक धनी युवा पुरुष के साथ निश्चित हो चुका था। परन्तु माता पिता की अनिच्छा-वश यह विवाह कृत्य सम्पन्न न होने पाया। इसी बीच में

मुसल्मानोँ ने दमिश्क नगर को घेर लिया। अनवसर मेँ यूडोशिया और जोनस के चित्त मे यह सङ्कल्प हुआ कि छिप के इस नगर से चल देवेँ और देशान्तर मेँ जाके स्वच्छन्द सुख विहार करेँ।

निदान ये दोनोँ युवा और युवती एक रात्रि को नगर के फाटक के ईसाई पहरुओँ को घूँस देकर पुर से बाहर निकले। जोनस आगे था और उसकी प्राणप्यारी यूडोशिया पुरुष वेश मेँ उसके पीछे पीछे चली। फाटक से बाहर निकलते ही जोनस के घोड़े की हिनहिनाहट से पास के मुसल्मानोँ की निद्रा भङ्ग हुई। उन्होँने नगर के फाटक से युवा घुड़सवार को निकलते देखकर उसे पकड़ लिया। टुक पीछे दूर से मृदुवाणी मेँ जोनस का नाम ले के पुकारते एक और घुड़सवार व्यक्ति को उन मुसल्मानोँ ने देख लिया। मुसल्मानोँ ने जोनस से कहा कि तुम इस व्यक्ति को भी अपने पास बुला लो। परन्तु जोनस ने यूनानी भाषा मेँ यूडोशिया से कहा कि "पक्षी तो फन्दे मेँ पड़ गया।" यूडोशिया तुरन्त उसका भाव समझ गयी। लौट कर फाटक के भीतर घुस गयी और जब लोँ मुसल्मान उसको पकड़ेँ, तब लोँ नगर का फाटक फिर बन्द हो गया। मुसल्मान निराश हो कर लौट आये और जोनस ही पर अपना क्रोध उतारना चाहते थे कि उन के चित्त मेँ आयी कि मुसल्मान सेनापति ख़लीद को इस व्यक्ति के बन्दी होने का समाचार देवेँ। ख़लीद ने जोनस को अपने पास बुला के सब समाचार पूँछा। जोनस ने सब बातेँ सत्य सत्य कह दीँ। ख़लीद ने कहा कि यदि तुम मुसल्मान हो जाओ, तो तुम्हारे प्राण छोड़ दिये जावेँ और जब नगर पर हमारा अधिकार होगा तो तुम्हेँ यूडोशिया सौँप दी जावेगी, अन्यथा अभी मुसल्मानोँ की कराल करवाल तुम्हारे कण्ठ पर गिर के तुम्हेँ यम सदन का अतिथि बनावेगी। युवा जोनस के चित्त मेँ प्राणप्यारी से पुनर्मिलन की आशा का सञ्चार हुआ। अपनी जीवनेच्छा से, न कि विश्वास से उसने तुरन्त मुसल्मान धर्म स्वीकार कर लिया और ख़लीद को प्रतिज्ञापालक समझ उसकी सेना मेँ भर्ती हो गया।

दमिश्क का विजय करना मुसल्मानोँ के लिए सहज नहीँ था। अन्त मेँ यह निर्णय हुआ कि नगर के जो लोग मुसल्मानोँ को कर देना स्वीकार न करेँ, वे नगर छोड़ के चले जावेँ और जो ईसाई धर्म न परित्यागन करके दमिश्क मेँ रहना चाहेँ, वे मुसल्मानोँ को कर देव। यह सुन कर दमिश्क निवासियोँ ने नगर के फाटक खोल दिये और मुसल्मानोँ की सेना भीतर घुस गयी। ख़लीद के सैनिकोँ ने नगर के भीतर घुस कर कुछ लोगोँ का घात भी किया, पर अन्त मेँ शान्ति-स्थापित हो गयी। जोनस को विदित हुआ कि उसकी प्राणप्यारी ने अच्छा प्रेम-प्रण निबाहा। यूडोशिया ने समझा कि जोनस

मुसलमानों के हाथ में पड़ कर मारा गया होगा। अतएव उसने गृहस्थी त्याग दी और बैरागिन होके मठ में बसने लगी। जोनस शीघ्रता से बैरागियों के मठ में अपनी प्राणप्यारी के समीप उपस्थित हुआ और उसके साथ विवाह की चर्चा चलायी। यूडोशिया ने देखा कि जोनस प्राण बचाने के लिए मुसलमान हो गया है तब उसने जोनस को स्वार्थी और कापुरुष समझा। बैरागियों का मठ छोड़ ऐसे अयोग्य व्यक्ति से विवाह करना उसने अनुचित समझा और जोनस को धिक्कार देकर उसने अपने पास से उसको खसका दिया। जोनस मुसलमान सेनापति ख़लीद के पास इस आशा से उपस्थित हुआ कि उसे मुसलमान बनाते समय ख़लीद ने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूरी कर देवे, परन्तु ख़लीद को तो मुसलमानों की संख्या बढ़ाना स्वीकृत था, प्रतिज्ञा पूर्ण करने की ओर उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

मुसलमानों की अधीनता स्वीकार न करके दमिश्क छोड़ के निकल जाने वालों में वहाँ के अधिपति टामस और हर्बिस–टामस की सुन्दरी युवती स्त्री तथा यूडोशिया आदिक भी थे। ख़लीद ने इस समय तो उन्हें नगर से निकल जाने दिया, परन्तु पीछा करके उन्हें पकड़ ले,जाने और मार डालने का भी स्थिर सङ्कल्प कर लिया। वे मुसलमान सर्दार जो ख़लीद का अभिप्राय नहीं जानते थे, टामस आदि को इस प्रकार बच के निकल जाते देख दाँत पीसने लगे थे, क्योंकि टामस आदि अपने साथ बहुमूल्य रत्न और वस्त्र इत्यादि भी लिए जाते थे और मुसलमानों ने उन्हें न छोड़ने की प्रतिज्ञा कर दी थी। जोनस को जब ख़लीद का मन्द अभिप्राय विदित हुआ तो भी उसने यूडोशिया को चले जाने से नहीं रोका, वरन् ख़लीद को उनका पीछा करके पकड़ लेने और लूटने में भी सहाय होना स्वीकार कर लिया, क्योंकि अब फिर ख़लीद ने उसे यूडोशिया के हस्तगत कराने की प्रतिज्ञा की थी। हा जोनस! युवती के प्रेम में उन्मत्त होके मुसलमानों के विश्वास पर तुमने अपने भाई बन्धुओं का सत्यानाश कराया!

जोनस के बतलाये हुए मार्ग पर चल कर शीघ्र ही तीसरे वा चौथे दिन ख़लीद ने पीछा करके टामस तथा हर्बिस को जा पकड़ा। रात्रि में घोर वर्षा हुई थी। तालाब के किनारे पहुँच कर टामस और हर्बिस विश्राम कर रहे थे। उनको इस बात का ज्ञान न था, कि मुसलमान लोग प्रतिज्ञा भङ्ग करके हमारे पीछे चले आते हैं और हमारा ही भाई (जो अब मुसलमान हो गया है) उनका पथ प्रदर्शक है। ईसाई लोग विश्राम भी न कर पाये थे, कि सहसा मुसलमान सैनिक उन पर टूट पड़े। टामस और हर्बिस वीरता पूर्वक लड़े, परन्तु वीर गति को प्राप्त हुए। टामस की स्त्री ने भी वीरता दिखलायी।

एक मुसलमान सैनिक पर कड़ा प्रहार किया, परन्तु दैवात् आघात घोड़े पर बैठा, घोड़ा मर गया। सैनिक ने स्त्री को कठिनता से बन्दी कर पाया।

यूडोशिया और जोनस से फिर भेंट हुई। अब की बार अपने भाई बन्धु के बध कराने के कारण यूडोशिया जोनस से अधिक विरक्त हुई और उसे फटकार सुनायी, पर जोनस ने उस अबला को हठात् बन्दी करके कहा, कि "तुम तो मेरे वश में हो, कहीं न जाने पाओगी।" थोड़े क्षण के लिए यूडोशिया पराधीनता दिखला कर चुपचाप हो रही और जोनस ने समझा कि अन्ततोगत्वा प्रियतमा हमारे हाथ लगी। अतएव वह मारे प्रसन्नता के फूल उठा और अपने को धन्यभाग गिनने लगा। यूडोशिया ने अवसर पाते ही एक कटारी उठा ली, उसे अपने पेट में मार लिया और आत्मघात कर डाला। जोनस और उसके मुसल्मान साथी मुँह ताकते रह गये। जोनस बहुत रोया और पछताया। मुसल्मानों ने उसे भाँति २ के धीरज दिये और टामस की सुन्दरी स्त्री उसे अर्पण करने की इच्छा भी प्रकाश की, पर सेनापति ख़लीद ने टामस की स्त्री को एक माननीय पादरी साहिब के सङ्ग अपने पिता के पास भेज दिया। जोनस और कुछ दिनों तक मुसल्मानों के साथ रह के यारमूक की लड़ाई म मारा गया।

यूडोशिया का प्रेमपण निबाहना, स्वार्थ त्याग, अयोग्य जन का अस्वीकार और उसकी धर्मिष्ठता भारत ललनाओं की नाईं सराहनीय है।

—हरिमंगल मिश्र।

भारत की जय

दयामय! भारत की जय हो,
न हम को कोई भी भय हो॥
१—अलसता पर तन की जय हो,
चपलता पर मन की जय हो।
कृपणता पर धन की जय हो,
मरण पर जीवन की जय हो।
पवित्रात्मा का प्रत्यय हो,
दयामय! भारत की जय हो॥
२—हमारी असि न रुधिर-रत हो,
न कोई कभी हताहत हो।
शक्ति से शक्ति न अवनत हो,
भक्ति-वश जगत एक मत हो।
वैरियों का बैर-क्षय हो,
दयामय! भारत की जय हो।
३—भीति पर प्रीति विजय पावे;
रीति पर नीति विजय पावे।
द्रोह का काम न रह जावे;
मोह का नाम न रह जावे।
तुम्हारा निश्चल निश्चय हो,
दयामय! भारत की जय हो॥
४—कर्म्म को कभी न हम त्यागें,
धर्म्म में अनुरागें-पागें।
भुक्ति को छोड़ न हम भागें,
मुक्ति के लिए सदा जागें।

हृदय निर्म्मल-निस्संशय हो,
दयामय ! भारत की जय हो॥

५—देह तक के हम दानी हों,
मनुजता के अभिमानी हों।
सभी तत्त्वों के ज्ञानी हों,
तुम्हारे सच्चे ध्यानी हों।
त्याग के हित ही सञ्चय हो,
दयामय ! भारत की जय हो॥

६—रहे कटि कसी पुण्य-पथ में,
बढ़े उद्योग मनोरथ में।
न हठ हो कभी यथातथ में,
शान्ति इति में हो, सुख अथ में।
सर्व संसार सदाशय हो,
दयामय ! भारत की जय हो।

७—वृत्तियाँ बनी रहें बस में,
न विष मिलने पावे रस में।
बहे शुचि शोणित नस नस में,
कमी हो कभी न साहस में।
आप अपना ही आश्रय हो,
दयामय ! भारत की जय हो॥

८—सफलता मिले परिश्रम में,
न बाधा हो कार्य्य-क्रम में।
भरा उत्साह रहे हम में,
लगे हम रहें सदुद्यम में।
मही पर ही स्वर्गोदय हो,
दयामय ! भारत की जय हो॥

—मैथिलीशरण गुप्त
(प्रताप से)

स्त्रियों का कर्तव्य

इस यूरोपीय घोर संग्राम के कारण तीन बड़े ही गूढ़ प्रश्न पश्चिमीय देशवासियों में उठ आये हैं। वे प्रश्न इस प्रकार हैं :—

१—क्या यह सम्भव है कि यदि स्त्री अविवाहिता, हृष्ट पुष्टा और काम-काजी हो, तो वह युद्धकर्त्री हो सकती है ?

२—क्या यह उचित होगा कि समय पड़ने पर स्त्रियाँ लड़ कर देश-सेवा कर सकें ?

३—क्या यह बुरा जान पड़ेगा कि स्त्रियाँ कवायद करना और निशाना मारना सीखें, जिससे कि वे अवसर आने पर वीरता से लड़ कर अपने देश को शत्रु द्वारा पद-दलित होने से बचा सकें ?

यह प्रश्न ऐसे नहीं हैं कि जिनके ऊपर कोई बिना सोचे समझे अपनी सम्मति प्रगट कर सके। हमारे हिन्दुस्थानी भाई, जो कि अभी तक पर्दा आदि बुरी संस्थाओं के उड़ाने में ही हिचकिचा रहे हैं वे तो इन प्रश्नों को सुनते ही अपने कानों पर हाथ रक्खेंगे और राम राम उच्चारण करके इस पाप का प्रायश्चित्त करेंगे फिर इन प्रश्नों पर अपनी सम्मति प्रगट करना तो दूसरी ही बात रही। पर हमें विश्वास है कि अब समय

बहुत बदल गया है और इन महापुरुषों की संख्या भी बहुत कम हो गयी है। इसी विश्वास पर हमने अपनी लेखनी उठाने का आज साहस किया है। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि इस लेख में केवल विलायत और पश्चिमीय देशों ही के सम्बन्ध में विचार करना है। अतः यह उचित है कि विचारक इस समय की पश्चिमीय दशा को ध्यान में रखते हुए इस प्रश्न को सोचे और फिर अपनी सम्मति ठीक ठीक निश्चित करें। इस समय इङ्गलैंड आदि देशों की क्या दशा है और वहाँ समय कैसा आ गया है ?

एक समय था जबकि पश्चिमीय स्त्रियाँ अबला के नाम से पुकारी जाती थीं और सत्य ही थीं भी अबला ही। परन्तु समय में अब बड़ा अन्तर हो गया है। पुरुष स्त्री और स्त्रियाँ पुरुष हो गयीं हैं। "अबला" का 'अ', 'स' में बदल गया है और अबला शब्द (Weak sex) तो केवल मिथ्या ही सिद्ध होता है। पिछले २५ वर्षों से बराबर अन्तर होता जा रहा है। पुरुष छोटे और निर्बल किन्तु स्त्रियाँ लम्बी चौड़ी, हृष्ट पुष्ट और अधिक फुर्तीली होती जा रही हैं। देखिये मिस एफ० ऑसबालडिस्टन सब खेलों के जाननेवाली कहती हैं, "यदि अधिक लोगों की जाँच की जाय तो वह पुरानी कहावत कि "स्त्रियाँ अबला हैं" अब कुछ मिथ्या सी जान पड़ती है। नदी किनारे जाकर देखिये तो नावों पर कितने ही छोटे छोटे सीने के आदमी उन में बैठे ही दिखलाई पड़ेंगे। इन नावों को पुरुषों से दुगनी लम्बी चौड़ी, बल और शक्ति में उनसे कहीं बढ़ी चढ़ी, स्त्रियाँ खेती हुई इधर से उधर घूमती हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि उनको कवायद और शस्त्र-विद्या सिखायी जाय तो वे रणक्षेत्र में भली प्रकार काम आ सकती हैं।"

लिवरपूल नगर में स्त्रियों का एक बड़ा भारी बेडफ़ार्ड नाम का कालेज है। इस कालेज में एक अति आश्चर्य्यजनक और आनन्ददायक प्रदर्शिनी हुई थी जिसमें कि केवल स्त्रियों के शारीरिक बल व शहनशक्ति का नमूना ही दिखाया गया था। जिस जिसने वहाँ देख कर अपने नेत्र सफल किये वह चकित ही रह गये। वे स्त्रियाँ थीं कि पहलवान। सहसा प्रत्येक के मुँह से यही निकलता था कि ऐसी स्त्रियाँ क्यों अपने को अबला कह कर छिपाती हैं। यदि इन लोगों से सेना का काम लिया जाय तो कैसा हो ? कहने की आवश्यकता नहीं है कि बहुत सा स्त्रियों ने अनेक रणक्षेत्रों में अपने वीरत्व का परिचय इतिहासों द्वारा दिया है।

सबसे बड़ी कठिनता तो इस समय इङ्गलैंड में यह है कि पुरुषों से स्त्रियाँ

दस लाख अधिक हैँ। यही हाल फ्राँस आदि देशोँ का भी है। अब प्रश्न यह है कि वहाँ किया क्या जाय ? स्पष्टतया तथा प्रत्येक को एक पति नहीँ मिल सकता, न वह कदापि इस बात पर सहमत होँगे कि हमारे हिन्दुस्थान की नाईँ एक एक पुरुष की दस दस, बीस बीस, अर्धाङ्गिनियाँ होँ। इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता है। जबकि औरतेँ शरीर मेँ, बल मेँ, और सहनशक्ति मेँ वहाँ के मर्दोँ से कहीँ बढ़ चढ़ कर हैँ तो यह सर्वथा उचित है और जो बहुत कुछ पूरा भी होता जाता है कि हर एक काम काज यहाँ तक कि सेना का काम भी स्त्रियोँ के लिए खोल देँ। हमेँ पूरी आशा है कि ऐसा हो जाने पर स्त्री जाति उतनी ही अच्छी तरह पर काम करेँगी जैसा कि पुरुष लोग कर रहे हैँ। कैसा अच्छा होगा यदि उनको भी अपने देश पर प्राण न्योछावर कर देने का अवसर मिले। ऐसा करने से 'एक पंथ' दो काज की कहावत चरितार्थ हो जायगी। एक ओर तो देश की भलाई होगी और शत्रुओँ की बाढ़ रुक जायगी और दूसरी ओर "अपनी कन्याओँ को क्या करेँ" यह प्रश्न हल हो जायगा। लड़ाई मेँ उनकी बहुत कुछ संख्या न्यून हो जायगी और "एक एक के गले सात सात" का झगड़ा छूटेगा।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात एक और भी है। बहुतोँ की सम्मति है कि धायोँ का काम अब स्त्रियोँ की अपेक्षा पुरुष बहुत अच्छा करते हैँ। वही पूर्वोक्त मिस औसबिलडिस्टन कहती हैँ:—

"स्त्रियोँ को नौकर रखने के लिये इससे भी बड़ा प्रमाण, जब कि यह साबित हो गया है कि पुरुष धायोँ का काम बड़ी सावधानी और अच्छी तरह करते हैँ, यह है कि............"

अब तो स्त्रियोँ को अवश्य ही सेना मेँ नौकरी करना चाहिये चाहे पुरुष करेँ वा न करेँ।

यदि हम ऐसी वीर बालाओँ के दृष्टान्त चाहते हैँ तो हमको खोजन बहुत दूर नहीँ जाना पड़ेगा। युरोप के थोड़े पिछले इतिहास मेँ दो नाम सब से अग्रसर हैँ, पहिला हन्नाह स्नेल (Hennah snell) जिसने महाराजा जार्ज की सेना मेँ बहुत वीरता से काम किया और द्वितीय ग्रीक महिला हेलेना कौन्स्टैन्टिनिडिस (Helena Constantides) है। हेलेना के परिवार को तुर्क लोगोँ ने मटियामेट कर दिया था जिस पर वह एथेन्स लौटी। उसके लौटते ही स्वयं सेवकगण उसके चारोँ ओर इकट्ठा हो गये और हेलेना २५०० आदमियोँ को साथ ले ग्रीस देश की स्वतंत्रता के लिए बड़ी वीरता से युद्ध के मैदान मेँ लड़ी और इस प्रकार सर्वदा के लिए अपना नाम ग्रीस

के इतिहास मे चमका गई। उनके अतिरिक्त एमाज़न्स, बोडीशिया और जोन आव आर्क आदि स्त्रीरत्न, फ्रांस, पोलैंड और अमेरिका के राज्य-परिवर्त्तन मे पुरुषों के साथ लड़ीं।

आजकल के महासंग्राम मे भी रूस की ओर से कितनी ही स्त्रियाँ रणक्षेत्र में जूझ रही हैं। किरा बैस्किरोफ़ (Kira Bashkiroff) नामक एक अट्ठारह वर्ष की कन्या ने अपना नाम सेना मे निकोलस पोपोफ़ (Nicholas Ponoff) लिखवाया और एक साधारण सिपाही का काम करते हुए इसने ऐसे ऐसे वीरता के काम किये कि उसको क्रास आफ़ सेंट जार्ज नाम का एक पदक दिया गया। दूसरी युवती कोकोवत्सिवा (Kokovtseva) कज़्ज़ाक फ़ौज़ की एक सेनापति है। वह शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करने में तीन बार घायल हुई और वीरता के लिए इसे भी "क्रास आफ़ सेंट जार्ज" का पदक मिला।

तीसरी रूस की सबला का हाल इस प्रकार है :—

"उस स्त्री का पति लड़ाई पर जाने का नाम सुनते ही छिप गया। उसकी वीर स्त्री से पति की कायरता न देखी गयी। इस भय से कि कहीं मेरे पति का नाम न रक्खा जाय और उसकी कायरता सब पर प्रगट न हो जाय वह अपने पति का सनिक रूप धारण करके रणक्षेत्र में जा पहुँची। युद्ध में वह बड़ी वीरता से लड़ी और अन्त में घायल हो कर मृत्यु को प्राप्त हुई। मरते समय उसका भेद खुल गया।" ऐसे ही कितने दृष्टान्त दिये जा सकते हैं, जिससे कि यह सिद्ध होता है कि औरतें, उन्हें यदि लड़ाई का काम सिखाया जावे तो, उतना ही अच्छी तरह काम आ सकती हैं, जितने कि पुरुष लोग आते हैं।

आज कल की लड़ाई का हाल यदि देखा जाय तो पहिले समय से बड़ा अन्तर हो गया है। अब बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ जीतने के लिए पशु सरीखे बल की आवश्यकता नहीं है, जितनी कि नये नये आविष्कारों और यंत्रों की। एक मुट्ठी भर आदमी दूर से एक बड़ी भारी सेना का सामना भली प्रकार कर सकते हैं। विज्ञान के बल से स्त्रियाँ अब पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं। नगर के एक कोने में बैठी हुई एक अबला बटन दबाती है और शहर भर में अति प्रभाव शाली बिजली अपना काम करने लगती है। यह क्या बात है? केवल कलों की करामात। सच पूछिए तो विज्ञान के कारण अब सिपाही होने के लिए तलवार आदि शस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं रही।

अब है अपने देश को शत्रु दल के द्वारा पददलित होने से बचाने की आवश्यकता। इस बीसवीं शताब्दी में कोई विरला ही पुरुष ऐसा निकलेगा कि जो शत्रुओं से

आक्रमण किये जाने पर अपने देश की ओर से हाथ न उठावे। यदि कोई ऐसा निकल भी आवे, तो वह अपनी जननी जन्म भूमि का सच्चा पुत्र नहीं, किन्तु एक विश्वासघाती तथा नीचातिनीच है। आजकल तो वह समय आ गया है, जब कि निर्बल होना मार खाने का चिह्न है। यदि कोई जाति चाहती है कि वह निश्चिन्त रह कर जीवित रहे, तो उसके लिए यह सर्वथा उचित और आवश्यक है कि वह संग्राम के लिए सदा तत्पर रहे। और इस प्रकार तत्पर रहने का क्या अर्थ है? केवल यही कि बच्चे से लेकर बूढ़े तक सब कवायद तथा शस्त्रज्ञान द्वारा चैतन्य रहें। अब प्रश्न यह है कि इङ्गलैंड और फ्रांस आदि देशों में जहाँ कि इस यूरोपियन युद्ध के पहिले ही स्त्रियाँ केवल गिनती ही में अधिक नहीं थीं किन्तु शारीरिक बल और सहनशक्ति आदि में भी उनका नम्बर बढ़ा चढ़ा था, तो क्या कारण है कि जब पुरुष लोग मर, खप कर कम हो जाँय या लड़ाई में घायल होकर गिर पड़ें, तो उनकी जगहें और लें न लें? हम तो समझते हैं कि स्त्रियों को अपने देश पर प्राण न्योछावर कर देने का उतना ही अधिकार है, जितना कि पुरुषों को। उनके लिए पुरुषों की जगहों पर लड़ते हुए गिर कर मर जाना कहीं अच्छा है, परन्तु शत्रुओं से जीते जाने पर उनका अत्याचार सहन करना भला नहीं।

यदि यह मान लिया जाय—जैसा कि हम जानते हैं कि मानना पड़ेगा—कि लड़ाई होना सर्वदा के लिए निश्चित है, तो उसके लिए यह अत्यावश्यक है कि हर एक चाहे वह पुरुष हो या स्त्री—लड़का हो या बूढ़ा—प्रत्येक आदमी जो लड़ सकता है, लड़ने मरने पर तय्यार रहे। एक जाति को यह केवल उचित ही नहीं किन्तु परमावश्यक है कि वह एक एक को समर की सामग्री से सुसज्जित करे। यदि आवश्यकता पड़ेगी तो स्त्रियाँ भी अपना ऋण बड़ी वीरता से चुकावेंगी। अपनी स्वयं रक्षा करना तो केवल साधारण बात ठहरी।

फ्रांस की स्त्रियों ने तो अपनी वीरता का नमूना हमें १८७० ई० की लड़ाई में दे ही दिया है। किस किस वीरता से वे निज देश के लिए लड़ीं और लड़ते लड़ते अपनी जानें गँवाईं। क्या ही भला होता, यदि हमारी यहाँ की राजपूत बालाएं यवनों के द्वारा अपने पति और पुत्रों के मर जाने पर चिता पर अपनी देह को रख कर स्वाहा कर दिया। अहिल्या बाई व ताराबाई की नाईं हर समय पर यवनों का सामना करके देश ऋण को उतारतीं और चिताओं पर जान देने के बदले रणक्षेत्र में वीरता के साथ लड़ते हुए गिर कर मर जातीं। यदि उसी समय यवनों के अत्याचार सहने के के बदले सारी हिन्दू स्त्रियाँ लड़ने और

मरने पर उद्यत हो जातीं, तो हमें पूरा विश्वास है कि आज भारत का इतिहास कुछ और का और ही हो गया होता।

हर प्रकार की कसरत करने का उचित होना तो मानी हुई ही बात है। लार्ड राबर्ट्स, सर जान फ्रेंच आदि बड़े बड़े महापुरुषों की भी ऐसी ही सम्मति है। औरतों में देखिए, वाइकौन्टेस हारबर्टसन (Viscountess Harbertson) कहती हैं:—

"कन्याओं के कवायद करने और निशाना मारना सीखने में कोई भी बुरी बात नहीं जान पड़ती।"

एक मिस वायोलेट बेनब्रग नाम्नी अन्य महिला कहती हैं:—

"मेरी समझ में लड़कियों के लिए वैसे ही कसरत वगैरः करना अच्छा है, जैसे कि लड़कों के लिए। उनके लिए इसमें कोई हरज या बुराई नहीं है कि वे कवायद करें और बन्दूक चलाना सीखें।"

ऐसी कसरत करने से दो मुख्य लाभ हैं। पहिला यह कि उनकी सन्तान, यदि स्त्रियाँ विवाह करें, तो बहुत ही हृष्टपुष्ट होंगी जिससे जाति की जाति सुधर जाने की आशा है। दृष्टान्त के लिए ग्रीस के इतिहास में स्पार्टा और स्पार्टा की स्त्रियों का हाल पढ़िये और जाँच करके देखिये कि इसी के प्रभाव से वहाँ की क्या अवस्था थी। दूसरी बात यह कि वे अवसर आने पर केवल अपनी ही रक्षा नहीं कर सकतीं, किन्तु देश को भी दासत्व से बचा सकती हैं। इसका प्रमाण जोन आव आर्क, नाम की एक किसान-बालिका का हाल पढ़ने से जाना जा सकता है। इसने केवल अपने ही बल से फ्रांस देश को दासत्व से बचाया था। आस्ट्रिया की रानी मेरिया टेरिज़ा का ऐसा ही दूसरा दृष्टान्त है।

मेरा इतना साहस नहीं, कि अब मैं उन्हीं बातों को हिन्दुस्तान के निवासियों के लिए आवश्यक बताऊँ। हमारे बूढ़े भारतवर्ष का तो ढङ्ग ही निराला है। स्त्रियों की कौन कहे, यहाँ तो पुरुषों ही में से एक हज़ार में नौ सौ निन्नानवे लोग ऐसे निकलगे, जिन्होंने अपनी आयु में बन्दूक और तलवार के कभी दर्शन भी नहीं किये।

—हृदयनाथ सप्रू।

(मर्य्यादा)

सूर्य्योदय

पूर्व दिशा मुसकरा रही है
प्रसन्नता में भूली।
प्रिक-प्रवास के ताप भूल के
सरोजनी भी फूली।
आकुल मधुप मधुर मधु फूलों
का लेने को धावे।

मिलन-गीत गा गा कर उन पर
झूम झूम मँड़रावे ॥ १ ॥
चोरोँ से तारे छिप भागे
कुमोदिनी कुम्हलाई ।
वियोगिनी चकई प्रसन्न हो
चकवा के ढिग आई ।
पेड़ोँ पर बैठे पंछी भी
कलरव लगे मचाने ।
या योँ कहिये, रवि-स्वागत के
लगे गीत वे गाने ॥ २ ॥
मंद मंद शीतल सौरभमय
पवन बही चितहारी ।
किरनोँ से देदीप्यमान डोलीँ
लतिकाएँ प्यारी ।
आलोकित तरुवर शोभित हैँ
अहा! किस तरह प्यारे ।
मानोँ योगी तप करते हैँ
खड़े पीत पट धारे ॥ ३ ॥
सुन्दर कलियाँ भी प्रफुल्ल हो
हँसतीँ औ' मुसकातीँ ।
भ्रमरोँ को निहार कर कुछ कुछ
डरतीँ और लजातीँ ।
बालसूर्य्य ! सब सुजन सुखित हैँ
मूरति देख तुम्हारी ।
चिरजीवो इस मृदुल रूप मेँ,
बने रहो मुदकारी ॥ ४ ॥

—गिरिजादत्त शुक्ल

प्रेम-परीक्षा

(गताङ्क से आगे)

छठवाँ प्रकरण

पाठिकाओ! उस दिन का दृश्य आज तक मेरी आँखोँ मेँ फिरता है। जब मैँ उसका ध्यान करता हूँ तो मेरा कलेजा अब भी मुँह को आने लगता है। राम राम! शान्त स्वभाव सरल हृदयी धार्मिक जीवन रखने वाले लाला देवीसहाय कैसे दुखी दीखते थे। हाँ! मैँ भूल गया, मैँने उस दिन की कथा अभी आपको नहीँ सुनाई। मैँने आप से निवेदन किया था कि मैँ आग मेँ कूद पड़ा। उस समय केवल एक ही ध्यान मेरे मन मेँ था और वह अपनी प्राणेश्वरी का था। 'मेरे पश्चात् उसे कौन प्रेम से रक्खेगा, उसके प्रेम के आँसुओँ को कौन पोँछेगा, प्रेम को छाती से कौन लगावेगा'—यह मैँ सोचता जाता और आगे बढ़ता जाता। दहकती हुई आग काले नाग के समान मेरी ओर फुँकारे मार रही थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मेरा सारा शरीर दहकते हुए अंगारोँ से लगा हुआ है और मेरे सारे शरीर का लोहू उबल उबल कर मेरे सिर को चढ़ा जाता है, किन्तु मैँ बड़े वेग से आगे बढ़ता गया। मुझे डर था कि कहीँ मैँ टक्कर न खा जाऊँ या कहीँ कोई जलती हुई छत मेरे ऊपर न गिर पड़े। अग्नि मेँ मुझे मुश्किल से आधा

मिनट लगा होगा। इस बीच में मैंने अपनी आँखों को बन्द रक्खा और साँस को रोक रक्खा। इसके उपरान्त मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं अग्नि से निकल गया हूँ। मैंने आँख खोली, चारों ओर धुआँ धार था। साँस लेते ही कड़वा धुआँ मेरे फेफड़ों में गया, सिर में एक तीक्ष्ण पीड़ा उत्पन्न हो गयी, नाक और आँखों से जल की धारा बहने लगी, मुझे चक्कर आने लगा और सम्भव था कि म गिर पड़ता, किन्तु मैंने अपने आप का सँभाला और पैर आगे को बढ़ाया। मैं दहलीज़ से निकल गया और मकान के मरदाने भाग के चौक में पहुँच गया। यहाँ मुझे हवा कुछ शुद्ध मिली। मैंने दो तीन साँस लिये और एक छोटे रास्ते से जो अन्तःपुर में ले जाता था चल दिया। बैठक की बड़ी घड़ी के टन टन का शब्द मेरे कानों में पड़ा। इंजिनियर साहब का छोटा हिरन मेरे पैरों में लिपट गया। मैंने इसे प्यार से हटा दिया और आगे बढ़ा। मैं चाहता था कि मुझे समय होता कि मैं इस निर्दोष बन्दी को बचाने का प्रयत्न करता। अब मैं ज़नाने सहन में पहुँच गया। मैंने फूलों के गमलों पर एक निगाह डाली। अग्नि की चिंगारियाँ उड़ कर गुलाब के फूलों का जीवन-रस चूस रही थीं। स्नेहमयी चम्पा और अग्नि रूपी गेंदा अपनी ही सुगन्ध रूपी भाषा में दुहाई दे रहे थे। चमेली के स्वेत फूलों पर काले काले कोयले भौंरे स्वरूप दीखते थे और जलते हुए कोयलों से जुगनू का गुमान होता था। इसी चाँदनी के पेड़ की डालियों में कई एक पिँजड़े टँगे हुए थे। पपीहा "पी कहाँ" "पी कहाँ" कह कर पागल हुआ जाता था। कोयल "लक्ष्मी देवी आओ" "लक्ष्मी देवी आओ" रट रही थी। तोता "गंगाराम गंगाराम" कह रहा था। मेरा हृदय इन सुन्दर मृदुभाषियों को देख कर पसीज उठा, किन्तु क्या करता, मुझे प्रत्येक क्षण अमूल्य था। अग्नि की ज्वाला प्रति क्षण ऊँची होती जाती थी। अन्तःपुर में पहुँच कर एक छोटे से ज़ीने से ऊपर चढ़ने लगा। ऊपर से किसी के आने की आहट हुई और साथ ही "कौन है ?" का शब्द मेरे कान में पड़ा।

मैं—मैं रामकिशोर हूँ, आप शीघ्र नीचे उतर आवें, देरी न करें, अब भी यहाँ से निकलना कठिन है।

मैंने लक्ष्मी देवी को कभी नहीं देखा था, किन्तु उनके स्वर से अपरिचित न था। वह मुझसे परदा किया करती थीं इसी हेतु मैं 'कौन है ?' के शब्द से ही पहिचान गया कि वह लक्ष्मी देवी हैं। आज लक्ष्मी देवी ने परदा नहीं किया। सच है जब समुद्र में ज्वारभाटा आता है तो आस पास के खेतों की छोटी छोटी मेड़ें स्वयं ही टूट जाती हैं। लक्ष्मी देवी जान

गयी कि यह परदे का समय नहीं है। आपत्काल में समाज की छोटी छोटी रुकावटें आप ही हट जाती हैं। वह शीघ्र नीचे उतर आई और मुझसे बोली, "मेरी लड़की को आप ले लीजिये।" मैं ने अंजन वालों की वरदी उतार दी और उनसे कहा—

"बहिन! तुम यह कपड़े शीघ्र पहन लो, इनके बिना तुम बाहर नहीं जा सकोगी। हमें जलती हुई आग में होकर गुज़रना है।"

लक्ष्मी—और आप?

मैं—आप मेरा विचार न करें।

लक्ष्मी—ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

लक्ष्मी के इन शब्दों में एक दृढ़ता थी, एक संकल्प था, इस देवी की आत्मा प्रबल थी। ऐसी विपत्ति के समय भी कोई छोटा भाव इसमें स्थान नहीं पा सकता था। अग्नि की ज्वालाएँ और भी प्रबलता से उठने लगीं, धुआँ और अधिक घुटने लगा और हमारे आस पास जलते हुए कोयले गिरने लगे। मैं बोला, "देवी! मेरी विनती सुनो, यह हठ का समय नहीं। अभी सम्भव है कि मैं और तुम दोनों बच जावें, किन्तु थोड़ी देर में सिवाय पछताने के और कुछ हाथ न लगेगा। बिना इन कपड़ों के तुम कदापि बाहर न जा सकोगी।" लक्ष्मी देवी ने अब समझा कि मैं ठीक कह रहा हूँ। बड़ी लज्जा के साथ वह मरदाने कपड़े उन्होंने पहने। अपनी लड़की को उन्होंने कोट के अन्दर छिपा लिया और मैं शीघ्रता से उनको छोटे रास्ते से निकाल कर बैठक के चौक तक ले गया, किन्तु उनका आगे बढ़ना असम्भव जान पड़ा। मैं बोला, "लक्ष्मी देवी! तुम मेरी बहिन हो, मैं तुम्हें कुशल पूर्वक तुम्हारे पति के पास पहुँचा देना चाहता हूँ। तुम मुझे क्षमा करना, यदि मैं अग्नि में जल मरूँ तो मेरी कमला और प्रेम का ध्यान रखना।" यह कहा और मैं ने लक्ष्मी देवी को गोद में उठा लिया और मैं उस आग की धारा में कूद पड़ा जो ड्योढ़ी में सुलग रही थी। लक्ष्मी बच्चे के समान मेरे गले में लिपट गयी। मेरे कपड़ों में आग लग गई और मेरे पैर अंगारे पर पड़ पड़ कबाब हो गये। मेरे सारे शरीर में एक असह्य पीड़ा उत्पन्न हो गयी। मेरे पैर डगमगाने लगे, किन्तु अपने आप को अग्नि लटाओं के अर्पण करने के पहिले मुझे लक्ष्मी देवी को उनके पति के पास पहुँचाना था। मैं गिर ही जाने वाला था कि पानी की धारा मेरे ऊपर पड़ी, मेरे कपड़ों की आग बुझ गयी और लक्ष्मी देवी को लिए हुए मैं बाहर पहुँचा। ईश्वर की कृपा से उनका और उनकी पुत्री का एक बाल भी बाका नहीं हुआ था। बाहर जाते ही मैं ने लक्ष्मी को उतार दिया और देवीसहाय से कहा,

"लीजिए अपनी लक्ष्मी को।" मैं ने इतना कह पाया था कि मेरी आखोँ के सामने अँधेरा छा गया और क्षणमात्र के वास्ते मैं बेसुध हो गया। पाँच मिनट के बाद मुझे होश आया। मेरा शरीर बहुत जगह जल गया था। दुर्बलता मुझे इतनी प्रतीत होती थी कि खड़े होने का साहस नहीं था। लाला देवीसहाय ने मेरे जले हुए कपड़ोँ को उतार कर और कोई कपड़े न होने के कारण वही आग से बचने वाली वरदी पहना दी थी। मुझे प्यास लगी, मैं ने पानी माँगा। एक आदमी सामने वाली दुकान से थोड़ा दूध ले आया। दूध पीने से मेरे तन में जान आई और मैं उठ कर खड़ा हुआ और घर जाने की चेष्टा करने लगा कि, इतने में लक्ष्मी देवी दौड़ी हुई आईं और घबराई हुई आवाज से कहने लगी "स्वामी जी, कमला बहिन अन्दर ही रह गयी।"

मेरे शिर पर बज्र टूट पड़ा, आखोँ के आगे अँधेरा छा गया। पैरोँ में खड़े करने की शक्ति न रही, शिर में इस भाँति का चक्कर आया कि मैं गिर पड़ता, किन्तु मेरे मन ने कहा, "रे कायर! यह भीरुता दिखाने का अवसर नहीं है। यदि इस समय पीछे हटा तो फिर जीवन पर्यन्त हाथ मला करेगा। संसार में मनुष्य सदैव तेरी तरफ अँगुली उठाया करेंगे, और कहा करेंगे कि, "यह वही पति है, जिसकी स्त्री उसके जीते जी सती हो गयी थी। देख, यही तेरे प्रेम की परीक्षा है। इस भाव से मेरे सारे शरीर में बिजली सी दौड़ गयी। एक क्षण में मेरी सारी दुर्बलता जाती रही, जले हुए आबलोँ की पीड़ा एक दम प्रस्थान कर गयी। मेरे मन का निशाना कारगर हुआ और पूर्व इसके कि मेरे आस पास वाले कमला के बचाने का कोई प्रयत्न करें, मैं फिर जलते हुए मकान के अन्दर घुस गया।

दहलीज़ की आग बुझ गई थी। बैठक वाले सहन में धुआँ पहले से अधिक था। अन्तः पुर को जाने वाले छोटे रास्ते को ढूढ़ते हुए कई बार मैं दीवार से टकरा कर गिर पड़ा, किन्तु मैं तो अपनी ही धुन में मतवाला हो रहा था। मेरा नशा ऐसा नहीं था जिसको यह ज़रा ज़रा सी चोटें उतार सकतीं। थोड़ी देर इधर उधर टटोलने के पश्चात् मुझे रास्ता मिल गया और मैं अन्तः पुर में पहुँच गया। इस समय यहाँ की दशा विचित्र थी। उन फूलों के छोटे छोटे पौदों पर जो सहन में थे जलते हुए कोयलों के ढेर के ढेर पड़े थे। पपीहे की चितचोर "पी कहा" की रटन सदा के वास्ते शान्त हो गई थी। मुझे ध्यान आया कि मेरी हृदयेश्वरी भी उसी प्रकार इस ज्वाला-मुखी के किसी कोने में इन शब्दोँ को कह रही होगी। सोचते हुए मेरे मन पर इसका इतना असर हुआ कि इस जलते

हुए मकान के प्रत्येक शब्द में मुझे "पी कहाँ, पी कहाँ" सुनाई देने लगा। सारी अग्निमयी प्रकृति ने मेरी प्राणेश्वरी का रूप धारण कर लिया और मुझे "पी कहाँ" कह कर बुलाने लगी। अग्नि की लपट "पी कहाँ" कह कर मेरी ओर आने लगी। जलती हुई छतें "पी कहाँ" के शब्द के साथ मेरे चारों ओर गिरने लगीं। इस अलौकिक प्राकृतिक नृत्य के मद में मुझे अपनी जीवन-सखी कमला की "पी कहाँ" सुनाई दी। मैंने बड़े वेग से चिल्ला कर कहा "मेरी जीवन-सखी ! घबराना मत। मैं आ गया" यह कहता हुआ मैं बड़े वेग से कोठे पर चढ़ गया। प्रत्येक कमरे में प्रत्येक कोने में ढढ़ता फिरने लगा। जहाँ जाता "कमला" "प्रिये" "प्यारी" "कमला देवी" कह कह कर पुकारता किन्तु मेरा ही शब्द सामने की दीवारों से टकरा टकरा कर एक हास्यमय रूप धारण करके मेरे कानों में आता। कहीं शिर टकराया, कहीं पैर फिसल कर गिर पड़ा। जूतों के तलों में जल कर सूराख हो गये और उनमें से जले हुए पैरों का रक्त निकल कर मेरे पैर की छाप लगाने लगा। मैं ढूँढ़ते ढूँढ़ते थक गया, मेरे हाथ पैर शिथिल होने लगे किन्तु कमला न मिली। निराशा मेरे हृदय पर अपना अधिकार जमाने लगी। ज़रा से शब्द पर, ज़रा सी आहट पर, मैं इधर उधर दौड़ने लगा।

पाठिकाओ ! इस समय मेरे मन का हाल न पूँछो। मेरा मन चाहता था कि मैं प्रकृति का परदा हटा कर अपनी प्रिये कमला को देख लूँ। कभी मैं क्षण भर के वास्ते बैठ जाता और फिर दौड़ कर दस बार के ढूढ़े हुए कमरे में घुस जाता। जब वहाँ भी कुछ न पाता तो ईश्वर से प्रार्थना करता, "हे चराचर के ईश ! यदि आप भी मुझे इस समय छोड़ देंगे तो फिर और कौन मेरी सहायता करेगा ? मुझे प्यारी कमला से मिला दो।" जब इसका भी कोई उत्तर न मिलता तो मैं ईश्वर को पाषाण-हृदयी बताता और फिर कमला को ऊपर नीचे के मकानों में ढूढ़ने लगता। अब आशा के सारे मार्ग बन्द हो गये, तो मैंने निश्चय कर लिया कि अब यहाँ ही जल कर मरूँगा। बिना कमला के साथ संसार मुझ पर हँसेगा। प्रेम परीक्षा में उत्तीर्ण न होने के कारण मैं किसी को मुँह दिखलाने के योग्य नहीं रहा। कमला की प्रेममयी बातें याद आ गयी, मेरा मन भर आया और मैं रोने लगा। मेरे मन में आया कि मैं अग्नि में कूद कर अपने प्राणों को खो दूँ, किन्तु मुझे प्रेम का ध्यान आया। प्रेम का ध्यान आते ही मैं पीछे हटा इतने ही में ऊपर से किसीके रोने का शब्द सुनायी दिया। चारों ओर देखा किन्तु ऊपर जाने का कोईरास्ता न दीखा। (क्रमशः)

—उमराव सिंह गुप्त।

प्रार्थना

करो हरदम हृदय से पाठको
गुण गान भारत का।
बढ़ाओ प्रेम आपस में
बढ़े सन्मान भारत का॥

बनो तुम भक्त हिन्दी के
तुम्हारी मातृ-भाषा है।
बिना इसके न अब सम्भव
कि हो उत्थान भारत का॥

तुम्हारे ही प्रचुर धन से
भरा घर अन्य देशों ने।
नहीं तुम में रहा क्या नेक भी
अभिमान भारत का॥

अगर हो तो करो तुम मत
विदेशी वस्तु का आदर।
करो ऐसा कि जीवित हो
कला-विज्ञान भारत का॥

सुशिक्षा के बिना होती नहीं
उन्नति कभी कुछ भी।
बढ़ाओ देश में इसको
अगर हो ध्यान भारत का॥

बनो विश्वेश के सेवक
करो यह प्रार्थना उससे।
दया कर दो, विभो! फूले
फले उद्यान भारत का॥

—स्वामीदयाल श्रीवास्तव।

(प्रताप से)

प्रेम



जगत का कोई विद्वान भी इस अवर्णनीय शब्द के गुण तथा गौरव से अपरिचित नहीं है। अहो, इस अनूठे शब्द में जगदीश्वर ने न जाने क्या सम्मोहन शक्ति भर दी है कि प्रत्येक वस्तु इस प्रेमके निकट में आकर्षित होती हुई प्रतीत होती है, या यों कहिए कि पदार्थों का यह एक केन्द्र है और सर्व पदार्थ इसके आश्रित है। किसी अंग्रेजी विद्वान ने प्रेम का लक्षण यों किया है—

"The natural and innermost tendency of mind."

अर्थात प्रेम एक आन्तरिक[1] नैसर्गिक[2] मनोवृत्ति[3] है। यही आन्तरिक नैसर्गिक मनोवृत्ति प्रेम, आभ्यंतर भाव से उतर कर सम्पूर्ण सांसारिक व्यवहार में एक प्रकार का मनोरञ्जक-रस उत्पन्न कर देता है।

भगवान ब्रह्मा जी ने सृष्टि रचने के समय ऋषियों से यही कहा था कि परस्पर प्रेम करो। इस वाक्य से स्पष्ट

---

(१) अन्दरूनी।
(२) कुदरती।
(३) मन की हरकत।

होता है, कि प्रेम ही उत्पत्ति स्थिति और विनाश का कारण है और इसी का सब विस्तार है। लोक में भी देखा जाता है कि हर एक देश तथा गृहादिकों में प्रेम ही शासन करता है। जिस देश तथा गृह में सब प्राणी प्रेम पूर्वक व्यौहार करते हैं उसी में कीर्ति, यश, उन्नति, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, विद्यादि प्रशस्त गुण उपस्थित हो जाते हैं। कोई सामाजिक मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति ऐसी नहीं है जो प्रेम के हाथों उच्च शिखर पर नहीं पहुँच सकती है। सम्पूर्ण सांसारिक सौख्य का मूल प्रेम एक अमूल्य रत्न है जो गृह के समस्त अंधकारमय दोषों को निवृत्त कर देता है। प्रेम ही चिरकाल से आर्य संतानों का एक-मात्र वाञ्छित भाव (Ideal) रहा है। पुराण, काव्य, इतिहास तथा अन्य ग्रन्थों के पढ़ने से विदित होता है कि हमारी इस आर्य भूमि में प्रत्येक गृह प्रेम ही से परिपूर्ण था।

स्त्री पुरुष तथा कुमार सब ही तो परस्पर प्रेम से अपना अपना जीवन व्यतीत करते थे। दूसरों का दुःख अपना दुःख और दूसरों का सुख अपना सुख समझते थे। इस के ही प्रभाव से समग्र भारतवर्षीय कुटुम्ब लक्ष्मी, सौख्य और आनन्द का निवास स्थान हो रहे थे। प्रत्येक घरों में प्रत्येक गृही स्नेह प्रीति तथा सहानुभूति के पाश में बँधा था। मनुष्य मात्र ही नहीं वरन देवता भी इस हाव भाव और प्रेम के भूखे हो कर घरों में आकर उनके आवाहित हव्यादि को अतीव प्रसन्नता से ग्रहण करते थे।

जब हमारे भारतवर्ष की यह अप्रमेय दशा थी कि प्रेम ने घर घर को स्वर्ग बना रक्खा था तो आप स्वयं समझ सकते हैं कि प्रेम केवल सांसारिक सौख्य का कारण ही न था किन्तु पारमार्थिक सुकृति का भी निमित्त कारण था।

कैसे आश्चर्य की बात है कि अब मनुष्य इस प्रेम का उतना आदर सत्कार नहीं करता जितना परमात्मा ने इस को माननीय गुण बनाया है। देव जातियों तथा मनुष्य जातियों में ही यह अलौकिक गुण नहीं पाया जाता वरन पशु पक्षियों तथा वनस्पतियों में भी यह गुण पाया जाता है। बिना इसके काम ही नहीं चलता क्योंकि यह प्रेम ही प्रमोद और वृद्धि का कारण है। प्रत्येक सुशिक्षित पुरुष इस विषय को जानता है कि यावत् इस शरीर में इन्द्रिय (Organs) हैं सब ही अपने अपने कार्य में प्रेम ही से प्रेरित की जाती हैं।

महाशय ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर ने एक समय अपनी वक्तृता में कहा था कि यदि कभी हमारी मातृभूमि का उद्धार होगा तो प्रेम ही से होगा। किसी पश्चिमी

विद्वान् ने ठीक कहा है कि "प्रेम परमात्मा का स्वरूप है। यह एक प्रकार की ऐसी शक्ति है जो मनुष्य की विपरीत प्रकृतियों को एक ही रसमय भाव पर स्थित कर देती है। ऐसे ऐसे बहुत से प्रेम के माहात्म्य में वाक्य कहे गये हैं जिनसे प्रेम ही संसार को स्थिति का कारण साबित किया गया है। अब विचारना यह है कि यदि प्रेम ही सम्पूर्ण जगत का इष्ट है तो आजकल इसका ह्रास क्यों होता जाता है।

इतिहास के देखने से पता चलता है कि महाभारत के समय में जो फूट का बीज बोया गया और दुर्भाषा, ईर्षा, कपट तथा निन्दा इत्यादि के पानी से सींचा गया, आज वही बीज एक बड़े भारी वृक्ष के रूप में परिणत होकर सारे भारतवर्ष में फैल गया है। इसी फूट ने सारे भारत में ऐसी हलचल मचा दी कि जिससे भारत का ऐश्वर्य भारत की कीर्ति तथा उत्तम उत्तम गुण सब ही तो इस भारत भूमि को तिलाञ्जलि दे गये।

भारत में आर्य्य सन्तानों के राज्य की समाप्ति का कारण क्या था? केवल प्रेम का अभाव और आपुस की फूट ही थी। अथात् महाराजाधिराज पृथ्वीराज और महाराज कन्नौज के परस्पर के विरोध ने इस भारत के आर्य्य साम्राज्य को समाप्त ही कर दिया और मुसलमान राज्य का आरम्भ करा दिया, जिसका झण्डा सैकड़ों वर्ष तक भारत में लहराता रहा। महमूद गज़नी का १७ वार भारत को लूटना क्या फूट का फल न था? नाना प्रकार की आपत्तियाँ जो भारत पर आज छा रही हैं सब फूट ही का फल हैं।

प्रिय पाठकगण! हमारे देश का तो ये हाल हुआ, अब घर घर में जो फूट की आग दहकती हुई प्रगट हो रही है इसका कारण क्या है? इसका कारण केवल स्त्री जाति में सच्चे प्रेम का अभाव है। स्त्रियों में इस प्रेम के अभाव ने जो हमारी सामाजिक उन्नति को हानि पहुँचाई है, उसका कथन करना बहुत ही कठिन है। स्त्रियों ने स्वार्थपरायण होकर घर घर में फूट फैला कर अपने पराये का विचार पैदा कर बेटे को बाप से, स्त्री को पति से, भतीजे को चचा से अलाहिदा करा दिया। एक घर में जिसमें एक ही चूल्हा जलता था, प्रायः अब उसमें बहुत चूल्हे जलते हुए दिखाई देते हैं। स्वार्थ इतना बढ़ गया है कि प्रत्येक गृह में अपने पराये भाव का झगड़ा हर समय बना रहता है और हर एक यही सोचता है कि सब हमारा हो जाय।

प्रेम, दान, धर्म, दया तथा शील उनके हृदय से मानो सदैव को जाते रहे। ईर्षा, अपशब्द, कुट, हिंसा इत्यादि निन्दनीय गुण उनके स्थान पर आ उपस्थित हुए। हर एक का दिल दुखाना किसी के कार्य में विघ्न डालना, सब का बुरा चाहना उनका बाए हाथ का खेल है।

घर में स्त्री ही मुखिया होती है। जब मुखिया ही में प्रेम का अभाव होने लगा तब घर में कैसे सुख की प्राप्ति हो सकती है। बिना सच्चे प्रेम भाव के मनुष्य में सम दृष्टि का भाव नहीं आ सकता और बिना सम दृष्टि के घर में शान्ति कहाँ?

इस लेख में प्रेम का महत्व दिखाने से हमारा केवल यही अभीष्ट है कि भारत-वर्ष के सम्पूर्ण कुटुम्ब अपनी बिगड़ी हुई दशा का सुधार करें। संसार में यश पाकर परमात्मा की कृपा के पात्र हों।

यदि हर कुटुम्ब में एक एक मनुष्य फूट को जड़ से उखाड़ने तथा प्रेम प्रीति को सब स्त्री पुरुषों के हृदयों पर उनकी जगह उत्पन्न कराने का उद्योग करना आरम्भ करे तो कोई बात भी कठिन नहीं है और थोड़ा सा दुःख सहन करके इसका आरम्भ हो सकता है। उस मनुष्य को जो निस्वार्थ प्रेम की नींव पर खड़े होकर सुख के सामान इकट्ठा करने का विचार करेगा उसको प्रथम मनोनिग्रह का सहारा लेना बहुत आवश्यक है। मनो-निग्रह को साधन करने से कार्य अवश्य ही सिद्ध होगा।

हे भारत की स्त्रियो! क्या तुम सीता द्रौपदी सावित्री दमयन्ती आदि को जनम देने वाली इस भारत माता की पुत्री नहीं हो? क्या तुम उनके उत्तम गुणों से परिचित नहीं हो? यदि हो तो तुम क्यों नहीं उनका आदर्श अपने सामने रखतीं। देखो, उन्होंने संसार को कैसा उत्तम बना रक्खा था। अब इस बात का अवसर है कि तुम अपनी निद्रा से जागो और अपने उत्तम उत्तम गुणों से भारत का उद्धार करो और अपने पराये का विचार तथा फूट कुमति इत्यादि कुलक्षणों को छोड़ कर राम युधिष्ठिर और अर्जुन सरीखे गुणवान वीर सन्तान उत्पन्न करके भारत का सिर एक बार फिर से ऊँचा करो।

—राय उमानाथ बली।

ईश्वर प्रार्थना

(निराकार-दृष्टि से)

अजब हैरान हूँ भगवन्!
तुम्हें क्यों कर मनाऊँ मैं।
नहीं कोई वस्तु ऐसी है
जिसे सेवा में लाऊँ मैं॥१॥

करूँ किस रीति आवाहन
कि तुम मौजूद ही हरजा।
निरादर है बुलाने को
अगर घंटी बजाऊँ मैं॥२॥

तुम्हीं हो मूर्ति में स्वामिन्
तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
भला भगवान को भगवान
पर क्यों कर चढ़ाऊँ मैं॥३॥

लगाना भोग कुछ तुमको,
बहुत अपमान करना है।
खिलाता है जो सब जगको
उसे क्यों कर खिलाऊँ मैं ॥ ४ ॥
तुम्हारी ज्योति से रौशन हैं
सूरज, चाँद और तारे।
महा अंधेर है, तुमको
अगर दीपक दिखाऊँ मैं ॥ ५ ॥
भुजाएँ हैं न सीना है न
गरदन है न पेशानी।
कि है निरदेह नारायण
कहाँ चन्दन लगाऊँ मैं ॥ ६ ॥
—श्रीबलवन्तराय श्रीवास्तव्य की
धर्मपत्नी द्वारा प्रेषित।

गर्भपात

आज कल जिस ओर देखते हैं यह ही दुःख सुनने में आता है। आज हम गर्भपात पर कुछ थोड़ा सा हाल लिख कर बाद को सारा इस रोग का हाल बतलाएँगे। ईश्वर यह दिन किसीको न दिखलावे। गर्भपात होना स्त्री का दूसरा जन्म है। इतना दुःख होता है कि हा दैव! जिस प्रकार वृक्ष से फल पक कर गिरे तो कुछ देर नहीं लगती, परन्तु कच्चा तोड़ लिया जावे तो तकलीफ होती है। इसी प्रकार से प्रसूत से भी बढ़ कर दुःख गर्भपात में होता है। ६ मास के लिये चारपाई पर सवार गर्भपात ही करा दिया करता है। इसमें बड़ी खराबी यह है कि एक बार गर्भपात हो जावे तो फिर बार बार होने लग जाता है। इसकी उत्तम चिकित्सा तो यह है कि १ वर्ष तक स्त्री ब्रह्मचर्य से रहे। इससे गर्भपात का डर जाता रहता है और फिर जो गर्भ होता है, ईश्वर की कृपा से स्थित रहता है। नीचे हर मास की चिकित्सा लिखी जाती है—

१—यदि प्रथम मास गर्भस्राव हो तो मुलेहटी, चन्दन, रक्त चन्दन, सम भाग चूर्ण करके ३ मासे हर रोज पानी में पीस कर गाय के दूध और मिश्री मिला कर पिया करें।

२—यदि दूसरे मास गर्भस्राव होता हो तो उस मास नागकेसर के चूर्ण दो मासे को हर रोज गाय के दूध के साथ प्रातःकाल खाया करें। यदि पेट में पीड़ा हो तो तगर १ मासा, कपूर १ रत्ती बकरी के दूध से पीस कर गाय का दूध मिला कर मिश्री डाल कर पी ले।

३—यदि तीसरे मास गर्भपात होता हो तो नागकेशर २ मासे मिश्री ६ मासे हर रोज प्रातःकाल दूध के साथ खाया करें! अगर पीड़ा होवे तो चन्दन सुगन्ध वाला कमल की शाख एक एक मासा पीस कर दूध में मिला कर खाना चाहिए।

४—यदि चौथे मास गर्भपात होता हो तो केले की जड़, कमलगट्टा, सुगन्ध वाला ३ मासे पानी में बारीक पीस कर दूध मिला कर पिलावे। चौथे मास यदि गर्भपात होना होता है तो तृषा लगती है पीड़ा होती है, दाह तथा ज्वर होता है।

५—यदि पाँचवें मास गर्भपात होता हो तो अनार के पत्ते और चन्दन दो मासे बारीक पीस कर दही और शहद मिला कर पीवें।

६—यदि छठे मास गर्भपात होता हो तो गेरू, आरने उपलों की राख, काली मिट्टी हर एक को तीन तीन मासे आध सेर पानी में डाल कर औटावे, जब आधा रह जाय तो उतार कर छान कर ठंडा हो जाने पर दूध डाल कर पीवे अथवा कच्चे दूध में मिस्री और चन्दन मिला कर पिया करें।

७—यदि सातवें मास गर्भपात होता हो तो खस, गोखरू, नागरमोथा, लजवन्ती, नागकेसर, पद्माग, हर एक को तीन तीन मासे, मिस्री सब के बराबर, चूर्ण करके ३ मासे दूध के साथ खावें।

८—यदि आठवें मास गर्भपात होता हो तो लोध, पीपल के चूर्ण २ मासे को शहद के साथ खाया करें।

नोट जरूरी

यदि गर्भपात पहली बार होने वाला हो तो जिस मास में ऐसा हो उस मास की जो चिकित्सा लिखी हैं उसको कर ले। गर्भपात होने से पहिले पेट में पीड़ा, पानी का जाना, बेचैनी आदि निशानियाँ शुरू हो जाती हैं। जब ऐसा हो उसी समय चिकित्सा करनी चाहिये। गर्भपात के प्रायः कारण यह हैं—चोट लगना, गिर पड़ना, अति सम्भोग, विरेचन, अति पित्तकारी वस्तुओं का खाना, बोझ उठाना, अति व्यायाम।

गर्भिणी का पथ्य

बारीक चावल, सांठी के चावल, मूँग, गेहूँ, खील, मक्खन, घी, दूध, शहद, खाँड़, खैर, केला, आमला, शीतल तथा मिठी वस्तु अम्ल दिल को खुश करने वाली वस्तु कस्तूरी, चन्दन, कपूरमाला फूलमाला, चन्दन लगाना, नरम बिस्तरा, शीतल वायु, प्यारे स्वर, स्नान, नरम मालिश, दिल के खुश करने वाले काम, घर का काम काज करना, सैर करना आदि।

—कल्याणदत्त वैद्य

फुटकर समाचार

सती-समाचार

मुजफ़्फ़रपुर जिलान्तर्गत चन्दनपट्टी ग्राम के जमींदार बाबू कीर्त्तिनारायण सिंह के भतीजे बाबू हरि नारायण सिंह बी० एल० पास करने के बाद बाँकीपुर में वकालत करते थे। इधर प्रायः छः महीने से उनका स्वास्थ खराब हो गया

था। अनेक प्रकार की चिकित्सा हुई परन्तु रोग घटने के बदले बढ़ता हीचला गया। अन्त में ता॰ ११ अक्टूबर का उनका परलोक वास हो गया। उनके अन्त समय तक उनकी सती साध्वी स्त्री अलकनन्दा देवी उनके पास बैठी रहीं। पश्चात् धीर और शान्त भाव के साथ वह अपने कमरे में चली गईं जो उनके पति के कमरे के बगल में ही दो मंजिले पर था। उसका दरवाजा उन्होंने भीतर से बन्द कर दिया। परिवार के और लोग रोने पीटने में लगे थे। अतः किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। कुछ देर के बाद जब उक्त कमरे की खिड़कियों से आग की लपटें दीख पड़ने लगीं तब लोग अचम्भे में आकर ऊपर दौड़े। कमरे का दरवाजा तोड़ कर देखा गया तो उसके भीतर हरिनारायण बाबू की सती स्त्री अधजली अवस्था में पाई गईं। उनके वस्त्र का जो अंश जलने से बच गया था उसके देखने से मालूम हुआ कि वह एक परमोत्तम रेशमी साड़ी का टुकड़ा था। मालूम होता है कि पति के प्राण वियोग होने के पश्चात उन्होंने अपने कमरे में जाकर उक्त वस्त्र तथा सौभाग्य के अन्यान्य चिह्न धारण कर लिये थे। उनके शरीर में आग किस प्रकार लगी यह किसी को ज्ञात नहीं हुआ। सती की आँखों से आँसू की एक बूँद भी नहीं निकली थी और न उनके चेहरे पर किसी प्रकार के कष्ट का चिह्न ही दीख पड़ा। लोगों ने आग बुझा कर उन्हें अस्पताल पहुँचाया। वहाँ कुछ देर के बाद होश होने पर सती ने गङ्गाजल पान किया और वह सदा के लिये पतिलोक को सिधार गईं। पश्चात् सती की लाश पति के साथ एक ही चिता पर जलाई गई। सती के पिता बाबू कृष्णकुमार दरभंगा-मिश्रटोला के रहने वाले एक प्रतिष्ठित कायस्थ हैं। सती अलकनन्दा ही उनकी एक मात्र सन्तान थीं। इस में सन्देह नहीं कि अपनी एक मात्र बालिका तथा दामाद के इस प्रकार स्वर्गवास से उनके हृदय पर गहरी चोट लगी होगी किन्तु उन की सती कन्या ने जिस प्रकार आत्मत्याग कर हिन्दू जाति के प्राचीन गौरव का परिचय दिया है इससे उनका वंश सदा के लिये पवित्र और उज्ज्वल हो गया।

एक और सती

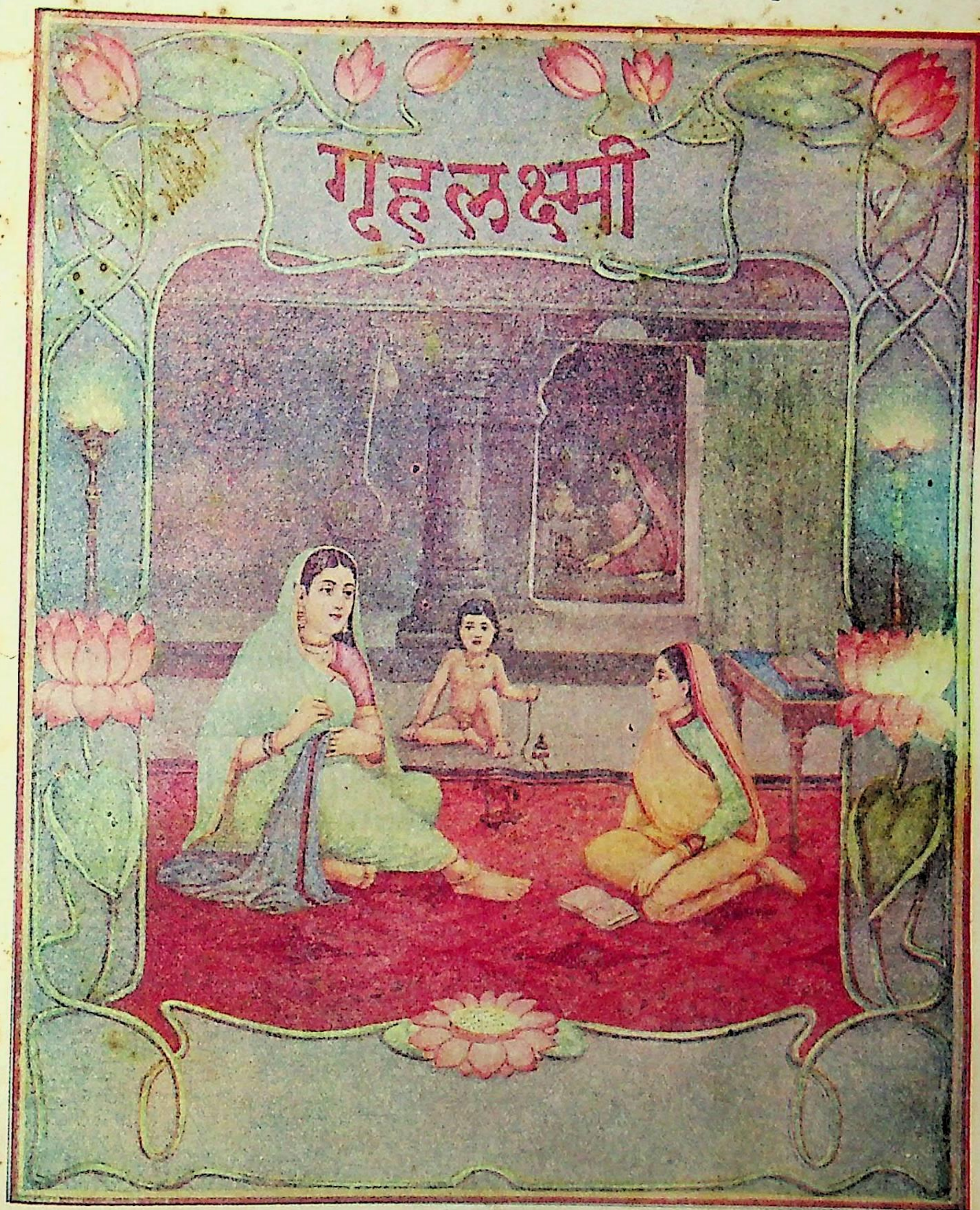
निवारण नाम का एक डोम कोई चौदह बर्षों से अपनी स्त्री के साथ हुगली जिले के गोघाट ग्राम में रहा करता था। वह परम दरिद्र था। हाल में यक्ष्मा रोग से उसकी मृत्यु हो गई। उसकी सती स्त्री अपने पति के साथ जलने के लिये तीन बार स्वामी की चिता पर कूदी और तीनों बार अपने सम्बन्धियों के द्वारा रोक ली गई। आग की लपट से उसका शरीर अनेक स्थानों में झुलस गया था तो भी उसके चेहरे पर क्लेश का कुछ भी चिह्न

नहीँ दीख पड़ता था। वह बराबर मुस्कुरा रही थी। इस प्रकार झुलस जाने से एकही घंटे के बाद उसकी मृत्यु हो गई। पश्चात् उसकी लाश भी उसी चिता पर रख कर स्वामी के साथ जलाई गई। धन्य भारतवर्ष जहाँ की चाण्डाल स्त्री भी इतनी पतिभक्तिपरायण होती है।

जेवरों से हानि

छोटे छोटे बच्चों को जेवर पहनाने की प्रथा कैसी हानिकारक है सो किसी से छिपी नहीँ है। इन गहनोँ के कारण ही बहुधा छोटे छोटे बालकोँ की हत्याएँ हुआ करती हैँ। दुःख है कि इतना होने पर भी सर्वसाधारण इस कुरीति का त्याग सर्वथा नहीँ करते। इन्हीँ गहनोँ के कारण उस दिन दरभङ्गे मेँ एक कलवार के दो बालकोँ की हत्या हो गई। अनूप चौधरी स्थानीय उर्दू महल्ले का रहने वाला एक कलवार है। गत बुधवार के प्रायः १२ बजे दिन मेँ उस के दो भतीजे जिनकी उम्र १० और ८ वर्ष से अधिक नहीँ थी मुहर्रम का तमाशा देखने के लिये अपने घर से निकले। सन्ध्या काल तक भी जब वे लौट कर घर नहीँ गये तब सब लोगोँ को चिन्ता हुई। अनेक स्थानोँ में उन की खोज की गई किन्तु कहीँ पता नहीँ लगा। उस के दूसरे दिन अर्थात् गत बृहस्पतिवार के प्रातःकाल दोनोँ बालकोँ की लाशेँ दिग्घी तालाब के समीप मिर्जापुर की गाछीवाले पटवा पोखर के निकट एक खाई में उपलाती हुई देखी गईँ। बालकोँ के शरीर पर जो सोना तथा चाँदी के गहने थे उनका कुछ पता नहीँ मिला। दिग्घी तालाब से लेकर मिर्जापुर महल्ले तक का वह स्थान बिलकुल जन शून्य तथा भयानक है। गाछी और कलमबाग़ के अतिरिक्त किसी का मकान वहाँ पर नहीँ है। चोर बदमाशोँ के छिपने के लिये वह एक उपयोगी स्थान है। मालूम होता है कि गहने के लोभ में पड़ कर हत्यारा उन्हेँ बहका कर वहाँ ले गया होगा और गहने छीन कर मार डाला होगा। क्या इस दुर्घटना से भी हमारे देश के लोगोँ की आँखेँ खुलेँगी और वे अपने बालकोँ को गहने पहनाने से बाज आवेँगे! (मिथिला मिहिर)

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।



वार्षिक मूल्य १॥)] सम्पादक— [प्रति संख्या =)॥

पण्डित सुदर्शनाचार्य बी० ए०, श्रीमती गोपालदेवी ।

विषय-सूची

गृहलक्ष्मी के नियम ।

[१] गृहलक्ष्मी प्रति मास के आरम्भ में प्रकाशित होती है। [२] डाक-व्यय सहित इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) मात्र है। [३] नमूने की कापी मँगाने वालों को चाहिए कि =)॥ का टिकट भेज कर हम से नमूना मँगा लें। यदि वे ग्राहक हो जायँगे तो उन्हें शेष अङ्कों के लिए केवल १।=) देना पड़ेगा। [४] ग्राहकों को चाहिए अपना पता पूरा और साफ लिखें जिससे उनके पास पत्रिका पहुंचने में गड़ बड़ी न पड़े। [५] वर्त्तमान समय की राजनीति तथा धार्मिक झगड़ों से सम्बन्ध रखने वाले लेख इस पत्रिका में नहीं छापे जाते। [६] विज्ञापन की छपाई एक बार के लिए प्रति पंक्ति।=), आधे पृष्ट के ५॥) और पूरे पृष्ठ के १०) हैं। अधिक दिनों के लिए विज्ञापन छपाना हो तो पत्र व्यवहार करके तै कर लेना चाहिए। [७] बैरङ्गपत्र नहीं लिए जायँगे। जवाबी कार्ड या आध आने का टिकट आये बिना किसी के पत्र का उत्तर नहीं दिया जायगा। [८] लेख, परिवर्त्तन के पत्र, समालोचना के लिए पुस्तकें आदि, रुपया तथा और सब तरह के गृहलक्ष्मी सम्बन्धी पत्र इस पते पर भेजने चाहिए—

श्रीमती गोपालदेवी

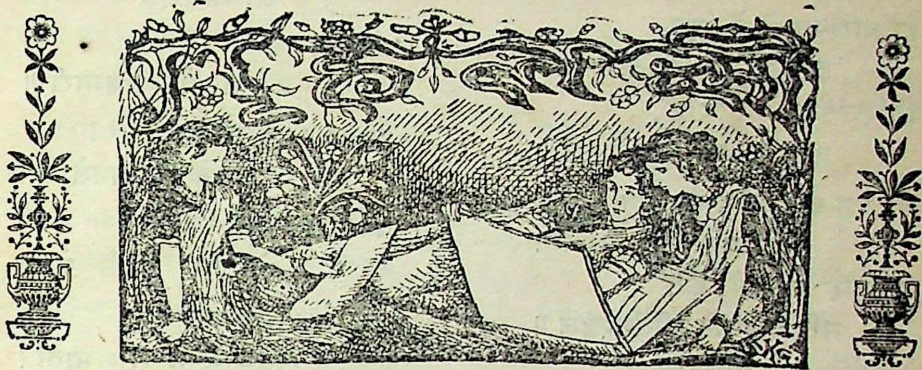
'गृहलक्ष्मी'-कार्य्यालय, इलाहाबाद

सपरिवार हमारे सम्राट्



यह देखो, बैठे भूपाल । सँग मैँ लिये बाल-गोपाल ॥

सुदर्शन प्रेस, प्रयाग ।



"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः

"सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, माघ, संवत् १९७२ [एकादश दर्शन

ईश विनय

हे दीन के सहायक,
हे दीन-दुःख-भंजन ।
हे काल के प्रवर्त्तक,
हे भक्त-चित्त-रंजन ॥

जगनाट्य-सूत्रधारी,
हे भक्त-मन-बिहारी ।
लीलावतारधारी,
हे शोक-दुःख-हारी ॥

आशा अटल है नटवर,
तू फिर कृपा करैगा ।
लीला दिखा के अद्भुत,
मन मोद से भरैगा ॥

इस कालचक्र को तू,
इस भाँति से घुमा दे ।
फिर बाल-रूप मेरा,
तू सामने दिखा दे ॥

—श्रीमती चन्द्रावतीदेवी

बालपन

हा बालपन के वे दिन,
हा चैन का वह अवसर।
निश्चिंतता की राहेँ,
हा भोलेपन का बासर॥

हा वह समय कि यह तन,
था पातकोँ से निर्मल।
करतार के करोँ की,
महिमा प्रगट थी निश्छल॥

हा वे दिवस कि हमसे,
खेदित न कोई मन था।
सब को प्रमोददायक,
हर तोतरा वचन था॥

लखते थे प्रेम से हम,
जब व्योम का तमाशा।
होती सभी थी मानो,
पूरन हमारी आशा॥

दुनिया के नेक बद की,
हमको न कुछ ख़बर थी।
थी चाल ढाल सादी,
बस प्रेम की उमर थी॥

हर ठौर हर प्रथा की,
हर वस्तु हमको भाती।
कोई न वस्तु जग की,
हमको बुरी दिखाती॥

सच्चा था भाव अपना,
कुछ भी न थी बनावट।
थी जो खुशी सो सच्ची,
सच ही से थी लगावट॥

मतलब न था घृणा से,
अभिमान से न यारी।
ज्योँ भावना थी जिसकी,
त्योँ भावना हमारी॥

अज्ञान थे मगर हम,
अपने को जानते थे।
बस ख़ाक धूल मिट्टी
से प्रेम ठानते थे॥

कुछ भेद मित्र अरि का,
दिल मेँ न था समाता।
बस ग़ैर और अपना,
था एक सा लखाता॥

अपनी तरफ से हम तो,
कुछ काम थे न करते।
औरोँ के काम लख कर,
वैसे ही करते धरते॥

दोषी के दोष लख कर,
भी थे क्षमा दिखाते।
ईर्षा औ' दोष को भी,
दिल मेँ कभी न लाते॥

रहती थी दूर हम से,
सब झूठ की बुराई।
बातोँ मेँ सत्य की ही,
देती छटा दिखाई॥

आचार थे हमारे,
अत्यन्त ही मनोहर।
व्यौहार थे हमारे,
सारे जनोँ को सुखकर॥

गुरु लोग और पुरजन,
सब हमको प्यार करते।
सब ही स्वगोद में लें,
मन में प्रमोद भरते॥
शृंगार की न इच्छा,
तारीफ का न लालच।
सब चाल प्राकृतिक थी,
जो बात थी सो सब सच॥
करते न भाग्य-निन्दा,
वा दैव की शिकायत।
हँस हँस के दिल पै लेते
थे शोक दुःख आगत॥
मन की अनादि श्रद्धा,
थी पुण्य ही कराती।
मानो सुबुद्धि माता,
जग को वृथा बताती॥
थे सर्वथा अकिंचन,
संतोष था सहारा।
आराम की न इच्छा,
धन-धाम था न प्यारा॥
माता का प्रेम ही बस,
सर्वस्व था हमारा।
सम्बन्ध से उसीके,
कुछ कुछ पिता था प्यारा॥
मातेश्वरी वही थी,
चितवन उसीकी प्यारी।
थी एक गोद उसकी,
शय्या सुखद हमारी॥

थी प्रेमयुत हमें जब,
पयपान वह कराती।
निज कंज-कर अभय-प्रद,
जब शीश पर घुमाती॥
मुख चूम कर हमारा,
सीने से जब लगाती।
'बेटी' 'लली' 'दुलारी',
कह कर हमें बुलाती॥
तब ब्रह्म सुख का अनुभव,
था चित्त में समाता।
हा बालपन पियारे,
हा सुखमई सुमाता॥
निर्लेप जग के सारे,
चंचल सुखों से थे हम।
अत्यन्त दूर जग के,
सारे दुखों से थे हम॥
तिरछी नज़र किसीकी,
दिल को न भेदती थी।
पैनी अनी किसीकी,
छाती न छेदती थी॥
लखते ही ताक लेते,
थे प्रेम की निगाहें।
छूते ही भाप लेते,
थे प्रेम-युक्त बाहें॥
सुन्दर सी वस्तु लख कर,
मन मोहता अवश था।
पर पाप था न उसमें,
जो था सो ईश-यश था

हा उन दिनों न हमको,
चिन्ता कोई सताती।
कोई फिकिर गृहस्थी की,
पास तक न आती॥
हा उन दिनों खबर तक,
इसकी नहीं थी हम को।
लाखों मुसीबतें आ,
घेरेंगी एक दम को॥
था एक वह समय जब,
सब को थे हम सुहाते।
सब को थे मोददायक,
सब ही से प्रेम पाते॥
हा एक यह समय है,
जगजाल में फँसे हैं।
चिन्ता के चोर बेहद,
दिल-दुर्ग में धँसे हैं॥
हा एक वह समय था,
थे और को हँसाते।
हा एक यह समय है,
हम आँसू हैं बहाते॥
हे बालपन पियारे,
हे मोद के सुआकर।
क्या फिर कभी दिखायेगा,
वह छटा प्रभाकर॥
हे प्रेम के विधाता—
हे मोद-कर कन्हैया।
आ एक बेर मिल जा,
फिर आके मेरे भइया॥

—श्रीमती चन्द्रावतीदेवी

पद्मावती



चित्तौर के महाराज भीमसिंह का दर्बार लगा है। मन्त्री आदि यथा स्थान पर बैठे हैं। दर्बार में निस्तब्धता छाई है। महाराज किसी गम्भीर विषय पर विचार कर रहे हैं। सरदार गण सन्मुख हाथ जोड़े उनके बोलने की प्रतीक्षा करते हुए मुख की ओर निहार रहे हैं। यकायक महाराज भीमसिंह राजसिंहासन से उठ खड़े हुए। आवेश से उनकी भुजाएँ फड़क उठीं। नेत्र क्रोध से लाल हो गये। गरज कर उन्होंने कहा—"वीर सरदारो! बहादुर बाँकुरो!! क्या देखते हो। सैन्य के युद्ध निमित्त चलने की तैयारी करो। आह! दुष्ट अलाउद्दीन का इतना साहस! अपने बल का इतना गर्व! बस, अब विलम्ब करने समय नहीं है। उसकी दुष्टेच्छा का यथोचित बदला देकर उसके गर्व का खंडन करो। अपने बाहुबल से उसके साहस को धूल में मिला दो। चलो, चलो, शीघ्र चलो। अलाउद्दीन के कुविचार का बदला चुकाने चलो। सेना में युद्ध घोषणा कर शीघ्र समर भूमि को प्रस्थान करो।"

आज्ञा का पालन हो गया। कुछ ही समय में महाराज की वीर और पराक्रमी सेना अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो

रण स्थल में आ डटी। महाराज भीमसिंह भी रणवेश धारण कर प्रियतमा पद्मावती से विदा हो युद्ध स्थल में पहुंच गये। युद्ध आरम्भ हुआ। महाराज की रण-प्रिय सेना यवन दल पर भूखे सिंह की समान टूट पड़ी। घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ओर की सेना ने बड़ी वीरता के साथ अपना पराक्रम दिखाया, परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् राजपूत सेना के बाहुबल और अपूर्व साहस के सन्मुख यवन सैन्य के पाँव उखड़ गये।

अलाउद्दीन की सेना जब परास्त हुई तो वह विचार सागर में गोते खाने लगा। हृदय के विचार उथल पुथल होने लगे। चित्तौर के महावीर राजपूतों पर विजय लाभ करना उसने असम्भव समझ लिया और इस युक्ति से अनुपम लावण्यमयी सुन्दरी पद्मावती को हस्तगत होते न देख दुष्ट ने कुटिल कपट नीति के अवलम्बन करने का बीड़ा उठाया। उसने दूत द्वारा महाराज भीमसिंह को सन्देसा भेजा कि यदि महाराज कृपा करके महाराणी पद्मावती के दर्शन उसे दर्पण द्वारा ही करा दें, तो वह इस बात पर सन्तुष्ट होकर सहर्ष अपनी राजधानी दिल्ली को लौट जावेगा। भीमसिंह ने यह समाचार पा कर इस विषय में अपने योग्य योग्य सभासदों से परामर्श लिया। अन्त में यह निश्चय हुआ कि यदि इसी बात पर अलाउद्दीन युद्ध की इतिश्री करना चाहता है, तो व्यर्थ में राजपूतों और यवनों के रक्त की नदियाँ बहाने से क्या लाभ होगा? महाराणी पद्मावती को दर्पण द्वारा दिखा देने में वीर राजपूतों की तो कोई हानि न होगी और उधर सहस्रों प्राणियों का संहार होने से बच जायगा और यवन अलाउद्दीन सहज में चित्तौर छोड़ कर दिल्ली को लौट जायगा।

महाराज भीमसिंह ने अलाउद्दीन की बात स्वीकार कर ली। और कायर अलाउद्दीन राजपूतों के वचन पर पूर्ण विश्वास करके अकेला चित्तौरगढ़ के भीतर चला आया। दर्पण द्वारा अलाउद्दीन को पद्मावती के दर्शन हो गये और वह पद्मावती की प्रशंसा करता हुआ महाराज भीमसिंह से बिदा हो अपने डेरों को वहाँ से चलने लगा। उसका ऐसा मित्रता युक्त वर्ताव देख महाराज भीमसिंह उसके साथ हो लिये। वीर राजपूतों के हृदय में सत्यता और धर्म-भाव ऐसे दृढ़ होते थे, उनके चरित्र ऐसे निर्मल और पवित्र होते थे कि उनके चित्त में शत्रु की ओर से कभी कभी विश्वासघातकता या कपट का विचार नहीं होता था। आजकल की सभ्य जातियाँ व्यर्थ की बकवाद किया करें, पर वीरोचित व्यवहार सीखने को अभी

जन्म जन्मान्तर राजपूतों से शिक्षा ले सकती हैं।

अलाउद्दीन का हृदय भीमसिंह के हृदय की भाँति पवित्र और निष्कपट नहीं था। अलाउद्दीन जानता था कि भीमसिंह उसे दुर्ग के बाहर तक पहुँचाने अवश्य आवेंगे। इससे उसने अपनी सेना का कुछ भाग बाहर छिपा कर तैयार रक्खा था। जैसे भीमसिंह दुर्ग के बाहर हुए, वैसे ही कपटी अलाउद्दीन की छिपी हुई सेना ने उनको अपना बन्दी बना लिया। अलाउद्दीन ने पद्मावती के पास कहला भेजा कि यदि वे भीमसिंह का उद्धार चा ती हों, तो उसकी बेगम बनना स्वीकार करके उसके डेरे में अपने आप चली आवें। कुल राजपूतों का चेहरा इस प्रस्ताव को सुन कर लाल पड़ गया। वे क़सम खा खा कर अलाउद्दीन से कपट का बदला चुकाने की प्रतिज्ञा करने लगे। पर विदुषी महाराणी पद्मावती बड़ी धीरता और गम्भीरता के साथ अपने प्राणपति के कारागार से मुक्त करने और अधम अलाउद्दीन के कपट का फल चखाने का यत्न सोचने लगीं। कभी उनके नेत्र क्रोध से लाल हो जाते थे और कभी फिर मुख पर पूर्ववत् गम्भीरता का भाव झलकने लगता था। अन्त में उन्होंने अलाउद्दीन से कहला भेजा कि यदि वह भीमसिंह को छोड़ देने का वचन दें, तो वे उसके साथ सहर्ष दिल्ली चली जावेंगी।

अलाउद्दीन की सारी लालसा यही थी। पद्मावती स्वयम् आना स्वीकार करती है, इससे अधिक आनन्ददायक बात और उसके लिए क्या होती? उसे अपनी कामना पूर्त्ति की आशा होने लगी और पद्मावती के साथ स्वर्ग सुख भोग करने की आशा से उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। महाराणी पद्मावती की बात को उसने सहर्ष अंगीकार कर लिया और साथ में ७०० बाँदियों के डोलों का आना स्वीकार कर पद्मावती को शीघ्र कृपा करने का सन्देशा कहला भेजा।

पवित्र-मूर्त्ति पतिव्रता महाराणी पद्मावती पति के उद्धार निमित्त चलने को तैयार हुईं। डोलों में ७०० सर्वोत्तम शस्त्र वीर योद्धा बिठलाये गये। प्रत्येक डोले के लिए ६ वीरवर कहार के रूप में नियत किये गये, और इस प्रकार विदुषी पद्मावती ने चित्तौरगढ़ से अलाउद्दीन के डेरों की ओर प्रस्थान किया। कुछ ही काल के पश्चात् यह डोले अलाउद्दीन के शिविर के समीप पहुँच गये। पद्मावती ने अलाउद्दीन से भीमसिंह के अन्तिम वार दर्शन कर लेने की आज्ञा चाही। प्रार्थना स्वीकार की गयी और वे कारागार में भीमसिंह से मिलने के लिए पहुँचाई गयीं। इधर अलाउद्दीन का हृदय पद्मावती के पाने की लालसा से हाथों उछलने लगा। एक एक पल उसे वर्षों के समान ज्ञात होने लगा। वह नहीं

जानता था कि वीरबाला पतिव्रता महारानी पद्मावती अपने पवित्र शरीर पर उसकी छाया तक न पड़ने देंगी।

कारागार में पहुँचते ही पद्मावती दौड़ कर अपने पतिदेव के चरणों से लिपट गयी। उनकी चरण रज को अपने मस्तक पर चढ़ा कर सब समाचार बतलाया और झटपट वहाँ से निकल के चित्तौरगढ़ को चले चलने की प्रार्थना की। महाराज कारागार से बाहर आये और शीघ्रता पूर्वक युगल दम्पती अपने अपने घोड़ों पर सवार हो गये। महारानी पद्मावती डोलों में विद्यमान अपने वीर योद्धाओं को डोले से बाहर आने और दुष्ट यवन-सैन्य का संहार करने की आज्ञा दे कर अपने घोड़ों की बाग चित्तौरगढ़ की ओर मोड़ दी। प्रायः जितने राजपूत महारानी के साथ आये थे, सब इस अवसर पर काम आये। पर महाराज और महारानी दुष्टों के हाथ से बच कर सकुशल चित्तौरगढ़ में पहुँच गये।

धन्य हो वीर बाला, धन्य हो! वीर विदुषी महारानी पद्मावती तुम्हारा साहस और पराक्रम धन्य है! आज तुम्हारे ही कौतुक से महाराज भीमसिंह ने शत्रु के पंजे से छुटकारा पाया है। अलाउद्दीन तुम्हारे ही यत्नों से हार कर मूर्खों की भाँति लज्जित होकर बैठ रहा। तुम्हारे अतुलित तेज और बल, निर्मल पति-भक्ति तथा पवित्र पातिव्रत के कारण आज भी इतिहास के पृष्ठ पर स्वर्णाक्षरों में तुम्हारा सुन्दर नाम अंकित है। और धन्य है तुम्हारी राजपूत सेना और उसकी अतुल देश-भक्ति तथा राजभक्ति को कि जो उस ने इस प्रकार अपने देश और स्वामी की रक्षा के निमित्त अपने प्राणों को हँसते हँसते न्यौछावर किया है।

यह सब होने पर भी अलाउद्दीन के हृदय से पद्मावती के पाने की लालसा दूर न हुई। क्रोधान्ध हो उसने पुनः भीमसिंह से युद्ध करने का विचार ठाना और और कुछ अधिक सेना लेकर चित्तौर गढ़ पर आक्रमण कर बैठा। अलाउद्दीन यवन था। पतिव्रता राजपूत रमणियों के पवित्र और अटल पतिभक्ति का प्रभाव उस को विदित न था। परम पवित्र आर्य्य बालाएँ पातिव्रत के आगे अपना जीवन तृण सम समझती हैं, शरीर में प्राण रहते पर पुरुष को अपनी देह का एक रोम नहीं स्पर्श करने देती हैं, इन बातों का ज्ञान बेचारे यवन-कुल के अलाउद्दीन को क्या हो सकता था!

युद्ध फिर आरम्भ हुआ। महाराज भीमसिंह के शूरवीर सामन्त प्रथम ही महाराज को अलाउद्दीन के हाथ से मुक्त करने में अपने प्राणों का बलिदान दे चुके थे, इस कारण महाराज का सेनाबल प्रथम से इस बार बहुत कुछ क्षीण हो

गया था। सन्मुख युद्ध में स्वदेश रक्षा करते हुए प्राण त्याग ने के अतरिक्त अब और कोई उपाय नहीं था। समस्त राजपूत वीरों ने केसरिया बाना पहिना। राज पूत बालाओं के पतिव्रत रक्षा के निमित महा विकट चिता चुनवायी गयी। अनन्तर सब राजपूत अपनी अपनी माता, भगिनी, पुत्री तथा प्रियतमा सहधर्मिणी से विदा हो हो कर दुर्ग के बाहर कूद पड़े—"महाराज भीमसिंह की जय" इस ध्वनि से शत्रु के हृदय कँपाते हुए वे यवन सेना पर टूट पड़े।

वीर राजपूत रमणियाँ अपने प्राण प्रिय स्वामियों को स्वदेश हित अर्पण होते देख उनके चरण कमलों के समीप पहुँचने की तयारी करने लगीं। परम विदुषी महारानी पद्मावती ने महा विशाल चिता के समीप आ उसकी परिक्रमा की अनन्तर अपने पति देव के चरण कमलों का ध्यान कर के उन्होंने प्रसन्न मुख चितारोहण किया। पीछे पीछे राजपूत बालाएँ एक एक करके चिता में कूद पड़ी। कामी अलाउद्दीन की घोर निकृष्ट पापिष्ट वासनाओं की प्रज्वलित अग्नि में परम पवित्र स्वर्गीय आर्य्य बालाओं की आहुति पड़ने लगी। चिता धक धक करके पुकार ने लगी—"कौन आर्य्य वीर इस अत्याचार का बदला यवनों से चुकायेगा? भारत की सती साध्वी स्त्रियों का ख़ून इस प्रकार व्यर्थ में बहने से बचायेगा?"—प्रकृति चिल्ला कर कहने लगी "कोई नहीं!" भारत की आर्य्य लक्ष्मी शत्रुओं के यहाँ बेड़ियों से जकड़ी हुई बोली—"कोई नहीं!" पर दक्षिण की भूमि कड़क कर बोल उठी—"हम! और कोई नहीं!!!"

—धर्म्म पत्नी पं० रामगोपाल मिश्र

विवाह और उसका आदर्श

मनुष्य जाति के दो अंग हैं। स्त्री और पुरुष। दोनों भाग अलग अलग रह कर अनेक अङ्गों में अपूर्ण रहते हैं। क्या गार्हस्थ और क्या धार्मिक-दोनों जीवनों में स्त्री पुरुषों के मेल की आवश्यकता है। इस मेल में विच्छेद नहीं है, इस मेल में बुरा भाव या स्वार्थ नहीं है, तो क्या यह मेल उस अवस्था में जिसमें पुरुष या स्त्री यह भी नहीं जानते कि "संसार क्या है" "हम क्या हैं" "हमारे मेल का उद्देश्य क्या है" क्या हो सकता है। ऋषियों और मुनियों के वचनों को उद्धृत करके लेख को बढ़ाने का विचार नहीं है। जो प्रत्यक्ष है, जिस में किसी को कुछ वक्तव्य नहीं—उस जगच्चक्षु सूर्य्य को दिखाने के लिए क्या कभी दीपक की सहायता दरकार होती है? एक मन, एक प्राण और एक आत्मा होकर पुरुष और स्त्री अपना जीवन सफलता पूर्वक व्यतीत कर सकते हैं। उनका जीवन देवताओं का जीवन होता है। उसमें दुःख नहीं, विषाद नहीं,

स्वार्थ नहीं और शिथिलता नहीं। उसमें आनन्द है, प्रेम है, स्वर्गीय सुख की छटा है और अद्वैत भाव है। संसार में जितने महापुरुष हुए, वे सब भली माताओं की गोद में पले, भली सहधर्म्मिणियों की पुण्यच्छाया में उनके भावों का विकाश हुआ और उसी विकसित अवस्था में वे अपनी आत्मा और अपने देश की असंख्य आत्माओं का अभूतपूर्व उपकार कर गये। पर आज कितने हिन्दू घरों में सुखशांति का राज्य है, भावों का ऐक्य है और प्रेम का समुद्र उमड़ रहा है? पति का पत्नी से व्यवहार जितना कलुषित, निन्दित और नीच हो गया है, इस गिरे हुए समय में भी स्त्रियों का पतियों के साथ फिर भी बहुत अच्छा व्यवहार है। भारत की महिलाओं की विशेषता और उनकी सहनशीलता को देख कर ही स्वनाम धन्य ब्रह्मलीन स्वा० विवेकानन्द जी ने एक बार कहा था. कि "भारतवर्ष में राम तो अनेक हुए, पर सीता एक ही हुई"। पर एक पक्ष से कोई कबतक उड़ेगा। प्रकृति के अटल नियम का प्रतिवाद हमारी महिलाएँ कब तक करेंगी। यदि इस वैषम्य पर इस परिवर्त्तन पर इस गार्हस्थ सुखकी क्षीणता पर ठंडे मनसे विचार किया जाय तो परिणाम यही निकलेगा कि हम विवाह को खेल और उसके आदर्श को खेल की सामग्री समझने लगें। जिनके शरीर में बल नहीं, गाँठ में दाम नहीं, बैठने को स्थान नहीं, वे भी विवाह करने के लिए बिलबिला रहे हैं। अपनी निकृष्ट वासनाओं की पूर्त्ति करने के लिए, अपने घरेलू काम को सिर्फ चलाने के लिए अब यहाँ विवाह किया जाता है। प्रकृति पुरुष का, ब्रह्ममाया का, न्याय नीति का मिलाप अब कहाँ है? जिनकी अवस्था किसी कारण से हीन है-वे विवाह न करें-अविवाहित रहकर ही वे अपना और अपनी जाति का उपकार कर सकते हैं। उनके विवाह न करने से विवाह करने योग्य पुरुषों का क्षेत्र ज़रा विस्तृत हो जायगा, कुपात्रों को दान देकर धन तो नष्ट होना ही है, पर जो दान के पात्र हैं, वे भी भूखे ही रह जाते हैं। यह डबल हानि एक ही ग़लती का परिणाम स्वरूप होती है।

पर यह मिलन, यह स्वर्गीय सुख और यह प्रेमरस-प्लावित घरेलू जीवन, बाल-विवाह के द्वारा कभी प्राप्त नहीं हो सकता। समय बदल गया। एक की आजीविका से सारे घर का पेट भरने का समय अब नहीं रहा। अब तो अपना अपना साज़ और अपना अपना राग है। बाल्यकाल में बालक के भविष्य जीवन के विषय में कुछ निश्चय नहीं हो सकता। आर्थिक दृष्टि से भी जो आजकल की दिव्य दृष्टि है, यह एक बहुत बड़ा अनर्थकारक विषय ठहरता है।

पुरुष का स्वास्थ्य और उसके गुणों

के साथ स्त्री के स्वास्थ्य और गुणों के मिल जाने पर जो विवाह होगा, वही संसार में अच्छे फल देनेवाला सिद्ध होगा।

खेत में बीज वपन करते समय हमारे अनजान किसान जितना सोच समझ से काम लेते हैं, उतनी क्या उससे आधी भी हमारे शहरी लोग अपनी सन्तानोत्पत्ति में पर्वाह नहीं करते। जब तक देशवासी, मनुष्यों की खेती को वैज्ञानिक रीति से करना नहीं सीखगे, उस समय तक शङ्कर, गौतमबुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, ग्लेडस्टन, मार्ले, हैकल, गोखले या तिलक जैसे महापुरुषों से देश की शोभावृद्धि नहीं होगी। बाल्यविवाह का त्याग और आवश्यकता होने पर विवाह करने से ही अच्छा परिणाम निकलेगा। जन्म भर ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी रहने वाले पुरुष और स्त्रियाँ जब इस देश में बसने लगेंगे, तभी भारत का मुख उज्ज्वल होगा। यद्यपि जन संख्या की आज जैसी बढ़ौतरी रुक जायगी, पर उसके साथ साथ मृत्यु संख्या का भी बहुत बड़ा ह्रास होगा। कम उम्र में मरने वाले दस बच्चों से दीर्घायु, मेधावी और मनस्वी एक बालक अच्छा है।

लड़के की अवस्था कम से कम २५ वर्ष और लड़की की अवस्था कम से कम १७ वर्ष विवाह के समय होनी चाहिए। अपने आयुर्वेद के आचार्यों का भी ऐसा ही मत है और उस मत की हम को अब अकारण अवहेला नहीं करनी चाहिए।

देशकाल से सम्बन्ध रखने वाली आवश्यक बातों में जो जाति आवश्यक परिवर्त्तन करना बन्द कर देती है, वह जाति शीघ्रही भूतल पर से उठ जाती है।

आर्थिक, धार्म्मिक, पारिवारिक और नैतिक विचार दृष्टि से विचार करने पर बाल-विवाह और अनावश्यक होने पर विवाह करना दोनों ही हिन्दू समाज के लिए विष भरे कुफल के समान प्रतीत होते हैं*।

—ज्वालादत्त शर्मा
"वैद्य"

प्रभावती

प्रभावती का पाणिग्रहण सत्रह वर्ष की अवस्था में ही हो गया था किन्तु तीन वर्ष के पश्चात् उसके पति आशुतोष घोष ने क्रुद्ध हो उसे पिता के घर भेज दिया था। तब से प्रभा अपनी माता के पास रहती थी किन्तु वह अपने प्राणेश्वर की सुध घड़ी भर भी न बिसर सकी। प्रति दिन जब वह तुलसी की क्यारी में जल सींचती तो हाथ जोड़ प्यारे पति के हृदय को अपनी ओर फेरने की प्रार्थना

* 'हिन्दुओं की शोचनीय अवस्था, नामक लेखक के अप्रकाशित ग्रन्थ से।

करती। जब वह माता काली के मंदिर मेँ जाती तो अपने हृदयेश्वर को पाने की गदगद हृदय हो विनय करती। विरहाकुल हो प्रभा ने कई एक रातेँ तारे गिनने मेँ ही व्यतीत कर दीँ। जब सायंकाल के समय पक्षीगण अपने अपने बसेरोँ की ओर उड़ते तो प्रभा उन्हेँ अपनी व्यथा प्राणप्यारे के पास पहुँचाने के लिए कहती किन्तु वे कुछ भी उत्तर नहीँ देते।

प्रभा काशी मेँ रहती थी। एक दिन वह गङ्गास्नान से घर आ शीशे मेँ अपना चंद्रानन निहारने लगी। उसने सोचा "क्या मैँ सुन्दर नहीँ हूँ? तब प्राणेश्वर मुझे क्योँ नहीँ अपनाते? क्या मैँ सुशीला नहीँ हूँ? फिर प्राणनाथ मुझे क्योँ नहीँ रखते? मैँ उनकी ही हूँ, उन पर अपना जीवन न्यौछावर करती हूँ फिर वे मुझे क्योँ भूल रहे हैँ?" तब हृदय के आवेश मेँ आ प्रभा अपने भावोँ को इस प्रकार प्रगट करने लगी जैसे कि उसके जीवन सर्वस्व स्वामी सुन रहे होँ। "मेरे प्यारे पति! क्या आप मुझेँ भूल गये हैँ? किसने आप के हृदय को पत्थर सा कठोर बना दिया है? यह दासी आप की है। क्या आप इसे अपनी प्रभा नहीँ कहेँगे? मैँ आपके मधुराधरोँ द्वारा केवल एक बार अपना नाम सुनने के लिए उत्सुक हूँ। इस से मैँ आनन्द मेँ भर सकूँगी। मैँ जानना चाहती हूँ, कि आप मुझे प्यार करते हैँ।" तदनंतर वह फूट फूट कर रोने लगी किन्तु वहाँ उसे धैर्य देने वाला कोई नहीँ था। थोड़ी देर मेँ वह अपनी सुन्दर फलोँ से लदी हुई पुष्पोँ से सुरभित वाटिका मेँ गई। वह लाल लाल पुष्पोँ को देख कर कहने लगी "ये मेरे पति के ओठ हैँ।" फिर चौँक कर कहने लगी "नहीँ उन अधरोँ का माधुर्य्य तो इनसे कई गुना अधिक है।" फिर वह बहुत से कोमल पत्ते इकट्ठे कर उनकी एक शय्या बना अपनी साड़ी के आँचल से अपने पति को उस पर लेटा हुआ जान वायु करने लगी। किन्तु जब अपने पति को नहीं देखा तो वह एक वृक्ष की छाया मेँ बैठ अश्रुपात करने लगी। वह प्राणेश्वर के ध्यान मेँ निमग्न थी सहसा एक मनुष्य प्रभा के सन्मुख उपस्थित हुआ। वह सन्यासियोँ सा गेरुआ वस्त्र पहिने हुए था। उसकी दाढ़ी लम्बी थी। प्रभा तनिक भी विचलित अथवा भयभीत नहीँ हुई। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह उसकी प्रतीक्षा ही कर रही थी।

"बेटी! तुम इतनी दुःखी क्योँ मालूम पड़ती हो?" साधू ने पूछा। प्रभा ने मन्द मुसक्या कर उत्तर दिया "हाँ! वास्तव मेँ आप अवश्य मेरी दशा को समझ सकेँगे क्योँकि हम दोनोँ एक ही मार्ग के पथिक हैँ। हम दोनोँ का उद्देश्य भी एक ही है। अन्तर यही है कि आप जिसकी खोज मेँ थे उसे पा चुके हैँ किन्तु मैँ अभी तलाश ही मेँ हूँ।"

फिर वह साधु की ओर साहस पूर्वक बढ़ कहने लगी "क्या आप मेरी सहायता करेंगे ?" साधु ने उत्तर दिया "यह मेरा धर्म है।"

तब प्रभा एक ईंट के टुकड़े से अपने पति का नाम भूमि पर लिख कर कहने लगी, "मैं विनय करती हूँ कि आप कलकत्ते जा उनका हृदय मेरी ओर फेर दें। वे मेरे स्वामी हैं। साधु जी जाइये मेरे पति को सुधार दीजिये। मैंने सुना है कि वे बहुत मद्य पीने लगे हैं किन्तु वे मेरे ईश्वर हैं। पृथ्वी के राज्य के लिए भी मैं उन्हें नहीं छोड़ सकती।"

"प्यारी बेटी ! घबड़ाओ मत। वह तुम्हें फिर मिलेगा। तुम जानती हो कि कलकत्ता बहुत दूर है किन्तु दूसरे सप्ताह में आशुतोष तुम्हारे निकट होगा। चिन्ता छोड़ दो बेटी !" साधु ने कहा।

"महाराज ! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। आप जल्दी क्यों नहीं आये। बिना गुरू के ईश्वर नहीं मिलता है। आप के द्वारा मुझे विश्वास है कि मैं हृदय के ईश्वर को प्राप्त करूँगी।" इतना कह कर प्रभा ने सन्यासी के चरणों में मस्तक झुकाया, जब उठी तो देखा कि साधु जी नहीं हैं।

* * * *

आशुतोष घोष ने पूछा "बाबा जी, क्या आप सामुद्रिक जानते हैं ?"

"हाँ बेटा, कुछ जानता हूँ" कह कर साधु जी आशुतोष की हथेली देखने लगे। कुछ देर बाद सन्यासी ने कहा "जीवन की रेखा अधिक लम्बी नहीं है। तुम्हारी मृत्यु पचास वर्ष के भीतर होगी। कुछ वर्षों के बाद तुम धनवान हो जावोगे, किन्तु अभी एक वस्तु तुम्हें भाग्यवान होने से रोकती है। मुझे देखने दो वह क्या है। हाँ ! यदि मैं कुछ भूतकाल का वर्णन करूँ तो आप मुझे क्षमा करेंगे। मुझे आप का विवाह होगया मालूम पड़ता है किन्तु आप अपनी धर्मपत्नी से असंतुष्ट हैं। वह आप के साथ नहीं है। इसी से तो लक्ष्मी आपके घर नहीं आती हैं। यदि तुम अपना भला चाहते हो, तो अपनी स्त्री को शीघ्र घर ले आओ।" ये शब्द कहते कहते साधुजी की वाणी गम्भीर हो गयी। फिर वे कहने लगे, "मैं ऐसे दुष्ट और अभागे मनुष्य के घर में नहीं रहना चाहता, जो अपनी सुशीला स्त्री को अकारण दूर रख कर उसे दुःख दे। यदि तुम जीना चाहते हो तो शीघ्र जाकर उससे अपने अपराध की क्षमा माँगो, नहीं तो मैं भविष्य वाणी करता हूँ कि तीन दिन में तुम मर जाओगे।" ये बातें कह कर साधु जी उठ खड़े हुए।

आशुतोष भयभीत हो गया। उसका साधु के शाप में पूर्ण विश्वास था। साधु के चमत्कारी शब्दों ने उसके हृदय पर जादू का सा प्रभाव डाल दिया। पल भर में उसके विचार बदल गये। वह साधु के चरणों पर गिर कर कहने लगा,

"बाबा जी! मैं आप की आज्ञा पालन करूँगा। मैं अपनी प्रभा को लाऊँगा। निस्संदेह वह मेरे घर की "प्रभा" है।"

"तब तक मैं यहाँ नहीं ठहर सकता" कह कर साधु जी चल दिये। आशुतोष ने घर में जा मद्य की सब बोतलें बाहर फेंक दीं। तदनंतर उसके चित्त में शांति हुई और वह विचारने लगा "अब मेरी प्यारी के रहने के लिए मेरा हृदय शुद्ध हो गया है। वह अब अपने घर आ सकती है। और फिर वह बनारस जाने की तयारी करने लगा।

* * * *

अन्नपूर्णा का मंदिर आज स्त्रियों से ठसाठस भरा है। बहुत से पुरुष बातें कर रहे हैं और स्त्रियाँ हँस रही हैं। कुछ पुजारी गण मंत्रोच्चारण कर रहे हैं और नारियाँ स्तोत्र पढ़ रही हैं। आँगन में कुछ युवा पुरुष स्तुति के पद, भगवद् गीता, तुलसीकृत रामायणादि धर्मग्रंथ पढ़ रहे हैं। वहाँ एक स्त्री अपने प्राणवल्लभ के साथ दर्शन करने आरही है। उसके शरीर की शोभा नीली साड़ी और कई एक सुन्दर आभूषणों के साथ मिल कर चौगुनी हो रही है। उसने मंद हास्य हँस कर अपने पति से कुछ कहा, और पति ने भी सुन कर मुसकरा दिया। एक अन्य रमणी जो इस भाग्यवान जोड़े को देख रही थी, गहरी साँस छोड़ माता अन्नपूर्णा के दर्शनार्थ भीड़ में आगे बढ़ी। उसने माता के चरण कमलों मे सिर झुका कर कहा, "हे महा माई, मेरी ओर देखना।" जब यह स्त्री उठी तो उसने एक परिचित पुरुष को आते देखा। और वह निकट पहुँच उसका हाथ पकड़ उसे ले जाने लगा। स्त्री बिना कुछ बोले चाले उसके साथ जाने लगी। वह मनुष्य मंदिर के बाहर जाकर उस रमणी के साथ गाड़ी पर सवार हो गया। साईस ने गाड़ी का फाटक बन्द कर दिया और गाड़ी चल पड़ी।

मनुष्य ने उस स्त्री को अपने निकट खींच कर कान में कहा "मेरी प्यारी प्रभा।" प्रभा बच्चे की भाँति रोने लगी। मनुष्य ने घबड़ा कर पूँछो "क्या तुम मुझे नहीं पहिचानती हो? मैं तुम्हारा आशु हूँ। मेरे अपराधों को तुम भूल जावो, उन्हें क्षमा कर दो। प्यारी प्रभा! बोलो।" उस समय आशुतोष नहीं समझ सका कि प्रभा क्यों रो रही है। एक पतिव्रता स्त्री अपने प्राणेश्वर को कदापि नहीं भूल सकती है। स्वामी भूल सकता है। प्रभा अत्यन्त आनन्द के कारण रो रही थी, उस ने रुद्ध कंठ से कहा, "प्रभो! मैं इस समय नहीं बोल सकती किन्तु मुझे अब मत छोड़ना।" फिर उसने आशु की गोद में झुक कर कहा "आप को यहाँ किसने भेजा?"

आशु ने उत्तर दिया 'ईश्वर ने मुझे भेजा है और तुम मुझे यहाँ खींच लाई हो। प्रभा आनन्द पूर्ण नेत्रों से आशु का मुँह निहारने लगी, और फिर प्रार्थना की "मुझे अकेली न छोड़ना।"

—श्यामसुन्दरलाल गुप्त

मिलन

शोभा की शादी हुई थी, लेकिन उसने अभी तक अपने पति-देव का दर्शन न किया था। वही विवाह के दिन एक बार चुपके चुपके-सब लोगों की आँख बचा कर पति के कमनीय चेहरे पर दृष्टि डाली थी। बस, तभी से ख़तम। शोभा कुलीन कन्या नहीं थी, और न गरीब की लड़की थी, लेकिन तिस पर भी आज १८ बरस की अवस्था तक उसे पति के दर्शन से क्यों वंचित रहना पड़ा, इस लिए कहानी आरम्भ करने के पहिले इसका कारण बता देना आवश्यक मालूम होता है। उसके विवाह के थोड़े ही दिन बाद शोभा के पितामह और उसके ससुर के साथ कुछ साधारण बात में मनोमालिन्य हो गया, और वह दिन दिन बढ़ता गया। उस समय शोभा के ससुर ने कहला भेजा कि आज ही मेरी पुत्र बधू भेज दो। क्योंकि मैं ऐसे स्थान में अपनी बहू नहीं रखना चाहता। शोभा के पितामह ने उसको एक कड़ा उत्तर लिख भेजा। ससुर ने फिर उन्हें लिखा, कि यदि तुम लड़की को एक सप्ताह के अन्दर मेरे यहाँ न छोड़ जावोगे, और मुझसे क्षमा न माँगोगे, तो मैं अपने लड़के का दूसरा विवाह कर लूंगा। हम रामलाल हैं, हमारे लड़के के साथ तुम्हारी पौत्री का विवाह होने से तुम्हारे चौदह पुरखे तर गये, और अब हमारा ही अपमान!

रमानाथ भी कम जिद्दी न थे। उन्होंने रामलाल को लिखा, कि यदि तुम खुद आकर बिदा कराने के लिए मुझसे कहो, तब तो मैं अपनी पौत्री भेजूंगा, नहीं तो वह अपने पितामह का स्नेह आश्रय छोड़ कर तुम ऐसे निर्दय के घर कभी न आवेगी।"

इस कड़े उत्तर पर सब को आश्चर्य हुआ। पुत्र ने आकर कहा, "पिता जी! यह आप ने क्या किया। लड़की जन्म भर के लिए बिगड़ जायगी। उसका जीवन दुख ही में कटेगा।"

वृद्ध ने भौं चढ़ा कर कड़ी दृष्टि से अपने पुत्र के मुख की तरफ़ देखा, लेकिन कुछ जवाब न दिया। इसके कुछ ही दिन बाद लाल कागज़ में सुनहली स्याही से छपा हुआ एक पत्र मिला। उससे मालूम हुआ, कि आगामी बुधवार को शोभा के पति रामचन्द्र का दूसरा विवाह है। और वह कानपुर निवासी बाबू प्रेमचन्द्र की कन्या से निश्चय हुआ है। यह पत्र शोभा के ससुर रामलाल ने लिखा था।

शोभा की माता ने इसी शोक में संसार से बिदा ली और पिता ने एक बार शोभा के पितामह से फिर कहा। लेकिन वह विफल मनोरथ हुए। शोभा अच्छी तरह यह बातें न समझने पर भी अनमनी

होकर घूमने लगी। उधर जिद्दी रमानाथ ने अपने वकील को बुलवाया, और अपनी संपत्ति का दान पत्र इस प्रकार लिखा—

"उनकी ज्येष्ठ पुत्री शोभा देवी नकद ५०) हजार रुपया पावेगी। लेकिन यदि उसका पति उसे अपने पास न रख कर दूसरी शादी करेगा, तो उसे दस ही हज़ार रुपया मिलेगा। और यदि उसका पति दूसरी शादी करके शोभा को रखना चाहे, तो शोभा का पितामह-दत्त संपति में कुछ भी दावा न रहेगा।" यह दान पत्र रमानाथ ने इस आशय से लिखवाया, कि रामलाल संपत्ति के लालच से निर्मल का दूसरा विवाह न करें।

रामलाल को संपति का बड़ा लालच है, बुद्धिमान रमानाथ को यह अच्छी तरह मालूम था कुछ भी हो। रमानाथ ने जो जाल बिछाया, वह निष्फल न गया। दामाद रामचन्द्र एक दिन एकाएक गायब हो गया। पीछे मालूम हुआ, कि वह पी० ओ० कम्पनी म सरोजनी नामक जहाज में नौकर होकर समुद्र पार चले गये हैं। उनके पास पहिले कुछ रुपया था, उसे, और विवाह में प्राप्त बहुमूल्य घड़ी चेन और अँगूठी इत्यादि सब बेंच कर उसने गृह त्याग किया था। पीछे निर्मल ने एक चिट्ठी अपने पिता को लिखी—

पिता जी!

मैं ने आप की आज्ञा उल्लंघन की, तब भी मुझे आशा है, कि आप मुझे क्षमा करेंगे।

रामचन्द्र।

उसके बाद ५ वर्ष का लंबा समय बीत गया। रामचन्द्र सिविल सर्विस की परीक्षा पास करके फिर हिन्दुस्तान को लौट आये। यूरोप से लौटे उन्हें एक वर्ष बीत गया, लेकिन वह अपने घर नहीं गये। बम्बई में उन्हें नौकरी मिली थी, वहीं रहते थे। उनके पिता उनको देख आये थे; ससुर जी भी एक बार पूजा की छुट्टी में देश भ्रमण के बहाने दामाद को देख गये, केवल अभागिनी शोभा ही पति देव के दर्शन से वंचित रही।

उसके ससुर रामलाल और पितामह रमानाथ दोनों परस्पर की प्रतीक्षा करके निरर्थक विलम्ब कर रहे थे। दोनों सोचते थे, कि एक दफ़े कहने की देरी है। किन्तु जिद में दोनों बराबर थे। कोई छोटा बनना नहीं चाहता था। अन्त में सोच विचार कर रामचन्द्र के पिता ने पहिले रामचन्द्र को देश में बुलवाया। प्रायश्चित करके जाति में बैठाने का सब उद्योग किया गया। रामचन्द्र आकर सब कार्य समाप्त करके सबेरा होने पर "छुट्टी नहीं है" यह कह कर चले गये। वह भी जिद्दी बाप के जिद्दी बेटा थे। बिना पिता की आज्ञा के और बिना ससुर के बुलाये कैसे जा सकते थे। केवल बिचारी शोभा की कोई

जिद्द नहीं थी। वह तो शरम के मारे मरती थी और मन ही मन दुःख भोगती थी। उसके पिता भी कन्या के निमित्त अत्यन्त दुखी और उत्कंठित थे। किन्तु दामाद के व्यवहार से उनके मन में भविष्य के लिए यथेष्ट आशा बँधती थी।

इसी तरह चलते चलते शोभा देवी की जीवन नदी में एक छोटी सी लहर आयी। एक दिन प्रातःकाल के समय एक लिफ़ाफा पढ़ने से उसकी आखें लाल हो गयीं, कपोल गुलाबी हो गये, और पसीने से सारा बदन तर हो गया। चिट्ठी में लिखा था—

शोभा !

तुम मुझे नहीं पहचानती हो, तिस पर भी मैं आशा करता हूं, कि तुम मुझे भूली न होगी। जो पूछो, कि तुमने इतने दिन बाद चिट्ठी क्यों लिखी, तो मैं उत्तर नहीं दे सकता। क्योंकि मैं स्वयम् नहीं जानता। आज मैं अपने आप को नहीं सँभाल सका, इसके लिए तुम मुझे क्षमा करना। तुम यदि मुझे पत्र लिखोगी, तो क्या तुम्हारे घर के लोग तुम पर क्रोध कर गे?

—तुम्हारा राम

विवाह के दिन के ६ वर्ष सात महीने तेरह दिन के बाद यह प्रथम प्रेम-पत्र शोभा को मिला था। शोभा बड़ी हो गयी थी, वह अपनी अवस्था समझती थी। वह लज्जा और अभिमान त्याग कर लिखने लगी:—

"प्राणेश्वर !

इतने दिन पीछे इस दासी का ख्याल आया। अभागिनी अथवा भाग्यवती शोभा को फिर मत भूलना, शरण में रखना। क्योंकि शोभा आप की ही है।

शोभा।"

पत्र भेज कर शोभा को शरम मालूम हुई और उसने समझा, कि यह चिट्ठी मानो उपन्यास के प्रेम की अनुकरण है। लेकिन तब भी लज्जा ने न माना। इसके बाद चार पांच पत्र दोनों के बीच आये गये। आखिरी पत्र से शोभा को मालूम हुआ, कि कुछ दिन से उसके पति का शरीर अच्छा नहीं है। उन्होंने छुट्टी के लिए अरजी दी है। दार्जिलिंग या शिमला दो में किसी जगह जाँयगे। एक ठंढी साँस छोड़ कर शोभा ने मन ही मन कहा, "निर्दय। तब भी तुमने न लिखा, कि तुम्हारे पास आवेंगे, या तुम्हें ले आवेंगे।

शोभा अपनी बुआ के घर जबलपुर को गयी। शोभा, लीला और रमा "मारबिल रॉक" (Marble Rock) देखने के लिए बड़ी उकता रही थी। बुवाजी ने कहा, "बेटा ! आज रहने दो। बाबू जी घर में नहीं हैं. दूसरे दिन जाना।" लेकिन लड़कियों ने न माना। शोभा ने कहा,

"बुआ जी, बाबू जी घर नहीँ, तो क्या हरज है। भैया जी ले चलेंगे। आज का दिन बड़ा सुहावना है।" बुआ जी क्या करतीं, राज़ी हो गयीं। भाई साहेब लालमोहन अपने दाम बढ़ाने के लिए मुँह फुला कर बोले, "मैं जो तुम्हें सब को साथ ले चलूँगा, तो मुझे क्या दोगी?"

लीला क्रोधित हो गयी और बोली, "देंगे भला बड़े भाई को क्या? बड़ा भाई तो खाली काम करने को होता है। शोभा, तुम तो बड़े आदमी की स्त्री हो। बताओ, तुम क्या दोगी?" शोभा शरम से पानी पानी हो गयी। वह सोचने लगी, कि कौन हिसाब से उसे बड़ा आदमी कहा जा रहा है। और यही सोच कर वह आखोँ में शरमा गयी। लालमोहन उसके दिल को दरिद्र तो नहीं समझते। शोभा के मुँह का भाव देख कर लालमोहन ज़ोर से हँस उठे और बोले, "उठ, उठ, जल्द तयार हो जा। क्या बावली बन गयी है?"

शोभा ने बुआ से कहा, "तुम भी चलो बुआ जी!" लेकिन बुआ जी राज़ी न हुईं उन्होंने कहा, "न बेटा! वह घर में नहीं हैं। सब नहीं जाँयगे। वहाँ पर देवता तो हैं नहीं, और पहाड़ देखने का मुझे शौक नहीं।" लड़कियाँ जाने के लिए जल्दी से सब सामान ठीक कर चल दीं। पहुँचते पहुँचते दिन डूब गया और देखते सुनते शाम हो गयी। तब उन लोगों को सचेत करते हुए बादल गरज उठा। सब ने देखा, कि एक काली मेघमाला ने तमाम नीलिमामय आकाश को घेर लिया है। सब को यह मालूम हुआ, कि मानो यह मेघमाला एक विप्लव करना चाहती है। रमा ने कहा, "इस मनोहर निर्जन स्थान में दौड़ने को बड़ा जी चाहता है। अच्छा, आओ देखें, कौन वह देवदार का पेड़ पहिले छू सकता है।"

वे सब उस दूर को लक्ष्य करके दौड़ीं। लाल मोहन के रोकते रोकते लड़कियाँ चिड़ियों की तरह भागीं। उनके मना करने पर जब किसी ने न माना, तब वह भी दौड़े। इसी समय वायु सनसनाती हुई बहने लगी, वृक्ष पत्र नाचने लगे, मेघ सुर मिलाने लगे, और बिजली प्रकाश करने लगी। और उसी समय गंभीर वज्र ध्वनि हुई। लाल मोहन चिल्ला कर बोले, "शोभा, रमा, लीला, जल्दी लौटो, शहर की तरफ जल्दी लौटो।"

बिजली की कड़कड़ाहट में उनकी बोली वायु के साथ बह गयी। देखते देखते हवा के झोंके से वृक्ष की लताएँ और डालियाँ टूट टूट कर गिरने लगीं। अँधेरा हो गया। जब आँधी बन्द हो गयी तब अन्धकार से परिपूर्ण और जल से भरे मार्ग में लाल मोहन भयभीत होकर आगे बढ़ने लगे। उनकी दोनों बहिन तो मिल गयीं, किन्तु शोभा न मिली। शोभा को खोकर वह लोग डर के मारे व्याकुल हो गये। आँधी के बीच दौड़ते दौड़ते कौन

कहाँ जा पहुँचा था, कुछ पता न था। जब पानी की बूँदें बड़ी ज़ोर ज़ोर से पीठ पर गिरने लगी, तब सब का साथ छूट गया। भयानक अन्धकार में शोभा एकान्त हो पड़ी। डर के मारे उसका बदन सुस्त हो गया। डर डर के उसने पुकारा, 'लीला, रमा, भाई' लेकिन उसकी कोमल वाणी हवा में बह गयी। बादल फिर गरजे, बिजली फिर कड़की, और शोभा राह न पहिचान कर एक तरफ दौड़ने लगी। दौड़ते दौड़ते किसी चीज की ठोकर लगी। और "बाप रे" कह कर गिर गयी। जिस चीज़ से वह ठोकर खाकर गिरी थी, वह एक बँगले की सीढ़ी थी। अस्वस्थ चित्त से सावधान होकर वह बरामदे में पहुँची। हाथ फेर फेर कर उसने दरवाजा भी पाया। लेकिन कौन ऐसे कुसमय में किवाड़ खुले रहने देगा। द्वार भीतर से बंद था। वह किसका बँगला है, क्या है, क्या नहीं, यह सोचने समझने का उसे होश भी न था। खूब ज़ोर से चिल्ला कर उसने पुकारा, "कौन है? द्वार खोलो।" किन्तु शोभा की दुर्बल आवाज किसी ने न सुनी। वह अब खड़ी न रह सकी। और अवसन्न रह कर द्वार पर सो गयी। पहिले पहिल जब उसकी आँख खुली, तो उसे यह मालूम हुआ, कि वह स्वप्न देख रही थी। लेकिन जब उठ के बैठी, तब मालूम हुआ, कि किसी अपरिचित गृह में और अपरिचित शय्या पर उसे आश्रय मिला है। वह धीरे धीरे आगे बढ़ती थी, कि धीरे धीरे परदा उठा के एक अपरिचित पुरुष बोला, "आप उठ बैठी हैं" शोभा ने संकुचित होकर सिर झुका लिया। और समझा, कि यह मेरे आश्रय दाता हैं। आश्रय दाता को जो धन्यवाद देना पड़ता है, उसे भी वह भूल गयी। उसने सोचा, मालूम होता है कि स्वजाती हैं। अन्दर औरतें भी हैं। इनको चाहिए था, कि औरतों को भेजते। यह कैसी भद्रता है, कि खुद आकर खड़े हो गये। आगन्तुक पुरुष ने कहा, "माफ कीजियेगा। मेरे यहाँ कोई दासी या स्त्री नहीं है। आप की साड़ी भीजी है, बगल के कमरे में कपड़ा मिलेगा, जाकर पहिन लीजिए।

शोभा को बड़ा जाड़ा मालूम देता था, वह वस्त्र पहिनने के लिए उसी कमरे में चली गयी। घर में लम्प जल रहा था। कमरे में एक चुनियाई हुई धोती और एक गरम लोई थी। पहिले तौलिये से उसने बाल पोंछ डाले। फिर धोती पहिन कर और ऊपर से लोई ओढ़ कर बाहर निकल आयी। गृह-स्वामी कुरसी पर बैठे थे, लेकिन शोभा को इस नये आश्रय में नयी विपद का अनुभव होता था। और उसे डर होने लगा, कि स्त्री विहीन और एक परपुरुष के पास वह रात बितावेगी। उसके चित्त में डर समा गया और वह सभय कंठ से बोल उठी, "मोहन भैया नहीं आये?"

गृहस्वामी उठ खड़े हुए। और उन्होंने कहा, "कौन है, कोई तो नहीँ आया। मैँ देखता हूँ कि आप मेरी स्वजाति हैँ, तब फिर यह स्थान आप के लिए भयदायक कैसे होगा?" अब तो शोभा को बड़ा डर मालूम हुआ, वह कंपकँपे स्वर मैँ बोली, "हम लोग 'मारवेल रोक' देखने आये थे। शाम की गाड़ी मैँ लौट जाते। लेकिन आँधी आ गयी। सब के सब इधर उधर हो गये।" यह कहते कहते शोभा की कमल जैसी कोमल-उज्वल आँखोँ से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

गृहस्वामी बड़े असमंजस मैँ पड़े। वह सोचने लगे, अब हम इसे क्या कह कर सान्त्वना दैँ। उनकी कुछ समझ मैँ न आया। कुछ देर वह चुप बैठे रहे। फिर बोले, "वह भी ऐसे ही कहीँ ठहरे होँगे, अब हम सबेरे उठैँगे। आप थकी हुई हैँ, ज़रा देर विश्राम कीजिए। मैँ जाता हूँ।" यह कह कर वह दो पैर आगे बढ़ कर फिर पीछे लौटे। क्योँकि पीछे से कुछ आवाज मालूम हुई, शोभा आगे बढ़ कर कुछ दृढ़ स्वर से गृहस्वामी से बोली, "नहीँ नहीँ, मैँ ऐसे समय मैँ अकेले नहीँ रह सकती। मैँ रास्ते ही मैँ रहूँ, यह अच्छा होगा। क्योँकि मेरा आश्रयदाता एक युवा पुरुष है।"

गृहस्वामी शोभा का यह डर और कृपणता देख कर क्रोध से बोले, "क्या आप को यहाँ कोई तकलीफ है? किस लिए आप ऐसा कह कर मेरा अपमान कर रही हैँ। आप एक भद्र घर की लड़की मालूम होती हैँ। और मैँ भी एक भद्र मनुष्य हूँ। तब क्या मुझमैँ तनिक भी मनुष्यता नहीँ है। मेरे ऊपर आप का इतना भी विश्वास नहीँ? आप ने मेरी किस बात मैँ अभद्रता देखी?" बात बड़ी पवित्र थी, और वक्ता का मुँह भी गर्व से भरा मालूम देता था। यह देख कर शोभा के मन ने गृहस्वामी का विश्वास करना चाहा, लेकिन फिर वह बोली, "माफ़ कीजिए महाशय, अब तो आँधी बंद हो गयी। मैँ जाती हूँ।" यह कह कर शोभा चलने के लिए उद्यत हुई। किन्तु गृहस्वामी व्यस्त होकर बोले, "नहीँ नहीँ, यह नहीँ हो सकता। रात्रि के समय ऐसी अवस्था मैँ मैँ आप को न जाने दूँगा।" भयभीत स्वर मैँ अस्फुट स्वर से शोभा बोली, "हाय भगवान्! अब मैँ क्या करूँ?"

गृहस्वामी ने सोचा, "इस स्त्री का ख्याल ठीक है। यह हिन्दू बालिका है। इस कुसमय मैँ रात को स्त्री-शून्य गृह मैँ, अपरिचित मनुष्य के साथ रहना इसके लिए भयजनक होता है, इसमैँ सन्देह नहीँ।"

वह बोले, "अच्छा एक काम करो। मैँ आप के मकान को एक तार दे दूँ। वह लोग आकर आपको ले जाँय। आप उनका

पता बता दीजिए।"

झट से शोभा बोल उठी, "चन्द्रमोहन, बादशाहपुर।"

तार भेज कर गृहस्वामी आये, देखा, कि शोभा वहीं खड़ी हो कर रो रही है। उनकी इच्छा हुई, कि शोभा को हम सान्त्वना दें, लेकिन उन्हें शरम मालूम होने लगी। और फिर न मालूम शोभा सान्त्वना देने का क्या अर्थ निकाले। थोड़ी देर बाद वह बोले, "चुप रहो देवी, क्यों रोती हो? सवेरे कोई न कोई जबलपुर से आ पहुँचेगा।" शोभा कृतज्ञता भरी दृष्टि से गृहस्वामी की तरफ़ देखने लगी। गृहस्वामी पर अब उसे कुछ कुछ विश्वास होने लगा। उसने धीरे से पूछा, "आपका नाम क्या है?" गृह स्वामी ने कहा, "मुझे ऐसा मालम होता है कि मैं भी आप का स्वजाती हूँ। मेरा नाम है रामचन्द्र।"

शोभा का मुहँ लाल हो आया! वह सोचने लगी, "हे ईश्वर! दुनियाँ में कितने रामचन्द्र ह।"

क्लांत शोभा अब उस अपरचित जगह में निश्चिन्त होकर सो गई।

शोभा सो कर उठी। फिर अपने विशाल नेत्रों से चारों ओर उसने दृष्टि पात किया। और बाहर निकलने के लिए दरवाज़ा खोल के निकलना चाहती थी, कि गृह-स्वामी ने रास्ता रोक कर कहा, "शोभा, कहाँ जाती हो?"

पैर से दबी हुई सर्पिनी जैसे अपना फन उठाती है, उसी तरह शोभा अपने काले और लम्बे बाल अपने उज्वल मुख से हटाती हुई बोली, "आप भद्र सन्तान हैं, दूसरे की स्त्री और अपने शरणागत के साथ ऐसा व्यवहार न करिये।"

गृहस्वामी ने कुछ उत्तर न देकर शोभा का हाथ पकड़ लिया। क्रोध से काँप कर शोभा ने गृहस्वामी का हाथ झटक दिया, और बोली "पापी—"

रामचन्द्र ने अपनी पाकेट से एक पत्र निकाल कर शोभा के हाथ में दिया। और कहने लगे, "यह पत्र किस का लिखा है, पहिचानती हो?"

शोभा ने देखा, कि पत्र उसकी बुआ का लिखा है। वह तुरंत ही उसे पढ़ने लगी। पढ़ते पढ़ते उसका मुँह लाल और फिर सफ़ेद हो गया। पढ़ने के पीछे उसने और भी सजल नेत्र हो कर सिर झुका लिया। उसका सिर से पैर तक सारा शरीर काँप रहा था। वह जल भरे नेत्रों से रामचन्द्र की ओर देखने लगी और पत्र उसके हाथ से छूट पड़ा। रामचन्द्र नीरव हो कर शोभा का हाल देख रहे थे। उन्होंने चिट्ठी उठा कर कहा, "शोभा! सुनो, पत्र में क्या लिखा है।—"

"मुझे आज शाम को मालूम हुआ, कि तुम अब मीरगंज म रवेल रोक के पास वाले बँगले में रहते हो। मैंने सोचा था कि मैं खुद शोभा को ले के तुम्हारे पास छोड़ आऊँगा, लेकिन मकान में लौट के देखा कि लड़कियाँ मारवेल रोक देखने गयी हैं। मोहन और तुम्हारा तार एक साथ आया। तार से मालूम हुआ कि शोभा तुम्हारे पास पहुँच गयी। ईश्वर को धन्यवाद है। मैं समझता हूँ:कि तुम दोनों को यह मिलन सुखकर होगा। इसमें सन्देह नहीं। मोहन पत्र लेकर जा रहें हैं, उसी के साथ तुम दोनों आओ। शोभा की बुआ तुम दोनों को एक साथ देखना चाहती हैं।"

रामचन्द्र फिर बोले, "शोभा! हमारा तुम्हारा यह मिलन ईश्वर की इच्छा है।"

शोभा अब तक खड़ी खड़ी काँपती थी। रामचन्द्र की एक भी बात उसके कान में न पहुँची थी। वह बोल उठी "संभव है कि यह लेख बआ जी का न हो—"

इसके आगे शोभा कुछ न बोल सकी। उसकी बोली बन्द हो गई। रामचन्द्र ज़ोर से हँसे और बोले—

"शोभा! तुमने पहिले ही मुझे एक बदमाश समझ लिया था। किसी तरह से वह बात तुम भूलना ही नहीं चाहती, लेकिन हाँ, तुम यह कह सकती हो। क्योंकि हम स्त्री पुरुषों की बड़ी भारी जान पहिचान है न! वह कह कर वह मुसकराये। वह फिर बोले, "अच्छा ठहरो, हम तुम्हें एक और प्रमाण अपनी प्राणेश्वरी बनाने का देते हैं, यह कहते कहते निर्मल अन्दर चले गये। और थोड़ी देर बाद कुछ और पत्र ले आये। और उसे शोभा को दिखा कर बोले "शोभा! देखो, यह पत्र तुमने अपने पति को लिखे थे या नहीं?"

शोभा ने ज़मीन से अपनी दृष्टि उठा कर देखा, तो वही शब्द। "प्राणों से प्यारे" "जीवन नाथ" हे ईश्वर, यह कैसी विडम्बना है? यह सदैव के दो अपरिचित प्राणी आज किस बंधन में बँध रहे हैं। शोभा का सुन्दर, कमल की तरह कोमल, कमनीय शरीर लज्जा से खिल उठा। वह सोचने लगी, "अखिलेश्वर! तुम्हारी माया बड़ी गहरी है।"

वह इतना ही प्रमाण देकर चुप नहीं रहे। वह शाम का प्राप्त—बंबई से लौटा (Rediret) हुआ पत्र पाकेट से निकाल कर कहने लगे, "मेरी प्राणेश्वरी शोभा-मेरी शोभा, देखो, यह मानने के लिए तुम विवश हो, कि तुमने यह पत्र अपने पति को लिखा है। किसी दूसरे जालिये रामचन्द्र को यह पत्र नहीं मिल सकता।"

शोभा की एक बार इच्छा हुई, कि वह पत्र के टुकड़े टुकड़े कर डाले। हाय! वह लज्जा से अधमरी हो रही है। यह अपरि-

चित पुरुष जिसके ऊपर कि कल रात से सहस्त्रों बार अविश्वास कर चुकी है, उसी के प्रति यह पत्र कितनी प्रीति, प्रेम, कितना अभिमान और कितना सोहाग दरशा रहा है। जिसको देखने से उसको पहिचानने लायक कोई भी चिन्ह उसके पास नहीं है, उसी को उसने किस तरह से अपने दिल का समस्त हाल सरल विश्वास से लिख भेजा था। वह निर्बोध थी। राम की बात से उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने मुँह छिपा के रो कर अपने दिल का भार हलका करना चाहा। राम ने आदर से शोभा के आँसू पोंछ दिये। शोभा ने राम के हृदय से लग कर शान्ति पायी। उसका रोना बन्द हुआ।

प्रातःकाल हो गया था। धीमी धीमी मंद वायु चल रही थी। और उसके झोंके से पेड़ों के ऊपर से पानी की बूँदें टपक रही थीं। बाहर लालमोहन आ गये थे। वह बाहर से ही बुलाने लगे, "रामचन्द्र!* शोभा उठी है। उसे बुलाओ। उसके लिए कल हमने जो तकलीफ उठायी, भगवान ही जानता है।"

शोभा ने मुँह उठाया। निर्मल बोले, "जाओ शोभा! अपरिचित के पास से आओ।"

शोभा मुस्करा कर राम के कंठ से लग गयी। और बोली, "अब मुझे लज्जित न करो।"

दोनों एक दूसरे की तरफ देख रहे थे। —एक पाठिका।

*इस कहानी में कहीं कहीं रामचन्द्र के स्थान में निर्मल छप गया है सो उसको पाठक सुधार कर पढ़ें।

ईश्वर के सब काम हमारी भलाई को हैं



दिल्ली के सिंहासन पर बैठते ही औरङ्गज़ेब ने अपना धार्मिक कट्टरपन प्रकट कर दिया। हिन्दुओं की धार्मिक स्वतंत्रता छीन ली गई। पद पद पर उनके धार्मिक कार्यों में रुकावटें पड़ने लगीं। मंदिर नष्ट कर दिये गये। हिन्दू साधुओं द्वारा स्थापित पाठशालाएँ बन्द करवा दी गईं। आज्ञा प्रचारित हुई कि यदि कोई हिन्दू तिलक लगाये दिखलाई पड़े तो उसका तिलक पोंछ दिया जावे। यह अत्युक्ति की बात नहीं है कि उस समय में हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों एवं ब्राह्मणों के यज्ञोपवीतों से हम्माम का पानी गरम किया जाता था। ऐसी दशा में खास दिल्ली राजधानी में हिन्दू साधुओं का रहना असम्भव हो गया था।

शाहजहाँ के शासन काल में अनेक हिन्दु साधू दिल्ली में रहने लगे थे। उक्त सम्राट अपने पितामह अकबर की नीति पर चलते थे और इसी से हिन्दू भी उनको "दिल्लीश्वरो वा जगदी-

श्वरो वा" तक कहने में सङ्कोच न करते थे, पर उनके पुत्र औरङ्गज़ेब ने बिलकुल ही नीति परिवर्तित कर दी। धीरे धीरे दिल्ली से साधू लोग भागने लगे। बाबा गोपाल दास को भी अपनी पाठशाला बन्द कर देनी पड़ी। एक दिन घोर अन्याय होते देख बाबा जी ने अपना सब सामान एक टट्टू पर लादा और चल दिये। साथ में उन्होंने अपना प्यारा शुक पक्षी ले लिया था। यह पक्षी इनके पास बहुत दिन से था। बाबाजी ने इसे नाना प्रकार के श्लोक और चौपाइयाँ पढ़ा रक्खी थी और अकेले में इसी के पढ़ने को सुन कर बाबा जी का समय कटता था। उनका टट्टू भी उन से ख़ूब हिला था और बाबा जी के ज़रा से पुचकारने से हिनहिनाने लगता था। बाबा गोपाल दास को तुलसी कृत रामायण पढ़ने का बड़ा शौक था इस कारण अपने सामान के साथ उक्त पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति लेना वे नहीं भूले थे। दिल्ली को छोड़ कर बाबा जी का विचार हिन्दुओं के प्रधान प्रधान तीर्थों में घूमने का था। निदान अपने विचार के अनुसार वे भ्रमण करने लगे। इस यात्रा में उनके साथी वही शुक पक्षी, टट्टू एवं रामायण की पुस्तक थी।

एक दिन संध्या के समय वे एक गाँव के पास पहुँचे और गाँव में प्रवेश करके रात बिताने के लिए जगह ढूंढने लगे। परन्तु साधु वेषधारी धूर्तों से कई बार ठगे जाने के कारण उस गाँव के लोग सच्चे साधुओं से भी बहुत डरते थे। सो किसी ने बाबाजी को आश्रय देना स्वीकार न किया। जाड़े कि ऋतु थी, तिस पर भी कृष्ण पक्ष! और आकाश में बादल छाये थे, शरीर को कँपा देने वाली ठंढी हवा बह रही थी। दिन भर की यात्रा के क्लेश से थके और भूखे बाबा जी को जब गाँव में आश्रय न मिला तो लाचार होकर वे बस्ती छोड़ कर गाँव के निकट के एक बाग़ की ओर चले। सोचने लगे वहाँ, किसी सघन वृक्ष की छाया में रात बितावेंगे। आख़िर उनको एक गुंजान वृक्ष मिल गया और बाबा जी ने वहीं अपना आसन लगा दिया। सब से पहले बाबा जी ने दीपक जलाया और यह कह कर कि "हे! परमात्मा, तू जो कुछ करता है, हमारे भले के लिए करता है" रामायण खोली और उसके पढ़ने में मग्न हो गये। पर इसी अवसर में वायु का वेग बढ़ गया। और इस खुले स्थान में बाबा जी का दीपक बुझ गया। फिर भी बाबा जी के मुँह से यही शब्द निकले कि 'हे! ईश्वर जो कुछ तू करता है, हमारे भले के लिए करता है।" अब वे शुक पक्षी को पढ़ाने लगे और उसकी पढ़ी हुई चौपाइयों तथा श्लोकों को सुन कर फिर उसी आनन्द-सागर में ग़ोते लगाने लगे। पर यह आनन्द भी बाबा जी बहुत देर तक न भोग सके। दूर पर

दो चमकीली आँखें दिखलाई पड़ीं और एकाएक एक बिल्ली झपटी और शुक पक्षी को उठा ले गई। बाबाजी क्या करते, थोड़ी देर चुप रहे, पर फिर उनके मुँह से यही निकला कि "ईश्वर! तू जो कुछ करेगा, मेरी भलाई के लिए करेगा।" अब वे अपने टट्टू को पुचकारने लगे और वह भी हिनहिना हिनहिना कर अपनी स्वामि-भक्ति प्रगट करने लगा। इस दशा में भी बाबा जी एक घंटे से अधिक न रहे होंगे कि उन्हें एक विकट गर्जन का शब्द सुनाई पड़ा और क्षण भर में उन्होंने अपने सामने एक विशाल-काय सिंह को देखा। देखते देखते सिंह ने टट्टू को घायल कर डाला और उसको मार कर उससे तृप्त हो कर चला गया। यह भयानक दृश्य देख कर बाबा जी कुछ काल के लिए सहम गये थे। सिंह के चले जाने पर उन्होंने अपने को फिर सम्हाला और अन्तिम बार उनके मुँह से फिर यही निकला कि "ऐ! परमात्मा! मुझे दृढ़ विश्वास है कि तू यह जो कुछ कर रहा है, वह मेरी भलाई के लिए है।" बाबा जी अब अकेले बैठे बैठे बहुत देर तक ईश्वर का ध्यान करते रहे। एकाएक जब उनके शरीर पर बूँदें पड़ने लगीं, तब उनका ध्यान भङ्ग हुआ। आँखें ऊपर उठा कर देखा तो गगन मंडल बादलों से घिरा पाया। यह सूर्योदय का समय था। अपनी रक्षा का और कोई उपाय न देख कर बाबा जी एक बार फिर गाँव क ओर चले कि वहाँ वाले कदाचित् इस बार मेरी इस वृष्टि से रक्षा कर सकें। परन्तु गाँव में पहुँच कर जो दृश्य बाबा जी को दिखलाई पड़ा, उससे उनके भय का ठिकाना न रहा। उन्होंने देखा कि चारों ओर मुर्दे पड़े हैं। मकान जला दिये गये हैं। एक अर्द्ध-मृत पुरुष से पूँछने पर मालूम हुआ कि उस रात को गाँव में बड़ा भारी डाँका पड़ा और गाँव का वह दृश्य डाकुओं की करतूत थी। ऐसी भयंकर अवस्था देख कर उन दो एक अर्द्ध-मृत पुरुषों की जो कुछ सहायता बाबा जी से हो सकती थी, की और गद्-गद् कंठ से ईश्वर को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए बाबा जी के मुँह से एक बार यह वाक्य फिर निकला "परमात्मन्! मैं जो कहा करता था कि तू जो कुछ करता है, हमारी भलाई के लिए है, यह बात कल रात की घटनाओं से तू ने सिद्ध कर दिखलाई। कल रात को इस गाँव में यदि मुझे शरण मिलती तो क्या मेरी भी दशा डाकू लोग यहाँ वालों की तरह करते? फिर यदि हवा चला कर तू मेरा दीपक न बुझा देता तो क्या डाकू लोग वहाँ तक मेरा पीछा न करते, उसी प्रकार शुक और टट्टू के शब्दों को सुन कर मनुष्य का होना अनुमान कर डाकू मेरा पीछा करते और पकड़ पाने पर कौन जाने, मुझे जीता छोड़ते या नहीं?

परन्तु गाँववालोँ से मुझे आश्रय न दिला कर, हवा से दीपक बुझा कर, बिल्ली द्वारा शुक मरवा कर एवं सिंह द्वारा टट्टू को समाप्त करके तू ने सब प्रकार से मेरी रक्षा की। तू सचमुच दीनानाथ है। सच मुच तेरा प्रत्येक कार्य हमारी भलाई के लिए है।" बाबा जी का गला भर आया और ईश्वर के ध्यान में मग्न होकर बाबा जी यही अन्तिम बात पुकारते रहे।

उपरोक्त उदाहरण से यह बात भली प्रमाणित हो जाती है कि ईश्वर के उन बहुत से कामोँ का जिन मेँ हमेँ दुःख मिलता है, उनको हम ठीक प्रकार से नहीँ समझते हैँ। हठात् हमारे मन मेँ यही विश्वास उठता है कि ईश्वर हमेँ व्यर्थ दण्ड दे रहा है। पर बाबा जी के समान यदि हमेँ भी यथार्थ बात जानने का अवसर मिले तो यह बात प्रमाणित हो जायगी कि उस दुःख देने मेँ भी ईश्वर का हमारी भलाई ही की ओर ध्यान है। आशा है कि इस उदाहरण से हम इस बात को कभी न भूलेंगे कि ईश्वर सब काम हमारी भलाई के लिए करता है।

—कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०

रत्नमयी

नवन्यास

प्रथम तरंग

"प्राणनाथ, एक घास खाने वाले पशु के मारने में क्या वीरत्व है। हाँ! यदि आपने मेरी जन्म भूमि के पाड़े को मारा होता, तो एक बात भी थी। ऐसे पाड़े तो स्त्रियाँ भी एक ही हाथ से सरलता पूर्वक मार सकतीं हैं।"

सिंहगढ़ के राजभवन में राज महिषी श्रीरत्नमयी देवी ने उपरोक्त कथन को राजा से हँसते हँसते कहा, किन्तु न जाने इन शब्दोँ मेँ ऐसा क्या बिजली का सा असर था कि जिन्होंने मुख से निकलते ही राजा के कलेजे पर बर्छी का काम किया। राजा क्रोध से थर थर काँपने लगे और समझे कि रानी ने मेरा अपमान किया है। इस लिए कड़क कर रानी से बोले, "रत्नमयी! जिस दिन तेरे बाप के घर चल कर वहाँ के पाड़े को मार लगा—उसी दिन तेरे महल मैँ आऊँगा।" केवल इतना ही कह कर राजा नरेन्द्र देव बहादुर क्रोध से भुनते शीघ्रता पूर्वक महल से बाहर निकल गये।

रानी रत्नमयी यह न जानती थी कि उसकी उपरोक्त भेदयुक्त वार्त्ता से यहाँ

तक अनर्थ हो जायगा। राजा का यह कठोर व्रत सुन कर पतिव्रता रानी मूर्छित होकर गिर पड़ी, किन्तु अब क्या हो सकता था। मुख से निकली हुई बात और धनुष से छूटा हुआ तीर क्या कभी लौट सकता है ?



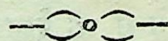
द्वितीय तरंग

आज विजयादशमी के त्यौहार के कारण नगर भर में आनन्द छा रहा है; आज के दिन क्षत्रियों में पाढ़े का शिकार हो जाना बहुत ही शुभ माना जाता है। इतने ही में एक वन रक्षक भागा हुआ आया और राजा से हाथ जोड़ कर बोला, "महाराजाधिराज, अभी मैं ने एक पाढ़ा गढ़ के समीप खाई में पानी पीते देखा है।"

राजा यह सुनते ही अति प्रसन्न हुए और शीघ्रता पूर्वक घोड़ा मँगा अपने सर्दारों समेत पाढ़े के शिकार को चल दिये। सर्दारों और सैनिकों ने बहुतेरे यत्न पाढ़े को बध करने के लिए किये, किन्तु वह बहुतों को घायल करके उछलता कूदता नगर ही की ओर चला। राजा पाढ़े को इस प्रकार अछूता नगर में जाते देख मन में बहुत ही लज्जित हुए। उन्होंने घोड़े को कसकर एक चाबुक मारा। घोड़ा भी एक ही क्षण में पाढ़े के ऊपर जा गिरा और राजा ने भी अत्यन्त फुर्ती के साथ अपनी रत्नखँचित कटार मूँठ तक उसके कलेजे के पार कर दी।

कहाँ तो अनेक सर्दारों को घायल करके पाढ़ा किसीके हत्थे चढ़ता ही न था और कहाँ राजा ने बात की बात में उसे यों ही मार डाला। बस ! यही सोच कर राजा इतने अधिक प्रसन्न हुए कि शरीर फूल गया और शरीर से कपड़े उतरने कठिन हो गये।

इसी प्रसन्नता में भरा हुआ राजा महल में रानी रत्नमयी के पास पहुँचा और अत्यन्त ही हर्षित होने लगा। राजा की दशा देख कर रानी को बड़ा भय हुआ, क्योंकि वह जानती थी कि "अत्यन्त हर्ष" और "अत्यन्त शोक" इन दोनों से मनुष्य की मृत्यु भी हो जाती है; केवल यही बात विचार कर रानी रत्नमयी ने हँस कर जो कुछ राजा से कहा था, वह प्रथम तरंग में पाठक पढ़ ही चुके हैं।



तृतीय तरंग

उपरोक्त घटना को हुए आज कोई एक सप्ताह के लगभग हो गया, किन्तु रानी के शोक का ठिकाना ही नहीं है। यद्यपि दोपहर के बारह बज चुके हैं, परन्तु रानी को न तो स्नान का ध्यान है और न भोजन की इच्छा। बेचारी महल के एक कोने में बैठी हुई सिर को हाथ पर रक्खे कुछ सोच रही है। राजा का महल में न

आने का प्रण रह रह कर उसके नन्हें से हृदय पर बिजली गिरा रहा है और उसके मुखसे बड़ी बेचैनी के साथ 'हाय' का शब्द कभी कभी कलेजा फाड़ कर नि ल पड़ता है।

ऐसी दशा रानी की न जाने कब तक रहती कि इतने ही में किसी के पैरों की आहट से अचानक वह चौंक पड़ी। आँख उठा कर जो देखा, तो एक दासी हाथ जोड़े दृष्टि पड़ी। दासी ने झुक कर एक पत्र रानी के हाथ में दिया। पत्र लेकर रानी ने चूमा और सिर से लगाया, फिर बड़ी ही व्यग्रता के साथ खोल कर पढ़ने लगी।

पत्र पढ़ते ही पढ़ते उसकी दशा बदल गई। उसने अपने आप को संभाला, बिखरे बालों को ठीक किया और हाथ मुख स्वच्छ कर तथा वस्त्र बदल कर तुरन्त ही उस ओर चल दी, जिधर से कि वह दासी आयी थी।

एक अत्यन्त सजे हुए कमरे में बैठे हुए राजा नरेन्द्रदेव बहादुर कुछ सोच रहे हैं। सामने खम्बे से एक पाढ़ा जंजीरों द्वारा बन्धा हुआ है। द्वार पर दो दासियाँ नङ्गी तलवारें लेकर पहरा दे रही हैं।

कुछ ही देर पश्चात् रानी ने कमरे में प्रवेश किया; सामने पाढ़े को बँधा देख कर वह तुरन्त ही समझ गयी कि राजा ने मुझे क्यों बुलाया है। निस्सन्देह रानी एक वीर क्षत्राणी थी, किन्तु फिर भी अपना धर्म समझ कर वह बड़ी ही दीनता से बोली—

रानी—महाराज! यह दासी सेवा में उपस्थित है, आज्ञा कीजिए।

राजा—रानी, यह पाढ़ा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, क्यों कि तुमने कहा था कि "ऐसे पाढ़े तो स्त्रियाँ सरलता पूर्वक एक ही हाथ से मार सकती हैं।"

रानी—स्वामी, मैं एक दुर्बल अबला हूँ। मेरी परीक्षा ही क्या?

राजा—तो अपनी उस बात को वापिस लो।

रानी—(हँस कर) क्षत्राणी बात वापिस लेना नहीं जानतीं—

यह कहते हुए रानी की तलवार का एक भरपूर हाथ पाढ़े की गर्दन पर पड़ा और सिर पृथ्वी पर गिरा ही था कि रानी अपने महल की ओर चल दीं। राजा को इस फुर्ती पर बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ, परन्तु थोड़ीही देर बाद क्रोध से अभिभूत होकर वह तकिये से उठ बैठे और "अभी तो एक और परीक्षा बाकी है" कहते हुए बाहर चले गये।



चतुर्थ तरंग

महल की सब से ऊँची अटारी पर खड़ी हुई रानी रत्नमयी सूर्य्यास्त की छटा देख रही हैं, पीछे चार पाँच सहे-

लियाँ खड़ी हुई चुहलबाज़ी कर रही हैं। सब से पीछे वाली सखी पास आकर और प्रेम से रानी के कन्धे पर हाथ धर कर कहने लगी—

सखी—रानी जी, उस समय आपसे इतनी भूल अवश्य ही हुई कि पाढ़े को मार कर तुरन्त ही आप वहाँ से चल दीं।

दूसरी—निस्सन्देह, उस समय की रानी जी की फुर्ती बड़े ही मार्के की हुई। मैं तो कभी उस दृश्य को भूल ही नहीं सकती।

तीसरी—किन्तु मेरी समझ में यह नहीं आया कि राजा जी ने उठते उठते "बाकी है, बाकी है" न जाने क्या कहा था?

रानी—हैं! राजा जी ने क्या कुछ कहा भी था?

सखी—मैं तो श्रीमती जी के साथ ही चली आयी थी।

तीसरी—बहिन, न जाने महाराज ने धीरे धीरे क्या कहा था, मैं तो केवल अन्त के शब्द 'बाकी है' ही सुन सकी थी।

रानी—एँ! "और बाकी है", इससे क्या मत.........।

—रानी अभी इतना ही कह पायी थीं कि अचानक उनकी दृष्टि गढ़ के फाटक वाले मैदान की ओर जा पड़ी। उन्होंने चौंक कर कहा—

रानी—शैलबाला, देख तो यह सेना क्यों इकट्ठी हो रही है?

सखी—हाँ! यह नयी बात क्यों?

दूसरी—सामने से वह रथ भी तो इधर ही आ रहा है।

रानी—क्या यह अपने ही सैनिक हैं, अथवा कोई शत्रु अचानक यहाँ आ पहुँचा?

शैलबाला—हैं तो यह अपने ही सैनिक, क्योंकि केशरिया सूर्यांकित ध्वजा लिये हुए हैं, किन्तु यहाँ एकत्र होने का क्या कारण है और रथ पर कौन आया है?

सखी—अरे! यह रथ तो श्रीमती रानी जी की ही सवारी का है।

इसी प्रकार यहाँ बात चीत हो रही थी कि इतने ही में एक दासी ने शीघ्रता पूर्वक आकर रानी को प्रणाम करके राजा का एक पत्र दिया। रानी ने पत्र को सिर और आँखों से लगा कर पढ़ना आरम्भ किया, किन्तु पत्र पढ़ लेने पर उनकी दशा ठीक न रही और दुःख और चिन्ता के मारे वे वहीं बैठ गयीं। सखियों में एक दम उदासी छा गयी। थोड़ी देर पश्चात् शैलबाला ने पूँछा—

शैलबाला—श्रीमती जी, राजा की क्या आज्ञा हुई है?

रानी—हाय! "विनाश काले विपरीति बुद्धिः", प्यारी सखियो, निस्सन्देह

वह घड़ी बड़ी बुरी थी, जब मैँने महाराज से वह बातेँ कही थीँ, ख़ैर अब चिन्ता से क्या लाभ है? श्री महाराज की आज्ञा सिर आँखोँ पर।

शैलबाला—रानी जी, महाराज ने लिखा क्या है?

रानी—महाराज ने लिखा है कि "तुम अब अपनी जन्मभूमि को जाओ और एक जङ्गली पाढ़ा तैयार करो, जिससे हमारे और तुम्हारे बीच जो मनोमालिन्य हो गया है—या तो वह दूर हो या हमी दूर होँ। गढ़ के फाटक पर कुल प्रबन्ध कर दिया है और प्रातःकाल ही तुम्हेँ यात्रा करनी होगी।"



पंचम तरंग

रानी पतिव्रता थीँ। पति की आज्ञा कैसे टालेँ? अतएव राजा की आज्ञा के अनुसार वह अपने मायके चली आयीँ और आकर कुल हाल अपने पिता से कह दिया और एक पाढ़े के मँगवाने का प्रबन्ध भी उसी दिन कर दिया गया।

रानी यह वियोग के दिवस बड़ी ही कठिनता से काटने लगीँ—एक एक दिवस एक एक वर्ष के समान होकर उन्हेँ कष्ट देने लगा। ज्योँ त्योँ करके दूसरी विजया-दशमी समीप आयी और रानी राजा के आगमन की प्रतीक्षा करने लगीँ।

इधर राजा को राजकार्य मेँ अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान न रहा। जब केवल दो ही दिन दशहरे के शेष रह गये तो रानी को बड़ी चिन्ता हुई और उन्होँने तुरन्त ही अपने दीवान को राजा को बुलाने के लिए भेज दिया। जब दीवान ने जाकर रानी का सन्देसा दिया तो राजा एकदम चौँक कर बोले, "ओफ़! बड़ी देर की। हाय! पहिले से ध्यान न आया।" उसी समय महाराज रामनगर की ओर अपने सर्दारोँ सहित चल दिये।

रामनगर राज्य जब कोई एक कोस रह गया तो राजाज्ञा से सब ने वहीँ दम लेना और सुस्ताना उचित समझा। रामनगर राज्य का एक सर्दार राजा की अगवानी करने यहाँ पहिले ही से ठहरा हुआ था। उसने राजा के सन्मुख जाकर प्रणाम किया, किन्तु राजा अपने अन्य विचारोँ मेँ लवलीन थे, इस कारण प्रणाम का उन्होँने कोई उत्तर न दिया।

सरदार को अपने इस अपमान पर बड़ा भारी क्रोध आया और वह तुरन्त ही रामनगर को लौट आया; उसके हृदय मेँ क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। वह राजा के यहाँ आने के कारण को भी भली प्रकार जानता था, इस कारण उसने राजा से अपने अपमान का बदला लेने की पूरे तौर से मन मेँ ठान ली और इसका उपाय सोचने लगा।



षष्ठ तरंग

आज फिर मङ्गलमयी श्रीविजयादशमी की शुभ तिथि आ गयी है। राजा नरेन्द्र-देव वहादुर को इस समय भी पाढ़े ही के मारने की लौ लगी हुई है इसी के सम्बन्ध में अपने सर्दारों से वह बातें कर रहे हैं।

ठीक आठ बजे बाजों का शब्द सुनायी दिया और साथ ही "पाढ़े पाढ़े" के शब्द से बन उपवन गूँज उठे। राजा नरेन्द्रदेव बहादुर भी सर्व प्रकार सुसज्जित हो तलवार लेकर मैदान में जा पहुँचे, किन्तु जब पाढ़े को सन्मुख आते देखा, तो कुछ कुछ भय का संचार होने लगा, क्योंकि यह पाढ़ा तो अपनी ओर के केहरी के सदृश था।

अभी अभी राजा पाढ़े के सन्मुख सँभल कर खड़ा ही हुआ था कि दूसरी ओर से एक सिंह की दहाड़ भी सुनायी दी। अब तो बड़ी कठिनाई हो गयी। अकेले राजा दो दो भयानक पशुओं का सामना कैसे करे?

राजा ने अपने प्राणों का मोह छोड़ और पहिले पाढ़े ही को मारना उचित समझ एक ऐसा तलवार का हाथ मारा कि पाढ़ा बीच में से दो हो गया, किन्तु इधर—हा! सिंह उछल चुका और राजा के सर्वनाश में दो ही चार पल की देर है।

सिंह उछल कर राजा के सिर पर गिरा ही चाहता था कि अचानक एक नकाबधारी घोड़ा फेंके बीच में आ पहुँचा और उछले हुए सिंह को उसने इस प्रकार अपने भाले पर रोका, जैसे खिलाड़ी गेंद को रोक लेता है। दूसरे ही क्षण में नकाब-धारी ने बाँयें हाथ से ऐसी तलवार मारी कि सिंह का पेट फट कर कलेजा तक निकल पड़ा।

अब तो दर्शकों की आनन्द ध्वनि का कहना ही क्या था। कान पड़ी बात सुनायी नहीं देती थी। राजा ने नकाबधारी की बड़ी प्रशंसा की और अनेकों धन्यवाद देने लगे, किन्तु नकाबधारी तुरन्त ही घोड़े से उतर कर राजा के पैरों पर गिर पड़ा।



सप्तम तरंग

जिस समय राजा नरेन्द्रदेव बहादुर पाढ़े के सन्मुख सँभल कर खड़ा था और सारे दर्शकों की दृष्टि भी उसी ओर लगी हुई थी, उसी समय रामनगर के उसी पूर्व क्रुद्ध सरदार ने अच्छा सुभीता देख एक जंगली शेर जो कि उसने इसके लिए पहिले ही तैयार कर रक्खा था, छोड़ दिया। बाजे से सिंह और भी भड़क उठा था और बारम्बार गर्जने लगा था।

क्रुद्ध सरदार ने सोचा था कि राजा दो दो भयानक जन्तुओं से कदापि नहीं

बच सकता और इस प्रकार सरल रीति से मेरे अपमान का बदला चुक जायगा, किन्तु—

जाको राखै साइयां, मारि न सकिहै कोय।
बाल न बांका हो सके, जो जग वैरी होय॥

रानी को इसकी कुछ टोह लग गयी और वह इस समय के लिए तैयार हाकर तुरन्त ही दौड़ी आयीं और जिस प्रकार उन्होंने सिंह को मार कर राजा के प्राण बचाये, वह पूर्व तरंग में सहृदय पाठिकाएँ पढ़ ही चुकी हैं।

राजा नरेन्द्रदेव बहादुर को जब यह कुल समाचार विदित हुए तो उनके हर्ष का ठिकाना न रहा और उन्होंने बड़ी ही उमंग और प्रेम से रानी को हृदय से लगा लिया और उनके साहस, वीरता, प्रेम और पातिव्रत धर्म की बारम्बार मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

सरदार को उसकी करनी का फल मिला और राजा नरेन्द्रदेव बहादुर कुछ दिन वहाँ मेहमान रह कर रानी रत्नमयी सहित सिंहगढ़ लौट आये और फिर अन्त समय तक उन्होंने रानी की बड़ी ही मान मर्यादा तथा प्रतिष्ठा की।

—लक्ष्मीनारायण गुप्त।

स्त्री-शिक्षा पर 'अकबर' के विचार



ज हम गृहलक्ष्मी की पाठिकाओं को एक ऐसे महाकवि और महापुरुष के विचारों का परिचय दिलाते हैं, जो अपने विषय में अद्वितीय हैं। गृहलक्ष्मी की जन्मभूमि, प्रयाग को ऐसे पुरुष-रत्न की 'धरित्री' होने का समुचित गर्व हो सकता है कि जो चुपचाप पर प्रभावोत्पादक प्रकार से साहित्य-संसार के पुनीत पत्रों में उसके माहात्म्य को अपनी कविता की कला से अमिट अक्षरों में लिख रहा है। प्रयाग हिन्दुओं का पवित्र प्राचीनतम तीर्थ है, जहाँ जंगम हिन्दू-तीर्थ श्रीमालवीय ने सकल हिन्दुओं के हृदय-मन्दिर में आसन जमा रक्खा है। वहाँ एक दूसरे सज्जन और हैं, जिनकी बल-शालिनी कविता का सिक्का भेद-भाव को छोड़ कर भारत भर में समान रूप से चलता है, जिनकी कविता ने नवीन सभ्यता के वेगवाही प्रवाह में बहते हुए भारतीय भावों को बचाने में सुदृढ़ बाँध (पुश्ते) का काम दिया है, जिनकी कविता ने बहुतों को दिव्य दृष्टि प्रदान करके भारतीय भावों के छिपे रहस्य समझने में समर्थ

बना दिया है, जिनके कविता-प्रकाश ने अनेक भूले भटकों को सीधा रास्ता दिखा दिया है, उन महानुभाव का शुभ नाम सैय्यद अकबर हुसैन "अकबर" है। आप एक ऊँचे दरजे के प्रतिष्ठित पुरुष हैं; बहुत दिनों तक जज थे, अब अर्से से पेन्शनर हैं। आपकी अवस्था ७० वर्ष के लगभग है। अरबी फ़ारसी के अतिरिक्त अँग्रेज़ी के भी आप अच्छे विद्वान् हैं। आप "सूफ़ी" (वेदान्ती) हैं। वेदान्तवाद की झलक से आपकी कविता जगमगा रही है। आपकी वेदान्दसूक्तियों को सुन कर सहृदय आस्तिक झूमने लगता है; आपकी शिक्षात्मक व्यङ्ग भरी चुटकी लेने वाली कविता की चोट से सुनने वाला फड़क जाता है। हास्यरस के आप परमाचार्य हैं। शिक्षाप्रद समयोचित हास्य की मधुर चाशनी जैसी आपकी कविता में रहती है, वैसी नये पुराने किसी हिन्दी उर्दू कवि की कविता में नहीं देखी गयी। आपके विचार बहुत ही परिष्कृत और दृढ़ हैं। भारतीय भावों की जो सूक्ष्म मार्के की आलोचना आपकी कविता में रहती है, उससे दंग रह जाना पड़ता है। आप पक्के प्राचीनतावादी हैं। नई सभ्यता के भयङ्कर तूफान में आपकी विचार नौका ज़रा भी नहीं डगमगायी। नवीन शिक्षा के मधुर फलों का स्वाद लेते हुए भी आप निर्लिप्त हैं। आपकी जीवनी और कविता पर दीर्घ दृष्टि डालने का यह अवसर नहीं है। यहाँ संक्षेप से यही दिखाना इष्ट है कि स्त्री-शिक्षा के विषय में आपके क्या विचार हैं। पश्चिमी ढंग के आचार व्यवहार और शिक्षा प्रकार आप भारतीयों के लिए अच्छे नहीं समझते—अन्धाधुंध "मग़रबी-तक़लीद" (पाश्चात्यों के अन्ध अनुकरण) के आप प्रबल विरोधी हैं। वह नहीं चाहते कि भारत की गृहलक्ष्मियाँ, यूरोपियन लेडियों का रूप धारण करके उच्छृङ्खल बनी विचरें। स्त्री-शिक्षा के विषय में उनके विचारों का यह सार है कि—

"पढ़ लिख के अपने घर ही में देवी बनी रहो"

यूरोपियन सभ्यता के साँचे में ढली भारतीय महिलाओं के सम्बन्ध में उनकी यह कविता प्रसिद्ध है—

"बे-परदा कल जो आईं नज़र चन्द बीबियां,
'अकबर' जमीं में ग़ैरते-क़ौमी* से गड़ गया।
पूछा जो उनसे आपका परदा व' क्या हुआ ?
कहने लगीं कि अक़्ल प' मरदों की पड़ गया!!"

* ग़ैरते-क़ौमी = जातीय लज्जा

स्त्री-शिक्षा के बहुत से प्रेमी दुर्भाग्य से स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य यह समझते हैं—दुःख से देखा जाता है कि भारत में भी बहुत से स्त्री पुरुषों ने शिक्षा का यही उद्देश समझ लिया है—कि पढ़ लिख कर स्त्रियाँ प्रत्येक बात में पुरुषों का पूरा अनुकरण करने लग जायँ, घर बार के काम काज—रोटी बनाना बच्चों को खिलाना इत्यादि—को अशिक्षिताओं का काम समझा करें, ऐसे आदमियों की आँखें खोलने के लिए 'अकबर' साहब का यह पद्य दिव्याञ्जन से कम नहीं है—

"उनसे बीबी ने फ़क़त् इस्कूल ही की बात की,
यह न बतलाया कहां रक्खी है रोटी रात की।"

अकबर साहब इतने बड़े आदमी, ऐसे महाकवि और विद्वान होकर भी बड़े ही सरल, उदार और मिलनसार सज्जन हैं। गत षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर आये हुए अनेक हिन्दी-साहित्य-सेवी आपसे मिलकर और आपकी कविता सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुए। सचमुच आप एक बहुत ही विलक्षण व्यक्ति हैं। आपके बारे में सहृदयों की ओर से यह ठीक ही कहा गया है—

"कुछ इलाहाबाद में सामां नहीं बहबूद के,
यां धरा क्या है बजुज़ 'अकबर' के और अमरूद के।"

इलाहाबाद के चौक में कोतवाली के पास आपका "इशरत-मन्ज़िल" (ईशरत मन्दिर ?) नाम का बड़ा मकान है। वहीं ईश्वराधना में आप निमग्न रहते हैं। परमात्मा आपको और दीर्घायु करे।

अस्तु, इस ज़माने में प्राचीन भावों के प्रचारक 'अकबर' महोदय का दम ग़नीमत है। उनकी एक कविता जो एक स्त्री-शिक्षा के प्रेमी सज्जन के अनुरोध से उर्दू पत्र के लिए लिखी गयी थी, टिप्पणी सहित प्रकाशित की जाती है।

मिलिन्दपाद (मुसद्दस)

(१)

तालीम औरतों को भी देनी ज़रूर है,
लड़की जो बेपर्दा हो तो वह बेशऊर है।

हुस्ने-मआशरत[१] में सरासर फ़तूर है,
और इसमें वाल्दैन का बेशक क़सूर है ॥
इन पर यह फ़र्ज़ है कि करें कोई बन्दोबस्त,
छोड़ें न लड़कियों को जहालत में शादोमस्त[२] ॥

(२)

लेकिन ज़रूर है कि मुनासिब हो तरबियत[३],
जिससे बिरादरी में बढ़े क़द्रो मन्ज़िलत ।
आज़ादियां[५] मिज़ाज में आयें न तमकनत[६],
हो वह तरीक़ जिसमें हो, नेकी व मसलहत[७] ॥
हरचन्द हो उलूम[८] ज़रूरी की आलिमा[९],
शौहर[१०] की हो मुरीद[११] तो बच्चों की ख़ादिमा[१२] ॥

(३)

मज़हब के जो उसूल[१३] हैं इसको बताये जायं,
बाक़ायदा तरीक़े-परस्तिश[१४] सिखाये जायं ।
औहाम[१५] जो ग़लत हैं व' दिल से मिटाये जायं,
सिक्के खुदा के नाम के दिल में बिठाये जायं ॥
इसियां से मोहतरिज़[१६] हो ख़ुदा से डरा करे,
और हुस्ने-आक़बत[१७] की हमेशा दुआ करे ॥

१—शील-सौन्दर्य । २—मूर्खता के आनन्द में निमग्न । ३—चरित्र-संगठन । ४—मान आदर । ५—स्वेच्छाचारिता, (आजादी से मतलब इस जगह समुचित स्वतन्त्रता या स्वाधीनता से नहीं है) । ६—तमक । ७—नीति । ८—विद्याएं । ९—विदुषी । १०—पति । ११—भक्त । १२—टहलनी । १३—सिद्धान्त । १४—आराधना की विधि । १५—अन्ध-विश्वास (Superstition) । १६—पाप से बचने वाली । १७—परलोक-सुधार ।

(४)

तालीम खूब हो तो न आयेगी दाम[1] में,
ख़ालिक़[2] प' लौ लगायगी वह अपने काम में।
ख़ैरात ही से होगी ग़रज़ ख़ासो आम में,
इसको सिखाया जाय यह वाज़ः कलाम[3] में।
अच्छा बुरा जो कुछ है ख़ुदा ही के हाथ है।
नेकी अगर करेगी तो फ़ितरत[4] भी साथ है॥

(५)

तालीम है हिसाब की भी वाजिबात[5] से,
दीवार पर निशान तो हैं वाहियात से।
यह क्या ? ज़ियादः गिन न सके पांच सात से !
लाज़िम है काम ले वह क़लम औ' दवात से॥
घर का हिसाब सीख ले खुद आप जोड़ना,
अच्छा नहीं है ग़ैर प' यह काम छोड़ना॥

(६)

खाना पकाना जब नहीं आता तो क्या मज़ा,
जौहर[6] है औरतों के लिये यह बहुत बड़ा।
लन्दन के भी रिसालों[7] में मैंने यही पढ़ा,
मतबख़[8] से रखना चाहिये लेडी को सिलसिला॥
वक़्त आ पड़े तो गाढ़े गज़ी में भी उज़्र क्या,
घर के लिये तआम-पुज़ी[9] में भी उज़्र क्या॥

१—जाल। २—सृष्टिकर्ता। ३—स्पष्ट शब्दों में। ४—प्रकृति। ५—आवश्यक बातें। ६—रत्न। ७—पत्र। ८—रसोई। ९—खाना पकाना।

(७)

सीना पिरोना औरतों का ख़ास है हुनर,
दरज़ी की चोरियों से हिफ़ाज़त प' हो नज़र।
औरत के दिल में शौक़ है इस बात का अगर,
कपड़ों से बच्चे गुल की तरह जाते हैं सँवर॥
कसबे-मआश[१] को भी यह फ़न् है कमी मुफ़ीद,
इक शग़्ल[२] भी है, दिल के बहलने की भी उमीद॥

(८)

सब से ज़ियादह फ़िक्र है सेहत[३] की लाज़मी,
सेहत नहीं दुरुस्त तो बेकार ज़िन्दगी।
खाने भी बेज़रर[४] हो, सफ़ा हो लिबास भी,
आफ़त है सख़्त घर की सफ़ाई में कुछ कमी॥
तालीम की तरफ़ अभी और् इक : दम बढ़ें,
सेहत की हिफ़्ज़[५] के जो क़वायद[६] हैं वह पढ़ें॥

(९)

पबलिक में क्या ज़रूर कि जाकर तनी रहो,
तक़लीदे-मग़्रबी[७] प' अबस[८] क्यों ठनी रहो।
दाता ने धन दिया हो तो दिल से ग़नी[९] रहो,
पढ़ लिख के अपने घर ही में देवी बनी रहो॥
मशरिक़[१०] की चाल ढाल का मामूल[११] और है,
मग़्रिब के नाज़ोरक़्स[१२] का इस्कूल और है॥

१–जीविका निर्वाह। २–काम काज। ३–स्वास्थ्य। ४–जो हानिकारक न हों। ५–रक्षा। ६–नियम। ७–पाश्चात्यों–विदेशियों की नक़ल। ८–व्यर्थ। ९–उदार। १०–पूर्वीय देश अर्थात भारतवर्ष। ११–लक्ष्य। १२–हाव भाव नाट्य।

(१०)

दुनिया में लज़्ज़तें[1] हैं, नुमाइश[2] है, शान[3] है,
इनकी तलब[4] में, हिर्स[5] में सारा जहान है।
'अकबर'[6] से भी सुनो कि जो इसका बयान है,
दुनिया की ज़िन्दगी फ़क़त् इक इम्तिहान है।

हद से जो बढ़ गया तो है इसका अमल ख़राब।
आज[7] इसका खुशनुमा[8] है मगर होगा कलख़ राब[9]॥

—पद्मसिंह शर्मा

गुप्त बलि

(१)



सवेरे उठते ही पहिले कौए की काँव काँव की आवाज़ आई जो कि सामने वाले नीम के पेड़ पर बैठा बोल रहा था। सोचा कि परमेश्वर आज क्या आफत सिर पर आने वाली है। किसी तरह उठ कर मुँह हाथ धोये और स्नान ध्यान से निपट कर बाहर जा बैठा। बैठना ही था कि मेरे साथ के एक मित्र भी जो कि गर्मियों की छुट्टी मैं घर आये हुए थे, मुझसे मिलने आये। मैं ने पूँछा, "चम्पालाल, आज सवेरे किधर भूल पड़े ?"

चम्पालाल कुछ घबड़ाये हुए से थे, कहने लगे कि भाई एक बड़ा जरूरी काम है।

मैं ने पूँछा,—"आखिर कुछ कहोगे भी।"

चम्पा०—उनकी शादी मैं बड़ी गड़बड़ी हो रही है।

मैं—किसकी ?

चम्पा०—तुम्हें मालूम है कि मुंशी गोविन्दप्रसाद की एक लड़की शादी के लायक हो गई है।

मैं—तो मैं क्या करूँ ?

चम्पा०—बड़े रूखे हो जी। हमें नहीं मालूम था कि कालेज मैं पढ़ कर भी तुम निरे बैल ही बने रहे। ...

१—विषय-भोग। २—दिखलावा। ३—ठाठ-बाट। ४—प्राप्ति। ५—तृष्णा। ६—कवि का नाम। ७—वर्तमान। ८—दूर से देखने में अच्छा पर परिणाम में बुरा। ९—भविष्यत।

मैं—नाराज़ क्यों होते हो भाई; कहो, अब मैं ध्यान देकर सुनूँगा।

चम्पा०—सुनो, उस लड़की की शादी रामनगर के लाला बनवारीलाल के लड़के चिम्मनलाल के साथ ठहरी है।

मैं—बड़ी खुशी की बात है, सो?

चम्पा०—सो क्या, लड़का इन्ट्रेन्स में पढ़ता है।

मैं—भाई काम की बात बतलाओ। मुझसे क्या मतलब, लड़का पढ़ता हो चाहे खेलता हो।

चम्पा० लो हम जाते हैं। फ़िज़ूल ही सबेरे से ऐसे गोबर-दिमाग से सिर लड़ाया।

मैं समझ गया कि जरूर कोई कठिन बात आ पड़ी है, नहीं तो चम्पा अपनी जगह से ऐसी जल्दी न सरकते। मैंने समझा बुझा कर उन्हें बैठाला।

चम्पा०—अच्छा अब सुनो, बनवारी लाल साहेब ३ हजार दहेज मांगते हैं और विचारे गोविन्द प्रसाद लावें कहाँ से और फिर लड़का भी बहुत पढ़ा लिखा नहीं है। दो साल इन्ट्रेन्स में फ़ेल हो चुका है। क्या जाने आगे चल कर किसी कालेज में पहुँचता है कि नहीं। अब विचारे वकील साहेब बड़े असमंजस में पड़े हैं। लड़की की शादी करनी ही पड़ेगी। अब यह बतलाओ किया क्या जावे?

मैं—मैं क्या बतलाऊँ? वहाँ नहीं तो किसी दूसरी जगह कर लें।

चम्पालाल बिगड़ गये और बोले—"फिर वही छिछोरापन, अब दूसरा लड़का कहाँ तलाश करें? न मालूम कितने साल के बाद तो एक लड़का मिला कि जिससे जन्मपत्री मिलती है। अभागी लड़की मंगली है और इसी से कहीं अच्छा लड़का नहीं मिलता। मुंशी बनवारीलाल ने भी वकील साहेब को अटके में देख लिया है, इसी से तो ३०००) से एक कौड़ी नीचे नहीं सरकते हैं।"

मैंने हँस कर कहा—"आज कल तो शादियों में बिलकुल बाजारू लेन देन (supply and demand) का मामला होता है। अगर लड़के ज्यादा हुए और अच्छी लड़कियाँ कम हुई तो लड़कियों के दाम लगने लगे, जैसे कि मारवाड़ियों में। और यदि कहीं लड़की ज्यादा हुईं और पढ़े लिखे लड़के कम हुए तो उनके दाम, जैसे जैसे लड़के ज्यादा पढ़ लिख गये, वैसे ही वैसे उनका भाव तेज़। वाह रे बाज़ार!

चम्पा०-तुमने बी० ए० में संपत्ति-शास्त्र क्या ले लिया है, हर जगह वही बनियाई लेन देन चलाना शुरू करते हो।

मैं—सचमुच ज़रा सोचो तो, लोग कहते हैं, हिन्दुस्थान में (competition)

ही नहीं है। इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है ? कैसा बाज़ार गरम है। परन्तु ग्राहक और साहूकार एक सतह पर नहीं, इसी से इतनी झिकझिक होती है।

चम्पा०—अच्छा तो अब अपना लेक्चर बन्द करो, ईश्वर के लिए अगर कोई उपाय मालूम हो, तो कहो।

मैं—फिर बतलाऊँगा।

चम्पा०—फिर कब ? लड़की सयानी होती जाती है और मुंशी बनवारीलाल लिखते हैं कि जवाब जल्द दिया जावे। उनके पास दूसरी जगहों से दरख्वास्तें आयी हैं। अब कहीं यह लड़का भी हाथ से जाता रहा, तो बस सोचते ही रहोगे।

मैं—उपाय सोचने कहाँ जाऊँगा। बस उपाय उसी संपत्ति शास्त्र से निकालेंगे

चम्पा०—भाई किसी शास्त्र से करो, परन्तु याद रहे, लड़का हाथ से न जाने पावे।

मैं—पागल हो क्या ? ३०००) और वकील साहेब की पढ़ी लिखी लड़की छोड़ कर भला वे कहाँ जावे लगे। उस लड़के के तो कोई ३०००) क्या १५००) भी न देगा।

चम्पा०—भला बतलाओ तो क्या उपाय सूझा ?

मैं—बस मंगली लड़कों की तादाद (supply) बढ़ा दी जावेगी।

(२)

सुंदरी अपने कमरे में बैठी ठँढी साँस ले रही है। मालूम नहीं वह मन में क्या सोच रही है, परन्तु ऊपर के भाव से यही प्रतीत होता है कि किसी मानसिक क्लेश से उसके हृदय में बहुत वेदना है। वह कभी आकाश की ओर देखती है, कभी सड़क की ओर, मानो ईश्वर से कुछ प्रार्थना करती है और इच्छा करती है कि घर छोड़ कर किसी जंगल में भाग जावे। इतने में कुछ आहट हुई और सुन्दरी की माँ कमरे में आयीं। वे कुछ तो मुस्कराईं। वे पहिले से ही सोच कर आयी थीं कि मुस्करा कर सुन्दरी के मन को शान्ति दूँगी। परन्तु सुन्दरी के सुन्दर मुख पर एक बूँद आँसू का देख कर माता हृदय का आवेग न रोक सकीं और उनके दो चार बूँद आँसू के गिर ही पड़े। उन्होंने अंचल से पोंछ डाले परन्तु तब तक सुन्दरी का आँसू भी लुप्त हो गया। उसने पूँछा, "माँ, इस समय यहाँ पर कैसे आयीं ?"

माँ—बेटी, कुछ नहीं, ऐसे ही देखने आयी थी कि तू क्या कर रही है। अभी तक नीचे नहीं आयी। अब चल, नीचे चलें।

सु०—चलिए, परन्तु यदि आप अनुचित न समझें तो बतलाइए कि मेरे पीछे आप सब कोई क्यों इतना दुःख सह रही हैं ?

माँ—कौन सा दुःख ? बेटी ईश्वर की कृपा से सब आनन्द है।

सु०—नहीं माँ, तुम झूठ कह रही हो। आज कल दादा के मुँह पर शोक के चिह्न झलकते रहते हैं।

माँ अपने को न रोक सकी। लड़की का हाथ पकड़ कर नीचे ले गयी और उसका हाथ पकड़े हुए पलङ्ग पर बैठ कर और सुन्दरी को गोद में लेकर रोने लगी और कहने लगी "बेटी, विधाता से हम लोगों का सुख न सहा गया। एक तो तू मेरे हृदय से अलग की जावेगी और दूसरे हम लोग घर द्वार बेच देव, तब भी दहेज़ का रुपया नहीं पूरा कर सकते। तेरे दादा यदि धन वाले होते तो ३०००) रुपया क्या, तेरे लिए मैं १००००) रुपया न्योछावर कर देती। हाय! तू मंगली क्यों हुई?"

सुन्दरी अब न रुक सकी। वह सिसक सिसक कर माँ के अँचल में मुँह छिपा कर रोने लगी। बिचारी सुन्दरी रोवे न, तो और क्या करे, वह मंगली क्यों हुई? मानो स्वतः उसने यह कलंक अपने ललाट पर विधाता से लिखवा लिया था। कुछ समय में जब रोते रोते दोनों का हृदय कुछ शान्त हुआ, तब माँ बोली, "बेटी, तू क्यों सिसक रही है? ईश्वर सहायता करेगा।"

सु०—माँ, मेरे लिए तुम हैरान न हो, मैं ज़हर खाकर मर जाऊँगी, परन्तु इस तरह मुझे विवाह कदापि नहीं करना है। माँ, मैं जन्म भर कारी रहूँगी।

माँ—छिः छिः क्या तू पागल हो गयी है जो ऐसी बात करती है। फिर कभी ज़हर का नाम न लेना। और भला तू ही बता, यदि तुझे, मैं घर बैठाल रक्खूँ, तो भी लोग हँसेगे कि जवान लड़की घर में बैठाल रक्खी है। विचारी सुन्दरी अब भी सिसक सिसक कर रो रही थी।

माँ—अब यह रोना बन्द कर, तेरे दादा को मालूम होगा तो उन्हें भी दुःख होगा। विचारे उन दो लड़कों ने एक चाल बतलायी है। देखें, सफल होते हैं या नहीं। कालेज के लड़के कितने ही ख़राब हों, समझदार होते ही हैं। चम्पा लाल और उनके साथी बिचारे रोज़ आकर तुम्हारे दादा को समझाते हैं। नहीं तो मारे रंज के वे कब के पागल हो गये होते।

सु०—वे लड़के यहीं रहते हैं?

माँ—नहीं, गर्मी के छुट्टी में घर आये हैं। तुम्हारे दादा का दोनों कहा करते हैं कि जन्म पत्री वगैरह का बखेड़ा छोड़ो। पर कुल रीति चली आयी है; उसे कैसे छोड़ दें? तुम्हारे दादा उन लड़कों की दलीलों को कभी कभी मान कर मुझे बुलाते हैं, पर फिर उनका पुरानी चाल छोड़ने का मन नहीं होता है। फिर कहीं बेटी, तेरा कोई नुकसान हो जावे, तो फिर पछताना ही पड़ेगा। मेरा मन इसीसे बड़ों की रीति छोड़ने को नहीं करता है।

सु०—पर माँ, अंग्रेज़ वगैरः भी

तो मनुष्य हैं, उन्हें भी तो हानि होनी चाहिए।

माँ—यही सब दलीलें तो वे दोनों लड़के भी करते हैं। मगर फिर बेटी विश्वास तो है। विश्वास ही फलदायक होता है। देखें, अब उन खतों का क्या उत्तर आता है ?

सु०—माँ, मेरी अब एक बिनती है। मेरे लिए तुम लोग इतना दुःख न उठाओ।

माँ—चुप पगली, दुःख काहे का ? ऐसा कभी न कहना। तेरे दादा खाने को बैठे हैं। मैं जाती हूँ। यह कह कर माँ चली गयी। माँ के जाने पर सुन्दरी खूब रोई और फिर उसने मुँह धो डाला।

हे परमात्मा, सुन्दरी का एक एक आँसू एक एक नदी बन कर धन-लोभियों को संसार से रसातल में बहा कर पहुँचा देवे।

(३)

बरांडे में एक आराम कुरसी और दो सादी कुरसियाँ रखी हुई हैं। एक पुरानी बेंच भी पड़ी है जिस पर दो आदमी जब इधर उधर सरकते हैं तो चर-मर करके वह बुढ़ापे के बक्कीपन का एक उदाहरण देती हैं। आराम कुरसी पर एक बढ़े पुरुष अपनी बक बक से उसी बात का दूसरा उदाहरण देते हैं। दूसरी दो कुरसियों पर दो आदमी बैठे कुछ बात चीत कर रहे हैं।

बूढ़े व्यक्ति—क्यों पंडित जी, तो उस लड़की का मंगल बड़ा ख़राब है ?

एक कुरसी वाला पण्डित बोला—"हाँ सरकार, जहान में कहीं वो सरिस मंगल न मिली।"

बूढ़े—तो तुमने जो जन्म पत्री बनाई है वो तो ठीक है।

पं०—हाँ सरकार अस ठीक जोड़ा है कि का कही, छत्तीसों गुन मिलत हैं।

बू०—तो हमने जो ३०००) रुपया माँगा क्या बुरा किया। दुनिया भर में ठोकरें खाते रहते; न हमारे सरीखा घर मिलता और न ऐसा अच्छा लड़का मिलना।

बेंच पर का एक आदमी—एमें का शक।

बू०—फिर लड़की का बाप धनवान है, वकील है, हज़ार दो हज़ार बङ्क में होंगे, दो चार गाय भैंस हैं, अच्छा उमदा घर है, दस पाँच हजार के गहने होंगे। देखो, मुंशी खुशाली लाल ने अपनी लड़की की शादी में ५०००) रुपया से कम खर्च नहीं किया, सो भी मुख्त्यारी के दम पर, और आज कल मुख्त्यारों की कौन पूछता है। हमारे ही बाबा बतलाते थे कि उनके वक्त में लोग अर्ज़ी के लिखने में पूछते थे कि सरकार गाँव की पट्टी देई कि ५०) रुपया। और हमारे बाबा कहत थे, कि जिमीदार जी, गाँव कौन देखेगा, हमें तो रुपया हा दो। वह जमाना तो गया।

दूसरी कुरसी का आदमी—हाँ मुंशी जी, और हमारे बाबा कहते हैं कि पाबल वकीली का कौन बड़ा कानूनो इम्तहान

होता था। गुलिस्ताँ का पहिला सफ़ा अगर ख़ूब राग से पढ़ दिया गया, बस कलक्टर साहेब ने सर्टिफ़िकेट दे दिया। आज कल तो बड़ी मुश्किल है।

बूढ़े महाशय—हाँ कानूनगो साहेब, और यहाँ परवाह कौन करता है कि वे ३०००) रुपया न दें तो हम २०००) रुपया ही में शादी कर दें। जानों हमारा लड़का क्वाँरा रह जावेगा। अभी चाहूँ तो कहीं भी शादी कर दूँ। कई जगह से मँगनी आई है। और अभी कौन बहुत जल्दी है। लड़का एन्ट्रेन्स पास हो जायगा। अपने काम धन्धे से लग जायगा। बस लड़के का मन खेल में ज़रा ज्यादा लगता है, मगर—

इतने में चिट्ठीरसा ने तीन चिट्ठियाँ दीं। एक तो किसी मुकदमें वाले की थी, बाकी दो में एक भूपनगर से आई थी और दूसरी गोविन्द प्रसाद वकील के पास से। बूढ़े व्यक्ति जो कि आप लोग समझ गये होंगे, मु० बनवारी लाल थे, चिट्ठियाँ पढ़ने लगे। भूप नगर की चिट्ठी पढ़ते ही कुछ चेहरा उदास हुआ। मगर जब वकील साहेब की चिट्ठी उन्होंने पढ़ी तो मुँह का रङ्ग ही उड़ गया। बड़ी कठिनता से उन्होंने अपने को सम्हाला और कानूनगो साहेब से बहुत उदासी से बोले—"यह भूपनगर की चिट्ठी है। वहाँ के अनन्दी लाल साहेब ने लिखा है। कि वे मेरे लड़के के साथ अपनी भांजी की शादी न करेंगे, और वकील ने लिखा है कि उन्हें एक बी० ए० पास लड़का मिल गया है। उसके बाप २०००) पर राजी हो गये ह।" अब क्या किया जावे कानूनगो साहब?

कानूनगो साहब ने सोचा कि बूढ़ा अभी अभी कैसी डींग हाँक रहा था। फिर वे बोले—"हमें तो साहेब कुछ गड़बड़ मालूम होती है, दोनों ख़त एक दिन क्यों आये। जरूर भूपनगर वाले ने वकील साहेब को किसी तरह की सलाह दी होगी, जिससे आप भूपनगर में शादी कर दें। भूपनगर वाले हैं भी पुराने स्याहानवीस, कितनों ही का मुँह काला किया होगा। मगर अब एक काम करिये।

बन०—सो क्या? जल्दी कहिए।

का०—आप दो हफ़्ते खतों की राह देखिये। आप को अगर कोई और ख़त न मिले तो आप सोलहवें दिन वकील साहेब को लिख दीजिएगा, कि आप १५००) में शादी करने को तैयार हैं।

बन०—१५००) कुछ ज्यादा तो नहीं है, मगर मेरा इरादा वकील साहेब से रिश्तेदारी करने का है।

का०—जी हाँ, आप को रुपयों की क्या परवाह है।

बन०—जी हाँ।

सब उठ कर चले गये और मुंशी बनवारीलाल बहुत उदास होकर घर के

अन्दर चले गये। उन्होंने पहिले २०००) मुंशी गोविन्दप्रसाद के क्यों नहीं मान लिये, इतनी झिकझिक न होती और ५००) फायदे में रहते। अब मुंशी जी दिन गिनने लगे और वकील के पत्र की बाट जोहने लगे। धन्य रे रुपया ! धन्य तेरी महिमा !

(४)

मैं भी रामनगर के पत्र की बाट जोह रहा था। उस पत्र की बाट जोहने वाले चम्पालाल, वकील साहेब वगैरः भी थे। पाँच दिन तो पत्र आने जाने में बीतता है, पाँच दिन और निकल गये, परन्तु रामनगर से कोई उत्तर न आया। आज १७ वाँ दिन है, मैं नहा धोकर बाहर बैठा था, यही सोच रहा था कि उत्तर क्यों नहीं आया, कहीं चालाकी पकड़ी तो नहीं गई, कि इतने में चम्पालाल बहुत तेज़ी से आते हुए दिखलाई दिये। मैंने समझा कि खुशखबरी सुनाने आ रहे हैं, कि कोई चिट्ठी आई है और प्रयत्न सफल हो गया है, परन्तु चम्पालाल का चेहरा देखते ही मुझे मालूम हो गया कि दाल में काला है,—अवश्य कोई दुर्घटना हो गई है।

चम्पालाल ने आते ही कहा,-"चलो, जल्दी चलो।"

मैं ने पूँछा—कहाँ ?

चम्पा०—वकील साहेब के घर को।

मैं—कपड़ा पहिन लूँ।

चम्पा०—नहीं, एकदम चलो, वक्त नहीं है।

लाचार मैं वैसे ही कुरता व स्लीपर पहिने चल पड़ा। रास्ते में चम्पालाल ने सब हाल कह दिया। सवेरे उनके घर पर एक नौकर आया और कहा कि वकील साहेब ने बुलाया है। बहुत जल्द चम्पालाल वहाँ गये और क्या देखते हैं कि घर में रोना पीटना पड़ रहा है। मालूम हुआ कि सुन्दरी को बड़ी ज़ोर से हैजा हो गया है, बराबर दस्त और कै आ रहे हैं। सुन्दरी की माँ से पूँछने पर मालूम हुआ कि रात को वकील साहब पत्र का उत्तर न आने पर बहुत शोकातुर थे। अपने भाग्य पर बहुत रोये। सुन्दरी ने द्वार की ओट से सब कुछ सुना। उन्होंने सुन्दरी को देखा और चुपचाप रोते रहे। रात को लगभग तीन बजे अचानक कुछ खटका सा हुआ। सुन्दरी के कमरे में जाकर उनकी माँ ने देखा कि सुन्दरी बेहोश होती जा रही है। आँखें बन्द हो गईं और बड़े वेग से दस्त और कै होने लगे। सुंदरी पाँच बजते बजते बहुत कमज़ोर हो गई। उसने आँख न खोली। डाक्टरों ने बहुत सिर पटका मगर सुन्दरी के दस्त बंद न हुए। उसी सुन्दरी को मृत्यु शय्या पर देखने हम लोग जा रहे थे। सुन्दरी को कभी कभी होश होता था और ऐसी ही अवस्था में उसने हम लोगों के देखने की इच्छा प्रगट की थी।

हम लोग जल्दी जल्दी घर पर पहुँचे और वहाँ पर नौकर ने एकदम हम लोगों को अन्दर पहुँचा दिया। हा! कैसा

करुणाजनक दृश्य था, आँख बंद कर लूँ तो वह दृश्य सामने आ जाता है।

मृत्यु शय्या पर सुंदरी पड़ी थी। सिर-हाने उसके पिता व पायताने माता खड़ी थीं। डाक्टर साहेब चारपाई पर बैठे हुए नाड़ी देख रहे थे, परन्तु उनके चेहरे से कोई भी कह सकता था कि आशा लेश मात्र भी नहीं है। माता ने ज़ोर से सुन्दरी से कहा कि वे दोनों लड़के आये हैं। सुन्दरी ने आँखें खोलीं, हम लोगों की ओर देखा, आखें आकाश की ओर कीं, फिर हम लोगों को देख कर मुसकरायी और तुरंत बेहोश हो गयी। परन्तु वह मुसक-राहट अपूर्व शोभा की खान थी। सुन्दरी सत्य ही सुन्दरता की समूह थी। मैं ने विचारा कि आज पृथ्वी पर से एक रत्न उठा जा रहा है।

एक चीख मार कर सुन्दरी की माँ बेहोश होकर चारपायी पर गिर पड़ीं। मैं ने देखा तो डाक्टर साहेब हाथ को धीरे से चारपायी पर रख कर संकेत कर रहे थे कि मृत शरीर को पृथ्वी पर लिटा दो। सुन्दरी के प्राणपखेरू उड़ गये। घर में रोना पीटना मचा और बहुत शोक के साथ दाह कर्म इत्यादि हुए। मृत्यु ने एक देवी का भक्षण किया।

* * * *

चम्पा ने दसवें दिन मुझसे कहा कि देखा, इस दहेज़ के रिवाज़ की एक और बलि हुई।

मैं—किस तरह ?

चम्पा०—सुन्दरी को हैजा नहीं हुआ था। उसने एक प्रकार का विष खा लिया था जो मामूली कई चीज़ों से बन जाता है और उसमें हैजे के सब चिह्न रहते हैं। सुन्दरी बड़ी सुशीला थी। अपने पिता माता को दुःख न हो, इससे उसने यह चालाकी की। संसार को विदित हुआ कि सुन्दरी अपनी स्वाभाविक मृत्यु से मरी।

मैं—अगर वकील साहेब अपनी जन्म पत्री वाली बातें मान लेते तो यह कुछ न होता।

चम्पा०—फिर वही छिछोरापन। जन्मपत्री बंद हो जातीं तो लड़का दूसरा मिलता, मगर फिर वही दहेज़ का झगड़ा चलता। असल जड़ तो वही दहेज़ है।

मैं—मगर बनवारीलाल निकले बड़े चालाक।

चम्पा—हाय ! इसी से तो कलेजा फटता है। जब सुन्दरी मृत्यु शय्या पर थी, तभी पोस्टमैन ख़त लाया। मैं ने छाप रामनगर की देखी तो छिपकर पढ़ लिया और फिर हज़म कर गया।

मैं—उसमें लिखा क्या था ?

चम्पा०—कि वे शादी के लिए १५००) में तैयार हैं।

मैं—हाय, एक दिन का विलम्ब हुआ। वकील साहेब को बतलाया तो नहीं ?

चम्पा०—क्या हम भी तुमसे छिछोरे हैँ। विचारे वकील साहेब वैसे ही पागल हो गये हैँ।

मैँ—हाय, एक लड़की की,--या देवी की कहिये,–मृत्यु इन हालतोँ मेँ हो गयी।

चम्पा०–भाई इस एक मृत्यु का हाल तुम्हेँ मालूम हो गया, वह भी मेरे सबब से, क्योँकि मैँने डाक्टरी पढ़ी है और हैजे के चिन्ह अच्छी तरह मालूम हैँ। मालम नहीँ इस तरह कितनी लड़कियाँ प्रति वर्ष भारतवर्ष मेँ मरा करती हैँ।

मैँ—हाय!

चम्पा०–अब चलो, वकील साहेब और सुन्दरी की माँ को समझावेँ। हम लोगोँ को वे लोग बिलकुल लड़कोँ की तरह मानते हैँ।

मैँ—अच्छा।

हे भारत माता, तेरी गोद मेँ खेलती हुई पुत्रियोँ को नराधम रक्त लोलुप पुरुष निष्ठुरता से मार रहे हैँ। फट जा और उन पुरुषोँ को रसातल पहुँचा दे।

हाय! पापी दहेज़, राक्षस, तेरी प्रतिमा के सामने भारतवासियोँ ने सुन्दरी नाम की एक लड़की का गुप्त बलिदान कर दिया। हे राक्षस दहेज़, क्या तू नष्ट न होवेगा?

ईश्वर की वाणी कहती है, "अवश्य होगा।" —"सत्य"

बंग-महिला



व्यक्तियोँ और जातियोँ का मानसिक विकास, शारीर कगठन और सामाजिक स्थिति अधिकतर स्थानीय प्रकृति वैचित्र, जल-वायु और भूमि के वैशेष्य पर निर्भर है। स्थानीय प्रकृति की कठोरता स्थानीय स्त्री-पुरुषोँ के शरीरोँ को बलवान और कठोर बनाती है, और प्रकृति की लावण्यता और कमनीयता ही स्त्री-पुरुषोँ को लावण्यता और कमनीयता प्रदान करती है। प्रकृति का जो स्थान लालित्यहीन, तृणावृत, और वालुकापूर्ण है, वहाँ वीर्य्य, शौर्य्य, और तेजस्विता का विकास होता है और वहाँ के लोगोँ के शरीर सुगठित, परिश्रमशील और बल शाली होते हैँ। जो देश सौन्दर्य्य और कोमलता पूर्ण है, वहाँ के निवासी साहसहीन और अपरिश्रमी किन्तु कवित्वमय और भावसम्पन्न होँगे। इस लिए पञ्जाब और मेवाड़ शक्तिपूर्ण और बलवान हैँ और बंगदेश बलहीन और शक्तिशून्य है। नैतिक साहस रखने पर भी, विद्या और बुद्धि मेँ भारत का कीर्ति-केन्द्र होने पर भी, बंगाल दैहिक बल मेँ दीन हीन और परमुखापेक्षी है। समस्त देश मेँ बंगाल शारीरिक बल और शौर्य्य मेँ निकृष्टतम है। अतीत की बात छोड़ देने पर भी आज महाराष्ट्र

भगिनीगण अपने हाथों से अश्व-चालना करती हैं। पञ्जाब, राजपूत और संयुक्त प्रान्तस्थ भगनीगण गेहूँ पीस कर स्वामी और पुत्र के लिए पवित्र तथा सुमिष्ट आहार प्रस्तुत करती हैं। इनके शरीर बलिष्ठ, कर्मठ और सुदीर्घ देखे जाते हैं, किन्तु बंगनारियाँ मन्दाग्नि, घुर्णितमस्तक और दुर्बल क्षीण शरीरों से बंग समाज की शोभा बढ़ा रही हैं इनकी। दुर्दशा को देख कर जाति की दैहिक अपटुता और साहस हीनता की स्मृति हो आती है, जिससे हताश होना पड़ता है। किन्तु इसी के साथ इन भगिनियों को देख कर हृदय आनन्द से पुलकित हो जाता है। बंग-ललनाओं की इस प्रकार की दुर्दशा के कई कारण हैं। एक ओर बंग देश का आर्द्र वायु और बिस्वाद जल है, दूसरी ओर कई एक स्वार्थमय अविवेक पूर्ण सामाजिक प्रथाएँ हैं। शरीर विषय में असावधानता और स्वास्थ्य-सम्बन्ध म अतिशय अज्ञान दैहिक अवनति के कारण हैं। भारत के अन्य प्रदेशों में गार्हस्थ्य और सामाजिक जीवन में शरीर-संयम के भाव कुछ अधिक हैं, इस लिए वहाँ की भगिनियों का बाल्यकाल तथा युवाकाल विशेषरूप से विकसित होता है। किन्तु बंगभगिनी बारह तेरह साल में जननी होकर जीवन के सुख और स्वास्थ्य को विसर्जन कर देती हैं और असाध्य रोगिनी होकर सारा जीवन शारीरिक वेदनाओं और अशान्ति में व्यतीत करती हैं। यों तो एतद्देशीय समस्त नारी-जाति की अवस्था अधम है, किन्तु बंग देशीय नारी वर्ग की अवस्था अधमतम है। मेरी तुच्छ बुद्धि में बंग महिलाओं की इस प्रकार की शारीरिक दुर्दशा निस्तेजता और मानसिक बलहीनता बंग पुरुष-समाज की दैहिक निकृष्टता, निर्बलता और कायरता का मुख्य कारण है। पश्चिमाञ्चल में भद्र घरों की महिलाएँ मन्दिरादि में दर्शनार्थ तथा गंगातट पर स्नानार्थ पैदल जाती हैं किन्तु बंगीय भद्र घरों की महिलाएँ शायद ही कभी घर के बाहर पैर रखने पाती हों। उनका छतों पर चढ़ना मानो परिवार को कलङ्कित करना है। बङ्ग नारी के लिए स्त्रियोचित शौर्य्य तथा तेजस्विता अति तुच्छ पदार्थ स्वरूप हैं। बहुतों को भ्रम हो जाता है कि बंग महिलाएँ बड़ी शौकीन तथा विलासिता प्रिय हैं, किन्तु वास्तव में ऐसी नहीं हैं, बङ्ग-भगिनी ही नहीं, नारी-मात्र सुखप्रिया अवश्य हैं और इस में भी भेद यह है कि बंग-देशीय नारी गण सौन्दर्य्य प्रिय और कोमलता प्रिय हैं। एतद्देशीय नारीगण सौन्दर्य्य-ज्ञान रहित हैं।

डंग-भगिनी कोमल-प्राणा पर-दुःख-कातरा होने पर भी कष्ट सहने की साक्षात् प्रतिमा हैं। बंग-विधवा और एतद्देशीय विधवा में बहुत भेद है। बंग विधवा चाहे पाँच साल की हो और चाहे पचास

साल की, वह सभी सुखोँ से वञ्चित है। उसे न अच्छे वस्त्र मिलते हैँ, और न अच्छे भोजन, न वह किसी से हँस कर बात चीत कर सकती है और न कोई शुभ कार्य्य मेँ सम्मिलित होने पाती है, अतएव वे निस्तेज-प्राणा और तेजहीना होकर जीवन व्यतीत करती हैँ। किन्तु इस प्रान्त के पहनाव ओढ़ाव के विषय मेँ विशेष ज्ञान हुए बिना बिधवा और सधवा मेँ कुछ भेद मालूम नहीँ पड़ता। यहाँ की बिधवा सामाजिक और पारिवारिक कुव्यवहारोँ से उतनी व्यथित नहीँ हैँ जितनी बंग देशीय बिधवायेँ।

बंग देश ने विद्या और बुद्धि मेँ यश-लाभ तो किया है किन्तु अपने दैहिक दौर्बल्य के लिए वह सदा से कलङ्कित और अपमानित रहा है। बंग माता ने अनेक बुद्धिमान तथा ज्ञानवान पुत्रोँ को जन्म देकर अपना मुखोज्वल किया है किन्तु शूरवीर तेजोबलधारी नरपुङ्गवोँ की जननी कहलाये जाने का सौभाग्य अभी उसे प्राप्त नहीँ हुआ। नारी व्यक्ति तथा जाति की जननी है। नारी राम, अर्जुन, भीष्म, और कर्ण की प्रसूति है। नारी, शिवाजी, अलेकजराडर, नेपोलियन और सीज़र की जननी है। वे नारी धन्य हैँ जो प्रताप तथा नेलसन जैसी स्वदेश-वत्सल सन्तान उत्पन्न कर सकीँ। बंग भगिनी जब तक अपनी दैहिक अवस्था पर ध्यान न देँगी और कर्मवीरोँ की जननी होने की इच्छा मन मेँ न रक्खेँगी तब तक बंग देश का कलङ्क दूर न होगा। भारत के अन्यान्य प्रान्तोँ के लोग व्यवसाय-जीवी हैँ और परिश्रम द्वारा जीवन निर्वाह करते हैँ, इस लिए वहाँ का नारी-जीवन भी उसी भाव से नियमित होता है। बंगवासी मस्तिष्क जीवी हैँ, इस लिए शरीर की ओर उनका उतना ध्यान नहीँ है। शारीरिक उत्कर्ष-साधन वहाँ के स्त्री-पुरुषोँ का आदर्श नहीँ है। पश्चिमाञ्चल मेँ अगर कभी बल परीक्षा का समय आ जाता है तो माता पुत्र को साहस और उत्साह देकर कहती है 'लड़ जा बेटा.' किन्तु बंग-जननी अपने पुत्र का हाथ पकड़ कर घसीट ले जायगी और कहेगी "नहीँ बेटा, चोट आ जायगी, आ घर चल।" बंग देश के पुरुषोँ मेँ जब तक वीरोचित आदर्श प्रवेश न होँगे तब तक बंग नारी आदर्श वीरबाला नहीँ हो सकतीँ। किसी बंग कवि ने कहा है कि—

"सात कोटि सन्ताने रे हे बंग-जननि।
रेखेछो बंगाली कोरे मानुष करोनि"॥

अर्थात्, हे बंग जननी! आपने सात कोटि सन्तान को बंगाली ही बना के रक्खा, मनुष्य नहीँ किया। वीर नेपोलियन जब सब देशोँ को जय करके इंगलैण्ड से पराजित हो गया, तब उससे किसी ने पूछा कि तुम इंगलैण्ड क्योँ नहीँ जय कर सके, तब उसने उत्तर दिया कि फ्रांस

में अगर इंगलैण्ड की सी वीर माताएँ होतीं तो फ्रांस पृथ्वी का अधीश्वर होजाता। भगिनियो ! यदि आप शारीरिक उन्नति में यश लाभ करना चाहती हैं तो गृहस्थ के सब काम नौकरों से न करा कर स्वयं कीजिए । आज कल कुछ शिक्षिता बहिनें ताश तो खेलती हैं किन्तु घर का काम नहीं करतीं। उन्हें कुछ परिश्रम का काम करना चाहिए । संयम, श्रम, और व्यायाम के अभ्यास बिना वीरप्रसूता कहलाने की आशा न कीजिए।

पश्चिमाञ्चलस्थ भगिनियों से बंग भगिनियाँ कुछ अधिकतर लज्जाशीला होती हैं और इनमे भक्ति-भाव भी अधिकतर होता है। इस भक्ति-भाव का मतलब केवल देवी देवताओं की पूजा तथा उपासना से नहीं है, किन्तु आत्मीय स्वजन तथा गुरुजनों की सेवा से है। बंग महिलाएँ अपने गुरुजनों की सेवा जिस सहनशीलता और भक्ति-भाव से करती हैं वह वर्णनातीत है। हमारी पश्चिमाञ्चलस्थ भगिनियाँ व्रत उपवास तो करती हैं किन्तु गुरुजनों और सम्बन्धियों की सेवा उस प्रकार से नहीं करतीं। बंग भगिनियाँ बलहीन होने के कारण दुख और आपत्ति में बहुत ही कातर हो जाती हैं, सामने अन्धकार ही अन्धकार देखती हैं, अपने नम्र भाव और लज्जा शीलता के कारण आत्म निर्भर नहीं कर सकतीं और परमुखापेक्षी होकर रहने के कारण बहुत से कष्ट उठातीं हैं।

भगिनीगण ! जागिए, हम सब के शक्ति का अंश होने पर भी हम में शक्ति की बड़ी कमी है। जिन शक्ति के पदतल में समस्त जगत तथा पुरुष रूपी शिव हैं उन शक्ति के अंश में आज शक्ति का ऐसा ह्रास! उठिए, और अपना देवी पद ग्रहण कीजिए। वीरपुत्र-प्रसविनी वीर-भार्या होकर देश को शक्ति-सम्पन्न कीजिए।

—श्रीमती बाला जी

(प्रताप से)

समालोचना

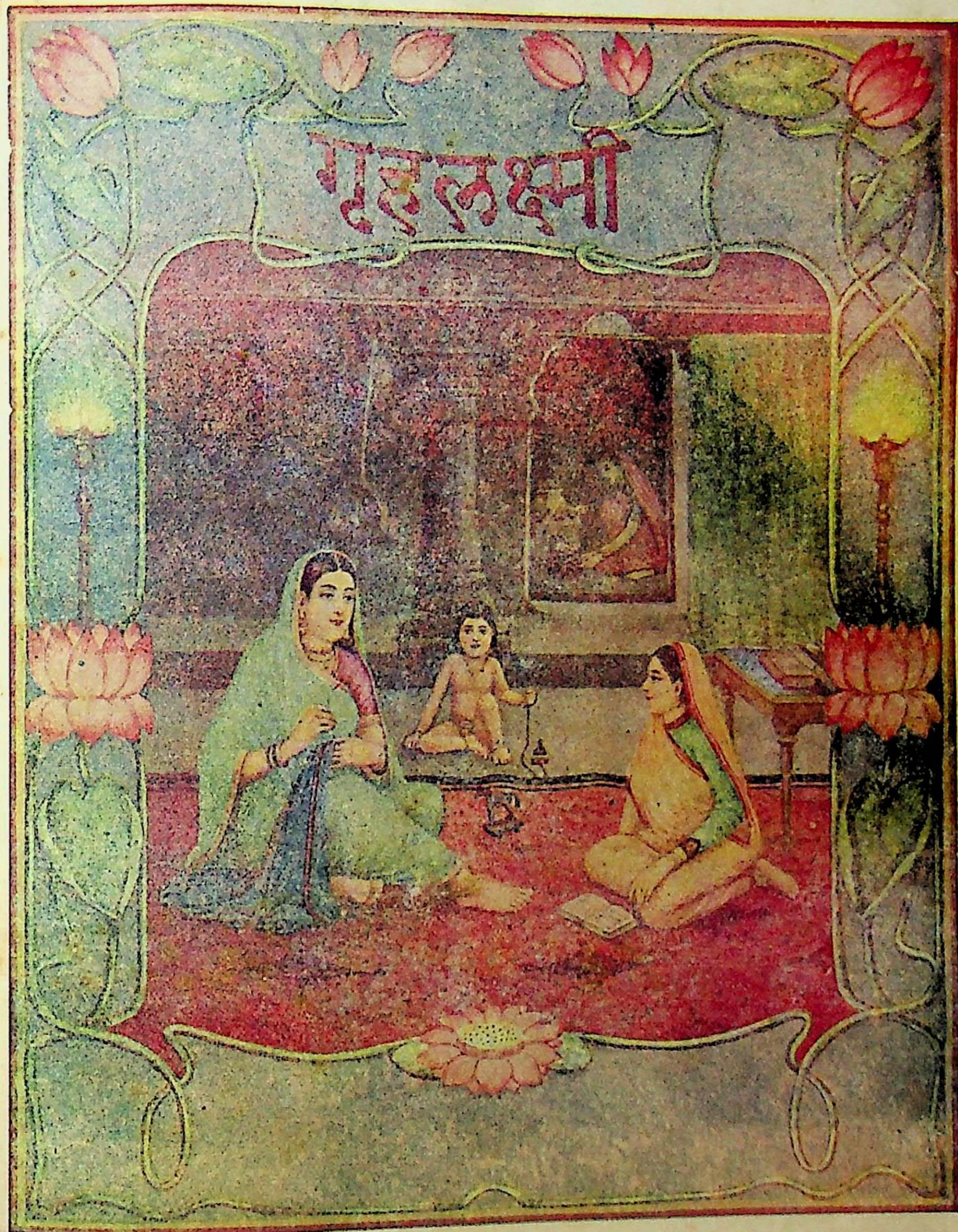
श्री कमला—इस नाम से, भागलपुर के बिहारएंजल प्रेस से, एक सचित्र मासिक पत्रिका निकलनी आरंभ हुई है । जनवरी १६१६ का अंक हमारे सामने है जो इसका प्रथम अंक है। इस म एक रंगीन चित्र और अनेक सादे चित्र हैं। क्या गद्य और क्या पद्य सभी लेख हिन्दी जगत के प्रसिद्ध लेखकों के लिखे हुए हैं। काग़ज़ और छपाई प्रशंसनीय। वार्षिक मूल्य ३) जो इसके गुणों को देखते हुए कुछ भी नहीं है। पत्रिका होनहार मालूम होती है। यदि ऐसे ही इसका सम्पादन होता रहा तो अवश्य उन्नति करेगी। हम नवीन सहयोगिनी का हृदय से स्वागत करते हैं। हमें आशा है कि हिन्दी साहित्य के प्रेमी इसे अवश्य अपनावेंगे।

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।

षठ वर्ष]

फाल्गुण, सम्वत् १९७२

[द्वादश दर्शन



वार्षिक मूल्य १॥)]

सम्पादक—

[प्रति संख्या =)॥

पण्डित सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, श्रीमती गोपालदेवी।

गृहलक्ष्मी
का
विशेषाङ्क

कागज़ आदि सब सामग्री बहुत महँगी होते हुए भी गृहलक्ष्मी का चैत्र का अङ्क विशेष रूप से मनोहर और उपयोगी बनाया जायगा। इसमें बहुत से चित्र रहेंगे। साथ ही साथ बहुत से उपयोगी लेख भी रहेंगे। चैत्र के अङ्क से गृहलक्ष्मी में कुछ नयी बातें रहा करेंगी। संगीत विद्या, चित्रकला विद्या, पाकशास्त्र और सीने पिरोने आदि उपयोगी विषयों पर सिलसिलेवार लेख छापे जायँगे। यह सब विषय सचित्र रहेंगे, अतएव खर्च भी अधिक होगा। हमें पूरी आशा है कि हमारे पुराने ग्राहक इस साल भी गृहलक्ष्मी पर पूर्ववत् कृपा बनाये रहेंगे और अपने इष्ट मित्रों को इसका ग्राहक बनाकर इसकी ग्राहक संख्या बढ़ावेंगे और इस अपनी पत्रिका को दिन दिन उन्नत अवस्था में देखकर प्रसन्न होंगे।

—सम्पादक





"स्वाम्प्रसूतिश्चरित्रञ्चकुलमात्मानमेवच । स्वञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति —मनुः

"सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी । अनुकूला, न वाग्दुष्टा, दक्षा, साध्वी, पतिव्रता । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥" —दक्षसंहिता

षष्ठ वर्ष] प्रयाग, फाल्गुण, संवत् १९७२ [द्वादश दर्शन

ऋतुराज स्वागत

दृश्य मनोहर कै चहुँघा,
छबि सृष्टि कि धन्य बनावन हारे ।
घोर हिमन्त पै पाया बिजै,
मधुराई अनन्त दिखावन हारे ॥
कौन कहे एक चेत नहीं,
जड़हू को अहो ! अपनावन हारे ।
आओ अनेक बधाई तुम्हें,
तुम हो ऋतुराज कहावन हारे ॥ १ ॥

धारि लिये नव पल्लव वृक्षन,
देखत ही बनती सुघराई ।
ये नव पुष्प दिखावत हैं,
विधना कर की सिगरी चतुराई ॥
डोलत प्यारी बयारि अहो,
दरसावति मंजु मनोहरताई ।
ये सब साज सजे अपने,
ऋतुराज मनावैं तुम्हारी बधाई ॥ २ ॥

स्वागत रावरो है ऋतुराज,
इती विनती अब और सुनीजे ।

छायो अज्ञान को घोर हिमन्त,
हिये मँह तौनेहु को हरि लीजे ॥
आश गई झरि आलस को लखि,
पात नये उत्साह के दीजे ।
शक्ति प्रसून सनेह बयारिन,
सत्य बसन्त को नाम करीजे ॥ ३ ॥
हाँ अब ऐक्यता की शुभ बेलि,
वसुन्धरा भारत पै प्रसरैगी ।
धीरज की रमणीय नदी,
अपनी गति धीर गँभीर करैगी ॥
पाय सहायक साहस को,
अब शक्ति सशक्ति बनी विहरैगी ।
भारती भारत मैं अब आय,
वसन्तहि को गुण गान करैगी ॥ ४ ॥
चारि दिना कि बहार दिखाई,
अहो ऋतुराज चहोगे विदाई ।
कौन तुम्हार करै गुणगान,
तबै लखि ग्रीषम भीषमताई ॥
पै हिय मध्य निवास करे,
दुहुँ ओर सबै विधि होय भलाई ।
भारत सन्तति सत्य (लली),
दरशै है सदैव तुम्हारि बड़ाई ॥ ५ ॥
—श्रीमतीतोरनदेवी (लली)

नारी-हितशिक्षा

(१)

हितकी बात तुम्हें बतलाऊँ,
सुन लो धरि के ध्यान सहेली ।
आलस औ' दुर्व्यसन त्याग दो,
यह शिक्षा लो मान सहेली ॥

(२)

सास ससुर की सेवा कीजे,
मन बच कर्म लगाय सहेली ।
लहि अमोघ आशीश उन्हीं के,
जागे दिन दिन भाग सहेली ॥

(३)

त्याग अविद्या, सीखो विद्या,
तब तुमको हो ज्ञान सहेली ।
बिन पति भक्ति व्यर्थ नारी का,
योग यज्ञ जप दान सहेली ॥

(४)

मत सुहाग-सूचक-चिन्हों को,
कीजे तन से दूर सहेली ।
निज प्रियतम के सन्मुख जाओ,
करि सिँगार भर पूर सहेली ॥

(५)

तजो राग रस भोग आदि जब,
प्रिय पति हो परदेश सहेली ।
जप तप संयम नियम आदि कर,
पूजो प्रभु परमेश सहेली ॥

(६)

आगत मेहमानों का करना,
शुभ स्वागत सत्कार सहेली ।
प्रेम पूर्ण आलाप आदि कर,
देना मधुर अहार सहेली ॥

(७)

असन बसन भूषण इत्यादिक,
जैसे कुछ हों प्राप्त सहेली।
रहना नित सन्तुष्ट सुखी मन,
समझ उन्हें पर्याप्त सहेली॥

(८)

उन्नति का एक मार्ग यही है,
रखिये उच्च विचार सहेली।
निज विचार अनुसार बनेगा,
तेरा शुद्धाचार सहेली॥

—कृष्णकला

आवश्यक सूचना।

इस दर्शन से गृहलक्ष्मी का छठा वर्ष पूरा होता है और अगले दर्शन से यह पत्रिका सप्तम वर्ष में प्रवेश करेगी। हम अपने उन पुराने ग्राहकों और ग्राहिकाओं को जिनके पास यह पत्रिका प्रथम दर्शन से जा रही है विनय पूर्वक सूचित करते हैं कि उनका वार्षिक मूल्य समाप्त होगया है। अतएव कृपा कर अगले वर्ष का अग्रिम वार्षिक १॥) रु० मनी आर्डर द्वारा भेज कर हमें अनुग्रहीत करें। जिनको किसी कार वश इस वर्ष गृहलक्ष्मी ग्राहक न रहना हो उन्हें अपने इस विचार की सूचना बहुत शीघ्र ही भेजनी चाहिए क्योंकि जिन ग्राहकों का किसी प्रकार का भी उत्तर न आवेगा उनके विषय में हम यही समझेंगे कि वे इस वर्ष भी ग्राहक रहना चाहते हैं और अगला अङ्क वी० पी० द्वारा उनकी सेवा में भेजने की हमको आज्ञा मिल रही है।

मैनेजर गृहलक्ष्मी।



विशेष सूचना

हमारे बहुत से ग्राहकों को शायद यह बात न मालूम होगी कि युरोप के युद्ध के कारण आज कल कागज़ और स्याही वगैरह के दाम बहुत चढ़ गये हैं।

कागज़ का भाव तो दूना हो गया है और ऐसा भी कहा जाता है तिगुने चौगुने तक पहुँचेगा। ऐसी दशा समाचार पत्रों और मासिक पत्रों के लिए बड़े संकट की है इनके मालिकों को अधिक घाटा होने की सम्भावना है।

ऐसी अवस्था में हम अपने दयालु ग्राहकों से कुछ सहायता पाने की विशेष प्रार्थना करते हैं। गृहलक्ष्मी का वार्षिक मूल्य बढ़ा कर घाटे को पूरा करने का हमारा न कभी पहिले विचार था और न अब है। हम कृपालु ग्राहकों से यही प्रार्थना करते हैं कि आज कल वह समय आ गया है कि केवल आपही ग्राहक बने रहें इतने ही से काम न चलेगा वरन इस बात की बड़ी जरूरत है कि हर एक ग्राहक कम से कम एक एक नया ग्राहक और बनावें। इस से यह लाभ होगा कि ग्राहक दूने हो जाँयगे और कागज आदि के महँगे होने से जिस घाटे का भय है वह जाता रहेगा। क्योंकि जितनी अधिक संख्या में पत्रिका छपेगी उतनी ही छपाई में किफ़ायत पड़ेगी और यह किफायत कागज़ की महँगी के घाटे को पूरा कर देगी।

हमें पूरी आशा है कि हमारे ग्राहक और ग्राहिकाएँ हमारी इस प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे और ऐसा करने से वह 'गृहलक्ष्मी' को सदा उन्नत और पुष्ट अवस्था में देख कर प्रसन्न होंगे।

मैनेजर, "गृहलक्ष्मी"

सच्चा प्रेम



(र)वीवार की सुहावनी संध्या है। पश्चिम में रक्त वर्ण हो सूर्य भगवान धीरे धीरे अस्ताचल को प्रयाण कर रहे ह। इसी समय एक बीस वर्षीय बालक निकट वाले गिरजे के प्रधान फाटक में घुसा। सम्मुख ही उसने हरी घास पर पड़ी हुई बेञ्च देखी और उस पर बैठी हुई एक षोडशी को कपड़े पर फूल लगाते हुए देखा। बालक का नाम हेनरी और और बालिका का नाम रोज़ है। हेनरी प्रति रविवार को ही रोज़ को देखता है पर आज रोज़ को देख उसका चित्त चञ्चल हो उठा, ईश्वर-प्रार्थना के पश्चात् वह घर आया पर उसका मन किसी भी बात में नहीं लगता है। आज उसके चित्त में सहस्रो विचार उत्पन्न और विनष्ट हो रहे हैं। वह विचारता है–मैं सामान्य व्यक्ति हूँ, रोज़ एक धनाढ्य की कन्या है; क्या रोज़ का मेरे प्रति अनुराग हो सकता है ? अथवा मेरे प्रणय से उसकी प्रणय-आकांक्षा मिटने की सम्भावना है ? ऐसे ही प्रश्नों से उसके हृदय में उथल पुथल मची है।

* * * * *

रोज़ को प्रसन्न करने में हेनरी को जो कष्ट उठाने पड़े अथवा जिन जिन

आपत्तियों का सामना करना पड़ा उनको उल्लेख कर आप लोगों का चित्त दुखाया नहीं चाहता। हाँ, हेनरी ने रोज़ को अपने गुणों से अपने प्रति आकृष्ट कर लिया, दोनों का अन्त में विवाह हो गया।

हेनरी के पिता दो वर्ष हुए जब से अपने पुत्र को एक मिलका स्वामी बना स्वर्ग को सिधारे तब से मिल की देख भाल हेनरी को ही करनी पड़ती है। जब से विवाह हुआ तब से देख रेख में कुछ कोताही होने लगी। दुर्भाग्यवश उसी वर्ष बड़ाभारी अकाल पड़ा। अन्न का भाव बहुत चढ़ गया, विचारे मज़दूरों की बड़ी दुर्दशा हुई। दिन भर परिश्रम करके भी वे इतना कमा न सकते कि अपने बाल-बच्चों को सूखी रूखी रोटी खिला स्वयं भी खा सकें; परिणाम यह हुआ कि मिल के मज़दूरों की दशा शोचनीय हो गयी। उनसे परिश्रम कराना कठिन हो गया। रोज़ की उदारता तथा दयालुता उस समय दर्शनीय थी। उसने भरसक मज़दूरों को आर्थिक सहायता दी। इतने पर उसे सन्तोष नहीं होता और प्रायः नित्य ही वह एक आध भूखे को भोजन देती। दैव संयोग से एक मज़दूरिन को जो कि क्षुधा के कारण मृत प्राय हो रही थी तथा जिसके हड्डी ही हड्डी शेष रह गई थीं अपने साथ घर लाई और भोजन कराया। भोजन पा मज़दूरिन बड़ी प्रसन्न हुई और बात की बात में ही सब खा डाला। नियमित रूप से अधिक खाने के कारण उसे हैज़ा हो गया। हेनरी ने रोज़ से हँसी में कहा कि "तुम्हारी कृपा से मज़दूरिन शीघ्र ही स्वर्ग पहुँचना चाहती है।" इसका कुछ उत्तर रोज़ ने न दिया। उसे मज़दूरिन को अच्छा करने की चिन्ता हुई। निकटस्थ डाक्टर को उसने बुला भेजा। उसके इलाज से वह दो ही दिन में चङ्गी हो गई।

न मालूम किस अशुभ महूर्त में हेनरी के साथ रोज़ का विवाह हुआ था कि वह उसी रात्रि को रोग ग्रस्ता हुई। हेनरी ने रोज़ को बचाने के लिए शक्ति भर प्रयत्न किए पर—

"प्रतिकारविधान मायुषि-
सतिशेषे हि फलाय कल्पते"

अर्थात् 'जीवन जब शेष होता है तभी दवा आदि उपाय काम करते हैं।'

रोज़ सदा के लिए संसार से चली गई। हाय! वे सब सुख की चेष्टाएँ एक क्षण में नष्ट हो गईं। हेनरी के हृदय में चिन्ता की जो ज्वाला दहक उठी वह आजन्म न बुझी और उसका जीवन लेकर ही शान्त हुई। शोक संतप्त हृदय से व्याकुल हो, मन की निदारुण व्यग्रता के अत्याचार से दुःखित हो मर्म वेदना से अस्थिर हो आत्मघात करने की ठानी।

* * * *

बिना सोचे विचारे ही नदी में डूब कर प्राण त्याग करने की चित्त में ठान

नदी की ओर बढ़ा। जब उसमें कूदने को हुआ तब उसके चित्त में अनायास यह भाव उठा "रोज स्वर्ग में है यदि मैं इस भाँति आत्महत्या करूँगा तो नरक में जाऊंगा अतः मेरा उस से मिलन न न हो सकेगा" बस उसने आत्मघात का विचार त्याग दिया।

* * * * *

१८५० के प्रसिद्ध बोरयुद्ध की अग्नि प्रज्वलित होने वाली थी। ब्रिटिश सेना सुसज्जित हो रही थी। इसकी ख़बर हेनरी को लग गई। दूसरे ही दिन वह युद्ध-सचिव के आफिस में भर्ती हो गया।

* * * *

प्रातःकाल का समय है। प्राची दिशा में अभी लालिमा ही दिखाई पड़ती है। नगर में चहल पहल आरम्भ हो गई सहस्रों योद्धा पंक्ति बद्ध हो सड़क पर गुजरने लगे। सैकेड़ों पताकाओं पर सूर्य किरण पड़ पड़ कर चकाचौंध उत्पन्न करने लगीं। मार्ग में दोनों ओर दर्शकों की भीड़ लगी है। ऊँचे मकानों की खिड़कियाँ दरवाजे प्रायः सब ही खुले हैं। सब ही व्यग्र भाव से जाते हुए सैनिकों को देख रहे हैं। कुछ ही काल में उत्साह पूर्वक सेना नगर बाहर हो गयी। किन्तु सैनिकों में सब से अधिक उत्साह सबसे अधिक आनन्द सब से अधिक गर्व हेनरी में ही है।

सारी सेना यथा समय युद्धक्षेत्र में सकुशल आ पहुँची है। प्रधान आफिसर ने उत्तेजनार्थ संक्षिप्त व्याख्यान दे ईश्वराधन कर शत्रु पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। आज्ञा के साथ ही शत शत तोपें एक साथ भीषण गर्जन करने लगीं। सहस्र सहस्र बन्दूकों की गड़ गड़ाहट कोसों सुनाई देने लगी। लक्ष लक्ष योद्धा धराशायी होने लगे। हेनरी भी निडर हो शत्रुओं का सामना कर रहा है। उसकी बन्दूक के न मालूम कितने वीर निशाना बने। अन्त में शत्रु की गोली से वह धराशायी हुआ। मरते समय उसे केवल रोज़ ही का ध्यान था। इस प्रकार इस सच्चे पत्नी प्रेमी का अन्त हुआ।

धन्य! हेनरी और धन्य! तुम्हारा पत्नी प्रेम!

—अयोध्याप्रसाद पाण्डेय

ख्यूड़े की निमक की खान

मैं आप को एक निमक की खान का वृत्तान्त बताना चाहती हूँ। आशा है आप ध्यान पूर्वक पढ़ेंगी। मेरा वासस्थान लाहौर में है। मैं सन् १९१५ अगस्त की २५ तारीख को माता आदि परिवार सहित मलकवाल जो एक छोटासा गाँव गुजरात की तरफ है, वहाँ गई।

मेरे चाचा जी वहाँ डाक्टरी का काम करते हैं। उनके पास ठहरी। वहाँ से नज़दीक ही ख्यूड़ा गाँव में एक निमक की खान है। वहाँ हम एक दिन प्रातःकाल ही रेल में बैठ कर देखने को गईं। ६ बजे प्रातः हम ख्यूड़े पहुँच गईं। वहाँ से कुछ दूर ही निमक की खान थी। हम सब पैदल ही चलदीं। कुछ देर में ही निमक की खान के दरवाज़े पर पहुँची तो क्या देखती हैं कि सुरङ्ग के अन्दर से निमक की गाड़ियाँ भरी चली आती आती हैं। उनको रेल की पटरी पर एक दफ़ा धक्का दे देते हैं बस वह दौड़ती हुई स्टेशन पर चली जाती हैं फिर वहाँ से निमक और देशों में भेजा जाता है। सुरङ्ग के अन्दर बहुत अन्धेरा नज़र आता था। हम सब के साथ एक एक आदमी दीवा बाल कर जाने लगा। अन्दर बहुत ठण्ड थी और ऊपर नीचे सारे में निमक ही निमक नज़र आता था। वहाँ ४०० आदमी दिन को और ४०० आदमी रात रात को काम करते हैं। उन काम करने वालों को काम के मुआफिक तनख़ाह मिलती है। उस जगह का निमक हिन्दुस्तान के सारे शहरों में भेजा जाता है। निमक गल कर एक तालाब बन गया है। उसमें दो किश्तिएँ भी हैं। सुरङ्ग के अन्दर रात की तरह अंधेरा था और दीये बिना दो कदम भी चलना मुशकिल था। एक जगह निमक की शक्ल वृक्ष के पत्तों की तरह बनी हुई थी। वहाँ रोशनी करने से हीरों की तरह निमक चमकता था। उस खान को पहिले राजा रणजीत सिंह ने खुदाया था। अब तक बराबर खोदी जा रही है परन्तु उसकी हद आज तक नहीं मिली। एक जगह ८ फुट की निमक की दीवार है। उसके एक तरफ रोशनी करने से दूसरी तरफ इतनी रोशनी हो जाती है कि बारीक लिखा हुआ भी पढ़ा जा सकता है। कई जगह निमक पानी बन कर टपकता था। उस पृथ्वी पर निमक के ढेर मिट्टी जैसे बारीक पड़े हुए थे। ऊपर की मंज़िल में खड़े हो कर देखने से नीचे काम करते हुए आदमी ऐसे मालूम होते थे जैसे दिवाली की रात को जग-मगाहट दिखाई देती है। निमक ऐसी रीति से खोदा हुआ था कि सड़कें और द्वार बड़े सुन्दर बने हुए थे। यह सब कुछ देख कर हम स्टेशन पर आये और रेल में सवार होकर घर आ गये।

—कृष्णवती

कुमारी मांटेसरी की शिक्षा प्रणाली *

आज कल हिन्दू समाज में पतित जातियों की उन्नति के निमित्त आन्दोलन हो रहा है। किन्तु समाज में जो वास्तविक पतित हैं उनके

* गृहस्थ में प्रकाशित एक नोट के आधार पर

उद्धार के लिए कितनी आत्माएँ ईश्वरीय भाव से प्रेरित होकर लगी हुई हैं इसका ठीक-ठीक पता लगना कठिन है। संसार में यदि कोई वास्तविक "पतित जाति" है तो वह शिशु-समुदाय है। बहुधा देखा जाता है कि जन-साधारण इन्हीं के सुधार के हितार्थ उदासीनता का परिचय देकर यथेष्ट उद्योग नहीं करते हैं। हमारी यह कभी चेष्टा नहीं रहती है कि प्राकृतिक उपायों का अवलम्बन करते हुए शिशु आदर्श पुरुष बन जावें। हमारे विचारालय दंडित अपराधियों के चरित्र संशोधन में यत्नवान हुए हैं। वाराङ्गनाओं की हीन प्रकृति का सुमार्ग में प्रवृत्त करने के लिए हम चेष्टा करते हैं। हम भूल से शिशुओं की भी उतना ही निगरानी करते हैं जितनी की बड़े लड़कों की और उन पर ऐसी कड़ी दृष्टि रक्खी जाती है मानो वह कोई बड़े उद्दंड अपराधी हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि जब कभी अभिभावक की दृष्टि थोड़ी देर के लिए भी उन पर से चूक जाती है तो वे कुमार्ग की ओर प्रवृत्त होने लगते हैं। और इस प्रकार बाहिरी भय के द्वारा दी हुई शिक्षा चिरस्थायिनी और वास्तविक शिक्षा नहीं हो सकती। अंतरात्मा की नियम-बोध जागृति होने से ही उसके प्रति पालन की इच्छा स्वाभाविक तौर पर जग उठेगी इस लिए शिशुओं को केवल घिराव में रखने की आवश्यकता है जिससे वे अपने आप ही सुपथ ग्रहण करने में प्रवृत हों किस प्रकार उपर्युक्त आवेष्टन प्रस्तुत करना चाहिए और किस तरह उसमें शिशुओं को रखना चाहिए उसकी एक प्रणाली कुमारी मांटेस्सरी ने आविष्कार की है। उक्त कुमारी जी इटाली विश्व विद्यालय की सब से प्रथम स्त्री-ग्रेजुएट हैं। आपकी शिक्षा प्रणाली का उचित उपयोग करने से शिक्षकों का हस्तक्षेप यथा संभव निवारण हो जाता है।

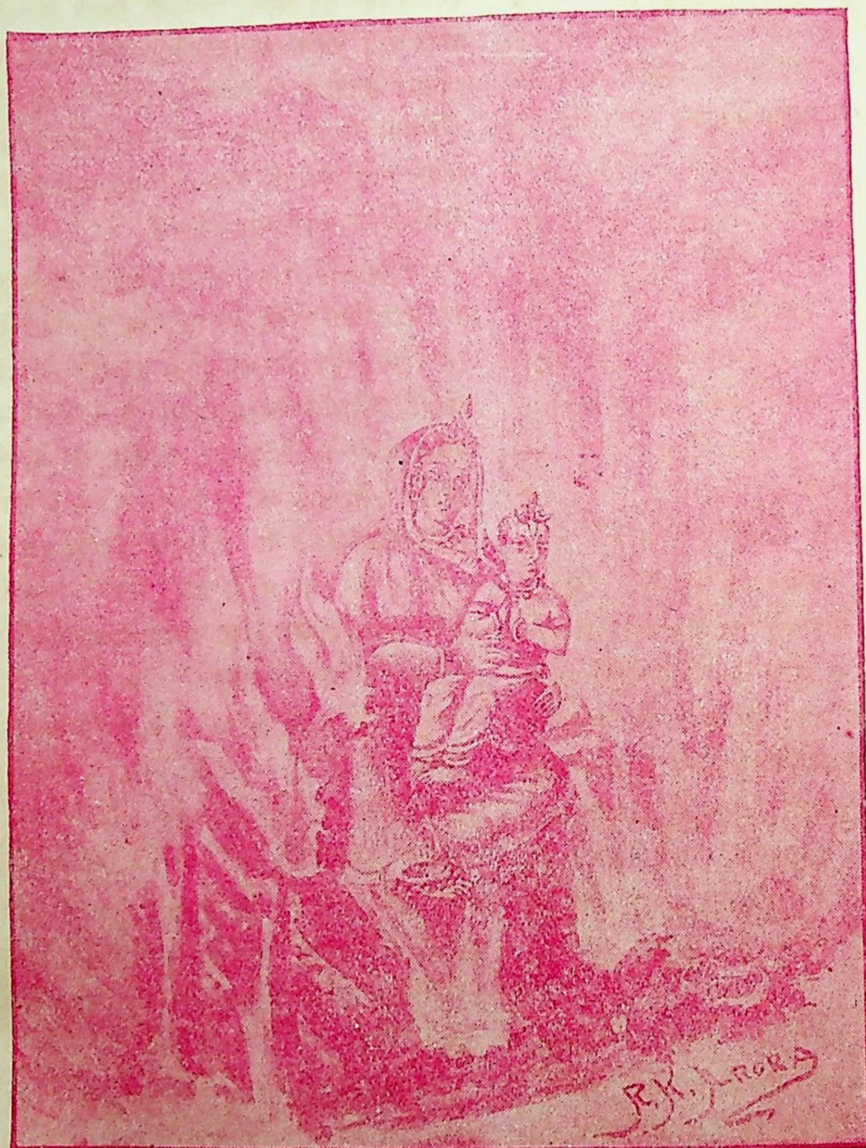
शिशुओं को पूर्ण स्वाधीनता मिलनी चाहिए जिस से उनकी स्वाभाविक शक्ति में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे। स्वाधीनता देने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि शिशुओं पर से दबाव एक दम उठा देना चाहिए किन्तु उनके लिए शिक्षक केवल देख भाल के लिए होने चाहिएँ जिस से उन्हें अपनी स्वाधीनता प्रकाश करने का सुयोग और आनन्द मिले। वे जिन जिन उपायों द्वारा आत्म संयम और व्यक्तित्व संपन्न कर सकें उनका अवलम्बन करना शिक्षकों का कर्तव्य है। इस लिए ज्ञानोपार्जन का स्थान इस प्रणाली में अद्वितीय है। उक्त कुमारी का विचार है कि शिशुओं की अधिक हिफ़ाज़त करने से सिवाय उनके व्यक्तित्व अपहरण के और कुछ नहीं है। उनके भीतर जो मानव आत्मा है उसको भली भाँति श्याम चढ़ाना ही यथार्थ शिक्षा है।

— बाबूलाल शर्म्मा मुख़ार

———



गजानन-जननी



प्रह्लाद और होली

अपूर्व आत्मत्याग

(केवल गृहमचर्मी के लिए)

ऐतिहासिक

(१)



ज़ालिम औरङ्गज़ेब का राज्य था और तमाम हिन्दू प्रजा उसकी कठोरता के कारण थर थर काँप रही थी। उस यवन-सम्राट से, उस गोधन-भक्षी से हिन्दू मात्र सताये जा रहे थे। कितने राजपूत तो अपनी कन्याएं व बहिनें दे दे कर बादशाह के प्रिय पात्र बन गये। कितने ही हिन्दुओं ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली। लेकिन कुछ साभिमानी पुरुष ऐसे भी थे, जो उस ज़ालिम को मस्तक झुकाना पाप समझते थे। मरते दम तक जिन्होंने उसे 'विधर्मी, 'देशशत्रु' 'विश्वास-घाती' और 'दग़ाबाज' कह कर ही सम्बोधन किया। उन्हीं साभिमानियों में से एक का मैं आज कुछ हाल सुनाना चाहती हूँ।

रूपनगर की राज्य-कन्या चंचल-कुमारी की सुन्दरता उन दिनों चारों तरफ़ फैल रही थी। प्रत्येक मनुष्य के चित्त को चंचलकुमारी का नाम चंचल कर देता था। औरङ्गज़ेब भी उसकी सुन्दरता से अपरिचित्त न था। उसने बहुत चाहा, कि चंचल कुमारी के साथ राजी खुशी मेरी शादी हो जाय, उसके लिए लाखों वीरों का ख़ून न बहाना पड़े, लेकिन उसका सोचना निष्फल हुआ।

उसने चंचलकुमारी के पिता को लिख भेजा, कि मैं चंचल से विवाह करने आता हूँ, तयारी कर रखना।

रूपनगर एक छोटी सी रियासत थी। वहाँ के राजा का साहस न था, कि वह औरङ्गज़ेब के विरुद्ध खड़ा हो। लेकिन वह यह भी नहीं चाहता था कि मेरी कन्या यवन-पत्नी बने। उसने चंचल से कहा, "बेटी बादशाह का पत्र आया है। उसे क्या जवाब देना चाहिए।" चंचल के गुलाबी कपोल पीले पड़ गये। उसकी आँखें अंगारे की तरह चमकने लगीं।

* * * * *

उदयपुर के नरनाथ राना राजसिंह उन्हीं पुरुषों में थे, जिन्होंने औरङ्गज़ेब को 'ज़ालिम' कह कर ही पुकारा था। उनकी कीर्ति-कौमुदी चारों तरफ़ फैल रही थी। प्रत्येक हिन्दू बड़ी प्रीति और भक्ति के साथ उनका नाम लेते थे। राजसिंह उस समय तमाम मेवाड़ के मुकुट थे।

चंचलकुमारी ने भी राजसिंह का नाम सुना था, उनके यश को जानती थी, उन की मर्य्यादा जानती थी। वह मन में सोचने लगी "हाय, मैं कैसे करूँ। जिन म्लेच्छों से मैं सदा घृणा करती आयी हूँ, जिन का मुख देखना भी मैं पाप सम-

झती हूँ, क्या उन्हीं के साथ मेरी शादी होगी ? क्या मुझे लोग म्लेच्छ-पत्नी ही कहेंगे ? हे भगवान मैं कैसे करूँ ?"

आखिर उसने बहुत सोच विचार कर राना राजसिंह को एक चिट्ठी लिखीः—

"वीरवर,

बिना परिचय के आपको मैं क्या कह कर संबोधन करूँ । परिचय के लिए मैं आपसे कहती हूँ कि मैं रूपनगर की राजकुमारी हूँ मुझे यह कहते हुए लज्जा लगती है, कि मैंने अपना शरीर आप को दे दिया है । उसकी रक्षा आप के हाथ है । मैं यह जानती हूँ, कि आपका रनिवास भरा हुआ है । लेकिन मेरा हृदय प्रण कर चुका है । इस कारण मैं विवश हूँ । मुझे आशा है कि आप अपने रनवास में मुझ दासी को स्थान देंगे ।

महाराज, कुछ ही दिन बाद औरङ्गजेब मुझे विवाहने आवेगा । उसकी सेना आने के पहिले ही आपको मुझे ले जाना चाहिए । मैं आपकी शरण हूँ । आप ही कहिए, कि मैं क्षत्रिय की बेटी होकर एक यवन को एक देश-शत्रु को 'प्रियतम' कह कर कैसे पुकारूँगी । आप जल्दी आवें, नहीं तो एक कन्या की आत्महत्या का पाप आप के सिर लगे, तो मैं नहीं जानती । आप हिन्दुओं के सिरमौर हैं, क्षत्रिय-कुल भूषण हैं । एक क्षत्रिय बालिका की शरण में आये की लाज रखिए ।

बादशाह के आने के अभी सात दिन बाकी हैं । मैं आपके आने का रास्ता छः दिन देखूँगी । यदि आप उस समय तक न आये, तो मैं वहाँ चली जाऊँगी, जहाँ मुझे उस ज़ालिम का कुछ भी खौफ न होगा । अन्त में मेरी यही प्रार्थना है कि उस पिशाच यवन-राज से मेरा पवित्र अंचल बचा रहे ।

आपकी दासी—

चंचल"

(२)

राना राजसिंह की सभा आज खचा-खच भरी है । तिल रखने को भी जगह नहीं । सभी के चेहरे अभिमान से भरे हैं, शूरता से पगे हैं । एक अबला बालिका के प्रति इस अत्याचार का होना कौन सहृदय सुन सकेगा ।

मंत्री, सभासदों और तमाम सैनिकों की यही राय हुई, कि चंचलकुमारी की रक्षा अवश्य करनी चाहिए । उसकी लाज अवश्य बचानी चाहिए ।

राना राजसिंह ने कहा, "जो मेरी पचास हज़ार सेना लेकर रास्ते में औरङ्ग-ज़ेब को चार दिन तक रोक सके, किस में इतना साहस है, कौन इतना वीर है ? केवल सलाह देने से काम नहीं चल सकता है । उसे करना भी चाहिए ।" सब सभा में सन्नाटा पड़ गया । सब वीरों

के सिर नीचे हो गये। उनके मस्तक झुक गये। सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। राना को बड़ा दुःख हुआ, वह बोले:-

"जब बाप्पा रावल के पवित्र वंशजों में इतनी शक्ति नहीं है, कि वह एक बालिका का उद्धार कर सकें, तब तो हो चुका। उनका क्षत्रियत्व, वीरत्व और मनुष्यत्व उनके पूर्वजों के रक्त की धारा के साथ, उनके ख़ून के फुहारों के साथ बह गया। अब उनमें से किसी को क्षत्रिय होने का, प्रतापसिंह की संतान होने का बाप्पा रावल के रक्त का और राजपूताने में पैदा होने का अभिमान न करना चाहिए।" सभी मनुष्यों के सिर झुके थे, लेकिन उनमें एक ऐसा भी युवक था, जिसकी भृकुटी राना की बातों से तन रही थीं। उसके नेत्रों से चिनगारी निकल रही थीं। उसका चेहरा लाल हो गया था, और अभिमान से परिपूर्ण हो गया था। वह अठारह वर्षीय युवा वास्तव में सभा के मनुष्यों का सरदार था और चूणावत सरदार था।

वह बोला, "जब तक चूणावत की इन भुजाओं में शक्ति है, जब तक उसके शरीर में खून है, जब तक उस में दम है, तब तक यवन सेना का एक भी मनुष्य रूपनगर न जा सकेगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि चार दिन तक औरङ्गजेब की तो मजाल क्या है, उसके चौदह पीढ़ी तक के पुरखे रूपनगर की सरहद नहीं देख सकते। राज-कन्या चंचलकुमारी आज से राना राजसिंह की राजरानी और हम सब लोगों की माता महारानी हुई। शरीर में चन्द साँसों के रहते हुए भी हम अपनी मेवाड़ेश्वरी की रक्षा करेंगे।"

सभा में बड़ी ज़ोर से करतल ध्वनि हुई। सब लोगों के चेहरे आनन्द से खिल उठे।

(३)

बात की बात में पचास हजार सेना तय्यार हो गयी। प्रस्थान के लिए उत्साह पूर्वक डंका बज गया। चूड़ावत सरदार केवल १८ वर्ष का था। उसका विवाह अभी थोड़े ही दिन हुए, हुआ था। उसकी पत्नी को आये हुए अभी तीन ही दिन हुए थे। उसकी पत्नी को दासी के द्वारा सब खबर मिल चुकी थी। सेना प्रस्थान कर गयी। पीछे से चूड़ावत अपने शरीर रक्षकों के साथ घोड़े पर चढ़ कर जाने लगे। जैसे ही वह घोड़े पर चढ़ने को थे, उसी समय उनके नेत्र सामने की अट्टालिका वाली झरोखेदार खिड़की पर पड़े। उस स्थान पर दो कमनीय नेत्रों को देख कर वह सहम गये। उनका उत्साह फीका पड़ गया। जो चञ्चल नेत्र उन्होंने देखे थे, वे उनकी नव विवाहिता प्रियतमा पत्नी के थे। उन्होंने सेवकों से कहा, "तुम लोग

आगे चलो, मैं अभी आता हूँ।" सेवकों ने तत्काल आज्ञा पालन की।

चूड़ावत शीघ्रता पूर्वक महल में गये। उनकी स्त्री खड़ी हुई उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने बड़े हर्ष के साथ उनका स्वागत किया। और बोली, "नाथ, क्षमा कीजिएगा। मैं देखती हूँ, कि आप ने जिस उत्साह से डंका बजवाया था, वह नहीं रहा। क्या कारण है?"

चूड़ावत—प्रिये! आज मैं ऐसे समर-क्षेत्र में जा रहा हूँ, जहाँ से लौट आने की बहुत कम आशा है। मुझे अपने प्राणों का रत्ती भर भी मोह नहीं, क्योंकि वह स्वामी के कार्य में और देश के कल्याण के लिए लगेंगे। क्षत्रियों के लिए इससे अच्छा मरने का और कौन समय है? लेकिन शोक केवल इस बात का है, कि मैं तुम्हें अकेली छोड़ता हूँ। तुम्हारी अभी नवीन अवस्था है। तुम्हें आये हुए अभी दो ही दिन हुए हैं। संसार का कुछ भी सुख तुमने नहीं भोगा है, तुम मेरे पीछे क्या करोगी?

चूड़ावत की स्त्री बोली, "स्वामी! इसी लिए आप इतना शोक कर रहे हैं? इसमें शोक किस बात का? आप निश्चय जानिए, कि मैं आप के पीछे धर्म पूर्वक अपना जीवन बिताऊँगी। ईश्वर न करे, लेकिन यदि विधि विडम्बना से कहीं यह अनहोनी घटना हो जायगी, तो मैं क्षत्राणियों के बीच अपना मस्तक उठा कर कह सकूँगी, कि मैं उस वीर सरदार की स्त्री हूँ, जिन्होंने अपने राजा और अपने देश के लिए अपने प्राण निछावर कर दिये हैं।" यह कहते कहते उस पति प्राणा सती का हृदय उमंग से भर गया।

चूड़ावत—प्रियतमे, मेरी और तुम्हारी यह अन्तिम भेंट है। ईश्वर करे, तुम संसार में अपना शेष जीवन प्रतिष्ठा पूर्वक पालन करो। मैं अब चला। यह कह कर वीर चूड़ावत ने अपनी स्त्री को कंठ से लगा लिया।

पत्नी—स्वामिन्, आप यह निश्चय जानें, कि जिस तरह आप स्वर्ग लोक लेंगे, उसी तरह मैं भी पति-लोक का पाना जानती हूँ।

चूड़ावत बोले, "भगवान विश्वेश्वर तुम्हारी मनोकामना पूरी करें। अब हमें तुम बिदा दो। सैनिक मेरी रास्ता देखते होंगे।"

उस वीर क्षत्रियानी ने प्रसन्नता पूर्वक कहा, "मैं आप को प्रसन्नता पूर्वक बिदा देती हूँ। आप रणभूमि में जा रहे हैं, आइए, मैं आप का वीर भेष बना दूँ।" यह कह कर उसने चूड़ावत को युद्ध के कपड़े अपने हाथ से पहिनाये। कमर में तलवार बाँध दी और पीछे ढाल कस दी। फिर धनुष बाण दिया और अन्त में भाला देकर बोली, "मैं ईश्वर से प्रार्थना

करती हूँ, कि आप का यह भाला हज़ारों मनुष्यों का नाश करे।"

चूड़ावत आँखें फाड़ कर अपनी स्त्री के उस समय के सौन्दर्य्य को देखने लगे।

स्त्री ने जोश में भर कर कहा, "भगवान आप की तलवार को इन्द्र का बज्र बना दे।"

चूड़ावत ने झपट कर अपनी सती स्त्री को हृदय से लगा लिया।

उस मेवाड़ की मुकुट ने फिर कहा, "आप रण गमन कर रहे हैं। मेरे दिये यह अन्तिम पान के बीड़े लीजिए। ईश्वर करे, इनकी लाली सदैव बनी रहे।" यह कह कर उसने तत्काल ही दो बीड़े लगा कर चूड़ावत को खिला दिये। फिर थाल में आरती सजा कर ले आयी, और चूड़ावत के उतार कर, गंभीर शब्दों में बोली, "मेवाड़ की लाज तुम्हारे हाथ है। भगवती करे, तुम्हारी छाती में चाहे अपर्मित बाण लगें, लेकिन पीठ बिलकुल बेदाग रहे।" इतना कह कर वह कोमलांगी चूड़ावत के पैर पर गिर पड़ी। चूड़ावत उसे उठा कर अपने हृदय से लगा लिया और फिर उससे बिदा हो गये।

उसके दो मिनट बाद उस प्रेममयी की विशाल आखों में आँसुओं के दो बूँद दीख पड़े।

(४)

चूड़ावत अपना घोड़ा फेंके हुए जा रहे थे। उनका बदन पसीने से तर बतर था। रास्ते में उनके पुरोहित मिले। चूड़ावत ने कहा, "आचार्य जी, आप जब उदयपुर पहुँचें, तब मेरी स्त्री से कह दीजिएगा, कि वह धर्म पूर्वक रहे।" यह कहने के साथ ही उनका घोड़ा फिर हवा हो गया।

आचार्य्य ने आकर चूड़ावत की स्त्री से उनका संदेशा कह सुनाया।

उस कर्तव्य परायण रमणी ने सोचा, कि जब तक स्वामी का चित्त दुचित्ता रहेगा, रण में उत्साह न होगा। यह विचारते ही उस वीर बाला ने आचार्य्य से कहा, "आचार्य्य जी, आप अभी मेरे स्वामी के पास चले जाँय, और मैं अपना सिर काटे देती हूँ, आप उनसे कहिएगा, कि अब आप निश्चिंत होकर युद्ध करें। आप की संसारी चिन्ता मैं जड़ से हटाये देती हूँ।" यह कह कर उसने अपनी पानीदार तलवार से अपना सिर काट डाला। आचार्य्य ने वह सिर ले जाकर चूड़ावत को दे दिया। चूड़ावत ने उसे एक बार चूम कर, उसमें पड़ी हुई धूल को अपने दुपट्टे से पोंछ कर हार की तरह अपने गले में पहिन लिया। और फिर पहिले के चौगुने उत्साह से रण-क्षेत्र की तरफ बढ़े।

राना राजसिंह भी कुछ सेना के साथ रूपनगर रवाने हो चुके थे।

(५)

औरंगज़ेब और चूड़ावत से सामना हो गया। तलवार म्यान से बाहर निकल

पड़ीं। प्रलय काल का भयानक तांडव होने लगा। तलवारों की मार, तीरों की सनसनाहट और भालों के निशाने रह रह कर शत्रुओं पर पड़ने लगे। दो ही दिन में मुगलों की सेना आधी हो गयी। राजपूत भी थोड़े रह गये। वीर चूड़ावत उत्साह दे दे कर लोगों का हौसला बढ़ाता था और स्वयं भी जिस तरफ़ जाता, काई सी फट जाती, और उसके दोनों तरफ़ मुर्दों के ढेर के ढेर लग जाते थे। औरंगज़ेब भी हाथी पर सवार अपनी सेना का निरीक्षण कर रहा था। समय देख कर चूड़ावत ने अपना घोड़ा उधर ही बढ़ाया। घोड़ा भी स्वामी का मन पाकर उसी तरफ हवा हो गया। औरंगज़ेब के पास पहुँच कर घोड़े ने अपने दोनों पैर हाथी के मस्तक पर लगा दिये और चूड़ावत ने अपना लंबा बरछा औरंगजेब की तरफ़ ताना। साक्षात कराल काल की तरह बरछे को देख कर उस यवन के होश उड़ गये। वह डर से सिकुड़ गया। इधर चूड़ावत का बरछा वाला हाथ आगे बढ़ा, औरंग ने गिड़गिड़ा कर कहा—

"ऐ जवाँमर्द राजपूत बच्चे, मैं ने तुझसे हार मानी। मेरी जान बख्श दे। जो तेरा हुक्म हो, उसे बजा लाने को मैं राज़ी हूँ। अपने बरछे को रोक। तू राजपूत है। मैं तेरी शरणागत हूँ। जिस तरह राना राजसिंह ने शरणागत चंचलकुमारी की रक्षा की, उसी तरह तू शरणागत औरंगज़ेब की रक्षा कर। मैं तेरी क़दम बोसी करता हूँ।"

चूड़ावत का हाथ रुक गया। वह कड़क कर बोले, "म्लेच्छ सेनापति, तुम यह प्रतिज्ञा करो, कि मेवाड़ पर दस वर्ष तक चढ़ाई नहीं करोगे, और यहाँ से सीधे दिल्ली चले जाओगे, तब तो मैं तुम्हें छोड़ दूँ। नहीं तो यह भाला तुम्हारी छाती छेद कर अभी बाहर निकलता है।"

औरंगजेब बोला, "राजपूत, तेरा हुक्म मेरे सिर व आँखों पर।"

(६)

चूड़ावत की विजय हुई, लेकिन हाय, वह खुशी अब किसे सुनावेंगे। उनके गले की हार, उनकी प्रियतमा पत्नी, इस विजय को सुन कर फूली न समाती, उसी का सिर उनके गले में हार की तरह झूल रहा है।

चूड़ावत सोचने लगे अब मेरा स्वागत कौन करेगा? अब मुझे 'प्रियतम' 'प्राणनाथ' कह कर कौन पुकारेगा? हाय, जिस उत्साह व जिस उमंग से उसने मुझे विदा दी थी, यदि वह संसार में होती, तो इस विजय की सब से अधिक प्रसन्नता उसे होती। और मैं भी अपने बराबर किसी का भाग्य न समझता। किन्तु अब सोचना व्यर्थ है। अब संसार में रह कर मैं क्या करूँगा। राना का विवाह हो गया। मेवाड़ेश्वरी चंचलकुमारी की रक्षा हो गयी, राजपूताने का मान रह गया, और

मेरी प्राण—मेरी हृदयेश्वरी की मनो-कामना पूरी हो गयी। मेरी छाती तलवारों की चोट से बिंधी है, लेकिन पीठ पर खून का छींटा तक नहीं, इससे ज्यादा और उसका सौभाग्य क्या है ? उसकी आत्मा स्वर्ग में संतुष्ट हो रही होगी, और मुझसे मिलने को व्याकुल होगी। यह सोच कर वीर पत्नी-भक्त चूड़ावत ने उस गले से लटकते हुए अपनी प्रिया के सिर को एक बार फिर चूमा। उसे छाती से लगाया। फिर वही भाला जो उसने औरंगजेब की छाती छेदने के लिए उठाया था, अपने हृदय में खोंस लिया। वीर का प्राण पखेरू उड़ गया। उसकी स्त्री का सिर अब भी उसके कंठ से लग रहा था।

कैसा अपूर्व प्रेम है, कैसा विलक्षण आत्मत्याग है। दुनिया के इतिहास में ऐसा दृश्य किसी को भी देखने को न नसीब होगा।

उपसंहार

राना राजसिंह कुशलता पूर्वक चंचल से विवाह कर उदयपुर लौट आये। चूड़ावत के साथ की बची हुई पाँच हजार सेना भी यथा समय उदयपुर पहुँची। राना ने चूड़ावत का हाल सुन कर बहुत शोक किया उनके कमल नयनों में आँसू छलछला आये। वह भरी हुई आवाज में कहने लगे, "वीर चूड़ावत तुम्हारा नाम, तुम्हारा यश, जब तक राजपूताने में एक भी राजपूत बच्चा जीवित रहेगा, आदर के साथ याद करेगा। तुमने आज मेवाड़ की मर्यादा रख ली।" फिर उनकी दृष्टि चूड़ावत की अंतःपुर वाली अट्टालिका पर गयी। उस निर्जन विशाल भवन से सनसनाती हुई वायु झरोखों द्वारा निकल रही थी।

मेवाड़ेश्वरी भी देख रही थीं।

—बावली बहू

एक छोटी लड़की की अपील



ज़र फैला कर देखने से चारों ओर अन्धकार ही अन्धकर दृष्टि गोचर होता है। मालूम नहीं कि इस घोर अन्धकार का नाश कब, किस प्रकार होगा। नहीं मालूम सूर्य भगवान अपनी तीव्र किरणों से इस दुरात्मा अन्धकार का नाश कब करेंगे। देखते देखते इस घोर पाप का परिणाम बढ़ता ही जा रहा है। नहीं मालूम, हम बालिकाओं की गुहार परमेश्वर कब सुनेंगे जहाँ तक मालूम हुआ है, हम बालिकाओं की तरफ किसी ने आज तक कुछ भी ख्याल नहीं किया है। न इस कुप्रथा के निवारण के लिए कोई उपाय किया गया है। उपाय हो भी किस प्रकार ? यहाँ तो वही कहावत चरितार्थ हो रही है, कि—

"कुतस्तत्र प्रतीकारो रक्षको यत्र भक्षकः"

अर्थात् वहाँ पर कौन उपाय हो सकता है, जहाँ पर रक्षक ही महाशय भक्षक है। हम बालिकाओं की दोनों तरह शोचनीय दशा है। एक तरफ़ तो यह बात है कि यदि कन्या का पिता यथेष्ट द्रव्य (दहेज) नहीं देसकता तो कन्या के लिए अच्छा घर बर नहीं मिलता, चाहे वह कितनी ही सुशील विद्वान् और गुणवान् क्यों न हो। केवल रुपये की कमी से अपनी प्रिय पुत्री के लिए अच्छा पात्र नहीं पा सकता। इतना ही नहीं चाहे बालिका कैसी ही सुरूपा और विदुषी क्यों न हो। इस के लिए साक्षात ताज़ा प्रमाण बैकुण्ठ वासिनी स्नेहलता इत्यादि हैं। दूसरी तरफ देखिये तो उपरोक्त बातों के बिलकुल ही विपरीत है। कुछ नराधम नर-पिशाच पिता कन्या विक्रय अर्थात् कन्या देकर द्रव्य लेना अपना कर्तव्य समझते हैं। जब तक उपरोक्त नराधमों को यथेष्ट द्रव्य नहीं, मिलता तब तक कन्या के विवाह के लिए अथवा कन्या की अवस्था पर कुछ भी विचार नहीं करते। मानो उन नराधमों के लिए धर्म-शास्त्र अथवा लोकापवाद कोई बात ही नहीं है। पाठक पाठिकाओ, अब आप लोग सोच सकते हैं। कितने दुःख की बात है कि जिस कन्या दान का महत्व धर्म शास्त्रों में सब दानों से श्रेष्ठ कहा गया है, उसी कन्यादान की दशा ऐसी शोचनीय हो रही है। उसमें कैसा उलट फेर हो रहा है। इन नराधमों को कुछ भी लज्जा नहीं आती कि वे क्या कर रहे हैं। लोग हमारे इन कर्मों को देख कर कितना दुःखित होते होंगे, समाज में कितनी निन्दा होती होगी।

मैं जिस प्रान्त में रहती हूँ, उस प्रान्त में तो यह कन्या-विक्रय एक प्रकार का रोज़गार ही हो गया है और यह कुप्रथा खास कर उच्च कुलों में ही पाई जाती है। यदि दोचार कन्याएँ किसी के यहाँ विद्यमान हैं तो उसके लिए और कोई रोजगार करने को आवश्यकता ही नहीं।

यह बात स्वयम् सिद्ध है कि लक्ष्मी-वान मनुष्य अपने लड़के के विवाह के लिए कन्या के पिता को एक कौड़ा भी नहीं देगा, बल्कि दहेज के लिए बैल घोड़े की तरह मोल भाव करेगा। फिर विपरीत दहेज़ देने वाला होगा कौन? वही महाशय होंगे जिनकी दाल में कुछ काला है। बहुत से विवाह के लोलुप महोदय अपनी पूर्व संचित पैतृक सम्पत्ति भी बेच बाच कर कन्या के पिता को देकर अपना गृहस्थी का सुख सदा के लिए खो बैठते हैं। क्योंकि जब पास में कुछ द्रव्य ही नहीं है तो गृहस्थी का सुख किस प्रकार हो सकता है।

सब से ज्यादा सोचने की बात यह है कि कन्या की उमर यदि १० वर्ष की है तो बर की उमर ज्यादा नहीं तो ६० से कम भी नहीं। क्योंकि ऐसे सौदे में

मूल्य ज्यादा मिलने की सम्भावना होती है। अब मैं इस विषय में फिर कभी आप लोगों के समक्ष प्रार्थना करूँगी। अभी इतना ही कह कर आप लोगों से क्षमा चाहती हूँ कि आज कल जहाँ देखिये, वहाँ देशोन्नति समाजोन्नति, जाति उन्नति के बारे में सब लोग कटिबद्ध हैं। उपरोक्त उन्नति के विषय में सभायें होती हैं, लेख छपते हैं, अनेकानेक उपाय सोचे जाते हैं किन्तु कैसे शोक की बात है कि आज तक इन बालिकाओं की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया और न कोई सभा इस विषय की हुई, न किसी लेखक महोदय ने कुछ लिखने ही की कृपा की। मेरा यह कहना किसी खास व्यक्ति पर नहीं है। न खास किसी पर कटाक्ष ही है। आप महानुभावों से इस कुप्रथा के निवारण के लिए सविनय प्रार्थना मात्र है।

पाठक पाठिकाओ! आप लोग इस बेतुके ऊटपटांग लेख को देख कर जरूर हसेंगे किन्तु जब आप लोग यह जान लेंगे कि मैं एक छोटी सी कन्या हूँ, तो सम्भव है, कि मेरी तोतली बातें अच्छी लगें जैसा कि महात्मा तुलसीदास जी ने अपने रामायण में लिखा है—

"जो बालक कह तोतरि बाता।
सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥

—कृष्णकुमारी बाई

सबल-सम्बोधन

(१)

बल आपको मिला है
किस वास्ते ? विचारो।
क्या इसलिए मिला है
तुम दुर्बलों को मारो ?
जो बोल भी न सकते,
उन पर छुरी चलाओ ?
सीधे परोपकारी,
जो हों, उन्हें मिटाओ ?

(२)

या साधु-सज्जनों पर
डालो दबाव, ऐंठो ?
पी कर नशा बुरे ही
लोगों में नित्य बैठो ?
हरदम हरामकारी,
मक्कारियाँ सुझाना।
लड़ भिड़ बिगड़ झगड़ कर
उत्पात ही मचाना॥

(३)

औरों का दिल दुखा कर
आनन्द-मग्न रहना।
क्या आपका यही है
कर्तव्य ? सत्य कहना॥
क्या शक्ति का यही है
उपयोग ठीक भाई ?
क्या सृष्टि निर्बलों की
उसने नहीं बनाई ?

(४)

याँ सर्वदा बलफते
शेखी बघारते हो।
पर जो चुभे सुई तो
तुम चीख मारते हो॥
तुमसे जो इस तरह है
पीड़ा सही न जाती।
तो और को सताते
फटती है क्यों न छाती?

(५)

जो हैं भुजा फड़कती,
ताकत अगर भरी है।
कुछ जोश खून में है
कुछ भी बहादुरी है॥
तो दीन बन्धुओं को
दुख सिन्धु से उबारो।
या चोर डाँकुओं को
दो दण्ड मेरे यारो॥

(६)

रक्षा करो निबल की,
बलवान जो सतावें।
बल की यही सफलता,
सब शास्त्र ही बतावें॥
छोड़ो ये व्यर्थ हत्या,
उत्पात औ' बुराई।
इससे कभी तुम्हारी
होनी नहीं भलाई॥

(७)

रावण ने कर उपद्रव
पाया है उसका फल क्या।
दुर्योधनादिकों की
इच्छा हुई सफल क्या?
निज बन्धु-बान्धवों को
सब अन्त में सता कर।
यमलोक को सिधारे
बदनाम होके भूपर॥

(८)

जिसके लिये करो तुम
हत्या हराम हरदम।
जिसके सँवारने में
इतना करो परिश्रम॥
छुट जायगा तुम्हारा
वह देह यक-न यक दिन।
हो प्राणहीन प्यारे
करने लगेगा भिन भिन॥

(९)

चटपट उसे उठाने की
फिक्र होगी सब को।
कोई न मानने का तब
आप के अदब को॥
गाड़े से कृमि पड़ेंगे,
बहने से होगी विष्ठा।
जलने से राख होगी,
बस तीन ही हैं निष्ठा॥

(१०)

उस देह के लिए यों
दिन-रात पाप करना।
औरों की जान जावे,
पर अपना पेट भरना॥

क्या काम बुद्धिमानों का
है ? जरा विचारो।
कुछ भी असर पड़े, तो
चींटी को भी न मारो॥
—भगवानदास कनकने।
(जैन हितैषी)

राजभक्ति का एक अपूर्व नमूना

(पाठकों से कुछ निवेदन)



जिस समय भारत अवनति की दशा को प्राप्त हो रहा था और जिस समय काल चक्र से स्त्री पुरुष दोनों ही की मानसिक शक्ति धीरे धीरे अवनति की दशा में परिणत हो रही थी, जिस समय प्रजा यवनों के राज्य से अति पीड़ित तथा खिन्न मनस्क हो रही थी, उस समय भी भारत के बहुत से पुरुषों तथा रमणियों ने ऐसे ऐसे अपूर्व कर्म किये जो उनके तथा उनके जाति और देश के गौरव को बढ़ा रहे हैं और सभ्य संसार में आदर का पात्र बना रक्खा है।

आज मैं गृहलक्ष्मी के पाठकों को एक अनपढ़ स्त्री का चरित्र सुनाऊँगा, जिसने राजभक्ति के अपूर्व प्रकाश से अपनी जाति के मुख को उज्ज्वल कर दिया।

जब राणा प्रतापसिंह हल्दीघाट की लड़ाई के उपरान्त अकबर से अति पीड़ित हो मेवाड़ को त्याग पर्वत पर प्रजा के साथ जा बसे तब उन्होंने यह घोषणा पत्र निकाला कि जो पुरुष पहाड़ के नीचे कोई भी पशु चरावेगा, प्राण दण्ड पावेगा।

एक गड़रिये ने राजा की इस आज्ञा के विरुद्ध किया। वह मार कर किसी वृक्ष की डाली से लटका दिया गया, जिससे भविष्य में कोई राणा की आज्ञा को उलङ्घन न करे।

तीसरे दिन इस बूढ़े गड़रिये का दामाद मंगला ने भी ऐसी ही मूर्खता की और उसे भी बध किये जाने की आज्ञा दी गई।

मंगला की स्त्री भानुमती यह सुन कर अति दुःखित हुई और विलाप करने लगी। उसका भाई शेरा अपनी बहन के दुःख को सहन न कर सका और उसने प्रण किया कि आज ही राणा का बध करूँगा। भानुमती यद्यपि अनपढ़ थी और धर्म्म कर्म्म में भी बहुत प्रवीण न थी, तोभी वह जानती थी कि राणा हमारे सरदार हैं और हिन्दुओं के मुकुट हैं। उनका विनाश करना देश-द्रोही तथा राज-द्रोही का काम होगा। जब देश भक्ति का यह उच्च भाव उसके कोमल हृदय में उदय हुआ तो वह अपने दुःख को भूल गयी

और अपने भाई से राणा का बध न करने के लिए प्रार्थना करते हुए कहा, "भाई तुम्हारे मुख से राणा के विषय में ऐसी बात नहीं निकलनी चाहिए। मैं चाहे विधवा हो जाऊँ, परन्तु यह उचित नहीं कि कोई मनुष्य राणा को हानि पहुँचावे। मेरे शरीर की खाल उतार कर यदि उनके पाँव की जूतियाँ बनाई जावे तोभी मैं सहन कर लूँगी, परन्तु राणा पर जान बूझ कर कभी आँच नहीं आने दूँगी। क्या तू नहीं जानता कि महाराणा सम्पूर्ण भारतवर्ष के शिरताज हैं?"

शेरा ने अपनी बहन की बात को न माना। भानुमती अपने भाई के क्रूर स्वभाव को जानती थी अतएव जी में डर गई कि कहीं अचानक प्रताप धोखे में शेरा के हाथ से मारे न जाँय। वह उच्च श्रेणी की राजभक्त स्त्री थी। अपने छोटे भाई के साथ मरदाने भेष में राणा को आने वाली आपत्ति की सूचना देने के लिए गयी। वह राजभक्ति के तरंग में भूल गयी कि उसका यह कार्य उसके भाई के भी मृत्यु का कारण होगा।

अँधेरी रात होने के कारण भानुमती को किसी वृक्ष से बहुत कठोर चोट लगी और राजप्रसाद के निकट आते आते बेहोश हो गयी। दरबानों ने अन्दर जाने से निषेध किया परन्तु यह सूचित करने पर कि उन लोगों को राणा से एक भेद कहना है, अन्दर जाने की आज्ञा मिली। रतन (यह भानुमती के छोटे भाई का नाम था) ने राणा को झुक कर प्रणाम किया और सारे वृत्तान्त को आद्योपान्त कह सुनाया। भानुमती इस समय बेहोश थी और कभी कभी यह कह उठती "राणा को मत मारो, राजद्रोह बुरा है, मैं विधवा रहूँगी। शेरा भाई ऐसा पाप न कर इत्यादि।" वह महल में लायी गयी और जब होश में आई तो कहने लगी, "अरे मुझे राणा के पास ले चलो, मुझे एक गुप्त बात कहनी है।" राणा ने उत्तर दिया कि राणा को रतन द्वारा यह बात मालूम हो गयी है। यह सुन कर भानुमती को शान्ति हुई तथा चित्त प्रफुल्लित हुआ। उसी दिन तीर धनुष के साथ एक मनुष्य लाया गया और पहरे में रक्खा गया। दूसरे दिन राणा ने सब को सभा में बुलाया और भानुमती की राज-भक्ति पर प्रसन्नता तथा कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए कहा, "भानुमती मैं तेरे पति को क्षमा करता हूँ और कुछ माँग।" भानुमती ने अपने पति की लाश और भाई की मुक्ति माँगी, जिसे राणा ने प्रसन्नता पूर्वक दे डाला।

पाठको! राजभक्ति को प्रकाशित करने का अवसर सदा नहीं आता। आज बहुत काल के उपरान्त जब हमारे सम्राट युरोपीय महाभारत में सम्मिलित हुए हैं, यह अवसर बहुत दिनों के उपरान्त उप-स्थित हुआ है। अतएव हम लोगों को

यह अवसर खाली नहीँ जाने देना चाहिए। हम लोगोँ को आज वह दिखा देना चाहिए कि अति अवनति दशा को प्राप्त भारत भी अपने प्राचीन आदर्शोँ को नहीँ भूला। कौन ऐसा नीच आर्य्य होगा जिसके मन मेँ इस वृत्तान्त के पढ़ने से यह प्रबल इच्छा उत्पन्न न होगी कि वह अपने प्रिय सम्राट को संकट की अवस्था मेँ सहायता न करे। क्या सभ्य देशोँ को सभ्यता प्रदान करने वाली जाति अपने अनेक पुरुषाओँ के महत् कार्योँ का स्मरण करके और अनेक पुरुषाओँ के प्रगाढ़ भक्ति की पराकाष्ठा को देख कर जी जान से अपने सम्राट की सहायता के लिए दत्त चित्त न होगी, अवश्य होगी। आशा है कि जो जाति अब तक अपने उद्देश्योँ को न भूली इस समय अपनी वास्तविक महात्ता को अनुभव करती हुई अपूर्व राजभक्ति की नमूने को दिखावेगी। अतएव आइए हम सब गले से गले मिलेँ और परस्पर के सारे पुराने बैर भावोँ को परित्याग करके अपने राजा को तन मन धन से सहायता पहुँचावेँ।

—बिहारीलाल वर्म्मा।

स्त्रियों का क्या धर्म है?

हम लोगोँ की दशा क्योँ ऐसी खराब हो गयी है? इसका कारण क्या है? मेरी अल्प बुद्धि मेँ यही आता है कि इसका मुख्य कारण यही है कि हम लोग अपने धर्म को खो बैठी हैँ। यह भी नहीँ जानती हैँ कि हम लोगोँ का धर्म क्या है? धर्म न जानने का कारण यह है कि हम लोगोँ की शिक्षा पूर्ण रूप से नहीँ होती है। प्यारी बहनो! यदि हम लोग अब से भी आँखेँ खोलेँ, तो फिर वही समय आ जायगा, जिसमेँ कि बड़ी बड़ी पतिव्रता और धर्म पर चलने वाली स्त्रियाँ, जैसे सीता, सती, द्रौपदी, रुक्मिणी, तारा और गान्धारी थीँ, जिनका मान व गौरव अब तक चला आता है। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि हम लोग यह सब जानने पर भी अन्धकार मेँ भटक रही हैँ।

बहिनो! नेत्रा को खोलो, और अपने पातिव्रत धर्म पर सोचो और देखो, कि हम लोगोँ की शोभा सुन्दरता से नहीँ है। सुन्दरी होने से पति की प्यारी नहीँ बन सकती हैँ, जैसा कि एक विद्वान् ने कहा है—

"सुन्दरता मुँह की सफाईसे नहीँ होती है बल्कि गुण से होती है।"

यदि हम लोग सच्ची रूपवती बनना चाहती हैं और संसार और स्वर्ग का सुख लूटना चाहती हैं, तो हमें उचित है कि पति की प्यारी बन कर उनकी आज्ञा के अनुसार चलें और जो काम पति की इच्छा के विरुद्ध हो, कभी न करें। यदि हम लोगों का पति किसी ऐसे काम करने की सलाह दे, जो पातिव्रत धर्म के प्रतिकूल हो, तो उसे नम्रता से समझा दें। पति से क्रुद्ध होकर उसे दुर्वचन न कहें और परायी स्त्रियों में बैठ कर निन्दा न करें। इससे कुछ लाभ नहीं है। सदा स्वयं प्रसन्न चित्त रहे और पति के चित्त को प्रसन्न रक्खे।

प्यारी बहिनो! पति का पति ईश्वर है, परन्तु हम लोगों का ईश्वर पति ही है। हम लोगों के लिए पति-सेवा के सिवाय कोई व्रत नहीं, पति-सेवा के सिवाय कोई यज्ञ नहीं और पति-सेवा के सिवाय कोई दान नहीं है। हम लोग पति की अर्द्धाङ्गिनी हैं, उनके धर्म और पाप दोनों में आधे की भागी हैं और हम लोगों के पाप और धर्म में आधे के भागी पति हैं।

जब तक हम लोग माँ बाप के यहाँ थीं यानी जब तक हम लोगों का विवाह नहीं हुआ था, तब तक हम लोग माँ, बाप, भाई, भौजाई के अधीन थीं, परन्तु जब से उन लोगों ने दान कर दिया है, तब से हम लोग पति की दासी हो गई है। यदि हम लोग पति की दासी बन कर रहेंगी तो वह हम लोगों को अपने गले का हार बना लेंगे। पति कैसा ही हो, अन्धा, कुकर्मी, क्रोधी हो. लेकिन हम लोगों को चाहिए, कि उसे ईश्वर समझें। यदि वह बीमार पड़ गये हों, तो उनकी सेवा कर उनका दुःख दूर करें। यदि पति का चित्त किसी बात से दुःखित हो, तो उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करें। जब वह बाहर से थके माँदे दुःखित होकर आवें, तो उनसे हँस कर मृदु वाणी बोल कर उनका दुःख दूर करें, न कि मूर्ख स्त्रियों की तरह झनझन करती हुई आवें और बैठ कर विपद रोने लगें, जिससे कि उनकी आत्म-पीड़ा और भी बढ़ जाय। यदि हम लोग उस समय हँस कर बोलेंगी, तो सहज ही में उनका कष्ट दूर हो जायगा।

प्यारी बहिनो, पति के रोग से, उनके कामों से कभी हम लोगों को घृणा नहीं करनी चाहिए। यदि पति कुकर्म करते हों, तो उन्हें मृदु वाणी से और अच्छी अच्छी पुस्तकों के उदाहरण देकर हम लोगों को चाहिए, कि उन्हें सुमार्ग पर लाने का यत्न करें। भला बुरा चाहे जैसा पति हो, किन्तु दूसरे पुरुष की ओर कभी खोटी दृष्टि से न देखे। पति के सिवाय संसार में जितने पुरुष हैं, उन्हें भाई के समान समझना चाहिए। भगवान ने हमें जैसा दे दिया है, उसी पर सन्तोष

करना चाहिए। पराई जूठन खाने से घर की सूखी भली होती है। यदि हम लोग पराये पुरुष की ओर कुदृष्टि करेंगी, तो हममे और वेश्याओं मे क्या अन्तर रहेगा? यदि हम लोग अपने पति को बुरा समझ कर उनसे मुख मोड़ेंगी, तो याद रहे, जब पति हम लोगों से अपना मुख मोड़ेंगे, तो कैसा कष्ट उठाना पड़ेगा। विषयों से तृप्ति कभी नहीं होती है। जैसे जैसे हम लोग अधिक विषयों में पड़ेंगी, वैसे ही वैसे हम लोगों की विषय-तृष्णा बढ़ती जायगी। कदाचित् पति पसन्द न आया, तो स्वप्न में भी पराये पुरुष की तरफ कुदृष्टि से न देखे, बल्कि पति को ऐसा बनाये जैसा कि हम चाहती हैं। यदि हम लोग एक छोड़ कर दूसरे को देखेंगी, तो कल दूसरे को छोड़ कर तीसरे के देखने का मन चलेगा। जब हम लोग जानती हैं कि बिना सुकृत के फूस की झोपड़ी से राजा का महल नहीं पा सकतीं, इच्छा करने से दरिद्र से धनाढ्य नहीं हो सकतीं हैं, तो फिर हम लोगों को वृथा तृष्णा न बढ़ानी चाहिए। पति को कभी जेवर व वस्त्र के लिए न सतावें, क्योंकि जब हम लोग पति की प्यारी होंगी तो पति खुद ही हम लोगों का दिल न दुखने देंगे। हम लोगों को सदैव ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए। जब पति परदेश जाँय या पति से वियोग हो, तो अपने शरीर को भूषण वस्त्र से सजाना हलाहल विष के समान होता है। हम लोगों को चाहिए कि कभी भूले से भी अपने को स्वतन्त्र होने का विचार न करें। क्योंकि देखो, ऋषि लोग क्या कहते हैं—

"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थावरे पुत्रा, न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति॥

प्यारी बहिनो, यथा सम्भव जो कुछ मैंने पुस्तकों में पढ़ा और सीखा था, उसे आप लोगों के सन्मुख निवेदन किया। अब यह हम लोगों के अधिकार में है कि इन पर यथा साध्य चल कर योग्य रमणी बनें और फिर एक बार भारत-माता की गोद उज्वल कर धर्म की भागी बनें। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह भी हम लोगों की इन धार्मिक कामनाओं के पूर्ण होने में सहायक हो।

—राजकुमारी देवी।

माता परमेश्वरी

मुन्ना, मदन, भोला, माया और लीला—यह पाँचों भाई बहिन एक दिन सब साथ साथ भोजन करने बैठे। उनकी माता (हृदय देवी) परोस कर उनको पंखा कर के खिला रही थीं कि इतने में भोला बोल उठा, कि "मुन्ना को इतनी पकौड़ियाँ दी हैं और मुझे एक भी

नहीं, जाओ, मैं नहीं खाता, यों कह कर उसने थाली अलग हटा दी।

लीला बोली, "मैं काली लड़की हूँ; इस लिए माया को सब दही और चिनी दे दी।" इतना कह कर लीला भी एक कोने में बैठ कर रोने लगी।

मदन कहने लगा "मैं तो सभों से बड़ा हूँ, मुझे इन सभों से अधिक चीज़ देनी चाहिए--इतनी थोड़ी तरकारी मैं नहीं लूँगा, मुझे और दो, नहीं तो अभी थाली समेत मोरी में फेंक दूँगा।" यह कह कर वह भी मुँह फुला कर भिन भिनाने लगा।

आखिर यह हुआ कि सब के सब एक साथ रोने लगे, और घर में एक ऐसा कोलाहल मच गया कि बाहर एक डाकिये ने गृहलक्ष्मी पत्रिका देने के लिए कितनी ही आवाज़ें दी, परन्तु किसी ने न तो पत्रिका ली और न पूछा कि कौन है। आखिर वह बेचारा पत्रिका लिए हुए लौट रहा था कि इतने में मुझ से भेट हुई। मुझे देखते ही पूछा, "बाबू जी, इनके यहाँ कोई मर गया है क्या?" पहले तो मैं उसकी यह बात सुन कर अत्यन्त घबरा गया। कुछ देर बाद मैंने उससे कहा, "भाई मेरी समझ में यह बात नहीं आती, तुम ठीक ठीक कहो, कि किस की बात कह रहे हो।"

वह बोला, "जहाँ आप कभी कभी हारमोनियम बजा कर भजन गाया करते हैं"।

अरे! क्या मेरे परम मित्र पंडित धनवन्त देव जी के घर की बात कहते हो? उसने कहा, "हाँ!" इस 'हाँ' का ('ह') उच्चारण होने के पश्चात् ही मैं अति व्याकुल चित्त से अपने मित्र के यहाँ जाने के लिए उद्यत हुआ कि उसने पूछा, 'आप क्या अभी उन्हीं महाशय जी के यहाँ जा रहे हैं?"

मैं--क्या इस में भी कुछ संदेह है? जो मेरी सलाह विना किसी कार्य में हाथ नहीं लगाते, जिनका मुझ पर अगाध प्रेम है, ऐसे प्रेमी और पर परम मित्र महाशय के बुरे समय में मदद करने के लिए उनके पास मेरा जाना क्या—...' बीच में बात काट कर वह बोला, "बाबू साहब, इन बातों से मुझे कुछ लाभ नहीं होगा, मेरा समय व्यर्थ खड़े खड़े जा रहा है—अभी मुझे प्रायः १५० कापी गृहलक्ष्मी की बाटनी है--न मालूम मुझे आज कै बजे रोटी मिलेगी। यदि आप वहीं जाते हैं, तो कृपा कर इस पत्रिका को भी लेते जाइए।"

मैं पत्रिका लेकर यह कहने को था कि जाने में फिर भी "यदि" क्यों लगाते हो, परन्तु कह न सका, वह चला गया था।

मैं तुरन्त उलटे पैरों अपने मित्र पं० धनवन्तदेव के यहाँ गया। दरवाजे के पास पहुँचते ही मुझे सचमुच रोने की आवाज मालूम हुई। दरवाजे पर हाथ

लगाते ही, जो कि केवल भिड़ा हुआ था, खुल गया, परन्तु किवाड़ों के पास मदन खड़ा सुसकी भर रहा था। मैं ने पूछा, "मदन क्यों रोते हो ? क्या बात है ? बतलाओ।" इतने में भीतर से सर्वगुण सम्पन्ना उसकी माता (हृदय देवी) ने आवाज़ दी कि मदन बैठक में क्यों रो रहे हो ? भीतर आजाओ,--एक अति उत्तम कहानी कहती हूँ, सुनो। कहानी का नाम सुनते ही सब चुप हो गये और मदन भी अपनी माँ के पास कहानी सुनने को चुप चाप बैठ गया। मुझे भी इस कहानी के सुनने की इच्छा हुई, इस कारण मैं भी वहीं एक चारपाई पर बैठ गया।

देवी जी ने तब इस तरह पर कहानी आरम्भ की—"एक दिन अनाथों के नाथ जगत पिता को यह मालूम हुआ कि संसार में भारी कोलाहल मचा है। विधाता पुरुष फिर स्थिर न रह कर इस कोलाहल को मिटाने के लिए उद्यत हुए। तब देखते क्या हैं कि इस संसार के जितने पशु पक्षी हैं सब एक साथ, एक स्थान में मिल कर बहुत हाहाकार मचा रहे हैं। भगवान को देख कर वे और भी अधिक चिल्लाने लगे।

जगत पिता अपने मन में कहने लगे कि इस कोलाहल में मेरी आवाज़ कम सुनाई देगी, और इनको एक साथ चुप कराना भी कठिन है, परन्तु उन्होंने किसी प्रकार से सभों को चुप करा कर पूछा "कि तुम सब मिल कर इतना चिल्लाते क्यों हो ? यदि तुम लोगों को कुछ कहना है तो एक एक करके कहो। सब के एक साथ चिल्लाने से हम कुछ भी न सुन पायेंगे, केवल तुम्हारा चिल्लाना ही तुम्हारे हाथ लगेगा और काम कुछ न निकलेगा।

इतना सुनते ही एक हरिण ने सामने आकर कहा, "मैं बहुत तेज़ दौड़ सकता हूँ परन्तु पक्षी गण एक स्थान से दूसरे स्थान तक बहुत ही शीघ्र पहुँच सकते हैं और जहाँ इच्छा होती है, वहीं चले जाते हैं। मेरी प्रार्थना यह है कि मेरे भी पक्षियों की तरह पंख लग जाँय।"

हरिण की बात समाप्त होते ही एक शेर गरजता हुआ सामने आकर बोला, "मेरे शक्ति सामर्थ्य सब कुछ है परन्तु मैं हरिण को दौड़ में नहीं पकड़ सकता, मेरी प्रार्थना यह है कि मैं उसे दौड़ में जल्द पकड़ सकूँ।" इसी प्रकार बाद को बिल्ली ने आकर कहा, "मैं बिल के अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती,--सब चूहे घुस जाते हैं और मैं मूर्ख सी बाहर ही खड़ी रह जाती हूं।" बगुला पानी के भीतर रहने के लिए, गदहा कोयल की सी आवाज़ के लिए, कौवा मोर के समान पंखों के लिए, इसी प्रकार पारी पारी से हर एक ने अपनी अपनी प्राथना की।

परम पिता ने इन सभों की प्रार्थना

सुन कर कहा, "देखो मैं तुम सभों का रखने वाला हूँ—जिसके लिए जो उचित समझा मैं ने उसको वही दिया है। परन्तु आज देखता हूँ कि तुम सब असंतुष्ट हो रहे हो। अच्छा तुम सभों ने जो जो माँगा है, यदि वही मिल जाय तो क्या संतोष पूर्वक रहोगे?"

यह सुन कर सब के सब एक साथ चिल्ला कर कहने लगे, "हाँ, अवश्य रहेंगे, चाहे आप एक बार देकर देखिए।"

यह सुन कर पिता बोले, "कभी भी आनन्द पूर्वक नहीं रहोगे। अभी केवल ऐसा कहते हो परन्तु दो दिन बाद फिर ऐसा ही कोलाहल मचाओगे। प्रथम तो हरिणी आकर कहेगी, कि पंख से मुझे आराम है, परन्तु इन सींगों से मुझे कष्ट मिलता है, क्योंकि जब पेड़ पर बैठती हूँ तब डालियों में उलझ जाते हैं। इस कारण सींग निकाल दीजिए। इसी प्रकार तुम सब मुझे फिर दिक करोगे। जिसे जो दिया, जब वह उसे पाकर सन्तोष से नहीं रह सकता तो चाहे जितनी ही उसकी प्रार्थना पूरी क्यों न हो, कदापि सुख पूर्वक नहीं रह सकेगा। यह बात तुम्हारे में क्या, तुम सब तो बुद्धि रहित पशु हो, मेरे इस संसार में जो कि श्रेष्ठ जीव हैं, अर्थात् मनुष्य जाति, उनकी भी आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती। उनमें से यदि आज किसी की नौकरी न हो तो कल मुझसे बड़े विनय के साथ प्रार्थना करता है, कि हे ईश्वर, कोई नौकरी मुझे दस ही रुपये की मिल जाय तो आनन्द से दिन व्यतीत करूँ, परन्तु जब उसे उतने की नौकरी मिल जाती है तो कुछ दिन बाद फिर वह यही कहता है कि यदि मेरा वेतन बीस रुपये हो जाय तो कुछ भी कष्ट न हो। इसी प्रकार दस से लेकर अरब खरब तक पहुँचने पर भी कभी संतोष नहीं होता। फिर भी मैं कहता हूँ कि मैं ने अपने विचार से जिसे जो कुछ दिया, उसे वही पाकर आनन्द से रहना चाहिए। वृथा अपनी तृष्णा को बढ़ा कर असंतुष्ट रहना उचित नहीं। जो नीच होते हैं वही असंतुष्ट रह कर दुख भी पाते हैं। मैं उनसे कभी खुश नहीं होता।"

परमेश्वर की यह बात सुन कर सब पशु पक्षियों की बुद्धि ठिकाने आ गयी और परम पिता को प्रणाम करके सब अपने अपने काम पर चले गये।

कहो कैसी कहानी है? तुम सब जो एक साथ मिल कर—"मुझे यह नहीं दिया, वह नहीं दिया" कह कर चिल्ला रहे हो, सो तुम्हारी भी यही दशा है। क्या मैं यह नहीं समझती कि किसे कौन सी चीज़ देनी चाहिए? मैं ने सुधा को इतनी पकौड़ियाँ दीं और तुम्हें नहीं दीं, माया को दही चीनी दी लीला को न दी, इसका भी अवश्य कुछ कारण है। बात यह है तुम्हें पतले दस्त आ रहे हैं, बेसन की पकौड़ी खाने से और भी दस्त आवेंगे।

लीला को दही चीनी न दी, क्योंकि वह अभी थोड़े ही दिन हुए कि पण्डित महाराज नारायण के औषधालय से औषधि पीकर अच्छी हुई है और पण्डित जी कह भी गये थे कि इसे कुछ दिन के लिए खटाई, अचार, दही इत्यादि न देना, नहीं तो बुखार फिर आने लगेगा। इस कारण उसे दही न दिया। मैं तो तुम सभों की माता हूं—किस समय क्या खिलाना चाहिए और किस समय किस प्रकार रखना चाहिए, यह सब समझ बूझ कर मैं जितनी तुम सभों की रक्षा करती हूँ वैसे तुम्हारे पिता भी नहीं कर सकते। आज ही तुम्हें बोलने और समझने की शक्ति आ गयी है। इस कारण अब कभी किसी वस्तु की आवश्यकता होती है उसे कह और माँग सकते हो, परन्तु जब तुम गोद के बच्चे थे तब क्या होता था। उस समय मैं ही तुम्हारे जिस समय जो खिलाने पिलाने की आवश्यकता होती थी वही खिलाती पिलाती थी। जगत् पिता जैसे करुणामय हैं वैसे ही माता भी करुणामयी होती हैं। अपने बालक बालिकाओं के सुख के लिए माता जितनी फिकर करती है उतना इस जगत में और किसी को नहीं होता। देखो ना लीला अभी तक मुँह फुलाये बैठी है। क्या मैं ने उसका हिस्सा अपने खाने के लिए रख लिया है। क्या कोई भी माता ऐसी है जो अपने बच्चे का कष्ट देख सकती हो? इस कारण मैं जिसे जो दूं या जिसे जो मिलता है, यदि वही पाकर वह आनन्द से रहे तो सुख है नहीं तो कदापि नहीं। इस लिए कहती हूं कि तुम सब फिर कभी ऐसे बेवकूफों की तरह न चिल्लाना।

देखो पशु पक्षी जो कि अज्ञानी हैं परमेश्वर की बात सुन कर आज तक सुख और चैन से हैं और सन्तोष पूर्वक भी हैं। और तुम सब तो समझदार हो, तुम्हें तो उनसे अधिक शान्त चित्त होकर जिसे जो मिले उसी को पाकर आनन्द से रहना चाहिए।

—किरणकुमारदेव शर्म्मा।

हमारा भोजन



शरीर के पोषण के लिए केवल सादे आहार की आवश्यकता है। यह बात इसी से प्रमाणित है कि केवल आध सेर सत्तू अथवा तीन पाव चावल दाल वा गेहूँ हमारे यहाँ स्वस्थ कृषक लोगों का एक समय का आहार है। इस से ज्यादा हम लोगों का भोजन कभी किसी तरह से नहीं हो सकता। किन्तु हम देखते हैं कि हम लोगों का भोजन इतना ही नहीं है, घी दूध मिष्टान्न इत्यादि मिला कर हमारे आहार का परिमाण और भी बढ़ जाता है। केवल मैदे की पूरी में जो सब से कम खर्च से बनती है,

घी का चौथाई भाग सूख जाता है। तब मालपुआ, हलुवा इत्यादि तथा दूसरी दूसरी मिठाइयों की बात कौन कहे ?

चने आदि दाल की मिठाइयाँ और भी पुष्टकर हैं। प्रत्येक तीन छटाँक चावल में हम लोग एक छटाँक दाल मिला कर खाते हैं। इस बात से यह प्रत्यक्ष है, कि दाल चावल से तीन गुन बल वर्द्धक है। उस में घी, चीनी इत्यादि मिला कर मिठाई बनाने से उसकी पुष्टि कितनी बढ़ जाती है यह स्वयम् ही अनुमान कर लिया जा सकता है। इन सब के अतिरिक्त दूध का खोवा घी में तल कर मिठाई बनायी जाती है। ये सब हम लोगों के नित्य आवश्यक सामान्य भोजन के बदले कितने अधिक और भारी हैं। इस प्रकार गरिष्ठ और अपरमित आहार से कितनी हानि होती है, यह बात सोचने योग्य है।

भोजन करने का मतलब केवल किसी वस्तु को चबा कर निगल जाना ही नहीं है, बल्कि उसको ठीक तरह से हजम करना भी जरूरी है। हमारे शरीर में भोजन जमा करने का कोई भन्डार बना हुआ नहीं है। जीभ के देखने से आन्तरिक्त पाकस्थली की बनावट जाहिर हो सकती है, जा कुछ हम लोग खाते हैं, वह सीधे भीतर जाकर रक्त में नहीं मिल जाता किन्तु पहले वह तरल पदार्थ बन कर पाचन इन्द्रियों द्वारा हजम किया जाता है, पश्चात् रक्त के साथ संचालित होता है। इस लिए जो भोजन पूर्ण रूप से चबाया हुआ तथा मुँह से गीला बनाया हुआ पेट में नहीं जाता, उससे कुछ फल नहीं होता। वह केवल विष्टा रूप में बाहर निकल जाता है और ऐसा भोजन खाने से केवल मानसिक तृप्ति तो हो सकती है, और कुछ फल नहीं। इसके अतिरिक्त जरूरत से ज्यादा भोजन खाने से शरीर की सब इन्द्रियों को उसके पचाने में परिमाण से अधिक परिश्रम करना पड़ता है, जिसके कारण वे शीघ्र ही क्लान्त तथा सुस्त हो जाती हैं और यही आज कल के फ़ैशनेबुल लोगों के अजीर्ण रोग का पहला कारण है। किन्तु यहीं पर दुख तथा रोग का अन्त नहीं है क्योंकि शरीर के अङ्ग धीरे धीरे क्लान्त होते होते इस से भी अधिक भयंकर रोग प्रमेह, गठिया आदि पैदा होने लगते हैं। हमारे कितने मित्र गण इन रोगों से बचे हुए हैं, यह सबों को विदित है। विचार-शील सर्व साधारण का इसी विषय पर ध्यान देने का यही अच्छा समय है। एक समय पहले था, जब स्कूल जा कर पढ़ना लिखना ही पूरी शिक्षा समझी जाती थी। किन्तु आज कल प्रत्येक विषय में उन्नति हो रही है और बाहर के खेल कूद तथा आहार सम्बन्धी विषयों पर भी विचार किये जाने का समय आ पहुँचा, क्योंकि इसके बिना न मन और न शरीर ही काम कर सकता है। किसी विद्वान ने

लिखा है "सादा खाना खाओ, साफ़ हवा में स्वांस लो" इससे बढ़ कर तन्दुरस्ती के लिए कोई दूसरा उपदेश नहीं हो सकता है। माल पूआ हलवा और रसगुल्ला आदि खाने में स्वादिष्ट पर पचने में भारी हैं। ऐसे भोजनों को छोड़कर सादा भोजन भात, दाल, रोटी आदि खा कर रहो। पाचन इन्द्रियों को जिस तरह हम सब पीड़ित करते आये हैं; उस तरह अब उन्हें पीड़ा न देनी चाहिए।

—मिथिलेश कुमारी

भाई भाई



मातृहीन बालक राधाचरन पर उसके पिता बहुत स्नेह करते थे। ज्येष्ठ पुत्र हरिचरन के उपरान्त जो कई पुत्र और कन्याएँ पैदा हुईं, उन सब को निष्ठुर काल ने माता पिता से छीन लिया था। इसीसे वृद्धावस्था में जब कि इस सन्तान को हृदय से लगा कर गोविंदचरन शान्ति लाभ की आशा करते थे, उसी समय में पति पुत्र के मोह को त्याग कर गोविन्दचरन की धर्म पत्नी संसार से बिदा हो गईं। गृहलक्ष्मी के बिना घर सूना रहने के कारण गोविन्दचरन ने हरिचरन का विवाह कर दिया था। नववधू कात्याइनी पर सांसारिक व्यवहार का भार पड़ने के कारण वह अल्पवयस्का होने पर भी गृहस्थी के काम में भली प्रकार दक्ष हो गई। अपनी सन्तति होने पर भी बालक राधाचरन का कात्याइनी मातृवत स्नेह से लालन पालन करने लगी। राधाचरन ने पिता और भावज के स्नेह में इस प्रकार सिंचते हुए अभी बारहवें वर्ष में पदार्पण किया था कि उसी समय गोविन्दचरन की मृत्यु हो गई। ज़मींदारी और संसार के अन्य कामों में व्यस्त रहने के कारण हरिचरन से कहा था—"हरी, राधू को तुम मनुष्य बना देना। बहू का तो उस पर अत्यन्त स्नेह है। तुम्हारा भी यह देखना कर्तव्य है कि जिस से वह मनुष्य बन जावे।" उसी दिन से हरिचरन यद्यपि स्वयम् विशेष लिखा पढ़ा नहीं था, तथापि उसकी इच्छा थी कि राधाचरन भली भाँति लिख पढ़ जाय, जिसके कारण वह दस बीस आदमियों में एक गिना जावे। सदाचार की शिक्षा दिलाने के लिए हरिचरन की विशेष दृष्टि रहा करती थी। उनका यह सर्वदा से अनुमान था कि खेल कूद में अधिक रहने से छोटे बच्चे बिगड़ जाते हैं। इस लिए सदैव खेल कूद ही में रहने से पढ़ना लिखना किस प्रकार हो सकेगा। जिस प्रकार हो, राधाचरन को मनुष्य बनाना होगा। पर हरिचरन के लिए यह समस्या बड़ी कठिन प्रतीत हुई। रात दिन पढ़ने के कारण बालक का मलीन

मुख देख कर कभी कभी हरिचरन को कष्ट होता था, किन्तु उसी समय यह विचार आने पर कि यदि इस समय पढ़ना छुड़ा दिया गया, तो बालक का उज्ज्वल भविष्य नष्ट हो जावेगा। इस समय थोड़ा कष्ट सहने से अन्त मैं इसी का भला होगा।

इतनी ताड़ना रहने पर भी राधाचरन के पढ़ने लिखने मैं विशेष उन्नति नहीं देखी गई। बड़े भाई के चिल्लाने के भय से जिस समय वह पुस्तक लेकर बैठता था, उस समय उसका मन चलायमान हो जाता था और उसके नेत्रों के सन्मुख किताब के अक्षर चीन भाषा की वर्णमाला के सदृश अथवा गोरखधंधे के चित्रवत् प्रतीत होते थे। स्कूल के मास्टर से पूछने पर हरिचरन को विदित हुआ कि राधाचरन अच्छी तरह लिख पढ़ नहीं सकता है। इतना प्रयत्न करने पर भी जब कुछ फल नहीं हुआ तो हरिचरन को सन्देह हुआ कि राधू की बुद्धि तीव्र नहीं है। तथापि उसने पढ़ना बन्द नहीं कराया और विचारने लगा कि घिसते घिसते राधू की बुद्धि तलवार की तरह क्या झक झक न चमक जायगी ? अब राधू का प्रातः सायंकाल का खेल कूद भी बन्द करा दिया गया।

एक दिन सायंकाल को कुछ अवसर पाकर राधू अपनी भावज के साथ रसोई घर मैं जाकर बैठ गया। थोड़ी देर पीछे हरिचरन भी कार्य्यवश रसोई घर मैं गये और वहाँ पर राधू को देख कर क्रोध से बोले—"रसोई घर मैं क्या करते हो ? जान पड़ता है कि रसोइयाँ ब्राह्मण बनोगे, इसी लिए पढ़ना छोड़ कर रसोई बनाना सीखने आये हो।" यह सुन कर कात्याइनी कहने लगी—"अजी, बच्चा सबेरे से तो पढ़ रहा है। थोड़ी देर के लिए मेरे पास आगया तो इसमैं हर्ज ही क्या हो गया ?" हरिचरन बोले—"उतना पढ़ने से क्या होगा ? डिपुटी मजिष्ट्रेट होने के लिए और भी पढ़ना होगा। हमारी तरह किसान ब्राह्मण बनने से काम नहीं चलेगा। दो पैसे का रोज़गार करके खाना होगा।"

राधू धीरे धीरे जाकर पढ़ने बैठ गया और जिन महानुभावों ने सब से प्रथम लिखने पढ़ने का आविष्कार किया था, मन ही मन उनको बुरा भला कहने लगा।

राधू के मजिष्ट्रेट होने की बात न जाने किस तरह गाँव भर मैं फैल गई। रास्ते मैं, घाट पर राधू के बराबर वाले उसको देखते ही इस प्रकार चिढ़ाते थे, "अरे मजिष्ट्रेट साहिब आते हैं, हम लोगों को न जाने कब फाँसी पर चढ़ा दें।" यह सुन सुन कर राधू शरमाने लगा। एक दिन रात्रि को सोने के समय भावज का हाथ पकड़ कर वह रोते रोते

कहने लगा—"भाभी, भाई साहब से कह दो कि मैं मजिस्ट्रेट नहीं होऊँगा। मैं भी भाई साहिब की तरह रहूँगा।" कात्याइनी उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहने लगी "क्या जानूँ ? मैं तो स्त्री हूँ। अच्छा, तुम्हारे भाई से कहूँगी।"

इतना होने पर भी राधू के माथे पर एक और बुरा ग्रह सवार हो गया। कात्याइनी के पिता माता कोई नहीं था, उसकी एक छोटी बहन सिद्धेश्वरी थी, जिसका लालन पालन उसके मामा के घर मैं होता था। कात्याइनी को एक दिन यह समाचार मिला कि सिद्धेश्वरी वहाँ पर बड़ी दुखी रहती है। उसने हरिचरन से एक दिन डरते डरते पूँछा,—"अगर सिद्धेश्वरी को यहाँ बुलालें, तो तुम को कुछ असुविधा तो न होगी ? सुना है कि लड़की को वहाँ पर बड़ा कष्ट है।"

हरिचरन कहने लगा—"अगर तुम्हारे मामा कुछ बुरा न मानें, तो बुला सकती हो। इसके लिए उनसे चिट्ठी लिख कर पहिले पूँछ लो।" पत्र के उत्तर में कात्याइनी के मामा ने लिखा कि सिद्धेश्वरी के भेज देने में हमारा कुछ हर्ज नहीं है। हरिचरन ने सोचा कि जितनी ही जल्दी सिद्धेश्वरी आजावे, उतना ही अच्छा है। यह विचार कर वह स्वयम् जाकर सिद्धेश्वरी को लिवा लाये।

संध्या समय कात्याइनी ने राधू से कहा—"राधू, सिद्ध अभी बालिका है, वह अकेली नहीं सो सकती। वह मेरे पास सोवेगी। तुम मेरे पास दूसरी खाट पर सो रहोगे ?" राधू यह देख कर कि मेरे मामूली अधिकार में भी एक प्रकार की बाधा उपस्थित होती है, जल उठा और क्रोधित हो कर कहने लगा कि "ऐसा कदापि नहीं हो सकता।" किसी प्रकार यह सब बातें हरिचरन के कानों तक पहुँच गईं। वह अप्रसन्न होकर कहने लगे—"क्या इतना बड़ा लड़का अकेला नहीं सो सकता है ? पुरुष को पुरुषों की तरह रहना चाहिए।" राधू अभिमान से आँखें पोंछने लगा। वह सोचने लगा, सिद्ध दस वर्ष की लड़की किस तरह बालक हुई और वह उससे दो वर्ष बड़ा होने से किस तरह बड़ा आदमी हो गया। यह उसकी समझ में नहीं आया। हरिचरन के वहाँ से चले जाने पर कात्याइनी ने सिद्ध से पूँछा—"सिद्ध, तू क्या अकेली सो सकेगी ?" सिद्ध नीचा सिर करके कहने लगी, "जो आज्ञा। वहाँ पर अकेले ही तो सोती थी।" उस समय कात्याइनी राधू का हाथ पकड़ कर कहने लगी राधू,—"तुम मेरे ही पास रहना। अब तुमको अकेले नहीं सोना पड़ेगा।" राधू स्वभाव से ही बड़ा अभिमानी था। बड़े वेग से सिर नीचा करके वह कहने लगा—"मुझे कुछ दरकार नहीं है। तुम अपनी बहन को लेकर रहो। तुम यदि पहले यह बात न कहतीं, तो भाई साहिब

न जानते। अब भाई साहिब का कहना न मानने से हम हीं पिटेंगे, तुम्हारा क्या बिगड़ेगा।' यह कह कर राधू जल्दी से वहाँ से चला गया। उसका सब क्रोध खिद्धेश्वरी के ऊपर हुआ। वह सोचने लगा, यदि यह न आती तो ऐसी दशा कदापि न होती।

(२)

इसी प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गये। राधू के पढ़ने में दिन दिन कमी होने लगी। हरिचरन के नीति सिखाने के कारण राधू उनसे यम की तरह डरने लगा। भले बुरे सब काम वह उनसे छिपके करता था। हर बात में शासन चलाया जाता था जिस से विचारा यह समझने में असमर्थ रहता था कि कौन सा काम भला है और कौन सा बुरा।

केनाराम विश्वास जो उसी महल्ले में रहता था, एक दिन एक मैजिक लालटेन लाकर सब को तमाशा दिखाने लगा। राधू की इच्छा हुई कि मैं भी एक ऐसी ही लालटेन ख़रीद कर तमाशा करूँ। भाभी के पास जाकर वह कहने लगा—"भाभी जी, अगर तुम मुझे पाँच रूपये दो, तो मैं तुम्हें एक आश्चर्य्य की चीज़ दिखलाऊँ।" इसके उपरान्त वह मैजिक लालटेन का सब हाल बतलाने लगा। कात्याइनी कहने लगी—"तुम्हारे बड़े भाई का यह सब बातें अच्छी नहीं लगतीं हैं, सो तो जानते ही हो। मुझे तो जान पड़ता है कि वह रुपये नहीं देंगे। राधू यह सुन कर चला गया और लड़का से कहने लगा, "हम भी एक लालटेन ख़रीदेंगे।" फिर वह कात्याइनी के पास जाकर हठ करने लगा—"भाभी जी, अगर तुम चाहोगी तो भाई साहिब पाँच रुपये दे देंगे। केनाराम कहता है कि अगर मुझे रुपये दे दो, तो मैं कलकत्ते से तुम्हें लालटेन ला दूँगा।" कात्याइनी जब निरुपाय हो गई तो उसने यह सब हाल पति से कहा। हरिचरन ने क्रुद्ध होकर राधू के एक थप्पड़ मारा और कहा, "तुम नहीं जानते हो कि कितना खर्च होता है?" राधू मुख नीचा किये हुए चबूतरे पर बैठा था कि इतने म केनाराम पूछने लगा—"राधू बाबू, क्या हुआ? मालम होता है कि भाई साहिब ने रुपये नहीं दिये।" यह सुन कर दूसरा लड़का कहने लगा—"तुम भी उल्लू बसंन्त ही रहे। मजिस्ट्रेट साहिब को रुपयों की क्या कमी है?" यह हँसी सुन कर राधू के बदन में आग लग गई। भाई साहिब के कारण ही उसका इतना अपमान होता है। जिस तरह हो सके भाई साहिब को इस दफ ख़ूब परेशान करूँगा। उसने यह निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल हरिचरन घबड़ा कर स्त्री से पूँछने लगा—"मेरी चादर की छोर में दस रुपये बँधे हुए थे, वह खुल गये हैं।" कात्याइनी विस्मित

होकर कहने लगी—"मैं ने तो रुपये नहीं देखे हैं।" हरिचरन कहने लगे—"चटर्जी बाबू दस रुपये उधार ले गये थे, कल शाम को वापिस कर गये। मैं बक्स में रखना भूल गया था। किसने लिये, सो ठीक समझ में नहीं आता है।"

किसने लिये हैं, इस विषय में सिद्धेश्वरी को अधिक हाल मालूम था। उसने राधू को रुपया लेकर पुस्तकों में छिपाते देखा था। पर यह बातें हरिचरन के सामने कहना नहीं चाहती थी। हाँ, इसका सब हाल उसने अपनी बहन से कहना निश्चय किया था। जो उचित होगा, बहिन उसका ठीक प्रबन्ध कर देंगी। किन्तु थोड़ी देर पहले राधू उस पर अप्रसन्न हुआ था। सिद्धू के विवाह के सम्बन्ध में बात चीत उठती थी और पड़ोस की स्त्रियाँ कात्याइनी से कहती थीं—"तुम्हारी बहन राजलक्ष्मी की तरह सुन्दर है। बड़े अच्छे घर में विवाह हो जावेगा, इसके लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।" राधू उस समय रुपया लेकर वहाँ से न गया था। सुन के धीरे धीरे कहने लगा—"लड़की को अपने रूप का अहङ्कार है। कभी इस बाँदरी का व्याह नहीं होगा।" यह बातें सिद्धेश्वरी ने सुन ली थीं। सब के सामने अपने इस अपमान से बुरा मान कर और क्रोध में भर कर बिना आगा पीछा सोचे वह कहने लगी—"राधू बाबू को मैं ने रुपये निकालते देखा था।" यह सुन कर हरिचरन क्रोध में भर कर राधू को ढूंढने निकले। उस समय राधू केनाराय को रुपये देकर अपने घर को आता था। हरिचरन उसका हाथ पकड़ कर कहने लगा—"अरे मन्द भाग्य, तैं ने रुपये क्या किये?" राधू कहने लगा,—"खर्च कर दिए।" और फिर हिम्मत बाँध कर बोला—"मैजिकलालटेन खरीदी है।" इसके उपरान्त हरिचरन उसका हाथ पकड़ कर भीतर ले आये। सामने जो एक लकड़ी पड़ी हुई थी, उसे उठा कर लगे राधू को मारने। कात्याइनी रोते रोते कहने लगी—"बालक से एक दफ़े अपराध हो गया। उस पर इतना नहीं मारना चाहिए, छोड़ दो।" हरिचरन कहने लगे—"बालक को इस लिए मारा है कि इसको आगे के लिए शिक्षा हो जाय, नहीं तो बड़ा होने पर यह चोरी डकैती करना सीख जावेगा।' चोट के कारण राधू ज्ञान रहित सा होकर बकने लगा—"चोरी कहाँ से कर ली। पिता जी का सब माल तो तुम्हारे ही पास है। तुम ही मेरा हिस्सा चोरी करके खाते हो। एक पैसा भी देना नहीं चाहते।"

यह सुनते ही हरिचरन के हाथ में से लकड़ी का टुकड़ा गिर गया और बड़े गंभीर भाव से वह कहने लगे—"यह मैं नहीं जानता था कि तुम्हारी बुद्धि इतनी दूर पहुँचेगी। तुम्हारे ही हित के लिए मैं

यह सब किया करता था।" यह कह कर हरिचरन खिन्न होते हुए चले गये। राधू की पीठ सूज गई थी। वह पृथ्वी पर गिर कर चिल्लाने लगा। उस समय कात्याइनी सोच रही थी, क्या करूँ। सिद्धू ने देखा कि क्रोध के वेग में हरिचरन जैसे मनुष्य के लिए ऐसी बात कहना बड़ा ही अन्याय हुआ। वह धीरे धीरे आगे बढ़ कर कहने लगी—"राधू, रोओ मत, उठो।" राधू पृथ्वी पर मुख रक्खे पड़ा रहा और कोई उत्तर नहीं दिया। कात्याइनी उसके निकट आकर बैठ गई। हाथ पकड़ते ही वह ज़ोर से हाथ छुड़ा कर चला गया। कात्याइनी ने बहुत बुलाया, लेकिन उसने एक न सुनी। दोपहर को भोजन के समय भी राधू नहीं आया। बहुत बाट जोह कर कात्याइनी ने हरिचरन से कहा—"राधू जब से गया है, अभी तक नहीं आया।" हरिचरन कहने लगे—"चला गया तो उसकी राज़ी।" जब शाम तक भी राधू नहीं आया, तब हरिचरन उसे ढूँढ़ने बाहर निकले। सारा गाँव तलाश किया, किन्तु उसका कुछ पता न चला। रात्रि के दो पहर बीतने तक हरिचरन लालटेन हाथ में लिये उसको ढूढ़ते फिरे। घर लौट कर देखा कि उस समय तक कात्याइनी और अनुतप्ता सिद्धू जागती हुई राह देख रही थीं। हरिचरन की छाती फटने लगी। वह किसी से बिना कुछ कहे ही दरवाज़े पर बैठ गये। दिन पर दिन और मास पर मास बीतने लगे। हरिचरन ने कई जगह राधू की तलाश के लिए आदमी भेजा और कई जगह स्वयं गये, किन्तु राधू का कहीं पता न चला। कात्याइनी रो रो कर दिन काटने लगी। हरिचरन और भी गंभीर हो गये। उनका शरीर भी धीरे धीरे क्षीण होने लगा।

(३)

राधाचरन ने यह बात मन में ठान ली कि चाहे रसोइयाँ ब्राह्मण ही बन के रहूँ, किन्तु बड़े भाई के आधीन होकर अब नहीं रहूँगा। वह सोचने लगा, कि एक दफ़े किसी तरह कलकत्ते पहुँच जाना चाहिए, फिर कुछ चिन्ता न रहेगी। रास्ते में चलते चलते वह थक कर रास्ते के किनारे पर सो गया। इतने ही में एक घोड़ा गाड़ी भी आई जो उसके सामने ही आ रही थी। गाड़ीवाले ने उसे देख कर जल्दी से गाड़ी रोक दी और उसे पुकारा। राधू ने तुरन्त उठ कर देखा कि गाड़ी में कोई एक सज्जन बैठे हैं। कपड़े लत्ते देख कर उसने सोचा कि यह कोई बड़े आदमी हैं, और यकायक उसके मस्तिष्क में न जाने क्या विचार उत्पन्न हुआ कि दौड़ कर गाड़ी के पास जाकर कहने लगा,—"बाबू जी, क्या आपको रसोइये की आवश्यकता है? मुझे रख लीजिए।" बात पूरी न होने पाई थी कि वह गिर पड़ा। बिना भोजन

किये और थकान के कारण उसमें खड़े होने की शक्ति नहीं थी। उस सज्जन ने उसकी ऐसी शोचनीय और पागलों की सी दशा देख गाड़ी खड़ी करके उसे उसमें बिठा लिया और उसका नाम और पता पूँछा और कहा,—"क्यों तुमने मकान छोड़ा है?" राधू ने कहा,—"मैं अनाथ हूँ। मकान पर मेरा कोई नहीं है।"

सज्जन का नाम रामरतन चट्टोपाध्याय था। वह कलकत्ते में वकालत करते थे। अपने गाँव में कुछ कार्य्यवश आये थे। इस प्यारे बालक की ऐसी दीन दशा देख कर उन्हें दया आ गई और कहने लगे—"अच्छा हमारे साथ चलो। रसोंइये की तो हमें आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारे यहाँ रसोइया मौजूद है। लेकिन कलकत्ते चल कर तुम्हारा कुछ प्रबन्ध कर देंगे। कहो, क्या कहते हो?" उसी समय से वह रामरतन बाबू के यहाँ रहने लगा। एक दिन बातों ही बातों में रामरतन बाबू की स्त्री से उसने अपना कच्चा हाल कह दिया। वह कहने लगी, "हाय भगवान, एक ही माँ के पेट के दूसरे भाई को बड़े भाई ने मार कर निकाल दिया है?"

रामरतन बाबू के बच्चों को पढ़ते देख कर राधाचरन का भी मन पढ़ने की ओर गया। बड़े भाई की ताड़ना से जिसको पढ़ना विष के समान लगता था, उसी पढ़ने में अब उसे अमृत पीने का सा आनन्द आने लगा। राधाचरन में बुद्धि की कमी नहीं थी। जब एक दफ़े पढ़ने में मन लग गया; फिर उसको उस से हटा दे, यह किसी में सामर्थ्य नहीं। रामरतन बाबू के लड़के उनसे कहने लगे—"पिता जी, राधाचरन की बुद्धि बहुत अच्छी है। उसे क्या आप स्कूल में नहीं भेजेंगे?" रामरतन कहने लगे—"क्यों नहीं।"

राधाचरन ने स्कूल जाना आरम्भ कर दिया। दरजे में कोई भी छात्र उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। प्रवेशिका परीक्षा में पास होने पर जब रामरतन बाबू ने देखा कि सरकार से इसको छात्र वृत्ति भी मिल गयी, तो राधू को कालेज में भरती करा दिया। एक दिन रामरतन ने अपनी स्त्री से कहा—"देखो, अगर हम अपनी कन्या शैल के साथ राधाचरन का विवाह कर दें, तो कैसा है। अपना स्वजातीय तो है ही और इस का रूप गुन तो अपने नेत्रों से दीखता है।" रामरतन बाबू की स्त्री बोली—"ऐसा हो, तो अच्छी बात है। शैल भी हमारे पास बहुत दिन तक रह सकेगी।"

एक दिन रामरतन बाबू ने राधाचरन का मन इस विषय में लिया। राधाचरन ने सुन कर सिर नीचा कर लिया। रामरतन बाबू ने उसकी राय समझ कर विवाह की सब तय्यारियाँ करनी आरम्भ कर दीं।

राधाचरन ने जब प्रवेशिका परीक्षा पास की, तो हरिचरन को भी इसकी खबर हो गयी। और सुना कि उसका भाई एक धनी गृह में अच्छी तरह है और खूब पढ़ता लिखता है। हरिचरन को बड़ी प्रसन्नता हुई, लेकिन उसे दुःख भी हुआ। उसके न होने से इतने दिन तक उसने तलाश रक्खी थी। उसके लिए उसका ठीक ठिकाना जानने का उपाय नहीं था, लेकिन वह तो एक चिट्ठी लिख सकता था। फिर वह सोचने लगे, यदि वह सुख से रहता है, तो यही अच्छा है। विवाह के समाचार भी हरिचरन ने सुन लिये थे। कुछ दिन बाद उन्होंने सुना कि राधाचरन डिप्टी कलेक्टर हो गया है। हरिचरन की कितने दिनों की इच्छा आज पूर्ण हुई है। लेकिन आज उसके पास आनन्द मनाने के लिए कुछ नहीं था। हरिचरन हाँफते हाँफते कात्याइनी के पास यह सुख सम्बाद सुनाने गये।

(४)

कई वर्ष व्यतीत हो गये। उस समय देश स्वदेशी के आन्दोलन में मतवाला हो रहा था। रामरतन बाबू के लड़कों ने ठीक कर लिया है कि आश्विन की पूर्णिमा को किसी एक गाँव में कीर्तन करने चलेंगे। उन्होंने आकर राधाचरन से पूछा—"क्या तुम भी हमारे साथ स्वदेशी के प्रचारार्थ चलोगे?" राधाचरन ने कहा—"अच्छा है। एक दफे तुम्हारे साथ घूम आवेंगे, इसमें बिगाड़ ही क्या है?" दूसरे दिन वह एक गाँव में पहुँचे। उनके उत्साह का क्या कहना था। उन्होंने गाना गाकर ग्राम वालों को प्रसन्न किया और गाया—"भाई भाई एक ठाँव।" फिर सब के हाथ में राखी बाँध कर संध्या को घर लौटे। रास्ते में एक मनुष्य किसी दूसरे से कह रहा था—"बाबू जी, आप दूसरों के सँग में तो बहुत चिल्लाते हैं, लेकिन अपने भाई के सँग लड़ाई और मुकदमें बाज़ी करते हैं, यह क्या?" यह बात राधाचरन के कान में पहुँच गयी। उनका मुख लाल हो गया। कितने दिन उपरान्त आज इस गाँव में आकर उन्हें यह वार्ता सुन पड़ी। हरिचरन की बात भी याद आ गयी। निज के लिए "भाई भाई पृथक पृथक" और दूसरों के लिए, "भाई भाई एक ठाँई" कहने से कुछ नहीं होगा। उसका चित्त चलायमान हो गया और उसी समय आगे वाले युवक दल ने एक गाना आरम्भ किया जिसका आशय यह था—

"सगे भाई भाई आज मिले—
भाई को भाई कितने दिन छोड़ सकता है।"

घर आकर रात्रि में राधाचरन को नींद नहीं आई। उसके कान में केवल ये ही शब्द गूँजने लगे—"भाई को भाई कितने दिन छोड़ सकता है।" उसने फिर एक बार विचारा कि इसमें मेरे बड़े

भाई का ही दोष है। क्योंकि वह उसको कुछ भी प्यार नहीं करता था। मुझे तो एक दिन भी ऐसा याद नहीं पड़ता कि जब उसने मेरे साथ आदर पूर्वक व्यवहार किया हो। उसी समय उसे यह बात याद आई कि पिता की मृत्यु समय उसने किस प्रकार छाती से लगा कर यह शब्द कहे थे—"पिता जी, राधू के लिए चिंतित मत हो। मैं उसे एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ूँगा।" उस दिन पितृ शोक में रो रो कर जिस समय मैं थक के पड़ जाता था, तो हरिचरन सोचते थे कि मैं सो गया हूँ। उस समय मेरे सिर के पास बैठ कर कितने गम्भीर स्नेह से मेरे माथे को चुम्बन करते थे। वह मुख से आदर करना नहीं जानते थे, यही जान कर मैं समझता कि वह मुझे प्यार नहीं करते हैं। राधाचरन को अब जान पड़ा कि इसमें मेरा ही दोष था। हरिचरन की शिक्षा प्रणाली में भूल थी—यह कहना मानों हृदय हीनता का परिचय देना है।

दूसरे दिन राधाचरन बिना किसी से कुछ कहे अपने गाँव की ओर रवाना हुए। घर के पास पहुँच कर देखा कि घर की वह शोभा अब नहीं रही। ऐसा प्रतीत होता था, मानों घर में कोई रहता ही नहीं। उसके चित्त में यह विचार हुआ कि इस मकान में कोई नहीं रहता है। इस लिए उसने बड़ी धीमी आवाज से द्वार के वृक्ष के पास जाकर कहा—"भाई!" कोई उत्तर न मिला। कुछ आगे बढ़ कर फिर उसने आवाज़ दी—"भाभी!"

कात्याइनी ने घर से बाहर निकल कर देखा, पर प्रथम वार वह नहीं पहचान सकी। राधाचरन ने उसकी चरण रज को मस्तक पर धर कर कहा—"भाभी, अब पहचाना या नहीं?" कात्याइनी के नेत्रों से मारे हर्ष के अश्रुपात होने लगा। राधाचरन ने पूँछा—"भाई साहिब कहाँ हैं?" कात्याइनी ने उत्तर दिया, "वह उस महल्ले म किसी कार्य-वश गये हैं। अभ आते हैं। तुम्हारे वियोग में चिंतित रहने से चेहरे की कैसी दशा हो गयी है। देखते हो कि नहीं?" यह कहते कहते कात्याइनी के नेत्रों में जल भर आया। राधाचरन ने दूसरी तरफ मुख फेर लिया। ठीक उसी समय हरिचरन भी घर में आ गये। राधाचरन उनके पैर पकड़ कर बोले—"भाई साहिब, तुम राधू को क्षमा करो।" हरिचरन ने साश्चर्य उसे हृदय से लगाकर कहा—"राधू भाई, तुम ही हमको क्षमा करो। हम से भी बड़ी भूल हुई थी।"

जिस दिन राधाचरन घर से निकले थे, उस दिन किसी को नींद नहीं आयी थी, और आज घर का लड़का घर लौट आया है, इससे आज भी किसीको नींद नहीं आयी। *

—बाबूलाल शर्म्मा

* भारतवर्ष से अनुवादित।

जापानी स्त्रियाँ

जापान के एक शिक्षा-सचिव के व्याख्यान के आधार पर।

जापानी समाज और भारतीय समाज में बहुत भेद है। स्त्रियों की अवस्था पर विचार करने के पूर्व हमें वहाँ के समाज की एक बड़ी बात समझ लेनी चाहिए। वहाँ के राष्ट्र और समाज का विभाग गृहों में हुआ है और राज्य नियमानुसार प्रति गृह एक नेता के अधीन है। यह प्रबन्ध बहुत प्राचीन है और यद्यपि आधुनिक परिवर्तनों ने इसे बहुत कुछ पलट दिया है तथापि गृहों की स्थिति नहीं टूटी।

जापानियों में देशहित गृह-हित से आरम्भ होता है। प्रत्येक जापानी प्रथम अपने गृह वा कुल के लिए अपनी बलि देने में संकोच नहीं करता। और जब देश के मान का सवाल होता है तो अपनी और अपने कुल की बलि बिना संशय दे देता है।

जापान में पिछले दिनों किसी को अपनी व्यक्तिगत आय बनाने का अधिकार न था। वह जो कुछ कमाता, गृह के लिए कमाता और उसका भोग भी गृह-मुख्य की आज्ञा से करता। अब भी व्याह, त्याग, पुत्र-ग्रहण इत्यादि गृह-मुख्य की आज्ञा बिना नहीं हो सकता।

यह तो हुआ गृह-नेता का प्रभुत्व। अब हम स्त्रियों के अधिकारों पर आते हैं।

जापानी इतिहास में कई राजेश्वरियों का वर्णन आता है जो प्राचीन काल में हुई थीं। जापानियों की मुख्य-पूज्या भी एक देवी है जो राजकुल की पूर्वजा समझी जाती है। देवी का नाम 'अमा-तेरासु-ओ-मी-कामी' है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन जापानी स्त्री-जाति का सत्कार करते थे। यहाँ तक कि वह राज्य का काम भी कर सकती थीं। एक रानी ने सेना सहित कोरिया पर आक्रमण कर उसे विजय किया।

इसके पश्चात् जापान में कनफ्यूशस का मत फैला और फिर लोग बौद्ध हुए। चीनी तार्किक स्त्रियों का मान करते थे, परन्तु बुद्ध की शिक्षानुसार स्त्री 'पाप का मूल, काम का जाल, शान्ति और पवित्रता में विघ्न है'। इससे स्त्रियों का स्थान गिर गया। माँ का मान करते, भूमि-पति की स्त्री को नमते, बहिनों की रक्षा करते थे। परन्तु स्त्री-जाति का विशेष आदर न होता था।

उस समय (Feudal system के आधीन) स्त्री घर की नेता नहीं हो सकती थी। क्योंकि नेता के लिए सैनिक कार्य आवश्यक था। स्त्री का कर्तव्य था कि जब वह कन्या होती, तब माँ बाप की आज्ञा पालती, जब व्याहिता होती, तो पति के प्रभुत्व में रहती और

यदि विधवा हो जाती, तो उस बेटे के अधीन होती जो घर का मुखिया होता था। इसका तात्पर्य्य यह न था कि स्त्री का कुछ मान न हो। वह माँ और पत्नी होकर मान्य थी परन्तु घर की नेत्री न हो सकती थी।

सं० १८६८ ई० के निकट पाश्चात्य सभ्यता का जापान में प्रवेश हुआ। तब से वहाँ के समाज-प्रबन्ध में बहुत उलट पलट हुआ है। अब स्त्रियाँ घर की मुखिया बन सकती हैं, जिससे उनका अधिकार अपने सब सम्बन्धियों पर हो जाता है। पति के न होने पर उनका बच्चों पर मातृ-अधिकार होता है। वह अपना हिस्सा बेच सकती हैं और बहुत से सामाजिक और राज-नैतिक अधिकार उनको प्राप्त हो चुके हैं।

जापानियों में अनेक-विवाह होने का प्रचार न पहिले था और न अब है। सन्तानाभाव दूसरे सम्बन्ध का कारण हो सकता था। बहुत से लोग इस नियम का कुप्रयोग भी करते थे। परन्तु अब एक से अधिक पत्नी करना निन्द्य समझा जाता है।

व्याह होने पर अब भी पत्नी पति के घर में आती है। और अपने सास श्वसुर की आज्ञा में रहती है। परन्तु अब नव-शिक्षित समाज ऐसा नहीं करती। नव-विवाहित जोड़ा अपना अलग घर स्थापित करता है। गृह में गृहणी के कर्तव्य वही हैं जो भारत में है। पति आर्थिक धन्धा करता है, धन कमाता है, समाज में काम करता है। पत्नी घर का प्रबन्ध करती है। नौकर हों तो उनकी देखभाल, बच्चों का शिक्षण, पोषण, वृद्धों का सर्वथा ध्यान, घर के वस्त्र और भोजन इत्यादि गृहिणी के ज़िम्मे होते हैं।

त्याग का अधिकार पहिले केवल पति को था, लेकिन अब पत्नी को भी है। परन्तु दोनों के लिए कारण नियमित हैं। साधारणतः पत्नी त्याग के लिए उत्सुक नहीं होती।

जापान में स्त्री को आर्थिक धन्धा करने में कोई बाधा नहीं। वह डाकृर वा टीचर हो सकती है। शिक्षा के प्रचार से रेल आदि के काम में भी स्त्रियों की प्रवृत्ति होती जाती है। परन्तु अब तक स्त्री के विषय में जापानी आदर्श यह है कि वह 'सुमाता और सद्गृहणी' हों। पुरुष के लिए 'बाहर का' और स्त्री के लिए 'अन्तःपुर' का काम नियुक्त है। ऐसी महती स्त्रियाँ हुई हैं, जिन्होंने पुरुषों की तरह बाहर का काम किया है, परन्तु वह इतनी लोकप्रिय नहीं, जितनी 'सुमाताएँ और सद्गृहणियाँ।'

उक्त वर्णन से जापान में आधुनिक सभ्यता का कुछ पता चल सकता है, परन्तु जापान का कोई भाव वा कार्य आज कल स्थिर नहीं। पाश्चात्य सभ्यता ने इस पचास वर्ष के समय में जो परिवर्तन किये हैं उनका कुछ अंश पाठकों

की सेवा में भेंट किया गया है। परन्तु यह सभ्यता अभी कहीं ठहरी नहीं। स्वतंत्रता की सीमा नित्य बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि कहीं कहीं इस उलट फेर का रूप बहुत भयानक होता है। वृद्ध इतना परिवर्तन सह नहीं सकते। नव शिक्षित युवा इतने को भी पर्य्याप्त नहीं जानते। सो इस समय जापानी समाज अशान्ति-मय हो रहा है। देखिए, यह उन्नति वा अवनति की लहर कहाँ जाकर ठहरती है।

—चम्पतिराय

प्रेम



र विपत्ति, महादुःख, अकथनीय आनन्द एवं शान्ति सुख के समय जो मनुष्य अपने तन मन और धन से दूसरे की सहायता करता है, वही सच्चा प्रेमी है। उसके हृदय का प्रगाढ़ अनुराग ही प्रेम है। यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो संसार की प्रत्येक वस्तु में प्रेम पाया जावेगा। जीवधारियों को छोड़ दीजिए तो अचेतन पदार्थों के बीच भी वैसाही अगाध प्रेम का अमृतमय सुन्दर सरोवर भरा हुआ है। समग्र विश्व ब्रह्माण्ड एक प्रेम ही की ज्योति से एक प्रेम ही की असाधारण प्रतिमा से व्याप्त है। समस्त संसार एक प्रेम ही की अखंडनीय रस्सी से बँधा है। यदि यह रस्सी न हो तो संसार भी नष्ट हो जावे। मानव हृदय में जो शक्तियाँ बिराजती हैं उनको यद्यपि हम आँखों से नहीं देख सकते किन्तु उनके विकाश तथा ह्रास का अनुभव कर सकते हैं। हृदय-स्थित उन शक्तियों में से 'प्रेम' भी एक सुमधुर और प्रभावकारिणी शक्ति है। 'प्रेम' सब शक्तियों से प्रबल है। जो काम महान से महान शक्तियों से नहीं होते, वही प्रेम से बड़ी सरलता पूर्वक हो जाते हैं। प्रेम के द्वारा ही संसार की सुन्दर स्वाभाविक छटा देखी जाती है। संसार में ऐसा कोई धर्म नहीं है, जिस में प्रेम को एक अद्भुत ईश्वर प्राप्ति का द्वार न माना हो। जीवन का आनन्द प्रेम ही से है। जिस प्रकार गोंद से पुस्तक के पृष्ठ जुड़े रहते हैं, ठीक इसी प्रकार प्रेम रूपी गोंद से समस्त जाति, तथा समस्त देश जुड़े हुए हैं। यदि प्रेम रूप गोंद न हो तो सारी जातियाँ तहस नहस होजावें तथा सारे देश रसातल को चले जावें और खुले हुए पृष्ठों की भाँति इधर उधर उड़ जायँ। संसार के सारे कार्य प्रेम ही से चलते हैं। प्यारी माता रोते हुए बालक को केवल प्रेम के वशीभूत होकर दूध पिलाती है। माता का असीम स्नेह, प्रियतमा पत्नी के आश्वासकारी मीठे बैन और बच्चों की तोतली बोली ये प्रेम के

दूसरे दूसरे रूप हैँ। यही प्रेम कहीँ माता का रूप रख कर प्यारे पुत्र की याद मेँ उछला पड़ता है, यही देश भक्ति का रूप धारण कर देश के लिए कष्ट उठा रहा है और युद्ध मेँ यही प्रेम घोड़े पर चढ़ कर तलवार चलाता है। यह वही प्रेम था जिसने वीरवर राना प्रतापसिंह के हृदय पर छाप लगाई। पाठक! आज भी हमारी नाड़ियोँ का रक्त उष्ण होकर तीव्र गति से संचालित हो उठता है, जब हमेँ चित्तौड़ की चिता मेँ अपनी माताओँ भगनियोँ एवं पुत्रियोँ का प्रेम दिखाई देता है। प्रेम! तेरी लीला अपार है। जिधर देखो, तू ही अनेकोँ रूपों मेँ प्रगट हो रहा है। बड़े बड़े वीर योद्धा प्रेम ही से वशीभूत हो जाते हैँ। वह सेनापति जिसको दूसरे के कटु शब्द सहन नहीँ होते, कटु शब्द सुन कर नेत्रोँ मेँ खून उतर आता है—वह भी एक अल्पवयस्क बालक पर जो तुतला तुतला कर मधुर शब्दोँ मेँ गालियाँ दे रहा है--हाथ नहीँ उठाता! पाठक! सोचिए तो, वह कौन सी मेधावी शक्ति है, जिसने उसे मारने से रोक रक्खा है? आप को नाना रूप धारी महात्मा 'प्रेम' ही देख पड़ेँगे। प्रेम ही सुख का मूल है। जिस घर मेँ जिस जाति मेँ तथा जिस देश मेँ प्रेम रूपी सुखद समीर बह रहा है, वहाँ फूट रूपी महामारी नहीँ फूट सकती। जिस घर मेँ प्रेम रूपी समीर का संचार नहीँ—जिस घर मेँ प्रेम रूपी अन्न नहीँ, वह घर गन्दा है और निर्धनता से भरा हुआ है। इसी प्रेम के खोने से और भाई भाइयोँ के लड़ने से कुरुक्षेत्र के संग्राम द्वारा हमारी सारी शक्ति नष्ट हो गई। भारत के अन्तिम हिन्दू नृपति महाराज पृथ्वीराज तथा जयचन्द मेँ इस प्रेम समीर का झोंका नहीँ पहुँचा और इसी कारण समस्त भारत विधर्मियोँ के पंजोँ से जकड़ गया। हा! यदि एक भी लहराता झोका प्रेम समीर का इधर पहुँच गया होता तो भारतीयोँ की यह दशा आज न होती।

प्रेम समीर मेँ भ्रमण किये हुये मनुष्य को चिन्ता नाम मात्र को नहीँ होती। यदि किसी को बाहर चिन्ताएँ घेरे रहती होँ और आनन्द न मिलता हो तो क्षण भर के लिए एकान्त मेँ प्रफुल्लित चेहरोँ और प्रेम भरे हृदयोँ का स्मरण करो! आपके सामने एक विचित्र कौतूहल भासित होने लगेगा! हृदय सागर मेँ आनन्द एवं प्रेम की तुंग तरंगेँ उठ उठ कर किनारोँ से टक्कर मारने लगेँगी। देखिए, एक कवि के निम्न लिखित दोहोँ से प्रेम का कुछ आभास प्रगट होगाः—

"यद्यपि दोनों में रहे जड़ता मूलक मोह।
तो भी मेल मिलाप को तजे न चुम्बक लोह॥

* * *

लो निर्जीव सजीव का समझो प्रेम प्रसंग।
प्यारे दीपक से मिले प्राण बिसारि पतंग॥"

नेपोलियन के पास ऐसी कौन सी अपूर्व शक्ति थी जिससे वह समस्त यूरोप में कँपकँपी फैला सकता था। कहने में संकोच न होग कि वह उसका सैनिक गणों से अगाध प्रेम ही था! उसी प्रेम की मनोमोहक सुगन्धि का पान कर वह रण भूमि में उन्मत्त हो कर ताण्डव सा करता था।

हमारे भारत में हरिश्चन्द्र का सत्य प्रेम, शिवि का धर्म प्रेम, सीता का पति-प्रेम आदि असंख्य प्रेम के ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित हैं, जिन्हें सुन कर हमारे हृदय में एक अलौकिक आनन्द-वारि का स्रोत बहने लगता है। जिस समय १५८८ ई० में स्पेन देश के प्रचण्ड एवं भयानक नौका समूह (The Sparish Armada) ने अपने कराल मुख को फैला कर इंगलैण्ड को निगल जाने का प्रयास किया था, तब सब अँग्रेज़ लोग एक दूसरे के मतावलम्बी भी एक तो देश प्रेम से उत्साहित होकर एवं दूसरे अपनी न्यायशीला महारानी एलिज़वेथ के करुण वाक्यों से उत्तेजित होकर देश को बचाने के लिए एक हो गये थे। इस 'प्रेम' का फल यह हुआ कि अँग्रेज़ों ने उस प्रकाण्ड बेड़े पर पूरी विजय प्राप्त की। अँग्रेज़ों का यह स्वदेश प्रेम अनुकरणीय है। आज भी इस यूरोपीय भीषण संग्राम में—काले गोरे का भेद भुला कर तथा धर्म भेद हटा कर वीर सिपाही अपने देश-प्रेम का कैसा सुन्दर परिचय दे रहे हैं! अहा!—

"श्याम प्रशान्त महासागर जल
श्वेत सिंधु संलग्न हुआ।
श्वेत श्याम का भेद विसृचक्ष
भाव भ्रान्त मय भग्न हुआ॥"

(माधव शुक्ल)

अब हमारे मंगल के लिए, देश के कल्याण के लिए, स्वदेश को चैतन्य करने के लिए तथा देश की कला कौशल की उन्नति के लिए प्रेम की बड़ी आवश्यकता है। अन्त में हम भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के इस दोहे को लिख कर लेख समाप्त करते हैं:—

जेहि लहि पुनि कछु लहन की आस न चित में होय।
जयति जगत पावन करन 'प्रेम' बरन ये दोय॥

—बिपिन बिहारीमिश्र

मनुष्यों और कीड़ों का युद्ध

नवम्बर सन् १९१५ के माडर्न रिव्यू में एक लेख उपरोक्त विषय पर एक विलायती मासिक पत्र से उद्धृत है, जिसका अनुवाद हमारे पाठकों के लिए रोचक और उपयोगी होगा। इसमें बहुत से शब्द कीट-विज्ञान के प्रयोग किये गये हैं जिनके पर्याय भाषा में नहीं मालूम हैं। साधारण अङ्गरेज़ी कोषों

मेँ भी इनका कुछ पता नहीँ चलता है। बहुत से शब्द भाषा मेँ उन लोगोँ को मालूम होँगे जिनका उन कीटोँ से कुछ सम्बन्ध कृषि, पशुपालन और वन-रक्षा के कार्य्योँ मेँ पड़ता होगा; परन्तु उन शब्दोँ से यथोचित लाभ उठाने के लिए और उनको हिन्दी संसार मेँ प्रचार करने के लिए ऐसे उद्योगी विद्वानोँ की आवश्यकता है जो अंग्रेज़ी शब्दोँ से पूर्णतः परिचित होँ और जो कृषकोँ, गो-रक्षकोँ, अन्यान्य पशु-रक्षकोँ और वन-रक्षकोँ के साथ भी थोड़ी देर तक रह कर प्रत्यक्ष कीटोँ को देख कर और नाम पूछ कर अंग्रेज़ी पर्य्याय-शब्दोँ को लिखते जायँ। यह काम बड़े उद्योग और आत्म-समर्पण का है जिसके लिए जो विद्वान अंग्रेज़ी शब्दोँ का पूर्णज्ञान रखते हैँ उनको इतना अवकाश भी नहीँ मिलेगा। परन्तु यदि इसमेँ कुछ समय और नाते न सही तो केवल इस विचार से कि हिन्दुस्तान के कीटोँ, पतङ्गोँ और पक्षियोँ का ज्ञान हिन्दुस्तानियोँ को कितना आवश्यक है, लगावेँ तो परिश्रम निष्फल न होगा। विशेष कर ऐसे समय जब वस्तु-पाठ (Object lesson) भाषा मेँ ही दिया जाता है, बच्चोँ को हिन्दुस्तानी नाम जानने की बड़ी आवश्यकता है।

मेरे कुछ मित्र केवल इसी कारण अपने कीट और कीटाणु-विषयक ज्ञान को भाषा मेँ प्रचलित नहीँ कर सकते कि वह भाषा मेँ अंग्रेज़ी शब्दोँ के पर्य्याय वाचक नहीँ जानते। मेरी समझ मेँ यदि थोड़े थोड़े से कीटोँ की शरीरिक बनावट और उनके गुणोँ और दोषोँ का वर्णन चित्र सहित 'विज्ञान' मेँ प्रकाशित हुआ करे और विज्ञान के कुछ पाठक स्थानीय कीटोँ से उनकी समानता करके भाषा मेँ प्रचलित शब्द ढूढ़ेँ तो यह काम बड़ी सरलता पूर्वक हो जायगा। मेरे मित्रोँ को भाषा के शब्दोँ के ढूँढ़ने की कोई आवश्यकता न रहेगी, वह केवल अंग्रेज़ी वैज्ञानिक शब्द देवेँ। हाँ जहाँ तक वह भाषा के शब्द अपने पास वाले नौकरोँ कृषकोँ इत्यादि से मालूम कर सकेँ वह अवश्य प्रयोग करेँ। कीट-विज्ञान ऐसा आवश्यक और उपयोगी प्रतीत होता है कि इसमेँ मूँड़ मारना व्यर्थ कदापि नहीँ होगा। यदि भाषा के पर्य्यायवाची शब्द न भी मिलेँ तो कमसे कम पहले उन कीटोँ पतङ्गोँ के अंग्रेज़ी ही नाम पूर्ण व्याख्या और चित्रोँ के साथ दिये जाने चाहिए जिनका सम्बन्ध कृषि प्रयोगालयोँ वा कालेजोँ के द्वारा कृषि वा पशुपालन मेँ बहुत घनिष्ट समझा गया है। अब हम उपरोक्त लेख का अनुवाद देते हैँ:—

रेँगनेवाले कीड़ोँ (worm classes) मेँ कुछ वर्ग (species) के कीड़े ऐसे हैँ जो मानव-जाति की उन्नति और सुख के विरोधी हैँ क्योँकि जब वे मनुष्योँ

स्वयम् नहीँ आक्रमण करते, तब उनके पाले हुए पशुओँ और बोयी हुई वनस्पतियोँ के ही पीछे पड़ जाते हैँ। इसी तरह बहुत से नरम-शरीर वाले जीव (molluscs)* विशेष कर खोपरीवाले (snail class) और न-खोपरीवाले (slug class) शत्रुवत् वर्ताव करते हैँ। किलनी वर्ग के (tick) जीव यद्यपि बड़े भयानक शत्रु होते हैँ तथापि उनके सम्बन्धी मकड़ी-वर्गवाले मनुष्योँ के लिए बहुत बड़े मित्र का काम देते हैँ, क्योँकि वे सृष्टि मेँ भयानक जन्तुओँ को बहुत बढ़ने नहीँ देते और साम्यावस्था मेँ ले आते हैँ। वृश्चिक-वर्गवाले जीव बहुत ही भयानक और दुखप्रद मालूम होते हैँ परन्तु इनसे जो कुछ वास्तविक हानि पहुँचती है वह नहीँ के समान है। यही विषैले कनखजूरोँ के लिए भी कहा जा सकता है। किलनी वर्ग के जन्तु बहुत ही भयंकर और घातक होते हैँ। ये ओछी जाति के मकड़ी-वर्ग के जन्तु हैँ जो पशुओँ और वनस्पतियोँ का रक्त और रस चूस चूस कर पलते हैँ।

अधिकतर कीड़े मकौड़े (Insects and Ticks) मानव-जाति के प्रति इस प्रकार आक्रमण करते हैँ :- (१) या तो वे उन वस्तुओँ को खा जाते हैँ जो मनुष्योँ के प्राणाधार हैँ या (२) उन वस्तुओँ मेँ अपना विष घुसेड़ देते हैँ या (३) मनुष्योँ के शरीर पर ही आक्रमण कर बैठते हैँ या (४) अधिकतर ऐसे ऐसे कीटाणुओँ को गन्दी जगहोँ से ला ला कर फैलाते हैँ जिनसे केवल मनुष्योँ मेँ ही घातक रोग नहीँ फैलते वरन् पशुओँ-पक्षियोँ और वनस्पतियोँ मेँ भी जो मनुष्य-जीवन मेँ नाना प्रकार से उपयोगी होते हैँ रोग उत्पन्न कर देते हैँ। बात तो यह है कि मनुष्योँ और कीड़ोँ मकोड़ोँ मेँ अभी तक एक दूसरे से बढ़ जाने का उद्योग हो रहा है।

यह सम्भव है कि इन कीड़ोँ मकोड़ोँ से मानव-जाति को जो दुःख पहुँच रहा है वह मानव-जाति के उन कर्मोँ का परिणाम है जिनसे पक्षियोँ और बहुत से कीड़ोँ का नाश हुआ है।

मानव-जाति ने स्वयम्–विशेषकर और पहले पहल, उन्नत मानव-जाति ने बे-समझे बूझे उन मनोहर और उपयोगी चिड़ियोँ का सर्वनाश किया और मूर्खता से उन भोले भाले और उपयोगी कीड़ोँ को सृष्टि से निकाल डाला जो अहितकर कीड़ोँ मकोड़ोँ को चट कर जाने के लिए रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अब कीटाणुओँ से उत्पन्न रोग दिन पर

---

* molluscs उस जन्तु-अवान्तर-सर्ग (animal sub-kingdom) को कहते हैं जिनके नरम शरीरों की रक्षा के लिए प्रायः कड़ा खोल चारों ओर रहता है। जैसे घोंघे, सुतुही, इत्यादि।

दिन भयंकर रूप धारण किये हुए बढ़ते जा रहे हैं और पशु और वनस्पति के रूप में जो भोजन मिलता था वह भी कम होता जा रहा है। इनका कारण उन कीड़ों मकोड़ों और कीटाणुओं की क्रियाएँ हैं जिनको वे अपनी अतड़ियों, गलफड़ों, रोएँदार पैरों वा खुरखुरी पीठों में लिए रहते हैं और अवसर पाकर मनुष्य, पशु, पक्षी की त्वचा, पेट वा नसों में और वनस्पतियों की डंठलों में घुसेड़ देते हैं।

उत्तरार्द्ध पाषाणकाल (Neolithic age) और पूर्वार्द्ध धातुकाल (Early metal age) के बढ़ते हुए ज्ञान से लोगों को मक्खी, टिड्डी, खटमल, किलनी और मच्छड़ों में भयंकर अवगुण का पता मिलने लगा और अदृश्य-घातक कीटाणुओं के अस्तित्व का भी नैसर्गिक विचार होने लगा। ऐसे कीटाणुओं के अस्तित्व का नैसर्गिक विश्वास और उनसे उत्पन्न रोगों के प्रसार के ही कारण आर्य्य जाति ने उन कठिन और वर्णभेद के नियमों को बनाया जिनसे वे भारतवर्ष की असली जंगली जातियों से अलग रहें। यह आर्य्य जहाँ तक हो सकता था जंगली काली त्वचा वाले मनुष्यों से जिन पर वह राज्य करने के लिए आये थे दूर ही रहते थे। क्योंकि वह समझते थे कि इनके स्पर्श से रोग फैलेंगे।

उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले २० वर्षों में कई वैज्ञानिक इटली, भारतवर्ष, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी और अमरीका के संयुक्त देश में उन खोजों में लगे हुए थे जिनको पाश्चर (Posteur) ने उसी शताब्दी के मध्य में आरम्भ किया था। इन वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य, पशु और वनस्पतियों के बहुत से रोग केवल कीड़े, पतङ्गे और किलनियों से होते हैं; और यह भी खोज निकाला है कि इन रोगों से मुक्त होने के लिए इन रोगों के कीटाणुओं को लाने वाले जन्तुओं से बचना चाहिए और उनको कम करना चाहिए। हाल में एक पुस्तक "कीड़े और मनुष्य" (Insects and Man) सी. ए. ईलैंड रचित प्रकाशित हुई है जिसमें इन कीटोत्पन्न रोगों के निदान और लक्षण का (ब्यौरेवार और शुद्ध वर्णन) दिया हुआ है। यह भी दिया हुआ है कि कीड़ों मकोड़ों से प्रायः असीम हानि पहुँचती है और मानव-जाति को इनसे युद्ध करने के लिए सदैव कटि-बद्ध रहना परम आवश्यक है। यह युद्ध मनुष्य और मनुष्य के बीच में नहीं है वरन् मनुष्य और कीड़ों मकोड़ों के बीच में और इस युद्ध को पूर्ण करके यह निर्णय करना है कि दो प्रकार के जीवधारियों में कौन इस पृथ्वी का राज्याधिकारी होगा, सर्वोत्तम रीढ़वाला वा ओछा बेरीढ़ वाला।

लेखक के मत में इस वर्त्तमान युद्ध

से वह सब बातें भी पूरी तरह समझ में आयी हैं जिनसे पता चलता है कि कीड़े मकोड़े मनुष्यों के अहित के लिए कितना भयंकर काम कर रहे हैं क्योंकि राज्य के टूटे फूटे झोपड़ों के रहने वाले और महलों में सुख से जीवन व्यतीत करने वाले मध्यम और उत्तम श्रेणियों के मनुष्यों का युद्ध के कारण जो समागम हुआ है उससे विचार में यह परिवर्तन होने लगा है कि झोपड़ों में रूखी सूखी रोटी खाने वालों और मैले कुचैले कपड़ों के पहनने वालों की भयंकर अवस्थाओं को सुधारने की ओर ध्यान न देना राष्ट्रीय अपराध है। सभ्य वस्त्रधारी और सभ्य रीति में पोषित क्लार्क को जिसने शायद कभी कृषकों अथवा मिलों के कुलियों के जीवन प्रणाली पर विचार भी न किया होगा उस समय मालूम पड़ा है जब उसको ११ और मनुष्यों के साथ जिन्होंने उत्साह के साथ अपने देश की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों को हथेली पर रख कर हल वा मिलों के कामों को छोड़ दिया है, एक ही डेरे में 'कष्ट पूर्वक रहना पड़ा है कि देहात के चित्र में देने योग्य झोपड़ों और शहरों की गन्दी गलियाँ—जिनकी ओर कृषकों और शहर के स्वच्छ रहने वाले पुरुषों का कुछ भी ध्यान नहीं गया—खटमलों, चीलरों और पिस्सुओं से भरी पड़ी हैं और ऐसी परिस्थिति में (जहाँ प्रायः पानी का बहुत ही बुरा प्रबन्ध हुआ करता है और जहाँ शारीरिक स्वच्छता के भी ठीक रखने का कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता) जीवन निर्वाह करने से अच्छे शरीर वाले पुरुष और स्त्रियाँ भी अपने बदन और कपड़ों लत्तों द्वारा चीलर, खटमल और पिस्सुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाते हैं। इस आविष्कार के बाद ही वह रोग आक्रमण कर लेते हैं जो कीड़ों मकोड़ों के कारण निद्रा-रहित रात बिताने से भी दुखप्रद हैं। शायद कीटोत्पन्न रोगों से मौतें भी हो जाती हैं। वर्तमान युद्ध के कारण जो जो दोष पैदा होंगे उनमें कीड़ों मकोड़ों से उत्पन्न दोष अधिक प्रत्यक्ष दीख पड़ेंगे।

कम से कम दो-तिहाई मानव-रोग,केवल उन कीटाणुओं के नाश कर देने से रोके जा सकते हैं जिनसे रोग फैलते हैं। यह पूरी तरह नहीं मालूम हुआ है कि बन्दर-घाव वा नासूर इत्यादि के होने और कीड़े मकोड़ों के द्वारा कीटाणुओं के प्रवेश करने में कौन कौन से पूर्वरूप एक दूसरे के बाद होते हैं। परन्तु जहाँ तक पता चला है उससे यही मालूम होता है कि इस रोग के कीटाणु एक प्रकार के छोटे कीड़े (Demodex folliculorum) पिस्सू, खटमल वा चीलर के द्वारा फैलते हैं।

इन कीड़ों में से कुछ, मनुष्य की रगों के द्वारा रोग के कीटाणुओं को

पहुँचाते हैं। पहले यह स्वयम् उन कीटाणुओं को अपने शरीर के भीतर किसी रोगी मनुष्य, पशु, पक्षी वा रेंगने वाले जानवरों के रक्त को चूस कर ले लेते हैं वा खाद, सड़ी हुई वनस्पति, बिगड़ा हुआ पानी इत्यादि किसी निर्जीव वस्तु को छू कर ग्रहण कर लेते हैं।

यह कीटाणुयुत-जन्तु मनुष्य के शरीर में इस समय रोग के कीड़ों को चुभो कर घुसेड़ सकते हैं जिस समय उन कीटाणुओं के एक से अनेक हो जाने का अवसर होता है। ऐसी दशा में रोग खूब बढ़ता है। अथवा मक्खी और झींगुर की तरह यह जन्तु रोग के कीटाणुयुत-वस्तुओं जैसे लीद वा सड़ी हुई मछली इत्यादि पर रेंग कर अपने पैरों और टाँगों में इन कीटाणुओं को लेते हुए भोजन की वस्तुओं पर रेंगने, उगल देने वा दूध में गिर पड़ने से इनको रोगयुक्त कर देते हैं। ऐसी वस्तुओं के खाने से खाने वाले के पेट वा अतड़ियों में जाकर रोग बढ़ने लगता है।

यदि हम इन दुखदायी कीड़ों जैसे किलनी, पिस्सू, खटमल, चीलर, मक्खी, मच्छड़, झींगुर और गुबड़ीला (cockchafer) को समूल नाश कर दें वा इनकी संख्या को एक अन्दाज़ से कम कर दें तो प्लेग, कांमला, फ़सली ज्वर, ब्लैक वाटर ज्वर (black water fever) पारी वाला ज्वर डेंगे (dengue), बेरी-बेरी (beriberi), स्कारलेट ज्वर (scarlet fever), शायद बनरघाव, और निस्सन्देह सोने की बीमारी जो आजकल अफ्रीका के बहुत ही उपजाऊ भूमि को सत्यानाश कर रही है यदि समूल नष्ट न हो जायँ तो बहुत कम अवश्य हो जायँगे। इससे पशुओं, भेड़ों, बकरियों, सूअरों, घोड़ों, ऊँटों और पालतू चिड़ियों की बीमारियाँ भी बहुत कम हो जायँगी। हानिकर गुबड़ैलों, खट-मलों, पपरीदार कीड़ों, (scale insects) पतङ्गों (midges) और एफ़ाइड (aphid) को कम कर देने से दुनिया के वनस्प-तियों से उत्पन्न भोजन की वस्तुएँ १०० गुनी अधिक मात्रा में होने लगेंगी।

कीड़ों और मनुष्यों के इस युद्ध में हमारी ओर से शत्रुओं का नाश करने के लिए कुछ पक्षी बहुत ही उपयोगी पाये गये हैं। इनके पश्चात् छिपकिलियों और स्वच्छ जल की मछलियों का नम्बर आता है। इसके अतिरिक्त शत्रु-दलों में भी बहुत से ऐसे हैं जो मित्र का काम करते हैं। क्योंकि कुछ शत्रु-कीड़े ऐसे हैं जो दूसरे शत्रु-कीटों को प्रथमावस्था वा प्रौढ़ावस्था में चट कर जाते हैं। इनमें से एक बहुत ही प्रसिद्ध सुन्दर जाति का गुबड़ैला बीर-बहूटी (?) (lady bird) नाम का है।

गुबरीला वर्ग वाले (Beetle order) जन्तुओं में काक्सीनेलडी (Coccine-

llidae) के अतिरिक्त एक और कुटुम्ब है जो मनुष्यों के हित के लिए बहुत कुछ काम करता है। यह कुटुम्ब कैराबिड (Carabidoe or ground beetles) का है जिसमें प्रायः सभी मांसभक्षक हैं और दूसरे कीड़ों पतङ्गों को उनके प्रथमावस्था में ही चट कर जाते हैं। इनकी अनोखी प्रवृत्ति मादा कीड़ों के खा जाने में अधिक है जिससे यह सहस्रों उत्पन्न होने वाले कीड़ों की माता को ही समूल नाश कर देते हैं। बहुत से कैराबिड (Carabid) विषुवत् देशों के दुष्ट दीमकों को खा जाते हैं। कैलोसोमा (Calosoma) जाति के कीड़े जो देखने में सुन्दर भी होते हैं तितिली के रूप वाले छोटे छोटे पतिङ्गों को (Gypsy moth) चुन चुन कर खा जाते हैं। यह पतिङ्गे पूर्वीय संयुक्त राज्यों (Eastern United States) के अच्छे अच्छे पेड़ों और सेब के बगीचों को मौका पाने पर सफाचट कर डालते हैं।

हिमेनोपटेरस (hymanopterous order) वर्ग वाले, चींटों से होने वाले उपद्रवों को कुछ शान्त करते हैं। यह चींटे विषुवत् देशों में बहुत उत्पात करते हैं। उपद्रवों के शान्त करने में विशेष कर कई प्रकार के बर्र, शहद देने वाली मक्खियाँ, भूमि खोद कर रहने वाले और भोजन ढूँढ़ने वाले बर्र (fossoriol wasp) और राज बर्र (mason wasp) हैं जो उपद्रवी गुबरीलों (beetle grubs) केटरपिलर, मक्खी के अंडे, टिड्डियों, चीटियों, झींगुरों, सिकेड (cicadas) और खटमलों को खा कर नाश कर देते हैं।

इस लिए यह परमावश्यक है कि सब देशों के और सब श्रेणियों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के साथ साथ यह शिक्षा भी देनी चाहिए कि कौन कौन से पतिङ्गे और किलनी इत्यादिकों से बचना चाहिए वा मार डालना चाहिए और कौन कौन से जन्तु बचाना चाहिए वा न मारना चाहिए, क्योंकि वह बड़े काम के होते हैं वे हमारे शत्रुओं के शत्रु हैं। इस देश के लड़के भुमाखियों के मार डालने वा उनका अंग भंग कर देने में बड़े तेज़ होते हैं। वे यह नहीं जानते कि इन्हीं के द्वारा बहुत से पौधों में फल लगने का बीज छोड़ा जाता है और यदि यह न हों तो हमलोगों को कई प्रकार के फल शफ़्तालू, सिनेरेरी इत्यादि नसीब न हों। अविचारी स्त्रियों और पुरुषों को दंड देकर वा जुर्माना करके यह सिखलाना चाहिए कि परों पर मुग्ध होकर ऐसे पक्षियों को जो कीड़े खा खा कर जीवन निर्वाह करते हैं मार डालने में बड़ी ही दुष्टता और मूर्खता है। अफ्रीका में गिनी फ़ाउल (guinea fowl) बड़े ही काम का पक्षी समझा जाना चाहिए क्योंकि यह उन थोड़े से पक्षियों में से एक पक्षी

है जो मिट्टी के भीतर ढूँढ़ ढूँढ़ कर गड़े हुए वा छिपे हुए सेटसी मक्खियोँ (* Tsetse flies) के अंडोँ को खा जाते हैँ।

—महाबीर प्रसाद
(विज्ञान से)

भाई बहिन की बात-चीत

[पदार्थों के साधारण गुण]

आकुंचनीयता।

गुलाब—चम्पा! मैँने उस दिन तुम से पदार्थों के सान्तरता-गुण की बात कही थी। याद है क्या कहा था?

चम्पा—जी हाँ! सब पदार्थों के अणुआँ के बीच कुछ न कुछ जगह होती है।

गु०—हाँ ठीक! इस शीशे की पिचकारी को लो और इसके छेद को अंगुली से बन्द कर डाट को नीचे की ओर दबाओ। क्या देखती हो?

च०—डाट कुछ दूर नीचे जाकर ठहर गई। आगे नहीँ बढ़ती।

गु०—या योँ कहो कि पिचकारी की वायु पर दबाव डाल कर उसे घटा दिया। अब इस काग को तौलो। कितने भर है?

च०—जी, एक पैसे भर

गु०—इसको दबाओ तो सही। क्या हुआ?

च०—जी, काग दब कर कुछ छोटा हो गया।

गु०—इसको फिर तौलो।

च०—जी, तौल तो वही है जो पहले थी याने एक पैसे भर।

गु०—बस अब तुम अच्छी तरह से समझ गई होँगी कि पदार्थ दबाए जाने पर आयतन (डीलडौल) मेँ कम हो जाते हैँ पर तौल मेँ नहीँ घटते।

च०—यह बात क्या तीनोँ प्रकार के पदार्थों मेँ पाई जाती है।

गु०—हाँ सब ही प्रकार के पदार्थों मेँ। वायु दबा कर देख ही लिया। इसके ऐसे जितने वाष्पीय पदार्थ हैँ सब ही दबाव पड़ने पर आयतन मेँ घट जाते हैँ।

च०—पानी जैसे तरल पदार्थों मेँ तो यह गुण देखने मेँ नहीँ आता।

गु०—तुम्हारा कहना तो ठीक है पर असल मेँ यह बात नहीँ है। एक घन इंच पानी पर २७५ मन का दबाव डालने से उस के आयतना का केवल दसवाँ भाग कम हो जाता है। इसी तरह पर पारा

---

* इन मक्खियोँ के दो डैने होते हैँ और इन के काटने से घोड़े, कुत्ते और चौपाएँ मर जाते हैँ। मनुष्योँ और बनैले पशुओँ पर इतना प्रभाव नहीँ पड़ता।

इत्यादि पर दबाव डाल कर लोगों ने इन पदार्थों के आयतन के भी घटने का निश्चय किया है।

च०--पर सोना, चाँदी आदि का घटना तो समझ में नहीं आता।

गु०--क्यों, नहीं, यदि चाँदी बोझ पड़ने पर नहीं दबती तो रुपये पर अक्षर क्यों कर उखड़ते। गिन्नियों पर छाप क्यों कर दी जाती है? बात इतनी ही है कि कोई पदार्थ कम और कोई बेशी दबता है।

च०--अच्छा तो क्या यह बात ठीक है कि आप पदार्थों पर चाहे जितना दबाव डालते जावें वे दबते ही रहेंगे।

गु०--नहीं यह बात ठीक नहीं है। सब बातों की सीमा है। कठिन पदार्थों पर बहुत दबाव पड़ने से वे टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। नोन का ढेला दबाव ही के कारण चूर चूर हो जाता है। तरल पदार्थ दबाव से जमता है और वाष्पीय पदार्थ तरल हो जाता है। तुम को यह सुन कर अचरज होगा कि हवा को भी लोगों ने पानी के ऐसा बना कर उस से काम लेना आरम्भ किया है।

च०—अब मैं अच्छी तरह से इस गुण की बात समझ गई पर आप इसको कहते क्या हैं।

गु०—इस गुण को लोग आकुंचनीयता कहते हैं।

च०—आप लोग चाहे जो कहें पर मैं तो इसे सिकुड़ना ही कहूँगी। अब मैं जाती हूँ। राम राम!

—वामानन्दन

समालोचना

पाटलिपुत्र का विशेषाङ्क— पटना हाईकोर्ट तथा हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के उपलक्ष में "पाटलिपुत्र" का बहुत ही बढ़िया और सर्वाङ्ग-सुन्दर विशेषाङ्क निकला है। इस अङ्क में बड़े आकार के लगभग ८० पृष्ठ हैं जो बिहार सम्बन्धी पचासों चित्रों से सुभूषित हैं। लेख भी अधिकांश बिहार ही के विषय में हैं। हम इस पत्र के संचालकों को उनकी सफलता पर बधाई देते हैं।

शिक्षण-कौमुदी— इस नाम की एक बहुत ही उपयोगी द्वै-मासिक पत्रिका जबलपूर से निकलनी आरम्भ हुई है। हमारे सामने फ़रवरी सन् १९१६ ई० का पहला अङ्क है। इसके दो भाग हैं। पहले में साहित्य सम्बन्धी विविध विषयों पर गद्य पद्यात्मक लेख हैं। दूसरे भाग में गणित तथा भूगोल आदि के शिक्षण की बड़ी सुगम रीतियाँ चित्रों और मान चित्रों के द्वारा समझाई गई हैं। विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के लिए यह पत्रिका बड़े ही काम की है। वार्षिक मूल्य २) है

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, के प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित तथा प्रकाशित।